विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

विशेष संपादक

डाक्टर श्रीरंजन
डाक्टर सत्यप्रकाश
डाक्टर रामशरणदास

डाक्टर बिशंभरनाथ श्रीवास्तव
श्री श्रीचरण वर्मा
स्वामी हरिशरणानंद

भाग ५६

अक्टूबर १९४२—मार्च १९४३

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

विज्ञान, भाग ५६

मुद्रक तथा प्रकाशक—कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञान

प्रयागकी विज्ञान-परिषद्का मुखपत्र

प्रधान संपादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

विशेष सम्पादक

डाक्टर श्रीरंजन | डाक्टर विशंभरनाथ श्रीवास्तव
डाक्टर सत्यप्रकाश | श्री श्रीचरण वर्मा
डाक्टर रामशरणदास | स्वामी हरिशरणानंद

भाग ५७

अप्रैल १९४३—सितम्बर १९४३

प्रकाशक

विज्ञान-परिषद्, इलाहाबाद

अनुक्रमणिका

विज्ञान, भाग ५७

औद्योगिक

कृषि और बाग़बानी

चिकित्सा

जीव-विज्ञान

ज्योतिष

भौतिक विज्ञान

वनस्पतिशास्त्र

विविध

मुद्रक तथा प्रकाशक—कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६ | कन्या, संवत् १९९९ विक्रमी, अक्टूबर, सन् १९४२ | संख्या १

भारतका रासायनिक अनुसंधान

[ले०—डा० बाबा कर्त्तार सिंह, एम०ए०, एस-सी०डी० (कैंटब) एस-सी०डी०(डबलिन) एफ०आई०सी०, आई०ई०एस०]

भारतवर्षमें रसायन विज्ञान पर अनुसंधानका सर्व प्रथम लेख सर अलेक्जेंडर पेडलर एफ० आर० एस० का मिलता है। आप एक समय प्रेसीडेंसी कालिज, कलकत्ता-में रसायन शास्त्रके आचार्य थे। पेडलर महोदयका ध्यान काले नागके विषकी ओर आकर्षित हुआ। आपने विषकी रासायनिक विवेचना एवं उनके प्रभावका वर्णन किया जो कि सन् १८७८ ई० में रचनाके रूपमें लंदनकी रायल सोसायइटी द्वारा प्रकाशित हुआ। पेडलर महोदयने यह भी ज्ञात किया कि उपर्युक्त विषका नाशक प्लेटिनिक क्लोराइड नामक रसायनिक पदार्थ है। इसके प्रयोगसे एक विषहीन लवणका निर्माण होता है जिसके कि मुर्गीके बच्चेके शरीरमें प्रवेश कराने पर कोई बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। सन् १८९० ई० में पेडलर महोदयने कुछ और वैज्ञानिक रचनायें प्रकाशित कीं जो कि उपर्युक्त विषयसे बिल्कुल भिन्न थीं, तत्पश्चात् पेडलर महोदयका शासन-प्रबंध कारिणी पद पर स्थानांतर हो गया और उसके साथ ही उनके रासायनिक अनुसंधानकी भी इतिश्री हो गयी।

प्रेसीडेंसी कालिज कलकत्तामें डा० प्रफुल्लचन्द्ररायके आगमनसे जो बंगाल प्रदेशमें सफल बीज बोये गये थे उससे रसायन अनुसंधानकी प्रगतिमें एक प्रोत्साहन मिला। आचार्य राय महोदय-विस्तृत रासायनिक शिक्षा पाकर—उसी समय एडिनबरा विश्वविद्यालयसे पधारे थे। वहाँ पर आपके गुरु रसायन विज्ञानके प्रकांड विद्वान् प्रोफेसर क्रमब्राउन थे। आरंभमें अनुसंधानकी प्रगति कुछ धीमी रही किन्तु आचार्य महोदयने अनेक प्रतिकूल अवस्थाओं एवं कठिनाइयोंके रहते हुए भी अपनी संपूर्ण शक्ति द्वारा अनुसंधानकी प्रगति स्थापित रक्खी। यहाँ तक कि आपने राजशरी कालिजकी अध्यक्षताको अस्वीकार कर दिया। कारण यह था कि वहाँ पर चले जानेसे आपके रासायनिक अनुसंधानकी सुगमतायें समाप्त हो जातीं। सन् १८९६ में 'मरक्यूरस नाइट्राइट' के आविष्कारसे प्रोफेसर राय महोदयके अनुसंधानका एक निश्चित मार्ग स्थापित हो गया और कई वर्षों तक उसीमें

लगे रहे। सन् १९०९ और १९११ के केमिकल सोसायटी लंदन द्वारा प्रकाशित वार्षिक विवरणमें प्रोफेसर एच० बी० बेकर महोदय ने आचार्य रायके अनुसंधान कार्यको नाइट्राइट जैसे विषय पर अत्यन्त कठिन और गंभीर अध्ययन घोषित किया था।

भारतवर्षमें रासायनिक अनुसंधान कार्य सन् १९१० ई० तक निस्संदेह अपर्य्याप्त रहा। एक वर्षमें वैज्ञानिक रचनाओंका प्रकाशन केवल इनी गिनी संख्यामें रहता था। तत्पश्चात् अनेक कारणोंसे इस दिशा की ओर उन्नति हुई। जमशेद जी ताता-विज्ञानके उपकारक ने ३० लाख रुपयेकी पूँजी विज्ञानकी उन्नतिके लिये भारत सरकारको प्रदान की। उपर्युक्त पूंजीसे प्रायः सवा लाख रुपये प्रतिवर्षकी आय होती रही। इस दानका उद्देश्य यह था कि उस पूंजी-की सहायतासे भारतीय युवकोंके लाभके लिये एक अनुसंधान-शाला स्थापित की जावे। बंगलोरकी प्रसिद्ध वैज्ञानिक अनुसंधान शाला—इसी दानका फल है। सर विलियम रैमज़ेके प्रख्यात शिष्य डा० एम० डब्ल्यू ट्रावर्स एफ० आर० एस० महोदय सन् १९०६ में इस संस्थाके प्रथम डाइरेक्टर नियुक्त हुए और विद्यार्थियोंका प्रथम समूह सन् १९११ में प्रवेश हुआ। यह संस्था रसायन विज्ञानकी विभिन्न श्रेणियोंमें अनुसंधान करनेकी शिक्षा प्रदान करती है एवं विद्युत विज्ञानकी उच्च शिक्षा भी देती है। यह अपने ढंगकी एक अनूठी संस्था है। इसमें किसी प्रकारकी परीक्षा अथवा बंधन नहीं है एवं विद्यार्थियोंको संपूर्ण समय अध्ययन करनेके लिये अर्पण होता है। डा० ट्रावर्स महोदयकी यह शिक्षा प्रणाली सडबरो, साइमनसन, फाउलर एवं फार्सटर महोदयों द्वारा अनुकरण की गयी। उपर्युक्त भारतीय वैज्ञानिक अनुसंधानशाला ने रसायन विज्ञानके अनुसंधानमें आश्चर्यजनक उन्नति की है। इस संस्थाको अन्य प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंमें सुविख्यात सर सी० वी० रामन् महोदय एफ० आर० एस०, एन० एल० का सहयोग प्राप्त होनेका श्रेय है।

जिस समय कि मैसूर प्रदेशमें ताता महोदयकी कृपासे रचनात्मक कार्य हो रहा था, बंगाल प्रदेशके एक शिक्षा-प्रेमी द्वारा प्राकृतिक विज्ञान पर विस्तृत अनुसंधानकी व्यवस्थाकी पूजा हो रही थी। यह उसी चेष्टाका फल था कि कलकत्तामें 'कालिज आफ सायंस' की स्थापना हुई। इस संस्थाका निर्माण प्रधानतः सर टी० एन० पालित व सर राश बिहारी घोषकी विशाल दानशीलताका परिणाम था, सर आशुतोष मुकर्जीने जो कि स्वयं एक अच्छे गणितज्ञ थे—यह स्पष्टतः अनुभव किया कि उच्च-कोटिके मस्तिष्क और वैज्ञानिक अनुसंधानकी सफलताका श्रेय किसी भी दशामें राजनैतिक उन्नतिसे कम महत्ता नहीं रखता। उन्होंने सरकारी पदों और वकील-बंगालके युवकों-का ध्यान वैज्ञानिक अनुसंधानकी ओर आकर्षित कराया। आपने नूतन निर्मित वैज्ञानिक कालिजके अध्यापन कार्यके लिये सर पी० सी० राय और प्रोफेसर सी० वी० रामन्को चुना। इस चुनावमें सर आशुतोष मुकर्जी ने जिस बुद्धिमानी और दूरदर्शितासे कार्य लिया था वह उपर्युक्त कालिजके पिछले २५ वर्षोंसे स्थापित उच्च-कोटिके कार्यों द्वारा विदित होता है जिससे विज्ञानकी अधिक उन्नति हुई है। प्रो० रामन् सन् १९२४ में लंदनकी रायल सोसायटीके सदस्य निर्वाचित हुए और आपके सुविख्यात अनुसंधान 'रामन् प्रभाव' के कारण भौतिक विज्ञानमें आपको १९३० ई० में नोबुल पुरस्कार' प्रदान किया गया। यद्यपि सर सी० वी० रामन् महोदय संसारके प्रख्यात भौतिक वैज्ञानिकोंमें से हैं किन्तु आपके उक्त अनुसंधान पर जिसके कारण आप वैज्ञानिक जगत्के सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार विजेता हुए हैं उसका महत्व रसायन विज्ञानमें किसी प्रकार कम नहीं है। उस खोज द्वारा रसायन शास्त्रके अनेक मौलिक सिद्धान्तोंका उसी प्रकार स्पष्टीकरण हुआ है जिस प्रकार कि भौतिक विज्ञान में। विज्ञानकी दोनों श्रेणियोंमें 'रामन् प्रभाव' अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुआ है। इस प्रभावसे संबंधित प्रायः १००० वैज्ञानिक रचनायें संसारकी विभिन्न अनुसंधान-शालाओंसे अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं और अब तक उस पर कार्य हो रहा है। एक अंग्रेजी वैज्ञानिक पत्रके समालोचकके शब्दोंमें सन् १९२८ में 'रामन् प्रभाव' के अनुसंधान ने वैज्ञानिक खोजमें एक नूतन स्रोत स्थापित कर दिया है जो कि उतना ही महत्व रखता है जितना कि विज्ञानके आरम्भिक इतिहासमें 'एक्स रे' और रेडियो एक्टिविटी का रहा है। रसायन विज्ञानमें महत्वपूर्ण कार्य करनेके कारण सन् १९३१ में सर सी० वी० रामन् महोदय

का नाम 'भारतीय रसायन संस्था' की सदस्यताके लिये प्रस्तावित किया गया। इस सम्मानित पदके लिये प्रथम नाम प्रोफेसर ए० सोमर फील्ड महोदय, म्यूनिचका था।

कलकत्तेके वैज्ञानिक कालिजके रसायन विभागमें अन्य युवकोंमें जिनको आशुतोष मुकर्जी जी ने निर्वाचित किया था उनमें जे० सी० घोष महोदय भी थे। सन् १९१८ में घोष महोदय ने विद्युत् सम्बन्धी अपना सिद्धान्त प्रकाशित किया जो कि सदरलैण्ड, वजरम और मिलनर महोदयोंके संपूर्ण विसर्जनके आधार पर निर्मित था। आरम्भमें वैज्ञानिक जगत्के प्रख्यात रसायनज्ञ और भौतिक विज्ञानके पंडितों-ने उस सिद्धान्तकी प्रशंसा की और वैज्ञानिक जगत्में एक हलचल उत्पन्न हो गई। किन्तु घोष महोदयकी कल्पना एवं गणितकी दृष्टिमें उनके सिद्धान्तमें कुछ न्यूनता थी जिसके फल स्वरूप उसकी कड़ी आलोचनायें हुईं और सन् १९२३ ई० में उसका वहिष्कार कर डिवाई महोदय-के सिद्धान्तको अंगीकार किया गया। डिबाई महोदय ने गणितके दृष्टिकोणसे अपने सिद्धान्तकी भली भांति प्राप्ति-की है। यदि घोष महोदय गणितमें अधिक कार्य कुशल होते तो यह निश्चय था वे अपने सिद्धान्त सम्बन्धी न्यूनता-को दूर करनेमें समर्थ होते।

पूर्वीय बंगालमें ढाका एक प्राचीन वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्र रहा है। रासायनिक दिशाकी ओर सफल अनुसन्धान करनेका श्रेय इसको प्राप्त है। ई० आर० वाटसन महोदय-का 'रङ्ग और रासायनिक संगठन' का कार्य उच्च कोटिका समझा जाता है। आपने इस अनुसन्धानका एक सम्प्रदाय स्थापित कर दिया है जिससे उत्पन्न कुछ भारतीय वैज्ञानिक सर्व श्री ए० सी० सरकार, पी० सी० घोष और एस० बी० दत्त महोदय हैं। लेखक ने भी अपना स्टीरियो-रसायनका कार्य ढाका ही में आरम्भ किया था जो कि सन् १९१० से १९१८ तक होता रहा। यह अनुसन्धान कार्य लेखक अपने शिष्योंके साथ लाहौर, कटक, पटना और अब इला-हाबादमें संचालन कर रहे हैं। इसमें नेत्रजन, फोटोट्रापिज़्म, आपटिकल क्रिया आदि सम्मिलित हैं। 'स्टीयरो-रसायन', रसायन-विज्ञानका एक विभाग है और जीव-रसायनसे सम्बन्धित है। विभागका सबसे महत्वपूर्ण कार्य सम्पूर्ण 'एसीमीट्रिक' संयोगात्मक निर्माण रहा है। रसायनशाला में अकर्मक पदार्थोंसे निर्मित पदार्थ नित्य अकर्मक ही होते हैं। किन्तु जल, कार्बन द्वै आक्साइड, अमोनिया आदि अकर्मक पदार्थोंके सहयोगसे निर्मित जीव अंश पदार्थों जैसे वृक्ष, पशु आदिसे उत्पन्न हमेशा सकर्मक रूपमें होते हैं। अतः इन दोनोंके गुणोंमें भेद है। साक्षात् रूपसे सकर्मक पदार्थोंका निर्माण एक वैज्ञानिक समस्या रही है। जिस प्रकार कि एक जीव अंशसे जीवकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार रसायनिज्ञ सकर्मक पदार्थसे उसी प्रकारके पदार्थकी उत्पत्ति की चेष्टामें रहे। निर्जीव पदार्थसे जीवयुक्त पदार्थकी उत्पन्न करनेकी चेष्टा निष्फल नहीं किन्तु रसाय-नज्ञोंसे अकर्मकसे सकर्मक रसायनिक पदार्थकी निर्माण करनेके प्रयत्नमें लगे रहे। रसायनशालामें इस प्रकारका सफल प्रयास निस्सन्देह उच्च कोटिका अनुसन्धान होगा। इस प्रयत्नकी सफलताके लिये काटन, पेमले, हारव, जेगर आदि पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने अनेक प्रकारके प्रयोग किये किन्तु अन्तमें १९२९ कुन्ह, ब्राउन और फ्यूडेनवर्गकी चेष्टायें सफल हुईं।

सन् १९२१ ई० में ढाका विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई और डा० घोष महोदय रसायन-विज्ञानके आचार्य नियुक्त हुये। आप १९३९ तक यहाँ पर रहे। इस कालमें आपने ढाकाकी उच्च कोटिकी वैज्ञानिक प्रणाली और अनुसन्धानका क्रम स्थापित रक्खा है। आपने अपने अनेक शिष्योंके साथ प्रकाश सम्बन्धी रसायनिक क्रियाओंका अध्ययन किया। सन् १९३९ में आप बङ्गलोर अनुसन्धान-शालामें बुला लिये गये। कलकत्तेमें कोलायड रसायन पर श्री जे० एन० मुकर्जी महोदय ने सुन्दर कार्य किया है। पी० सी० मित्र महोदय ने रूबीडियम आदि पर अनुसंधान किया है। इनआरगेनिक रसायनमें पी० राय और पी० बी० सरकारका नाम महत्व पूर्ण है। कलकत्तेके अन्य वैज्ञानिकोंमें जिन्होंने अपने-अपने विषय द्वारा रासायनिक अनुसन्धानमें योग दिया है उनमें सर्व श्री एच० के० सेन; बी० सी० गुहा, बी० सी० बर्धन, एम० गोस्वामी और एम० कुदरते खुदाका नाम लिया जा सकता है।

लाहौरमें प्रोफेसर रूचीराय साहनी, बी० एम० जोन्स बी० एच० विलसन, एच० बी० डनकिल्फ और पी० सी० सर्पापरस आदि महोदयोंने अमूल्य कार्य किया है। सन्

१६२१ में लाहौर में एक नूतन स्रोतका प्रवाह हुआ जब कि विश्वविद्यालय ने रसायन विज्ञानमें एक आचार्यका स्थान निर्माण किया। लेखकको उस पद पर नियुक्त किया गया किन्तु इनडियन एज्यूकेशनल सर्विसमें होनेके कारण स्थानान्तरमें कठिनाई पड़ी अतः उस पदको लेखक ग्रहण न कर सका किन्तु उसने विश्वविद्यालयकी रसायनशालाके निर्माणमें सहयोग दिया जो कि ३ लाख रुपयेके व्ययसे सन् १६२२ में तैयार हुई। यह रसायनशाला सामग्री और युक्तिपूर्ण निर्माणकी दृष्टिसे भारतवर्षमें महत्वपूर्ण स्थान रखती है। श्री डाक्टर शांति स्वरूप भटनागर सन् १६२४ में रसायन-विज्ञानके आचार्य नियुक्त हुये। आपने चुम्बक-रसायन पर महत्वपूर्ण अनुसन्धान किया है। अन्य विषय जिन पर कि आपने खोज की है वह कोलायड और प्रकाश रसायनका है। भारत सरकार ने अभी हाल ही में सर भटनागरको वैज्ञानिक औद्योगिक अनुसन्धान शाला-का अध्यक्ष नियुक्त किया है। लाहौरके अन्य वैज्ञानिकोंमें जिन्होंने महत्वपूर्ण अनुसन्धान किया है उनमें जे० एन० राय, ए० एन० पुरी, वाई० ए० याज्ञिक, मदन सिंह, एस० डी० मुज्जफर आदिका नाम लिया जा सकता है। युवक रसायनज्ञोंमें बलवन्त सिंह नारंग, कपूर, भाल, वी० एस० पुरी, जीवन लाल आदि महोदयोंका नाम है जिन्होंने इस दिशामें सफल अनुसन्धान किया है। देहलीमें भारतीय कृति अनुसन्धान शालाके डाइरेक्टर राय बहादुर विश्वनाथ और डा० बी० डी० लरोइया वैज्ञानिक अनु-सन्धानकी उन्नतिमें विशेष चेष्टा प्रदान कर रहे हैं।

सन् १८६५ में डा० ई० जी० हिल महोदय म्योर सेण्ट्रल कालिज इलाहाबादमें पधारे। आप रसायन-विज्ञान-के एक सफल अध्यापक रहे और ४० वर्ष पूर्व इलाहाबाद-में रसायनिक अनुसन्धानकी नीव डालनेमें आपका प्रधान हाथ रहा है। हिल महोदयने ऊसर भूमिकी उन्नति-का आवश्यक अनुसन्धान आरम्भ किया। युक्त प्रांतमें खार मिट्टीके कारण विशाल भूमि बंजर पड़ी थी उसको दूर करनेके लिये आपने विशेष प्रयत्न किया। आपने कुछ प्राकृतिक पदार्थों और अन्य रसायनिक विषयोंपर भी अध्ययन किया। आपके कुछ अनुसन्धानोंमें डा० ए० पी० सरकार जो कि आपके शिष्य रहे उनका भी सहयोग प्राप्त था। डा० हिलके पश्चात् डा० नील रत्नधर सन् १६१६ में म्योर सेण्ट्रल कालिजमें पधारे। डा० हिल महोदयने एक अच्छी रसायन-शालाका निर्माण किया था, जो कि उस समयके विद्यार्थियोंके लिये पर्याप्त थी। किन्तु आजकलके बढ़े हुये विद्यार्थियोंकी संख्या देखकर यह रसायनशाला अपर्याप्त है। डा० धर महोदयने अपने अनेक शिष्योंके साथ 'लिसिगंग अंगूठियों' पर विशेष रूपसे खोज किया है, प्रकाश सम्बन्धी रासायनिक क्रियायें एवं भूमिमें नेत्रजन-की मात्रा बढ़ाने पर आपने गम्भीर अध्ययन किया है। अब आप सरकारके शिक्षा विभागमें कार्य संपादन कर रहे हैं। संतोषका विषय है कि व्यवस्थापक कार्यमें सलग्न होने-पर भी आपने अपना रासायनिक अनुसन्धानका क्रम स्थापित रक्खा है। डा० धर महोदयने अन्नकी उत्पत्ति बढ़ानेके लिये शीरेके प्रयोगकी लाभदायक सिद्ध किया है। किन्तु उसके प्रयोगमें कई आपत्ति उपस्थित की गयी हैं। कृषि विभाग-के अधिकारियोंने शीरेके आने जानेमें कठिनाई प्रकट की है। वैज्ञानिक दृष्टिसे भी कुछ आलोचनायें हुई हैं। शीरेका दूसरा उपयुक्त प्रयोग 'पावर अलकोहल' में परिणत करना है। युक्त प्रांत और बिहारकी सरकार शीरेमें अलकोहलका निर्माण कर मोटरके पेट्रोलमें मिश्रित करनेका प्रयोग कर रही हैं। इलाहाबादके अन्य रसायनज्ञोंमें डा० एस० दत्त हैं जो कि ढाका समुदायके पुराने शिष्य हैं। आपने विस्तृत रूपसे रंग और रासायनिक संगठन व वृक्षोंके रासायनिक तत्वों पर अनुसंधान किया है। वृक्षों परका कार्य स्वर्गीय कर्नल कान्ता प्रसाद आई० एम० एस० की दानशीलता द्वारा सम्भव हो सका है। इलाहाबादके अन्य कार्य-कर्त्ताओं में सर्व श्री, आई० के० तैमिनी, एस० घोष०, जे० डी० तिवारी, सी० सी० पालित, सत्यप्रकाश, ए० के० भट्टाचार्य, और आर० के० काल महोदय हैं। प्रो० के० पी० चटर्जी, अपने अमूल्य सहयोगसे रसायन शालाके कार्य संचालित करनेमें प्रयत्नशील हैं।

साइन्स कालिज पटनामें रसायनिक अनुसन्धान प्रोफेसर आ० सी० राय, पी० बी० गंगुली, एम० क्यू० डोजा, एन० एल० विद्यार्थी एवं अन्य कई वैज्ञानिकों द्वारा संपा दित किया जा रहा है। पटनाकी रसायनशालाका निर्माण बहुत संगठित रूपसे हुआ, जिसका कि श्रेय डा० के०

एस० कैंडवेलको है। सन् १९४० में पटनाकी रसायनशाला में एक रासायनिक औद्योगिक विभागकी स्थापना हुई है। यह विहार सरकारकी औद्योगिक विभागकी कृपाका फल है। वर्तमान लेखक ने, जो कि उस समय औद्योगिक विभागके रासायनिक परामर्शदाता थे, उपर्युक्त औद्योगिक शालाका निर्माण ४०००० रुपयेकी व्ययसे सम्पन्न करवाया था। किन्तु इसका बीज डा० कैडवेल व श्री ए० एस० खान द्वारा ही बोया गया था। बम्बई प्रान्तमें डा० एन० जी० नायक (बरोदा) डा० वेङ्कटरमण, डा० माता प्रसाद डा० ए० आर० नारायण, डा० आर० पी० देसाई, एवं अन्य कई वैज्ञानिकों द्वारा रसायन अनुसन्धान किया जा रहा है। स्वर्गीय डा० ए० एन० मेडरमका 'मास एसिड' पर अनुसन्धान प्रशंसनीय था। बम्बईमें प्रो० टी० के० गज्जरका प्रारम्भिक कार्य चिरस्मरणीय रहेगा। निस्सन्देह यद्यपि उनको बंगालकी भांति यहाँ पर प्रोत्साहन मिलता तो वे रसायन विज्ञानका एक अपूर्व सम्प्रदाय स्थापित कर देते।

श्रीयुत बी० बी० दे (मद्रास), टी० एस० सिद्धार्थी (वालटेर), बी० प्रसाद (करवा) के० एल० मुडगिल (त्रीवेन्द्रम) पी० एस० वर्मा और एस० एस० जोशी (बनारस) एवं लखनऊ, आगरा, अलीगढ़, बंगलोर और हैदराबादके अन्य रसायनज्ञोंके उच्च कोटिके अनुसन्धानोंका विवरण करना इस लेखमें सम्भव नहीं है। कारण अधिक विस्तार होनेका भय है। किन्तु साथ ही डा० जे० एल० साइमनसन एफ० आर० एस० और प्रो० पी० एस० मैकमोहनका नाम भूल जाना सम्भव नहीं है। आप इनडियन सायन्स कांग्रेसके संस्थापक हैं। साइमनसन महोदयने मद्रास, देहरादून, और बङ्गलोरसे सुगन्धित तैलों पर वैज्ञानिक अनुसन्धान प्रकाशित किये हैं। आपने यह प्रकट किया है कि 'सिलवेस्ट्रीन' प्राकृतिक दशामें वृक्षोंमें नहीं पाया जाता किन्तु निकालनेकी क्रियामें वह 'केरीनस' द्वारा परिणत हो जाता है। स्वर्गीय श्री पूर्णसिंहने वृचों और सुगन्धित तैलोंपर आवश्यक अनुसन्धान किया है। आपके पश्चात् देहरादूनमें डा० श्री कृष्ण उन्हीं विषयोंपर उच्च कोटिका अनुसन्धान कार्य कर रहे हैं।

रसायन विज्ञानके उपर्युक्त विवरणसे विदित है कि सन् १९१० के पश्चात् भारतवर्षमें अनुसन्धान कार्यकी शीघ्रतासे उन्नति हुई है। जहाँ कि कठिनतासे ६—७ वैज्ञानिक अनुसन्धान प्रकाशित होते थे वहाँ आज प्रायः २५० रचनायें प्रतिवर्ष इनडियन सायन्स काँग्रेसके वार्षिक अधिवेशन में सम्वादितकी जाती हैं। इस कालमें निम्नलिखित भारतीय वैज्ञानिक पत्र स्थापित हो गये हैं जिनमें रासायनिक अनुसन्धान प्रकाशित होते हैं।

जर्नल आफ दी इनडियन केमिकल सोसाइटी, (१९२४) प्रोसीडिंगस आफ दी इनडियन एकेडेमी आफ सायन्स (१९३२) प्रोसीडिंगस आफ नेशनल एकेडेमी आफ सायन्स (१९३१) प्रोसीडिंगस व ट्रांसकसन आफ नेशनल इनस्टीट्यूट आफ सायन्स (१९१८), करेंट साइंस (१९३२)। इसके अतिरिक्त रासायनिक अनुसन्धान प्रान्तीय व भारत सरकार और भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा भी प्रकाशित किये गये हैं।

इस प्रगतिके होते हुये भी हमें यह मानना पड़ेगा कि रासायनिक अनुसन्धानकी श्रेणी उच्च कोटिकी नहीं है जैसा कि भौतिक विज्ञानकी है। अनेक भारतीय वैज्ञानिकों ने भौतिक विज्ञानके अनुसन्धानके कारण अन्तरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की है। निस्सन्देह किसी सीमा तक भारतीय रसायनज्ञोंके पास सजातीय वैज्ञानिक साधनका अभाव होनेके कारण इस दिशामें पिछड़ना सम्भव हो सकता है और लेखकने इनडियन केमिकल सोसाइटीके नवें वार्षिक अधिवेशनमें सभापतिके पदसे दिये गये भाषणमें इस बातका ध्यान विशेष रूपसे आकर्षित किया था। भाषणके अन्तमें आपने कहा :—

मैं कुछ सम्मति देना चाहता हूँ जो कि विश्वविद्यालयकी शिक्षाके समय युवक रसायनज्ञोंको लाभदायक होगी। रसायन विज्ञानकी सरल समस्याओंका समाधान हो गया है। अब कठिन विषयोंका स्पष्टीकरण करना है। अतः मस्तिष्कके अनुसन्धान कर्त्ताओंके लिये यह आवश्यक है कि वे गणित और भौतिक विज्ञानमें भली भांति शिक्षा प्राप्त करें। यदि उनका विषय जीव-रसायनपर है तो वे जीव-विज्ञान और प्राणि-विद्याका अध्ययन करें। इसके बाद उसको उच्च कोटिका रासायनिक प्रयोगिक होना भी आवश्यक है। रसायन विज्ञानके मौलिक लेख अँग्रेज़ी, फ्रेंच,

व जर्मनीमें होनेके कारण, इन विभिन्न भाषाओंका ज्ञान रखना भी आवश्यक है। यदि भारतीय रसायनज्ञ इस प्रकारकी शिक्षा प्राप्त करें तो निस्सन्देह अनुसन्धान कार्य भौतिक विज्ञानसे किसी प्रकार कम न हो। सामाजिक उन्नतिके साथ भारतीय भक्तिकी भी विशेष रूपसे वृद्धि हुई है और वे वैज्ञानिक अनुसन्धानके लिये पूर्णरूपसे उपयुक्त हैं। इस समय आवश्यकता है कार्य-कर्त्ताओंकी, उचित शिक्षा और वैज्ञानिक अनुसन्धानके सम्पूर्ण साधन की। उसके सम्पन्न हो जाने पर कोई कारण नहीं कि उच्च कोटिके मौलिक रसायनिक अनुसन्धान न किये जावें।

विहार प्रान्तमें रसायनिक अनुसन्धानका विशाल क्षेत्र है वहाँ पर अनेक खनिज पदार्थ पाये जाते हैं। जमशेदपुरमें लोहेका कार्यालय सफलतापूर्वक सपांदित हो रहा है। टाटा महोदयकी कृपासे अनुसन्धानशाला भी स्थापित है जो कि न केवल औद्योगिक उन्नतिमें सहयोग देगी बल्कि रसायन विज्ञानके मौलिक अनुसन्धानोंमें भी सहयोग प्रदान करेगी।

—सर्चलाइटके एक लेखका भावानुवाद

क्या अन्य ग्रहोंमें भी प्राणी हैं ?

[प्रोफ़ेसर ए० सी० बैनर्जी; अनुवादक, श्री शांतिराम मुकर्जी, एम० ए०]

[गतांकसे आगे]

१८७७ ई० में मंगलग्रह पृथ्वीके बहुत नज़दीक आया था। तब मिलान मानमन्दिरके अध्यक्ष शियापारेली साहबने दूरवीक्षण यन्त्रसे मंगलग्रहकी अच्छी तरहसे परीक्षाकी थी। उन्होंने मलिन रेखायोंको सरल रेखा समझा और इनको जल प्रणालीके नामसे अभिहित किया। तब दूसरे वैज्ञानिकगण इन रेखायोंके आविष्कारकी बात सुनकर बड़े विस्मित हुए। दूसरे कोई भी इसको देख न पाये इसलिये किसीने शियापारेलीकी बात पर विश्वास नहीं किया। १८७६ और १८८१ ई० में शियापारेलीने इन जल प्रणालियोंको और भी स्पष्टतासे देखा। उन्होंने और भी आविष्कार किया कि कुछ रेखायें युग्म भी हैं। यह सुनके ज्योतिर्विदगण स्तम्भित हो गये। युग्म जल प्रणाली तो दूरकी बात, एकको भी वे लोग देख न पाये। बहुत लोग कहने लगे कि शियापारेली ज़रूर उन्मादित हो गये हैं या दूसरे किसी विषम मोहमें पड़े हैं। १८८८ ई० में निस मानमन्दिरमें तीस इञ्च वाले दूरवीक्षणसे पेरोटिन साहबने उन प्रणालियोंको स्पष्टतासे देख पाया। अब इनके अस्तित्वमें और किसीको सन्देह न रहा। शियापारेलीको सब धन्य-धन्य कहने लगे।

पहले वैज्ञानिकोंने मंगलके ऊपरके लालाभ अंशको भूखण्ड और मलिनोंको "समुद्र" समझा था। परन्तु १८६२ ई० में पिकरिंग साहबने देखा कि उन समुद्रोंके ऊपरसे भी कुछ जल प्रणालियां चली गयीं। १८६४ ई० में आरिजोना प्रदेशके फ्लागष्टाफ मान-मन्दिरके अध्यक्ष लावेल साहबने भी देखा कि "समुद्रों" को भेद करके बहुत प्रणालियां चली गयीं। ये प्रणालियां स्थायी अवस्थामें देखी जाती हैं। तरल जलके ऊपर स्थायी चिह्न नहीं दीख पड़ता। इसलिये वे पानीसे भरे हुए समुद्र नहीं हो सकते। लावेल साहबने और भी देखा कि इन मलिन अंशोंका रंग और आकार ऋतुके परिवर्त्तनके साथ परिवर्त्तित होता है।

उन्होंने मंगलके पृष्ठ पर मरु-भूमिके समान कुछ अंश आविष्कार किये और फिर भी देखा कि प्रणालियाँ मंगलकी मरु-भूमियोंको संयुक्त कर रही हैं। शियापारेली और लावेल साहबोंके मतसे ये प्रणालियां अविच्छिन्न सरल रेखायें हैं और इसलिये वे कृत्रिम जल प्रणालीको छोड़कर दूसरी कुछ नहीं हैं। प्राकृतिक जगतमें इतनी अकृत्रिम रेखायें सरल नहीं हो सकतीं। उनकी धारणा यह थी कि ये सब प्रणालियां जल प्रवाहके लिये किसी बुद्धिमान जीवने बनाई हैं। इन जल प्रणालियोंको उन्होंने नहरें माना। मगर बर्नार्ड और एण्टोनी आदि साहबोंके मतसे ये रेखायें सरल और अविच्छिन्न नहीं हैं—हर रेखा कुछ अस्पष्ट, असमान और अलग-अलग विन्दुओंकी सिर्फ समष्टि है। दूरसे विन्दुओंके बीचमें व्यवधान स्पष्टतासे नहीं देखा जाता है, इसलिये विन्दु समूह मिलकर प्रायः अविच्छिन्न रेखाके समान दिखलाई पड़ते हैं।

"नाना मुनियोंके नाना मत हैं"–यह कहावत ज्योतिर्विदोंके सम्बन्धमें अक्षरशः लागू होती है।

मंगलग्रह अपने मेरुदण्डके चारों तरफ आवर्त्तन कर रहा है; और इसके दिन रातका परिमाण २४ घण्टा ३६ मिनट है। ऋतुके अनुसार मंगलका पृष्ठ भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। आलोक-चित्रमें मंगलके उभय मेरुओंके ऊपर श्वेत आवरण देखा जाता है। गरमीमें यह कम हो जाता है और जाड़ेमें इसका आकार बहुत बढ़ जाता है। वैज्ञानिकोंके अनुमानसे यह सफेद आवरण बर्फसे बना हुआ है। गरमीमें बर्फ गलकर कम हो जाती है और जाड़ेसे पानी जमने पर बर्फकी समष्टि अधिक होती है। ऋतुओंके अनुसार मंगलके मलिन अंशका और मरु-भूमिका रंग बदलता है। लावेलने इसका एक सुंदर कारण दिखलाया है। उनके अनुमानसे उन जगहों पर पेड़के पत्ते सूखकर बादामी रंगके हो जाते हैं और पेड़की शाखायें विवर्ण हो जाती हैं। नहरें (प्रणालियाँ) मेरुदेशसे उष्णदेश तक गई हैं। गरमीमें जब मेरुकी-बर्फ गलके पानी होती है और वह जल प्रणालियोंके भीतरसे इस छायामय अंशमें पहुँचती हैं तब उस जगहकी वृक्षलतायें सतेज और हरी हो जाती हैं। आरहेनियस साहबके मतसे ये सब छायामय अंश वृक्षलताओंसे भरे हुए श्यामल क्षेत्र नहीं हैं, परन्तु इन सब अंशोंकी मिट्टी हर तरहके द्रवणीय लवणसे भरी हुई है। वायुमें जलके वाष्पका परिमाण जब अधिक होता है तब ये लवण वायुसे जलके कणोंको छीन लेते हैं, और इसलिये ही मिट्टी गीली होकर और भी मलिन और काली दिखलायी पड़ती है। मगर ऊपरकी वायुमें जब जलीय-वाष्पका परिमाण कम हो जाता है तब सूखी वायु जलके कणोंको फिर ले लेती है और मिट्टी सूखकर फिर विवर्ण हो जाती है।

मंगलके पृष्ठका $\frac{3}{4}$ अंशका रंग लालाभ है। ऋतु परिवर्त्तनके साथ इन अंशोंका रंग बदलता नहीं है। इसलिये पण्डितगण मानते हैं कि ये जगहें बालूसे भरी मरु-भूमि हैं।

"थर्मोकपल" नामके एक सूक्ष्म यंत्रसे ग्रहोंकी तापमात्रा जानी जाती है। कुछ वर्ष पहले अमेरिकन ब्यूरो आव-स्टैण्डर्ड्सके अध्यक्ष कवलन्टस और लावेल मान-मन्दिरके डा० लैम्पलैण्डने भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें मंगलके भिन्न-भिन्न प्रदेशोंका ताप नापा है। ग्रीष्मकी दोपहरीमें दक्षिण मेरु-प्रदेशका तापक्रम १५° से ५०° फारेनहाइट तक और दक्षिण शीतोष्ण-मंडलमें ६०° से ७५° फा: तक बढ़ता है। ग्रीष्म मंडलमें तापक्रम ६५° से ८०° फा: तक होता है। उत्तराञ्चलके प्रदेशोंका भी तापक्रम थोड़ा-बहुत ऐसा ही होता है। उत्तर मेरु प्रदेशमें जाड़ेमें दोपहरकी तापमात्रा—-४०° से —१०° फा: तक होती है। रातको मंगलमें बहुधा मेघका उदय होता है। इसलिये रातको तापक्रम जितना कम होना चाहिये उतना कम नहीं होता। मेघ न रहता तो मंगलका पृष्ठतल और भी शीतल हो जाता। कुछ वर्ष पहले ज्योतिर्विद्गण जितना शीतल मानते थे, अब वैज्ञानिकोंके मतमें वह उससे यथेष्ट अधिक उष्ण है।

१६२५ ई० में ऐडम्स और सेण्ट जॉन नामके दो ज्योतिषियोंने मंगलके पृष्ठमें प्रतिबिम्बित आलोक रश्मिकी वर्णच्छटाकी परीक्षा की और ये इस सिद्धान्त पर पहुँचे कि मंगलके वायु-मण्डलमें ऑक्सीजन भी मिलता है। नाइट्रोजन या कार्बन-डाइ आक्साइड गैस मङ्गलके वायु मण्डलमें है या नहीं इसका ठीक-ठीक प्रमाण अभी तक नहीं मिला। हालमें वैज्ञानिकोंने मङ्गलके रश्मि-चित्रकी परीक्षा की है और वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि मंगलके वायु-मण्डलमें ऑक्सीजनका परिमाण बहुत कम है।

उपर्युक्त तथ्योंसे यह जाना जाता है कि मंगलकी प्राकृतिक अवस्था प्रायशः पृथ्वीके सदृश है। अगर मंगलके वायु-मण्डलमें यथेष्ट परिमाणमें ऑक्सीजन रहता तो पृथ्वीके अनुरूप जीवोंका मंगलमें रहना संभव होता। विद्वानोंके अनुमानसे एक समय मंगलके वायुमंडलमें यथेष्ट ऑक्सीजन था तब पृथ्वीके अनुरूप जीवगण मंगलके अधिवासी अवश्य रहे होंगे। मंगलके वायु-मण्डलका चाप पृथ्वीके वायु-मण्डलके चापका $\frac{1}{6}$ अंश है। मंगलके तापक्रम जब १२२° फा: होता है तब पानी उबलके वाष्प हो जाता है। हिमालय और तिब्बतकी ऐसी बहुत जगहोंमें भी लोग रहते हैं जहाँ वायुका चाप समुद्र समतलके चापका सिर्फ आधा है। लोग गुब्बारोंमें बैठकर इतने ऊँचे ऊपर चढ़े हैं जहाँ वायुका चाप निम्न प्रदेशके चापका सिर्फ $\frac{1}{2}$ वा $\frac{1}{6}$ अंश है। मंगल इस समय केवल उद्भिद, जीवाणु या कीटाणुओंके रहनेके कामका ही है।

विश्व जगत्‌के अनेक इन स्थानोंकी परिक्रमा करके, अब आइये, हम अपनी पृथ्वीमें लौट आयें। हम लोगोंकी धरित्रीमाता सर्वलोक श्रेष्ठा है।

सत्यही—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

फलोंकी पेक्टिन

[ले०—श्री कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंह एम० एस-सी०]

ब्रेकनाट महोदयने सन् १८३३ ई० में फलोंके रसमें पेक्टिन या जेली निर्मात वनस्पति पदार्थका वर्णन किया था। फलोंकी जेली इसी पदार्थके कारण बन पाती है। आपने यह भी बतलाया कि पेक्टिन अलकोहल, अनेक धातुओंके लवणों और चीनीके सम्मिश्रणसे एक-पिंड होकर थक्का हो जाती है। १८४० ई० में फ्रेमी महोदयने पेक्टिनके ऊपर अपना उपयोगी अनुभव प्रकाशित किया। आपने घोषित किया कि पेक्टिन कच्चे फलोंमें मुख्यतः पेक्टोज़ नामक एक अघुलनशील पदार्थके रूपमें रहती है। ताप और अम्लोंके प्रभावसे पेक्टोज़ घुलनशील पेक्टिनमें परिणत हो जाता है। सम्भवतः पेक्टोन पेक्टिनका कैलशियम लवण है। धातुओंके अनेक प्रकारके लवण एवं खार मिट्टीके हाइड्राक्साइड पेक्टिनकी जेलीकी भाँति जमा देते हैं। अमोनियम और मैगनीशियम सल्फेट अधिकमात्रामें पेक्टिनको थक्केमें परिणत कर देते हैं। फ्रेमी महोदय ने पेक्टिनसे अनेक पदार्थोंका निर्माण होना लिखा है। आपका कथन है कि जलके साथ पेक्टिनको उबालने पर वह 'पारा-पेक्टिन' में परिणत हो जाता है। हल्के अम्लोंके साथ मेटा-पेक्टिन बन जाता है। खारके प्रभावसे पेक्टिन पेक्टिक एसिडमें परिणत हो जाती है—और यदि पेक्टिक एसिड-२०० (सै) तापक्रम पर गरम किया जावे तो पायरो-पेक्टिक एसिड बन जाती है। इन विभिन्न पदार्थोंके गुणोंमें थोड़ा अन्तर होता है। अन्य वैज्ञानिकों ने जिन पदार्थोंका वर्णन किया है और पता लगाया है उनमेंसे फ्रेमी महोदयके विभिन्न पेक्टिक पदार्थकी भी गिनती है।

साधारणतः पेक्टिक पदार्थ दानेदार नहीं होते। अनेक रसायनिक पदार्थों द्वारा वे घोलसे थक्केके रूपमें परिणत हो जाते हैं। अधिकांशतः वे चिपचिपे और लेईकी भांति होते हैं किन्तु जिन घोलों द्वारा निकाले जाते हैं उनके प्रभावसे पेक्टिनके गुणोंमें बहुत शीघ्र परिवर्त्तन हो जाता है। फ्रेमी, शिलडर व रिचार्ड महोदय पेक्टिनको उन्हीं शर्करा-पदार्थोंके साथ वर्गीकरण करते हैं जिनमें गोंद एवं अन्य चिपचिपे पदार्थ हैं। किन्तु मेनजिन महोदय का कहना है कि पेक्टिनकी रसायनिक क्रियायें, उनको शर्करा पदार्थके वर्गसे विभिन्न रखती हैं। हल्के शोरेके तेजाबके प्रभावसे उनका 'मुसिक एसिड' में परिवर्त्तन हो जाता है किन्तु शर्करा पदार्थ इस प्रकारके आक्सीकरणसे अम्ल 'जैलिक एसिड' में परिणत होते हैं। यद्यपि पेक्टिक पदार्थोंको सेल्यूलोज़ वर्गके साथ गड़बड़ा दिया जाता है किन्तु मेनजिन महोदय-ने उनकी क्यूप्रिक अमोनियामें अघुलनशीलता प्रकट करके निश्चय पूर्वक उपर्युक्त वर्गके साथ विभिन्नता दिखलाई है। डी हैस व टालेन्स महोदयका विचार है कि पेक्टिक पदार्थों-का ग्लूकोसाइडके साथ वर्गीकरण किया जा सकता है।

पेक्टिक पदार्थों पर फेलनबर्ग महोदयका अध्ययन भी विचारणीय है। आपने उन पदार्थोंको तीन भागोंमें विभाजित किया है—प्रोटोपेक्टिन जिसको फ्रेमीने पेक्टोज़ कहा है, पेक्टिक और पेक्टिन एसिड। आपने यह भी बतलाया कि पेक्टिन कापर सल्फेट, लेड नाइट्रेट व असीटेट आदि के सहयोगसे एक पिंड हो जाता है। किन्तु सिल्वर नाइट्रेट, निकल सल्फेट, एवं खार लवणोंसे ऐसा नहीं हो पाता। इन तीनों पदार्थोंकी जेली निर्माणकी शक्ति भी बिल्कुल भिन्न है। पेक्टिक रहित रसके साथ पेक्टोसके चीनीके साथ पकानेपर जेली नहीं बन सकती। इसी प्रकार पेक्टिक ऐसिड भी जेली निर्माण करनेमें असमर्थ होती है। फलोंके रसका पेक्टिन तो प्रमुख पदार्थ है जिसके कारण जेली बन पाती है। फेलिन वर्गका विचार है कि यह विभिन्न क्रियायें पेक्टिक पदार्थोंमें 'मिथाक्सी वर्ग' के ऊपर निर्भर है। प्रोटो-पेक्टिन जलीय क्रिया द्वारा पेक्टिनमें परिणत हो जाता है जो कि सम्भवतः आठ मिथाक्सी वर्गका पेक्टिक एसिड एसटर है। पेक्टिनसे पेक्टिक एसिडमें परिवर्त्तन होनेकी क्रियामें क्रमशः एक-दो मिथाक्सी वर्ग विभिन्न होते जाते हैं। इस प्रकार फ्रेमी महोदयके अनेक पेक्टिक पदार्थोंकी विवेचना हो जाती है जिनका निर्माण उपर्युक्त क्रिया द्वारा क्रमशः होता है। इस विषय पर समस्त साहित्यका अव-

लोकन करते हुये वानफुट महोदय ने पेक्टिक पदार्थोंकी इस प्रकार समालोचना की है :—

(१) एक अघुलनशील पेक्टिक पदार्थ कच्चे फलों एवं अन्य वनस्पतियोंमें पाया जाता है जिसको प्रोटोपेक्टिन अथवा पेक्टोस कहते हैं। यह पदार्थ 'संयुक्त-पेक्टिन-सेल्यूलोज' जिसकी रचना ग्लूकोसाइडसे मिलती जुलती है निर्देशित किया जा सकता है।

(२) पेक्टिन पेक्टिक एसिडका अम्ल एवं खार रहित मिथाइल एसटर है जिसमें ११·७६ प्रतिशत अलकोहल होता है। पेक्टिन और पेक्टिक एसिडके बीचमें अनेक पेक्टिनिक एसिड होते हैं जिनमें अम्ल गुणकी श्रेष्ठता होती है और मिथाइल एलकोहलकी मात्रा घटती जाती है।

(३) पेक्टिक एसिड पेक्टिनका अणु-आधार है जो एक संयुक्त गैलेकट्यूरानिक एसिड है। अराबिनोस व गैलकटोसका भी अंश होता है।

(४) पेक्टिन सम्पूर्ण परिमाणिक रूपसे कैलशियम पेक्टेटमें परिणत हो जाता है। इस जलीय क्रियामें मिथाइल वर्गका स्थान कैलशियम प्राप्त कर लेता है। कैलशियम पेक्टेटमें एक स्थायी रासायनिक पदार्थ है जिसमें कैलशियमकी मात्रा ७·६२ प्रतिशत होती है।

नानजी, पेटन व लिंग महोदयोंने पेक्टिनके अणु-आधार का एक छः पहल फारमूला प्रस्तावित किया है। अनेक विशुद्ध पेक्टिनकी जाँचसे ज्ञात हुआ है कि उनमें २०·५ प्रतिशत फरफ्युराल व १८ प्रतिशत कार्बन डाई-आक्साइड है। कहा जाता है कि ताज़े कच्चे फलोंमें प्रोटोपेक्टिनकी मात्रा अधिक होती है, पेक्टिनकी बहुत कम, पेक्टिक एसिड व मिथाइल अलकोहल शून्य हो जाता है। सड़े फलोंमें प्रोटोपेक्टिन मिट जाता है, पेक्टिन थोड़ी मात्रामें रहता है किन्तु पेक्टिक एसिड व मिथाइल अलकोहलकी मात्रा बढ़ जाती है। आडूके फल पर खोज करते हुये एपिलमैन व कारवड महोदय इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि फलोंके पकने व नर्म होनेकी क्रियामें पेक्टिक पदार्थोंमें जो परिवर्त्तन होता है वह केवल प्रोटोपेक्टिनका पेक्टिनमें बदलना होता है। प्रोटोपेक्टिन व पेक्टिनकी मात्रा का योग प्रायः स्थिर होता है किन्तु अत्यन्त गले हुये आडुओंमें दोनोंकी मात्रा क्रमशः अन्तरधान हो जाती है।

किन्तु लेखकने कैथा, अमरूद और करौंदाकी पेक्टिन पर खोज करते हुये यह अनुभव किया है कि तीनों पेक्टिन पदार्थोंकी मात्रा फलोंको परिपक्व होनेकी क्रियाकी विभिन्न अवस्थाओंमें पाई जाती है। निस्सन्देह उनकी मात्रा घटती बढ़ती रहती है। ज्यों-ज्यों फल पकता है स्वतन्त्र पेक्टिन-की मात्रा बढ़ती जाती है। किन्तु अधिक पके फलोंमें इसकी मात्रा बिल्कुल घट जाती है। प्रोटोपेक्टिन अथवा पेक्टोसकी मात्रा कच्चे फलोंमें अधिक होती है और ज्यों-ज्यों फल परिपक्व अवस्थाको प्राप्त होता है त्यों-त्यों वह कम होती जाती है। पेक्टिक एसिडकी मात्रा कच्चे फलोंमें अत्यन्त कम होती है, किन्तु अधिक पके फलोंमें अधिकांश मात्रामें होती है।

फलोंसे पेक्टिन निकालनेकी विभिन्न विधियोंका भी अध्ययन किया गया है। जान्सटन व डेनटन महोदयों ने संतरेसे पेक्टिन निकालते समय खटाईका प्रयोग सहायक घोषित किया है। स्वच्छ जलसे पेक्टिन निकालने पर केवल ०·८२ प्रतिशत पेक्टिन निकला किन्तु ०·१ नारियलके एसिडके प्रभावसे उसकी मात्रा १·३ प्रतिशत हो गई। इसी प्रकार का परिणाम अमरूदसे पेक्टिन निकालते समय होता है। अमरूदमें खटाईका अभाव होनेके कारण जब जलसे पेक्टिन निकाली जाता है तो उसकी मात्रा अत्यन्त कम होती है। लेखक ने इस विषय पर अनुसन्धान करते समय खटाईका प्रयोग करने पर अनुभव किया कि वैसे केवल ०·७२ प्रतिशत पेक्टिन निकलती है किन्तु ०·५ प्रतिशत टार्टरिक एसिडके प्रभावसे उसकी मात्रा १·०४ प्रतिशत हो जाती है। चूँकि फलोंसे पेक्टिन निकालते समय अम्लके घोलमें उबालना आवश्यक होता है अतः पेक्टिन पर जलीय क्रियाका प्रभाव जानना भी आवश्यक हो जाता है। डी हैस व टार्लेस महोदयों ने अपनी खोजों द्वारा यह घोषित किया है कि पेक्टिन यदि अधिक समय तक अम्लके घोलके साथ पकाया जाता है तो उस पर जलीय क्रियाका प्रभाव हो जाता है। गोल्डवेथके परिणामोंसे यह प्रकट है कि बहुत समय तक फलोंको उबालने पर जो कुछ भी उसमें पेक्टिन होती है वह उस फलके खटाईके प्रभाव हीसे हाइड्रोलाइज हो जाती है। किन्तु टार महोदयका विचार है कि फलोंके रस निकालते समय जितनी देर और जिस तापक्रम पर पकाया

जाता है उस समय तकमें जलीय क्रिया द्वारा पेक्टिनका कोई विशेष मात्रामें नष्ट होना असम्भव प्रतीत होता है। निस्सन्देह जैसा कि जान्सटन व डेनटन महोदयों ने कहा है अधिक तापक्रम और वायुके विशेष दबाव पर पेक्टिन निकालनेसे ऐसा होना सम्भव है। सुचारिपा ने अपने प्रयोग करते समय यह पता लगाया है कि पेक्टिन निकालते समय ज्यों ज्यों तापक्रम और वायुका दबाव बढ़ाया जाता है पेक्टिनमें मिथाक्सी समूहकी मात्रा कम होती जाती है। पेक्टिनके जेली बनानेकी शक्ति मिथाक्सी समूहके ऊपर ही निर्भर होती है। ज्यों-ज्यों वह घटती जाती है पेक्टिनकी शक्ति भी घटती जाती है। किन्तु मेयर्स व बेकर महोदयों ने इस सिद्धान्तका विरोध किया है। उनका विचार है कि सर्व साधारणका विश्वास भ्रमपूर्ण है। पेक्टिन के मिथाक्सी समूह और उसकी जेली बनानेकी शक्तिमें कोई सम्बन्ध नहीं है। इन विभिन्न तर्कोंका संक्षेपमें विचार करनेके पश्चात् अब पेक्टिन निकालनेकी व्यापारिक विधि पर प्रकाश डाला जायगा।

पेक्टिनकी माँग दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। डाक्टर पेक्टिनका विभिन्न रूपमें प्रयोग करते हैं। दवाओं-में इसका विस्तृत रूपसे प्रयोग होता है एवं विशाल मात्रा-में इसकी खपत होती है। इसके अतिरिक्त फलसंरक्षणमें पेक्टिन एक विशेष महत्व रखती है। जैम, जेली, मारमलेड आदि फलके बनाये हुये विभिन्न पदार्थोंका निर्माण, जिनका कि आज सारे संसारमें अधिक संख्यामें व्यवहार होता है, बिना पेक्टिनकी सहायताके असम्भव है। ऐसी दशामें पेक्टिनका विशाल मात्रामें निर्माण होना अत्यन्त आवश्यक है। विदेशोंमें पेक्टिन दो प्रकारकी बिकती है—तरल पेक्टिन व चूर्ण पेक्टिन। निर्माण करनेकी क्रियामें प्रथम तरल पेक्टिन तत्पश्चात् उसका जल सुखा देने पर चूर्ण पेक्टिनका निर्माण होता है। विदेशोंमें पर्याप्त मात्रामें इनका निर्माण होता है एवं अधिक मूल्य पर बिकनेके कारण कार्यालयोंको विशेष लाभ भी होता है। किन्तु भारतवर्षमें इसका कोई कार्यालय नहीं है और पेक्टिनके लिये हमको विदेशोंके ऊपर निर्भर रहना पड़ता है। आज-कल लड़ाईके दिनोंमें विदेशोंसे सामान आना बन्द हो जाने-के कारण भारतमें पेक्टिनकी विशेष रूपसे माँग बढ़ गई है। यद्यपि इन दिनों भारतमें अनेक फलसंरक्षणके कार्यालय स्थापित हो गये हैं किन्तु किसीका भी ध्यान इस महत्वपूर्ण पेक्टिनके निर्माणकी ओर नहीं आकर्षित हुआ है और जब उनको स्वयं पेक्टिनकी आवश्यकता पड़ती है तो वे चारों ओर ढूँढने पर भी पानेमें असमर्थ होते हैं, क्योंकि अनेक ऐसे फल हैं जिनका रङ्ग रूप और स्वाद बड़ा सुन्दर होता है किन्तु उनमें पेक्टिनका अभाव होनेके कारण जेली मारमलेड आदि नहीं बन सकते। ऐसी दशामें ऊपरसे पेक्टिन डालनेकी आवश्यकता पड़ती है।

किन्तु फल कार्यालयोंके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि पेक्टिन किस भारतीय फलसे निकाला जावे ? ऐसे फलके लिये यह आवश्यक है कि उसमें अधिक मात्रामें पेक्टिन हो, साथ ही सस्ता और विशाल मात्रामें उत्पन्न होता हो; तभी उससे पेक्टिन निकालनेका कार्य सफलतापूर्वक किया जा सकता है। निस्सन्देह ऐसे फलके खोज की भारतमें अत्यन्त आवश्यकता थी। कुछ वैज्ञानिकों ने अनेक फलों एवं वनस्पतियोंका रस इसी दृष्टिसे अनुसन्धान किया। किन्तु उपर्युक्त सभी गुणोंका एक साथ पाया जाना एक दुष्कर कार्य रहा। किसी फलमें पेक्टिन अधिक मात्रामें तो अवश्य पाई गई किन्तु वे अधिक मूल्य वाले एवं अल्प संख्यामें पाये जाते हैं। कुछ ऐसे फल थे जो कि सस्ते और अधिक मात्रामें उत्पन्न होते थे किन्तु उनमें पेक्टिनकी मात्रा उतनी पर्याप्त नहीं थी कि उससे व्यापारिक दृष्टिसे पेक्टिन निकाली जा सके। लेखक ने प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें अनुसन्धान करते समय एक ऐसे फलको खोज निकाला जिसमें कि सभी गुण उपस्थित हैं और वह भारतीय फल कैथा है; जो कि वनस्पति वंश विभाजनमें 'रूटेसी' वंशका है और जिसका कि नाम फेरोमिया एलीफैनटम है। अँग्रेजीमें इसको 'वुड एपिल' कहते हैं। यह सर्व विदित है कि कैथा किस विशाल मात्रामें हमारे देशमें उत्पन्न होता है और ऋतुमें कितना सस्ता मिलता है। इसका कोई विशेष प्रयोग नहीं होता। मध्यम श्रेणी तकके लोग इसकी ओर देखना भी पसन्द नहीं करते क्योंकि इसका स्वाद अच्छा नहीं होता और अत्यन्त खट्टा होता है और फिर जो फल बहुत सस्ता होता है उसका प्रयोग भी आजकलके सुशि-

चित समाजमें अच्छा नहीं समझा जाता। यही कारण है कि यह फल प्रायः निष्काम ही जाता है और वृक्षोंमें पड़े-पड़े सड़ जाते हैं। इसका जो कुछ भी थोड़ा बहुत उपयोग होता है वह भारतके मज़दूर व किसानों द्वारा चटनी अचार बनानेके काममें आता है। हर्षका विषय है कि ऐसे अनुपयोगी फलमें पेक्टिन प्रचुर मात्रामें उपस्थित है और इससे पेक्टिन निकालनेका व्यापार भारतमें सफलतापूर्वक किया जा सकता है।

विदेशोंमें व्यापारिक दृष्टिकोणसे पेक्टिनका साधन सेब की मदिरा, सिरका आदिका अवशेष, नींबू, नारंगी, संतरे आदिके छिल्के, गाजर प्रमुख है। भारतवर्षमें भी सेबका अवशेष छोड़ कर उपरोक्त सभी साधनों द्वारा पेक्टिन निकाला जा सकता है। इन दिनों फलसंरक्षणके कार्यालयोंमें नींबू संतरेका विस्तृत प्रयोग शर्बत, रस, व जेली, मारमलेड आदिके निर्माणमें होता है और विशाल मात्रामें उनके छिल्के फेंक दिये जाते हैं। भारतवर्षमें उनका कोई उपयोग नहीं है। ये छिल्के भी पेक्टिन निर्माणके व्यापारिक साधन हो सकते हैं और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस दृष्टिकोणसे कैथा अत्यन्त उपयोगी भारतीय फल है। कैथेके गूदे हीमें नहीं किन्तु उसके कठिन छिल्केके भीतरी भागकी ओर जो $\frac{1}{4}''$ मोटा सफेद भाग चिपका होता है और जो छिल्केके साथ फेंक दिया जाता है उसमें भी पेक्टिन प्रचुर मात्रामें पाई जाती है; अतः उसको भी खुर्च कर पेक्टिन निकाला जा सकता है। पेक्टिन निकालनेकी अनेक विधियाँ हैं। किन्तु सभीका तत्व प्रायः एक ही होता है। वनस्पतिके पेक्टोसको जलीयकरण द्वारा घुलनशील पेक्टिनमें परिवर्तित कर देना। पेक्टिनके साधनको महीन टुकड़ोंमें काट कर, भाप द्वारा, वायुके दबाव पर गरम जल द्वारा अथवा हल्के अम्लोंके प्रभावसे उपरोक्त क्रियाकी जाती है। अमेरिकाके संयुक्त राज्यके कृषि विभागसे एच० डी० पूर महोदय ने पेक्टिन निर्माणकी निम्नलिखित विधि प्रकाशित की है।

गर्म जलके प्रभावसे पेक्टोसको पेक्टिनमें परिवर्तित करके एवं समस्त पेक्टिनको पदार्थके अन्तरगत भागोंसे खींच कर घोलमें लानेके पश्चात् उसको छान लिया जाता है और फलके गूदेको अलग कर दिया जाता है। पेक्टिनके घोलको उबाल कर जलका अधिकांश भाग उड़ा देने पर गाढ़े घोलमें ९५ प्रतिशत अलकोहल डाल कर पेक्टिनका थक्का अलग कर लिया जाता है। ६८° (श) तापक्रम पर दबानेसे अलकोहलका शेष भाग भी अलग हो जाता है। तत्पश्चात् पेक्टिन पुनः जलके गाढ़े घोलके रूपमें बना ली जाती है। इस प्रकार व्यापारिक विधिसे पेक्टिनका स्वच्छ स्वादरहित गाढ़ा निचोड़ निकाला जा सकता है।

नींबूके छिल्के व अवशेष भागसे व्यापारिक दृष्टिकोण से पेक्टिन निकालनेकी विधि जो कि सी० पी० विलसन महोदय द्वारा वर्णित है अनेक कार्यालयों द्वारा उपयोगमें लाई जाती हैं। विदेशोंमें नींबूका रस अथवा 'साइट्रिक एसिड' निर्माण करनेके विशाल कार्यालय हैं। नींबूका रस निकालनेके पश्चात् उसके अवशेष भागमें पेक्टिनकी अधिक मात्रा होती है। विशेष रूपसे नींबूके पीले छिल्के के नीचे जो श्वेत भाग होता है उसमें पेक्टिन प्रचुर मात्रामें पाई जाती है। उपरोक्त रीतिसे पेक्टिनको घोलमें से निकालनेके बाद उसको अलकोहल द्वारा थक्केमें नहीं अलग किया जाता। यह क्रिया विलसन महोदयकी विधिमें 'अल्यूमिनियम हाइड्रोक्साइड' द्वाराकी जाती है। यह पदार्थ अमोनियामें २५ प्रतिशत अल्यूमीनियम सल्फेटका घोल बना कर तैयार किया जाता है। इसमें (+) विद्युत् होती है एवं पेक्टिनके घोलमें (—) विद्युत् उपस्थित रहती है अतः दोनोंके सम्पर्कसे पेक्टिनकी विद्युत् नष्ट हो जाती है। पहले उक्त रासायनिक पदार्थ और पेक्टिनके घोलकी थोड़ी मात्रा ली जाती है। इस प्रकार समस्त पेक्टिनके घोलके लिये उपयुक्त मिकदार निश्चित् कर ली जाती है। पेक्टिनको इस प्रयोग द्वारा एक पिंड करनेके पश्चात् गर्म वायुमें ६५° (श) तापक्रम पर सुखा लिया जाता है। जितनी शीघ्रतासे सुखानेकी क्रिया सम्पन्नकी जाती है उतनी ही अच्छे गुणकी पेक्टिन तैयार होती है। इस विधि द्वारा निर्माणमें पेक्टिन मटमैले चूर्ण रूपमें तैयार होती है।

कैथेसे पेक्टिन निकालनेकी विधि

हमारे देशमें नींबूका सत बनानेका कोई कार्यालय न होनेके कारण नींबूका अवशेष विशाल मात्रामें मिलना असम्भव है। न हमारे देशमें अन्य कोई साधन है जिसके द्वारा पेक्टिन निकाल कर उसका सफल व्यापार

किया जा सके। निस्सन्देह फलके कार्यालयोंमें जो संतरे, नींबू आदिके छिल्के निकलते हैं उससे अगर पेक्टिन का व्यापार नहीं तो कमसे कम अपनी खपतके लिये कार्यालयों में स्वयं यथेष्ट पेक्टिन निकाली जा सकती है। अतः भारत में व्यापारिक दृष्टिसे पेक्टिनका निर्माण कैथे द्वारा ही किया जा सकता है। उपरोक्त विधियोंके आधार पर लेखकने निम्न रूपसे कैथे द्वारा पेक्टिन निकाला है।

(१) पेक्टिनका निकालना :—

कैथेको तोड़ कर उसके गूदेको छोटे छोटे टुकड़ोंमें काट दिया जाता है अथवा मशीन द्वारा गूदा महीन टुकड़ोंमें विभाजित किया जा सकता है। कैथेके कठिन छिल्कोंका भीतरी सफेद भाग भी खुरच लिया जाकर गूदेमें मिला दिया जाता है। आवश्यकतानुसार इसको पीसा भी जा सकता है। कारण यह है कि जितना ही विभाजित अवस्था-में गूदा रहता है उतनी ही अधिक मात्रामें पेक्टिन निकलती है। इस गूदेको पर्याप्त जलमें ९०-९२° (श) तापक्रम पर प्रायः डेढ़ घण्टे तक गरम किया जाता है। इस तापक्रम पर पेक्टिनका परिवर्तन पेक्टिक एसिडमें नहीं हो पाता। अधिक तापक्रम और ज़्यादा देर तक पकानेसे पेक्टिनका कुछ भाग पेक्टिक एसिडमें बदल जाता है जो कि व्यापारिक दृष्टिसे एक अनुपयोगी पदार्थ है और जैसा कि कहा जा चुका है पेक्टिक एसिडमें जेली बनानेकी शक्ति नहीं होती। अतः पेक्टिन निकालते समय यह बात ध्यानमें रखना अत्यन्त आवश्यक है कि ऊँचे तापक्रम पर और अधिक काल तक फलके गूदेको न पकाया जावे। निस्सन्देह उपरोक्त क्रियामें जलीयकरण द्वारा कुछ पेक्टिनका पेक्टिक एसिडमें परिवर्त्तन हो ही जाता है, किन्तु पेक्टिनकी कोई विशेष मात्रा नहीं नष्ट हो पाती। गरम करते समय यद्यपि कैथेकी खटाई पेक्टोसको पेक्टिनमें परिणित कर देनेके लिये यथेष्ट है किन्तु फिर भी यदि उसमें ०·५ प्रतिशत खटाई डाल दी जावे (नीबूका सत आदि) तो उक्त क्रिया सम्पूर्ण रूपसे शीघ्रतापूर्वक हो जाती है। पेक्टिनके घोलको कपड़ेसे छान लिया जाता है। और गूदेको पुनः जलके साथ दूसरी बार उसी प्रकार उबाला जाता है। छाननेके बाद फिर तीसरी बार उसमेंसे पेक्टिन निकाल ली जाती है। पिछले दो बार केवल एक घंटे ही पकाना आवश्यक है। इस क्रियासे गूदेकी अधिकांश पेक्टिन घोलमें आ जाती है। तीनों निचोड़को अलग अलग गाढ़ा किया जाकर एकमें मिला दिया जाता है और फिर एक बार कपड़ेसे गाढ़े रसको छान लिया जाता है।

(२) पेक्टिनको एकपिंड करना :—

फलके रसको नापकर, उसकी दूनी मात्रामें व्यापारिक अलकोहलमें थोड़ी मात्रामें (१ प्रतिशत) नमकका तेज़ाब डाल कर रसको एक बड़े बर्त्तनमें भली भाँति हिलाया जाता है। फिर प्रायः दो घंटे तक उसको शान्ति रूपसे रखा रहने देना चाहिये। इस समयमें पेक्टिनका एक विशाल पिंड भूरे रंगकी लेई जैसा बन जाता है। तेज़ाब डाल देने से यह क्रिया शीघ्र होती है अन्यथा इसमें और अधिक समय लगता है।

(३) पेक्टिनको छानना :—

पेक्टिनका थक्का एक बड़े फिल्टर पेपर द्वारा छान कर अलग कर लिया जाता है और अधिक अलकोहलसे धो दिया जाता है जिससे अनेक अशुद्धियाँ छन कर निकल जाती हैं एवं स्वच्छ पेक्टिन थक्केके रूपमें रह जाता है।

(४) पेक्टिनको पुनः एकपिंड बनाना :—

अधिक शुद्ध करनेके लिये लेई जैसे पेक्टिनके थक्केको फिरसे गरम जलमें घोल करके उपरोक्त विधिसे पुनः अल-कोहलके प्रयोगसे पेक्टिनको थक्केके रूपमें परिणित किया जाता है। इस क्रियासे पेक्टिनका भूरा रंग बहुत कम हो कर अधिक शुद्ध एवं स्वच्छ हो जाता है।

(५) तरल अथवा चूर्ण पेक्टिनका निर्माण :—

उक्त पेक्टिनके थक्केको छान कर भली भांति अलकोहल से धोया जाता है। इस विशुद्ध पेक्टिनको वायुके कम दबाव पर ६० (श) तापक्रममें सुखाया जा सकता है अथवा गर्म वायुमें साधारण दबाव पर ६८° ७०° (श) पर शीघ्रतापूर्वक सुखा लिया जा सकता है। सूखने पर हल्के मटमैले रंगकी चूर्ण पेक्टिन तैयार हो जाती है। और यदि तरल पेक्टिनका निर्माण करना हो तो विशुद्ध पेक्टिनके थक्केको गरम जलमें घोलकर गाढ़े पेक्टिनका घोल तैयार कर लिया जाता है। दोनों प्रकारकी पेक्टिन कृमि रहित बोतलोंमें भर कर बेची जा सकती है।

इस विधिमें अलकोहलकी अधिक मात्रामें आवश्यकता पड़ती है जो कि ऐसे कार्यालयोंके लिये अत्यन्त अल्पमूल्यमें सरकार द्वारा प्राप्त हो सकती है। इसके अतिरिक्त एक बारका प्रयोग किया हुआ अलकोहल कई बार, टपका करके, पेक्टिनको थक्का करनेके लिये काममें लाया जा सकता है। कैथेके रससे विलसन महोदयकी विधि द्वारा 'अल्यूमिनियम हाइड्राक्साइडके उपयोगसे भी पेक्टिन थक्केके रूपमें परिणत किया जा सकता है जो कि अधिकांशतः नीबूके अवशेषसे पेक्टिन निकालनेमें प्रयोग किया जाता है। पहले थोड़ेसे रस पर प्रयोग करके उपरोक्त रासायनिक पदार्थके घोलकी मात्रा सम्पूर्ण रसके लिये निश्चित कर ली जाती है। फिर पेक्टिनके थक्केको पिछली विधिसे चूर्ण या तरल पेक्टिनमें परिणत किया जा सकता सकता है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इस प्रकारके पेक्टिनकी भारतमें अत्यन्त मांग है; अतः कैथेसे पेक्टिन निर्माणके कार्यालयोंकी अत्यन्त आवश्यकता है।

कैमब्रिज फल अनुसंधान विभागके टी० एन० मारिस महोदय पेक्टिनकी थक्केके रूपमें परिणत करनेके लिये 'एसीटोन' का प्रयोग करनेकी राय देते हैं। इस विधि द्वारा किये गये थक्के पेक्टिनको दबाकर महीन पर्तमें ९०°–१००° (श) तापक्रम पर सुखा लिया जाता है और प्रायः १५-२० मिनटमें यह क्रिया समाप्त हो जाती है। किन्तु अधिक मूल्य होनेके कारण व्यापारिक दृष्टिसे एसीटोनका प्रयोग पेक्टिनके निर्माणमें असम्भव है। दवा आदिके प्रयोगके लिये पेक्टिनका अत्यन्त शुद्ध होना आवश्यक है। जीन स्पेन्सर महोदयने एक विद्युत विधिका आविष्कार किया है जिससे पेक्टिन विशुद्ध हो जाती है। दो बार पेक्टिनको घोलसे थक्केमें परिवर्त्तन करनेके पश्चात् ६० प्रतिशत अलकोहल द्वारा, जिसमें कि १ प्रतिशत शोरेका तेजाब होता है, पेक्टिनको भली भांति धो लिया जाता है। इसके बाद विद्युत विधिका प्रयोग किया जाता है। इस विधि द्वारा विशुद्ध पेक्टिन निर्माण करनेमें प्रायः ७२ घंटे लगते हैं।

अलकोहल द्वारा पेक्टिनकी परिमाणिक जाँच करनेकी पुरानी विधि अब विश्वसनीय नहीं समझी जाती। फलसे रसको गाढ़ा करके उसकी दूनी मात्रामें ६६'५ प्रतिशत इथाइल अलकोहल डाल दिया जाता था। पेक्टिनके थक्केके रूपमें परिणत होनेके पश्चात् वह सनके कपड़े पर छान लिया जाता था। अलकोहलसे धोनेके बाद शत प्रतिशत अलकोहल और ईथरसे धोकर शुद्ध कर दिया जाता था। सुखाने पर तौलनेके पश्चात् फलके रसमें पेक्टिनकी मात्रा निर्धारित की जाती थी। जलीयकरण द्वारा पेक्टिनसे निकले मिथाइल अलकोहलकी मात्राकी जाँच वाली विधि भी पेक्टिनकी मात्रा निर्धारित करनेका कोई विश्वसनीय प्रयोग नहीं है। इससे शुद्ध परिणाम नहीं आता। कारण यह है कि मिथाइल अलकोहलकी मात्रा पेक्टिनको निकालनेकी विभिन्न विधियोंपर निर्भर होती है। अतः एक नमूनेकी पेक्टिनमें उसकी मात्रा दूसरेसे कम या अधिक हो सकती है।

एम० एच० कैरेने जिस विधिका अवलम्बन किया है वह निम्न दो बातों पर निर्भर है :—

(१) घोलके समस्त पेक्टिक पदार्थ खारके प्रयोगसे जलीय क्रिया द्वारा सम्पूर्ण रूपसे पेक्टिक एसिडमें परिवर्त्तन हो जाते हैं।

(२) कैलशियम पेक्टेट एक अत्यन्त अघुलनशील, स्थायी रासायनिक पदार्थ है। उसमें कैलशियमकी एक निश्चित मात्रा होती है जो कि ७'५ से ७'८ प्रतिशत होती है।

कैरेकी विधिमें एसिटिक एसिड व कैलशियम क्लोराइडके प्रयोगसे जो कैलशियम पेक्टेटका अन्तिम थक्का बनता है वह इतना अघुलनशील होता है कि पेक्टिनकी परिमाणिक जाँच अत्यन्त हलके घोलोंमें भी की जा सकती है किन्तु केवल अलकोहलके प्रयोग द्वारा जिस घोलमें पेक्टिनकी मात्रा '०६ प्रतिशतसे कम होती है उसमें पेक्टिनका थक्का बनता ही नहीं। हलके एसिटिक एसिडके प्रयोगमें कैलशियम के आक्सलेट और रेसीमेंट लवण अघुलनशील होनेके कारण परिमाण अशुद्ध हो सकता है। ऐसी अवस्थामें एमेट व कैरेने यह ज्ञात किया है कि अलकोहलमें थोड़ी मात्रामें नमकका तेज़ाब मिला देने पर कितना भी हल्का घोल क्यों न हो पेक्टिन थक्केके रूपमें परिणित हो जाती है। ऐसे ही अलकोहलका प्रयोग उन घोलोंमें किया जाता है जिनमें कैलशियमके अघुलनशील लवण उपस्थित होते हैं। फिर पेक्टिनको कैलशियम पेक्टेटके थक्केके रूपमें परिणित कर,

भली भाँति धोनेके पश्चात् 'गूच क्रूसिबुल' में सुखा कर पेक्टिनकी मात्रा निर्धारित की जाती है।

नान जी व नारमैन महोदय ने अनेक वनस्पति पदार्थों के पेक्टिनकी परिमाणिक जाँचकी है। आपने अपना परिणाम बनस्पतिके सूखे चूर्ण पर कैलशियम पेक्टेटकी प्रतिशत मात्रामें प्रकाशित किया है जिसको कि वे "कैलशियम पेक्टेट अंक कहते हैं। आप लोगों ने एमेर और कैरेकी जाँचकी विधिमें थोड़ा परिवर्तन किया है। अलकोहलके प्रयोग द्वारा थक्के पेक्टिनको घोलते समय वे अमोनियाका उपयोग करते हैं। अतः पेक्टिक एसिडकी थोड़ी मात्रा जो कुछ भी उपस्थित होती है वह नष्ट नहीं होने पाती। 'गूच क्रूसिबुल' में तौलनेके स्थान पर वे कैलशियम पेक्टेटको तौले हुये फिल्टर पेपर ही में छानते हैं जिसमेंकी धोनेकी क्रिया उपरोक्त विधिसे अधिक सफलतापूर्वक सम्पन्नकी जा सकती है। आपने जलके अतिरिक्त आक्ज़ैलिक एसिड व अमोनियम आक्ज़लेट द्वारा भी पेक्टिन पदार्थोंको निचोड़ कर उनकी मात्रा निर्धारितकी है। आप लोगोंके कुछ परिणाम सारिणी १ में दिये हैं।

लेखक ने नान जी व नारमैन महोदयकी उपरोक्त विधिको अपना कर एवं उनमें कुछ आवश्यक परिवर्तन कर अनेक भारतीय फलोंमें पेक्टिन निर्धारितकी है। उस विधिका निम्न विवरण है:—

फलोंको ताज़ी दशामें लेकर उनको एक भाप घरमें रख दिया जाता है। इससे फलके अन्तरगत रासायनिक क्रियायें समाप्त हो जाती हैं। फिर उनको छोटे टुकड़ोंमें काट कर थालियोंमें फैला कर ९२° श तापक्रम पर भाप घरमें सुखा लिया जाता है। अधिक तापक्रम पर सुखानेसे समय अवश्य कम लगता है किन्तु उसमें फलके शर्करा पदार्थके जल जानेका भय होता है। अतः ९२° तापक्रम पर ही सुखाया जाना उचित है। पूर्ण रूपसे सूख जानेके पश्चात् फलोंकी थोड़ी मात्रा अलग कर इसके जलका अंश सुखानेके पहले एवं बादमें तौल कर निर्धारित कर लिया जाता है। फिर सब सूखे फलको भली भांति खलमें कूट कर छान लिया जाता है। और फिर उसको पीस कर महीन चूर्ण रूपमें परिवर्तित कर लिया जाता है। उसको जलके सम्पर्कसे बचानेके लिये बड़े डेसीकेटरमें रख दिया जाता है। सम्पूर्ण रूपसे पेक्टिक पदार्थ निकालनेके लिये यह आवश्यक है कि फलके सूखे चूर्ण महीनसे महीन दशामें हो। ताज़े फलोंमें से सम्पूर्ण पेक्टिन न निकलनेका यही कारण है कि पेक्टिट पदार्थ वनस्पतिके अन्तर्गत भागों में इस प्रकार चिपके रहते हैं कि उबालनेकी क्रियामें सब नहीं निकल पाते, जितनी ही महीन दशामें वे होंगे उतना ही पेक्टिट पदार्थोंका सफल निचोड़ होता है। किन्तु ताज़े फलोंमें ऐसा होना सम्भव है। अतः पेक्टिनकी पारिमाणिक जाँचके लिये यह आवश्यक है कि फलोंको सुखा कर महीन चूर्णके रूपमें किया जावे।

जलके अतिरिक्त पेक्टिन निकालनेकी क्रिया आक्जैलिक एसिड व अमोनियम आक्जलेट द्वारा भी की गई है। नारिस सेकमावर महोदयने ०.५ प्रतिशत घोल इस क्रियाके लिये उपयुक्त बताया है। इसकी पुष्टि नानजी व नारमैन महोदय ने भी की है। अतः उपरोक्त घोल ही पेक्टिन पदार्थोंको निचोड़नेके लिये लेखक ने प्रयोग किया है। नानजी व नारमैनके विधिमें २४ घंटे तक ८५° श तापक्रम पर गरम करनेसे पेक्टिन निकालनेकी क्रिया समाप्त होती है। किन्तु लेखककी विधिमें ८७-८८° श तापक्रम पर उपरोक्त क्रिया केवल १८ घण्टेमें ही समाप्त हो जाती है। दोनों विधियों-का एक ही वातावरणमें प्रयोग करने पर पेक्टिनकी मात्रा एक सी आती है। अतः इस विधि द्वारा बहुत कम समयमें पेक्टिनकी पारिमाणिक जाँच सम्पन्नकी जा सकती है। चूर्णका ३ से ५ ग्राम एक पात्रमें लेकर अलग अलग

सारिणी १ सूखे फलों पर विभिन्न फलों द्वारा कैलशियम पेक्टेटकी प्रतिशत मात्रा

	अ (जल)	ब (आक्ज़ेलिक एसिड)	स (अमोनियम आक्जलेट)	ब – अ	स – ब	जलकी मात्रा
सेब गूदा	८.९२	११.९४	१७.६३	३.०२	५.६	८८.१
छिल्का	९.१५	११.८९	१७.४४	२.७४	५-५५	८०.३१
संतरा गूदा	१०.४५	१२.०६	१२.४	१.६१	.३४	८९.०८
छिल्का	१८.५३	२०.५९	३८.७५	२.०६	१८.१६	७६.२८

२०० सी० सी० जल, व ०'५ प्रतिशत आक्जैलिक एसिड व अमोनियम आक्जेलेटका घोल डाल कर जल-पात्रमें ८७-८८° तापक्रम पर १८ घंटे तक गरम किया जाता है। फिर गरम गरम ही छान कर घोलों द्वारा उसीके अवशेष भागको धो लिया जाता है। गरम छाननेसे यह क्रिया शीघ्र हो जाती है अन्यथा अधिक समय लगता है। छने हुये घोलको ठंढा करके २५० सी० सी० बना लिया जाता है। उसमें से १०० सी० सी० लेकर उसका एक तिहाई तरल भाग गरम करके उड़ा दिया जाता है। आक्जैलिक एसिड वाला घोल खारके प्रयोगसे उदासीन कर दिया जाता है जिससे गरम करते समय जलीयकरण का भय न हो। घोलको ठंडा करनेके बाद ९५ प्रतिशतकी ६० सी० सी० अलकोहल जिसमें ३-४ बूँद नमकका तेज़ तेज़ाब पड़ा हो डाल कर पेक्टिन थक्केमें परिणित कर लिया जाता है। यद्यपि एसिडकी मात्रा पेक्टिनकी जाँचमें खलल नहीं उत्पन्न करता किन्तु उसकी ५-७ बूंदकी मात्रामें रहने से थक्का निर्माणकी क्रिया शीघ्र ही हो जाती है। अलकोहल की अन्तिम तेज़ी ७० प्रतिशतसे कम नहीं होना चाहिये और सब प्रयोगोंमें इतना ही रहना उचित है।

घोलोंको गाढ़े करनेका यही तात्पर्य है कि अलकोहल की मात्रा कम प्रयोग हो और बादके छाननेकी क्रिया भी शीघ्रतापूर्वक हो जाय। कई घंटे रखनेके बजाय केवल एक घंटेके पश्चात् पेक्टिनके थक्केको छान लिया जाता है और उसको अम्ल अलकोहलके प्रयोगसे भली भाँति धो लिया जाता है जब तक कि थक्का आक्ज़ेलेट लवणसे शुद्ध न हो जाय। थक्केके साथ छाननेके कागज़को एक दूसरे पात्रमें रख कर गरम करके जलमें घोल लिया जाता है। अमोनियम आक्ज़लेट वाले थक्केमें थोड़ा तरल अमोनिया डाल देना आवश्यक है। कारण यह है कि जो पेक्टिन एसिडके लवण फलोंमें रहते हैं वे जलमें अघुलनशील दशामें रहते हैं। किन्तु वे अमोनियामें घुलनशील हैं। इसके प्रयोगसे वे भी घुल जाते हैं। तत्पश्चात् वे छान लिये जाते हैं और गरम जलसे भली भांति धो लिये जाते हैं। जल एवं आक्ज़ेलिक एसिड वाले पेक्टिनके घोलको इस बार हल्के अमोनियासे धोया जाता है। कारण यह है कि जो कुछ भी पेक्टिक एसिडका निर्माण उपरोक्त क्रियामें जलीयकरण द्वारा होता है वे सब अमोनियामें घुल जाते हैं और नष्ट नहीं होने पाते। उसके बाद वे सब भली भांति गरम जलसे धो लिये जाते हैं। इस धोनेकी क्रियासे प्रायः १५० सी० सी० घोल एकत्रित हो जाता है। कुछ ठंडे होनेके बाद पेक्टिक एसिडका सोडियम लवण कास्टिक सोडाके ०'५ प्रतिशत घोलके १०० सी० सी० डालने पर बन जाता है। नानर्जी व नारमैन महोदय ०'४ प्रतिशत घोल डाल कर रात भर रख देते थे जिस बीचमें लवण निर्माणकी क्रिया सम्पूर्ण होती थी। किन्तु लेखक ने प्रायः ३-४ घंटेके बाद ही सोडियम पेक्टेटका निर्माण सम्पूर्ण पाया। इस घोलमें ५० सी० सी० नारमल एसिटिक एसिड व ५० सी० सी० ११'१ प्रतिशत कैलशियम क्लोराइडका घोल डालकर कैलशियम पेक्टेटमें परिणित कर लिया जाता है। प्रायः १५ मिनटके बाद लेई जैसा थक्का बन जाता है। उसको १०-५ मिनट उबालनेके पश्चात् गरमसे गरम दशा ही में एक तौले हुये फिलटर पेपरसे छान लिया जाता है। कैलशियम पेक्टेटके थक्केको उबलते हुये जलसे उस समय तक धोया जाता है जब तक कि वह क्लोराइडरहित न हो जावे। प्रायः ३०० सी० सी० जलकी आवश्यकता पड़ती है।

नानर्जी व नारमैन महोदय ने जलके अतिरिक्त जो घोल पेक्टिनके निकालनेके लिये प्रयोग किये हैं उनकी क्रिया इस प्रकार होती है :—

अ—जल केवल स्वतन्त्र पेक्टिन खींच सकता है।

ब—'५ प्रतिशत आक्जैलिक एसिडका घोल स्वतन्त्र पेक्टिनके अतिरिक्त पेक्टोस अथवा प्रोटोपेक्टिन भी निकाल लेता है।

स—'५ प्रतिशत अमोनियम आक्ज़लेटका घोल तीनों पेक्टिक पदार्थोंको यानी स्वतन्त्र पेक्टिन, पेक्टोस व पेक्टिक एसिड एवं उसके लवणोंको भी फलोंके अन्तर्गत भागोंसे उपरोक्त क्रिया द्वारा सम्पूर्ण रूपसे खींच लेता है।

[शेष अगले अङ्क में]

लिंग-परिवर्तन

[ले०—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, एम० एस-सी०, विशारद, सब-रजिस्ट्रार, सफीपुर (उन्नाव)]

सैनिक बच्चा जनता है

वैसे तो आजकल लिंगका बदलना एक साधारण-सी बात हो गई है, किन्तु कुछ दिन हुये वारसासे इसी प्रकार की घटनाका जो समाचार आया है वह अत्यन्त विस्मय-जनक एवं कौतूहलोत्पादक है। वहाँ पर नाकमन टेनेनहाम नामक एक चौबीस वर्षीय तरुण सैनिक ने एक बच्चेको जन्म दिया है। वह सिपाही वारसा (पोलैंड) का निवासी है। कुछ वर्ष हुये, उसने फौजमें नाम लिखाया था और बादको वह सारजेंट हो गया था। यही नहीं, दूसरोंकी प्राण-रक्षा करनेमें असाधारण वीरता प्रदर्शित करनेके कारण उसने कई पदक भी प्राप्त किये थे।

कुछ समयके उपरान्त उसकी प्रकृतिमें धीरे-धीरे परिवर्तन होने लगा, अर्थात् वह क्रमशः मनुष्यसे स्त्रीमें परिवर्त्तित होने लगा। जब वह पूर्णतया स्त्री हो गया तब वह वहींके एक कलाकारसे प्रेम करने लगा। बादको वारसा मैटरनिटी (Maternity) होमके डाक्टरको उसने यह हाल बता कर चकित कर दिया कि हाल ही में उसके बच्चा होने वाला है। इसलिये उसने प्राइवेट वार्डमें एक सीट रिज़र्व कराई और कुछ दिन बाद उसके पूर्ण स्वस्थ बालक उत्पन्न हुआ। जब यह ख़ुशख़बरी उसके प्रेमी कलाकार ने सुनी तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि स्वस्थ होते ही मैं उसके साथ विवाह करूँगा।

मानव नपुंसकत्व की ओर

यह अलौकिक घटनाका समाचार फैलते ही वैज्ञानिक संसारमें काफ़ी वाद-विवाद खड़ा हो गया। वैज्ञानिकोंके मतमें मानवता अभी विकास-पथके बीचमें है और वह शनैः शनैः, किन्तु दृढ़ रूपसे, नपुंसकत्वकी ओर अग्रसर हो रही है। उनकी समझमें, इस परिवर्तनका मूल कारण हमारी आधुनिक (पश्चमी) सभ्यता है। अधिक आबादी और सभ्यतापूर्ण जीवनके कारण अनेक दोषोंके आ जानेसे मनुष्योंके पुरुषत्वमें स्पष्ट रूपसे ह्रास हो रहा है और दूसरी ओर मनुष्योंके आधिपत्यसे छुटकारा पानेके कारण स्त्रियोंमें पुरुषत्वके भाव जागरित हो रहे हैं।

प्रसिद्ध सर्जन प्रोफेसर ब्रास्टरके मतमें स्त्रियोंमें पुरुषत्वके भावोंका उदय होना तो विकासवादके सहज पथसे एक निश्चित विचलन (Deviation) है।

आपरेशनकी सम्भावनाएँ

लिंग-परिवर्तनके सम्बन्धमें प्रो० ब्रास्टर कई सालसे खोज कार्य कर रहे हैं। उन्होंने पता लगाया है कि लिंग-परिवर्तनकी क्रिया उपवृक्क ग्रन्थि (Adrenal Gland) में, जो वृक्कके ऊपरी सिरे पर रहती है, परिवर्तन होनेके कारण होती है।

जिन स्त्रियोंमें लिंग-परिवर्तन-पुरुषत्वके लक्षणोंका जागरण होता है सबसे पहले उनके चेहरे पर बाल जमते हैं। फिर उनकी त्वचा पुष्ट होती है, स्वर गम्भीर हो जाता है और पुरुषोंके प्रति उनकी आन्तरिक भावनाओं एवं व्यवहारों में अन्तर हो जाता है।

यदि ऐसे समयमें आपरेशन द्वारा उस स्त्रीके शरीरमें से उपवृक्क निकाल दिये जावें तो उसमें पुरुषत्वके विकसित होते हुये लक्षणोंकी गति रुक जाती है। आपरेशनके थोड़े ही दिन बाद उसके चेहरेके बाल बड़ी आसानीसे उखाड़े जा सकते हैं और उसे तनिक भी कष्ट नहीं होता।

किन्तु प्रो० ब्रास्टर आपरेशन द्वारा उन स्त्रियोंके पुरुषत्व-सूचक लक्षणोंकी गतिको न रोक सके जिनमें इन लक्षणोंका प्रदर्शन उनकी तरुणावस्था (Puberty) से पूर्व ही हो चुका था। इस भांतिके लगभग साठ मामले उनके सन्मुख आये और उन सभीमें बीज-परम्परा (Heredity) ने निश्चित भाग लिया था।

इन्हीं बातोंके अवलोकनसे उसे यह सन्देह हुआ कि क्या मानव जाति धीरे-धीरे नपुंसकत्वकी ओर झुक रही है।

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक—डा० जी० घोष, डा० गोरख प्रसाद आदि]

आहार—आहारमें कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसाके अतिरिक्त सूक्ष्म मात्रामें वे पदार्थ रहते हैं जिनको विटैमिन कहते हैं। इन विटैमिनोंमें से ए, बी, सी, और डी प्रधान हैं। मुँहके भीतर और कोने परके घाव, तथा जीभके छाले विटैमिन बी$_2$ की कमीसे उत्पन्न होते हैं।

दूधकी मात्रा बढ़ा देनेसे यह शिकायत अकसर बहुत जल्द दूर हो जाती है। ढीले गुजगुजे मसूड़े, जिनसे अकसर रक्त निकलता हो, इस बातके सूचक हैं कि विटैमिन सीकी कमी है—हल्के रूपमें स्कर्वी आरम्भ हो गया है—और ऐसी अवस्थामें अधिक फल और हरी तरकारियाँ खानी चाहिये।

आहार-संबन्धी नियमोंका सारांश— मनुष्य, और विशेषकर बच्चे, ऐसे आहार पर स्वस्थ नहीं रह सकते जिसका अधिक अंश केवल अनाज हो और जिसमें दूध, फल और तरकारियोंकी कमी हो। ऐसे आहारके सुधारके लिये यह आवश्यक है कि अनाजोंकी मात्रा कम कर दी जाय और दूध-दही, हरी तरकारियाँ, पत्तीवाले साग, और फल जोड़ दिया जाय। आमिषभोजी दूध-दहीके बदले मांस और अंडे भी खा सकते हैं। दूध, फल और हरी तरकारियोंका अब नाम पड़ गया है "संरक्षक आहार" क्योंकि शरीरको स्वस्थ रखनेमें ये बड़ी सहायता देते हैं। इनमें प्रोटीन, विटैमिन और खनिज पदार्थ पर्याप्त मात्रामें रहता है। मछलीके यकृत (कलेजी) से निकले तेल वर्तमान समयमें सबसे अधिक बहुमूल्य "संरक्षक आहार" हैं।

साधारणतः हमारे देशमें आहारमें त्रुटि यही रहती है कि उसमें "संरक्षक आहार" की मात्रा बहुत कम रहती है। सार्वजनिक संस्थाओं और घर-घरकी गृहणियोंकी चेष्टा यही होनी चाहिये कि परिवार इन "संरक्षक आहार" पदार्थोंको अधिक मात्रामें खाय, छोटे बच्चे बालक-बालिकायें तथा गर्भवती स्त्रियोंपर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि उनको ऐसे आहारकी कमी न हो।

आहारके पोषणशक्तिकी गणना—एक दो उदाहरणोंसे पता चल जायगा कि आहारोंकी जाँच गणना द्वारा किस प्रकार करनी चाहिये और उनमें कैसा सुधार होना चाहिये। मान लो किसी परिवार या संस्थाके प्रति व्यक्तिको साधारणतः निम्न प्रकारका भोजन एक दिनमें मिलता है—

	छटाँक
मशीनका छाँटा चावल	७·५
दूध	०·५
दाल (अरहर)	०·५
भाँटा (बैगन)	०·५
भिंडी	०·२५
चौराई (साग)	०·१२
तेल	०·२५

इस आहारको पहले छपे चित्रमें 'असमतुलित भोजन' का नाम दिया गया है।

सारिणीसे पता चलेगा कि इस भोजनका विश्लेषण यों है—

प्रोटीन	३८ ग्राम
वसा	१६ ग्राम
कार्बोहाइड्रेट	३५७ ग्राम
कैलसियम	०·१६ ग्राम
फ़ॉसफ़ोरस	०·६० ग्राम
लोहा	९·०० मिलीग्राम
विटैमिन ए	५०० अंतराष्ट्रीय एकाई
विटैमिन बी	१६० " "
विटैमिन सी	१५ मिलीग्राम

कुल नाप १७५० कैलोरी

कैलोरियोंकी संख्यासे तुरन्त पता चलता है कि केवल इतना आहार एक प्रौढ़ व्यक्तिके लिये पर्याप्त नहीं है। इससे अधिक आहार ग्रहण करना चाहिये। ऊपरके सिद्धान्तोंसे पता चलता है कि इस आहारमें कार्बोहाइड्रेट बहुत है, और शेष अवयव आवश्यकतासे कहीं कम हैं। (तो भी भारतवर्षके करोड़ों व्यक्ति ऐसा ही भोजन खा कर रहते हैं।)

इस भोजनमें परिवर्त्तन कर देनेसे यह समतुलित हो जा सकता है। उदाहरणतः निम्न आहार समतुलित है। यही आहार चित्रमें 'समतुलित आहार' के नामसे प्रदर्शित किया गया है।

	छटाँक
चावल (हो सके तो ढेकीका छाँटा)	५
बाजरा (या गेहूँ)	२½
दूध	४
दाल (एक दिन अरहर, दो दिन चना या उरद)	१½
साग (पत्तीवाला)	२
अन्य तरकारी (भाँटा, भिंडी, तरोई, सेम आदि)	३

तेल (हो सके तो घी)	१
फल (आम, केला, आदि)	१

चावलकी मात्रा कम करके बाजरा या गेहूँकी मात्रा और भी बढ़ाई जा सकती है। चावलकी मात्रा केवल २½ छटाँक कम करके उसके बदले बाजरा रखनेसे प्रोटीन और विटैमिन बी$_1$ की मात्रा कुछ बढ़ जाती है। दूधकी मात्रा भी बढ़ा दी गई है। इससे अति उत्तम प्रोटीन, कैलसियम और थोड़ा-सा विटैमिन ए मिल जाता है। दालकी मात्रा भी बढ़ा दी गई है। इससे प्रोटीनकी मात्रा पूरी हो जाती है और कैलोरियोंकी पूर्ति भी होती है। तरकारियोंकी मात्रा बढ़ा दी गई है जिससे आहार प्रायः सभी बातोंमें अच्छा हो गया है। हरे सागोंमें विटैमिन ए (कैरोटीन) अधिक रहता है और इससे विटैमिन ए की कमीकी पूर्ति हो गई है; शेष भोजनमें विटैमिन ए पर्याप्त मात्रामें नहीं है। सागसे थोड़ा विटैमिन सी भी मिल जायगा। एक छटाँक तेल या घीसे कैलोरियोंमें पर्याप्त वृद्धि हो जाती है। कुछ फल भी रख दिया गया है। इससे विटैमिन सी की किसी प्रकारसे कमी होनेका डर नहीं रह जाता। उपर्युक्त परिवर्तनोंसे विटैमिन बी$_2$ की कमी भी मिट जाती है।

मोटे हिसाबसे इस समतुलित आहारका विश्लेषण इस प्रकार है :—

प्रोटीन	७३ ग्राम
वसा	७४ ग्राम
कारबोहाइड्रेट	४०८ ग्राम
कैलसियम	१·०२ ग्राम
फ़ासफ़ोरस	१·४७ ग्राम
लोहा	४४·०० मिलीग्राम
विटैमिन ए	७००० अंतर्राष्ट्रीय एकाइयोंसे अधिक
विटैमिन बी	४०० ,, ,, ,,
विटैमिन सी	१७० मिलीग्राम (लगभग)

कुल कैलोरी २५९०

इस भोजनमें साधारण प्रौढ़ व्यक्तिकी आवश्यकताके लिए काफ़ी कैलोरियाँ हैं। उत्तम आहारके सभी अवयव पर्याप्त मात्रामें हैं। संरक्षक अवयव आवश्यकतासे कुछ अधिक मात्रामें हैं जिसमें भूल-चूकसे सम्भवतः कोई हानि न होने पावे। ऊपरके दोनों प्रकारके भोजनोंमें चावलको ही प्रधान स्थान दिया गया है, उन प्रांतोंमें जहाँ गेहूँ या बाजरा ही अधिक खाया जाता है, चावलके बदले गेहूँ या बाजरा रख देने पर भी समतुलित भोजन समतुलित बना रहेगा।

मूल्य—समतुलित भोजनमें साधारणतः अधिक ख़र्च बैठता है। उदाहरणतः, उपर्युक्त असमतुलित भोजनमें, जिसमें अधिकांश चावल है और दूध आदिकी मात्रा बहुत कम है, ढाई रुपये महीना (प्रति व्यक्ति) ख़र्च पड़ेगा। अवश्य ही यहाँ मोटे चावलका दाम जोड़ा गया है। फिर यह दाम वर्तमान युद्धके पहलेके भावसे जोड़ा गया है। समतुलित भोजनमें कम-से-कम ५) या ६) महीना लग जायगा। यही कारण है कि समतुलित भोजन प्राप्त करनेमें कठिनाई पड़ती है। अन्य देशके लोग भले ही न जानते हों, परन्तु प्रत्येक भारतीय दूधकी महिमा जानता है। अत्यन्त प्राचीन कालसे ये अमृत तुल्य गिने जाते रहे हैं। साधारणतः ऐसा होता है कि दुष्पोषणसे पीड़ित व्यक्ति गरीब होते हैं और समतुलित भोजनकी आवश्यकता अनुभव करने पर भी उसे मोल नहीं ले पाते। कितने ही व्यक्तियोंको अपना निर्वाह २।) प्रति माससे कममें ही करना पड़ता है।

तो भी, कई अवस्थाओंमें, जहाँ पहले अज्ञानका राज्य रहा हो, उपर्युक्त सिद्धान्तोंको दृष्टिमें रख कर, बिना मूल्य बढ़ाये, बहुत कुछ उन्नतिकी जा सकती है। देहातोंमें चना, बथुआ आदिका साग प्रायः बिना मूल्यके ही मिल जाता है; उसे अवश्य खाना चाहिये, और इनमेंसे कच्चा खाया जाने वाला साग कच्चा ही खाया जाना चाहिये। देशी आम, खरबूजा, बेर, जामुन आदि भी फल ही हैं; यह न समझना चाहिये कि अनार, अंगूर आदिको ही फल कहते हैं। खमीर, अंकुर उगा चना, या आँवला भी मिल सकता है और सूर्य-रश्मियोंका सेवन भी सुगम है। दूधके पानेमें ही कठिनाई पड़ती है, विशेष कर शहरोंमें। बच्चोंके लिये दूध अत्यन्त वांछनीय है और प्रत्येक बच्चे, लड़के या लड़कीको कम-से-कम पाव भर दूध प्रतिदिनकी आवश्यकता रहती है। यदि शुद्ध दूध न मिल सके तो मक्खन निकाला दूध या दही, या मलाई निकाला मट्ठा ही दिया जाय। पूरा न मिलने पर छटाँक, दो छटाँक, जो कुछ भी दिया जा सके, देना चाहिये। प्रयोग करके देखा गया है कि

अनाज पर पले बालकोंकी अपेक्षा वे बालक कहीं अधिक तगड़े और स्वस्थ रहते हैं जिन्हें अन्नके अतिरिक्त प्रतिदिन पाव भर मक्खन रहित दूध मिलता है। इसलिये मलाई मक्खन-रहित दूध या दहीकी उपेक्षा न करनी चाहिये। "मखनिया" दूध अपेक्षाकृत बहुत सस्ता मिलता है और इसका प्रबन्ध बहुधा सुगमतासे किया जा सकता है।

वसाके प्रबन्धमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती, क्योंकि तेल सस्ता होता है, और फिर तेलके कारण अनाज भी कुछ कम ख़र्च होता है। तेलके बदले शुद्ध घी या मक्खन मिल सके तो अवश्य ही अति उत्तम हो, परन्तु इसमें बहुत पैसा लगता है।

कम खर्च करनेकी आवश्यकताको ध्यानमें रख कर उन्नति करनेमें निम्न बातों पर भी ध्यान देना चाहिये :—

यदि अधिकतर मशीनका छाँटा चावल ही खाया जाता हो तो चावलके बदले पूर्णतया या अंशतः ढेकीका कूटा चावल, बिना चोकर निकाला गेहूँका आटा, बाजरा आदि खानेसे आहार अधिक स्वास्थ्यप्रद हो जायगा। यदि अनाजों में केवल मशीनका छाँटा चावल ही अधिक खाया जाय तो स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी अवस्थामें स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिये "संरक्षक आहार" की मात्रा साधारणसे अधिक बढ़ानी पड़ेगी। अर्थात् गेहूँ, बाजरा आदि खानेवाले की अपेक्षा उसे दूध, हरी तरकारियाँ, फल आदि अधिक खाना चाहिये। जब इतनी गरीबी हो कि चावलके अतिरिक्त दूसरा कोई अनाज खरीदना ही असम्भव हो—पूरबके कुछ प्रांतोंमें गरीब किसानोंकी ऐसी ही अवस्था है, पश्चिममें तो बाजरा आदि चावलसे सस्ता ही मिलता है—तो इस बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये कि चावलको यथासम्भव अधिक-से-अधिक स्वास्थ्यप्रद रीतिसे खाया जाय। अरवा चावल, हाथ या ढेकीका कुटा, मशीन के कुटे चावल अधिक स्वास्थ्यप्रद है; परन्तु मशीनके कुटे चावलोंमेंसे भुजिया चावल, स्वास्थ्यकी दृष्टिकोणसे, अधिक अच्छा है। कारण सम्भवतः यह है कि मशीनसे कूटने पर अरवा चावलका वाह्य आवरण, जिसमें ही विटैमिन रहता है, सब छूट जाता है, परन्तु भुजिया चावलमें यह आवरण चावलमें चिपका रह जाता है।

[अरवा चावल उस चावलको कहते हैं जो कच्चे अर्थात् बिना उबाले धानसे निकाला जाता है। उबाले हुये धानके चावलको भुजिया चावल कहते हैं। खेतमें उत्पन्न पौधेके बीजको धान कहते हैं। धानको कूटने पर भूसी अर्थात् छिलका अलग हो जाता है। यह भूसी इतनी कड़ी होती है कि यह मनुष्यके खाने योग्य नहीं होता। भूसीके अलग हो जाने पर जो चावल प्राप्त होता है वह सफेद नहीं होता। भीतरी सफेद अंश पर एक पतली तह रहती है जो मैले रङ्गकी होती है। अधिकांश चावलोंमें इस मैली परतकी ऊपरी सतह लाल होती है। छाँटनेसे यह परत धूलिके रूपमें अलग हो जाती है। इस धूलिको कन्ना कहते हैं। थोड़ा-बहुत चावल ओखलीमें मूसलसे कूटकर छाँट लिया जाता है। कुछ बड़े पैमाने पर कूटना हो तो यह काम ढेंकीसे किया जाता है। ढेंकी पैरसे चलती है। इन प्राचीन रीतियोंसे सब कन्ना नहीं छूटने पाता। मशीनकी छँटाईसे सब कन्ना छूट जाता है। तब चावल बहुत स्वच्छ और चमकीला हो जाता है। मशीनकी छँटाईमें चावल टूटता भी कम है। कन्ना छुड़ाये चावलका भात 'फरहर' होता है, अर्थात् राँधने पर भी दाने-दाने अलग रहते हैं। कन्ना न छुड़ाये चावलके भातमें दाने एक दूसरेसे लिपट जाते हैं जिसे अधिकांश लोग पसन्द नहीं करते। इन्हीं कारणोंसे ग्राहकोंको साधारणतः मशीनका छाँटा (milled) चावल ही पसन्द आता है। बड़े पैमाने पर काम करनेसे मशीनकी छँटाई हाथ या ढेंकीकी छँटाईसे सस्ती पड़ती है। इसलिये बाहर भेजे जाने वाला चावल साधारणतः मशीनका छँटा रहता है। रंगूनी (रंगूनसे आया) चावल साधारणतः ऐसा ही होता है। मशीनकी छँटाईमें प्रत्यक्ष रूपसे सब गुण-ही-गुण हैं, परन्तु स्वास्थ्यकी दृष्टिकोणसे भारी दोष है। चावलका विटैमिन उसी परतमें रहता है जो छाँटे जाने पर कन्नाके रूपमें निकल जाता है। हाथ या ढेंकीसे छाँटने पर इस परतका काफ़ी हिस्सा बचा रह जाता है। यदि जान-बूझ कर चावलको केवल इतना कूटा जाय कि भूसी भर छूट जाय, कन्ना न छूटे, तो और भी अच्छा। प्रयोग करके देखा गया है कि केवल अच्छी तरह से कन्ना छुड़ाया चावल खिला कर मुर्गियोंको रखनेसे उन्हें बेरी-बेरीका रोग हो जाता है, यद्यपि बिना छाँटा चावल खिलानेसे वे स्वस्थ रहती हैं। यह भी देखा गया

है कि बेरी-बेरी रोग-ग्रसित मुर्गियोंको कन्ना पर्याप्त मात्रामें देने पर उनका बेरी-बेरी रोग छूट जाता है। कन्ना लगे चावलका भात मीठा और स्वादिष्ट होता है; इसलिये कन्ना-दार चावलके, प्रयोगमें वस्तुतः कोई बाधा नहीं है। पुराने चावलमें अर्थात् साल भर या अधिक समय तक रक्खे चावलमें, बहुतसा कन्ना आप-से-आप छूट जाता है। इसे तो फटक कर अलग कर देना ही पड़ता है। सब डाक्टरों-की राय अभी एक नहीं हो सकी है, तो भी अधिकांश डाक्टर कहते हैं कि पुराना चावल खानेसे बेरी-बेरी होता है, विशेष कर ऐसे पुराने चावलसे जो उचित स्थानमें न रक्खा रहा हो और इसलिये जिसमें सीड़ (नमी) लग गई हो।]

अन्य अनाजोंकी अपेक्षा दालोंमें प्रोटीन अधिक होती है। कुछमें विटैमिन बी होता है। छटाँक-डेढ़ छटाँक दाल प्रतिदिन खाना उनके लिए उचित है जो अधिकांशमें अनाजसे ही पेट भरते हैं। सोयाबीन (soya bean) में प्रोटीन और वसा दोनों अधिक होते हैं। आज (१९४२) से कुछ वर्ष पहले समाचार-पत्रोंमें सोया-बीनकी बड़ी धूम थी। सोया-बीन आसानीसे खेतोंमें उत्पन्न किया जा सकता है। यह एक प्रकारकी दाल ही है। परन्तु इसका स्वाद बहुत अच्छा नहीं होता। यह कुछ कसैला होता है। इसके अतिरिक्त, अन्य दालोंकी अपेक्षा वास्तवमें यह विशेष उपयोगी नहीं है। इसीसे सोया-बीनका अधिक प्रचार होना सम्भव नहीं जान पड़ता। स्मरण रखना चाहिए कि दालका प्रोटीन उतना लाभदायक नहीं होता जितना दूध, मछली और मांससे प्राप्त प्रोटीन।

मूँगफली भी सस्ती और अच्छी खाद्य वस्तु है। इसमें थोड़ा विटैमिन बी भी होता है। वसा खूब रहती है। जो अधिकतर चावलके सहारे उदर-पोषण करते हैं वे आधी छटाँक तक मूँगफली प्रतिदिन खायँ तो लाभ होगा। यदि मूँगफली बहुत अधिक मात्रामें खायी जायगी तो अजीर्ण हो जायगा। इसका कारण यही जान पड़ता है कि उसमें वसा प्रचुर मात्रामें रहती है।

पत्तीदार साग प्रतिदिन कम-से-कम डेढ़-दो छटाँक खाना चाहिए। सस्ते-से-सस्ता साग भी स्वास्थ्यकी दृष्टिकोण से उतना ही लाभदायक होता है जितना लेटिस (lettuce) आदि विलायती साग। जहाँ थोड़ी-सी भी भूमि इस कार्यके लिए मिल सके वहाँ साग बो देना बहुत लाभ-दायी होगा। तब एकदम ताज़ा साग मिल सकेगा।

बच्चोंको फल भी अवश्य देना चाहिए। टमाटर बहुत सस्ता होता है और आसानीसे सर्वत्र उत्पन्न किया जा सकता है। इसमें और नारंगीमें विटैमिन बहुत रहते हैं।

बहुधा बड़ी संस्थाओंमें, या बड़े परिवारोंमें, प्राचीन भोजन प्रणालीको पूर्णतया बदल देना असम्भव-सा होता है। ऐसी अवस्थामें केवल एक-दो पदार्थ बढ़ा देनेसे अकसर बड़ी उन्नति हो जाती है। सम्भवतः दूध-दही, या साग, या मछलीका तेल, बढ़ा देनेसे विशेष अवगुण मिट जा सकता है। लोहा, या कैलसियमकी कमी विशेष रासायनिक पदार्थोंके सेवनसे दूर हो सकती है। ये सस्ते भी मिलते हैं। विटैमिनोंको कृत्रिम रीतिसे बनानेका भेद हालमें ही मिला है। बहुत सम्भव है कि भविष्यमें ये बहुत सस्ते बन सकें। तब इनका सेवन बहुत लोग कर सकेंगे। अब भी कुछ विटैमिन अपेक्षाकृत सस्ते ही हैं। इंगलैंडमें अब कई कारखाने पावरोटी बनानेके मैदेमें विटैमिन बी मिला रहे हैं जिसमें पावरोटी वैसी ही गुणप्रद हो जैसे आटेकी रोटी।

इस प्रकममें कम खर्च पर ही विशेष ध्यान दिया गया है, परन्तु अन्तमें यह चेतावनी दे देना उचित जान पड़ता है कि केवल धनाभावके कारण लोग असमतुलित भोजनका व्यवहार नहीं करते। बहुतसे लोग जो स्वयं अपने लिए और अपने बाल-बच्चोंके लिए समतुलित और स्वास्थ्यप्रद भोजनका व्यवहार कर सकते हैं अज्ञान या असावधानी वश ऐसा नहीं कर पाते। धनिकोंके घर भी ऐसे बच्चे दिखलाई पड़ते हैं जो कुपोषित रहते हैं और जिन्हें दुष्पोषण-जनित रोग जकड़े रहते हैं।

गर्भवती स्त्रियोंके लिए आहार—गर्भावस्था और दूध पीते रहनेके कालमें बच्चोंका स्वास्थ्य बहुत कुछ माँके आहार पर निर्भर रहता है। इस बातकी ओर पहले भी संकेत किया जा चुका है। पेटके भीतरका बच्चा माँके आहार से ही पोषित होता है और इसलिए उस समय माँके लिए प्रोटीन, विटैमिन और खनिज पदार्थोंकी आवश्यकता बढ़ जाती है। साधारणसे कितनी अधिक मात्राकी आवश्यकता

पड़ती है यह निम्न सारिणीसे जाना जा सकता है।

	आवश्यकतामें प्रतिशत वृद्धि
कुल कैलोरियोंमें	२५
प्रोटीन	५०
वसा	१०
कैलसियम	१००
फ़ॉसफ़ोरस	५०
लोहा	५०

विटैमिनोंकी आवश्यकता भी बढ़ जाती है।

बच्चोंका आहार—अभी तक बच्चोंकी आवश्यकताओं पर भारतवर्षमें वैज्ञानिक रीतिसे पूरी जाँच नहीं हो पायी है। इसलिए निश्चयात्मक रूपसे उनकी आवश्यकताओंकी तालिका नहीं बनायी जा सकती। मोटे हिसाबसे निम्न तालिकासे पता चल सकता है कि बच्चोंको कितना आहार चाहिए :—

पहला सप्ताह	२००	कैलोरियाँ
पहला महीना	२४०	”
दूसरा महीना	४००	”
तीसरा महीना	४५०	”
पाँचवाँ महीना	६००	”
आठवाँ महीना	७००	”
बाहरवाँ महीना	८००	”

ये मात्राएँ यूरोपीय बच्चोंके लिए आवश्यक समझी जाने वाली मात्राओंसे २०-२५ प्रतिशत कम हैं। बच्चोंके लिए आहारका अनुमान करनेके लिए बच्चेकी तौल पर भी ध्यान रखना चाहिए। अपनी आयुके हिसाबसे लम्बे, भारी, स्वस्थ्य और तगड़े बच्चोंको उसी आयुके दुबले बच्चोंसे अधिक आहारकी आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यदि मोटाई मांसके बदले चर्बीके कारण हो तो आहार कम, लगभग औसतके बराबर, या कुछ ही अधिक, देना चाहिए। दुबले, दुष्पोषित बच्चोंको औरोंके हिसाबसे अधिक आहार देनेकी आवश्यकता पड़ती है। इसलिए आयुके हिसाबसे कितना भोजन चाहिए यह अधिक महत्त्वपूर्ण है; तौलके हिसाबसे आहारकी आवश्यकता पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

स्तन-पोषण—ऊपर आहारकी मात्रा कैलोरियोंमें दी गयी है। उससे दूधकी मात्राकी गणना सुगमता से की जा सकती है। प्रति छटाँक स्त्रीके दूधसे ४० कैलोरियाँ प्राप्त होती हैं। इसलिए, उदाहरणतः, डेढ़ महीनेके औसत बच्चे को १० छटाँक अपनी माँका दूध चाहिए, या यों समझिये कि यदि २४ घण्टेमें बच्चेको ५ बार दूध पिलाया जाता है तो प्रत्येक बार उसे २ छटाँक दूध चाहिए। बहुत कम स्त्रियोंको ही प्रतिदिन १५ छटाँकसे अधिक दूध होता है। इसलिए छठें महीनेसे बाहरके दूध (गाय, बकरीके दूध) की आवश्यकता पड़ती है। छठें महीनेके बाद दूधके अतिरिक्त कुछ अन्य आहार (अन्न, फल आदि) भी दिया जा सकता है। बाहरके आहार पर पले बच्चोंको उपर्युक्त तालिकामें दिखलायी गयी मात्राओंसे कुछ अधिक दूधकी आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि गाय आदिका दूध उतना पचनशील नहीं होता जितना माताका दूध और इसलिए प्रोटीन, वसा आदिका कुछ अंश बच्चोंके पेटमें से बिना पचे ही निकल आता है।

बच्चोंके लिए सबसे उत्तम आहार है स्तन-दुग्ध। इस बातमें कुछ भी सन्देह नहीं है। यह बात केवल साधारण अनुभवके भरोसे नहीं सत्य माना गया है; अत्यन्त सावधानी-पूर्वक बहुत-से वैज्ञानिक प्रयोगोंसे भी इसका समर्थन हुआ है। इसके अतिरिक्त स्तन-दुग्धमें एक विशेष गुण यह रहता है कि उसमें जीवाणुओंके आ जानेका भय नहीं रहता। बाहरके दूध पिलानेमें तरह-तरहके रोगाणु दूध द्वारा बच्चे तक पहुँच सकते हैं, विशेष कर निर्धन और अपढ़ लोगोंमें जो स्वास्थ्यके नियमोंको नहीं समझते। तो भी केवल यह देख कर कि बच्चा अपनी माँ का दूध पी रहा है यह समझ लेना कि उसे उचित आहार मिल रहा है ठीक न होगा। यदि यह इच्छा हो कि बच्चा पूर्णतया स्वस्थ रहे तो इस बात पर ध्यान रखना परमावश्यक है कि माँमें दूध पर्याप्त मात्रामें उत्पन्न हो रहा है या नहीं, और उस दूधमें पोषण-गुण सब उपस्थित हैं या नहीं।

सची बात तो यह है कि कुपोषित, निर्धन माताओंके बहुधा इतना दूध नहीं होता कि बच्चा अच्छी तरह पल सके। सभी जानते हैं कि संयुक्त प्रान्तकी गायें पंजाबकी मोटी, चिकने शरीर वाली, और वहाँकी उर्बरा भूमिके तृणसे पोषित गायोंकी अपेक्षा बहुत कम दूध देती हैं। यही बात

भारतकी निर्धन स्त्रियोंकी भी है। कुपोषित स्त्रियोंका दूध उनकी सुपोषित, स्वास्थ्यप्रद वातावरणमें रहने वाली, बहनों के दूधकी अपेक्षा तिहाई ही होता है। इतनेसे उनके बच्चे पल कर कभी भी पूर्ण पुरुषार्थ प्राप्त नहीं कर सकते। पौष्टिक आहारका सुपरिणाम मधुमक्खी संसारमें अद्भुत रूपसे देखनेमें आता है। अंडेसे पहले ढोले निकलते हैं जो मधुमक्खीमें परिवर्तित हो जाते हैं। साधारण आहार पाने पर ढोलेसे साधारण मक्खी बनती है, जो केवल मिहनत-मजदूरी कर सकती है, परन्तु उसी ढोलेको आरम्भ से ही खूब खिला-पिलाकर जब चाहती हैं तो मधुमक्खियाँ रानी-मक्खी पैदा कर लेती हैं, जो साधारण मधुमक्यिोंसे ड्योढ़ी बड़ी होती है। रानी-मक्खी ही अंडे दे सकती है। मिहनत करने वाली मक्खियोंकी जननेंद्रियाँ आरम्भमें कम आहार पाये रहनेके कारण पूर्णरूपसे कभी विकसित ही नहीं हो पातीं। [जो मधुमक्खियोंके विषयमें कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहें वे विज्ञान-परिषद्से छपी 'मधुमक्खी-पालन'' पढ़ें। विषय अत्यन्त रोचक है।]

बच्चोंको प्रति सप्ताह तौलते रहनेसे पता चल सकता है कि उनकी संतोषजनक वृद्धि हो रही है या नहीं। प्रति सप्ताह उनकी तौल दोसे ढाई छटाँक बढ़नी चाहिए।

बच्चोंके लिये कृत्रिम आहार—माताके दूधके अतिरिक्त दिये गये बच्चोंके आहारको कृत्रिम आहार कहते हैं। यदि माताका दूध बच्चेके लिये पर्याप्त न होता हो तो कृत्रिम आहार देना ही पड़ेगा। कभी-कभी तो माताको कुछ भी दूध नहीं होता। तब बच्चेको केवल कृत्रिम आहारके ही भरोसे रखना पड़ता है। गाय और बकरीके दूधमें प्रति छटाँक लगभग उतना ही पोषण-गुण रहता है जितना माताके दूधमें, परन्तु भैंसका दूध गाढ़ा होता है और उनमें वसा भी अपेक्षाकृत अधिक रहती है।

गाय और बकरीके दूधमें भी पानी मिलाना आवश्यक होता है। इसके लिये स्वच्छ, कीटाणुरहित, जलका उपयोग करना चाहिये। माताके दूधकी अपेक्षा गाय, बकरी और भैंसके दूधोंमें प्रोटीन अधिक रहता है। इसलिये बिना जल मिलाये उसे छोटे बच्चोंको पिलाना उचित नहीं है। पानी इतना मिलाना चाहिये कि प्रोटीनकी मात्रा लगभग माताके दूधकी तरह हो जाय। परन्तु माताके दूधमें शर्करा (वस्तुतः लैक्टोज़) अधिक होती है और गाय आदिके दूधमें जल मिलाने पर शर्कराकी मात्रा प्रति छटाँक दूधमें बहुत कम हो जाती है। इसलिये पूर्ण स्वास्थ्यके लिये गाय आदिके दूधमें जल मिलानेके बाद ऊपरसे थोड़ी-सी चीनी मिलानी पड़ती है।

यदि नवजात शिशुको, जीवनके प्रथम दो तीन दिनमें बाहरी दूध देनेकी आवश्यकता पड़े तो एक भाग गाय या बकरीके दूधमें दो भाग जल मिलाना चाहिये। धीरे-धीरे जलकी मात्रा घटा देनी चाहिये। प्रथम सप्ताहके अन्त तक दूध और जल बराबर मात्राओंमें मिलाये जायँ। छः महीने के बच्चोंको बिना पानी मिलाये ही गायका दूध देना चाहिये। प्रथम सप्ताहमें कुल इतनी ही चीनी मिलानी चाहिये कि बच्चेको २४ घण्टेमें लगभग आधा तोला चीनी मिले। चीनीकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाते जाना चाहिये; छठे महीने तक इसकी मात्रा लगभग २ तोला तक हो जाय।

जीवनके प्रथम दो-तीन दिन तक बच्चेको केवल ३ या चार बार दूध पिलाना चाहिये। फिर प्रतिदिन उसे ६ बार दूध पिलाना चाहिये। एक महीनेके हो जाने पर ५ बार दूध पिलाना पर्याप्त होगा। साल भर तक प्रतिदिन इतनी ही बार दूध पिलाना या अन्य आहार देना काफी होगा।

यह परमावश्यक है कि बच्चोंको जो दूध या पानी दिया जाय उसे खौला लिया जाय और जिस बरतनमें उसे आहार देना हो उसे भी खौलते जलमें रख कर स्वच्छ कर लिया जाय। इससे रोगोंके कीटाणु मर जाते हैं।

विटैमिन और खनिज पदार्थ—दूसरे महीनेसे ऊपरसे कुछ विटैमिनयुक्त आहार देना अच्छा है। इतना दिया जाय कि प्रतिदिन विटैमिन सी कम-से-कम ५ मिलीग्राम मिल जाया करे। लगभग ढाई चम्मच (चायके चम्मच भर) संतरे या टमाटरके रससे इतना विटैमिन मिल जायगा। यदि ये न मिलें तो पपीता, आम आदि विटैमिन सी वाले फलोंके रसोंसे भी काम अच्छी तरह चल जायगा।

स्वस्थ माताका दूध पीकर, या स्वस्थ गायका दूध पीकर बच्चे बिना ऊपरसे विटैमिन ए पाये स्वस्थ रह सकते हैं, परन्तु यदि उनको उचित मात्रामें कॉड लिवर ऑयल (कॉड मछलीके यकृतका तेल) दिया जाय तो बच्चे

अधिक पुष्ट और रोगमुक्त रहेंगे। पन्द्रहवें दिनसे उनको कॉड लिवर ऑयल दिया जाय। पहले केवल दो बूँद ही देना उचित होगा। कुछ दिनोंमें मात्रा बढ़ाई जाय। धीरे-धीरे बढ़ा कर दूसरे महीनेके अन्त तक उनको एक चायके चम्मच भर कॉड लिवर ऑयल दिया जाय।

कॉड लिवर ऑयलमें यह भी गुण है कि इसमें विटैमिन डी भी रहता है। भारतवर्षके बहुतसे स्थानोंमें बच्चोंको विटैमिन डी धूपकी प्रक्रियासे प्राप्त हो जाता है, परन्तु उत्तरी भारतवर्षमें, जहाँ बाल-अस्थि-दौर्बल्य (रिकेट्स) का होना कोई असाधारण बात नहीं है बच्चोंको पर्याप्त मात्रामें विटैमिन डी का आहार द्वारा मिलना अच्छा है।

दुर्बल बच्चोंको लोहा किसी-न-किसी पचनशील रूप में देना अच्छा है। ऐसे बच्चोंको जो बिना अन्न खिलाये ६ महीने तक पाले जायँ लोहाका मिलना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा उन्हें रक्ताल्पता रोग होनेका डर रहता है।

विशेष दुग्ध—कुछ देशोंमें, जहाँ ताज़ा दूध मिलना कठिन होता है, डिब्बाबन्द दूध, या बच्चोंके लिये विशेष रूपसे बने डिब्बाबन्द आहार, देनेकी प्रथा बहुत प्रचलित है। भारतवर्षमें भी धनिकोंके घरोंमें, यह प्रथा बहुत कुछ चल निकली है। देखा-देखी गरीब बेचारे भी, अपने बच्चोंके प्रति असीम प्रेमके कारण, ऐसा दूध या आहार खरीदते हैं। परन्तु असली बात यह है कि ऐसा दूध साधारणतः गाय या बकरीके दूधके हिसाबसे कम स्वास्थप्रद और साथ ही कहीं अधिक मँहगा पड़ता है। डिब्बाबन्द दूधों या आहारोंमें क्या रहता है यह समझ लेना चाहिये।

इवैपोरेटेड मिल्क (evaporated milk)—गायके दूधको गरम करके और वाष्पको पम्पों द्वारा खींचते रहनेसे दूध बिना खौले ही गाढ़ा हो जाता है। आँच इतनी दी जाती है कि कीटाणु मर जाते हैं। साधारण रीतिसे दूधको औटा कर गाढ़ा करनेसे मलाई अलग हो जाती है, परन्तु उपर्युक्त रीतिसे गाढ़ा करने पर मलाई अलग नहीं होती। ऐसा दूध साधारण दूधका लगभग दुगना गाढ़ा होता है। इसमें बराबर मात्रामें जल मिलानेसे साधारण दूध-जैसा दूध तैयार हो जाता है। इस इवैपोरेटेड दूधको चीनीरहित कनडेन्स्ड मिल्क भी कहते हैं। यदि साधारण दूध न मिले तो ऐसे दूधके प्रयोगमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि डिब्बाके खोलनेके बाद दूध अधिक समय तक नहीं टिक सकता। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि ऐसे दूधमें विटैमिन सी नहीं रहता। इसलिये यदि ऐसे दूध पर ही बच्चेको पाला जाय तो संतरे आदिका रस अवश्य पिलाना चाहिये। यदि अच्छे दूधसे इवैपोरेटेड मिल्क बनाया गया हो तो वह दुर्बल गाय या पानी मिले बाज़ारू दूधसे अधिक पौष्टिक सिद्ध हो सकता है।

कनडेन्स्ड मिल्क (चीनी पड़ा)—कनडेन्स्ड मिल्क उसी प्रकार बनता है जैसे इवैपोरेटेड मिल्क; परन्तु इसमें चीनी बहुत अधिक मात्रामें छोड़ी जाती है। यह साधारण चीनी (ईखसे प्राप्त चीनी) रहती है। तैयार कनडेन्स्ड मिल्कमें २० प्रतिशत तक चीनी रहती है। इसलिये ऐसा दूध पानी मिलाने पर भी बच्चोंके योग्य नहीं होता। चीनी अधिक रहनेके कारण प्रति छटाँक दूधमें प्रोटीन, वसा और खनिजोंकी मात्रा कम रहती है, और फिर इतनी अधिक चीनी बच्चोंको हानिकर होती है।

दुग्ध-चूर्ण—दूधको विशेष रीतियोंसे चटपट सुखाने से दुग्ध-चूर्ण बनता है। लगभग अठगुना पानी मिलानेसे फिर दूध तैयार हो जाता है। देसी रीतियोंसे बने खोयेमें यह गुण नहीं रहता। उसे पानीमें घोलनेसे फिर दूध नहीं बन सकता। जहाँ ताज़ा दूध न मिले वहाँ दुग्ध-चूर्ण (powdered milk या dried milk) का उपयोग किया जा सकता है, परन्तु तब बच्चोंको ऊपरसे विटैमिन सी वाले फलोंका रस (संतरा, टमाटर आदिका रस) देना अनिवार्य है।

ऐसे दुग्ध-चूर्ण दो प्रकारके होते हैं, एकसे वसा निकाल ली गई रहती है, दूसरेमें वसाभी वर्तमान रहती है। अवश्य ही वसा (मक्खन) निकाले दूधसे बना दुग्ध-चूर्ण अपेक्षाकृत सस्ता पड़ता है। परन्तु केवल ऐसे चूर्णसे बना दूध पीकर बच्चे तगड़े नहीं हो सकते क्योंकि उनको वसाकी भी आवश्यकता रहती है। केवल ऐसे ही दूध पिला कर बच्चोंको पालनेसे उन्हें आँखका वह रोग हो सकता है जिसे केराटोमैलेशिया (Kerato-

malacia) कहते हैं। इस रोगसे अन्तमें अंधता उत्पन्न हो जाती है। इस रोगका वास्तविक कारण यही है कि आहारमें विटैमिन ए की कमी रहती है। चीनी पड़ा, वसा-रहित दुग्ध-चूर्ण इस दृष्टिकोणसे और भी दोषपूर्ण है। यदि केवल ऐसे ही दूधको पिलाकर बच्चा पाला जाय तो अन्तिम परिणाम और भी भयंकर होगा। परन्तु यदि वसा-रहित, चीनी-रहित, दुग्ध-चूर्ण या इवैपोरेटेड मिल्कसे प्रस्तुत दूधके साथ-साथ बच्चेको कॉड लिवर ऑयल भी दिया जाय तो कोई चिंताकी बात नहीं है। ऐसे शहरोंमें जहाँ वसा-रहित दुग्ध-चूर्ण गाय या बकरीके दूधसे सस्ता पड़ता है अत्यन्त निर्धनोंके लिए वह उपयोगी सिद्ध हो सकता है, क्योंकि वहाँ बहुधा दोमें से एक ही मार्ग रहता है—या तो डिब्बाबंद दुग्ध-चूर्ण दो या किसी प्रकारका दूध न दो। परन्तु ऐसे निर्धनोंको भी कोई-न-कोई ऐसी वस्तु बच्चेको देनी चाहिये जिससे उसे विटैमिन ए प्राप्त हो सके।

बच्चोंके लिये विशेष आहार—माल्टेड मिल्क अर्थात् माल्ट पड़ा दूध विशेष परिस्थितियोंमें उपयोगी सिद्ध हो सकता है, परन्तु ऐसा दूध डाक्टरकी ही रायसे देना चाहिये। जौ या अन्य अनाजको पानीमें इतने समय तक भिगाये रख कर कि उसमें अंकुर निकल आये और फिर भट्ठीमें सुखा कर माल्ट तैयार किया जाता है। ऐसा अनाज साधारण अनाजसे जल्द पचता है। परन्तु माल्ट पड़े दूध पर ही बच्चेको पालनेकी चेष्टा करना अनुचित है। इससे बच्चेका स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि अपनी पौष्टिक-शक्तिके हिसाबसे इन विशेष आहारोंका दाम बहुत अधिक होता है।

बिना माल्टमें परिवर्तित किया ही अनाज पड़ा दुग्ध-चूर्ण भी बिकता है। ६ महीनेसे छोटे बच्चेको ऐसा दूध एकदम न देना चाहिये, क्योंकि उनके पेटमें बिना माल्ट किया अनाज पच नहीं सकता।

कुछ ऐसे विशेष आहार भी बिकते हैं जिनमें दुग्ध-चूर्ण रहता ही नहीं। केवल अनाज रहता है। ऐसे आहारसे बच्चे नहीं पाले जा सकते। इन आहारोंमें जो कुछ भी पौष्टिक अवयव रहता है वही गेहूँ और चावलमें भी रहता है, परन्तु मूल्यमें आकाश पातालका अन्तर रहता है।

[आहार पर यह समूचा लेख डाक्टर डब्ल्यू० आर० ऐकरॉयड, एम० डी०, डाइरेक्टर, न्यूट्रिशन रिसर्च लैबोरेटरीज़, कोनूर की लिखी पुस्तिका "दि न्यूट्रिटिव वैल्यू ऑफ़ इंडियन फ़ुड्स ऐंड दि प्लैनिंग ऑफ़ सैटिज़फ़ैक्टरी डायट" के आधार पर लिखा गया है। ऊपर कनडेस्सड मिल्क, माल्टेड मिल्क आदि पर जो सम्मतियाँ लिखी गई हैं वे भी डाक्टर ऐकरॉयडकी ही हैं। इसलिये कोई यह न समझे कि किसी स्वदेशी-प्रेमी ने बिना वैज्ञानिक आधारके ही, केवल अपनी धुनके नशेमें, गायके दूधकी प्रशंसा लिख डाली है। बहुतसे पढ़े-लिखे लोग—सम्भवतः बहुत-से ऐसे डाक्टर भी जो आधुनिक खोजों (रिसर्च आदि) पर निकलने वाली पत्रिकाएँ नहीं पढ़ पाते—पेटेंट दुग्ध आदि को विशेष रूपसे बहुत अच्छा समझते हैं; परन्तु असल बात मुझे यह जान पड़ती है कि ये सब लोग विज्ञापन-बाज़ोंके चंगुलमें फँस जाते हैं। प्रोपैगैंडाका बड़ा भारी प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाचार-पत्र और पत्रिकामें सुन्दर, हृष्ट-पुष्ट, हँसमुख बालकको देख कर और वर्षों तक बार-बार यह पढ़ते रहने पर कि अमुक दुग्धसे बच्चे ऐसे तगड़े होते हैं, व्यक्ति भूल-सा जाता है कि सम्भवतः यह कोरा विज्ञापनबाज़ी ही है। कम-से-कम वह इतना अवश्य भूल जाता है कि यदि एक बच्चा उस दुग्धसे इतना स्वस्थ होता है तो सौ बच्चे माता या गायके दूध पर ही पल कर उतने ही या उससे अधिक तगड़े होते हैं। कुछ अधिक मूल्यका भी आकर्षण रहता है। साधारण दूध सभी बच्चे पीते हैं। मेरा बच्चा इससे मँहगा (और इसलिये अच्छा) दूध पीयेगा, कुछ ऐसी भावना मनमें कहीं छिपी पड़ी रहती है। परन्तु ऊपर दी गई उच्चतम वैज्ञानिक सम्मतिको पढ़नेके बाद पाठक, ऐसी आशा की जाती है, बहुत सोच-समझ कर कृत्रिम दुग्धोंको अपनायेगा।—गोरख प्रसाद]

दूध छुड़ाना—लीग ऑफ़ नेशन्स ने एक बार विशेषज्ञोंकी एक कमेटी बनाई थी, जिसने इस प्रश्न पर कि बच्चोंका दूध कब छुड़ाना चाहिये (अर्थात् माताका दूध पिलाना कब बन्द करना चाहिये) निम्न शिफारिश की थी:—

"माताका दूध पिलाना बाहरके दूध पिलानेसे सदा ही अधिक अच्छा होता है और छः महीने तक बच्चेको यह अवश्य मिलना चाहिये, चाहे माताको दूध कम होता हो चाहे अधिक।

सरल विज्ञान

पृथ्वी की उत्पत्ति

गणित, ज्योतिष, भूगर्भविद्या आदिके आधारपर वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि पृथ्वी आज २,००,००,००,००० (२ अरब) वर्षोंसे सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा कर रही है। सम्भव है कि पृथ्वीकी आयु इससे कहीं अधिक हो, परन्तु इतना निश्चय है कि इसकी आयु इस कालसे कम नहीं है।

परन्तु अधिक सम्भव है कि प्रारम्भमें पृथ्वी तथा मंगल, बृहस्पति आदि ग्रह और सूर्य एक ही में, और विस्तृत तथा अत्यन्त तप्त गैसके रूपमें रहे हों। प्रायः असंख्य वर्षों तक यह गैस सिमटती गई होगी और इस प्रकार अधिकाधिक घनी होती गई होगी। साथ ही, नाचनेका वेग बढ़ता गया होगा। एक समय तब ऐसा आया होगा जब पृथ्वी और ग्रह छटक कर अलग हो गये होंगे, ठीक उसी प्रकार जैसे भीगे तौलियेको नचानेसे पानीकी बूँदें छटक कर अलग हो जाती हैं। पृथ्वी उस समय ऐसी तप्त रही होगी कि इसके पत्थर भी पिघली दशामें रहे होंगे। ग्रहोंके छटक जानेके बाद बीचमें सूर्य बचा रह गया होगा। अधिक बड़े होनेके कारण सूर्य ठंडा नहीं हो पाया, परन्तु पृथ्वी और ग्रह धीरे-धीरे ठंडे हो गये। सूर्यसे पृथक होनेके बादसे आजतकका काल ही ऊपर दो अरब वर्षके बराबर आँका गया है।

यदि हम कल्पना द्वारा पृथ्वीकी प्रारम्भिक अवस्थाको देखें तो हमें लोहा बनानेकी भट्ठी अथवा ज्वालामुखी पहाड़के भीतरकी-सी दशा दिखलाई पड़ेगी। जल तो कहीं दिखलाई ही न पड़ेगा—धातुएँ सब वाष्पके रूपमें रहेंगी, पानीका क्या कहना! इस वाष्पके नीचे हमें खौलते हुये पिघले प्रस्तरोंका समुद्र दिखलाई पड़ेगा।

युग पर युग बीतते गये होंगे और पृथ्वीकी गरमी धीरे-धीरे मिटती गई होगी। वायु मण्डलसे धातुएँ तरल रूप हो और बूँदोंमें गिर कर पृथ्वी-तल पर आ गई होंगी और फिर वे कुछ लाख वर्षोंमें थोड़ा-बहुत जम भी गई होंगी। तब पृथ्वीकी तरल तह पर पपड़ी जमने लगी होगी। पीछे इस तरल धातु-प्रस्तर-सागरमें कहीं-कहीं जम कर ठोस हो गये ढोंके भी तैरने लगे होंगे।

अत्यन्त मन्द गतिसे, लाखों-करोड़ों वर्षोंमें, ठंढी होते-होते पृथ्वी उस रूपकी ओर अग्रसर हुई होगी जिस रूपमें उसे हम आज देखते हैं। एक दिन ऐसा भी आया होगा जब जल-वाष्प वायुमण्डलमें ठंडा हो और जल रूपमें परिणत होकर वर्षाकी तरह गिरा होगा और तप्त पृथ्वी-तल पर छन-छन करके तुरन्त फिर वाष्प हो गया होगा। लाखों वर्षोंके बाद वह दिन भी आया होगा जब पृथ्वी पर नदियोंकी तप्त धारायें बह-बह कर नीची जगहोंमें एकत्रित होने लगी होंगी। इस प्रकार हमारे महासागरोंकी उत्पत्ति हुई होगी।

अन्तमें वनस्पति और प्राणियोंके जीवित रहने योग्य वातावरण हो गया होगा। यदि उस समय मनुष्य पृथ्वी पर दृष्टि डालता तो बीहड़ पहाड़ और प्रचण्ड आँधी-पानी के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु न दिखलाई पड़ती। तृण और जीवित वस्तुका कहीं चिह्न मात्र भी दिखलाई न पड़ता। उस समय रात्रिकी वायु हमारी लूको भी मात करती रही होगी। जल ऐसा मूसलाधार बरसता रहा होगा कि आजकलकी प्रचण्ड वर्षा भी उसके आगे खेल-सा जान पड़ता।

ज्यों-ज्यों पृथ्वीकी आयु बढ़ती गई दिन लम्बे होने लगे। सूर्य और भी दूर होने लगा और चन्द्रमाकी गति भी
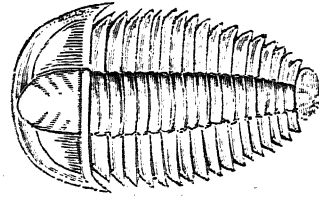
चित्र १—एक ट्रिलोबाइट।
ये जानवर प्राचीनतम समुद्री प्राणियोंमें थे और इनका अवशेष प्राचीनतम पत्थरोंमें मिलता है।

मन्द पड़ने लगी। बारिश और तूफानोंकी तेज़ी भी घटने लगी। उस समय समुद्रका जल पृथ्वीको प्रायः ढके हुये था।

जीवोंका आगमन—पृथ्वीतल बहुतसे स्थानोंमें परत-रूपी है। एक-पर-एक परत बिछा हुआ* है। निस्सन्देह

प्रारम्भिक मूसलाधार वर्षाओंसे धरातल कट-कट कर नीचे स्थानोंमें बह गई होगी और वहाँ परत-पर-परत जमता गया होगा। आधुनिक वैज्ञानिक इन परतोंमें पाये गये जानवरोंकी हड्डियों या उनकी छापोंसे अत्यन्त प्राचीन कालके विषयमें अनेक बातोंका बहुत पक्का पता पा गये हैं। इस प्रकार आजसे लगभग १,६०,००,००,००० वर्ष पहले तकका इतिहास मोटे रूपसे हमें ज्ञात हो गया है। इस लगभग डेढ़ अरब वर्षोंके कालमें आधे समय तकमें प्रस्तरोंमें किसी भी प्राणीके चिह्न नहीं मिलते। सम्भवतः उस समय पृथ्वी इतनी तप्त थी कि कोई जीव पृथ्वी पर रह ही नहीं सकता था।

इसके बादके जमे परतोंमें सरल जीवोंके अवशेष मिलते हैं जैसे समुद्री कीड़े और शेलफ़िश। समुद्री शैवाल (सेवार या घास) भी मिलता है। दस-बीस लाख वर्षके बादके परतोंमें 'समुद्री बिच्छू' के अवशेष मिलते हैं।

ये सब जानवर छोटे थे। सबसे बड़ा जीव समुद्री बिच्छू था जो लगभग एक हाथका था। इस कालमें पृथ्वी पर विचरने वाले जानवरोंका चिह्न नहीं मिलता। अभी समुद्रमें मछलियाँ भी नहीं थीं। पृथ्वी पर होने वाले वृक्ष और पौधे भी नहीं थे। केवल जलमें होने वाले ही जीव और वनस्पतियाँ थीं। परन्तु इन परतोंमें केवल उन्हीं जानवरोंके चिह्न मिल सकते हैं जिनमें हड्डियाँ या उनके-

चित्र २—उरगयुगका एक भीमकाय घड़ियाल।
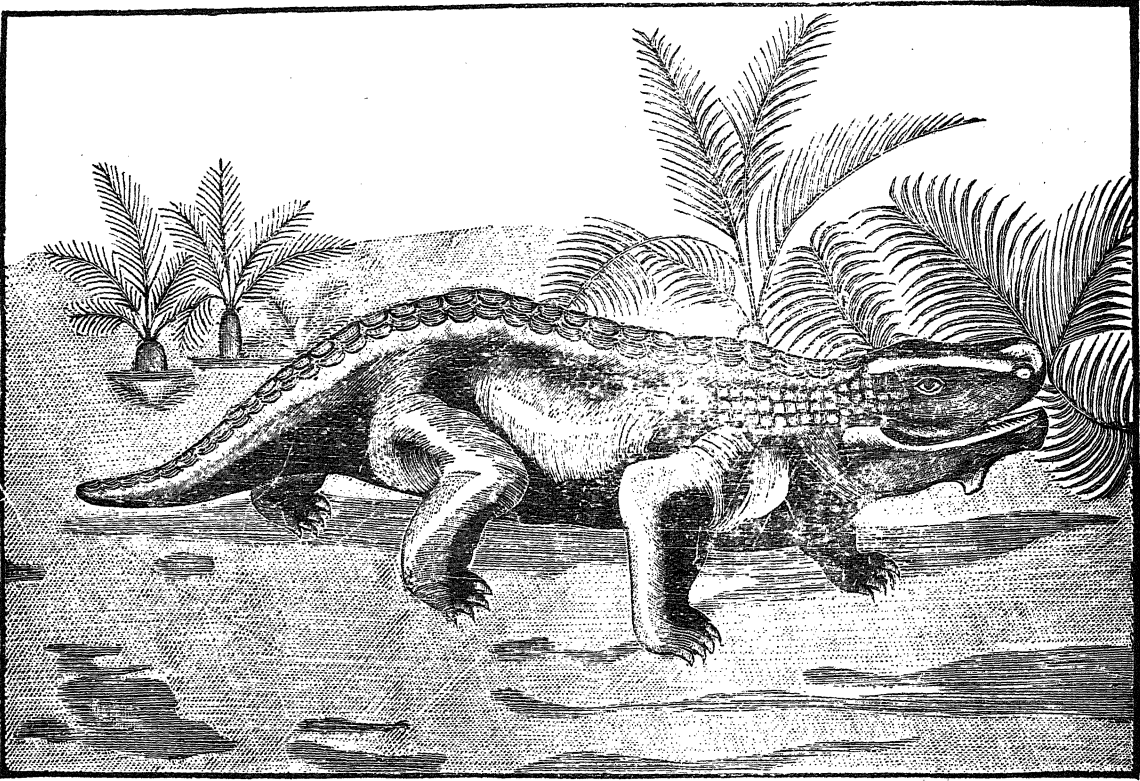
पृथ्वी पर विचर सकने वाले जानवरोंमें से यह सबसे प्राचीन था। इसमें विचित्रता यह थी कि यह पानीके भीतर मछलियों की तरह गलफड़ोंसे साँस ले सकता था और पानीके बाहर अपने फेफड़ोंसे साँस ले सकता था। इस प्रकार यह पानीके बाहर जीवित रह सकता था। अब ऐसे जानवर पूर्णतया लुप्त हो गये हैं।

से कड़े भाग रहे हों। शरीरके अन्य अंग सड़-गल जाते हैं। इसलिये यह सम्भव है कि उस समयमें कोमल शरीर वाले अन्य बहुतसे प्राणी रहे हों।

मत्स्य काल—परतोंमें दबे जीवोंके अवशेषसे स्पष्ट पता चलता है कि प्राणियोंका विकास निम्न श्रेणियोंसे हुआ है। जैसे-जैसे वातावरण बदलता गया तैसे-तैसे प्राणियोंमें परिवर्तन होता गया और नये-नये प्राणी उत्पन्न होते गये। प्रत्येक प्राणीका बच्चा बहुत कुछ अपने पिताके समान होता है, परन्तु कुछ सूक्ष्म ब्योरेमें अपने पितासे भिन्न होता है। वनस्पतियोंमें भी यही बात लागू है। हज़ारों-लाखों या करोड़ों वर्षोंमें ऐसा ही सूक्ष्म अंतर बार-बार पड़ते रहने पर अन्तिम प्राणी अपने प्रथम पूर्वजसे अत्यन्त भिन्न हो सकता है। इन परिवर्तनोंमें वातावरणका भी पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। नवीन प्राणी सदा ही नवीन परिस्थितियोंके अधिक अनुकूल रहता है। वे प्राणी जिनके लिये नवीन परिस्थितियाँ प्रतिकूल होती हैं शीघ्र मर जाते हैं और इतने बच्चे नहीं छोड़ जाते जितने वे जिनके लिये नवीन परिस्थितियाँ अनुकूल होती हैं। इस प्रकार छँटते रहनेसे भी प्राणियोंमें बराबर अन्तर पड़ता रहता है।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि पहले समुद्री बिच्छुओं के अतिरिक्त अन्य जीवोंके चिह्न नहीं मिलते, परन्तु उसके बादके परतोंमें, जो सम्भवतः आजसे लगभग ५०,००,००-००० वर्ष पहलेके होंगे, मछलियोंके अवशेष प्रथम बार मिलते हैं। इसके बादके परतोंमें बहुत बड़ी-बड़ी मछलियों की हड्डियाँ मिलती हैं। ये मछलियाँ आजके व्हेल आदिके

चित्र ३—अंगारप्रद युगका जङ्गल।

अंगारप्रद युगमें वृक्षोंका बाहुल्य था (अंगार = कोयला)। आगे चल कर ये जंगल पृथ्वीमें दब गये और पत्थरका कोयला बन गये।

सामने बहुत छोटी थीं। अधिकांश तो डेढ़-दो हाथसे बड़ी नहीं थीं, परन्तु कुछ बीस फुटकी थीं।

कोयलेका ज़माना (अंगारप्रद युग)—मत्स्यकाल (मछलियोंके ज़माने) में पृथ्वी पर वनस्पति नहीं थी। जो कुछ भी था वह समुद्र और जलाशयोंके किनारे था। उस समय पृथ्वी पर विचरने वाले जानवर भी नहीं थे, परन्तु मत्स्य कालके बाद पृथ्वी पर धीरे-धीरे पौधे उगने लगे और कीड़े-मकोड़े होने लगे। कुछ कीड़े बहुत बड़े भी होते थे; परन्तु इस समयके अधिकांश जानवर उसी जाति
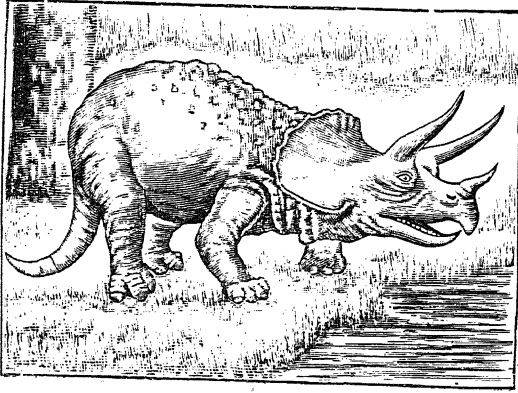
चित्र ४—प्राचीन युगका एक विचित्र जीव। इसे डाइनोसॉर (dinosaur) अर्थात् भीम-सरट (भीम = डरावना, सरट = छिपकली) कहते हैं। यह बृहतकाय, मूर्ख और मंदगामी जानवर लगभग एक हज़ार मन का होता था, और विशुद्ध निरामिषभोजी था। एक समय पृथ्वी पर इन्हीं सभोंका राज्य था।

के थे जिसे स्थलजलचर कहते हैं, अर्थात् जो जलमें और पृथ्वी पर दोनों जगह रह सकते हैं (जैसे मेढक)। ये जीव जलके भीतर अंडे देते और अपने जीवनके पहिले भागका अधिक समय पानीहीमें बिताते थे। वे पानीमें तैर सकते थे और उसके भीतर गलफड़ोंसे साँस लेते थे। पानीके बाहर आने पर या पानीके सूख जाने पर वे अपने फेफड़ों द्वारा साँस लेते थे। मुद्दतों तक ऐसे प्राणी रहे जो आवश्यकतानुसार अपने फेफड़ों और गलफड़ों दोनोंसे काम लेते थे।

इस कालमें वृक्ष आदि खूब थे जो साधारणतः जलाशयोंके किनारे होते थे। इन्हींके दब जानेसे लकड़ी अन्तमें पत्थरके कोयलेमें परिवर्तित हो गई।

उरग-काल—पृथ्वीका वातावरण सर्वदा एक रूपका नहीं रहा है। हज़ारों वर्षोंके ऐसे युग भी आये जब वर्षा पर्याप्त नहीं होती थी, या भयानक सर्दी पड़ती थी। वनस्पतियों और प्राणियोंका विकास इन परिवर्तन-कालोंमें विशेष वेगसे हुआ। उस समय ऐसे नवीन पौधे और वृक्ष विकसित हुये जो जलसे दूर भी उग सकते थे। ऐसे प्राणी विकसित हुये जिनका जीवन आरम्भसे ही जलके बाहर व्यतीत होता था। ये पृथ्वी पर रेंगने वाले अर्थात् उरग

चित्र ५—वज्रसरट।
डॉइनोसॉरसे कई बातोंमें मिलता-जुलता यह जानवर तौलमें लगभग ५०० मन और लम्बाईमें कोई ४० हाथका होता था। इसे ब्रॉण्टोसॉर (brontosaur) अर्थात् वज्रसरट कहते हैं। यह अमरीकामें होता था और जलके पौधोंको खाकर रहता था।

थे। उस कालमें बड़े-बड़े कछुये, घड़ियाल, सरट (बृहत्-काय छिपकलियाँ) और साँप थे। इनके अतिरिक्त एक ऐसा भी जानवर था जिसका अब लोप हो गया है। यह था डाइनोसॉर जो हाथीसे भी बड़ा—लगभग व्हेलके बराबर और छिपकलियोंसे मिलते-जुलते आकारका होता था। मुँहसे पूँछ तक इसकी लम्बाई १०० फुट तक होती थी।

इन्हीं उरगोंमेंसे कुछ ऐसे भी थे जिनको प्रारम्भिक पंख भी था। ये एक वृक्षसे दूसरे पर कूद सकते थे। धीरे-धीरे विकसित होकर पक्षी इन्हींसे उत्पन्न हुये। उधर

समुद्रमें भी नवीन-नवीन रूपके प्राणी उत्पन्न हुये, जिनमें-से व्हेल आदि आज भी वर्तमान हैं।

पक्षी और स्तनपोषी प्राणी—उरग-काल—ऐसा अब अनुमान किया जाता है—कोई ८,००,००,००० वर्ष तक रहा। उरग अंडे देकर उसे छोड़ देते हैं; उसे सेते नहीं। परन्तु जैसे-जैसे प्राणियोंकी संख्या बढ़ी और गरमी कम हुई वैसे-वैसे परिस्थिति पक्षियों और स्तनपोषी जानवरोंके लिये अधिक अनुकूल हुई (स्तनपोषी जानवर वे होते हैं जो बचपनमें अपनी माँका दूध पीकर जीते हैं)। पक्षियोंका पर ठंडसे उनकी रक्षा करता है। पक्षी अंडे पर बैठ कर उसे गरम रखते हैं। स्तनपोषी प्राणी अपने बच्चोंकी इससे भी अधिक सेवा करते हैं। इसलिये नवीन युगमें उरगोंकी संख्या कम होने लगी और पक्षी तथा स्तनपोषियोंकी संख्या बढ़ने लगी।

चित्र ६—पाँच करोड़ वर्ष पूर्वके दो जानवर। ये पशु अब लुप्त हो चुके हैं। चित्रमें बने मनुष्यसे तुलना करने पर इनके भीम आकारका अनुमान किया जा सकता है। बड़े जानवरका वैज्ञानिक नाम है बलूची-थेरियम और यह स्थल पर प्राणियोंमें सबसे बड़ा था। यह एशियामें रहता था। छोटा, दो सींगों वाला जानवर अफ़रीका और कुछ अन्य देशोंमें रहता था।

पृथ्वीके परतोंमें दबे अवशेष इस युगके बादके कुछ लाख वर्षोंके इतिहासके बारेमें चुप हैं। सम्भवतः इस कालमें सर्दी उत्तरोत्तर बढ़ती गई और उरगोंका ह्रास होता गया। इसके बाद स्तनपोषियोंका प्राधान्य था। आजसे कोई ४,००,००,००० वर्ष पहले बन्दर पहले-पहल उत्पन्न हुये। इस समय जल-वायु पहलेसे कम ठंडा था। परन्तु एक बार फिर जल-वायुमें परिवर्तन हुआ और बड़ी ठंड पड़ने लगी। जानवरोंकी बहुत-सी प्राचीन जातियाँ लुप्त हो गईं। झबरे, रोयेंदार जातियाँ उत्पन्न हो आईं। झबरा बाघ, झबरा गैंडा, झबरा हाथी, झबरे हरिन ये ही अधिक संख्यामें थे। इसी कालमें प्रारम्भिक मनुष्य उत्पन्न हुआ। वनमानुषोंकी उत्पत्ति इससे पहले हो चुकी थी।

मनुष्योंके अवशेष १,००,००० वर्ष पहलेके परतोंमें मिलते हैं। वहाँ पत्थरके गढ़े यन्त्र मिलते हैं जिससे प्राथमिक मनुष्य अन्य जानवरोंका शिकार किया करता था। परन्तु वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि उस ज़मानेमें मनुष्योंके शरीर पर बन्दर-भालूकी तरह घने बाल रहते रहे होंगे और आधुनिक मनुष्यसे उस समयका मनुष्य अधिक बड़ा और अधिक बलवान होता रहा होगा। आजसे ३०,००० वर्ष पहलेकी एक गुफ़ामें मनुष्यके हाथके बने

चित्र ७—प्राचीन मनुष्य। विश्वास किया जाता है कि प्राचीन मनुष्य बंदरोंसे मिलता-जुलता था, क्योंकि प्राचीन मनुष्यकी जो खोपड़ी मिलती है वह बंदरों की-सी है। इस चित्रमें दिखलाये मनुष्यकी खोपड़ी जावामें सन् १८९१ के लगभग मिली थी। उस खोपड़ीके आधार पर प्राचीन मनुष्यकी आकृतिकी कल्पना कर ली गयी है।

यन्त्र और चित्र मिले हैं। तबसे आज तक मनुष्य बराबर अधिकाधिक सभ्य होता रहा है। आरम्भमें मनुष्य अपना आहार आखेटसे प्राप्त करता था। धीरे-धीरे उसने खेती-बारी और पालतू पशुओंका रखना सीखा। आजसे कोई १५००० वर्ष पहले खेती होती थी यह ज्ञात है। सात-आठ हज़ार वर्षके लोगोंके इतिहासकी रूपरेखा मोटे हिसाबसे लिखी जा सकती है। इतिहासज्ञोंका अनुमान है कि हमारे वेदकी ऋचायें ५००० वर्षके पहले ही बन चुकी रही होंगी।

× × ×

इस लेखमें कई चित्र उन प्राचीन जानवरोंके दिये गये हैं जिनका अब लोप हो गया है। ये जानवर अत्यन्त भीमकाय थे, जैसा एक चित्रमें दिये गये मनुष्यके आकारसे तुलना करने पर पता चलता है। भीमसरट और वज्रसरट तो इससे भी बड़े थे। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि प्राणियोंका विकास होते-होते अंतमें मनुष्य उत्पन्न हुआ।
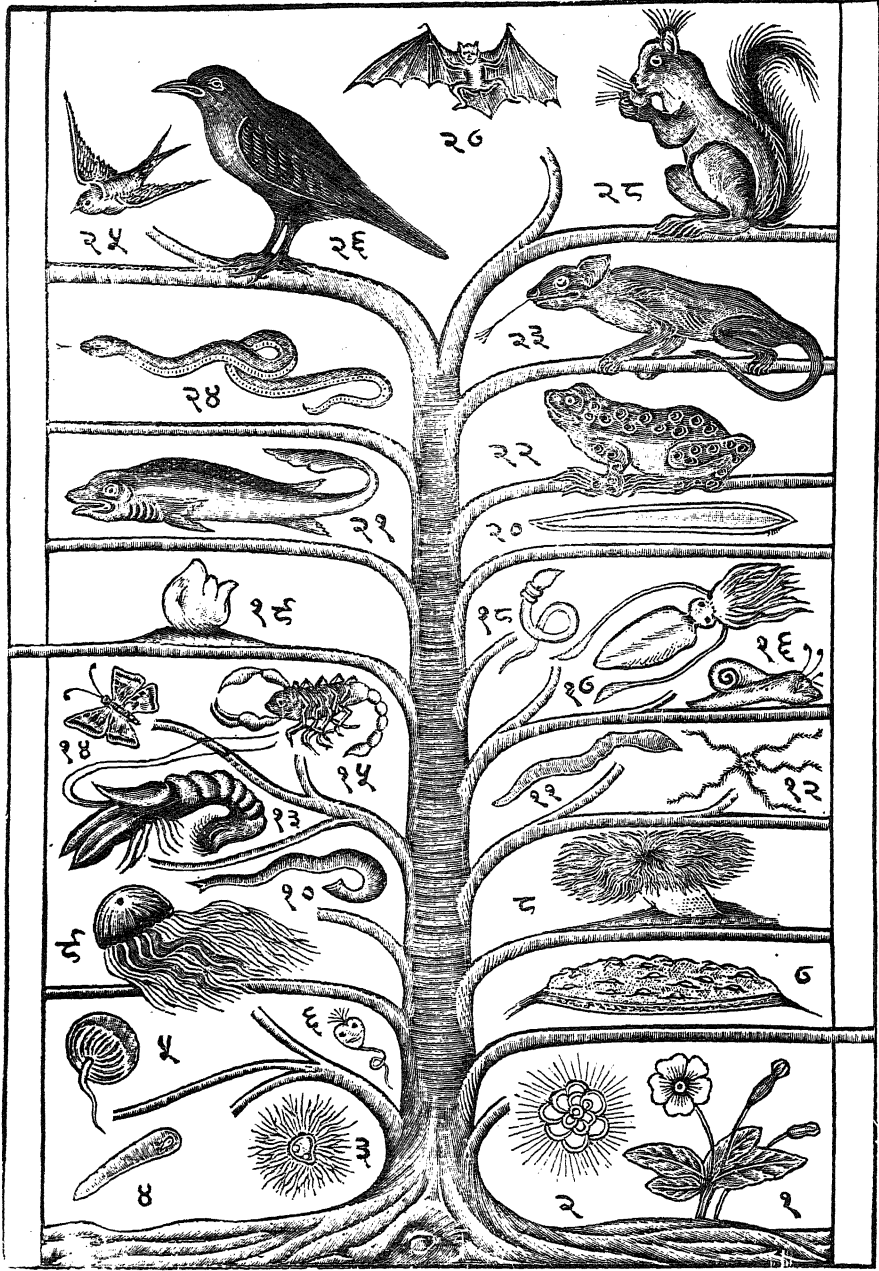
चित्र ७—प्राणियोंका विकास
विकास-क्रम अंकोंसे सूचित किया गया है।

ब्रिटिश जरनल फ़ोटोग्राफ़िक अलमनकमें प्रति वर्ष एक वर्षके नवीन खोजोंका सार दिया रहता है। १९४२ के अलमनकमें भी यही किया गया है, यद्यपि महासमरके कारण यह सार साधारणसे बहुत संक्षिप्त रूपमें है। इस सारसे भारतीय पाठकोंके विशेष महत्वकी दो-चार बातें नीचे दी जाती हैं। आशा है फ़ोटोग्राफ़ीप्रेमियोंको ये टिप्पणियाँ रुचिकर होंगी।

छापोंसे हाइपो दूर करना

क्रैबर्ट्री, ईटन और म्यूलर महोदयों ने बड़ी जाँच-पड़तालके बाद निम्न हाइपो-मारककी शिफारिस की है। साधारण हाइपो-मारकोंसे हाइपो थायानेटोंके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, जो हाइपोकी ही तरह कठिनाईसे दूर होते हैं और अन्तमें उनसे भी फोटो बदरंग हो जाता है। नवीन हाइपो-मारकमें दो उड़नशील रासायनिक पदार्थ हैं—हाइड्रोजन पेरॉक्साइड और अमोनिया। यह हाइपो-मारक हाइपोको बदल कर उसका सोडियम सलफ़ेट बना देता है, जो अक्रियाशील है। यदि उसका कुछ अंश नेगेटिवमें रह भी जायगा तो कोई हानि नहीं होगी। मारक का कोई अंश गीला जिलेटिनमें रह जायगा तो नेगेटिवके सूखने पर वह उड़ जायगा।

यदि काफ़ी पानीसे और काफ़ी समय तक उचित रीतिसे नेगेटिव, छाप, आदि को धोया जाय तो बिना हाइपो-मारकके प्रयोगके ही सारा हाइपो निकल जाता है, परन्तु जब समयकी कमी रहती है तो कुछ विशेष उपाय करना पड़ता है। यदि १० मिनट तक साधारण रीतिसे धोनेके बाद छापों या नेगेटिवोंको निम्न घोलमें तीन मिनट तक रक्खा जाय और फिर उनको तीन मिनट तक स्वच्छ जलसे धोया जाय तो शेष हाइपो जल्द निकल जाता है।

लिकर अमोनिया	१ भाग
पानी	१०० भाग

वस्तुतः यह हाइपो-मारक नहीं है। केवल इससे हाइपो शीघ्र निकल जाता है, परन्तु ध्यान रखना चाहिए कि अमोनियासे जिलेटिन नरम हो जाती है और गरमीके दिनोंमें इसका प्रयोग न करना चाहिए। गरमीमें यों ही जिलेटिन इतनी नरम हुई रहती है कि १०-१५ मिनट तक अच्छी तरह धोना पर्याप्त होता है।

नवीन हाइपो-मारकका नुसखा यों है :—

पानी लगभग	१६ आउंस
हाइड्रोजन पेरॉक्साइड (३% घोल)	४ आउंस
अमोनिया (३% घोल)	३$\frac{१}{३}$ आउंस
पानी इतना कि कुल हो जाय	३२ आउंस

ऊपर ३% अमोनियाकी बात की गयी है। इसे तैयार करनेके लिए शुद्ध लिकर अमोनिया लेकर उसका नौ गुना पानी मिलाना चाहिए।

इस हाइपो-मारकसे नेगेटिव धोये जा सकते हैं। छापोंके लिये इसमें ६ गुना पानी मिला लेना चाहिए नहीं तो छापों पर फफोले पड़ जा सकते हैं। पहले छापोंको कुछ समय तक अच्छी तरह धोकर हाइपो-मारक-घोलमें ६ मिनट तक रखना चाहिए और तब फिर १० मिनट तक धोना चाहिए। ये समय ७० डिगरी फ़ारनहाइट तापक्रमके लिए उचित हैं। पानी इतना ठंढा न हो तो समय और कम लगाना चाहिए। १ गैलन घोलमें लगभग पचास १० इंच × ८ इंच की छापें (या उसी अनुपातमें छोटी छापें) धोयी जा सकती हैं।

यदि हाइपो-मारकके उपयोगके बाद कोई छाप कुछ पीली पड़ जाय तो १ प्रतिशत ऐसेटिक ऐसिडके घोलमें २ मिनट तक रखनेसे रंग साफ़ हो जायगा।

नया रेड्यूसर

फ्रैंक सी० पामर ने लाइट्स कम्पनीके निम्न नुसखेको उत्तम बतलाया है। इस रेड्यूसरसे नेगेटिवोंका घनत्व

इतना कम हो जाता है कि जहाँ पहले एनलार्जरमें १०० सेकंडका प्रकाशदर्शन (एक्सपोज़र) लगता था वहाँ १ या २ सेकंड ही लगता है। परन्तु प्रकाशांतर भी कम हो जाता है। इसलिए रेड्यूस करनेके बाद काफ़ी कनट्रास्टी कागजों पर छापना या एनलार्ज करना पड़ेगा।

तीन घोल निम्न नुसखोंके अनुसार बनाओ—

१—पोटैसियम फ़ेरीसाइनाइड (लाल) ८८ ग्रेन
पोटैसियम बाइक्रोमेट (१ प्रतिशत घोल) १२॥ मिनिम
पानी २० आउंस

२—फ़ेरिक अमोनियम सलफेट (अर्थात् आयरन अमोनिया ऐलम) १८५ ग्रेन
पानी २० ग्रेन

३—ऑकज़ैलिक ऐसिड ४४० ग्रेन
पानी २० आउंस

प्रयोगके समय तीनों घोलोंके बराबर-बराबर भाग लेकर मिलाओ। सब काम मन्द प्रकाशमें या अँधेरी कोठरी के पीले प्रकाशमें करो। तीव्र प्रकाशसे रेड्यूसर बिगड़ जाता है। नेगेटिवको अच्छी तरह धोकर उस पर रेड्यूसर डालते हैं और नेगेटिवको बराबर हिलाते रहते हैं। १० मिनटमें काम पूरा हो जाता है। नेगेटिवका रङ्ग बदल जाता है। पूरी क्रिया होनेके पहले ही नेगेटिवको न निकालना चाहिये। यदि इस घोलमें नेगेटिव कुछ अधिक समय तक पड़ा भी रह जायगा तो कोई हानि नहीं होगी। नेगेटिवको अब ज़रा-सा धोकर ३ प्रतिशत सादे हाइपोके घोलमें पाँच मिनट तक रख दिया जाता है (ऐसिड हाइपोका प्रयोग नहीं करना चाहिये)। फिर नेगेटिवको अच्छी तरह धोकर उसे सुखा लिया जाता है।

चिपचिपा ईज़ल

एनलार्ज करते समय ईज़ल (तख़्ती) पर ब्रोमाइड काग़ज़को पिनसे जड़ने या कमानीसे जड़नेके बदले ऐसा भी किया जा सकता है कि ईज़ल पर कोई ऐसी चिपचिपी वस्तु पोत दी जाय जिस पर पारी-पारीसे कई बार ब्रोमाइड काग़ज़ चिपकाया जा सके, परन्तु जिसकी रासायनिक बनावट ऐसी हो कि काग़ज़ गन्दा न होने पाये, या उसका कोई असर अन्त तक न रह जाय, या डेवेलपर आदिके काममें कोई बाधा न पड़े। ऐसी चिपचिपी वस्तुका नुसखा यह है—

जिलेटिन	५५ भाग
गाढ़ा शीरा	५५ भाग
ग्लिसरिन	६५ भाग
क्रोम ऐलम	१ भाग
पानी	१००० भाग

करीब तीन-चौथाई पानी लेकर उसमें ग्लिसरिन और शीरा मिलाओ और उसमें जिलेटिनको कम-से-कम आधे घण्टे तक फूलने दो। फिर बरतनको गरम पानीमें रख कर १२० डिगरी (फ़ा०) तक गरम करो। इससे जिले-टिन पिघल जायगी। शेष जलमें क्रोम ऐलम घोलो। दोनोंको मिला लो। छिछिली तश्तरीके रूपमें बने ईज़ल पर गरमागरम ही उड़ेल दो। ठंडा होने पर जिलेटिन जम जायगी। लगभग चौबीस घण्टे तक पड़ा रहने दो। फिर इसी सतह पर ब्रोमाइड काग़ज़ आदि चिपकाये जा सकते हैं।

रंगीन फ़ोटो

अमरीकामें कोडक कंपनी ने अब ऐसा फ़िल्म (कोडा कलर) बेचना आरंभ किया है जिससे पहले उलटे रंगके नेगेटिव बनते हैं। इन्हें विशेष काग़ज़ पर छापनेसे काग़ज़ पर रंगीन फ़ोटो छपते हैं।

क्या मनुष्यके सारे अंग बराबर बढ़ते हैं ?

प्रोफेसर लैंडोइसके कथनानुसार मनुष्यका प्रत्येक अंग आयुके साथ-साथ नहीं बढ़ता रहता है। उनका कहना है कि सब अंगोंमें आदमीका दिमाग़ सबसे कम बढ़ता है। तीसरे सालके पश्चात् दिमाग़की बढ़न बहुत कम हो जाती है। यकृत और अँतड़ियाँ भी बहुत कम बढ़ती हैं किन्तु दिल, तिल्ली और वृक्क शरीरकी बढ़नके मुकाबले थोड़े ही कम बढ़ते हैं। वसा और मांसपेशियाँ शरीरसे भी अधिक बढ़ती हैं। डाक्टर गिलेस्पी का कहना है कि जब बच्चा पैदा होता है तो उस समय ही उसका दिमाग़ प्रौढ़ावस्थाके दिमाग़के चैाथाईके बराबर होता है।

चिचिंडा

मध्य अप्रैलसे मध्य जूलाई तक इसका बीज बोया जाता है। चार हज़ार फुटसे अधिक ऊँचाई पर यह नहीं होता। यह एक वार्षिक लता है और इसमें लम्बे-लम्बे, गोल काटके फल लगते हैं जो थोड़े-बहुत टेढ़े होते हैं और इसलिये साँपसे कुछ मिलते-जुलते होनेके कारण अँग्रेज़ीमें स्नेक-गूर्ड (Snake gourd) अर्थात् साँप वाली लौकी कहलाते हैं। फल १½ फुटसे लेकर ३ फुट लम्बा होता है। कुछ चिचिंडोंका रंग तो हल्का हरा होता है और इनमें सफ़ेद धारियाँ होती हैं, परन्तु कुछ चिचिंडोंका रंग गहरा हरा होता है और उन पर हल्के हरे रंगकी धारियाँ होती हैं।

बीजको किसी भी अच्छी ज़मीनमें छः-छः इंच पर पंक्तियोंमें बोना चाहिये। पंक्तियाँ पाँच-पाँच फुटकी दूरी पर हों। पौधेको चढ़नेके लिये लकड़ियाँ गाड़ देनी चाहिये; ठीक उसी प्रकार जैसे बरसाती खीरेके लिये किया जाता है। इस अभिप्रायसे कि फल कुछ समय तक मिलता रहे, कम-से-कम बीजको दो बार बोना चाहिये, एक अप्रैल या मईमें और दूसरी बरसातके आरम्भ में। पहली बोआईसे बरसातके शुरूके महीनोंमें फल मिलता रहता है और दूसरी बोआईसे जाड़ेके आरम्भ तक फल मिलता है।

लोबिया

लोबिया जूनके आरम्भसे जूलाईके अन्त तक बोया जा सकता है। यह एक वार्षिक लता है और इसकी फलीकी तरकारी सेमकी तरह बनती है। इसकी कई एक जातियाँ हैं। बगीचेमें बोई जाने वाली जातिका फल अधिक लम्बा और बड़ा होता है। खेतमें बोई जाने वाली जातिकी फली चार इंचसे लेकर छः इंच तक लम्बी होती है। परन्तु बगीचेमें बोई जाने वाली फली नौ इंचसे लेकर बारह इञ्च तक लम्बी और करीब ½ इञ्च चौड़ी होती है। इसके पौधेको किसी विशेष सेवाकी आवश्यकता नहीं है। किसी भी अच्छी ज़मीनमें चार-चार फुट पर पंक्तियां लगा कर बो देना चाहिये। पंक्तियोंमें बीज छः छः इञ्चकी दूरी पर लगाया जाता है। पौधेको फैलनेके लिये लकड़ियाँ गाड़ देनी चाहिये। जूनमें बोये गये बीजसे उत्पन्न पौधा मध्य बरसातसे फलने लगता है और मध्य जूलाईमें बोया गया पौधा मध्य अगस्तसे फलने लगता है।

भुट्टा (मकई)

भुट्टा साधारणतः मध्य अप्रैलसे मध्य जूलाई तक बोया जाता है। इसे खेतोंमें बहुत अधिक मात्रामें बोते हैं, परन्तु बगीचेमें भी बहुतसे लोग शौकके लिये इसे बोते हैं। इसकी कई जातियाँ हैं, जिनमेंसे वह जाति सबसे अच्छी है जिसका बीज अमेरिकासे आता है। परन्तु अक्सर इसमें भरपूर दाने नहीं पड़ते। केवल साल दो साल भारतवर्षमें बो लेनेके बाद उसमें अच्छे दानेसे भरी बालें लगती हैं।

भुट्टाके लिये खूब खाद पड़ी ज़मीन अच्छी होती है और इसे पानीकी खूब आवश्यकता रहती है। इसलिये यदि वर्षा पर्याप्त न हो तो सिंचाई अच्छी तरहसे करनी चाहिये। खेतोंमें इसे बरसातमें ही बोते हैं, परन्तु बगीचेमें सिंचाईके ज़ोरसे यह बरसातके बहुत पहले भी पैदा किया जा सकता है। यदि मध्य अप्रैलसे पन्द्रह-पन्द्रह दिन पर बोना आरम्भ किया जाय तो यह आरम्भ जुलाई तक बोया जा सकता है और इस प्रकार बहुत दिनों तक भुट्टा खानेको मिल सकता है। कहीं-कहीं यह जाड़ेमें भी उत्पन्न किया जा सकता है परन्तु जहाँ पर जाड़ेके दिनोंमें पाला पड़ता है वहाँ नहीं हो सकता। पाँच-पाँच फुट पर पंक्ति लगा कर प्रत्येक पंक्तिमें छः छः इञ्च पर बीज बोना चाहिये और पौधोंके उग आने पर फालतू पौधोंको उखाड़ कर फेंक देना चाहिये। केवल पाँच-पाँच फुट पर पौधा रह जाय। यदि कहीं पर पौधा न उगा हो तो वहाँ पर दूसरी जगहका
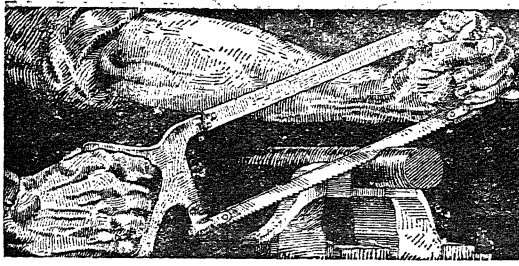
[शेष पृष्ठ ३८ पर]

साइकिल पर चढ़ा मसखरा बच्चों को प्यारा लगता है।

यह मसखरा एक पहियेकी साइकिलको तने तार पर चलाता है और घंटों बच्चोंको मोहे रहता है। इसका बनाना सरल है। इसे सिगारके बक्सकी लकड़ी, या सागवान या शीशमकी $\frac{3}{16}$ इञ्च मोटी लकड़ी, या प्लाइवुडका बनाया जा सकता है। लकड़ीको काटनेके लिये फ्रेट-सॉ चाहिये।

सब अवयव यहाँ चारखानों पर बनाये गये हैं। इनसे पूरे पैमाने पर चित्र बनाना बहुत सुगम हो जाता है। पहले काग़ज़ पर $\frac{1}{4}$ इञ्चके चारखाने बना लेना चाहिये और तब इन चारखानोंकी सहायतासे खिलौनेके सब अंगोंको पूरे पैमाने पर बना लेना चाहिये। पहियोंका व्यास ४ इञ्च रहे। लकड़ीके अवयवोंके अतिरिक्त थोड़ी-सी धातुकी चौकोर छड़की आवश्यकता पड़ेगी। यह किसी पुराने चालके छातेकी चौकोर तीलीसे मिल जायगी या रेडियो वालोंके वहाँसे चौकोर पीतलकी छड़ मोल ले ली जा सकती है, या गोल छड़को पीट कर चौकोर या कुछ चिपटा किया जा सकता है। यह छड़ पहियेके केन्द्रमें पेसा जाता है, और इसे चौकोर या चिपटा रखनेका कुल उद्देश्य यही है कि जब पहिया घूमे तब यह छड़ भी घूमे। पहियाके बाहर निकली छड़ यदि गोल हो तो अच्छा। यदि चौकोर छड़का उपयोग किया जाय तो केन्द्रके भागको छोड़ शेष भागको रेतीसे रगड़ कर यथासम्भव गोल कर देना अच्छा है; कम-से-कम कोर इतनी अवश्य रगड़ दी जाय कि यह घूमने पर लकड़ीको न काट सके। लगभग १ फुट लम्बा, कड़ा, लोहेका तार भी चाहिये। यह १८ या २० नम्बरका हो तो अच्छा। इन वस्तुओंके अतिरिक्त लगभग एक छटाँक तौलका कोई बोझ भी चाहिये जिसके भीतर एक छेद हो।

पहले पहियेको अच्छी लकड़ीसे काट कर उसकी बारी पर गराड़ी (गड्ढा) काट देनी चाहिये। इस गराड़ीके रहनेसे पहिया तार परसे फिसलता नहीं है। यदि खराद हो तो गराड़ी काटना बहुत सुगम होगा; परन्तु यदि खराद न हो तो आरीसे यह गराड़ी काटी जा सकती है। केवल इसी बात पर विशेष ध्यान रखना होगा कि गराड़ी सब जगह एक ही गहराईकी हो। गराड़ीके ऊँचे-नीचे स्थानोंको बराबर करनेकी सबसे अच्छी रीति यह है कि पहियेकी गराड़ीको आरी पर ही दौड़ाया जाय।

इसके बाद खिलौनेके अन्य अंगोंको फ्रेट-सॉसे काटना चाहिये और रंगमार (सैंडपेपर) से रगड़ कर उनको चिकना कर लेना चाहिये।

खिलौनेके अंगोंको जोड़नेके पहले ही उन्हें रंग लेनेमें सुविधा होती है। बाज़ारमें शीघ्र सूखने वाले जो नवीन ढंगके चटक लैकर आजकल मिलते हैं वे खिलौनोंको रँगनेके लिये बहुत अच्छे होते हैं। अपनी इच्छानुसार रंग चुना जा सकता है। उदाहरणतः, पहियेको चटक हरा; मसखरेके कपड़ेको लाल और उस परकी बिंदियोंको पीला; हाथ, गले और पैरके पासके झालरको चटक पीला (निबुआई), टोपको बैगनी; मुखको सफेद और होंठको गुलाबी; और छातेको हरा रँगना बहुत सुन्दर जान पड़ता है।

रंगके ख़ूब सूख जानेके बाद अवयवोंको निम्न क्रमसे एकत्रित करना चाहिये। शरीर ३ के बीच वाले भाग पर नम्बर २ वाले टुकड़ोंके चौकोर सिरोंको आध इञ्चकी कीलोंसे जड़ो, परन्तु इसके पहिले शरीर ३ के अगल-बगल दफ़्ती लगा लो जिसमें नम्बर २ वाले टुकड़ोंके बीच शरीरकी मोटाईसे कुछ अधिक ही जगह छूटी रहे और इसलिये उनके बीच पहियेके घूमनेमें कोई रुकावट न हो। इनको जड़ते समय ध्यान रक्खो कि इनके छेद (जिसमें पहियेकी धुरी बैठेगी) ठीक एक ही सीधमें रहें। फिर शरीर ३ पर हाथ (नम्बर ६) स्थाई रूपसे जड़ दिये जाते हैं। उनकी स्थितियोंका पता समूचे खिलौनेके चित्रसे चल जायगा।

अब नम्बर २ वाले टुकड़ोंसे बने चिमटेके बीच पहिये-को इस प्रकार रखना चाहिये कि तीनों छेद एक सीधमें आ जायँ। फिर इनमें चौकोर छड़ पहना देनी चाहिये। पहियेका छेद छोटा रहे, जिसमें जब पहिया घूमे तो छड़ भी घूमे परन्तु बगल वाली नम्बर २ की लकड़ियोंके छेदमें यह ढीला हो—बस केवल इतना ढीला कि उसमें

आसानीसे धुरी घूम सके। पहियेके छेदमें सरेस लगा कर उसमें धुरी ठोंकना अधिक अच्छा होगा। तारके बाहर निकले प्रत्येक भागको दो बार समकोण पर मोड़ कर क्रैंक का रूप दे देना चाहिये।

इसके बाद जाँघोंकी पारी है। पहले शरीर ३ के नीचे वाले छेदमें मोटा तार कस कर ठोंक देना चाहिये। फिर बढ़े हुये भागों पर पीतल या ताँबेकी पतली नली पहनानी चाहिये। नलीके ये टुकड़े इतने बड़े रहें कि जाँघ शरीरसे छूटे रहें और शरीरमें जड़े नम्बर २ वाली बगली लकड़ियोंसे रगड़ न खायँ। यदि धातुकी नली न मिले तो लकड़ीके वाशरों (छेद वाले गोल टुकड़ों) से काम चल सकता है।

जाँघोंके नीचे टाँगोंको इस प्रकार एक-एक कीलसे जड़ दिया जाता है कि वे इन कीलोंके बल सुगमतासे मुड़ सकें। जोड़ अधिक कसा न रहे, नहीं तो पैरके मुड़नेमें रुकावट उत्पन्न होगी। टाँगोंके नीचे वाले छेदमें क्रैंकके सिरे पहना दिये जाते हैं। केवल एक बात पर विशेष ध्यान रखना चाहिये, क्रैंक इतने लम्बे न हों कि टाँगें पूरी तन जायँ और इस प्रकार पहिया घूम न सके।

बोझ लटकानेके लिये कड़ा तार बगली (नम्बर २ वाली) लकड़ियोंमें से एकके नीचे वाले सिरेमें बारीक छेद करके पेस दिया जाता है और इस तारके नीचे वाले छोर पर बोझ बाँध दिया जाता है। इस बोझके रहनेसे मसखरा लुढ़कने नहीं पाता है। अब पतले तार या तागेको बेंड़ी स्थितिमें तान दो और पहियेकी गराड़ी इस पर रक्खो। बोझ वाले कड़े तारको सावधानीसे कुछ मोड़ कर ऐसा उपाय करो कि मसखरा सीधा खड़ा रहे। यदि मसखरा लुढ़क जाता है और बेंड़े तने तागे पर खड़ा नहीं रह सकता

[शेष पृष्ठ ३८ पर]
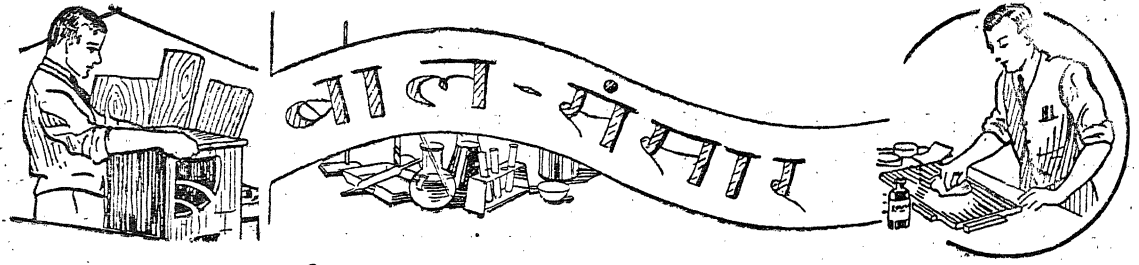
कागज़के हवाई जहाज़

आजकल अकसर तुम हवाई जहाज़ोंको आकाशमें उड़ते देखते होगे। हवाई जहाज़में आगे एक पंखी लगी रहती है जो मशीन द्वारा बहुत तेज़ीसे घूमती है। घूमनेसे यह हवा काटती है और हवाई जहाज़ आगे बढ़ता है। छोटा-सा ऐसा हवाई जहाज़ बनाना जो पंखीसे चलता हो कठिन होगा। परन्तु बिना पंखीके हवाई जहाज़ कागज़से बड़ी सुगमतासे बनाए जा सकते हैं। इन्हें किसी ऊँचे स्थानसे छोड़ने पर ये बड़ी सुन्दरतासे उड़ते हुए धीरे-धीरे नीचे आते हैं।

दो प्रकारके हवाई जहाज़ोंका बनाना नीचे बतलाया गया है। इन्हें उड़ानेमें बहुत आनन्द आता है और बनानेमें कुछ ही मिनट समय लगता है। इन्हें बनानेके लिये केवल कैंची, थोड़ी-सी लेई, या गाढ़े गोंद या सरेस, मोटे कागज और एक-दो छोटी-मोटी चीजों (जैसे दियासलाई) की आवश्यकता पड़ेगी।

पहला हवाई जहाज़ बनने पर चित्र १ (घ) की तरह लगेगा। इसे छोटे आकारका बनाना हो तो मामूली मोटे कागजसे काम चल जायगा, परन्तु बड़े आकारके लिये कड़े ड्राइंग कागजकी आवश्यकता पड़ेगी। चित्रमें प्रत्येक अवयवका आकार अलग-अलग दिखला दिया गया है।

कागजको बीचसे मोड़कर इस प्रकार रक्खो कि मोड़ ऊपर पड़े। चित्र १ (क) की तरह इस पर धड़की एक तरफ़का खाका खींच लो। तब इसे कैंचीसे इस तरह काटो कि मोड़की दोनों ओरका कागज एक साथ कटे। फिर जिन लाइनों पर १ और २ लिखा है वहाँ पंख और पूँछके लिये छेद काट लो।

एक दूसरा कागज़ बीचसे मोड़ कर इस प्रकार रक्खो कि मोड़ नीचे पड़े। ख में दिखलाए गये अन्य भागोंकी आकृति इस पर उतार लो। ३ से चिन्हित अवयव पंख है और ५ से चिन्हित अवयव पूँछ। इन्हें भी दुहरे कागज़से काटो। इन्हें इतना अधिक चौड़ा न होना चाहिये कि ये धड़में किये गये छेदोंमें से जा ही न सकें। पतवारको ४ से सूचित किया गया है। इसको एकहरे ही कागज़से काटना चाहिये। ग में ६ पर दिखलाए गये जगह पर छेद काट कर पतवार लगाई जाती है।

यदि तुमने बड़े आकारका हवाई जहाज़ बनाया है तो यह आवश्यक होगा कि सब भाग लेई या गोंदसे जोड़े जायँ। हवाई जहाज़के छोटे होने पर भी भागोंको जोड़ देना अच्छा होगा, नहीं तो पंख या पूँछके सरक कर निकल जानेका डर रहता है। पंखको पंखके छेद (१) में डाल दो; ध्यान रहे कि पंखका सीधा वाला सिरा सामनेकी ओर रहेगा। पूँछ और पतवारको भी अपने-अपने छेदोंमें डाल दो और जहाँ-जहाँ जोड़ हों वहाँ गाढ़ा गोंद लगा दो।
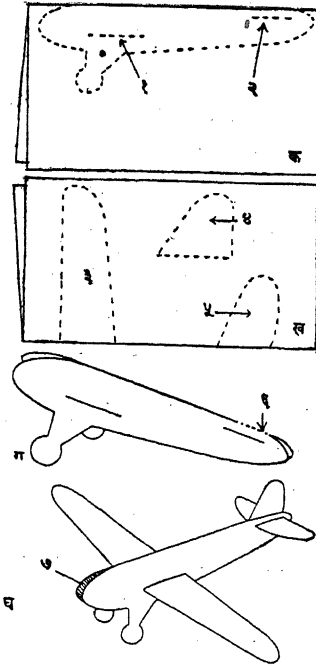
चित्र १—यह हवाई जहाज़ बड़ी सुंदरतासे उड़ता हुआ नीचे उतरता है। पतवार मोड़नेसे यह दाहिने-बायें मुड़ भी सकता है

जब गोंद सूख जाय तो सामने (चित्र १ में ७ से दिखलाए गये स्थान में) थोड़ा पतला कागज़ और कागज़ पकड़नेकी एक दो क्लिपें या कुछ छोटी कीलें ठूँस दो। अब जहाज़को किसी ऊँचे स्थानसे छोड़ो। यदि यह धीरे-धीरे नीचे उतरता हुआ आगे बढ़े तो समझो कि बोझा ठीक है। यदि जहाज़ धीरे-धीरे न उतर कर तेज़ीसे सरके बल गिरे तो समझ लो कि आगे ठूँसा हुआ बोझा अधिक है। ऐसी बात हो तो ठूँसे हुए कागज़ और कीलोंको कम करो। यदि हवाई जहाज़ पूँछके बल गिरे, या रुक-रुक कर इस तरह चले कि बार-बार इसकी नाक ऊपर उठ जाय, तो यह समझना चाहिये कि आगेका बोझ कम है। ऐसी हालतमें आगे और कील या क्लिप ठूँसना चाहिये। जब बोझ ठीक हो जाय तो ठूँसे हुए कागज़को गोंदसे यथास्थान चिपका देना चाहिये।

ऊँचेसे छोड़नेपर हवाई जहाज़ काफ़ी दूर तक जायगा। पतवारको थोड़ा-सा एक बगल मोड़ देनेसे जहाज़ सीधा न चल कर गोल चक्कर लगाता उतरेगा। पतवारको बहुत अधिक नहीं मोड़ना चाहिये, नहीं तो जहाज़ छोटे चक्कर लगायेगा और जल्द गिर पड़ेगा।

दूसरा हवाई जहाज़ बन जाने पर चित्र २ (घ) की तरह लगेगा। ऐसे हवाई जहाज़को ऑटोजाइरो कहते हैं। इसके ऊपर हवाचक्कीकी तरह पंखे लगे रहते हैं। इस जातिके असली जहाज़में यह विशेषता होती है कि यह सीधे ऊपर या नीचे उतर सकता है, परन्तु वेग अधिक न होनेके कारण युद्धमें इसका प्रयोग नहीं होता। कागज़से बने हवाई जहाज़में भी तुम पूर्वोक्त विशेषता पाओगे।

मोटे कड़े कागज़ पर अ में दिखलाई गई आकृतिका धड़ बना कर उसे काट लो। इसमें १ से चिन्हित चौखूटा भाग भी लगा रहेगा। धड़ काटनेके बाद इसे मोड़ देते हैं (ख देखो)। एक दूसरा चौखूटा टुकड़ा जो २ से अंकित है काट लो और रेखांकित स्थानसे मोड़ कर चित्र ख में ३ से दिखलाए गये स्थान पर चिपका दो। इन दोनों चौखूटोंके बीचमें छोटा गोल छेद कर दो। इनमेंसे पंखे की धुरी जाती है।

धुरीको बनानेके लिये एक दियासलाई लो, और चाकू से इसे छील कर गोल कर लो। पंखेको कड़े कागज़से (जिससे धड़ बना है उसी से) ग में दिखलाए गए आकारका काट लो (इसके फल एक दूसरेसे समकोण बनाते हैं)। पंखेको धुरीमें लगा कर गाढ़े गोंदसे जोड़ दो (चित्र ग देखो)। इस बात का ध्यान रहे कि पंखेके ऊपर दियासलाईका काफ़ी भाग निकला रहे और जब दियासलाई खड़ी रहे तब पंखेके फल बिलकुल समतल रहें। जब गोंद बिलकुल सूख जाय तब पंखेके सिरोंको ग में दिखलाई गई रीतिसे थोड़ा-थोड़ा ऐंठ दो। अब दियासलाईको १ और ३ के छेदोंमें डालो। दियासलाईके नीचे के सिरे पर कागज़का छोटा सा टुकड़ा चिपका दो जिससे धुरी निकल न सके।
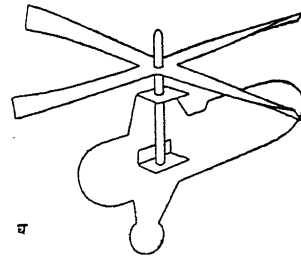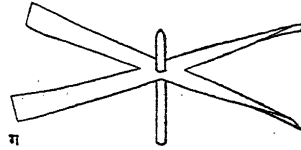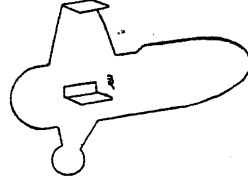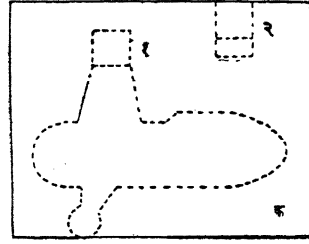
चित्र २—यह ऑटोजाइरो है। पंखेकी धुरीको ज़ोरसे नचा कर इस हवाई जहाज़को छोड़ देनेसे यह देर तक हवामें उड़ता रहेगा।

अब जहाज़को बायें हाथमें पकड़ कर धुरीको दाहिने हाथके अँगूठे और तर्जनीसे ज़ोरसे घुमाओ। यदि १ और ३ के छेद नाम-मात्र ढीले होंगे तो पंखा आसानी से घूमेगा परन्तु यदि छेद कसे हैं तो उन्हें ढीले करो। दियासलाई पर पेंसिल रगड़ना अच्छा है; पेंसिलकी कालिख लगनेसे दियासलाई ख़ूब चिकनी हो जायगी और बहुत हलका चलेगी। यह आवश्यक है कि धुरी आसानीसे घूम सके।

जब हवाई जहाज़ ठीक बन जाता है और धुरी आसानीसे घूमती है तब धुरीको ज़ोरसे नचा कर जहाज़को छोड़ देनेसे हवाई जहाज़ हवामें टँगा रहता है या ऊपर उठता है। इसे बाहर स्थिर या हलकी हवामें उड़ाने पर यह काफ़ी देर तक उड़ता रहेगा और अकसर अच्छी ऊँचाई तक उड़ जायगा।

—चन्द्रिका प्रसाद

बाग़वानी

[शेष पृष्ठ ३३ का]

उखाड़ा हुआ पौधा लगाया जा सकता है। जब पौधा लगभग हाथ भर ऊँचा हो जाय तो उसकी जड़के पास चार-पाँच इञ्च ऊँची मिट्टीका ढेर लगा देना चाहिये। जब पौधे २½ फुट ऊँचे हो जायँ तो एक बार फिर जड़के पास मिट्टी ऊँची कर देनी चाहिये। अन्तमें मिट्टी इतनी ऊँची हो जाय कि लगभग एक फुटका डूह बन जाय। इसके बाद खुरपियानेकी आवश्यकता नहीं पड़ती है। पानी बराबर देते रहना चाहिये। गर्मीके दिनमें चौथे-पाँचवें दिन खेतोंको पानीसे तर कर देना चाहिये। बरसातमें भी यदि पानी कई दिन तक न बरसे और ज़मीन सूखी हो चले तो पानी दे देना चाहिये।

भुट्टा पहाड़ पर भी होता है और वहाँ बीज आरम्भ मईसे जूनके अन्त तक बोया जा सकता है। वहाँ विदेशी बीज आरम्भसे ही अच्छे फल देने लगते हैं।

रबड़की खोज

कई हज़ार वृक्ष, पौधे, लता आदि ऐसे हैं कि उनसे रबड़ निकल सकता है, परन्तु उनमें रबड़की मात्रा इतनी कम होती है कि व्यापारिक दृष्टिकोणसे उनमें रबड़का होना, न होना, बराबर है। खोज जारी है, परन्तु अभी तक कोई विशेष आशा नहीं है कि रबड़-वृक्षके अतिरिक्त कहीं अन्य वनस्पतिसे सस्ता और अधिक मात्रामें रबड़ मिल सकेगा।

घरेलू कारीगरी

[शेष पृष्ठ ३५ का]

तो समझना चाहिये कि कड़े तारके सिरे पर बाँधा बोझ बहुत हलका है। तब उसके बदले अधिक भारी बोझ लगाना चाहिये। जब खिलौनेका बैलेंस (समतुलन) ठीक हो जाय तो बेंड़े तागेके एक सिरेको नीचा या ऊँचा करना चाहिये। तब मसखरा बड़े मज़ेसे टाँगे चलाता आगे या पीछे चलेगा। मसखरेके छातेके लिये दफ़्तीके एक गोल टुकड़ेमें बाँसकी तीली खोंस कर गाढ़े गोंदसे टिका देना चाहिये और सूख जाने पर तीलीको मसखरेके हाथमें किये गये एक छेदमें खोंस देना चाहिये।

हिन्दी-प्रेमियोंसे प्रार्थना

कलकत्तेके सेठ श्री बाबूलालजी राजगढ़ियाके अनुरोध और साहाय्यसे नागरी-प्रचारिणी सभा (काशी) एक लेखक-कोष ("वर्तमान हिन्दी लेखक और उनकी कृतियाँ" नामका) तैयार कर रही है। इसमें लेखक या कविका नाम, स्थान, जन्म संवत् और कृतियोंका नाम रहेगा। कृतियोंके ब्योरेमें [१] प्रकाशित, अप्रकाशित, [२] प्राप्य, अप्राप्य, [३] गद्य, पद्य और [४] मौलिक, अनुवाद रहेगा। कहना न होगा कि यह प्रयत्न अपने ढंगका बिलकुल नया है। इसको देखनेसे एक तो यह मालूम हो जायगा कि आजकल कितने कवि और लेखक हैं तथा किसने किन-किन पुस्तकोंकी रचना की है। दूसरे जो पुस्तकें पहलेसे तैयार हो चुकी हैं उन्हींको प्रस्तुत करनेके परिश्रमसे लेखक बचेंगे और ग्राहकोंको पुस्तकोंकी सूची एक ही स्थानमें सुलभ हो जायगी।

यह कार्य हिन्दी हितैषी लोगोंके सहयोगसे ही सम्पन्न हो सकता है। इसलिये इस विज्ञप्ति द्वारा भारतवर्षके सभी हिन्दी प्रेमियों और लेखकोंसे प्रार्थना है कि वे अपने-अपने स्थानके कवियों और लेखकोंकी पूर्वलिखित सूचनाएँ निम्न-लिखित पते पर भेजनेकी कृपा करें। लेखकों और कवियोंको अपनी सूचना स्वयं भेजनेमें भी संकोच नहीं करना चाहिए। यह कुछ आत्मश्लाघाका कार्य नहीं है। अच्छा तो यह हो कि प्रत्येक स्थानकी इस विषयकी सूचनाएँ कोई एक सज्जन अपने यहाँ एकत्र करके सभाको भेज दें। इससे डाकव्यय भी कम लगेगा और काम व्यवस्थासे हो सकेगा।

—ल० पाण्डेय, नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।
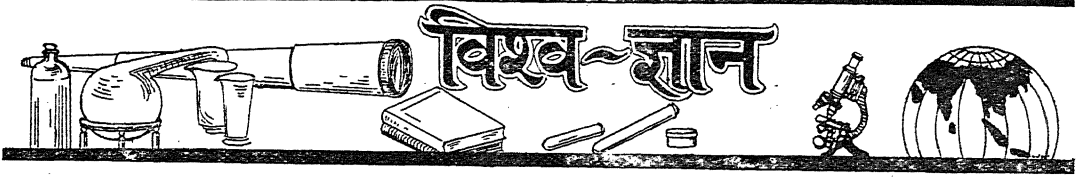
इस शीर्षके नीचे ऐसे लेख छपा करते हैं जो विश्वकोष (एनस इक्लोपीडिया) में स्थान पाने योग्य रहते हैं।

अपेरण

[गतांकसे आगे]

जेम्स ब्रैडली ने इस प्रश्नका निपटारा करना चाहा कि वस्तुतः लम्बनजनित विचलन कुछ दिखलाई पड़ता है या नहीं; और इसी उद्देश्यसे वह अपने मित्र सैम्युअल मॉलीनोज़के साथ इस खोजको हाथमें लिया। एक बड़ा और सच्चा दूरदर्शक प्रसिद्ध यन्त्रनिर्माता जॉर्ज ग्रैहमसे मोल लेकर उसे स्थायी रूपसे ऊर्ध्वाधर स्थितिमें जड़ दिया। केवल चक्षुताल ही थोड़ा-बहुत हट-बढ़ सकता था। इस प्रकार दूरदर्शककी धुरियोंमें हचक आदि रहनेसे किसी त्रुटि के उत्पन्न होनेका भय जाता रहा। एक ही स्थितिमें रहनेके कारण बहुत थोड़ेसे ही तारे इसके दृष्टिक्षेत्रमें आते थे, परन्तु यन्त्र ऐसी स्थितिमें रक्खा गया था कि गामा ड्रैकोनिस नामक तारा दृष्टिक्षेत्रके बीचमें दिखलाई पड़े। स्थितियोंके अन्तर नापनेके लिये यह प्रबन्ध किया गया था कि चक्षुतालको पेंचोंसे आगे-पीछे या अगल-बगल खिसकाया जाता था और इन्हीं पेंचों द्वारा चक्षुतालकी स्थिति (और इसलिये तारेकी स्थिति) का सूक्ष्म ज्ञान हो सकता था। नवम्बर १७२५ से बेध आरम्भ हुये और महीनों तक जारी रहे। अन्तमें स्पष्ट पता चल गया कि महत्तम उत्तरी और दक्षिणी स्थितियोंमें ४०´´ का अन्तर पड़ता है। यह भी स्पष्ट हो गया कि यह विचलन लम्बनजनित नहीं है क्योंकि तब महत्तम उत्तरी और दक्षिणी स्थितियाँ जून और दिसम्बरमें रहतीं। यह भी प्रत्यक्ष था कि बेधोंकी त्रुटि के कारण तारेकी स्थितियोंमें अन्तर नहीं दिखलाई पड़ा था। ब्रैडली और मॉलीनोज़ बहुत समय तक इस विचलनके सम्भव कारणों पर विचार करते रहे परन्तु कोई सिद्धान्त स्थिर न कर पाये। इन सिद्धान्तोंमें से एक यह भी था कि सम्भवतः पृथ्वीकी धुरीकी दिशा तारोंके हिसाबसे थोड़ी-बहुत बदलती रहती है, परन्तु तर्कके आगे यह सिद्धान्त न ठहर सका, क्योंकि वस्तुतः आकाशीय ध्रुव ही अपने स्थानसे हटता तो एक अन्य तारेकी क्रांतिमें, जो ध्रुवकी ठीक दूसरी ओर था, उतना ही अन्तर पड़ता जितना गामा ड्रैकोनिसमें देखा गया था। एक तारेकी ध्रुवीय दूरीमें महत्तम वृद्धि जितनी कुछ भी होती दूसरे तारेकी ध्रुवीय दूरीमें ठीक उतनी ही न्यूनता भी दिखलाई पड़नी चाहिये थी। परन्तु बेधोंसे पता चला कि बात ऐसी नहीं है।

तब ब्रैडली ने और अच्छा दूरदर्शक अपनी चाची मिसेज़ पाउंडके घर पर आरोपित किया। यह दूरदर्शक स्थिर नहीं था। इससे शिरोबिंदु से दोनों ओर ६½° तक के तारे देखे जा सकते थे। इससे ब्रैडली पचास तारोंका सूक्ष्म निरीक्षण बहुत समय तक करता रहा। इस प्रकार तारोंके विचलनोंका अधिक व्यापक ज्ञान प्राप्त हुआ, परन्तु तो भी कोई संतोषजनक सिद्धान्त न बन सका। एक दिन नाव पर बैठा ब्रैडली देख रहा था कि जब-जब नावके चलनेकी दिशा बदली जाती थी तब-तब मस्तूलमें लगे झंडेकी भी दिशा बदल जाती थी। उसने सोचा कि झंडेकी दिशा तो वायुकी दिशा सूचित करती है; तुरन्त ही उसे यह बात सूझी कि जैसे वायुकी प्रत्यक्ष दिशा उसकी वास्तविक दिशा और नावके चलनेकी दिशा इन दोनों पर निर्भर है उसी प्रकार अवश्य ही तारोंसे प्रकाशके आनेकी दिशा न केवल तारेकी दिशा पर निर्भर है, परन्तु दर्शकके वेग और चलनेकी दिशा पर भी निर्भर है। इस प्रकार ब्रैडली-को उस विचलनका रहस्य ज्ञात हो गया जो उसे वर्षोंसे उद्विग्न कर रहा था।

१७२७ में ब्रैडली ने अपना अपेरण-सिद्धान्त घोषित किया। उसका आधार यही है कि यदि हम तारेसे चले प्रकाशके वेगमें एक ऐसा वेग संयुक्त कर दें जो दर्शकके वेगके बराबर परन्तु विपरीत दिशामें हो तो इन दोनोंके वेगोंके लब्धफलसे हमें तारेकी स्पष्ट दिशा ज्ञात हो जायगी।

इस सिद्धान्तसे यह परिणाम निकलता है—और बेधों-से इसका समर्थन भी होता है—कि सभी तारे छोटे-से

दीर्घवृत्तमें चलते हुये जान पड़ेंगे। एक चक्कर वे एक वर्षमें लगा लेंगे। प्रत्येक तारेके अपेरणजनित दीर्घवृत्तका दीर्घाक्ष एक ही नापका होता है, परन्तु लघ्वाक्ष छोटा-बड़ा होता है। वे तारे जो कदंबके पास होते हैं वृत्तमें चलते दिखलाई पड़ते हैं—उनके लिये लघ्वाक्ष दीर्घाक्षके बराबर होता है। वे तारे जो कदंबसे ६०° पर रहते हैं, अर्थात् क्रांतिवृत्त पर होते हैं वे सरल रेखामें चलते दिखलाई पड़ते हैं—उनके लिये लघ्वाक्ष शून्य तुल्य होता है। अन्य तारोंके लिये लघ्वाक्षकी नाप = दीर्घाक्ष × ज्या (भोगांश)।

प्रत्येक तारेके लिये अपेरणजनित दीर्घवृत्तका दीर्घाक्ष क्रांतिवृत्तके समानान्तर रहता है और उसकी मापका आधा लगभग २०·४´´ के होता है। इसीको अपेरणका स्थिरांक कहते हैं।

अपेरण-सिद्धान्तके बल पर गणना करने पर जितना विचलन निकलता है वह बेधोंसे कुछ भिन्न होता है। ब्रैडली ने देखा कि गणनासे प्राप्त विचलन निकाल देने पर जो थोड़ा-सा विचलन बच रहता है वह ऐसे नियमसे घटता-बढ़ता है कि वह अवश्य पृथ्वीके अक्षके ही चलायमान होनेसे उत्पन्न होता होगा। इस प्रकार उसने अक्षविचलनका भी आविष्कार किया (देखो अक्षविचलन)।

अम्ल

साधारण भाषामें जिह्वा द्वारा चखने पर जितनी वस्तुएँ खट्टी प्रतीत होती हैं उन सबको अम्ल कहते हैं। यह परिभाषा व्यावहारिक होने पर भी सर्वव्यापी नहीं है। हम बिना जीभकी सहायताके भी अम्लोंकी पहचान कर सकते हैं। कुछ वानस्पतिक रंग ऐसे बहुत दिनोंसे ज्ञात हैं जो अम्लोंकी विद्यमानतामें अपना रंग बदल देते हैं। काली गाजरका रंग अम्लसे मिलते ही लाल हो जाता है। आज कलकी प्रयोगशालाओंमें लिटमसके घोल या पत्रोंका उपयोग अम्लोंकी पहचान करनेमें बहुत किया जाता है। यह साधारणतः नीले रंगका होता है पर घोलके अम्लीय होने पर इसका रंग लाल पड़ जाता है। और भी बहुत-से रंग हैं जो घोलकी अम्लताकी अपेक्षासे हल्का या गहरा विशेष रङ्ग देते हैं। इनमेंसे कुछका उल्लेख आगे किया जायगा।

रसायन शास्त्रके आरम्भिक इतिहासमें लोगोंकी यह धारणा थी कि प्रत्येक अम्लमें ऑक्सीजनका होना आवश्यक है। ऑक्सीजन शब्दका अर्थ ही अम्ल उत्पन्न करने वाला है (ऑक्सी = अम्ल, जन = उत्पन्न करना)। गन्धक और शोरेके तेज़ाबके विश्लेषण करने पर उन लोगोंकी इस धारणाकी पुष्टि होती थी। अधातु पदार्थोंके ऑक्साइडोंको ही जलके संसर्गमें लानेसे अम्ल बनते हैं ऐसा उनका विश्वास था। बादको जब नमकके तेज़ाब (हाइड्रोक्लोरिकाम्ल), हाइड्रोब्रोमिकाम्ल, हाइड्रोसायनिकाम्ल आदि अम्लोंका विश्लेषण हुआ तो ऑक्सीजन वाली धारणा निर्मूल ठहरी। ये अम्ल अत्यन्त तीव्र हैं, फिर भी इनमें ऑक्सीजनका नितान्त अभाव है। अब हम इस बातको निश्चयपूर्वक जानते हैं कि किसी भी द्रव्यकी अम्लता उसमें उपस्थित हाइड्रोजन ऑयनकी मात्रा पर निर्भर है। प्रत्येक अम्ल अपने घोलोंमें दो ऑयनोंमें विभक्त होता है—धन आयन और ऋण आयन। हाइड्रोजन आयन (ह+) धन आयन है।

[शेष अगले अंक में]

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५६	नवम्बर, सन् १९४२	संख्या २

गणित और गणितज्ञोंसे मनोरंजन

[ले०—डाक्टर बी० एन० प्रसाद, डी० एस-सी०, पी० एच० डी०]

इस लेखमें मैं गणित और गणितज्ञोंसे सम्बन्धित कुछ चुनी हुई बातोंका उल्लेख करूँगा ।

(१) एक गणितज्ञ व तत्वज्ञानी—

लिनहार्ड ऑयलर (१७०७-१७८३) संसारके प्रख्यात गणितज्ञोंमें से थे । बर्लिनमें आप फ्रेडरिक महान्के प्रधान गणितज्ञ रहे । तत्पश्चात् उसी पद पर पीटर्सबर्गमें कैथरिन द्वितीयके शासन कालमें थे । साम्राज्ञीके निमन्त्रण पर फ्रांसका तत्वज्ञानी डैनिस डिडिरॉट एक बार रशिया राज्यके न्यायालयमें पधारे । आपने अत्यन्त स्वतन्त्रतापूर्वक ईश्वरके अस्तित्वके प्रतिकूल वातावरण उपस्थित किया एवं न्यायालयके पदाधिकारियोंमें नास्तिकवादका बीज बो दिया । न्यायालयके कुछ वृद्ध सभासदोंको डिडिराटका उपदेश उचित नहीं जान पड़ा और उन्होंने साम्राज्ञीको यह परामर्श दिया कि ईश्वरके प्रतिकूल इस प्रकारकी चर्चा करना अनुचित है और इसको रोक देना उपयुक्त है । किन्तु साम्राज्ञी अपने अतिथिके सम्भाषणमें साक्षात रूपसे हस्ताक्षेप करना उचित नहीं समझती थी, अतः उस चर्चाको रोकनेके लिये एक प्रबन्ध किया गया । डिडिराटसे कहा गया कि एक विद्वान् गणितज्ञ बीजगणित द्वारा ईश्वरके अस्तित्वको प्रमाणित करेंगे । यदि आप न्यायालयके समक्ष उसको सुननेको प्रस्तुत हों तो आयें । डिडिराट महोदय ने उस तर्क को सुनना स्वीकार कर लिया । दूसरे दिन सम्पूर्ण न्यायालय के समक्ष प्रख्यात गणितज्ञ ऑयलर महोदय ने डिडिराटकी ओर बढ़ कर दृढ़ता और गम्भीरतापूर्वक कहा, "महाशय जी ! क्योंकि (क + ख य) ^{न} न = य, अतः ईश्वरका अस्तित्व है—इस बातका उत्तर दें" । डिडिराट महोदय गणितके विषयमें अनभिज्ञ थे; अतः वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये । उनसे कुछ उत्तर देते न बन पड़ा । न्यायालयके चारों ओरसे ख़ूब ज़ोरकी हँसी आई । उन्होंने शीघ्र ही फ्रांस लौट जानेकी आज्ञा माँगी । साम्राज्ञीने उसी समय अनुमति प्रदान कर दिया ।

(२) मृतक समाधि लेख—

द्वितीय अलेकज़ैण्डरीय संस्थाके डायोफेन्टस एक बहुत

ही प्रभावशाली गणितज्ञ थे । बीजगणित पर प्रमाणित लेखोंके कारण आप प्रसिद्ध हैं । आपकी रचनायें प्रायः २५० ई० में प्रकाशित हुईं । आपकी आयुके सम्बन्धमें मृतक-समाधिके ऊपर शिला-लेखमें इस प्रकार अंकित है :—

डायोफेन्टसके जीवनका $\frac{१}{६}$ भाग बाल्यावस्थामें व्यतीत हुआ, $\frac{१}{१२}$ भाग युवावस्थामें, $\frac{१}{७}$ भाग अविवाहित जीवन व्यतीत किया । विवाहके पाँच वर्षके पश्चात् एक बालक उत्पन्न हुआ जिसकी मृत्यु पिताकी मृत्युके चार वर्ष पहले ही हो गई । उस समय बालककी आयु पिताकी आयुसे आधी थी ।

बीजगणितके इस अंकोंसे डायोफेन्टसकी आयु ज्ञात कर लीजिये ।

(३) एक पारितोषिक समस्या—

मैं एक ऐसी समस्याका वर्णन करूँगा जिसको हल करनेके लिये एक लाख स्वर्ण-मुद्रा पारितोषिकके रूपमें प्रदान करनेका विज्ञापन निकाला गया है । पिछले ३०० वर्षोंसे गणितका यह प्रश्न प्रख्यात गणितज्ञोंकी चेष्टायें निष्फल कर रहा है । हमें ज्ञात है कि—

$३^२ + ४^२ = ५^२$; $१२^२ + ५^२ = १३^२$, आदि;

अर्थात् यह सम्भव है कि य, र, ल आदि ऐसी संख्याओंका मूल्य ज्ञात हो सकता है जिनके लिये $य^२ , र^२ = ल^२$ । दूसरे शब्दोंमें यह सम्भव है कि एक की वर्ग पूर्णांकको दो वर्ग पूर्णांकोंमें विभाजित किया जा सकता है । गणितका यह प्रसिद्ध पाइथागोरियन सूत्र है । अब प्रश्न यह है कि क्या यह सम्भव हो सकता है कि य, र, ल का पूर्णाङ्क मूल्य ज्ञात हो सके जब—

$$य^3 + र^3 = ल^3; \quad य^४ \; र^४ = ल^४;$$

अथवा और भी व्यापक रूपमें

$$य^म + र^म \quad ल,^म$$

जहाँ म कोई की संख्या हो जो २ से अधिक हो ।

यही वह प्रसिद्ध समस्या है जिसके लिये उपरोक्त पारितोषिककी घोषणा की गई है । इस समस्याको 'फरमट का अन्तिम सूत्र' कहा जाता है ।

पेरौं डी फरमट महोदय (१६०१-१६६५) फ्रांसके प्रसिद्ध गणितज्ञ थे, जिनमें एक असाधारण शक्ति थी । वे प्रायः सभी विद्याओंके प्रकाण्ड विद्वान् थे । फरमट महोदय-की शिक्षा घर पर ही प्राप्त हुई । गणितका विषय इनका जीविका-साधन न था । वे तो टूलूज़के पार्लियामेंटके सभासद थे और अपने अवकाशका समय अत्यन्त उत्सुकताके साथ गणितके अध्ययनमें व्यतीत किया करते थे । बहुत ही संकोची और नम्र स्वभावके होनेके कारण उन्होंने कभी अपने कार्योंको प्रकाशित करनेकी चेष्टा ही नहीं की । वे अपने अनुसन्धानोंका फल पुस्तकोंके किनारों पर लिखा करते थे । पुस्तकोंको पढ़ते समय जो विचार उत्पन्न होते उन्हें बिना किसी प्रमाणके वे किनारों पर नोट कर लेते थे । डायोफेन्टसकृत गणितकी पुस्तकमें एक पृष्ठ पर फरमट महोदय ने लैटिन भाषामें इस प्रकार लिखा है :—

"एक घन अंकको दो घन अंकोंमें विभाजित करना असम्भव है । साधारणतः वर्ग अंकोंसे ऊपरके अंकोंको दो उसी प्रकारके अंकोंमें विभाजन करना सम्भव नहीं है । मैंने निस्सन्देह इस समस्याका अद्भुत प्रमाण खोज निकाला है । किन्तु पुस्तकका यह किनारा उसको लिखनेके लिये यथेष्ट नहीं ।"

उस समयसे लेकर अब तक प्रायः ३०० वर्षके भीतर संसारके प्रायः सभी प्रसिद्ध गणितज्ञोंने अपने बहुमूल्य समय और विचार द्वारा फरमट महोदयके उपरोक्त सूत्रको प्रमाणित अथवा अप्रमाणित करनेका प्रयत्न किया । किन्तु अभी तक उनकी सारी चेष्टायें निष्फल हुई हैं । कितने दुखका विषय है कि पुस्तकमें किनारे पर लिखनेका स्थान न होनेके कारण (जो एक बिल्कुल तुच्छ बात थी) हम फरमट महोदयके प्रसिद्ध सूत्रके अद्भुत प्रमाणसे वंचित हो गये ।

सन् १९०८ ई० में यह घोषित किया गया कि जो कोई फरमट महोदयके सूत्रको सम्पूर्ण रूपसे प्रमाणित कर देगा उसको एक लाख स्वर्ण-मुद्रा पारितोषिकके रूपमें प्रदान किया जावेगा । इस विज्ञापनसे सारे संसारमें हलचल मच गई । उसकी पूंजी, जो कि गणितमें प्रदान किये गये पारितोषिकोंमें सबसे अधिक है, एक जर्मनीके गणितज्ञ डा० एफ० पी० वाल्फशेल महोदय (१८५६-१९०६) के दानपत्र द्वारा प्राप्त हुआ है । आपने यह पूंजी जर्मनीके

एक संस्थाको प्रदान कर दी थी। इस पारितोषिकको प्रतियोगिता प्रायः ७० वर्ष तक और रहेगी। इसका अन्तिम दिवस १३ सितम्बर सन् २००७ है।

(४) एक अनोखी भविष्यवाणी—

हीरोनिमो कारडेनो महोदय (१५०१-१५७६) इटलीके एक प्रसिद्ध गणितज्ञ थे। इनका नाम साधारण घन समीकरणोंके हल करनेकी विधिके साथ सम्बन्धित है, यद्यपि अब यह ज्ञात हुआ है कि यह केवल भ्रांति है। आपके चरित्रका वर्णन एक अनोखे ढंगसे किया गया है। आपमें प्रतिभा, हठ, अभिमानता और कुछ रहस्यका मिश्रण था। वे ज्योतिष शास्त्रके भी ज्ञाता थे। गणितके पढ़ानेकी अपेक्षा इस विद्यासे सम्भवतः उन्हें अधिक आय थी। कहा जाता है कि एक दिन अपने स्वाभाविक रीतिसे डींग मारनेकी अवस्थामें यह भविष्यवाणी की कि मैं एक विशेष दिनमें निश्चित समय पर मर जाऊँगा। हलचल मचा देने वाली यह बात चारों ओर शीघ्रतासे व्यापक हो गई और लोग दूर-दूरसे यह देखनेके लिये आये कि भविष्यवाणीके उपरोक्त समयमें किस प्रकार कारडेनो मृत्युको प्राप्त होता है। निश्चित दिन व समय आ गया किन्तु कारडेनो बिल्कुल स्वस्थ्य थे। उनमें मृत्युके निकट आनेका चिह्न किसी प्रकार भी नहीं उपस्थित था। मनुष्योंकी भीड़ अधिकाधिक बढ़ती ही जा रही थी। यह कहा जाता है कि कारडेनोका भविष्यवाणीका किया हुआ पल जब आगया और उसने अपने शरीरमें मृत्युका कोई चिह्न नहीं पाया तो उसको इतना अधिक दुख और इतनी चिन्ता हुई कि वास्तवमें वह उसी पल मर गया। इस प्रकार उन्होंने अपने भविष्यवाणीको सार्थक सिद्ध कर दिया।

(५) एक विलक्षणता—

सर विलियम रोवेन हमिलटन (१८०५-१८६५) आयरलैण्ड देशके सबसे महान गणितज्ञ हुये हैं। आप गणितके प्रसिद्ध विभाग "चतुष्पाद" के संस्थापक हैं। हमिलटन महोदय कवि और तत्वज्ञानी भी थे। अंग्रेज़ी साहित्यके महान् कवि वर्डस्वर्थ, और कॉलिरिज महोदय आपके घनिष्ठ मित्रोंमें थे। इन तीनों पुरुषोंमें अत्यन्त मनोरंजक पत्र-व्यवहार हुआ है, जिसमें साहित्य, विज्ञान और तत्वज्ञानकी चर्चा रहती थी।

बचपनमें हमिलटन महोदय एक विलक्षण बालक थे। तीन वर्षकी अवस्थामें वे अंग्रेज़ी भाषा सुन्दर रूपसे पढ़ सकते थे और गणितमें पर्याप्त ज्ञान रखते थे चार वर्षकी अवस्थामें भूगोलमें अच्छे ज्ञाता थे। पाँच वर्षकी अवस्थामें आप लैटिन, ग्रीक और हिब्रू भाषाको पढ़ लेते और अनुवाद कर सकते थे। इतनी अल्प आयुमें ही वे ड्राइडन, कालिन्स, मिल्टन और होमर आदि महान कवियोंकी रचनाओंका पाठ किया करते थे। आठ वर्षकी आयुमें आप इटालियन और फ्रांस देशकी भाषाका अध्ययन कर सकते थे और लैटिन भाषामें अपने भावोंका भली भांति प्रदर्शन कर सकते थे। दस वर्षकी आयुके पहले ही आप संस्कृत भाषासे पूर्ण रूपसे परिचित हो गये और पारसी, अरबी, चालडी, सीरियी और कुछ भारतीय भाषाओंका भी अध्ययन किया। कहा जाता है कि १३ वर्षकी अवस्थामें आपको १३ भाषाओंसे अधिकका ज्ञान था। विश्वविद्यालयके उपाधिधारी होनेसे पहले ही आपको डबलिनमें ज्योतिष विद्याका अध्यापन-कार्य प्रदान किया गया।

(६) शून्यसे उत्पत्ति —

ग्यूडो सान्डी इटली प्रदेशके तत्वज्ञानी थे। आपने शून्यसे संसारकी उत्पत्तिका निम्नलिखित प्रमाण दिया है। किस प्रकार संसारकी रचना हुई होगी उसकी आप इस प्रकार विवेचना करते हैं :—

$$
\begin{aligned}
\bullet \\
&= ० + ० + ० + ० + \ldots \\
&= (१ - १) + (१ - १) + (१ - १) + (१ - १) + \ldots \\
&= १ - १ + १ - १ + १ - १ + \ldots \\
&= १ - (१ - १) - (१ - १) - \ldots \\
&= १ - ० - ० - \ldots \\
&= १
\end{aligned}
$$

जिस प्रकार शून्य अंकसे १ अंककी रचनाका प्रमाण दिया जा सकता है उसी प्रकार शून्यसे सारे संसारकी रचना हुई है।

अजगर

[श्रीयुत रामेशबेदी आयुर्वेदालङ्कार]

जूनकी एक मध्य रात्रिका ज़िक्र है। सारा आलम छतों पर सो रहा था—दिन भरके कठोर श्रमकी थकान उतारने वाली बेख़बर नींद में। निशाकी निस्तब्धताको भंग करती हुई अकस्मात् समीपवर्ती जंगलसे एक तीव्र करुणोत्पादक चीख़ उठी। कोई असहाय जीव सहायताके लिए पुकार रहा था। हम लोग टार्च और लाठियाँ ले लेकर घटनास्थल पर पहुँचे। हमने देखा, एक विशालकाय अजगर ने एक गीदड़को अपनी प्रबल कुण्डलों (कुंडली) में जकड़ रखा था और गीदड़के कुछ साथी उसे छुड़ानेका व्यर्थ प्रयास कर रहे थे। हमें देख कर बचाने वाले गीदड़ एक ओर भाग गये। अजगर भी वहाँसे खिसका और तेज़ीसे पासके एक वृक्ष पर चढ़ गया। उस प्रगाढ़ अन्धकारमें सघन वृक्षकी पतली और गुंथी हुई टहनियोंकी शरण लेना अजगर ने स्वरक्षाका एक मात्र उपाय समझा।

हमारी सहायता पहुँचनेसे पूर्व गीदड़की सबगतियोंको अजगरने निश्चेष्ट कर दिया था।

हमारी सहायता पहुँचनेसे पूर्व गीदड़की सब गतियों को अजगरने निश्चेष्ट कर दिया था। युद्धस्थलीकी मसली हुई घास और झाड़ियोंकी टूटी हुई टहनियों तथा ज़मीन पर पड़ी लम्बी-लम्बी घसीटनोंसे मालूम होता था कि श्रृगाल भी अन्तिम दम तक वीरतासे लड़ा था।

एक लम्बे बांसके सिरे पर आंकड़ा (अंकुश) लगा कर अजगरको वृक्ष परसे खींचा गया। पांच आदमियोंके सम्मिलित ज़ोर ने उसे नीचे गिरा दिया। भाग निकलनेके सब सम्भव प्रयत्न करने पर भी वह बन्दी बना लिया गया।

आश्रमकी एक छोटी कोठरीमें हमने अजगरको स्थान दिया। एक मासके कारावासके बाद असावधानीसे खुली रह गई कमरेकी खिड़कीसे एक रात अजगर चुपकेसे निकल भागा। उसका भागनेका प्रयत्न सफल हो जाता, पर अजगरके दुर्भाग्यवश तीन-चार दिन बाद वह साथके बढ़ईघरके एक कोनेमें देखा गया, जब काम पर आते हुए बढ़ईको उसने अपने तीव्र और सशब्द उच्छ्वाससे सहसा चौंका दिया। सहमे हुए और हाँफते हुए बढ़ई ने आश्रममें अजगरकी उपस्थितिकी सूचना दी और वह हतभाग्य तुरन्त हो फिर पकड़ा जा कर आश्रममें डाल दिया गया।

आश्रममें यह दिन भर निर्विघ्न विचरता था और रात को एक कमरेमें डाल दिया जाता था। आश्रमके विद्यार्थियों तथा वहाँ रहने वाले प्रत्येक व्यक्तिसे यह परिचित हो गया। कभी किसीको कोई हानि नहीं पहुँचाता था। आश्रमकी हरिणी भी बिना किसी भयकी आशङ्काके उसके पास ही चरती रहती थी।

अजगरके इस शान्त और न डराने वाले व्यवहार ने आश्रम वासियोंको यह विश्वास दिला दिया कि वह पालतू हो गया है। दिन भर आश्रमके अहातेमें खुला विचरते हुए उसने कभी भागनेकी चेष्टा नहीं की और नहीं कभी कोई ऐसी बात की जिससे भय पैदा हो। इसलिए, रातको वह जिस कमरेमें बन्द किया जाता था, अब उसकी खिड़की बन्द करनेमें भी उपेक्षाकी जाने लगी। अवसर पाकर एक दिन वह फिर खुली खिड़कीसे निकल गया। इस बार अवश्य हम उसके भागनेके प्रयत्नकी प्रशंसा किये बिना न रहेंगे। यह दूसरा पलायन कोई दो मास बाद हुआ।

इस प्रकार कुल तीन महीनोंसे अधिक हमारे पास रह कर भी वह भाग गया। इसीसे हमें अनुभव हुआ कि अजगर कभी पालतू नहीं हो सकता। तोतेकी तरह वह भी अवसर पाकर स्वतन्त्र होनेका प्रयत्न करता है। परन्तु, साथ ही यह सुन कर कम आश्चर्य नहीं होता कि सिखाया हुआ एक अजगर हालीवुडमें प्रति सप्ताह पाँच पौण्ड कमाता है।

× × ×

दूसरे साल जूनके एक दिनकी बात है। दोपहरका समय था। नहरके किनारे सघन आम्रकुञ्जके नीचे छोटी छोटी कांटेदार और बहुत घनी बिछी हुई झाड़ियोंके बीचमें चीख़ते चिल्लाते हुए वानरोंके एक झुण्ड ने किसानोंका

अजगर भाग कर आत्मरक्षाके लिए वृक्ष पर चढ़ गया

ध्यान आकर्षित किया। पास जाकर किसानों ने विस्मयसे देखा कि एक बन्दर, जो डील-डौलसे उस वानर-टोलीका सरदार मालूम होता था, एक शक्तिशाली अजगरके सुदृढ़ आवेष्टनोंमें आबद्ध है और मुक्त होनेके विफल प्रयत्नमें मींचा जाकर मारा जा चुका है। परन्तु फिर भी अपने यूथाधिपकी मृतदेह-प्राप्तिके लिये वानर-टोली भरसक प्रयत्न कर रही है। किसानों द्वारा सहायताके लिए बुलाये जाने पर हम लोग घटनास्थल पर पहुँचे। इतने आदमियों को देख कर अजगर भाग कर आत्मरक्षाके लिए एक वृक्ष पर चढ़ गया और बन्दरकी मृतदेहको उठा कर वानर-टोली जंगलकी झाड़ियोंमें खिसक गई। एक लम्बे बांसके आंकड़े से अजगर नीचे उतार कर पकड़ लिया गया। यह अजगर वही पिछले साल वाला था, यह बात उसकी गरदन और पीठ पर बने घावके चिन्होंसे स्पष्ट हो गई। इस प्रकार लगभग एक सालके अज्ञातवासके बाद वह फिर अपने पिछले साल वाले स्थान पर ले आया गया। इस बार यह लोहेके जाली-दार पिंजरेमें दिन भर बन्द पड़ा रहता था।

× × ×

अजगर प्रायः ठण्डी जगहोंमें रहना पसन्द करता है, इसलिए उसके पिंजरेमें मिट्टी बिछा दी जाती है और समय-समय पर पानी छिड़क कर उसे तर रखा जाता है। जब उसे पक्के फ़र्शके कमरेमें रखा जाना है, तो एक कोनेमें छोटा सा-उथला हौज बनवा दिया जाता है, जिसमें सदा ताज़ा पानी रहता है। इस पानीमें वह बहुधा बैठा रहा करता है। कमरेमें कमसे कम एक ओर अवश्य जाली लगी होती है और बीचमें एकाध हरा वृक्ष भी होता है। हरे वृक्षके अभावमें किसी वृक्षका शाखायित तना गाड़ा जा सकता है।

एक स्थानसे दूसरे स्थान पर भेजनेके लिए अजगरके लिए चार फुट चौड़ा और इतना ही लम्बा तथा ऊँचा लकड़ीका बक्स काफ़ी होता है। उसमें स्थान-स्थान पर हवाके प्रवेशके लिए छिद्रोंकी पंक्तियाँ होनी चाहिए। दर-वाज़ा ऊपरको उठने वाला होना चाहिए जिसमें ताला लगानेका भी प्रबन्ध हो। दरवाज़ेके अन्दर प्रायः जाली भी लगा दी जाती है। निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचने पर जब पहले दरवाज़ा खोला जाता है तो विशेष घबरानेकी आवश्यकता नहीं होनी चाहिए क्योंकि अन्धेरेसे सहसा तीव्र प्रकाशमें आने पर साँप कुछ क्षणके लिए अन्धा-सा होता है और देर तक बन्द पड़ा रहनेसे सोता हुआ-सा

होता है। पर यह बात तभी तक है यदि पेटी दस मिनिट से अधिक नहीं खुली रही। उसके बाद वह दर्शकोंको अपना शिकार बनानेका निश्चय कर सकता है। और तब ऐसे दैत्यको फिर पिंजरेमें वापिस भेजनेके लिए दर्जन आदमियोंकी आवश्यकता पड़ सकती है।

अजगरको पकड़ना बहुत सुगम नहीं होता है। आम तौर पर यह जीव जितना सुस्त समझा जाता है, वास्तवमें उतना है नहीं। शिकारके समय या दूसरे जीवोंसे युद्ध करते समय इसकी चुस्ती देखते ही बनती है। दौड़ता भी काफ़ी तेज़ है। बहुत कठिनतासे हाथ आता है और पकड़ने वाले पर बहुधा आक्रमण भी करता है। विष न होनेसे इसका डंश घातक तो नहीं होता परन्तु बड़ा, चौड़ा, मुँह होनेसे घाव बड़ा बनाता है, और यदि मनुष्य इसके आवेष्टनमें आ जाय तो दूसरेकी सहायताके बिना बचना कठिन होता है। इसलिए सबसे पूर्व इसके मुखको वशमें करना चाहिए। एक व्यक्ति ज़रा दूरसे कपड़ेको उसके आगे करता है और ज्यों ही साँप ने उसे काटा एक तेज़ गतिमान् हाथ उसकी गरदनको मज़बूतीसे दबोच लेता है, दूसरा आदमी उसकी पूछको दबा लेता है जिससे वह किसी को अपने आवेष्टनोंमें न बांध सके। सपेरे बड़े अजगरोंको बोरियों में रखते हैं।

अजगरको गलेमें लपेट कर जब सँपेरा किसी चौराहे या सड़कके किनारे बैठ जाता है तो उत्सुक और आश्चर्य-चकित दर्शकोंकी भीड़ लग जाती है और शीघ्र ही भूमि पर फैले हुए भिक्षापट पर एक एक दो-दो पैसे-धेले गिरने लगते हैं। हरद्वार जैसे तीर्थ स्थानोंमें इन छोटे-छोटे सिक्कों की संख्या-वृद्धि करनेमें उन भक्त स्त्रियोंका अधिक हाथ होता है जो इस जीवको नाग देवता समझ कर भेंट पूजा चढ़ाती हैं। पूजा द्रव्योंमें मुख्य पदार्थ दुग्ध होता है। इसलिए भिक्षापटके कोनेमें दूध भरा प्याला भी प्रायः देखा जा सकता है।

पूजा का सर्प, जो नाग देवताके नामसे पूजा जाता है, वास्तवमें फनियर (कोबरा) या शेषनाग (King Cobra) है। बंगाल, आसाम, बिहार आदिमें नाग-पञ्चमीके दिन इसी की पूजा होती है। उत्तर भारतमें सर्प-पूजा इतनी अधिक प्रचलित नहीं। इसलिए अज्ञानवश बड़े डील-डौलके कारण अजगरको ही यह प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई है।

अजगर हिमालयकी तराई, बर्मा, आसाम, राजपूताना, बंगाल और सुन्दरबनके जंगलोंमें पाया जाता है। कहते हैं कि बर्मा और मलायाके अजगर चालीस फ़ुट तक लम्बे होते हैं। संसारके बड़े-बड़े शहरोंके चिड़ियाघरोंमें अजगर को प्रतिष्ठास्पद स्थान प्राप्त है। इसके सिर पर मालाकार एक कालासा चिन्ह होता है और पीठकी दोनों ओर लगातार धब्बे रहते हैं। अजगरकी पिछली टांगोंके अवशेष (rudiments) छोटे पंजोंके रूपमें होते हैं। पिछली पसलियों (dorsal ribs) की संख्या बहुत अधिक होती है। ये पसलियाँ बड़े साँपके शरीरके निचले भागमें स्थिति बड़े अधोवल्कलों (ventral scales) के साथ सम्बन्धित होती हैं। साँप वास्तवमें अपनी पसलियोंके सिरों पर चलता है। पतला और लम्बा शरीर होनेसे साँपोंमें केवल एक फेफड़ा होता है और वृक्क भी एक ही और बहुत लम्बा। निचले जबड़ोंके साथ एक लचीला बन्धन (ligament) होता है, जो शिकार निगलते समय आश्चर्यजनक रीतिसे फैल जाता है। इसमें रबरसे भी अधिक फैलनेकी शक्ति होती है, जिसके कारण अपने मुखके विस्तारकी अपेक्षा कई गुना अधिक बड़ा शिकार यह निगल जाता है। जिन हरिण, गीदड़ आदि को हमने अजगरको निगलते देखा है या निगले हुओंको अजगरका पेट चीर कर निकाला है वे मोटाईमें साँपकी मोटाईसे दुगने या तिगुने मोटे थे। देहरादूनके जंगलोंमें गोलीसे मारे गये बीस फ़ुट लम्बे एक अजगरके पेटसे सात मनका जंगली सूअर निकला था। मेगस्थनीज़ जब भारत आया था, तो उसने भी देखा कि यहाँके अजगर हरिण, बकरी और बैल तकको निगल जाते हैं। वैदिक ऋषियों ने अजगरका वर्णन किया है (देखिये अथर्व० १२।२।२५; २०, १२६, १७) और बकरे (अज) को निगलते देख कर ही उन्होंने उसका नाम अजगर रक्खा था (गर = निगलना)।

अजगरके शिकार पकड़नेके तरीके बहुत मनोरंजक होते हैं। किसी हरे-भरे स्थान या झाड़ीमें यह छिप कर बैठ जाता है। खरगोश, हिरण, सूअर आदि जब भोजनकी

खोजमें वहाँ पहुँचते हैं, तो यह स्वयं उन्हें पकड़ लेता है। शिकारके लिये यह कभी-कभी वृक्षों पर भी चढ़ जाता है। अपनी लम्बी पूँछसे लटका कर झूलते हुये जान-वरोंको यह नीचेसे देखता रहता है। जब शिकार उसके ठीक नीचे आ जाता है और वह उसे सुगमतासे पकड़ सकता है, तो तुरन्त उस पर कूद पड़ता है। उसके दबावसे ही शिकार गिर पड़ता है और यह झटसे उसके चारों ओर घेरा डाल कर उसे पकड़ लेता है। इन कुण्डलोंमें लेकर वह शिकारको इतनी ज़ोरसे भींचता है कि उसका दम निकल जाता है, तब वह शिकारको निगलना आरम्भ करता है। निगलनेकी यह क्रिया बहुत धीरे-धीरे होती है। एक बार हमारे देखते हुये हरिणको पूरा निगलनेमें एक अजगरको लगभग सोलह घण्टे तक लग गये थे। चीतेको निगलनेमें उससे भी अधिक समय लगता है। मुर्गा, मुर्गी तो वह कुछ ही मिनटोंमें पेट तक पहुँचा देता है और चूहे आदि तो एक साँस में उदरस्थ हो जाते हैं। चूहेको निगलनेके पहले अजगर उसे कुण्डलोंमें भींच कर निश्चेष्ट कर देता है। उसमें थोड़ी देर ज़रूर लगती है।

चूहेको निगलनेके पहले अजगर उसे कुण्डलोंमें भींच कर निश्चेष्ट कर देता है।

अजगर शिकारको चबाता नहीं। उदरस्थ करनेके लिये उसे शिकारके टुकड़े करनेकी भी आवश्यकता नहीं होती। वह उसे सम्पूर्ण निगल जाता है। उसके आमाशयमें एक विशेष प्रकारका पाचक रस उत्पन्न होता है, जिसमें बाल, माँस, हड्डियाँ आदि सब गल जाते हैं।

प्रायः पन्द्रह-बीस फुट लम्बे अजगरकी क्षुधा-शान्तिके लिये एक मुर्गी पन्द्रह दिन काफी होती है। खरगोश करीब आठ दिनका गुजारा कर देता है। छिंकोरा लगभग दो मास और गीदड़ तथा लोमड़ी भी इतने समयके लिये पर्याप्त होते हैं। बड़ा शिकार खानेके बाद यह सुस्त पड़ जाता है और काफी समयमें धीरे-धीरे रेंग कर किसी ऐसे स्थानमें पहुँच जाता है जहाँ कोई पहुँच न पाये। इस अवस्थामें यह अर्द्धमूर्च्छित-सा हो जाता है। इस समय इसे पकड़ना या मारना कठिन नहीं होता। एक बड़े छिंकोरेको निगलनेके [illegible] घण्टे बाद हमने अजगरको घने छाया-दार वृक्षोंमें अर्द्धमूर्च्छित या प्रसुप्तावस्थामें पाया। हम दस-पन्द्रह व्यक्ति कुछ दूरी पर खड़े उसे देखते रहे, परन्तु उसने हमारे ऊपर आक्रमण नहीं किया और न भागनेका ही प्रयत्न किया। जब उसे पहली गोली लगी तो वह ज़ोरसे हम पर झपटा; पर दूसरी गोली ने उसका काम तमाम कर दिया। अब हमने उसका पेट चीर कर निगले हुये छिंकोरेको निकाला, उसके बाल और खाल कहीं-कहीं-से गल चुके थे। छिंकोरेको निगले हुये अब तक लगभग चौबीस घण्टे हो चुके थे। मृत अजगरकी लम्बाई साढ़े सत्रह फुट और वज़न डेढ़ मनके लगभग था। यह अज-गर अब गुरुकुल कांगड़ीके संग्रहालयमें रक्खा हुआ है। सिंगापुरमें सूअरोंके फ़ार्मसे एक दिन सूअरके दो बच्चे गुम हो गये। बहुत खोज करने पर कुछ दूरी पर एक अजगर मूर्च्छामें पाया गया। मार कर उसका पेट चीरा गया तो ज्ञात हुआ कि उन बच्चोंका चोर वही था। बच्चोंका वज़न सवा मनके करीब था।

शिकार निगलनेके बाद तुरन्त अजगरको छेड़ा जाय तो वह उसे उगल देता है। गंगा पार पुराने गुरुकुलके पास एक बार हमने बारह फुट लम्बे अजगरको हरिणके एक छोटे बच्चेको निगलते देखा। निगलनेकी प्रक्रिया आरम्भ थी

और हरिण आधेसे अधिक अन्दर जा चुका था। हम झाड़ी में छिप कर यह देखते रहे। उसे निगल जानेके बाद अजगर जब धीरे धीरे रेंग कर किसी सुरक्षित स्थानमें जाने लगा, तो हमने उसे पकड़ लिया। उसे बोरेमें बन्द करके जब लाया जा रहा था, तो रास्ते ही में उसने वमन कर दी और वह हरिणका बच्चा पूरा बाहर आ गया। इस

एक अजगरका अनशन भंग करनेके लिये हमने उसे छः फुट लम्बा जीवित धामन साँप खिला दिया।

प्रकार वमन करनेका कारण यह प्रतीत होता है कि अजगर भागनेकी सुविधाके लिये अपने शिकारको बाहर फेंकता है। जहाँ जीवनके लाले पड़े हों, वहाँ पेटका ख़्याल नहीं किया जाता।

बन्दी बनाये जाने पर अजगर प्रायः भूख-हड़ताल कर देता है। उसे खिलानेके लिये पहले प्रायः बल प्रयोग करना पड़ता है। आटेका घोल या दूध हम बलात् अजगरको खिलाते रहे हैं परन्तु यह अच्छा भोजन सिद्ध नहीं हुआ। सपेरे लोग दूध और आटेके मिश्रणमें अण्डेको फेंट कर अजगरको खिलाते हैं और उनका यह विश्वास है कि यह अच्छा पुष्टिकर पेय होता है। यदि अजगर ज़िद पकड़ ले तो चूहे और मेंढक उसके पिंजरेमें फुदकते रहें, यह उनकी ज़रा भी परवाह नहीं करता। एक अजगरका अनशन भंग करनेके लिये हमने उसे छः फुट लम्बा जीवित धामन साँप खिला दिया था। धामन अजगरके पिंजड़ेमें छोड़ दिया गया; परन्तु अजगर ने कोई प्रतिक्रिया न दिखाई। फिर धामनको मुँहकी ओरसे पकड़ कर अजगरके मुँहमें बलपूर्वक प्रविष्ट करा दिया गया। अजगरने वमन करनेका प्रयत्न किया पर हमने उसका मुँह कुछ देर पकड़ रक्खा। कुछ देर बाद वह उसे निगल गया। और शांतिसे पिंजरेमें जा लेटा। श्रीयुत रेमौण्ड एल० डिटमार अपने एक अजगरको बल प्रयोगसे ख़रगोश खिलाते रहे हैं। दो-दो खरगोश इकट्ठे सी कर उन्होंने एक लम्बी शृंखला बना ली थी। सिरेवाले खरगोशकी खोपड़ीमें उन्होंने एक चिकनी लम्बी लग्गीको डाल कर अजगरके मुँहमें प्रविष्ट कर दिया। अजगरका मुँह एक आदमीने पकड़ रक्खा था और प्रत्येक दो फ़ुटकी दूरी पर उसे कुछ लोगोंने उठा रक्खा था। बाँससे खरगोशोंको अन्दर ढकेला जाता था; नीचे हाथों पर उसका अनुभव होता था, जिससे यह पता लग जाता कि खरगोश कितनी दूरी तक पहुँच गये हैं। आमाशयमें पहुँचा कर बाँस बाहर निकाल लिया जाता था।

[शेष फिर]

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक—डा० जी० घोष, डा० गोरखप्रसाद आदि]

दूध छुड़ाना—लीग ऑफ़ नेशन्स ने एक बार विशेषज्ञोंकी एक कमेटी बनाई थी, जिसने इस प्रश्न पर कि बच्चोंका दूध कब छुड़ाना चाहिये (अर्थात् माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये) निम्न शिफारिश की थी—

"माताका दूध पिलाना बाहरके दूध पिलानेसे सदा ही अधिक अच्छा होता है और छः महीने तक बच्चोंको यह अवश्य मिलना चाहिये, चाहे माताको दूध कम होता हो चाहे अधिक।

यदि दूध कम होता हो तो ऊपरसे अन्य आहार देना चाहिए। यदि ६ महीने तक अन्य आहारके साथ माता अपना दूध भी पिलाती जाय तो लाभदायी है।"

दूध छुड़ानेकी आदर्श रीति यह है कि सातवें महीने से स्तन-पोषित बच्चेको धीरे-धीरे थोड़ा गायका दूध और ठोस आहार (अनाज आदि) भी दिया जाय और साथ ही माताके दूधमें उतनी कमी कर दी जाय। दसवें महीने तक माताका दूध एकदम बन्द हो जाना चाहिए; उसके बदले बच्चेको गायका दूध मिलना चाहिए। गायका दूध ही बच्चेका प्रधान आहार इस समय होना चाहिए। उन ठोस आहारोंमें जो बच्चेको इस समय दिये जा सकते हैं निम्न भी सम्मिलित हैं, रोटी, या रोटी और मक्खन, दाल, भात, नरम हरी तरकारियाँ, अन्य नरम तरकारियाँ, कुचले हुए फल, आदि। यदि अंडेसे परहेज़ न हो तो अंडेकी ज़र्दी (पीला भाग) भी दी जा सकती है। दही भी दिया जा सकता है। तरकारीको थोड़ेसे पानीमें उबाल कर और इस प्रकार उसका रस निकाल कर बच्चेको तरकारियोंका रस देना भी बहुत अच्छा है परन्तु रस बिना मसालेका रहे और क़लई किये बरतन या ऐसे बरतनमें बनाया जाय जिस पर तरकारियोंके रसोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ता (जैसे, तामचीनीके बरतनमें)।

स्मरण रखना चाहिए कि लगभग ६ महीने तक बच्चा स्टार्च (starch) पचा नहीं सकता (अत्यन्त सूक्ष्म मात्राकी बात दूसरी है) और सभी अनाजोंमें स्टार्च रहता है। इसलिए यदि बच्चेको ६ महीनेके हो जानेके पहले ही अनाज दिया जायगा तो पेटके रोग हो जा सकते हैं।

साल भरके बच्चे इच्छानुसार मात्रामें अनाज, फल और तरकारी खा सकते हैं, परन्तु इस आयुमें भी उनके आहारका एक प्रधान भाग दूध ही होना चाहिए।

गरीबोंके बच्चे—ऊपर बच्चोंके पालन-पोषणके बारेमें जो बातें लिखी हैं वे ही पूर्णतया उचित हैं, परन्तु गरीबोंके लिए उनका अनुसरण सम्भव नहीं है क्योंकि वे इतना पैसा नहीं खर्च कर सकते। सबसे अधिक कठिनाई उन्हें दूध मोल लेनेमें पड़ती है और बच्चेको पर्याप्त दूध नहीं मिल पाता। जब तक बच्चा माताके दूध पर रहता है तब तक तो किसी तरह काम चल जाता है, परन्तु जब बच्चेके दूध छुड़ानेका समय आता है तब विशेष कठिनाई पड़ती है। अकसर तब केवल अनाज ही (चावलका माँड आदि) खिला कर बच्चा पाला जाता है और इससे बच्चेका स्वास्थ्य बहुत गिर जाता है।

अकसर गरीबोंके बच्चे बहुत अधिक समय तक—कभी-कभी दो वर्ष तक—माताका दूध पीते रहते हैं। यदि माताको पर्याप्त मात्रामें अच्छा भोजन मिलता रहे तो इसमें कोई हानि नहीं है। यदि साधारण दूध न मिल सके तो बच्चेको मखनिया दूध (अर्थात् मक्खन निकाला ही दूध) देना चाहिए, परन्तु तब आवश्यक है कि कॉड लिवर ऑयल भी दिया जाय अन्यथा बच्चा पूर्ण रूपसे स्वस्थ्य नहीं रह सकेगा। ऐसा सम्भव जान पड़ता है कि सस्ता, माल्ट रूपमें परिवर्त्तित अनाज ६ महीनेसे छोटे बच्चोंको देकर निर्धनोंका भी निर्वाह हो सके, परन्तु अभी इस पर इतनी खोज नहीं हो पाई है कि निश्चित रूपसे कहा जा सके कि यह कहाँ तक सम्भव है।

यदि गरीबीके कारण बच्चेको अनाज पर ही रखना पड़े तो मिलसे साफ किये गये चावलके बदले ढेकीसे कूटे चावल, आटा (मैदा नहीं, और सम्भव हो तो बहुत कम चोकर निकाला आटा), दाल, हरी तरकारियों और फलोंका उपयोग करना चाहिए।

१६३८ में ब्रिटिश भारतवर्षमें लगभग डेढ़ लाख बच्चे १ वर्षकी आयु हो पानेके पहले ही मर गये और इनमेंसे अधिकांश केवल दुष्पोषणके ही कारण मरे।

आहारोंका पोषण-शक्ति वाली सारिणियाँ—अगले पृष्ठसे जो सारिणी आरंभ होती है वह उन आहार पदार्थों पर प्रयोग करके प्राप्त की गयी है जो स्थानीय (कोनूर) के बाज़ारमें से खरीदा गया था। परन्तु कुछ सामान उत्तरी भारतवर्षसे भी मँगाया गया था। जो लोग यह जानना चाहें कि यह सब खोज कैसे हुई उनको इण्डियन जरनल ऑफ़ मेडिकल रिसर्च, १६३७, जिल्द २४, पृष्ठ ६८६ देखना चाहिए।

इस सारिणीमें जो आँकड़े दिये गये हैं वे प्रतिशत सूचित करते हैं। उदाहरणतः जहाँ दिखलाया गया है कि बाजरेमें जल १२·४ प्रतिशत होता है वहाँ यह अर्थ है कि

आहार-पदार्थों की पौष्टिक शक्ति

पदार्थका नाम	जल %	प्रोटीन %	वसा (ईथरमें घुलनशील) %	खनिज पदार्थ %	रेशा %	कार्बोहाइड्रेट %	कैलसियम %	फ़ॉसफ़ोरस %	लोहा मिलीग्राममें, प्रति १०० ग्राम	विटेमिन ए या कैरोटीन, अंतरराष्ट्रीय एकाइयोंमें, प्रति १०० ग्राम	विटेमिन बी$_1$, अंतरराष्ट्रीय एकाइयोंमें, प्रति १०० ग्राम	विटेमिन सी, मिलीग्राममें, प्रति १०० ग्राम	कैलोरियाँ, प्रति आधी छटाँक
अनाज													
कंगनी	११'२	१२'३	४'७	३'२	८'०	६०'६	०'०३	०'२९	६'३	५४	१९५	...	९५
कोदू	११'३	१०'३	२'४	२'४	८'६	६५'०	०'०७	०'३०	१३'२	...	३००	...	९२
कुटकी	११'५	७'७	४'७	४'८	७'६	६३'७	०'०२	०'३६	७'१	सूक्ष्म	१००	...	९३
कोदो	१२'८	८'३	१'४	२'६	९'०	६५'६	०'०४	०'२४	५'२	सूक्ष्म	११०	...	८७
गेहूँ, समूचा	१२'८	११'८	१'५	१'५	१'२	७१'२	०'०५	०'३२	५'३	१०८	१८०	...	९८
गेहूँ, आटा	१२'२	१२'१	१'७	१'८	...	७२'२	०'०४	०'३२	७'३	...	...	...	१००
गेहूँ, मैदा	१३'३	११'०	०'९	०'४	०'३	७४'१	०'०२	०'०९	१'०	...	४०	...	९९
चावल, अरवा, घरका कुटा	१२'२	८'५	०'६	०'७	...	७८'०	०'०१	०'१७	२'८	४	६०	...	१००
चावल, भुजिया, घरका कुटा	१२'६	८'५	०'६	०'९		७७'४	०'०१	०'२८	२'८	१५	९०	...	९९
चावल, अरवा, मशीनका कुटा	१३'०	६'९	०'४	०'५	...	७९'२	०'०१	०'११	१'०	०	२०	...	९९
चावल, भुजिया, मशीनका कुटा	१३'३	६'४	०'४	०'८	...	७९'१	०'०१	०'१५	२'२	०	७०	...	९८
चूड़ा	१२'२	६'६	१'२	१'८	...	७८'२	०'०२	०'२२	८'०	...	७०	...	९९
चावलकी फरुही या लाई	१४'७	७'५	०'१	३'४	...	७४'३	०'०२	०'१६	६'२	...	७०	...	९३
जौ	१२'५	११'५	१'३	१'५	३'९	६९'३	०'०३	०'२३	३'७		१५०	...	९५
ज्वार	११'९	१०'४	१'९	१'८	...	७४'०	०'०३	०'२८	६'२	१३६	११५	...	१०१
जई	१०'७	१३'६	७'६	१'८	३'५	६२'८	०'०५	०'३८	३'८	सूक्ष्म	३२५	...	१०६
बाजरा	१२'४	११'६	५'०	२'७	१'२	६७'१	०'०५	०'३५	८'८	२२०	११०	...	१०२
बजरी या रगी	१३'१	७'१	१'३	२'२	...	७६'३	०'३३	०'२७	५'४	७०	१४०	...	९८
मकई या भुट्टा, नरम	७९'४	४'३	०'५	०'७	...	१५'१	०'०१	०'१०	०'७	४२	...	४	२३
मकई सूखा	१४'९	११'१	३'६	१'५	२'७	६६'२	०'०१	०'३३	२'१	...	...	...	९७
मकईका आटा	११'५	०'६	०'५	०'४	.	८७'०	०'०२	०'३२	५'३	...	...	...	१०१
साँवा	११'९	६'२	२'२	४'४	९'८	६५'५	०'०२	०'२८	२'९	सूक्ष्म	...	...	८७

दाल													
अरहर, भूसी छुड़ाया	१५.२	२२.३	१.७	३.६	...	५७.२	०.१४	०.२६	८.८	२२०	१५०	...	९५
उरद	१०.९	२४.०	१.४	३.४	...	६०.३	०.२०	०.३७	९.८	६४	१४०	...	९९
खेसारी	१०.०	२८.२	०.६	३.०	...	५८.७	०.११	०.५०	५.६	२००	...	...	१००
चना, (सूखा) भुना, भूसी छुड़ाया	११.२	२२.५	५.२	२.२	...	५८.९	०.०७	०.३१	८.९	...	...	...	१०६
चना, भूसी सहित	९.८	१७.१	५.३	२.७	३.९	६१.२	०.१९	०.२४	९.८	३१६	१००	...	१०३
मटर, भुना	९.९	२२.९	१.४	२.३	...	६३.५	०.०३	०.३६	५.०	...	...	...	१०२
मटर (सूखा)	१६.०	१९.७	१.१	२.१	४.५	५६.६	०.०७	०.३०	४.४	...	१५०	...	८९
मसूर	१२.४	२५.१	०.७	२.१		५९.७	०.१३	०.२५	२.०	४५०	१५०	...	९८
मूँग	१०.४	२४.०	१.३	३.६	४.१	५६.६	०.१४	०.२८	८.४	१५८	१५५	...	९५
लोबिया	१२.७	२३.४	१.३	२.९	..	५९.७	०.०८	०.४३	४.३		...	...	९८
सोयाबीन	८.१	४३.२	१९.५	४.६	३.७	२०.९	०.२४	०.६९	११.५	७१०	३००	...	१२३
साग													
अजवायनका पत्ता	८१.३	६.०	०.६	२.१	१.४	८.६	०.२३	०.१४	६.३	५,८०० से ७,५००	सूक्ष्म	६२	१८
करमकल्ला या पातगोभी	९०.२	१.८	०.१	०.६	१.२	६.३	०.०३	०.०५	०.८	२,०००	५०	१२४	९
खेसारी (साग)	८४.२	६.१	१.०	१.१	...	७.६	०.१६	०.१०	७.३	६,०००	...	...	१८
गाजर (पत्तियाँ)	८३.३	५.१	०.५	२.८	...	८.३	०.३४	०.११	८.८	...	...	...	१६
चना (पत्तियाँ)	७७.८	७.०	१.४	२.१	...	११.७	०.३४	०.१२	२३.८	...	...	..	२५
चौराई, (कांटेवाली)	८५.०	३.०	०.३	३.६	...	८.१	०.८०	०.०५	२२.९		...	...	१३
चौराई लाल	८५.८	४.९	०.५	३.१	...	५.७	०.५०	०.१०	२१.४	२,५०० से ११,०००	१०	१७३	१३
धनिया	८७.९	३.३	०.६	१.७	...	६.५	०.१४	०.०६	१०.०	१०,४६०से १२,६००	...	१३५	१३
नीम (फुनगी)	५९.४	११.६	३.०	२.६	२.२	२१.२	०.१३	०.१९	२५.३	४,६००	...	...	४५
पटुआ, लाल	८६.२	१.७	१.१	१.०	...	१०.०	०.१८	०.०४	५.४	...	...	...	१६
पालक	९१.७	१.९	०.९	१.५	...	४.०	०.०६	०.०१	५.०	२,६००से ३,५००	७०	४८	९
पुदीना	८३.०	४.८	०.६	१.६	२.०	८.०	०२.०	०.०८	१५.६	२,७००	...	...	१६
बथुआ	८७.९	४.७	०.४	३.३	...	३.७	०.१५	०.०८	४.२		...	...	११
मेथी	८१.८	४.९	०.९	१.६	१.०	९.८	०.४७	०.०५	१६.९	३,९००	७०	...	१९
सलाड (लेटिस)	९२.९	२.१	०.३	१.२	०.५	३.०	०.०५	०.०३	२.४	२,२००	९०	१५	७
सरसों (साग ,	८४.९	५.१	०.४	२.५	...	७.१	०.३७	०.११	१२.५		..	...	१५
सहजन	७५.०	६.७	१.७	२.३	०.९	१३.४	०.४४	०.०७	७.०	११,३००	७०	२२०	२७

पदार्थ का नाम	जल %	प्रोटीन %	वसा (ईथरमें घुलनशील) %	खनिज पदार्थ %	रेशा %	कार्बोहाइड्रेट %	कैलसियम %	फ़ासफ़ोरस	लोहा मिलग्राममें प्रति १०० ग्राम	विटैमिन ए	विटैमिन बी१	विटैमिन सी	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक
कंद-मूल													
अरुई	७३·१	३·०	०·१	१·७	...	२२·१	०·०४	०·१४	२·१	४०	८०	सूक्ष्म	२९
आलू	७४·७	१·६	०·१	०·६	...	२२·९	०·०१	०·०३	०·७	४०	२०	१७	२८
गाजर	८६·०	०·९	०·१	१·१	१·२	१०·७	०·०८	०·०३	१·५	२,०००से ४·३००	६०	३	१३
चुकंदर	८३·८	१·७	०·१	०·८		१३·६	०·२०	०·०६	१·०	सूक्ष्म	७०	<८८	१८
ज़मीकंद	७८·७	१·२	<०·१	०·८	०·८	१८·४	०·०५	०·०२	०·६	४३४	२०	सूक्ष्म	२२
प्याज़	८६·८	१·२	<०·१	०·४	...	११·६	०·१८	०·०५	०·७	.	४०	११	१४
मूली	९४·४	०·७	०·१	०·६	...	४·२	०·०५	०·०३	०·४	३	६०	१५	६
रतालू	६९·९	१·४	०·१	१·६	...	२७·०	०·०६	०·०२	१·३		२४	सूक्ष्म	३३
शकरकंद	६६·५	१·२	०·३	१·०	...	३१·०	०·०२	०·०५	०·८	१०		२४	३७
साबूदाना (टैपिओका)	५९·४	०·७	०·२	१·०	...	३८·७	०·०५	०·०४	०·९	...	१५	...	४५
अन्य तरकारी													
आँवला	८१·२	०·५	०·१	०·७	३·४	१४·१	०·०५	०·०२	१·२		...	६००	१७
आम कच्चा	९०·०	०·७	०·१	०·४	..	८·८	०·०१	०·०२	४·५	१५०	...	३	११
कटहल, कच्चा	८४·०	२·६	०·३	०·९	२·८	९·४	०·०३	०·०४	१·७	...	...		१४
कटहल, बीज	५१·६	६·६	०·४	१·५	१·५	३८·४	०·०५	०·१३	१·२	.	..		५२
करेला	९२·४	१·६	०·२	०·८	०·८	४·२	०·०२	०·०७	२·२	२१०	२४	८८	७
कुम्हड़ा	९२·६	१·४	०·१	०·६	...	५·३	०·०१	०·०३	०·७	८४	२००	२	८
केला	८३·२	१·४	०·२	०·५	...	१४·७	०·०१	०·०३	०·६	५०	१५	२४	१९
केलेका फूल	९०·२	१·५	०·२	१·०	१·९	५·०	०·०३	०·०५	०·१	..			८
खीरा	९६·४	०·४	०·१	०·३		२·८	०·०१	०·०३	१·५	सूक्ष्म	३०	७	४
गोभा	८९·४	३·५	०·४	१·४	...	५·३	०·०३	०·०६	१·३	३८	११०	६६	११
चिचिंडा	९४·१	०·५	०·३	०·७	...	४·४	०·०५	०·०२	१·३	१६०	...	सूक्ष्म	६
चौराई डंठल	९२·५	०·९	०·१	१·८	१·२	३·५	०·२६	०·०३	१·८			...	५
टमाटर, कच्चा	९२·८	१·९	०·१	०·७	...	४·५	०·०२	०·०४	२·४	३२०	२३	३१	८
टिंडा	९२·३	१·७	०·१	०·६	...	५·३	०·०२	०·०३	०·९	२८	...	...	८
तरोई	९५·४	०·५	०·१	०·३	...	३·७	०·०४	०·०४	१·६	५६	२२	...	५

परवल	९२·३	२·०	०·३	०·५	३·०	१·९	०·०३	०·०४	१·७	...	...	...	५
पेठा	९६·०	०·४	०·१	०·३	.	३·२	०·०३	०·०२	०·५	सूक्ष्म	२१	१	४
प्याजका डंडल	८७·६	०·९	०·२	०·८	१·६	८·९	०·०५	०·०५	७·५	.	...	...	१२
बैंगन	९१·५	१·३	०·३	०·५	.	६·४	०·०२	०·०६	१·३	५	१५	२३	१०
भिंडी	८८·०	२·२	०·२	०·७	१·२	७·७	०·०९	०·०८	१·५	५८	२१	१६	१२
मटर	७२·१	७·२	०·१	०·८	...	१६·८	०·०२	०·०८	१·५	१३६	१२०	९	३१
लौकी	९६·३	०·२	०·१	०·५	...	२·९	०·०२	०·०१	०·७	सूक्ष्म		...	४
शलजम	९१·१	०·५	०·२	०·६	...	७·६	०·०३	०·०४	०·४	सूक्ष्म	४०	४३	१०
सहजन (सैजन)	८६·९	२·५	०·१	२·०	४·८	३·७	०·०३	०·११	५·३	१८४	...	१२०	७
सिंघाड़ा	७०·०	४·७	०·३	१·१	..	२३·९	०·०२	०·१५	०·८	२०	...		३३
सेम	८२·४	४·५	०·१	१·०	२·०	१०·०	०·०५	०·०६	१·६	...	...	१२	१७
हाथीचक	७७·३	३·६	०·१	१·८	१·२	१६·०	०·१२	०·१०	२·३	६०	७५	सूक्ष्म	२२
मेवा और तिलहन													
अखरोट	४·५	१५·६	६४·५	१·८	२·६	११·०	०·१०	०·३८	४·८	१०	१५०	०	१९५
काजू	५·६	२१·२	४६·६	२·४	१·३	२२·३	०·०५	०·४५	५·०	१००	.	०	१६९
गरी	३६·३	४·५	४१·६	१·०	३·६	१३·०	०·०१	०·२४	१·७	सूक्ष्म	१५	१	१२६
तिल	५·१	१८·३	४३·३	५·२	२·९	२५·२	१·४५	०·५७	१०·५	१००	...	०	१६०
तीसी (अलसी)	६·६	२०·३	३७·१	२·४	४·८	२८·८	०·१७	०·३७	२·७	५०	...	०	१५१
पिस्ता	५·६	१९·८	५३·५	२·८	२·१	१६·२	०·१४	०·४३	१३·७	२४०	...	०	१७८
बादाम	५·२	२०·८	५८·९	२·९	१·७	१०·५	०·२३	०·४९	३·५	सूक्ष्म	८०	०	१८६
मूँगफली	७·९	२६·७	४०·१	१·६	३·१	२०·३	०·०५	०·३९	१·६	६३	३००	०	१५६
मूँगफली, भूनी	४·०	३१·५	३९·८	२·३	३·१	१९·३	०·०५	०·४४	०·३		...	०	१५९
राई	८·५	२२·०	३९·७	४·२	१·८	२३·८	०·४९	०·७०	१७·९	२७०	...	सूक्ष्म	१५१
मसाले													
अजवायन	८·९	१५·४	१८·१	७·१	११·९	३८·६	१·४२	०·३०	१४·६	..	...	...	१०८
अदरक	८०·९	२·३	०·९	१·२	२·४	१२·३	०·०२	०·०६	२·६	६७	...	६	१९
इमली	२०·९	३·१	०·१	२·९	५·६	६७·४	०·१७	०·११	१०·९	१००	...	३	८२
इलायची	२०·०	१०·२	२·२	५·४	२०·१	४२·१	०·१३	०·१६	५·०	.	...	०	६५
काली मिरच	१२·९	११·५	६·८	४·४	१४·९	४९·५	०·४६	०·२०	१६·८	..	...	...	८७
जायफल	१४·३	७·५	३६·४	१·७	११·६	२८·५	०·१२	०·२४	४·६	सूक्ष्म	...	०	१३४
जावित्री	१५·९	६·५	२४·४	१·६	३·८	४७·८	०·१८	०·१०	१२·६	...	...	०	१२४
जीरा	११·९	१८·७	१५·०	५·८	१२·०	३६·६	१·०८	०·४९	३१·०	८७०	...	३	१०१
धनिया	११·२	१४·१	१६·१	४·४	३२·६	२१·६	०·६३	०·३७	१७·९	१,५७०	...	सूक्ष्म	८२

पदार्थ का नाम	जल %	प्रोटीन %	वसा (ईथरमें घुलनशील) %	खनिज पदार्थ %	रेशा %	कार्बोहाइड्रेट %	कैलसियम %	फ़ासफ़ोरस	लोहा मिलग्राममें प्रति १०० ग्राम	विटैमिन ए	विटैमिन बी१	विटैमिन सी	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक
मिरचा, सूखा	१०.०	१५.९	६.२	६.१	३०.२	३१.६	०.१६	०.३७	२.३	५७६	...	५०	७०
मिरचा, हरा	८२.६	२.९	०.६	१.०	६.८	६.१	०.०३	०.०८	१.२	४५४	...	१११	१२
मेथी	१३.७	२६.२	५.८	३.०	७.२	४४.१	०.१६	०.३७	१४.१	१६०	...	०	६५
राई	८.५	२२.०	३९.७	४.२	१.८	२३.८	०.४९	०.७०	१७.९	२७०	...	सूक्ष्म	१५४
लहसुन	६२.८	६.३	०.१	१.०	०.८	२९.०	०.०३	०.३१	१.३	०	...	१३	४०
लौंग	२३.३	५.२	८.९	५.२	९.५	४७.९	०.७४	०.१०	४.९	...	...	०	८३
हल्दी	१३.१	६.३	५.१	३.५	२.६	६९.४	०.१५	०.२८	१८.६	५०	...	०	९९
हींग	१६.०	४.०	१.१	७.०	४.१	६७.८	०.६९	०.०५	२२.२	...	...	०	८४
फल													
अंगूर	८५.५	०.८	०.१	०.४	३.०	१०.२	०.०३	०.०२	०.४	१५	सूक्ष्म	३	१३
अंजीर	८०.८	१.३	०.२	०.६		१७.१	०.०६	०.०३	१.२	२७०		२	२१
अनन्नास	८६.५	०.६	०.१	०.५	४	१२.०	०.०२	०.०१	०.९	६०	...	६३	१४
अनार	७८.०	१.६	०.१	०.७	५.१	१४.६	०.०१	०.०७	०.३	०	...	१६	१८
अमरूद	७६.१	१.५	०.२	०.८	६.९	१४.५	०.०१	०.०४	१.०	सूक्ष्म	...	२९९	१९
अलूचा	८९.८	०.७	०.२	०.४	...	८.९	०.०२	०.०२	०.५	२३०	४०	१	११
आड़ू	९०.१	१.५	०.२	०.६	...	७.६	०.०१	०.०३	१.७	सूक्ष्म	...	१	११
आम, कच्चा	९०.०	०.७	०.१	०.४	...	८.८	०.०१	०.०२	४.५	१५०	...	३	११
आम, पक्का	८६.१	०.६	०.१	०.३	१.१	११.८	०.०१	०.०२	०.३	४,८००	...	१३	१४
इमली, गूदा	२०.९	३.१	०.१	२.९	५.६	६७.४	०.१७	०.११	१०.९	१००	...	३	८२
कटहल, पक्का	७७.२	१.९	०.१	०.८	१.१	१८.९	०.०२	०.०३	०.५	५४०	...	१०	४
कमरख	९३.९	०.५	०.१	०.२	०.४	४.८	०.०१	०.०१	०.६	२४०	...	...	७
करौंदा, सूखा	१८.२	२.३	९.६	२.८	...	६७.१	०.१६	०.०६	३९.१	...	...		१०३
किशमिश	१८.५	२.०	०.२	२.०	...	७७.३	०.१०	०.०८	४.०	०	७५	सूक्ष्म	९१
केला	७३.४	१.१	०.१	०.७	...	२४.७	०.०१	०.०३	०.५	१२४	...	६	३०
केला, बड़ा	६१.४	१.३	०.२	०.७	...	२६.४	< ०.०१	०.०५	०.४	सूक्ष्म	५०	१	४३
कैथा	६९.५	७.३	०.६	१.९	५.२	१५.५	०.१३	०.११	०.६			...	२८
खजूर (विदेशी)	२६.१	३.०	०.२	१.३	२.१	६७.३	०.०७	०.०८	१०.६	६००	३०	सूक्ष्म	८०

चकोतरा	९२·०	०·७	<०·१	०·२	...	७·१	०·०२	०·०२	०·२	...	४०	३१	९
जामुन	७८·२	०·७	०·१	०·४	०·९	१९·७	०·०२	०·०१	१·०	...	...	...	२४
टमाटर, पके	९४·५	१·०	०·१	०·५	...	३·९	०·०१	०·०२	०·१	३२०	४०	३२	६
तरबूज़	९५·७	०·१	०·२	०·२	...	३·८	<०·११	०·०१	०·२	सूक्ष्म	...	१	५
नाब (विलायती नाशपाती)	८५·८	०·९	०·२	०·२	...	१२·९	०·०१	०·०२	०·८	८०	०		१६
नारंगी (संतरा)	८७·८	०·९	०·३	०·४	...	१०·६	०·०५	०·०२	०·१	३५०	४०	६८	१४
नाशपाती	८६·९	०·२	०·१	०·३	१·०	११·५	०·०१	०·०१	०·७	१४	...	सूक्ष्म	१३
नींबू, खट्टा	८४·६	१·५	१·०	०·७	१·३	१०·९	०·०९	०·०२	०·३	२६	...	६३	१७
नींबू, मीठा	८५·०	१·०	०·९	०·३	१·७	११·१	०·०७	०·०१	२·३	सूक्ष्म	...	३९	१६
पपीता	८९·६	०·५	<०·१	०·४	...	९·५	०·०१	०·०१	०·४	२,०२०	...	४६	११
बेर	८५·९	०·८	०·१	०·४	...	१२·८	०·०३	०·०३	०·८	७०	...		१६
रसभरी (मकोय)	८२·७	१·८	०·२	०·६	३·२	११·५	०·०१	०·०६	१·८	...		४९	१६
सेब	८५·९	०·३	०·१	०·३	...	१३·४	०·०१	०·०१	१·७	सूक्ष्म	४०	२	१६
मांस आदि													
अंडा (बत्तक)	७१·०	१३·५	१३·७	१·०	...	०·७	०·०७	०·२६	३·०	२,१००	...	...	५१
अंडा (मुर्गी)	७३·७	१३·३	१३·३	१·०	...		०·०६	०·२२	२·१	२,२००	...		४९
कलेजी या यकृत (भेड़)	७०·४	१९·३	७·५	१·५	...	१·४	०·०१	०·३८	६·३	२२,३००	१२०	२०	४३
केकड़ा	८३·५	८·९	१·१	३·२	...	३·४	१·३७	०·१५	२१·२	१,३००			१७
गोमांस	७४·३	२२·६	२·६	१·०	...	...	०·०१	०·१९	०·८	५९	५०	२	३२
झींगा	७७·९	२०·८	०·३	१·४	...	...	०·०९	०·२४	०·८	सूक्ष्म	<३०	...	२४
भेड़का मांस	७१·५	१८·५	१३·३	१·३	...	...	०·१५	०·१५	२·५	३१	६०	...	५५
मछली, छोटी	७७·९	२१·५	१·६	२·०	...	...	०·०६	०·४१	२·३	३५	...		२८
मछली, बड़ी	७८·४	२२·६	०·६	०·८	...	...	०·०२	०·१९	०·९				२६
सूअरका मांस	७७·४	१८·७	४·४	१·०	...	...	०·०३	०·२०	२·३	सूक्ष्म	१८०	२	३२
दूध, दही आदि													
खोआ (भैंसके दूधका)	३०·६	१४·६	३१·२	३·१	...	२०·५	०·६५	०·४२	५·८	...	...	०	१२०
खोआ, मखनिया दूधका (भैंस)	४६·१	२२·३	१·६	४·३	...	२५·७	०·९९	०·६५	२·७		..	०	५९
दही (गायके दूधका)	९०·३	२·९	२·९	०·६	...	३·३	०·१२	०·०९	०·३	१३०	...		१४
दूध (गाय)	८७·६	३·३	३·६	०·७	...	४·८	०·१२	०·०९	०·२	१८०	१७	२	१८
दूध (बकरी)	८५·२	३·७	५·६	०·८	...	४·७	०·१७	०·१२	०·३	१८२	...	२	२४
दूध (भैंस)	८१·०	४·३	८·८	०·८	...	५·१	०·२१	०·१३	०·२	१६२	...	...	३३
दूध (स्त्री)	८८·०	१·०	३·९	०·१	...	७·०	०·०२	०·०१	०·२	२०८	...	२	१९
पनीर	४०·३	२४·१	२५·१	४·२	...	६·३	०·७९	०·५२	२·१	२७३	...	...	९९

पदार्थका नाम	जल %	प्रोटीन %	वसा, ईथरमें घुलनशील %	खनिज पदार्थ %	रेशा %	कार्बोहाइड्रेट %	कैलसियम %	फासफोरस %	लोहा मिलीग्राममें प्रति १०० ग्राम	विटैमिन ए	विटैमिन बी१	विटैमिन	कैलोरियाँ प्रति आधी छटाँक
मखनिया दूध (मक्खन निकाला दूध)	९२·१	२·५	१·०	०·७	...	४·६	०·१२	०·०९	०·२	...	...	१	८
मट्ठा	९७·५	०·८	१·१	०·१	...	०·५	०·०३	०·०३	०·८	सूक्ष्म	...	...	४
विविध													
अरारोट	१६·५	०·२	०·१	०·१	...	८३·१	०·०१	०·०२	१·०	०	...	...	९५
ईखका रस	९०·२	०·१	०·२	०·४	...	९·१	०·०१	०·०१	१·१	१०	...	.	११
कॉड लिवर आयल (मछलीकी कलेजीका तेल)		...	१००·०	...	...	...	...	...		६०,०००से २००,०००	...	०	२५६
खमीर, सूखा	१३·६	३९·५	०·६	७·०	०·२	३९·१	०·४४	१·४९	४३·७	२,११०	...	...	९१
गरी (कच्ची)	९०·८	०·९	१·४	०·६	...	६·३	०·०१	०·०३	०·९	...	...	२	११
गरीका पानी	९५·५	०·१	< ०·१	०·४	...	४·०	०·०२	०·०१	०·५	.	...	.	५
गुड़	३·९	०·४	०·१	०·६	...	९५·०	०·०८	०·०४	११·४	२८०	...	०	१०९
ताड़ी, खमीर उठी	९७·६	०·१	०·३	०·२	...	१·८	०·०१	०·०१	१·१	< ५	...	...	३
ताड़ी, मीठी	८४·७	०·१	०·२	०·७	...	१४·३	०·१५	०·०१	०·३	०	...	.	१७
पान	८५·४	३·१	०·८	२·३	२·३	६·१	०·२३	०·०४	५·७	९,६००	...	५	१२
पापड़	२०·३	१८·८	०·३	८·२	...	५२·४	०·०८	०·३०	१७·२	सूक्ष्म	...	०	८२
मखाना	१२·८	९·७	०·१	०·५	...	७६·९	०·०२	०·०९	१·४	.	...	...	९९
लाल खजूरका तेल (अफ्रीका का)		...	१००·०	..	...	...	..		...	४०,०००से ५०,०००	. .	...	२५६
साबूदाना (सेगो)	१२·२	०·२	०·२	०·३	...	८७·१	०·०२	०·०१	१·३	०	...	...	१००
सिंघाड़ा सूखा	१३·८	१३·८	०·८	३·१	...	६८·९	०·०७	०·४४	२·४	सूक्ष्म	...	...	९५
सुपाड़ी	३१·३	४·९	४·४	१·०	११·२	४७·२	०·०५	०·१३	१·५	५	...	...	७०
हैलीबट लिवर आयल			१००·०			..	...	..	..	३,६००,०००	...	०	२५६

टिप्पणी १—शहद (मधु) की चीनी ग्लूकोज़ और फ्रुक्टोज़के रूपमें रहता है जो साधारण चीनीसे अधिक सुपच होता है।

टिप्पणी २—अनाजोंमें विटैमिन सी नहीं रहता, परन्तु जब चना, मटर आदि अनाजोंको भिगा देने पर उनमेंसे कल्ले (अंकुर) निकलने लगते हैं तब उनमें विटैमिन सी उत्पन्न हो जाता है।

१०० तोला बाजड़ेमें १२'४ या १२$\frac{4}{10}$ तोला जल होता है। दो विटैमिनोंकी मात्राएँ १०० ग्रामके लिए दी गयी हैं। स्मरण रखना चाहिए कि १०० ग्राम पौने नौ तोलेके बराबर अर्थात् १$\frac{3}{4}$ छटाँकके बराबर होता है। अन्य तौलके लिए विटैमिनोंकी मात्रा जाननी हो तो इसी हिसाबसे जोड़ लेना चाहिए। जहाँ विटैमिनोंके स्तम्भमें कुछ नहीं लिखा है वहाँ समझना चाहिए कि अभी तक जाँच नहीं की गयी है। विटैमिन सी और लोहेकी मात्रा १०० ग्राम पदार्थके लिए मिलीग्रामोंमें लिखी गयी है। इसे यों भी कह सकते हैं कि इन स्तम्भोंके अंक यह प्रदर्शित करते हैं कि १२ सेर पदार्थमें कितनी रत्तीके तौलके बराबर लोहा या विटैमिन है।

ऊपर दी गयी सारिणी डाक्टर ऐकरॉयडकी पूर्वोक्त पुस्तकसे ली गयी है। इसमें दो-चार आवश्यक वस्तुओंका विश्लेषण नहीं दिया गया है। यह कमी अगले पेजकी सारिणी से पूरी हो जायगी जो कर्नल चोपड़ाकी पुस्तक 'ट्रॉपिकल थेराप्यूटिक्स' में दी गयी सारिणियोंसे बनायी गयी है। इस सारिणीमें खनिजोंकी मात्रा नहीं दिखलायी गयी है। विटैमिनोंकी मात्रा भी नापके अनुसार नहीं है, केवल चिह्नोंसे इनकी मात्राओंका संकेत कर दिया गया है। ० = कुछ नहीं, + = न्यून मात्रामें, + + = अच्छी मात्रामें; + + + बहुत अधिक मात्रा में। जहाँ केवल　हो वहाँ समझना चाहिये कि जाँच नहीं हो पायी है।

नीचेकी कुछ टिप्पणियाँ डाक्टर त्रिलोकीनाथ वर्मा कृत 'हमारे शरीरकी रचना' से संकलित की गयी हैं।

भोजनकी कुछ और चीज़ें—मसाले, चाय, क़हवा, कोको इनमेंसे कोई चीज़ भी जीवनके लिए आवश्यक नहीं है; न इनसे सेलोंकी वृद्धि होती है और न शक्ति उत्पन्न होती है। मसालोंसे भोजन स्वादिष्ट और रोचक बन जाता है; स्वादिष्ट भोजन अस्वादिष्ट भोजनकी अपेक्षा भले प्रकार और शीघ्र पचता है। अधिक मसाला अजीर्ण पैदा करके स्वास्थ्यको बिगाड़ता है।

भारतवर्षमें चायका रिवाज प्रतिदिन बढ़ता जाता है। अच्छी बनी हुई चाय एक प्रकारका उत्तेजक है। थकावटके बाद चाय पीनेसे थकावट कम हो जाती है। बिना आवश्यकता उत्तेजक वस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं। चायको पानीमें पकाना नहीं चाहिए; ऐसा करनेसे चायके हानिकारक अवयव पानीमें घुल जाते हैं। उबलते हुए जलमें चायको तीन-चार मिनट भिगोकर छान लेना चाहिए; इस थोड़ेसे समयमें इसके उत्तेजक अवयव तो पानीमें घुल जाते हैं, परन्तु हानिकारक अवयव बहुत कम घुल पाते हैं। ४ मिनटसे ज़्यादा भिगोनेसे चाय कड़ुवी हो जाती है और अजीर्ण पैदा करती है।

अनाजोंमें विटैमिन

अनाजोंमें साधारणतः विटैमिन सी नहीं होता, परंतु जब चना, मटर आदि अनाजोंको पानीसे भिगाकर रक्खा जाता है और उनमें कल्ले (अंकुर) निकल आते हैं, जैसा बाईं ओरके चित्रमें दिखलाया गया है तो उनमें विटैमिन सी उत्पन्न हो आता है (चित्रमें मटर और मसूरके दाने दिखलाये गये हैं)। दाहिनी ओर गेहूँका एक दाना बीचसे काटकर बहुत बड़े पैमानेपर दिखलाया गया है। गेहूँमें विटैमिन उस भागमें रहते हैं जो चित्रमें दाहिनी ओर वाले नीचेके अंशमें दिखलाया गया है। गेहूँको बोनेपर अंकुर इधरसे ही निकलता है। गेहूँका काष्ठोज (सेलुलोज़) या रेशा दानेके ऊपरी आवरणमें रहता है। गेहूँसे मैदा बनानेमें विटैमिन और काष्ठोज दोनों निकल जाते हैं। इसी से आटा उत्तम और मैदा निकृष्ट होता है।

आहार पदार्थोंकी पौष्टिक शक्ति

आहार-पदार्थ	प्रोटीन %	वसा %	कारबोहाइड्रेट %	विटैमिन ए	विटैमिन बी	विटैमिन सी	विटैमिन डी	कैलोरी, प्रति आधी छटाँक
आम, देसी	०·१	०·८	१८·४	+	...	+ +	...	२३
कनडेन्स्ड मिल्क	८·८	८·२	५४·४	+	+	०	..	९२
क्रीम (उपराई)	२·४	१८·५	४·५	+ + +	+	सूक्ष्म	+	५५
केक (अंडेसे बना)	६६·०	६·०	१०·६	+	+	...	...	११२
ख़मीर (ताज़ा)	१४·१	२·०	८·९	...	+ + +	...	०	३१
खरबूजा	२·१	...	६·७	...	...	...	...	१०
गुच्छी (मशरूम)	३·५	०·४	१०·६	...	+	...	...	१३
घी	०·०	८४·७	०·०	+ +	...	...	+	२२३
चपाती (रोटी)	९·२	३·५	६९·२	...	...	...	..	१००
चर्बी	१·१	९३·२	...	+ +	...	...	+	२३९
चाय	...	...	...	०	०	०	...	...
छेना	२२·२	१८·७	०·४	...	..	...	...	७६
तेल अलसी	...	९८·८	...	सूक्ष्म	०	०		२५२
तेल जैतून	...	९८·८	...	सूक्ष्म	०	०	सूक्ष्म	२५२
तेल तिल	...	९८·८	...	सूक्ष्म	०	०	०	२५२
तेल नारियल	...	९८·८	...	+	०	०	सूक्ष्म	२५२
तेल बिनौला	...	९८·८	...	सूक्ष्म	०	०		२५२
तेल मूँगफली	...	९८·८	...	सूक्ष्म	०	०	सूक्ष्म	२५२
तेल सरसों	...	९८·८	...	...	०	०	...	२५२
दालका पानी (जूस)	२·८	सूक्ष्म	३·५	...	...	...	...	८
दूध (गधीका)	१·८	१·१	५·६	...	...	...	...	१२
पराठा (घीमें बना)	८·२	१७·७	५०·८	...	...	...	...	११५
बिस्कुट	१४·१	१·८	७४·१	..	...	...	..	१०७
बेल	०·७	०·७	१५·९	...	...	+ +	..	२१
भात	३·७	१·१	५९·०	...	...	...	..	७७
मक्खन	१·०	८१·६	०·०	+ + +	...		+	२१६
मारगरीन (नकली मक्खन)	..	८३·०	..	०	०	०	..	२१४
मेलिन्स फ़ुड	११·३	०·४	८०·१	...	...		...	१०७
लीची (फल)	२·९	०·२	६·७	...	+	+ +	...	१२
लूची (घीमें बनी)	७·५	२२·६	५०·१	...	...	..	..	१३०
वनस्पति घृत (कोकोजम)	...	९८·८	...	०	०	०	...	२५२
शहद	०·४		७१·३	सूक्ष्म	सूक्ष्म	सूक्ष्म	...	८१
संदेस (मिठाई)	१९·१	२१·२	४२·४	०	०	०	..	१२४
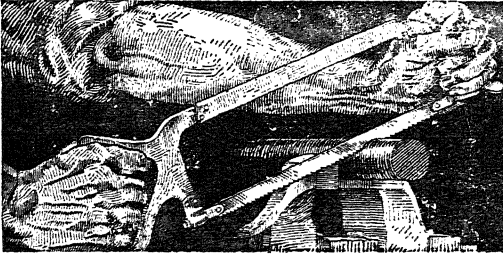
कागज़के फूल

प्रारंभिक कृत्रिम फूल बनाना उन लोगोंके लिये बड़ा हर्षदायक मनोरञ्जन है जिन्हें कला-कौशलसे प्रेम रहता है और जो सुन्दर वस्तुओंको पसन्द करते हैं। अवकाशका समय व्यतीत करनेके लिये फूलका शौक बड़ा आकर्षक ढंग है। परन्तु कोई कारण नहीं है कि इसे तब अतिरिक्त धनार्जनका काम न बना लिया जाय जब इसमें कुछ दक्षता प्राप्त कर ली जाय।

कृत्रिम फूल बहुत कामोंमें लाये जा सकते हैं। गुलदस्तोंमें सजानेके लिये वे असली फूलोंका स्थान ले सकते हैं। इसके अतिरिक्त वस्त्र आदिके सजावटमें भी इनके लिये विस्तृत क्षेत्र है। यूरोपीय स्त्रियाँ कृत्रिम फूल और पत्तोंका व्यवहार बहुत करती हैं। लड़कियों और बच्चोंके वस्त्रोंमें कृत्रिम फूलों, पत्तियों और फलोंका स्थान भारतवर्षमें भी महत्वपूर्ण है। फ्राक आदिके लिये फूल या फूलोंका गुच्छा आवश्यक वस्तु है, चाहे ये फूल फीतेके ही क्यों न बने हों। फूलोंकी डाल घरमें सजावटकी सैकड़ों स्कीमोंमें काम आ सकती है।

इस पुस्तकमें कागज़, कपड़े तथा अन्य वस्तुओंके फूल आदि बनाने पर सरल भाषामें ऐसे क्रियात्मक आदेश कि वे भी जो इस कामको पहलेसे कुछ न जानते हों इस कार्यमें सफलता पा सकेंगे।

कृत्रिम फूल बनानेकी आवश्यक वस्तुएँ बहुत तरहकी हैं, परन्तु उन सबकी यहाँ गिनती गिनानी अनावश्यक जान पड़ती है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण सामग्री मँहगी नहीं है, और बहुधा अन्य कामोंमें से बची हुई चीजें प्रयुक्त हो सकती हैं। विशेष यन्त्रोंकी भी आवश्यकता नहीं रहती; जिनकी वास्तवमें आवश्यकता पड़ती है वे दो-तीन रुपयेसे अधिकके नहीं होते, और उनमेंसे अधिकांश (कैंची, सूई आदि) प्रायः सभी घरोंमें यों भी रहते हैं।

साधारण आदेश

प्रत्येक फूलके बनानेमें पँखुड़ियाँ काटना, डंठल बनाना, चिपकाना, बाँधना आदि जिन क्रियाओंकी आवश्यकता पड़ती है वे सभी फूलोंके लिये प्रायः एक-सी होती हैं। इसलिये पहले इन पर विचार करके विशेष फूलोंके बनाने पर विचार किया जायगा।

प्राकृतिक फूलोंकी नकल करें— कागज़के फूल बनानेकी सबसे संतोषदायक रीति यह है कि असली फूलोंकी नकल की जाय। यदि हो सके तो दो फूल काममें लाओ—एकके तो अवयव अलग-अलग कर लो और दूसरे को ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रक्खो। पहले फूलकी पँखुड़ियों और पुटपत्रोंको, तथा दो-तीन पत्तियोंको दफ्ती पर चिपका लो और दफ्तीको ठीक उन्हींके आकारका काट लो। (पुटपत्र पत्तियोंके आकारके उन अवयवोंको कहते हैं जो फूल की जड़के पास रहते हैं, और जब फूल कलीकी अवस्थामें रहता है तब उसे ढके रहते हैं।) यदि वास्तविक फूल न मिल सके तो उनकी पँखुड़ियों आदिके आकार किसी पुस्तकसे लिये जा सकते हैं। पाठकोंकी सुविधाके लिये कुछ फूलोंकी पँखुड़ियों आदिके चित्र यहाँ दिये गये हैं। जब इस पुस्तकमें के नमूने काममें लाने हों तो आकृतियोंको महीन कागज़ पर उतार लो, फिर दफ्ती पर इस कागज़को चिपका कर दफ्तीको काट लो। इस प्रकार पुस्तककी आकृतियाँ भविष्यके लिये सुरक्षित रहेंगी। जब कभी नई दफ्ती पर आकृति बनानेकी आवश्यकता हो, नये महीन कागज़ पर आकृति उतारनी चाहिये, क्योंकि पहली दफ्तीसे आकृति उतारनेमें अवयवोंकी रूपरेखायें थोड़ी-सी परिवर्तित हो जाती हैं।

फूल बनानेके लिये पँखुड़ी, पुटपत्र, पत्ती आदि अंग साधारण कागज़के बदले क्रेप कागज़के बनाये जाते हैं। यह कागज़ दरजनों रंगोंका बनता है और इसमें विशेषता यह होती है कि ठप्पा मार कर इसमें सूक्ष्म यवाकार (जौ

के आकारके) दाने या रेशे बना दिये रहते हैं। रेशोंकी लम्बाईकी दिशामें काग़ज़को तानने पर काग़ज़ नहीं बढ़ता, परन्तु चौड़ाईकी दिशामें ताननेसे यह बहुत बढ़ सकता है। क्रेप काग़ज़ पतला और (दानोंके कारण) खुरखुरा होता है। क्रेप काग़ज़से पँखुड़ी या पत्ती सदा इस प्रकार काटनी चाहिये कि रेशे पँखुड़ी या पत्तीकी नोक और इसकी जड़को मिलाने वाली रेखाकी दिशामें रहें (बेंड़े न रहें)। यदि कहीं कुछ और ही कहा गया हो तो बात दूसरी है। सुविधा इसीमें होती है कि काग़ज़की कई एक पँखुड़ियाँ एक साथ ही काटी जायँ। जब कई एक पँखुड़ियाँ एक साथ काटनी हों तब पहले सम्पूर्ण काग़ज़से, बिना तह खोले, पट्टी काट कर अलग कर लो (नीचे देखो)। फिर इस पट्टीको आवश्यकतानुसार मोड़ कर अवयवको काटो।

क्रेपमेंसे सीधी पट्टी काटना—काग़ज़के तहोंको बिना खोले ही काग़ज़को पैकेटमेंसे जरा-सा बाहर खींचकर
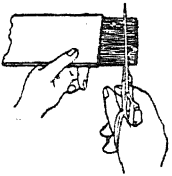
चित्र १—काग़ज़को पैकेटमेंसे जरा-सा बाहर खींचकर सम्पूर्ण मोटाईका टुकड़ा काट लो।

इच्छित चौड़ाई नापो, चिह्न लगाओ, और पैकेटकी कोरकी सहायतासे सीधी कैंची चला कर सम्पूर्ण मोटाईका टुकड़ा काट लो (चित्र नं० १)।

पँखुड़ी आदि काटना—ऊपर बतलाई रीतिसे लम्बी पट्टी काट कर पट्टीको खोल लो। फिर उसे पहले दोहरा, तब चौहरा आदि करते जाओ। जब पट्टी इच्छा-

चित्र २—इस पर नमूने वाली दफ्तीको रखकर क्रेप काग़ज़ को काट लो।
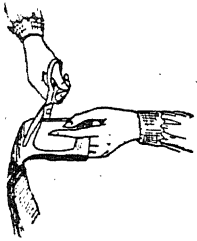
नुसार छोटी हो जाय या इसमें इच्छानुसार परतें हो जायँ, तो इस पर नमूने वाली दफ्तीको रख कर क्रेप काग़ज़को काट लो (चित्र २) विशेष ध्यान रहे कि काटनेमें नमूना खिसकने न पाये।

पँखुड़ियोंकी पट्टी—जब पँखुड़ियाँ छोटी होती हैं तब उन्हें अलग-अलग काटनेके बदले इस प्रकार काटा जाता है कि उनसे लम्बी पट्टी बन जाती है। जब ऐसी पट्टी काटनी हो (और ऐसा बहुतसे फूलोंके लिये आवश्यक होता है) तब काग़ज़को थोड़ा-सा पैकेटके बाहर कर लो, इच्छित चौड़ाईकी पट्टी काट लो, खोलो फिर तहें करो। इन तहोंको एक साथ ही इच्छित दूरी तक कई स्थानों पर पँखुड़ियोंकी लम्बाईकी दिशामें सीधा काटो (चित्र ३)। प्रत्येक दो आसन्न काटोंके बीच पँखुड़ियोंकी चौड़ाईके
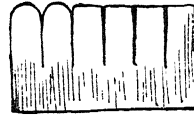
चित्र ३—इच्छित दूरी तक कई स्थानों पर पँखुड़ियोंको लम्बाईकी दिशामें सीधा काटो।

बराबर जगह रहे। इसके बाद प्रत्येक पँखुड़ीकी नोकको आवश्यकताके अनुसार नुकीली या गोलाकार कर लो। बहुधा इस रीतिसे बिना नमूनेका प्रयोग किये ही पँखुड़ियाँ काटी जा सकती हैं।

पुटपत्र—पहले बताया जा चुका है कि पुटपत्र पत्तियोंके आकारके उन अवयवोंको कहते हैं जो फूलकी जड़के पास रहते हैं और जब फूल कलीकी अवस्थामें रहता है तब उसे ढके रहते हैं। प्रत्येक फूलमें कई पुटपत्र होते हैं जो फूलकी जड़को चारों ओरसे घेरे रहते हैं। पुटपत्रोंके समूहको पुटचक्र कहते हैं। अधिकांश फूलोंमें पुटपत्र अलग-अलग नहीं रहते। वे अपनी जड़के पास एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। इसलिये पुटचक्र भी पट्टीके रूपमें काटा
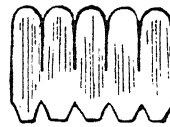
चित्र ४—पट्टीकी निचली कोरसे टुकड़े काटे जा सकते हैं।

जाता है। जब बहुत बड़े या बहुत छोटे फूलका पुटचक्र पट्टीके रूपमें काटा जाता है, तो जड़के पास काग़ज़की इतनी तहें हो जाती हैं कि जड़ बहुत मोटी हो जाती है। इस कठिनाईको दूर करनेके लिये पट्टी की निचली कोरसे टुकड़े काटे जा सकते हैं (चित्र नं० ४)।

गुलाबकी पँखुड़ीका किनारा मोड़ना—मोज़ा बीननेकी सलाई लो और पँखुड़ीका ऊपर वाला हिस्सा उस

पर लपेट दो। यदि पँखुड़ीकी कोर पर चुनट (सिकुड़न) डालनी हो तो सलाई पर लपेटे भागको दोनों ओरसे
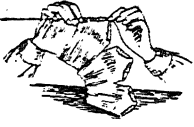
चित्र ५—यदि चुनट डालनी हो तो लपेटे भागको दोनों ओरसे पास सरका लो।

(सलाईसे उतारनेके पहले ही) पास सरका लो। (चित्र नं० ५)।

नतोदर पँखुड़ियाँ—एक या एक-पर-एक रक्खी हुई कई पँखुड़ियाँ लो और पँखुड़ीके बीचमें दोनों अँगूठे रक्खो; फिर दोनों तर्जिनियोंको काग़ज़की पीठकी ओर किनारों पर
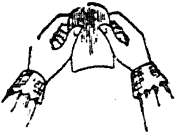
चित्र ६—अँगूठोंसे दबा दो; इस प्रकार सीपी-सी गहरी पँखुड़ियाँ बन जायँगी।

रख कर अँगूठोंसे दबा दो; इस प्रकार सीपी-सी गहरी पँखुड़ियाँ बन जायँगी (चित्र नं० ६)।

ऐंठी पँखुड़ियाँ—पँखुड़ीको बायें हाथमें पकड़ो। अँगूठे और तर्जनी पँखुड़ीके मध्य भाग पर परन्तु विपरीत ओर रहें। दाहिने अँगूठे और तर्जनीसे पँखुड़ीके ऊपरी

चित्र ७—पारी-पारीसे सब पँखुड़ियोंको ऐंठो।

भागको छोरके पास पकड़ कर पूर्ण रूपसे घुमा दो। इसी प्रकार पारी-पारीसे सब पँखुड़ियोंको ऐंठो (चित्र नं० ७)।

डंडी पर कागज़ लपेटना—डंडी या डंठल तारकी बनती है और उस पर हरा कागज लपेट दिया जाता है। क्रेप कागजकी खूब लंबी पट्टी काटो। इसके लिये सम्पूर्ण तहकी मुटाईमेंसे पट्टी काटनी चाहिए, और फिर बीचमें-से पूरी लम्बाईमें दोहरा कर देना चाहिए। पूरी चिटको या तो तार पर लपेटनेसे पहले ही दोहरा किया जा सकता है, या दोहरा करना और लपेटना ये दोनों काम एक साथ ही किये जा सकते हैं। फूलकी या पुटचक्रकी जड़में ज़रा-सी लेई लगाओ और क्रेप कागजकी पतली चिटको दो तीन बार कस कर लपेट दो। तब डंठलके तारको दाहिने हाथमें पकड़ कर चुटकीसे उसे घुमाते जाओ। उसी समय बायें हाथसे कागजको सहारा देते जाओ। कागजको तिरछी दिशामें रक्खो जिससे वह नीचेकी ओर चलता रहे, और उसे ताने रहो जिसमें वह सफाईसे तारकी चारों ओर लिपटता जाय। कागज लपेटनेकी क्रियाके साथ-साथ ही पत्तियाँ भी यथास्थान, इच्छित दूरियों पर लगा दी जाती हैं (चित्र नं० ८)। जब डंठलके तारका अन्त आ जाय तो

चित्र ८—कागज लपेटनेकी क्रियाके साथ-साथ ही पत्तियाँ भी यथास्थान लगा दी जाती हैं।

चित्र ९—दूसरे तारको पहले तारकी बगलमें रख दो; वे कागज लपेटनेसे ही बँध जायँगे।

कागजको काट दो और ज़रा-सी लेईसे सिरा चिपका दो। बस, डंठल तैयार हो गया। जब कभी दो तारोंको जोड़ कर डंठलको लम्बा करना पड़ जाय तो दूसरे तारको पहले तारकी बगलमें रख दो और कागज लपेटना जारी रक्खो। दोनों तारोंको मरोड़नेकी आवश्यकता नहीं रहेगी। वे कागज लपेटनेसे ही बँध जायँगे (चित्र नं० ९)।

तार लगी हुई पँखुड़ी या पत्ती—कुछ पँखुड़ियों और बहुत-सी पत्तियोंके बीचमें नस होता है। उनकी नकल उतारनेके लिये कागजकी पँखुड़ियों और पत्तियोंमें तार लगाया जाता है। इसके लिए सीधा, पतला और पहलेसे कागज लपेटा तार काममें लाओ। जिन पँखुड़ियोंमें तार लगाना है उनसे जरा बड़ा तार काटो। छः तारोंको एक साथ, उनके सिरेके पास इस प्रकार पकड़ो कि वे एक की बगलमें एक रहें; उनका गोल गुच्छा न बन जाय। अब तारोंको किसी रद्दी कागजके टुकड़े पर रख कर एक ओर लेई लगाओ। एक-एक करके तारोंको, लेईकी तरफसे, पँखुड़ी या पत्तीके ऊपर ठीक स्थानमें रक्खो, बढ़ी हुई लम्बाईको नीचेकी ओर (जड़की ओर) बाहिर बढ़ा रहने

दो। जब तक सूख न जायँ तब तक उनको किसी भारी बोझसे (पुस्तकोंके ढेर आदि से दबा रक्खो। जब पत्तियोंके बीचमें तार लगाना रहता है तो पत्तीको क्रेप कागजसे इस प्रकार काटते हैं कि कागजके रेशे बेंड़े (अर्थात् पत्तीकी चौड़ाईकी दिशामें) पड़ें।

लहरदार किनारा—चित्र १० में दिखायी गयी रीतिसे क्रेप कागजको अँगूठों और तर्जनियोंसे पकड़ो। तब कागजको अपनेसे बाहरकी ओर बायें हाथके अँगूठेसे

चित्र १०—इस प्रकार पट्टीका किनारा लहरदार हो जाता है।

दबाओ और दाहिने हाथकी तर्जनीसे अपनी ओर खींचो। तब कागजको जरा-सा सरका दो। ऊपरकी क्रियाको बार-बार दोहराओ और तब तक काम जारी रक्खो जब तक पूरी पट्टी लहरदार न हो जाय। खींचनेसे क्रेप कागज बढ़ जाता है और इस प्रकार पट्टीका किनारा लहरदार हो जाता है।

झालरदार क्रेप—क्रेपको बारीक काट कर झालर बनाई जाती है। कड़ी झालर काग़ज़के रेशेके समानान्तर और नरम झालर बेंड़ा काटकर बनाई जाती है। लगभग सब झालरें जो फूलोंके केन्द्रोंके लिये बनाई जाती हैं, रेशोंके सामानान्तर काटी जाती हैं। झालर बनानेके लिये क्रेपकी सम्पूर्ण तहमें से इच्छित चौड़ाईकी पट्टी काटो। तह खोलो
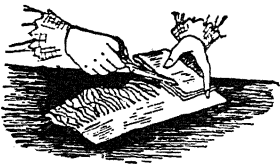
चित्र ११—झालर बनाने के लिये क्रेपकी कागजको कई बार काटो और ये काटें एक दूसरेके समानान्तर रहें।

और फिर आठ तहें करो। एक कोरसे आरम्भ करके काग़ज़-को कई बार काटो और ये काटें एक दूसरेके समानान्तर रहें (चित्र नं० ११)। सँकरी झालर हो तो नीचेकी कोरकी तरफ आध इञ्च काग़ज़ बिना कटा छोड़ दो और चौड़ी हो तो एक इंच छोड़ दो। झालर काग़ज़के रेशोंको बेंड़ा काट कर तब बनाई जाती है जब सजावटके लिये गहरी (चौड़ी) झालर की आवश्यकता होती है। बेंड़ा काटनेसे झालरकी पट्टियाँ २० इंच लम्बी (अर्थात् काग़ज़की चौड़ाई भर लम्बी और दस फुट तक गहरी (अर्थात् काग़ज़के थानकी पूरी लम्बाई तक गहरी) बनाई जा सकती हैं। २० इंचसे लंबी झालरके लिये कई पट्टियोंको एक-में-एक जोड़ना पड़ेगा।

दोरंगी पत्तियाँ—कभी-कभी दोरंगी पत्तियों या या पँखुड़ियोंकी आवश्यकता पड़ती है, जिसमें बाहर एक रंग हो, भीतर दूसरा। तब दो रंगोंके काग़ज़को लेईसे चिपका लेनी चाहिये, परन्तु लेई लगाते समय रेशोंके दिशा में हाथ चलाया जाय।

पराग बनाना—पराग उस रज या धूलिको कहते हैं जो फूलोंके बीच लंबे केसरों पर जमी रहती है। पराग बनानेके लिये थोड़ी छोटे रवे वाली सूजी लो। चम्पई रंग-को पानीमें घोल कर गाढ़ा रंग बनाओ। सूजीको एक बड़े काग़ज़ पर फैला दो। उसमें थोड़ा-थोड़ा रंग छोड़ते जाओ और दोनों हाथोंसे सूजीको मलते जाओ, परन्तु दाने बँधने न पायें। गहरा चम्पई रंग हो जाने पर सुखा लो।

लेई बनाना—थोड़ा मैदा लो। उसे पानीमें मिला कर और उसमें थोड़ा-सा बारीक पिसा तूतिया छोड़ कर आग पर चढ़ाओ और बराबर चलाते रहो। पाँच मिनट तक फदकने (उबलने) दो और तब उतार लो। यदि लेईको तुरन्त खर्च करना हो तो तूतिया डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। तूतिया डालनेसे लेई कई दिन तक चलती है। मैदेमें पानी केवल इतना डालना चाहिये कि पाँच मिनट तक उबलनेमें लेई गाढ़ी हो जाय।

उलटा सीधा—ध्यान रक्खो, क्रेप काग़ज़में उल्टा-सीधा होता है। जिस तरफ दाने उभड़े दिखलाई पड़ते हैं, वह सीधा है। जिधर दाने नहीं, बल्कि छोटे-छोटे गड्ढे-से दिखलाई पड़ते हैं वह उल्टा है।

गुलदाउदी

जाड़ेके दिनोंमें गुलदाउदीके बड़े-बड़े फूल कैसे सुंदर लगते हैं! गुलदाउदीकी कई जातियाँ हैं। साधारण फूलोंकी पँखुड़ियाँ छितराई रहती हैं, परन्तु एक जातिमें वे भीतर झुकी रहती हैं (चित्र नं० १२)। कुछमें झबरी
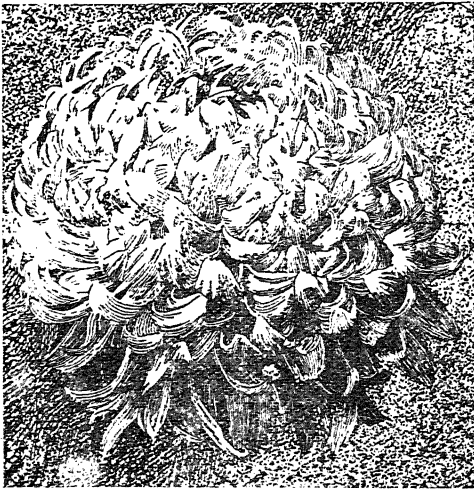
चित्र १२—नतोदर पँखुड़ियोंकी गुलदाउदी ।

चित्र १३—झबरी गुलदाउदी ।

चित्र १४—गुलदाउदीकी पत्तियाँ ।

पँखुड़ियाँ भी रहती हैं (चित्र नं० १३ । यहाँ भीतर झुकी पँखुड़ियाँ वाली गुलदाउदी बनानेकी रीति बतलाई जायगी क्योंकि यह अधिक सुन्दर लगती है ।

प्रत्येक जातिकी गुलदाउदीमें कई रंगके फूल होते हैं प्रकृतिमें गंधकी रंगके फूल अधिक दिखलाई पड़ते हैं; इसलिये साधारणतः उसी रंगके फूल काग़ज़के भी बनाये जाते हैं; परन्तु प्रकृतिमें सफेद, सुनहले, लाल, बैगनी आदिके भी फूल होते हैं । इसलिए इन रंगोंके काग़ज़ोंका भी उपयोग किया जा सकता है ।

गुलदाउदीकी पत्तियाँ चुरमुरी और रूखी होती हैं । प्राकृतिक अवस्थामें पत्तियोंकी स्थिति चित्र १४ में दिखलाई गई है । इस चित्रमें फूल नहीं खिला है । केवल कली लगी है ।

सामग्री—एक फूलके लिये निम्न सामग्रीकी आवश्यकता पड़ेगी । (१) पीले क्रेपकी १½ इंच चौड़ी १२ इंच लम्बी पट्टी, (२) पीले क्रेपकी ४ इञ्च चौड़ी ३० इञ्च लम्बी पट्टी, (३) २२ या २४ नंबरका (अर्थात् पतली सुईकी मोटाईका तार, १ फुट लम्बा । (४) चित्र नं० १५ की आकृतिकी नापकी दो पत्तियाँ काटने भर हरा क्रेप । (५) पुटचक्र बनानेके लिये थोड़ा-सा और हरा क्रेप (लगभग १ इंच चौड़ा २ इंच लम्बा ।
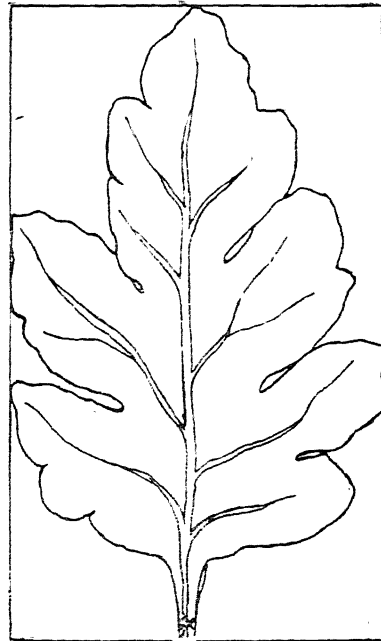
चित्र १५—गुलदाउदीकी पत्ती, पूरे नापकी ।

रीति--पीले क्रेपकी छोटी (डेढ़ इंचकी चौड़ाई वाली) पट्टी लो। इसमें ३/४″ की चौड़ाई तक बारीक झालर काटो (चित्र नं० १६,क)। झालरको पेंसिलके सिरे पर कसकर लपेटो, पर क्रेप खिंचने न पाये। लपेटनेके बाद उसे पेंसिल परसे उतार लो (१६, ख) और तारसे बाँध दो (१६, ख), परन्तु निम्न रीति अधिक अच्छी है। पेंसिलसे उतारनेके बाद झालरके निचले हिस्सेमें सुईसे छेद करके तार पहना दो। तारको बीचसे मोड़ कर दोहरा कर दो और कई बार ऐंठ दो। काग़ज़के उन दोनों कोनोंको काट दो जिधर तार बँधा है और आवश्यकता प्रतीत हो तो काग़ज़ पर डोरा या तार लपेट कर बाँध दो। इस प्रकार झालर गुच्छेका रूप धारण कर लेगी। गुच्छा फूलके बीचमें रहेगा। हम इसे केन्द्रीय गुच्छ कहेंगे।

अब बड़ी पट्टी लो जिसकी चौड़ाई ४ इंच है। आकृति नं० १६, क के सामान उसमेंसे पँखुड़ियोंकी पट्टी बनाओ। एक इंच बिना कटा छूट जाय। इस प्रकार पँखुड़ियाँ ३ इंच लम्बी रहेंगी। प्रत्येक पँखुड़ीकी चौड़ाई करीब १/४ इंच रहे। पँखुड़ियोंको भीतर झुकानेके लिये चार पाँच तह किये हुये मोटे कपड़े पर इस पट्टीको फैलाओ। गुलूबन्द बीननेकी सलाई या बाँसकी ऐसी तीली लो जिसकी नोक अतीच्ण परन्तु चिकनी हो। इस सलाईसे प्रत्येक पँखुड़ी पर पँखुड़ीकी नोकसे पँखुड़ीकी जड़ तक लकीर खींचो, साथ ही उस कपड़ेको जिस पर पट्टी रक्खी

चित्र १६—गुलदाउदीका फूल बनानेकी रीति।

है, तान कर उठाते जाओ (चित्र १६, घ)। इससे पँखुड़ी भीतरकी ओर झुक जायगी। इस प्रकार प्रत्येक पँखुड़ीको झुका दो। तब पँखुड़ीकी पट्टीके सीधे सिरे पर लेई लगा दो।

अब इसको केन्द्रीय गुच्छके चारों ओर सावधानीसे लपेटो और अंतमें तारसे मज़बूतीसे बाँध दो (१६ च)। बचे तारको डंठलकी दिशामें घुमा दो। लपेटते समय ध्यान रहे कि पट्टी ऊँची-नीची न लपेटी जाय, अन्यथा फूल खराब लगेगा।

पुटचक्र बनानेके लिये १″ चौड़े और २″ लम्बे हरे क्रेप काग़ज़में से पुटचक्र काटो (चित्र १६, छ)। इसको फूलकी जड़में लगा दो। अब फूलकी जड़से लेकर पूरे तार पर हरी चिट लपेट दो। पत्तियों (झ) की जड़ोंमें थोड़ी दूर तक लेई लगाकर उनको यथास्थान डंठल पर लगाते चलो (चित्र १७)।

टिप्पणी— यदि पत्तियोंको बेंड़े रेशेका बनाया जाय और उनके बीच तार चिपका दिया जाय तो और भी अच्छा काम बनेगा।

चित्र १७—तैयार होने पर गुलदाउदी।

--रत्नकुमारी, एम० ए०

अपने हाथसे बनाओ

कहा जाता है कि नेपोलियन कहा करता था कि "जिसने कभी गलती नहीं की, उसने कुछ किया ही नहीं"—परन्तु सम्भव है यह वाक्य किसी अज्ञात शेख चिल्ली ने कहा हो और नेपोलियन ने इसे हथिया लिया हो। मैं नहीं कह सकता कि वस्तुतः यह सिद्धान्त जीवनमें सच्चा उतरता है या नहीं परन्तु मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि जिस लड़के ने कभी अपने हाथसे कुछ नहीं बनाया उसने अपने जीवन के अवसरोंसे पूरा लाभ नहीं उठाया।

इस बातको स्मरण रक्खो, बालको!

—सर रॉबर्ट बैडन पॉवेल
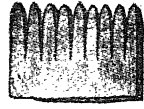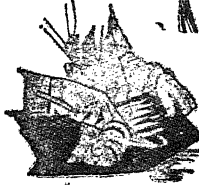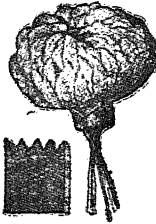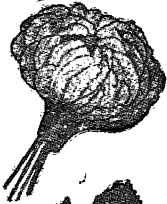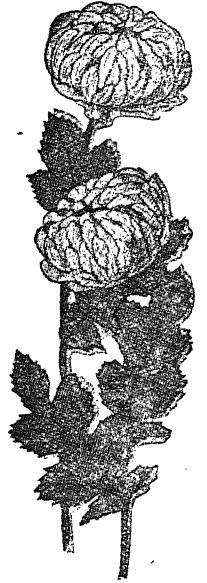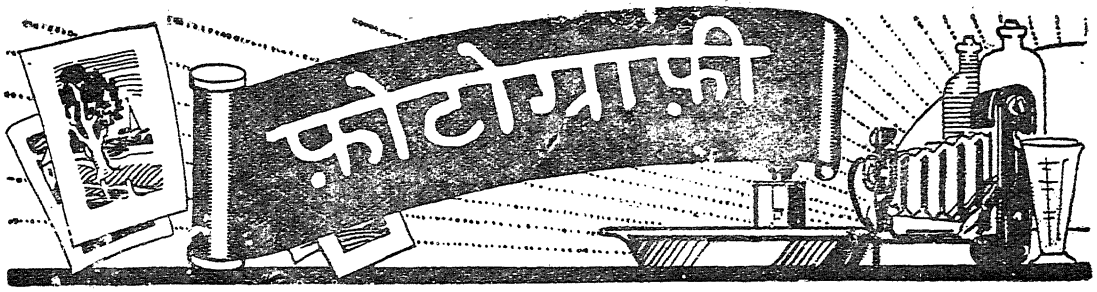
नुसखे

फ़ोटोग्राफ़ी सम्बन्धी कई रीतियोंका संक्षिप्त विवरण तथा कुछ नुसखे इस लेखमें दिये जायँगे।

अपरिवर्तन शील (desensitise) करना—डेवेलप करनेके पहले यदि प्लेट या फिल्मको निम्न घोलमें २ मिनट या अधिक समय तक रक्खा जाय (तश्तरी बराबर हिलती रहे या फिल्म चलता रहे) तो प्लेटकी तेज़ी बहुत कम हो जाती है और इसलिए तब उसे तेज़ प्रकाशमें डेवेलप किया जा सकता है—

फ़ेनो-सैफ़्रानीन	१० ग्रेन
पानी	४½ आउंस।

यह रखाऊँ घोल है। कामके समय १ भाग इसका और ६ भाग पानी लेना चाहिए। इसके इस्तेमालके लिए प्लेट या फ़िल्मको अधिक प्रकाशदर्शन देनेकी आवश्यकता नहीं। साधारण या ऑर्थोक्रोमैटिक प्लेट इसमें दो मिनट तक डुबाये जानेके बाद चटक लाल या नारंगी प्रकाशमें डेवेलप किया जा सकता है। पैनक्रोमैटिक प्लेट या फिल्म-को फ़ेनो-सैफ़्रानीन वाले घोलमें अँधेरेमें डालना पड़ेगा, परन्तु दो मिनटके बाद गाढ़े लाल प्रकाशमें सब काम किया जा सकता है। (दो मिनटसे अधिक समय तक डुबाना हानिकारक नहीं है, परन्तु उसमें लाभ भी नहीं है।)

ऐमिडल डेवेलपर—इसमें यह गुण है कि कारबोनेट न पड़नेके कारण इससे जेलेटिन इतना नरम नहीं हो जाता है जितना मेटल-हाइड्रोक्विनोन डेवेलपरसे। दोष यह है कि घोल शीघ्र (१ दिनमें) बिगड़ता है और इसलिए इसे ताज़ा बना कर काममें लाना आवश्यक है।

पानी	१० आउंस
सोडियम सलफ़ाइट (सूखा)	१४० ग्रेन
पोटैसियम ब्रोमाइड	६ ग्रेन
ऐमिडल	३० ग्रेन

सलफ़ाइडके पूर्णतया घुल जानेपर ही ऐमिडल डालना चाहिए।

पायरो-सोडा डेवेलपर—यह बड़ा प्रसिद्ध पुराना डेवेलपर है। इसमें केवल यह अवगुण है कि यह ब्रोमाइड या गैसलाइट काग़ज़के लिये नहीं इस्तेमाल किया जा सकता क्योंकि रंग बढ़िया नहीं आता है।

क—पायरो	८० ग्रेन
सोडियम सलफ़ाइट (सूखा)	३२० ग्रेन
पोटैसियम मेटाबिसलफाइट	८० ग्रेन
पोटैसियम ब्रोमाइड	२० ग्रेन
पानी, इतना कि कुल हो जाय	१० आउंस

पहले सलफाइट घोलो, तब मेटाबिसलफाइट, अन्तमें पायरो और ब्रोमाइड। पोटैसियम मेटाबिसलफाइटके बदले ४० ग्रेन साइट्रिक ऐसिड डाला जा सकता है।

ख—सोडियम कारबोनेट (सूखा)	२५६ ग्रेन
पानी इतना कि कुल हो जाय	१० आउंस

घोल क और ख अलग-अलग बोतलोंमें रक्खे रहने पर कई महीने चलेंगे। इस्तेमालके लिए क एक भाग, ख एक भाग और पानी दो भाग लेना चाहिए।

पायरो-मेटल डेवेलपर—

क—पोटैसियम मेटाबिसलफाइट	९० ग्रेन
पायरो	४० ग्रेन
मेटल	३५ ग्रेन
पानी	१० आउंस

क्रमानुसार घोलो।

ख—सोडियम कारबोनेट (सूखा)	२६० ग्रेन
पानी	१० आउंस

१ भाग क, १ भाग ख, १ भाग पानी मिलाओ। इस डेवेलपरसे नेगेटिव शीघ्र डेवेलप हो जाता है।

गरमीके लिए डेवेलपर—यदि काफ़ी ठंडा पानी न मिल सके तो निम्न डेवेलपर इस्तेमाल करना चाहिये। यह ६५° (फारनहाइट) तक इस्तेमाल किया जा सकता है और जेलेटिन बहुत फूलेगा नहीं।

सोडियम सलफाइट (सूखा)	१ आउंस
पैरा-ऐमिनो-फेनॉल हाइड्रोक्लोराइड	६० ग्रेन
सोडियम कारबोनेट (सूखा)	१ आउंस
सोडियम सलफ़ेट	४ आउंस
पानी इतना कि कुल हो जाय	२० आउंस

इस डेवेलपरको पानी मिलाकर फीका नहीं करना चाहिए। डेवेलप करनेके बाद फिल्मको केवल एक या दो सेकंडके लिये धोना चाहिए, और तुरन्त फॉरमैलिन पड़े हाइपोमें डालना चाहिए (नुसखा आगे दिया है)।

हाइड्रोक्विनोन डेवेलपर—निम्न नुसखेके अनुसार बने डेवेलपरसे प्रकाशांतर खूब आता है। प्रोसेस प्लेट पर नकल किया जाय और इस डेवेलपरसे भरपूर डेवेलप किया जाय तो असली प्रतिसे कहीं अधिक प्रकाशांतर उत्पन्न किया जा सकता है। पुराने फीके हो गये फोटोग्राफ़ोंका इसी प्रकार नक़ल करना चाहिए।

क—पोटैसियम मेटाबिसलफाइट	१ आउंस
हाइड्रोक्विनोन	१ आउंस
पोटैसियम ब्रोमाइड	१ आउंस
पानी इतना कि कुल हो जाय	४० आउंस
ख—कॉस्टिक सोडा	२ आउंस
पानी इतना कि कुल हो जाय	४० आउंस

इस्तेमालके लिए क और ख. को बराबर मात्रामें मिलाओ।

बारीक दानेका डेवेलपर—जब नेगेटिवसे तिगुने-चौगुनेसे भी बड़ा एनलार्जमेंट बनाना हो तो उसे किसी फ़ाइनग्रेन डेवेलपरसे डेवेलप करना चाहिए। इससे दाने (ग्रेन) बारीक आते हैं और इसलिए एनलार्जमेंट बहुत दानेदार नहीं हो जाता।

मेटल	२० ग्रेन
सोडियम सलफाइट	२००० ग्रेन
हाइड्रोक्विनोन	५० ग्रेन
बोरैक्स	२० ग्रेन
पानी इतना कि कुल हो जाय	२० आउंस

कड़ा और स्थायी करने वाले घोल—(१) फिटकरी वाले घोलके बदले निम्नसे जेलेटिन अधिक कड़ा होता है।

क—हाइपो	८ आउंस
पोटैसियम मेटाबिसलफ़ाइट	१२० ग्रेन
पानी इतना कि कुल हो जाय	२० आउंस
ख—क्रोम ऐलम	२४० ग्रेन
पानी	२० आउंस

ख को क में धीरे-धीरे डालो।

(२) निम्न घोलसे जेलेटिन और भी अधिक कड़ा होता है—

हाइपो	५ आउंस
सोडियम सलफाइट (सूखा)	१ आउंस
फ़ॉरमैलिन	२½ आउंस
पानी इतना कि कुल हो जाय	२० आउंस

पहले हाइपो घोलो, तब सलफाइट। अन्तमें फ़ॉरमैलिन डालो।

कड़ा करनेके घोल- यदि नेगेटिवके जेलेटिनको केवल कड़ा करना हो (नेगेटिवको स्थाई न करना हो) तो निम्न तीन घोलोंमें से किसी एकका प्रयोग किया जा सकता है।

१—फिटकरी	१ आउंस
पानी	२० आउंस
२—क्रोम ऐलम	१ आउंस
पानी	२० आउंस
३—फ़ॉरमैलिन	१ आउंस
पानी	२० आउंस

फिटकरीकी अपेक्षा क्रोम ऐलमसे, और उसकी अपेक्षा फ़ॉरमैलिनसे, अधिक कड़ाई आती है।

हाइपो-मारक- यदि बड़ी जल्दी हो तो हाइपोसे निकालनेके बाद एक मिनट तक नेगेटिवपर पानी छोड़ कर धोना चाहिये और फिर उसे पोटैसियम परमैंगनेटके बहुत फीके घोलसे (पानीमें नाम मात्र रंग आ जाय)

धोना चाहिये। जब परमैंगनेटका रंग न कटे तो समझना चाहिये कि कुल हाइपो मर गया है। इसके बाद नेगेटिवको आधे मिनट या एक मिनट तक धोना चाहिये।

नोट—इस प्रकार बने नेगेटिव बहुत टिकाऊ नहीं होते।

शीघ्र छापना— (१) यदि बड़ी जल्दी हो तो हाइपो-मारकसे धोकर बिना नेगेटिव सुखाये, केवल सोख्ते (ब्लाटिंग पेपर) से ऊपर लगे पानीको सुखा कर, नेगेटिवको एनलार्जरमें रख कर एनलार्जमेंट बना लेना चाहिये परन्तु इसमें दो बातों पर विशेष ध्यान दिया जाय, एक तो नेगेटिव कड़ा किया रहे और दूसरे फोकस किसी दूसरे नेगेटिवसे किया जाय जिसमें गीले नेगेटिवको प्रकाश और गरमी केवल चंद सेकण्डों तक ही लगे। या

(२) नेगेटिवको हाइपो-मारक और पानीसे धोनेके बाद ब्रोमाइड या गैसलाइट काग़ज़को सादे पानीमें तर करके नेगेटिव पर हाथसे चिपका दिया जाय (हवाके बुलबुले न बनने पायें)। फिर, बिना छापनेके चौखटेमें कसे ही नेगेटिवको प्रकाश दिखला कर छापा जाय। या

(३) यदि नेगेटिवको फ़ॉरमैलिनसे कड़ा कर लिया गया हो तो गरम हवा देने वाले बिजलीके पंखेसे सुखाया जाया। या

(४ यदि प्लेट हो तो उसे दो बार मेथिलेटेड स्पिरिटसे धोकर साधारण बिजलीके पंखेसे या हाथके पंखेसे सुखा लिया जाय।

स्वच्छ करनेके घोल—यदि धोनेके बाद नेगेटिव गंदा दिखलाई पड़े तो उसे निम्न घोलमें रख कर साफ किया जा सकता है।

फिटकरी	$\frac{1}{2}$ आउंस
साइट्रिक ऐसिड (या हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड $\frac{1}{8}$ आउंस)	$\frac{1}{4}$ आउंस
पानी	१० आउंस

मरक्यूरिक क्लोराइडसे नेगेटिव इनटेनसिफाइ करना—इसमें दोष यही है कि मरक्यूरिक क्लोराइड (या मरक्युरी बाइक्लोराइड, विष है। नेगेटिवको पहले निम्न घोलमें सफेद करो :—

मरक्यूरिक क्लोराइड	१२० ग्रेन
पानी	१० आउंस

यह इस्तेमालके बाद उठा कर रख दिया जा सकता है और फिर काममें लाया जा सकता है। कई बार काम देगा। अब नेगेटिवको दो तीन मिनट तक धोओ और निम्न किसी एक घोलमें काला करो।

(१) मेटल-हाइड्रोक्विनोन या ऐमिडल डेवेलपर। इससे प्रकाशान्तर खूब बढ़ता है, परन्तु यदि इतना काफी न हो तो नेगेटिवको फिरसे सफेद करके डेवेलप करो।

(२) सोडियम सलफाइट, १० प्रतिशत घोल। इससे प्रकाशांतर कम बढ़ता है।

मरक्यूरिक आयोडाइडसे इनटेनसिफाइ करना—यह बहुत अच्छा है क्योंकि बराबर दिखलाई पड़ता है कि नेगेटिव कितना इनटेनसिफाई हुआ। जब इच्छा हो नेगेटिव घोलसे निकाल लिया जा सकता है।

सोडियम सलफाइट (सूखा)	१ आउंस
मरक्यूरिक आयोडाइड	४५ ग्रेन
पानी	१० आउंस

अँधेरेमें रक्खे रहनेसे यह कुछ दिन चल सकता है। इनटेनसिफाइ किये नेगेटिवको किसी डेवेलपरसे डेवेलप कर लिया जाय तो अच्छा है, अन्यथा कुछ समय बाद नेगेटिव बदरंग हो जायगा।

परसलफेट रेड्यूसर—हाइपो और फेरीसायनाइड रेड्यूसरसे प्रकाशांतर कुछ बढ़ जाता है। निम्नसे प्रकाशांतर कुछ घटता है, परन्तु मुख्य परिवर्तन यही होता है कि नेगेटिवका घनत्व कम हो जाता है।

अमोनियम परसलफ़ेट	३० ग्रेन
पानी	२ आउंस
सलफ्यूरिक ऐसिड	१ बूँद

घोल ताज़ा बनाना चाहिये। नेगेटिव पर डालनेके बाद यह डेढ़-दो मिनटमें खराब हो जाता है। यदि इतने समयमें नेगेटिव काफ़ी हलका न हो जाय तो ताज़ा घोल लेना चाहिये।

परमैंगनेट रेड्यूसर—गीले नेगेटिवोंका इससे केवल घनत्व कम होता है। सूखे नेगेटिवोंका प्रकाशांतर भी कुछ

कम हो जाता है। यदि नेगेटिव भूरा हो जाय तो सोडियम सलफ़ाइटके १० प्रतिशत घोलमें २ प्रतिशत ऑक्ज़ैलिक ऐसिड डाल कर बने घोलसे धोना चाहिये। रेड्यूसरका नुसखा यह है——

पोटैसियम परमैंगनेट (५ प्रतिशत घोल) ६ मिनिम
सलफ्यूरिक ऐसिड (१० प्रतिशत घोल) ३० मिनिम
पानी १ आउंस

ब्रोमाइड और गैसलाइट काग़ज़ोंके लिये डेवेलपर——इन काग़ज़ों पर ऐमिडल डेवेलपरसे बहुत सुन्दर काला रंग आता है। परन्तु इसे हमेशा ताज़ा बनाना चाहिये। (साधारणतः मेटल-हाइड्रोक्विनोनसे ही ये काग़ज़ डेवेलप किये जाते हैं)।

सोडियम सलफ़ाइट (सूखा) १२० ग्रेन
पोटैसियम ब्रोमाइड ६ ग्रेन
पानी इतना कि कुल हो जाय १० आउंस
घुल जाने पर डालो
ऐमिडल २४ ग्रेन

खैरा (कत्थई) रंग——ब्रोमाइड और गैसलाइट पर छपे फोटोको निम्न दो रीतियोंमें से किसीसे भी सुन्दर खैरा (sepia) रंग दिया जा सकता है।

(१) हाइपोसे निकालनेके बाद यदि छाप अच्छी तरह धोई न गई हो तो उसे अच्छी तरह धो लेना चाहिये। गरमीके दिनोंमें छापको फिटकरी, क्रोम ऐलम या फ़ॉरमैलिनसे कड़ा कर लेने पर धोया जाय तो रंग बदलते समय छापोंपर फफोले पड़नेका डर न रहेगा। पहले छापोंको निम्न घोलमें रंगहीन किया जाता है——

पोटैसियम ब्रोमाइड ½ आउंस
पोटैसियम फेरिसाइनाइड १ आउंस
पानी १० आउंस

अँधेरेमें रक्खे रहने पर यह घोल बहुत दिन चलता है। इस्तेमालके लिये १ भाग यह घोल और ९ भाग पानी मिलाना चाहिये।

फिर ½ या १ मिनट तक धोकर छापको निम्न घोलमें डालना चाहिये——

सोडियम सलफ़ाइड ३० ग्रेन
पानी २ आउंस

इसमें छाप ½ या १ मिनटमें खैरे रंगकी हो जायगी। यह घोल शीघ्र खराब होता है। इसमें बड़ी दुर्गन्ध भी उठती है। इस दुर्गन्धसे प्लेट, फिल्म और काग़ज़ खराब हो जाते हैं। इसलिये इस घोलका इस्तेमाल खुले मैदानमें या बरामदोंमें करना चाहिये। सूखा सोडियम सलफाइड भी रक्खे-रक्खे पसीज कर पानीकी तरह हो जाता है और खराब हो जाता है, परन्तु यदि आवश्यकतानुसार सलफाइडके निकालनेके बाद काग कस कर बन्द कर दिया जाय और उस पर पिघला मोम अच्छी तरह पोत दिया जाय जिसमें भीतर हवा न जा सके तो यह बहुत दिन चलेगा। ध्यान रहे कि सोडियम सलफाइड और सोडियम सलफाइट दो पूर्णतया विभिन्न वस्तुयें हैं।

(२) हाइपो ¼ पाउंड
पानी २० आउंस
घुलने पर छोड़ो——
फिटकरी १ आउंस

कड़ीकी गई छापोंको इस घोलमें गरम करना चाहिये। घोल बराबर कुनकुना रक्खा जाय (तापक्रम लगभग १२०° रहे)। लगभग आध घंटेमें छापोंका रंग बदल जायगा। छापोंको रुईसे पोंछ कर साफ करना चाहिये और पानीसे २० मिनट तक धोना चाहिये। यह घोल जितना ही पुराना हो जाता है उतना ही अच्छा काम करता है, इसलिये पुराने घोलको फेकनेके बदले उसमें आवश्यकतानुसार नया घोल मिलाना अच्छा है; एकदम नये घोलमें दो चार रद्दी छापोंको डाल कर आध घंटे तक गरम रखना चाहिये, अन्यथा प्रथम दो-चार छापोंका रंग हलका हो जायगा।

रंग लाल करना——

(क) कॉपर सलफ़ेट (तूतिया) ६० ग्रेन
पोटैसियम साइट्रेट २४० ग्रेन
पानी २० आउंस

(ख) पोटैसियम फ़ेरिसाइनाइड ५० ग्रेन
पोटैसियम साइट्रेट २४० ग्रेन
पानी २० आउंस

क और ख को बराबर मात्राओंमें मिलाओ और शीघ्र छापको इसमें डाल कर हिलाते रहो। रंग धीरे-धीरे बदलता जाता है। जब इच्छानुसार रंग आ जाय तो निकालो और धोओ।

रंग नीला करना—

(क)	पोटैसियम फेरिसाइनाइड	१५ ग्रेन
	सलफ्यूरिक ऐसिड (तेज़)	३० मिनिम
	पानी	२० आउंस
(ख)	फेरिक अमोनियम साइट्रेट	१५ ग्रेन
	सलफ्यूरिक ऐसिड (तेज़)	३० मिनिम
	पानी	२० आउंस

क और ख को बराबर मात्रामें मिलाकर इस्तेमाल करो। छाप कुछ हलके रहें। इस घोलसे वे कुछ इनटेनसिफाइ हो जाते हैं। रंग पूर्णतया नीला हो जाय तो छापोंको धोओ।

नीले छाप—ऊपरकी क्रियासे ब्रोमाइड और गैसलाइट नीले रंगके किये जा सकते हैं। निम्न रीतिसे साधारण काग़ज़ छापने योग्य हो जाता है।

क—फेरिक अमोनियम साइट्रेट	१२० ग्रेन
पानी	१ आउंस
ख—पोटैसियम फेरिसाइनाइड	४० ग्रेन
पानी	१ आउंस

अँधेरेमें मिलाओ, आवश्यकता हो तो छानो, अच्छे सफेद काग़ज़ पर कपड़े, रुई या स्पंजसे पोतो और काग़ज़को अँधेरेमें सुखाओ। पी० ओ० पी० की तरह धूपमें छापो। जब गहरे साये वाले भागोंका रंग पीतलकी तरह हो जाय तो पानीसे धोओ।

इंजिनियर लोग ऐसे ही काग़ज़ पर नकशा (ब्लू प्रिंट) छापते हैं।

स्टार्चकी लेई—१ आउंस स्टार्चको थोड़ेसे ठंढे पानीमें मलकर गाढ़े राबड़ीकी तरह बना लो और इसमें १२ आउंसके क़रीब खौलता पानी धीरे-धीरे मिलाओ। खौलता पानी मिलाते समय लकड़ीसे बराबर चलाते रहो। लेई तैयार हो जायगी। कुछ कच्ची जान पड़े तो आँच पर रक्खो। जब फदकने लगे तो उतार लो। एक दिनसे अधिक समय तक यह न चलेगी।

डेक्सट्रिनकी लेई—

बढ़िया सफ़ेद डेक्सट्रिन	३ आउंस
पानी	४ आउंस
ऑयल ऑफ़ विंटरग्रीन	१ बूँद
ऑयल ऑफ़ क्लव्ज़ (लौंगकी रूह)	१ बूँद

पानीका तापक्रम १६०° कर दो और उसमें धीरे-धीरे डेक्सट्रिन छोड़कर चलाते जाओ। जब लेई बन जाय तो ठंढा होने दो और उसमें ऑयल ऑफ़ विंटरग्रीन आदि छोड़ो। यह बहुत समय तक चलेगा।

डूफे कलर—इस फिल्मपर रंगीन फोटो उतरता है। प्रकाशदर्शन देनेके लिए इसकी तेज़ी लगभग एच० डी० २०० या शाइनर १८ या १९ समझना चाहिए। पूर्ण अंधकारमें निम्नसे डेवेलप करो—

मेटल	१३ ग्रेन
सोडियम सलफाइट (सूखा)	२१६ ग्रेन
हाइड्रोक्विनोन	२६ ग्रेन
पोटैसियम ब्रोमाइड	१२ ग्रेन
अमोनिया (घनत्व ·८८० हो)	५० मिनिम
पानी	१० आउंस

इससे ६५° के तापक्रम पर डेवेलप करनेमें ३ मिनट लगता है।

फिर तीस सेकंड तक धोकर निम्न घोलमें डालो और हिलाते रहो।

पोटैसियम बाइक्रोमेट	१० ग्रेन
सलफ़्यूरिक ऐसिड	५० मिनिम
पानी	१० आउंस

डेढ़ मिनट बाद सफेद रोशनी आने देना चाहिए। जब नेगेटिवका काला भाग सब धुल जाय तो पानीसे अच्छी तरह धोओ और पहले वाले (एक बार इस्तेमाल किये) डेवेलपरमें फिर डेवेलप करो। धोओ और सुखाओ। रंगीन फोटो तैयार हो जायगा, परन्तु यह फिल्म पर ही रहेगा। काग़ज़ पर नहीं छापा जा सकता।

यदि यह चित्र हलका हो तो समझो कि प्रकाशदर्शन

अधिक दिया गया था ; यदि गाढ़ा हो तो समझो प्रकाश-दर्शन कम था।

ऐगफ़ा कलर फ़िल्म और प्लेटको भी इसी प्रकार डेवेलप किया जा सकता है।

डेवेलपरसे घाव—कुछ (बहुत ही कम लोगोंको मेटलसे घाव हो जाता है। उन्हें मेटल पड़े डेवेलपरको बिना रबड़का दस्ताना पहले इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। वे पायरो-सोडा और ऐमिडल इस्तेमाल करें। घाव पर निम्न मरहम लगानेसे वह अच्छा हो जायगा।

इकथियोल (ichthyol)	१० ग्रेन
लैनोलिन	४० ग्रेन
बोरिक ऐसिड	४० ग्रेन
वेसलिन	३० ग्रेन

दो तीन बार लगाओ। सोनेके पहले अवश्य लगाओ।

रासायनिक पदार्थोंके गुण—अमोनिया—अमोनिया या लिकर अमोनियाकी तेज़ी धीरे-धीरे कम हो जाती है। यदि इसे शीशेके सच्चे डाट वाले बोतलोंमें अच्छी तरह बन्द करके रक्खा जाय तो केवल तभी तेज़ी ज़रा सी कम होगी जब डाट खुलेगी। इसकी तेज़ीका पता घनत्व नापनेसे चलता है। जितना ही घनत्व कम हो यह उतना ही तेज़ होगा।

ऑक्जैलिक ऐसिड—यह दवाखानोंमें बिकता है। विष है।

ऐसेटिक ऐसिड—तेज़ ऐसिड (जिसे ग्लेशियल ऐसेटिक ऐसिड कहते हैं) खरीदना चाहिए। दवाखानोंमें भी बिकता है। शरीर पर न पड़े, नहीं तो घाव हो जायगा।

कॉस्टिक पोटैश और कॉस्टिक सोडा—दोनोंसे त्वचा कट जाती है। इसलिए इन्हें हाथसे न छूना चाहिए। हवा लगनेसे ये पसीजते हैं और तेज़ी भी कम हो जाती है। इसलिए अच्छी तरह बन्द बोतलोंमें रखना चाहिए।

पोटैसियम परमैंगनेट—दवाखानोंमें बहुत सस्ता बिकता है।

पोटैसियम बाइक्रोमेट—दवाखानोंमें भी बिकता है।

फ़ॉरमैलिन—दवाखानोंमें भी बिकता है। खुले बोतलमें रखनेसे तेज़ी कम हो जाती है।

फेरिक अमोनियम साइट्रेट—दवाखानोंमें बिकता है।

बोरैक्स—दवाखानोंमें बहुत बिकता है। बनियोंके वहाँका सोहागा काफ़ी शुद्ध नहीं होता।

मरक्यूरिक आयोडाइड—दवाखानोंमें भी बिकता है। पानीमें नहीं घुलता, परन्तु सोडियम सलफाइटके घोलमें घुलता है। विष है।

मरक्यूरिक बाइक्लोराइड—तीव्र विष है। हाथसे न छूना चाहिए क्योंकि घाव हो जानेका डर रहता है।

मेटल—इसकी शीशीको अच्छी तरहसे बन्द रखना चाहिए।

सलफ्यूरिक ऐसिड—इससे हाथ और कपड़े कट जाते हैं, इसलिए सावधानीसे इस्तेमाल करना चाहिए। भूल कर भी तेज़ सलफ्यूरिक ऐसिडमें पानी न छोड़ना चाहिए, नहीं तो पानी तेज़ाबको लिए हुए उछल पड़ेगा। पानीमें तेज़ाब छोड़ना चाहिए, सो भी धीरे-धीरे, और शीशेके छड़से (या दाँतके ब्रशके हैंडलसे) चलाते रहना चाहिए। सल्फ्यूरिक ऐसिड दवाखानोंमें बिकता है।

सोडियम कारबोनेट और सोडियम सलफ़ाइट—इनमेंसे प्रत्येक दो रूपमें बिकता है, सूखी बुकनी और रवे। भारतवर्षमें सूखी बुकनी ही साधारणतः बिकती है। यदि रवे इस्तेमाल किये जायँ तो तौल दुगुनी कर देना चाहिए।

स्टार्च—दवाखानोंमें बिकता है।

हाइड्रोक्लोरिक ऐसिड—दवाखानोंमें बिकता है। शरीर पर न पड़े।

घोल बनाना—किसी नुसखेके अनुसार घोल बनानेमें लिखी हुई मात्रासे कुछ कम जल लेकर घोल बनाना चाहिए, अन्तमें आवश्यक पानी डाल कर मात्रा पूरी कर देनी चाहिए। मेटलके अतिरिक्त अन्य डेवेलपर बनाते समय पहले सलफाइट या मेटाबिसलफाइट घोल लेना आवश्यक है। डेवेलपरोंमें हवा लगनेसे वे खराब हो जाते। इसलिए उनको ऐसी सफाईसे बनाना चाहिए कि छानना न पड़े। यदि पानीमें पदार्थोंको धीरे-धीरे छोड़ा जाय और बराबर चलाते रहा जाय तो, वे शीघ्र घुलेंगे। शीशेके छड़ या दाँतके बुरुशके हैंडलसे चलाना चाहिए। घोलोंको शीशेके गिलासोंमें बनाना चाहिए और रखाऊँ घोलोंकी बोतलोंमें अच्छा काग लगाना चाहिए।

फलोंकी पेक्टिन

[ले०—श्री कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंह, एम० एस-सी०]

[गतांकसे आगे]

यदि अ = स्वतन्त्र पेक्टिन; ब = प्रोटो पेक्टिन या पेक्टोस ; स = पेक्टिक एसिड एवं उसके लवण; तो उपर्युक्त विधि द्वारा जो भारतीय फलों पर प्रयाग विश्वविद्यालयकी रसायनशालामें प्रयोग किये गये थे उनका परिणाम निम्नलिखित हैं :—

सूखे फलों पर विभिन्न घोलों द्वारा कैलशियम पेक्टेटकी प्रतिशत मात्रा एवं उनमें जलका भाग

	अ (जल)	ब (आक्जेलिक एसिड)	स (अमोनियम आक्जलेट)	जल
कैथेका गूदा	१०·५४	१२·९५	१४·०५	७१·८
कैथेका श्वेत छिल्का	९·७५	१४·१५	१९·२०	६९·९
अमरूद	४·२६	६·०८	६·८९	७८·८
करौंदा	५·४१	९·१६	११·२४	८९·०
पट्टुएका लाल भाग	१७·५२	२३·२५	२७·१०	८८·२
सम्पूर्ण पट्टुआ	९·५२	१३·१५	१४·३५	८२·७
केवल पट्टुआका फल	३·१२	४·०५	४·३१	७६·४
संतरा	८·८५	१०·७०	११·८५	८८·६
नींबू	१३·६५	१७·१४	१८·५५	८५·१
बेर	३·९०	६·५२	७·२८	८०·०
केला	२·५२	३·२०	४·५३	७३·७
बेल	२·७५	४·६०	६·५७	६८·८
मकोय	२·०५	४·२५	४·६५	८३·८

सूखे फलोंमें विभिन्न पेक्टिक पदार्थोंकी प्रतिशत मात्रा एवं ताज़ेमें उनका परिमाण

	अ (स्वतन्त्र पेक्टिन)	ब-अ (पेक्टोस)	स-ब (पेक्टिक एसिड)	ताज़े फलमें मात्रा
कैथेका गूदा	१०·५४	२·४१	१·१०	३·९५
कैथेका श्वेत छिल्का	९·७५	४·४१	५·०५	५·७८
अमरूद	४·२६	१·८२	०·८१	१·४४
करौंदा	५·४१	३·७५	२·०८	१·२३
पट्टुआका लाल भाग	१७·५२	५·७३	४·०५	३·१९
सम्पूर्ण पट्टुआ	९·५२	३·६३	१·२०	२·४८
केवल पट्टुआका फल	३·१२	०·९३	०·२६	१·०२
संतरा	८·८५	१·८५	१·१५	१·२०
नींबू	१३·६५	३·४९	१·४१	२·७६
बेर	३·९०	२·६२	०·७६	१·४५
केला	२·५२	०·६८	१·३३	१·१९
बेल	२·७५	१·८५	१·९७	२·०३
मकोय	२·०५	२·२०	०·४०	०·७५

ऊपरकी दोनों सूचियोंमें सूखे फलों एवं उनके विभिन्न भागोंके पेक्टिक पदार्थोंकी मात्रा प्रतिशत कैलशियम पेक्टेटके रूपमें प्रकट की गयी है। कारण यह है कि नानर्जी व नारमन के विचारमें पेक्टिनकी मात्रा प्रकाशित करनेका यही सबसे उत्तम साधन है जब तक कि उनके विषयमें हमें और स्पष्ट ज्ञान प्राप्त न हो जावे। इन प्रतिशत मात्राओंको फलोंका 'कैलशियम पेक्टेट अंक' कहा जाता है। फलोंमें सम्पूर्ण पेक्टिक पदार्थकी मात्रा, जो कि नं० २ सूचीके अमोनियम आक्जलेटकी पंक्तिमें है उनमें जलके भागका विचार रखते हुये ताज़े फलों पर उनकी मात्रा निर्धारितकी गई है जो कि सूची नं० ३ के अन्तिम पंक्तिमें ताज़े फलोंके नीचे अंकित है। ताज़े फलोंमें पेक्टिनकी यह मात्रा सूखे फलके चूर्ण परिमाणिक जाँचके आधार पर गणना करके ज्ञात किया गया है; किन्तु यदि ताज़े फलों पर उसी प्रकार पेक्टिनकी परिमाणिक जाँच की जावे तो निस्सन्देह उनकी मात्रा कम आवेगी। कारण यह है कि उनका निचोड़ भली भांति नहीं हो पाता और पेक्टिक पदार्थोंका यथेष्ट भाग फलोंके अन्तर्गत भागोंमें चिपका ही रह जाता है। अतः परिमाणिक जाँच करनेके लिये यह आवश्यक है कि फलों को सूखे महीन चूर्ण रूपमें होना चाहिये। उपर्युक्त सूचियोंमें कैलशियम पेक्टेटकी मात्रा निर्धारित करनेके लिये कम-से-कम दो और किसी-किसीमें ६-७ फलोंके नमूनोंकी परिमाणिक जाँच की गई थी और ये विभिन्न अंक उन प्रयोगोंके परिणामोंका औसत हैं।

अब यदि हम उपर्युक्त सूचियोंका अध्ययन करें तो चूर्ण फलोंपर पेक्टिक पदार्थोंका सबसे अधिक मात्रा पट्टुआ के लाल भागमें है किन्तु यह व्यापारिक दृष्टिकोणसे पेक्टिन-साधन नहीं हो सकता। कारण यह है कि वह अधिक मूल्य एवं अल्प मात्रा ही में प्राप्त हो सकता है। इसके अतिरिक्त फलके लाल भागमें जलकी अधिक मात्रा होनेके कारण ताज़े फलमें पेक्टिनकी मात्रा घट जाती है। जैसा कि सूची नं० ३ की अंतिम पंक्तिसे विदित है जिसमें ताज़े फलोंमें पेक्टिनकी मात्रा दी गई है और फिर पट्टुओंके अन्य भाग में पेक्टिन उतनी मात्रामें नहीं पाई जाती। उन सूचियोंमें दूसरा नंबर नींबूका आता है। उसके रस द्वारा नींबूका सत और अवशेष भाग द्वारा पेक्टिन व्यापारिक रूपसे विदेशोंमें निकाली जाती ही है। किन्तु यदि सम्पूर्ण नींबू पेक्टिन निकालनेके काममें लाया जावे तो व्यापारिक सफलता नहीं मिल सकती। कारण यह है कि नींबू बहुत मँहगा पड़ेगा। इसके पश्चात् पेक्टिन पदार्थोंकी अधिक मात्रा कैथामें है और जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है यही एक ऐसा भारतीय फल है जिससे पेक्टिनका व्यापार सफलतापूर्वक आरम्भ किया जा सकता है। उपर्युक्त सूचियों-से स्पष्ट है कि कैथेके भीतरके श्वेत छिलकेमें पेक्टिक पदार्थोंकी मात्रा उसके गूदेसे भी अधिक है जिस प्रकार कि नींबू और संतरेके भीतरी सफेद छिलकेमें होता है। किन्तु उनका अधिकांश भाग पेक्टिक ऐसिड अथवा उसके लवणों का होता है। फिर भी पेक्टोस व पेक्टिनकी मात्रा कम नहीं होती जैसा कि उन अंकोंसे विदित है। अन्य भारतीय फल जिनमें पेक्टिन पर्याप्त मात्रामें है वे अमरूद, करौंदा संतरा आदि है। किन्तु वे इस योग्य नहीं कि उनमेंसे पेक्टिन निकाली जा सके। वे स्वयं ही अत्यन्त स्वादिष्ट हैं और उनकी बनी हुई वस्तुओंकी यथेष्ट माँग है अतः वे इसी प्रकार सम्पूर्ण रूपसे काममें लाये जाते हैं।

बाट

फोटोग्राफ़ीके लिये घोल बनानेमें अक्सर यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि कितने ग्रेनका एक आउंस होता है। ऐसे ही अन्य प्रश्न भी उठते हैं। ये बातें निम्न सारिणीसे ज्ञात हो जायंगी।

४३७½ ग्रेन = १ आउंस
१६ आउंस = १ पाउंड
१ रुपयेकी तौल = १८० ग्रेन
२ पाउंड = लगभग १ सेर

तरल नाप—
६० मिनिम = १ ड्राम (या ड्रैम)
८ ड्राम = १ आउंस = ४८० मिनिम

नापसे लिया गया १ आउंस पानी तौलमें भी लगभग १ आउंस होता है। १ बूँद = लगभग १ मिनिम।

सरल विज्ञान

समय

यदि कोई पूछे कि इस समय कितना बजा है तो कैसे बताओगे। अवश्य ही यदि घड़ी होगी तो घड़ी देख कर बता सकोगे। परन्तु तुम्हारी घड़ी ठीक है या नहीं, इसका उत्तर कैसे दोगे? सम्भवतः तुम कहोगे कि तुम्हारी घड़ी तारघर, रेलवे-स्टेशन या रेडियोसे मिली हुई है; इसलिए शुद्ध समय बतलाती है।

परन्तु तब प्रश्न उठेगा कि रेल या रेडियो वाले शुद्ध समयका ज्ञान कैसे करते हैं।

यदि जड़ तक इस बातकी जाँच की जाय तो पता चलेगा कि शुद्ध समयका ज्ञान केवल सूर्य या तारोंसे ही चल सकता है। प्रत्येक बड़े राज्यमें एक-दो राज-बेधशालाएँ होती हैं, जहाँ कोई ज्योतिषी इसी लिए वेतन पाता है कि प्रति दिन वह तारोंका बेध करके पता लगाया करे कि शुद्ध समय क्या है। उदाहरणतः ग्रेट ब्रिटेनमें दो स्थानोंमें राज-बेधशालाएँ हैं जहाँ प्रति रात्रि, जब आकाश स्वच्छ रहता है, तारोंका बेध किया जाता है, अर्थात् उनको यंत्रों द्वारा देखा जाता है और इस प्रकार समयका पता लगाया जाता है।

सूर्योदय पर भरोसा नहीं

प्राचीन समयमें, जब विशेष यंत्र नहीं बन पाये थे, लोग सूर्योदय देख कर समयका ज्ञान करते थे, या तारोंको क्षितिजके ऊपर उठते देखकर समयका अनुमान करते थे। परन्तु क्षितिजके पास आकाश स्वच्छ नहीं रहता। कुहेसा, गर्द, वायुमण्डलकी अस्थिरता आदिके कारण क्षितिज पर उदय या अस्त होते समय सूक्ष्म रीतिसे समय नहीं जाना जा सकता। इसी लिए अब यह देखा जाता है कि दोपहर कब हुई या तारा शिरोविंन्दु तथा उत्तर-दक्षिण दिशाओंसे होकर जाने वाली रेखा पर कब आया। सुविधाके लिए उस धरातलका जो देखने वालेके शिरोविंदु और क्षितिजके उत्तर तथा दक्षिण विन्दुओंसे होकर जाती है नाम रख दिया गया है। उसे यामोत्तर कहते हैं।

यदि यामोत्तर प्रदर्शित करनेके लिए कोई दीवार बना ली जाय, जो ठीक उत्तर-दक्षिण दिशामें हो और सीधी खड़ी हो, तो हम दीवारसे आँख सटाकर या दीवारकी परछाईं देख कर जान सकते हैं कि सूर्य कब यामोत्तर पर आया, या कोई तारा कब यामोत्तरको पार कर रहा है। परन्तु दीवारसे आँख सटानेमें या परछाईं देखनेमें न तो सुविधा होती है और न बहुत सूक्ष्मतासे कार्य हो सकता है। इसलिए यामोत्तरके ज्ञानके लिए एक यंत्र रहता है।

नली और पेंसिलसे स्वयं देखो

एक नलीको किसी पेंसिल पर इस प्रकार बाँध दो कि दोनोंके बीच समकोण बने, और तब पेंसिलको ठीक पूरब-पच्छिम दिशामें और ठीक बेंड़ी (क्षैतिज धरातलमें) रक्खो, तो नलीको पेंसिलके बल घुमानेसे तुम देखोगे कि नली यामोत्तर धरातलमें चलती है।

यामोत्तरको सूक्ष्म रीतिसे बताने वाला यंत्र ठीक इसी सिद्धान्त पर बनता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि नलीके बदले दूरदर्शक (दूरबीन) रहता है और पेंसिलके बदले सुदृढ़ धुरी। इस यन्त्रको यामोत्तर यंत्र कहते हैं।

यामोत्तर यंत्र

यामोत्तर यंत्रके मूल अवयव बगलके चित्रमें दिखलाये गये हैं। अगल-बगल दो खम्भे खड़े रहते हैं। उन पर
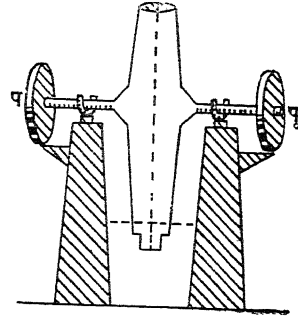
यामोत्तर यंत्रके मूल अवयव।
इसी यंत्रसे समयका शुद्ध ज्ञान होता है।

एक धुरी रहती है जो चित्रमें प पू से सूचित किया गया है। यह धुरी ठीक पूरब-पच्छिम दिशामें और ठीक बेंड़ी रहती है। इस धुरीसे समकोण बनाता हुआ एक दूरदर्शक रहता है।

दूरदर्शकके घुमाने पर इसकी मध्य रेखा ठीक यामोत्तर धरातलमें चलती है। इसलिए यदि दूरदर्शकमें आँख

लगाने पर कोई तारा दूरदर्शकके दृष्टिक्षेत्रके मध्यमें दिखलाई पड़े तो पता चल जाता है कि उस समय वह तारा यामोत्तरमें है। इस प्रकार समयका पता चल जाता है; अवश्य ही, कुछ गणना करनी पड़ती है।

वास्तविक यंत्र देखनेमें इतना सरल नहीं होता। उसका फोटो चित्र २ में दिखलाया गया है।

इसमें दूरदर्शक इतना बड़ा है कि ज्योतिषी गद्देदार कुरसी पर लेट कर तारेको देखता है। कोई तारा यामोत्तर पार करते समय बहुत ऊँचा रहता है, कोई नीचा। इस लिये ऐसा प्रबन्ध रहता है कि ज्योतिषी अपनी कुरसीको आवश्यकतानुसार ऊँची-नीची कर सके।
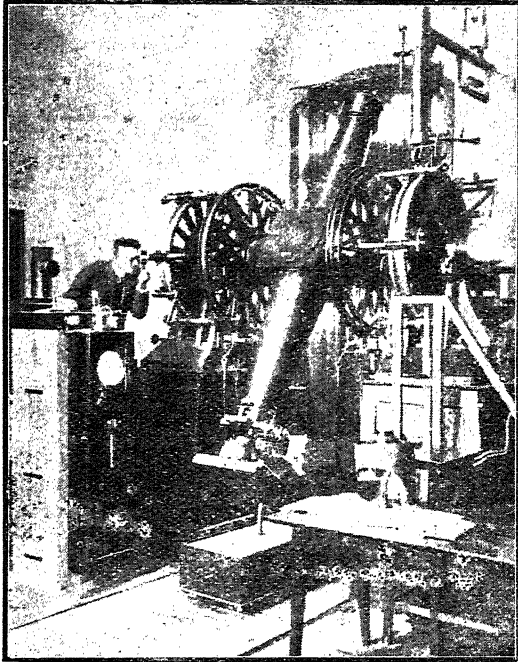
चित्र २—असली यामोत्तर।
गद्देपर लेट कर ज्योतिषी तारेका बेध कर रहा है।

चित्रमें एक दूसरा ज्योतिषी भी दिखलाई पड़ रहा है। वह केवल इस बातको नाप रहा है कि तारा उस समय कितना ऊँचा या नीचा था जब वह यामोत्तर पार कर रहा था। समय ज्ञात करनेके लिए ऊँचाईका ज्ञान आवश्यक नहीं है, परन्तु ज्योतिषके अन्य कार्योंके लिए इसका ज्ञान उपयोगी है।

सच्ची घड़ी

तारेके बेधसे समयका ज्ञान एक क्षणके लिए होता है। पता चल जाता है कि इस क्षण समय यह है। परन्तु इतनेसे तो लोगोंका काम नहीं चल सकता; इसलिए ज्योतिषीके पास ऐसी घड़ी (दीवार पर लटकने वाली लंगरदार घड़ी) रहती है जो बहुत सच्ची चलती है। तारा ज्योंही यामोत्तर पार करता है त्योंही देख लिया जाता है कि घड़ी कितनी तेज़ या सुस्त है। यह काम प्रति रात्रि, जब बादल नहीं रहते, किया जाता है। परन्तु ये घड़ियाँ इतनी सच्ची चलती हैं कि एक बार तारेसे मिला देने पर दो-चार महीनेमें पाँच-दस सेकण्डसे अधिकका अन्तर नहीं पड़ता।

समय बिकता है

कुछ देशोंमें तो सच्चा समय बिकता है। यदि तुमको शुद्ध समयकी आवश्यकता हो तो दूकानदार तुम्हारे घर या दफ्तरमें बिजलीकी घड़ी लगा देगा जिसमें प्रत्येक ३० सेकंड पर दूकान पर लगी बहुत ही सच्ची घड़ीसे बिजली आती है और सुई ज़रा-सी आगे बढ़ जाती है। इस प्रकार तुम्हें सच्चा समय बराबर मिलता रहेगा। इस समयमें कभी भी आधे सेकंडसे अधिककी अशुद्धि नहीं रहेगी। तुम्हारे घरमें लगे यंत्रमें न तो लंगर रहेगा, न कमानी, और न कभी चाभी भरनी पड़ेगी, केवल कुछ रुपया मासिक उस दूकानदारको देना पड़ेगा। भारतवर्षके कुछ स्टेशनोंपर ऐसी घड़ियाँ लगी हैं।

तहखानेमें प्रोफ़ेसर फँस गये!

आधुनिक घड़ियोंको किस सावधानीसे रक्खा जाता है इसका अच्छा ज्ञान तुम्हें निम्नलिखित सच्ची घटनासे हो जायगा।

एडिनबरा बेधशालाकी बात है। वहाँकी प्रधान घड़ी ज़मीनके अन्दर बने तहखानेमें बन्द रहती है। तहखानेका प्रयोग इसलिए किया गया है कि धूप-शीत आदिसे घड़ी वाली कोठरीमें गरमी-सरदी न पहुँचे। इतना ही नहीं, तहखानेकी दीवारें दोहरी हैं। वस्तुतः कोठरीके भीतर

कोठरी है। किसीको भीतर जाना रहता है तो वह पहले बाहरी दरवाजा खोलता है। फिर भीतर जाकर इसे बन्द कर लेता है। तब भीतरी दरवाज़ा खोलता है और भीतर पहुँच कर इसे भी बन्द कर लेता है।

एक बार बेधशालाके डाइरेक्टर, प्रोफेसर सैम्पसन, घड़ी देखने भीतर घुसे। संयोगसे बाहरी दरवाज़ेका भीतरी हैंडिल उखड़ गया। उसीको घुमा कर खींचने पर दरवाज़ा खुलता था। हैंडिल उखड़ जानेके कारण प्रोफेसर साहब ने दरवाज़ा पूर्णतया बन्द नहीं किया।

इसी बीचमें असिस्टैंट साहब उधरसे गुज़रे। दरवाज़ा कुछ खुला देख कर चौंक पड़े। समझे कि जब मैं सबेरे घड़ी देखने आया था तो इसे बन्द करना भूल गया। डरे कि कहीं डाइरेक्टर साहब देख लेंगे तो बुरी तरह डाँट पड़ेगी। इसलिये चुपकेसे दरवाज़ा खींच लिये। कमानीदार खटका खटसे लग गया।

भीतरी कोठरीसे जब डाइरेक्टर निकले तो दरवाज़ा बन्द! हैंडिल होता तो उसे खोल लेते। बहुत चिल्लाये। परन्तु तहखानेमें बन्द होनेके कारण बाहर कहाँ आवाज़ पहुँचती।

शाम तक बन्द रहे। जब शामको घड़ी देखने की ड्यूटी वाला असिस्टैंट घड़ी देखने पहुँचा तो डाइरेक्टरको वहीं बदहवास पाया।

दूसरे दिन ही डाइरेक्टर ने घड़ी वाली कोठरीमें टेलिफोन लगवा दिया!

जैम, जेली, शर्बत, चटनी, आदि बनानेकी दो साप्ताहिक शिक्षा

जैम, जेली, चटनी, अचार आदि बनानेकी दो सप्ताह की शिक्षा नीचे लिखे हुये स्थानों पर उनके सामने लिखी हुई तारीखों पर होगी :—

लखनऊ	२१ अक्तूबरसे २ नवम्बर १९४२ तक	
देहरादून	१५ नवम्बरसे ३० नवम्बर	”
इलाहाबाद	१० दिसम्बरसे २४ दिसम्बर	”
कानपुर	१२ जनवरीसे २६ जनवरी १९४३ तक	
मेरठ	२० फरवरीसे ५ मार्च	”

लखनऊकी कक्षा केवल स्त्रियोंके लिये होगी; बाक़ी और कक्षाओंमें स्त्री-पुरुष दोनों शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। फ़ीस ५) रुपया प्रति विद्यार्थी होगी जो कक्षा आरम्भ होनेसे पहले ही ले ली जायगी। जगह होने पर प्रत्येक कक्षामें दो अन्य प्रान्तीय विद्यार्थी भी शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं यदि वे १०) रुपये फीस दें। इस शिक्षाके लिये विद्यार्थी को थोड़ी-सी अंग्रेज़ी पढ़ने-लिखनेकी योग्यता होनी चाहिये। जो इस शिक्षाको लेनेके इच्छुक हों वे प्रोवेन्शियल मार्केटिंग आफ़िसर, यू० पी०, लखनऊसे कक्षा आरम्भ होनेसे कम-से-कम १५ दिन पहले लिखा पढ़ी करें।

विज्ञान-परिषद्की नवीनतम पुस्तक

मधुमक्खी-पालन पर सम्मति

मधुमक्खी-पालन मुझे अब भी प्रिय है और जुगड़ान जी की पुस्तकको प्रकाशित देख मुझे जो हर्ष हुआ उसे मैं वर्णित नहीं कर सकता। परिषदकी सब पुस्तकोंके सानुरूप इस पुस्तकका रंग-रूप और सजधज कितनी बढ़िया है। हिन्दीके लिये मधुमक्खी-पालन विषय पर इतने विस्तार वाली वैज्ञानिक पुस्तक भारी गौरवकी बात है। विषयानुक्रमणिका देकर पुस्तकको 'मॉडर्न' बना दिया है। यदि पारिभाषिक शब्दावलि अन्तमें और दी होती तो मुझे विशेष आनन्द होता।

—इन्द्रसेन, पी-एच० डी०

क्या हृदय बायीं ओर होता है?

साधारणतया लोग यह जानते हैं कि हृदय मनुष्यकी बायीं ओर होता है। इसका कारण है कि हृदयकी मुख्य मांसपेशियाँ तथा मुख्य शिराएँ बायीं ओर होती है। हृदय का तिकोना पतला भाग भी बाईं ओर ही होता है। इन सब कारणोंसे हृदयकी धड़कन भी बाईं ओर ही अनुभव होती है। यदि शरीरको बीचोंबीचसे काट दिया जाय तो हृदयके दो भाग हो जायँगे और उनमें से ठीक-ठीक आधा भाग दाहनी ओर रहेगा। वास्तवमें हृदय शरीरके बिलकुल मध्यमें होता है।

—राजवंशी
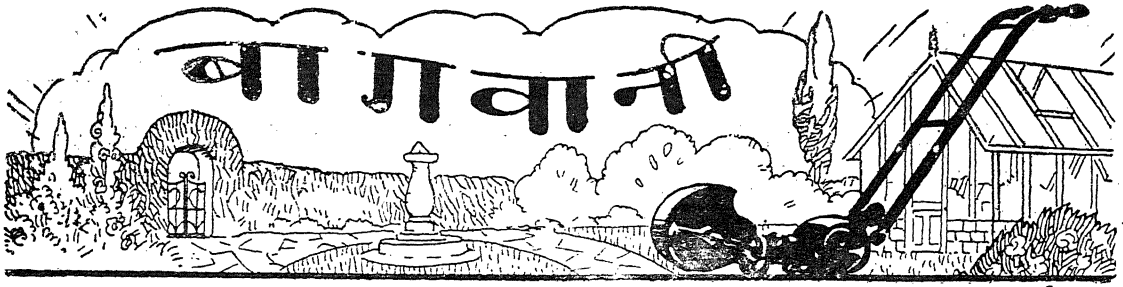
सेम

सेम मध्य अक्टूबरसे मध्य नवम्बर तक बोई जाती है। पहाड़ पर मार्चके आरम्भसे मईके अन्ततक बोई जाती है।

यह एक वार्षिक लता है। इसकी दो जातियाँ हैं। एककी फली लम्बाईमें छः से नौ इंच तककी होती है और प्रत्येकमें चारसे लेकर छः दाने होते हैं। दूसरी छोटी होती है जो तीनसे लेकर छः इंच तक लम्बी होती है तथा इसमें चिपटे दाने होते हैं। इन दो जातियोंकी कई एक उप-जातियाँ हैं जिनके वर्णन बीज बेंचने वाली दूकानोंके कैटलगोंमें मिल सकता है। परन्तु इन उप-जातियोंमें विशेष अन्तर नहीं रहता। बड़ी सेम ही यहाँ आसानीसे होती है। एक नाटी जाति भी है जो जूलाईमें बोई जाती है। इसके दाने मटरके दानेके समान होते हैं और इसका छिल्का कड़ा तथा चमकीला होता है।

जाड़ेके सेमका बीज मध्य अक्टूबरके बाद नहीं बोना चाहिए, क्योंकि फल लगानेके समय तक गरमी पड़ने लगती है और गरमीमें पौधे मर जाते हैं। सेमके लिए खूब खाद वाली और भुरभुरी मिट्टी चाहिए। यह हल्की बलुही ज़मीनमें भी हो सकती है। परंतु उसमें खाद भरपूर देना चाहिए। सेम बोनेके लिए भूमिको निम्न रीति से तैयार करना चाहिए। पहले ज़मीन पर खूब सड़ी खाद बिछा दो, और तब फावड़े या हलसे नौ इंच तक मिट्टी खोद डालो। इस प्रकार जब खाद और मिट्टी खूब मिल जाय और मिट्टीकी ऊपरी सतह चौरस कर दी जाय तो इसमें तीन-तीन फुट पर खाईं बनाओ जो दो फुट चौड़ी और तीन इंच गहरी हो। इस प्रकार एक खाईंके केन्द्रसे दूसरी खाईंके केन्द्रकी दूरी पाँच फुट रहेगी। अब खाइयोंके बीचमें और उनके छोरोंके समानान्तर रेखाएँ खींचो जो एक दूसरेसे एक-एक फुटकी दूरी पर रहें और तीन इंच गहरी हों। इन रेखाओंमें पाँच-पाँच या छः-छः इंचकी दूरी पर बीज बो दो। बीज तीन-तीन इंच धँसे रहें। पौधे जब उगेंगे तो उनकी दो पंक्तियाँ प्रत्येक खाईंमें निकलेंगी।

कुछ लोगोंका कहना है कि अगर बीज कुनकुना पानीमें एक या दो घंटे तक रक्खा जाय तो वे जल्दी उगेंगे; परन्तु ऐसा करना आवश्यक नहीं है। यदि बोनेके बाद खाईंको सींच दिया जाय तो भी वही बात होगी। जब पौधे पन्द्रह इंच ऊँचे आ जायँ तो खाईंको भर देना चाहिए, और जड़के पासकी मिट्टी कुछ ऊँची कर देनी चाहिए। पहले जब सिंचाई करनी पड़ती है तो खाईंमें पानी भरा जाता है। जब पौधोंकी जड़ोंके पास मिट्टी ऊँची कर दी जाती है तब पौधोंकी पंक्तियोंके बीचमें सिंचाईके समय पानी भरा जाता है।

जब पौधोंमें खूब फूल लग जायँ या जब वे लगभग तीन फुट ऊँचे हो जायँ तो प्रत्येक शाखाकी फुनगीको अँगुली और अँगूठेसे मसल कर नष्ट कर दिया जाता है। यदि ऐसा नहीं किया जाय तो बहुत समय तक पौधे बराबर बढ़ते और फूलते चले जायँगे, परन्तु इनकी फुनगियोंको नष्ट कर देनेके बाद फल शीघ्र लगने लगेगा।

फ्रेञ्चबीन (विलायती सेम)

फ्रेंचबीनको देहाती लोग फरासबीन भी कहते हैं। इसका बीज मध्य अगस्तसे मध्य अक्टूबर तक बोया जाता है। पहाड़ पर अप्रैलके आरम्भसे मध्य जून तक इसका बीज बोना चाहिए। इसकी कई एक जातियाँ हैं। उत्तरीय भारतवर्षमें इसके उगानेमें अक्सर कठिनाई पड़ती है। यह ऐसे बागीचेमें अच्छी तरह पैदा होता है जिसमें ऊँचे पेड़ोंकी एक-दो पंक्तियाँ हों जो पौधोंको ठंढी हवा आदिसे रक्षा कर सकें। यदि बगीचा चारों ओरसे खुला हो या ज़मीन कड़ी हो तो संभवतः यह पौधा नहीं उग सकेगा। परन्तु पौधोंको सायेमें नहीं लगना चाहिए; जगह ऐसी हो जहाँ धूप मिल सके।
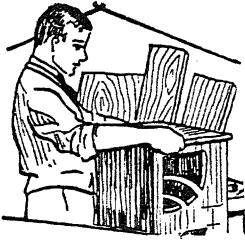
[शेष अगले पृष्ठ पर]

यह गुड़िया नाचती है !!!

आठ-दस मिनटमें इसे आसानीसे तुम स्वयं बना सकते हो !

दफ्ती या प्लाइवुड (पतली लकड़ी) पर गुड़ियाका चित्र रंग कर उसे कैंची या फ्रेट-सॉ (बारीक आरी) से काट लो। कमरके पास एक हैंडिल कीलसे जड़ दो, या यदि गुड़िया लकड़ी की बनी हो तो लकड़ीमें छेद करके और हैंडिलमें चूल बनाकर सरेस चुपड़ कर कस दो।
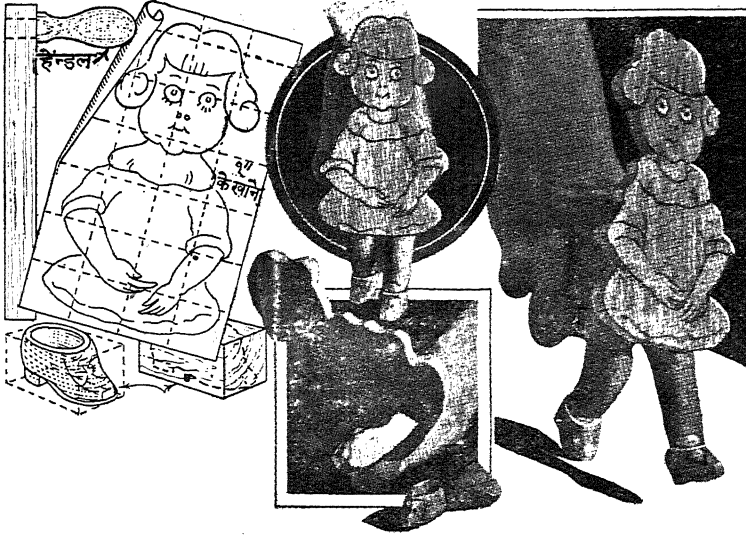
यदि हैंडिल बढ़िया न बन सके तो कोई चिंता नहीं, क्योंकि यह दिखलाई न पड़ेगा।

अब नरम लकड़ीको चाकूसे छिल कर दो जूते गढ़ लो जो तुम्हारी अँगुलियों पर कस कर चढ़ सकें। इनको अँगुलियोंमें पहन लो और गुड़ियाकी पीठमें जड़े गये हैंडिलको अँगुलियोंके बीचमें दबा लो। बस गुड़िया तैयार है। यह चलेगी और दौड़ेगी; और यदि तुम्हें ताल और नाट्यकलाका थोड़ा-सा भी ज्ञान है तो तबलेकी बोल पर यह खूब नाचेगी भी।

[नोट—चित्रको लकड़ी या दफ्ती पर उतारनेके लिए पहले उस पर एक-एक इंचके चारखाने खींच लो। फिर यहाँ दिये गये चित्रकी नकल उतार लो]।

—चंद्रिका प्रसाद

बागवानी

[शेष पिछले पृष्ठ का]

बीजोंको छः-छः इंचकी दूरी पर बोया जाता है और वे एक-एक इञ्चकी गहराई पर रहें। पंक्तियाँ अट्ठारह-अट्ठारह इञ्च पर रहें। ज़मीन हल्की अर्थात् बलुही हो और उसमें सड़ी हुई खाद खूब हो। पौधोंके निकल आनेके बाद प्रति सप्ताह एक बार सींचना चाहिए और बराबर खुरपियाना चाहिए।

चुकन्दर

मध्य अगस्तसे अक्टूबरके अन्त तक चुकन्दरका बीज बोया जा सकता है। चुकन्दरको किसी ऐसी ज़मीनमें बोना चाहिए जहाँ साया न पड़ती हो। इसके लिए ज़मीन पर खादकी चार-पाँच इंच मोटी तह बिछा देनी चाहिए और तब गहरी खोदाई करनी चाहिए जिसमें मिट्टी और खाद अच्छी तरह मिल जाय। लगभग हाथ भरकी खोदाई की जा सके तो अच्छा होगा। ज़मीनको खूब चौरस करनेके बाद बीजको एक-एक इंच पर पंक्तियोंमें बोया जाता है। पंक्तियाँ पंद्रह-पंद्रह इञ्च पर रहें। यदि बोते समय ज़मीन नम रहे तो तुरन्त पानी देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है, परन्तु यदि ज़मीन सूखी हो तो बोनेके बाद पानी देना चाहिए। जब पौधे दो-दो इञ्च ऊँचे हो जायँ तो फालतू पौधोंको उखाड़ कर फेंक देना चाहिए जिसमें सब पौधे तीन-चार इञ्चकी दूरी पर रहें।

इस शीर्षके नीचे ऐसे लेख छपा करते हैं जो विश्व-कोष (एनसाइक्लोपीडिया) में स्थान पाने योग्य रहते हैं।

अम्ल

[गतांकसे आगे]

$$\text{अम्ल} \quad \text{हक} = \text{ह}^{+} + \text{क}^{-}$$

जब तक अम्लोंमें पानी नहीं मिलाया जाता, तब तक इसके अणुओंका आयनोंमें विश्लेषण नहीं होता। गैस अवस्थामें पानीके अभावमें भी तापक्रमकी अपेक्षासे आयनोंमें विश्लेषण होता है)। सब अम्लोंका एक ही शक्तिका जलीय घोल एक बराबर विश्लेषित नहीं होता है। सम्पूर्ण अणुओंकी संख्याका कौनसा अनुपात विश्लेषण हुआ है, इसे **विश्लेषण-मात्रा** (अ) कहते हैं। यदि अम्ल १ अणु मान लिया जाय और इसे पानीमें घोल कर य आयतन बना लें, और यदि इसको विश्लेषण मात्रा अ हो तो $\text{अ}^{२} / (१ - \text{अ}) \text{य} = \text{क}$। क को विश्लेषण-स्थिरांक कहते हैं। मात्रा क्रियाके सिद्धान्तके अनुसार प्रत्येक अम्लके लिये, चाहें उनके घोलकी सान्द्रता कितनी ही क्यों न हो, क का मान स्थिर रहता है। यह मान आयतनकी अपेक्षासे नहीं बदलता, हाँ प्रत्येक तापक्रमके लिये पृथक्-पृथक् होता है। यह नियम **ऑस्टवल्ड का सान्द्रता नियम** कहलाता है। प्रयोगों द्वारा, यह देखा गया है कि ऑस्टवल्डका यह नियम केवल "निर्बल अम्लों" पर लागू होता है, सबल अम्लोंमें यह असफल हो जाता है। कुछ निर्बल अम्लोंके विश्लेषण-स्थिरांक नीचेकी सारिणीमें दिये जाते हैं (२५° श पर।

निर्बल अम्ल	वि० स्थिरांक
हाइड्रोफ्लोरिक	६.९×१०^{-४}
हाइड्रोसायनिक	१.३×१२^{-२}
नाइट्रस	४×१०^{-४}
फॉर्मिक	२×१०^{-४}
एसिटिक	१.८×१२^{-५}
प्रोपियोनिक	१.३×१०^{-६}
क्लोर-एसिटिक	१.५×१०^{-3}
बैंज़ोइक	६.१×१०^{-४}
फीनोल	१.०×१०^{-१०}
ऑक्ज़ैलिक	$\text{क}_{१} = २ \times १०^{-२}$; $\text{क}_{२} = ३ \times १०^{-५}$
सक्सिनिक	$\text{क}_{१} = ६.७ \times १०^{-५}$; $\text{क}_{२} = ६.० \times १०^{-६}$
टारटेरिक	$\text{क}_{१} = ९.६ \times १०^{५}$; $\text{क}_{२} = ३ \times १०^{-५}$

जिन अम्लोंके १ अणुसे २ हाइड्रोजन आयन मिलती हैं उन्हें द्वि-भस्मिक अम्ल कहते हैं। इनका विश्लेषण दो श्रेणियोंमें होता है—

$$\text{ह}_{२}\text{क} \rightarrow \text{ह}^{+} + \text{हक}^{-}$$

$$\text{और} \quad \text{हक}^{-} \rightarrow \text{ह}^{+} + \text{हक}^{--}$$

प्रत्येक श्रेणीके लिये एक विश्लेषण स्थिरांक होता है। इस प्रकार द्विभस्मिक अम्लोंके दो विश्लेषण स्थिरांक होते हैं, $\text{क}_{१}$ और $\text{क}_{२}$। ऊपरकी सारिणीमें $\text{क}_{१}$ और $\text{क}_{२}$ दोनोंके मान ऑक्ज़ेलिक, सक्सिनिक और टारटेरिक अम्लोंके सम्बन्धमें दिये गये हैं—

$$\text{क}_{१} = [\text{ह}^{+}] \, [\text{हक}^{-}] \; / \; [\text{ह}_{२}\text{क}]$$

$$\text{क}^{२} = [\text{ह}^{+}] \, [\text{क}^{-}] \; / \; [\text{हक}^{-}]$$

साइट्रिक या फॉसफोरिक अम्ल त्रिभस्मिक होते हैं, और इनके तीन विश्लेषण स्थिरांक $\text{क}_{१}$, $\text{क}_{२}$ और $\text{क}_{३}$ होते हैं।

अम्लोंकी भास्मिकता अर्थात् उसके एक अणुसे कितनी हाइड्रोजन आयन मिल सकती है, यह बात विद्युत् चालकतायें नापकर पता चल सकती हैं। इसके सम्बन्धमें ऑस्टवल्ड ने मोटा-सा व्यावहारिक नियम यह दिया है—उस अम्लके सोडियम लवणकी १०२४ और ३२ सान्द्रताओं* पर तुल्य-चालकतायें निकालो। यदि ये चालकतायें $\text{च}_{१०२४}$ और $\text{च}_{३२}$ हों तो

$$\text{च}_{१०२४} - \text{च}_{३२} = १० \, \text{भ}$$

इस समीकरणमें भ भास्मिकता है। इस नियमसे अम्लोंकी भास्मिकता सरलतासे निकाली जा सकती है। अकार्बनिक

---

* १०२४ सान्द्रताका अभिप्राय यह है कि सोडियम लवणका १ तुल्यांक भार १०२४ लिटर घोलमें घुला है।

अम्लोंमें यह नियम बहुधा लागू नहीं होता है, पर-सल्फ्यूरिकाम्लकी द्विभास्मिकता इससे अवश्य सिद्धकी जा सकी है।

ऊपरकी सारिणीमें दिये गये विश्लेषण-स्थिरांकको देख कर यह पता लगाया जा सकता है कि कौन अम्ल सापेक्षतः कितना अधिक तीव्र है। एक ही सान्द्रता पर जिस अम्ल-में हाइड्रोजन आयनकी मात्रा अधिक होगी, वह अम्ल अधिक तीव्र माना जायगा।

हाइड्रोजन आयनकी मात्रा यदि $म_ह$ हो तो इसे $१·३४ \times १०^{-३}$; $७·७ \times १०^{-६}$ आदि अंकों द्वारा प्रकट करना होगा, जो सदा सुविधा-जनक नहीं है। इस बहुधा $प_ह$ के रूपमें प्रकट करते हैं। $प_ह$ और $म_ह$ में परस्पर संबंध इस प्रकार है—

$$प_ह = - लघु\ म_ह$$

इस परिभाषाके अनुसार—

$$यदि\ म_ह = १·३४ \times १०^{-३},\ तो\ प_ह = २·८७;$$

$$म_ह = ७·७ \times १०^{-६},\ तो\ प_ह = ५·११$$

शिथिल शुद्ध जलमें हाइड्रोजन आयनकी मात्रा $१०^{-७}$ होती है, और हाइड्रॉक्सिल आयनकी मात्रा भी $१०^{-७}$ है। इन दोनो मात्राओंके गुणनफलको पानीका आयनीकरण-स्थिरांक कहते हैं जिसका ठीक ठीक मान $०·६१ \times १०^{-१४}$ (१८° तापक्रम पर) है। चाहें घोल अम्लीय हो या क्षारीय, पानीका आयनीकरण स्थिरांक इतना ही रहता है।

जब कभी किसी घोलकी $प_ह$ संख्या ७ से कम होती है, तो घोल अम्लीय माना जाता है, और जब यह संख्या ७ से अधिक होती है, घोल क्षारीय होता है। हम ऊपर कह चुके हैं कि बहुतसे रंगीन पदार्थ ऐसे हैं जो अम्लीय घोलों-से एक रंग देते हैं और क्षारीय घोलोंसे दूसरा। इन रंगों-का उपयोग क्षारीय या अम्लीय घोलोंके अनुमापनमें किया जाता है। जिस $प_ह$ पर ये पदार्थ अपना रंग विशेषतः बदलते हैं, यह सारिणी १ से स्पष्ट हो जायगा। इस सारिणीसे हम अनुमान लगा सकते हैं कि कितनी अम्लता के लिये कौन सा रंग उपयोगी होगा। इस रंगको सूचक कहते हैं।

अम्लोंके घोलोंमें ही अम्लता नहीं होती, अन्य पदार्थोंके घोलोंमें भी कुछ न कुछ अम्लता होती है। दूध, गन्नेका रस, प्रोटीनोंके घोल, रुधिर, वनस्पतिक रस, इन सबकी स्थिरता इनके घोलोंकी अम्लता पर निर्भर है। ऊपरकी सारणीमें दिये गये सूचकोंका उपयोग इन घोलोंकी अम्लता निकालनेमें किया जाता है। फैरिक क्लोराइड, एल्यूमीनियम नाइट्रेट आदि ऐसे लवणोंके घोल जो निर्बल क्षार और सबल अम्लके संयोगसे बनते हैं, पानीकी विद्यमानतामें उद्विश्लेषित होकर अम्लीय हो जाते हैं।

अम्ल और क्षारके संयोगसे लवण बनते हैं और बनने-की प्रक्रियामें जलका अणु पृथक् होता है। अकार्बनिक और कार्बनिक अम्लोंकी संख्या सहस्रों हैं। ये अम्ल साधा-रण तापक्रम पर ठोस, द्रव और गैस तीनों हो सकते हैं। अकार्बनिक अम्लोंमें मुख्य अम्ल गन्धकका तेज़ाब, नमकका तेज़ाब और शोरेका तेज़ाब है। फॉस्फोरिक ऐसिड भी हड्डी से प्राप्त होता है। बोरिक, सिलीसिक, टंगस्टिक आदि अम्ल पानीमें बहुत कम घुलते हैं और इनके घोल विशेष खट्टे भी नहीं होते। कार्बन डाइआक्साइड पानीमें घुलकर कार्बोनिक ऐसिड देती है जिसमें भी बाह्य अम्लीय गुणोंका अभाव सा है। अकार्बनिक अम्लोंमें सबसे अधिक महत्व गन्धकके तेज़ाबका है क्योंकि अधिकांश अन्य अम्ल इसकी सहायतासे ही बनाये जाते हैं, जैसे शोरा और गन्धकके तेज़ाबसे शोरेका तेज़ाब, नमक और गन्धकके तेज़ाबसे नमकका तेज़ाब, हड्डी और गन्धकके तेज़ाबसे फॉस्फोरिक ऐसिड बनते हैं। गन्धकका तेज़ाब गन्धकको हवामें जलाकर और फिर इस प्रकार निकली हुई गन्धक डायऑक्साइड गैसको किसी भी विधिसे ऑक्सीजनसे संयुक्त कराके बनाया जाता है। आक्सीजनसे संयुक्त करानेकी अनेक विधियाँ हैं; जैसे प्लैटिनम् पृष्ठ पर प्रवाहित करके, या नाइट्रिक ऑक्साइड वाष्पोंकी सहायता से।

कार्बनिक अम्ल दो श्रेणियोंमें मुख्यतः विभक्त हैं। एक तो कार्बोक्सील अम्ल जिनमें (COOH) समूह होता है। ऐसिटिक, बैंज़ोइक, टार्टेरिक आदि सब अम्ल इस श्रेणीके हैं। जिस अम्लमें जितने कार्बोक्सील समूह होंगे, उतनी ही भास्मिकता उस अम्लकी होगी। इन कार्बोक्सील समूहों के हाइड्रोजनको धातुके परमाणुओंसे स्थापित कराके (क्षारों

के संयोग द्वारा) लवण बनाये जाते हैं, और एलकाइल समूहों द्वारा स्थापित करानेसे एस्टर नामक सुगन्धित द्रव प्राप्त होते हैं। ग्लैसरीनसे संयुक्त होकर बड़े अणुभार वाले अम्ल चर्बीले पदार्थ देते हैं। ये कार्बनिक अम्ल या तो खट्टे वनस्पतिक पदार्थोंसे प्राप्त होते हैं (जैसे टारटेरिक, साइट्रिक, मैलिक, मेलोनिक आदि), या किण्व-प्रक्रिया द्वारा दूध, शर्करा, अन्न, मांस आदि पदार्थोंसे (जैसे ऐसिटिक, लैक्टिक आदि) या रासायनिक विधियोंसे। रासायनिक विधिसे अम्ल प्राप्त करनेकी निम्न विधियाँ हैं—

(१) एस्टर, मज्जा आदिके उद्-विश्लेषणसे।

(२) ऐलकोहल, ऐलडीहाइड या कीटोनिक पदार्थोंके ऑक्सीकरणसे।

(३) एलकाइल क्लोराइडोंको सायनाइडोंमें परिवर्त्तित करके और फिर उनका उद्विश्लेषण करनेसे।

क्षीण अम्लता वाले दूसरे कार्बनिक अम्ल फीनोलिक समूह (-OH) के हैं, जैसे कार्बोलिक ऐसिड (फीनोल), रिसोर्सिन, पायरागैलोल, नैफथोल आदि। ये भी तीव्र क्षारोंके साथ लवण बनाते हैं। इन फीनोलिक अम्लोंमें बहुत कम आम्लिकता होती है, इनके विश्लेषण-स्थिरांक बहुत कम हैं। कुछ नाइट्रो और नाइट्रोसो यौगिक अम्ल तो नहीं हैं, पर कुछ प्रक्रियाओंमें अम्लोंका सा व्यवहार करते हैं। इन्हें अम्लाभास (स्यूडो-अम्ल) कहते हैं।

सारिणी १

सूचक	परिवर्त्तक $प_ह$	$प_ह$ की सीमा	रंग परिवर्त्तन अम्ल	रंग परिवर्त्तन क्षार
मेटा क्रीसोल पर्पिल	१·५१	१·२—२·८	लाल	पीला
थायमोल ब्ल्यू	१·५१	१·२—२·८	लाल	पीला
ब्रोमो फीनोल ब्ल्यू	३·९८	३·०—४·६	पीला	नीला
ब्रोमो क्रीसोल ग्रीन	४·६७	३·८—५·४	पीला	नीला
क्लोर फीनोल रेड	५·९८	४·८—६·४	पीला	लाल
ब्रोम फीनोल रेड	६·१६	५·२—६·८	पीला	लाल
ब्रोम क्रीसोल पर्पिल	६·३	५·२—६·८	पीला	गुलाबी
ब्रोम थायमोल ब्ल्यू	७·०	६·०—७·६	पीला	नीला
फीनोल रेड	७·९	६·८—८·४	पीला	लाल
क्रीसोल रेड	८·३	७·२—८·८	पीला	लाल
मेटा क्रीसोल पर्पिल	८·३२	७·४—९·०	पीला	गुलाबी
थायमोल ब्ल्यू	८·९	८·०—९·६	पीला	नीला
क्रीसोल थैलीन	९·४	८·२—९·८	रंग रहित	लाल
मैथिल ऑरेञ्ज ०.०१%)	३·७	३·१—४·४	लाल	पीला
मैथिल रेड (०·०२%)	५·१	४·२—६·३	लाल	पीला
प—नाइट्रो फीनोल (०·०४%)	७·१	५·६—७·६	रंग रहित	पीला
फीनोल थैलीन (०·०५%)	९·४	८·३—१०·०	रंग रहित	लाल

—सत्यप्रकाश

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६ | दिसम्बर, सन् १९४२ | संख्या ३

भारतमें चरागाहोंकी उन्नति

[डाक्टर एस० हिगनबाटम, एम-ए०, डी-फिल०]

चरागाह घासके खुले मैदानोंको कहते हैं जहाँ कि चौपाये अपना भोजन प्राप्त करते हैं। स्थायी चरागाहकी भूमिमें प्रतिवर्ष केवल घास ही उत्पन्न की जाती है। किन्तु संसारके अनेक भागोंमें घास केवल दो एक वर्ष उत्पन्न की जाती है; पुनः उस भूमिमें अन्न उत्पन्न किया जाता है। इस प्रकार बारी बारीसे घास व अन्नकी उत्पत्ति होती है। ऐसे चरागाहों को 'अस्थायी' चरागाह कहते हैं। भारतके गाँवोंमें अधिकांश स्थायी चरागाह ही होते हैं। विस्तृत चरागाहोंमें अल्प व्ययसे गाय, भैंस, बैल, घोड़े व भेड़ोंके भोजनका प्रबन्ध किया जा सकता है। भारतमें रेलयात्राके समय पृथ्वीका एक विस्तीर्ण क्षेत्र मरुभूमिकी भाँति दिखलायी पड़ता है जिसमें तरह तरहके चौपाये घूमते फिरते दृष्टिगोचर होते हैं। वर्षा ऋतुमें तो कहीं कहीं हरी घास दिखलाई पड़ जाती है किन्तु वर्षके अधिकांश भागमें पशुगण बिना घासकी भूमिमें चरते दिखलाई देते हैं। निसन्देह ऐसे चरागाहोंके पशु अच्छी दशामें नहीं हो सकते। कम भोजन मिलनेके कारण वे शिथिल होते हैं और उनके बच्चे भी अस्वस्थ होते हैं।

भारतवर्षमें इतनी विशाल भूमिके होते हुए भी पशुओं के चरनेके लिये भूमिकी कमी बतलाई जाती है। यदि इसी प्रकार मरुभूमिके समान चरागाहोंका निर्माण होगा तो पशुओंकी उन्नति होना असम्भव है। वर्षके आधेसे अधिक समय तक चौपाये भर पेट भोजन न मिलनेके कारण अस्वस्थ दिखलाई पड़ते हैं। यह सदा देखा जाता है कि जिस चरागाहमें अधिक मात्रामें अच्छी घास उत्पन्न होती है वहाँके पशु पूर्णरूपसे स्वस्थ होते हैं। पशुओंके पालनके लिये इससे सस्ता और सुंदर साधन भी दूसरा नहीं है। कारण यह है कि मनुष्यको काटने व ले जानेका व्यय बच जाता है। न्यूज़ीलैंडके एक सफल दूधउत्पादक प्रदेश होनेका यही रहस्य है कि वहाँके चरागाह उच्चकोटिके हैं। इंगलैंडके चरागाह भी प्रसिद्ध हैं। इन प्रदेशोंमें घासकी ऋतुमें चौपायोंको

दूसरे प्रकारके भोजन प्रदान करनेकी आवश्यकता नहीं होती क्योंकि घास यथेष्ट मात्रामें होती है और स्वास्थवर्धक भी होती है।

यद्यपि इंगलैंडमें उच्च श्रेणीके चरागाह हैं किन्तु फिर भी पिछले कुछ वर्षोंसे आक्सफोर्ड व केमब्रिज विश्व-विद्यालयमें चरागाहोंकी उपयोगिता एवं उनकी उन्नति पर गम्भीर अध्ययन किया जा रहा है। स्काटलैंडमें इस विषय पर अनुसन्धान किये जा रहे हैं और कई नई बातोंका पता लगा है। इन खोजों द्वारा वे लोग चरागाहोंकी घासके गुणों और उसको उत्पत्तिमें वृद्धि करनेमें सफलीभूत हुए हैं। किन्तु भारतमें ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। संसारके एक चौथाई पशु केवल भारतवर्षमें ही पाये जाते हैं और यहाँ चरागाहोंके लिये विस्तृत क्षेत्र भी पड़ा हुआ है। ऐसी दशामें चरागाहोंकी उन्नति पर गम्भीर अध्ययन एवं खोज करनेकी अत्यन्त आवश्यकता है। भारतवर्ष एक विशाल प्रदेश है। इसकी जलवायु और भूमि भी विभिन्न प्रकार की है। अतः चरागाहोंकी उन्नतिका अध्ययन वातावरणके अनुकूल होना आवश्यक है। इस लेखमें उन चरागाहों पर प्रकाश डाला जायगा जो कि घनी बस्तियोंके बीचमें स्थित हैं। इन भागोंमें घासके पूर्णरूपसे विकसित होनेसे पहले ही उसे जानवर चर लेते हैं। अतः पशुओंको आवश्यकतानुसार खाद्य पदार्थ प्राप्त नहीं होता। इसके अतिरिक्त ऐसे चरागाहों-को अवकाश लेनेका समय नहीं मिलता। प्रायः दूसरी जातिके घास फूस उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें पशुगण नहीं खाया करते। इन घासफूसके बीज फैलनेसे पहले ही उनको नष्ट कर देना उचित है, अन्यथा अगले वर्ष अधिक संख्या में वे उत्पन्न हो जायँगे और अच्छी घासकी उत्पत्तिमें बाधा डाल कर उनकी उत्पत्ति कम कर देंगे। एक ही समयमें एक ही भूमि पर दो पौधे एक साथ नहीं फल फूल सकते। यदि अनावश्यक घास भूमिमें फैल जाती है तो अच्छी घासको विकसित होनेका अवकाश नहीं मिलता और यदि अच्छी घास विस्तृत क्षेत्रमें फैल जाती है तो दूसरी जातिके घास फूसको उत्पन्न होनेका समय नहीं प्राप्त होता।

भारतवर्षमें 'सर्ज्जा भूमि' जो कि एक प्रकारकी बंजर भूमि होती है अधिकांशतः चरागाहोंके लिए अलग कर दी जाती है। जब तक ऐसी भूमि की खार नष्ट नहीं की जाती उसका कोई महत्व नहीं है। इसके अतिरिक्त कंकरीली व पथरीली भूमि जिनमें भी पौधे नहीं उत्पन्न होते चरागाह बनानेके काममें लाये जाते हैं। ऐसी भूमि की पुनः निराई व जुताई होना आवश्यक है, अन्यथा ऐसी भूमिसे अच्छे चरागाहकी आशा करना व्यर्थ है। प्रत्येक वर्ष उर्बरा मिट्टी गर्मी, जाड़ा एवं वर्षा ऋतुसे कमजोर हो जाती व घुल जाती है और चरागाहोंमें घासकी उत्पत्ति कम होती जाती है। अतः चरागाहोंको समुचित अवस्थामें रखनेके लिये उर्बरा मिट्टीके संरक्षणकी व्यवस्था भी करनी होगी। इन चरा-गाहोंमें घासकी उत्पत्ति बढ़ाई जा सकती है किन्तु अनुचित उपयोगों द्वारा इनमें घासकी वृद्धि घट गई है और वास्तवमें वे चरागाह नहीं हैं किन्तु खुले विचरण करनेकेस्थान हैं। उनकी रक्षाके प्रति इतनी असावधानी होती है कि संभवतः उससे अधिक घास उसमें उत्पन्न ही नहीं हो सकती।

भारतवर्षकी आर्थिक दृष्टिसे भी चरागाहोंकी उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक है और हमारे लिये यह सौभाग्य-की बात है कि विदेशोंमें किये गये प्रयोगों द्वारा हम भूमिकी उन्नतिमें समुचित लाभ उठा सकते हैं। चरागाहोंकी उन्नति के लिये सर्वप्रथम गाँवकी समस्त भूमिको पाँच बराबर भागोंमें बाँट देना चाहिए। गाँवके चौपायोंको चार-पाँच दिन तक केवल एक भागमें चरने दिया जावे। पुनः दूसरे भागमें। इस प्रकार एक-एक करके पाँचों भागोंमें क्रमशः चार-पाँच दिन तक चरने दिया जावे। ऐसा करनेसे प्रत्येक भागको अवकाश लेनेका समय मिल जावेगा। इस प्रकारके चरनेकी प्रथाको 'होहेनहम व्यवस्था' कहते हैं। वर्षा ऋतुमें, जब कि घास शीघ्रतासे उत्पन्न होती है, प्रत्येक भागमें चरनेका समय केवल तीन दिन ही रक्खा जा सकता है। इस प्रकार सोलहवें दिन चौपाये पुनः प्रथम चरी हुई भूमिमें जा पहुँचते हैं। बहुत बड़ी घासोंकी तुलनामें छोटी घास जो कि चार-पाँच हाथ ही ऊँची होती है अधिक स्वास्थ्यवर्धक होती है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है अन्य ऋतुओंमें चरनेका समय ४-५ दिन दिया जा सकता है। ऐसा करनेसे घासको बढ़ने और फैलनेका समुचित समय मिल जाता है।

चरागाहोंकी उन्नतिमें दूसरा कार्य अनावश्यक पौधोंको

समूल नष्ट कर देना है। इसके पहले कि उनमें बीज उत्पन्न हों उन्हें उखाड़ कर फेंक देना उचित है। इसके अतिरिक्त पुराना बढ़ी हुई अथवा सूखी घासको भी निकाल बाहर करना चाहिए। चौपाये इनका सेवन नहीं करते; वे ताज़ी घासको पसन्द करते हैं।

तीसरी बात जो ध्यान रखने योग्य है वह उच्च कोटिकी घासको उत्पन्न करना है। चरागाहोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी घासें होनी चाहिये जो वर्षके भिन्न समयोंमें पूर्ण रूपसे फैलती हों। कुछ घासका वर्षके आरम्भमें और कुछका वर्षके अन्तिम समयमें उत्पन्न होना अच्छा है जिससे पशुओंको सम्पूर्ण वर्ष खाने योग्य अच्छी घास मिल सके। सौभाग्यसे भारतवर्षके अन्दर ऐसी दो-तीन जातिकी घासें हैं जो कि क्रमशः साल भर तक उत्पन्न होती रहती हैं। उत्तरी भारत चरागाहोंके योग्य अनेक उपयोगी घासोंसे सम्पूर्ण है। किन्तु नेत्रजन युक्त पौधोंका अभाव होनेके कारण भूमिको उर्वरा होनेका कम अवकाश मिलता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि कोई दूसरा पदार्थ भूमिको बराबर उर्वरा रखनेके लिये समय-समय पर दिया जावे।

अनेक चरागाहोंकी घास उन खनिज पदार्थोंकी पूर्ति नहीं करती जिनकी पशुओंको आवश्यकता होती है। ऐसी दशामें वे भरपेट भोजन कर चुकने पर भी अस्वस्थ रह सकते हैं। अतः उन पदार्थोंकी पूर्ति करना आवश्यक है। पशुओंके चर चुकनेके पश्चात् उनके गोबरको समस्त भूमि पर फैला देनेसे वह खादका काम कर यथाशक्ति भूमिको उर्वरा बनाये रखता है। कभी कभी चूना, फासफेट अथवा नौसादर आदि चरागाहों पर छिड़क दिये जाते हैं जिससे घास अधिक स्वास्थ्यवर्धक पैदा होती है। यदि गांवके मरने वाले पशुओंकी हड्डियाँ एकत्रित कर चूर करके चरागाहोंमें डाल दी जायँ तो बहुत उन्नति हो सकती है। अधिक उत्पत्ति होनेके अतिरिक्त घासके गुणोंमें भी वृद्धि हो जाती है। कभी-कभी भूमि इतनी अधिक अनुपयोगी घासोंसे परिपूर्ण हो जाती है कि अच्छी घासका उत्पन्न होना असम्भव हो जाता है। ऐसी दशामें एक वर्ष तक जोतने और काटनेके अतिरिक्त और कोई दूसरा साधन नहीं होता।

जहाँ केवल जूलाईसे अक्टूबर तक वर्षा होती है और अन्य समयमें बिल्कुल वर्षा नहीं होती वहाँ पर उत्तम घास उत्पन्न करनेके लिये चरागाहोंको सींचना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त पशुओंको चरागाहोंकी तर भूमिमें नहीं जाने देना चाहिये अन्यथा उनके खुरों द्वारा घासके कोमल अंकुर नष्ट हो जायँगे। कोई कारण नहीं कि यदि चरागाह सावधानीसे सुरक्षित रक्खे जायँ तो गाँवके समस्त चौपाओंको इससे सम्पूर्ण भोजन न प्राप्त हो सके। उन गायोंको जिनके गर्भ है अथवा वे बैल जो कड़ा परिश्रम करते हैं निस्सन्देह अन्य भोजनकी आवश्यकता होगी, अन्यथा सब पशुओंके लिये चरागाहकी घास ही यथेष्ट है। किसी स्थानमें वर्षा इस अधिकतासे होती है कि पौधोंके घुलनशील पदार्थ बह जाते हैं। ऐसे स्थानोंमें प्रतिवर्ष नूतन खाद देनेकी आवश्यकता पड़ती है। उस भूमिमें जिसमें खनिज पदार्थोंकी न्यूनता होती है घास कम उत्पन्न होती है एवं जिस भूमिमें अच्छी खाद होनेके कारण भोज्य पदार्थोंकी अधिकता होती है उसमें प्रचुर मात्रामें और अच्छी घास उत्पन्न होती है। इस प्रकार जुताई, सिंचाई खाद आदि सब बातोंका उचित रूपसे प्रबन्ध किये जाने पर न केवल घास अधिक मात्रामें उत्पन्न होगी बल्कि उसके गुणोंमें भी वृद्धि होगी जिससे पशुगण अधिक स्वस्थ रह सकेंगे।

अभी तक भारतवर्षमें चरागाहोंके ऊपर विस्तार पूर्वक अनुसन्धान नहीं किया गया है। यह कार्य शीघ्र ही आरम्भ हो जाना चाहिये। संसारके अन्य कृषि प्रदेशोंमें चरागाहोंकी उन्नतिके लिये अत्यन्त चेष्टा की जा रही है। स्काटलैण्डके क्लिमारकाक नामक स्थानमें ४२ एकड़ भूमिको ६-६ एकड़ भूमिके ७ भागोंमें विभाजित किया गया है जिस पर गोशालाकी ६५ गाय चरायी जाती थीं। चरनेका समय मईसे नवम्बर तक था। एक भाग पर चार दिन चराई होती थी। इस प्रकार प्रत्येक भागको २८ दिनका अवकाश मिल जाता था। गायें अच्छी अवस्थामें थीं और प्रत्येक प्रायः १५०० पौंड दूध देती थीं। यह कहना कठिन है कि भारतमें चरागाहोंको सुरक्षित रखने पर उन पर कितने पशुओंका चरना यथेष्ट होगा। क्वीन्सलैण्डके प्रदेशमें, जहाँ भारतवर्षके समान घास उत्पन्न होती है और सम्पूर्ण वर्ष

[शेष पृष्ठ ९६ पर]

अजगर

[श्रीयुत रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

हमने देखा है कि कुछ अजगर बन्दीगृहमें भी भोजन नहीं छोड़ते, बल्कि भोजन प्राप्तिके लिये उत्सुक रहते हैं। अण्डे देती हुई अठारह फुट लम्बी एक मादा के पिंजरेमें प्रति पन्द्रह दिन बाद जब मुर्ग़ी छोड़ी जाती तो वह झपट कर उसे पकड़ लिया करती थी। इसी प्रकार एक अजगरको भी हमने बहुत चूहे खिलाये। चूहा देखते ही वह उस पर लपकता और चट कर जाता था।

लोगोंमें विश्वास प्रचलित है कि अजगर श्वाससे बड़े-बड़े जानवरोंको अपने निकट खींच लेता है। हमारे अनुभवमें ऐसी कोई बात नहीं आई। इस विश्वासका कारण सम्भवतः यह है कि सांपोंमें अक्षिपलक नहीं होते; इसलिये जब वे अपने शिकारको ग़ौरसे देखते हैं तो घूरतेसे मालूम पड़ते हैं। प्राणी भयाक्रान्त हो जाता है, और साँप उसे पकड़ लेता है। हमने जब भी देखा है वह शिकारको अपने बलसे ही पकड़ता है। चूहेको य द भागनेका अवसर मिले तो वह साँपका मुकाबला करनेकी कोशिश करता है। अजगरके पिंजरेमें जब हम चूहेको छोड़ते थे तो वह काफ़ी समय तक साँपकी पकड़से बचता रहता था, उसे काटता भी था। अजगर उसे न श्वाससे खींचता था और न सम्मोहित ही करता था। वह उसे दबोच कर ही मारता था। दूसरे विषैले साँप अपने शिकारको ज़हराले दाँत चुभा कर मार लेते हैं, पर अजगरमें विष न होनेसे वह ऐसा नहीं कर सकता।

शक्तिमें अजगर सब साँपोंसे बढ़-चढ़ कर है। जंगलके किसी भी जानवरसे भिड़नेमें यह हिचकता नहीं। चीते और अजगरकी लड़ाई बहुत मज़ेदार होती है। चीतेको कई बार हार खानी पड़ती है। पेन (Pen) के सावरसई (Savarsai) जंगलकी एक घटना है। रातको गाँववालोंने लगातार आती हुई चीतेकी आवाज़को सुना। शब्द एक ही स्थानसे आता हुआ-सा मालूम पड़ा। सुबह कुछ लोग देखनेके लिये जब उधर गये तो एक चीतेको अजगरके आवेष्ठनमें परिबद्ध देख कर दंग रह गये। चीतेको पकड़ने के बाद अजगर ने उसे पीछेसे निगलना आरम्भ किया था और गाँववालोंके पहुँचने तक वह आधेसे अधिक निगला जा चुका था। मुक्त होनेकी जी तोड़ कोशिशोंमें चीते ने सामने ही ज़मीन पर अपने पंजोंको दो फुट तक गहरा गाड़ लिया था, पर उसके ये सब प्रयत्न व्यर्थ गये। उसे निगलनेकी प्रक्रिया चौबीस घण्टे तक जारी रही और चीता अन्तमें सारा अन्दर चला गया। आश्चर्य है कि अजगरके भयंकर पाशमें आबद्ध होने पर भी चीता उस सारे समय तक जीवित रहा। जंगली जानवरोंकी मरते दम तक लड़नेकी भावनाका यह एक ज्वलन्त उदाहरण है। जंगली भैंसेको भी अजगर इसी तरह मार लेता है। भैंसेके गलेमें लिपट कर वह तब तक उसे कसता जाता है जब तक कि उसका प्राणान्त न हो जाय।

अजगरके लम्बे-चौड़े डील-डौल और शक्तिको देख कर प्राचीन लेखकोंने इसे साक्षात् यम रूपमें देखा है। पूर्वमें ख्यात एक सुन्दर कथाका महात्मा टाल्स्टाय उल्लेख करते हैं—"उजाड़ स्थानमें यात्रीका पीछा एक जंगली जानवर कर रहा है। उससे बचनेके लिये वह भागता हुआ जल-शून्य कुएंमें कूद पड़ता है। उसके तलमें मुँह बाए अजगर को देख कर यात्री डर जाता है। भयसे वह न बाहर निकल सकता है और न अन्दर ही कूद सकता है। कुएँकी दीवारसे लटकती हुई एक झाड़ीको वह पकड़ लेता है। धीरे-धीरे हाथ कमज़ोर पड़ने लगते हैं वह अपने दुर्भाग्य को जानता है; इसलिये चिपका रहता है। इतनेमें ही शाखाकी मूलको काटते हुये एक सफ़ेद और दूसरे काले चूहेकी ओर उसकी दृष्टि जाती है। वह भयसे कांप उठता है। इस अनिवार्य नाशमें भी जब वह शाखासे लटकते हुए पत्तों पर शहदकी कुछ बूंदें टपकी हुई देखता है तो जीभ बढ़ा कर उसे चाटने लगता है और बहुत सुख अनुभव करता है।" टाल्स्टाय लिखते हैं—"इसी तरह जीवनकी शाखा पर मैं लटका हुआ हूँ और जानता हूँ कि मृत्यु रूपी अजगर मुझे निगलनेकी प्रतीक्षा कर रहा है। पहले सुख और सान्त्वना देनेवाले शहदको मैं चाटनेका प्रयत्न करता हूँ, परन्तु मुझे शहद (सांसारिक भोग-विलास) अब सुख नहीं देता। दिन और रातके सफ़ेद और काले चूहे मेरी जीवन-शाखा—आयु—को कुतर रहे हैं। अब मैं केवल एक ही चीज़ देख पा रहा हूँ—अजगर और चूहे। इनसे अपनी नज़र उठा नहीं पाता।"

प्रकृतिका सृष्टि नैपुण्य

[श्री रामविलास सिंह, बी० ए०, सी० टी०]

जीव-विद्या-विशारदोंका कथन है कि मनुष्य प्रकृतिकी सर्वोत्कृष्ट सृष्टि है और प्रकृति ने उसकी रक्षाका अपना अधिकांश उत्तरदायित्व बुद्धिके रूपमें उसे ही सौंप रक्खा है। वस्तुतः उनके इस कथनमें कुछ भी अत्युक्ति नहीं है। प्रकृतिके चेतन जगत्में प्रारम्भसे ही विकासका क्रम जारी है और मानव-सृष्टिमें वह विकास सम्भवतः चरम सीमा तक पहुँच चुका है। अनादि कालसे अनवरत अशेष परिवर्त्तनों और अनन्त घात-प्रतिघातोंके फल स्वरूप मनुष्यको वर्त्तमान रूप प्राप्त हुआ है। प्रकृतिकी अद्भुत सृजन-कला तथा विभिन्न प्रतिवेशों (environments) और परिस्थितियोंके अनुसार सम्यक् संशोधन-शक्तिका सच्चा प्रतिबिम्ब यदि कहीं पूर्णतया प्रतिभासित होता है तो वह मानव-दर्पणमें ही। निस्सन्देह मानव-रचनामें प्रकृतिकी विलक्षण सृजन-कला पराकाष्ठा तक पहुँच चुकी है।

परन्तु मनुष्येतर प्राणियोंकी जीवन-रक्षाके निमित्त प्रकृति स्वयं ही उनके प्रतिवेशानुसार रंग-रूप, आकार-प्रकारादिका निर्वाचन करती है और अविराम जीवन-संग्राममें विजयी होकर जगत्में अपने अस्तित्वको अमिट रखनेके लिये उन्हें आवश्यक साधन और सुविधाएँ भी प्रदान करती है। इतना ही नहीं वरन् वह उनके स्वभाव और कार्य्यों पर स्वयं नियन्त्रण भी रखती है; अतः वे उच्छृङ्खल होकर प्राकृतिक नियमोंकी अवहेलना नहीं कर सकते। प्रकृति-प्रदत्त सहज ज्ञानसे ही उनके प्रायः सारे कार्य्य सम्पादित होते हैं; आत्म-बुद्धि अपेक्षित नहीं रहती—विक्षोभसे किञ्चित् उत्तेजना प्राप्त करते ही उनकी स्वतः प्रवृत्तियाँ शीघ्रातिशीघ्र जाग्रत हो उठती हैं और यथोचित प्रतिक्रियायें आप ही आप उद्भूत होने लगती हैं। माता अपने अबोध नवजात शिशुके लिए जितनी सावधानी नहीं रखती उससे कहीं अधिक प्रकृति देवी अपनी इन सन्तानोंका ध्यान रखती है।

प्रकृतिके सृष्टि-नैपुण्य पर तनिक भी विचार करने पर हृदय आश्चर्य और आनन्दसे ओत-प्रोत हो जाता है और वर्णन करनेके निमित्त मुख खोलने पर अवाक् रह जाना पड़ता है। जरा जलमें उत्पन्न होने वाले कमल, कुमुद, सिंघाड़े आदि पौधोंको देखिये। उनकी नालें महीन रंध्रयुक्त, लचीली, लम्बी तथा ग्रंथिहीन होती हैं। पत्तियाँ या तो बहुत ही बड़ी-बड़ी और चौड़ी अथवा अत्यन्त पतली-पतली होती हैं जो जल-तल पर लहराती रहती हैं। परिणाम यह होता है कि जलकी धारा और तरंगोंके आघातसे उन्हें कुछ भी क्षति नहीं पहुँच पाती और वे साँस भी स्वच्छन्दतापूर्वक लेते रहते हैं। सेवार, कुंभी तथा कई तरहके सामुद्रिक पौधे (सेवार) ऐसे होते हैं जिनकी जड़ें ज़मीन तक नहीं पहुँच सकतीं। अतः वे जलसे ही आहार पाते हैं। इनके विपरीत मरुस्थलमें उगने वाले खजूर, बबूल, नागफणी आदिके तने काँटेदार होते हैं और उनकी छाल भी मोटी होती है। उनकी पत्तियाँ छोटी-छोटी अथवा सँकरी परंतु मोटी और बहुत ही चिकनी होती हैं जिससे सूर्य्यका प्रचण्ड उत्ताप उनकी नमी नहीं खींच सकता और वे थोड़ा जल पाकर ही अपनेको बहुत अधिक समय तक हरी भरी बनाये रख सकती हैं। इसी तरह ठंढे देशोंके वृक्षोंकी पत्तियाँ ठंढक सहनेके लिए रोएँदार होती हैं और जाड़ेके दिनोंमें वे वृक्ष पत्र रहित हो जाते हैं जिससे ठंढकका असर उन पर बहुत ही कम होता है। बाँदा, आकाशबेल आदि पौधे अन्यान्य पौधोंके रससे तथा वायुमंडलसे भोजन ग्रहण कर जीवित रहते है। लताओंको गर्मी और प्रकाशके लिये आधार पाकर ऊपर उठना आवश्यक है, अतः वृक्षोंके सहारे अथवा पतली रेशाओंके द्वारा अन्यान्य चीजोंको थाम कर वे ऊपर उठती हैं।

कीड़ों और पशु-पक्षियोंके संसारमें आने पर तो और भी आश्चर्य होता है। शत्रुओंसे रक्षा करने तथा अपना अपना आहार प्राप्त करनेके लिये प्रकृति उन्हें बड़ी सहायता करती है। जैसे स्थान अथवा जैसे पौधों पर वे रहते हैं उनके रंग भी ठीक उनसे मिलते जुलते होते हैं। अधिकतर कीड़ोंके रङ्ग और आकार ऐसे होते हैं कि वृक्ष विशेषकी टहनियों, पत्तियों अथवा फूलों पर रहते समय उनके अस्तित्वका ज्ञान होना कठिन हो जाता है और वे उनके

साथ रह कर एकीभूतसे हो जाते हैं। कुछ कीड़े हरे, कुछ भूरे, कुछ मटियाले और कुछ अन्यान्य पौधोंकी टहनियोंके रङ्गके होते हैं जिससे शत्रु उन्हें शीघ्र नहीं खोज पाता। तितलियोंके सम्बन्धमें तो कुछ कहना ही व्यर्थ है क्योंकि वे तो फूलों, दलों और रंगोंसे हूबहू मिलती जुलती हैं। कुछ कीड़ोंके आकार-प्रकार ऐसे भयानक होते हैं और गंध ऐसी बुरी होती है कि शत्रु उनके पास फटकने नहीं पाते। यदि भौंरें और मधुमक्खियोंके डंक नहीं होते तो कोई भी पशु उनका संचित मधु आसानीसे खा जाता। डंक और विषैले दांतोंके रहनेसे ही बिच्छू और सांपको देखते ही बलिष्ट-से-बलिष्ट पशुके भी दिल दहल जाते हैं। पर तो भी जो उनके प्रबल शत्रु हैं वे उनका पिंड कदापि नहीं छोड़ते। एक बार मैंने देखा कि एक छिपकली एक बिच्छूका डंक पकड़ कर उसे गटसे निगल गई। नेवले और सांप की शत्रुता तो विख्यात ही है। रक्षाके लिये गिरगिट और टिड्डे आसानीसे अपना रंग भी बदल लिया करते हैं। अनुकूल रङ्गोंसे कीड़ोंकी रक्षा तो होती ही है। साथ-ही-साथ उन्हें छिप कर शिकार करनेमें भी बड़ी सरलता होती है। चींटे मकड़ी, प्रणत संत (praying mantis) आदि शिकारी कीड़ोंके जबड़े तलवारकी नाईं तेज़ और मज़बूत होते हैं। मकड़ी ऐसा सूक्ष्म पर मज़बूत जाल बुनती है कि मक्खी, मच्छड़ आदि उसमें अकस्मात् फँस जाने पर फिर निकल नहीं पाते।

अब जल-जन्तुओंकी विलक्षणता देखिये। जलचर होनेके कारण मछली, मेढक, कच्छप, मगर आदिका लहू ठंडा होता है जिससे जलमें रहने पर उन्हें कष्ट नहीं होता। अधिकतर जलचरोंके बदन कड़े चोयटों (scales) से आच्छादित रहते हैं। आगे और पीछेका आकार गावदुम होता है जिससे पानीमें चलनेमें कुछ रुकावट नहीं होती। तैरनेके लिये छोटे-छोटे पंख अथवा जालीदार पैर होते हैं और गति पर अधिकार रखनेके लिये पूँछ होती है। आँखें बड़ी एक प्रकारके पारदर्शक ढक्कनसे ढँकी और निर्निमेष होती हैं जिससे जलमें चलने और देखनेमें कुछ कठिनाई नहीं होती। मछलियोंके गलफड़े फटे होते हैं जिससे वे साँस लेनेके लिये हवाको पानीसे अलग कर लेतीं हैं। सकुची नामक मछलीकी पूँछ विषैली होती है जिससे दूसरी मछलियाँ उसे नहीं खा सकतीं। समुद्रमें एक प्रकारकी खड्ग मछली होती है जो अपनी खड्गरूपी चोंचसे शत्रुओं पर बड़ी वेगसे आघात करती है। कुछ सामुद्रिक मछलियाँ उड़ कर अपने शत्रुओंसे जान बचाती हैं। अष्टपाद नामक मछली तथा घड़ियाल आखेट करनेको दृढ़ शस्त्रोंसे सुसज्जित होते हैं। कच्छप, सीप, शंबुक, शंख आदि जलचरोंके भीतरी अवयव तो अत्यन्त कोमल होते हैं पर बाह्य आवरण इतने कठोर होते हैं कि शत्रु उनकी कुछ भी हानि नहीं कर पाते। इन जल जीवोंके अंडोंकी संख्या इतनी अधिक होती है कि जलकी तरंगों और दुश्मनोंसे नष्ट होने पर भी बहुसंख्यक अंडे बच ही जाते हैं और बच्चे निकल पड़ते हैं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो कभीका उनका अस्तित्व मिट गया होता।

अब पक्षियोंकी ओर दृष्टिपात कीजिये। उनकी गर्दन लम्बी, आँखें बड़ी, खून अधिक गर्म और बदन खोखला तथा हल्का होता है क्योंकि उन्हें सदैव हवामें विचरण करना होता है और दूर-दूर तक देखनेकी आवश्यकता होती है। जीवनकी आवश्यकताओंके अनुसार उनकी बनावटमें अनेकानेक विभिन्नतायें पाई जाती हैं। चील, बाज़, अबाबील, गरुड़, गिद्ध, उल्लू आदि शिकारी पक्षियोंके डैने, चोंच, चंगुल आदि बहुत ही मजबूत और तीक्ष्ण, तथा दृष्टि और घ्राणशक्ति अत्यन्त तीव्र होती है। शुतुर-मुर्गको मरुस्थलमें रहना पड़ता है, अतः उसकी टाँगें लम्बी और मजबूत होती हैं और उसका आकार भी बड़ा होता है जिससे वह दौड़ कर दूर-दूरकी यात्रा कर सकता है। पानीमें शिकार करने वाले सारस, टिटहरी, बगुले आदि पक्षियोंकी चोंच, टाँग और गर्दन अधिक लम्बी होती है जिससे वे मछली आदि जल-जीवोंको पकड़ कर अपना जीवन-यापन करते हैं। हंस, बत्तक, जलकुक्कुट आदि पानीमें तैरने वाले पक्षियोंके पैर जालीदार और पेटका तल चौड़ा होता है जिससे वे सरलतापूर्वक तैर सकते हैं। नर मयूर, कुक्कुट, शुक आदि पक्षी प्रकृतिप्रदत्त सौन्दर्यके कारण अपनी-अपनी मादाको वशीभूत करनेमें समर्थ होते हैं।

पशु-जगत्‌में भी यही बात देखनेमें आती है। बाघ, सिंह, बिल्ली, भेड़िया, भालू आदि शिकारी पशुओंके नख

और दाँत अति तीच्ण होते हैं; घ्राण-शक्ति तीव्र होती है; जीभ खुरदरी होती है; पैरके तलवे गद्दीदार होते हैं जिससे उनके चलनेमें आहट नहीं होती; आँखोंकी बनावट ऐसी होती है जिससे वे रात्रिके घोर अंधकारमें भी देखनेमें समर्थ होते हैं और रंग भी ऐसा होता है कि छिपे रहने पर उनका पता लगना कठिन है। यदि ये सुविधायें उन्हें प्रकृति द्वारा प्राप्त नहीं होतीं तो उन्हें भूखों हो मरना पड़ता। हाथी जैसे बड़े और ऊँचे परंतु लघु ग्रीवा वाले पशुको यदि सूँड़ न होती तो वह बेचारा भोजन कैसे पाता और दुश्मनोंसे अपनी रक्षा कैसे करता। रेगिस्तानमें रहनेके कारण ही ऊँटकी गर्दन और टाँगें लम्बी तथा तलुवे चौड़े और गद्दीदार होते हैं जिससे बालूमें चलनेमें दिक्कत नहीं होती और बालूके बवंडरसे दब जानेका भय नहीं रहता। उसके पेटमें पानी रखनेका एक विशेष प्रकारका थैला भी होता है जिससे वह बहुत दिनों तक पानीके बिना रह सकता है। ऊँटकी घ्राण-शक्ति भी ऐसी होती है कि वह रेगिस्तानमें बहुत दूरसे ही मरुस्थानमें स्थित जलाशयका पता लगा लेता है और उसीके प्रभावसे विषाक्त वायुसे अपने तथा अपने सवारोंके प्राण बचा लेता है। ठंढे देशोंके पशुओंके बदन सर्दीसे बचनेके लिये महीन और लम्बे बालोंसे ढँके होते हैं लेकिन गर्म मुल्कोंमें उनके बाल मोटे और छोटे-छोटे होते हैं। यही कारण है कि संसारके विभिन्न भागोंमें तरह-तरहके भालू, भेड़, कुत्ते, लोमड़ियाँ आदि पशु पाये जाते हैं। तात्पर्य्य यह है कि प्रकृति सदैव सभी जीवोंके जीवन-संग्रामकी आवश्यकताओंका ध्यान रखती है और तदनुसार ही उन्हें सुसज्जित करती है।

जीवोंके केवल रूप-रंग और बनावटमें ही विशेषता नहीं पायी जाती अपितु उनकी बोली, स्वभाव और व्यवहार में भी बड़ा चमत्कार दिखायी पड़ता है। मांसाहारी कीट-पतंग और पशु-पत्ती स्वभावतः उग्र और क्रोधी प्रकृतिके होते हैं। वे छिप कर घात करना जानते हैं और उनकी बोली भी ऐसी भयानक होती है कि उनका शिकार डरके मारे तनिक भी हिल-डोल नहीं सकता, वरन् उसे काठ मार जाता है। इसके विपरीत शाक-भोजी जीव शान्त और गम्भीर प्रकृतिके होते हैं और उनकी बोली मधुर, कोमल और करुण होती है।

अध्यापक जगदीश चन्द्र बोस ने सिद्ध कर दिया है कि पौधे भी सुख-दुःखका अनुभव करते हैं और तदनुसार वे अपने भावोंको व्यक्त भी करते हैं। लज्जावती छूने पर सिकुड़ जाती है। शिरीष, इमली, अपराजिता आदिकी पत्तियाँ सूर्य्यके डूबते ही बन्द हो जाती हैं और उगने पर पुनः खुल जाती हैं। इसी प्रकार रजनीगन्धा, कुमुद, बेला, चमेली आदि फूल रातको और बंधूक, सूर्य्यमुखी, कमल आदि पुष्प दिनको प्रस्फुटित होते हैं। कहना न होगा कि उनमें भी प्रकृति प्रदत्तशक्ति काम करती है।

छोटे-छोटे कीड़ोंमें भय और क्रोधके भाव स्पष्टतया देखे जाते हैं। पासमें उँगली ले जाने पर अथवा किसी शत्रु के निकट पहुँचने पर वे शीघ्र भाग कर अपनी रक्षा करना चाहते हैं। कीड़े अपन रक्षा करनेके लिये युद्ध करनेसे भी बाज़ नहीं आते। बिच्छू, बर्रे आदिको यदि कोई छेड़ता है तो वे झट डंक मार देते हैं। साँप अपनी रक्षाके लिये तुरंत फन फैला कर तैयार हो जाता है। चींटी, मधुमक्खी, टिड्डी तथा मछलियोंमें सामाजिक भाव पाया जाता है। चींटी और मधुमक्खी तो भविष्यके लिये संचय करना भी जानती हैं। वे एक साथ काम करती हैं और घर बनानेमें अद्भुत शक्तिका परिचय देती हैं। वे तब तक अपने अंडोंकी रक्षा करती हैं जब तक बच्चे नहीं निकल आते। तात्पर्य यह है कि कीड़ोंमें भय, क्रोध, मातृत्व आदिके भाव प्रकृति ने उनकी रक्षाके निमित्त ही भर रक्खे हैं। कीड़े अपने सारे कार्य सहज ज्ञानसे ही करते हैं क्योंकि बुद्धिका तो उनमें सर्वथा अभाव ही रहता है।

पक्षियोंमें भी वे भाव स्पष्ट पाये जाते हैं। अंडोंकी रक्षाके लिये प्रायः सभी पक्षी किसी-न-किसी प्रकारके घोंसले बनाते हैं हालाँ कि सबसे अच्छा घोंसला बया नामक पक्षी का होता है। बया, खंजन, कोकिल आदि कुछ तरहके पक्षी ऋतुके अनुसार एक स्थानसे दूसरे स्थानकी यात्रा भी करते हैं। दिनके समय पक्षी अपने घोंसलोंसे दूर-दूर तक चारा चुगनेके लिये चले जाते हैं परन्तु संध्या होते ही पुनः अपने वास-स्थान पर लौट आते हैं। इससे पता चलता है कि स्वभावतः उन्हें दिशाओंका भी ज्ञान होता है। कबूतर तोते, बगुले, सारस, हंस आदि पक्षी झुंडमें ही रहना पसन्द करते हैं और कहीं जाते समय, झुंड-के-झुंड

उड़ कर जाते हैं क्योंकि उन्हें अकेला रहना बहुत ही अखरता है। कौएमें स्वजाति प्रेम बहुत पाया जाता है और एक कौए पर मुसीबत आने पर सैकड़ों जुट जाते हैं। हर्ष, क्रोध, भय, सुख, दुःख आदिके समय पक्षियोंके बाह्य आकार और स्वरमें काफी परिवर्त्तन हो जाता है। ऋतुके अनुसार उनमें कामुकता भी जाग्रत होती है और मादामें मातृत्वका भाव विशेष रूपसे पाया जाता है। वे केवल अंडोंकी ही रक्षा नहीं करतीं वरन् बच्चोंको तब तक चारा चुग चुग कर खिलाती हैं और उन्हें उड़ना सिखाती हैं जब तक वे स्वयं चारा चुग कर खाने और उड़नेके योग्य नहीं हो जाते। शुक-सारिकाओंमें शब्द-अनुकरण शक्ति विशेष रूपसे पाई जाती है। पक्षी अपनी और अपने बच्चोंकी रक्षाके लिये युद्ध करनेसे भी बाज नहीं आते। मानव-संसर्गमें रहने वाले पक्षियोंमें बुद्धिकी मात्रा अधिक पाई जाती है। बाज़, पेलीकन आदि पक्षी अपने मालिकके लिये शिकार करते हैं। कबूतर चिट्ठियाँ लेकर एक स्थानसे दूसरे स्थान पर जाते हैं। कौए बच्चोंके हाथसे तो रोटियाँ छीन लेते हैं पर बड़ोंके हाथसे डरके मारे कोई पदार्थ नहीं छीनते। वे छिप कर दूसरे पक्षियोंके अंडे भी खा जाते हैं। इन बातोंके देखनेसे मालूम होता है कि उनमें कुछ बुद्धिकी मात्रा अवश्य होती है हालाँ कि उनकी प्रायः सभी बातोंमें स्वाभाविक वृत्तियाँ ही विशेष काम करती हैं।

पशुओंमें भय, क्रोध, सुख, दुःख, कामुकता, मातृत्व, ऐक्य आदि भाव प्रचण्ड रूपसे पाये जाते हैं। इनमें बुद्धिकी मात्रा पक्षियोंसे अधिक पाई जाती है। हाथी, बन्दर, गाय, भेंड़, ऊदबिलाव, भालू, सूअर, हिरन आदि पशु झुंडमें ही रहना पसन्द करते हैं। कुत्ते, बिल्ली, घोड़े हाथी और बन्दरमें बिलक्षण बुद्धि होती है। वे मनुष्योंको केवल पहचानते ही नहीं बल्कि बहुत कुछ उनकी भाषा और भावोंको समझने लग जाते हैं और कभी-कभी आश्चर्यजनक काम कर दिखाते हैं। बन्दर, हाथी, भैंसे आदि तो महीनों क्या वर्षों तक अपने शत्रुओंसे बदला लेनेको तैयार रहते हैं। घोड़े, हाथी और कुत्ते स्वामिभक्ति तथा बन्दर अनुकरणके लिये विख्यात हैं। कितने पशुओंमें खेलनेकी स्वाभाविक वृत्ति पाई जाती है। बिल्लीके बच्चे, मेमने, बिल्ले, कुत्ते, बन्दर और हाथीके बच्चे आपसमें खूब खेलते कूदते हैं। गाय मातृत्वकी मानों सजीव मूर्त्ति है। इसी प्रकार विभिन्न पशुओंमें विभिन्न प्रकारके भावोंकी प्रधानता पाई जाती है। हाथी और मृग संगीत सुनने पर मुग्ध हो जाते हैं। बन्दरोंमें काम-वासना और लोलुपता विशेष पाई जाती है। कुत्ते लड़नेमें मशहूर हैं। वे दूसरे स्थानके कुत्तोंको अपने मुहल्लेमें कदापि नहीं आने देते, क्योंकि वे अपने स्वत्वकी रक्षा करना चाहते हैं। पशु भी अपने भय, क्रोध, दीनता, प्रसन्नता आदि भावोंको भिन्न-भिन्न भाव-भंगियों और शब्दोंके द्वारा प्रकट करते हैं। कुत्ते क्रोधके समय भौंकते और झपटते हैं; खुशीके समय पूँछ हिलाते और दीनता प्रकट करनेके लिये दाँतें दिखा कर मन्द-मन्द गुर्राते हैं तथा भयके समय पूँछ सटका कर काँय-काँय शब्द करते हैं। बाघ और हाथी क्रोधके समय गरजते और चिंघाड़ते हैं। बन्दर खों-खों शब्द करता और ऐसी घुड़कियाँ देता है मानों अभी चढ़ बैठेगा परन्तु भयके समय वही बेतरह चिल्लाने लग जाता है। साँड़ और भैंसे क्रोधके समय अकड़ते, जमीनको पैरों और सींगोंसे खुरेदते और जोर-जोरसे राँभते हैं।

सारांश यह है कि गम्भीरता पूर्वक परिश्रमसे प्रकृतिका निरीक्षण करने पर हमें बहुत-सी विभिन्न बातें ज्ञात हो सकती हैं। बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें प्रतिदिन हमारी आँखोंके आगे होती रहती हैं पर हम असावधानीके कारण कुछ ख्याल नहीं करते। प्रकृति विलक्षण है और वह अपनी प्रजाओंको सब तरहकी सुविधायें प्रदान करती है जिसमें वे जीवन-संग्राममें विजयी होकर संसारमें अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकें। पौधे, कीट-पतंगों और पशु-पक्षियोंमें सहज ज्ञानकी प्रधानता है। उनमें उसकी रक्षाकी सारी वस्तुयें प्रकृति-प्रदत्त हैं और उन्हें स्वयं बहुत कम प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। सभी काम समय और आवश्यकताके अनुसार आप-से-आप होते जाते हैं। वे प्रकृतिके पूर्णतः वशीभूत होते हैं और उसके नियमोंकी अवहेलना नहीं कर सकते। उन्हें प्रकृतिकी पूर्ण सहायता प्राप्त है। इन सब बातोंके विचारसे नग्न और शस्त्र रहित मानव निरा असहाय प्रतीत होता है। पर इसकी बुद्धिकी समता कौन जीवधारी कर सकता है।

जड़-पदार्थका तत्त्व

[ले०—कुँवर बीरेन्द्र नारायण सिंह, एम० एस-सी०]

किसी प्रकारकी वस्तु दो प्रकारसे बनाई जा सकती है। एक तो यह कि किसी बड़े पदार्थको काट व गढ़ कर उसका निर्माण किया जाय और दूसरा यह कि उसी वस्तुके छोटे-छोटे टुकड़ोंको जोड़ कर उसको बनाया जाय। वैज्ञानिकों ने प्रत्येक वस्तुके सम्बन्धमें यह निश्चित किया है कि वे छोटे-छोटे टुकड़ोंसे जुड़ कर निर्मित हुये हैं। उनका यह अनुमान है कि किसी भी जड़-पदार्थको तोड़ते तोड़ते एक ऐसा समय आ सकता है जब हम उस छोटे टुकड़ोंको पा सकेंगे जिनके योगसे उस पदार्थका निर्माण हुआ है, किन्तु यह कहना कठिन है कि उस सूक्ष्म खंडके भी और टुकड़े हो सकते हैं या नहीं। उनका विचार है कि समस्त पदार्थ इस प्रकारके अणुओंका एक विशाल संग्रह है और अणु इतने सूक्ष्म हैं कि किसी भी प्रकारसे देखे नहीं जा सकते। ये अणु नाना प्रकारके हैं। वायुके अणु एकत्रित होनेसे वायु, जलके अणु एकत्रित होनेसे जल तथा सोना, चाँदी, लोहा आदिके अणुओंके एकत्रित होनेसे क्रमशः इन तीनों पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई है। अणुओंका तोड़ना कठिन है तथा अणुओंके भीतर थोड़ा रिक्त स्थान है—इस प्रकारकी विवेचना कर वैज्ञानिकों ने जगतके समस्त जड़-पदार्थोंकी उत्पत्तिका कारण बतलाया है। हम इसी सिद्धांतपर विभिन्न रूपसे विचार करेंगे।

जिन पदार्थोंको हम ठोस समझते हैं वास्तवमें वे एकदम ठोस नहीं होते। उनके बीच कुछ खाली जगह होती है। मिट्टी पानी सोखती है इससे यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मिट्टी ठोस नहीं है। उसके कण सन्निकट होने पर भी सछिद्र तथा सावकाश है। पके हुये घड़ेमें जल भर देनेसे उसका बाहरी पृष्ठ भीग जाता है। इसी प्रकार लकड़ी ईंट तथा पत्थरकी छिद्रता जानी जा सकती है। ठोस ज्ञात होने वाले समस्त धातुओंकी भी सछिद्रता सिद्ध की जा सकती है। खोखले शीशेमें पानी डाल कर काफ़ी दबाने पर उससे बूँद-बूँद पानी निकाला गया है। यह सिद्ध करना कठिन नहीं कि सम्पूर्ण पदार्थ सछिद्र हैं। इस प्रकार वैज्ञानिकोंका यह अनुमान है कि जड़-पदार्थ छोटे-छोटे अणुओंसे बने हुये हैं पुष्ट हो जाता है। किन्तु उन छिद्रोंके अस्तित्वसे अतिसूक्ष्म अणुओंका अस्तित्व प्रमाणित नहीं होता। यह छेद मोटे हैं क्योंकि इनके द्वारा जल और वायु सरलतापूर्वक निकल सकते हैं। अणुओंके बीचमें जो छिद्र हैं वे उनकी अपेक्षा बहुत छोटे होते हैं। जिस प्रकार बालुका-स्तूपमें पानी छोड़नेसे स्तूपकी सछिद्रता सिद्ध होती है, बालू कणकी नहीं, उसी प्रकार सोने या चाँदीके पत्तरसे पानीका आवागमन दिखलानेसे उनके कणोंके बीचमें छिद्रका आस्तित्व सिद्ध होता है परन्तु यह नहीं सिद्ध होता कि वे कण सूक्ष्म अदृश्य अणुओंसे बने हुये हैं तथा उनके बीचमें छिद्र है।

जगतके समस्त जड़-पदार्थ तीन अवस्थामें हो सकते हैं। उन तीनों दशाओंमें—ठोस, तरल और वाष्प—पदार्थका आयतन दबाने पर घट जाता है। केवल तनिक दबानेसे वाष्पमय पदार्थ बहुत संकुचित हो जाते हैं। तरल और ठोस पदार्थोंको अधिक दबानेसे उनका भी यथेष्ट संकोचन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण पदार्थ गरम करने पर प्रसरित होते हैं और ठंढे होने पर संकुचित हो जाते हैं। इसी प्रसरणके कारण लोहेका पहिया लकड़ी पर दृढ़तापूर्वक जम जाता है। जड़-पदार्थोंके अणुओंके बीचमें अवकाशका अनुमान करनेसे इस संकोचन तथा प्रसरणकी घटना भली प्रकार समझी जा सकती है। शीतल होने पर अणु समीप आ जाते हैं; अतः जड़-पदार्थ संकुचित हो जाता है। गर्म करने पर अणु फैल जाते हैं; एवं वह वस्तु भी प्रसरित हो जाती है।

तरल तथा वाष्पमय पदार्थोंका एक विशेष गुण उनका दबाव होता है जो कि वे अपने चारों ओर डालते हैं, किन्तु ठोस पदार्थ जिस वस्तुके आधार पर रहता है उसको केवल नीचेकी ओर दबाता है। तरल तथा वाष्पमय पदार्थ चपल होते हैं, किन्तु ठोस पदार्थ स्थिर होता है। एक पात्रका जल दूसरे आकारके पात्रमें सरलतासे उँड़ेला जा सकता है। लेवण्डरकी शीशी खोलते ही सारे कमरेमें सुगन्धित वायु फैल जाती है। केवल एक ओर दबानेसे जल और वायुका दबाव चारों ओर फैल जाता है। इसके समझानेके लिये हम अनुमान करेंगे कि जलके भीतर असंख्य अणु

एवं वायुमें वायुके अणु दौड़-धूप कर रहे हैं। ठोस पदार्थ-में भी अणु हैं किन्तु उनके स्थिर होनेके कारण अणुओंकी गति बहुत धीमी है। घरके अन्दर जो वायु है वह सर्वत्र धक्का दे रही है; हमारे शरीर पर भी उसका दबाव पड़ता है। चारों ओरसे बराबर दाब पड़नेसे हमको कुछ ज्ञात नहीं होता, नहीं तो वायुके एक दिशाके दबावका परिमाण इतना अधिक होगा कि हम लोग कहीं टिक न सकेंगे। वायुके सूक्ष्म अणु चंचल होनेके कारण सारे वातावरणमें दौड़ कर धक्के देते रहते हैं जिसके कारण पृथ्वी पर उनका एक विशेष दबाव पड़ता है।

वाष्पमय पदार्थोंके अणु बहुत चंचल होते हैं; वे जिधर चाहते हैं दौड़ने लगते हैं। उनका वेग बहुत अधिक होता है। अणुओंके धक्के लगनेसे वातावरणके चारों ओर दबाव पड़ता है। तरल पदार्थके अणु भी चपल होते हैं किन्तु संकीर्ण स्थान होनेके कारण उनकी चालमें बाधा पहुँचती है। इनके अणुओंको भी धक्के लगते हैं और उनका चारों ओर दबाव पड़ता है। ठोस पदार्थोंके अणुओंमें वैसी चंचलता नहीं होती; वे अधिकांश अपने स्थान पर रहते हैं और वहीं पर हिलते डुलते हैं। इस प्रकार हम जड़-पदार्थ की तीनों अवस्थाओंके गुणोंको भली भांति विवेचना कर सकते हैं। अतः वैज्ञानिकों ने ऐसा अनुमान कर लिया है कि पदार्थ सूक्ष्म अणुओंके समूहसे निर्मित हैं।

अब प्रश्न यह है कि इन अणुओंके टुकड़े हो सकते हैं या नहीं। चूँकि जलका अणु जलका सूक्ष्मतम अंग है अतः उससे छोटे जलके अणुकी कल्पना नहीं हो सकती। उस अणुको भंग करनेसे वह जलके अणुके रूपमें न रह कर दूसरी वस्तुमें परिणित हो जावेगा। अतः जलके अणु के तोड़ने पर हमें जलसे भिन्न दूसरा पदार्थ आक्सीजन और हाइड्रोजन मिलता है जो जलके सूक्ष्मतम अंश हैं। इनको हम परमाणु कह सकते हैं। अतः जलके अणुको तोड़ने पर दो प्रकारके परमाणु—एक आक्सीजनका और दूसरा हाइड्रोजनका परमाणु मिलता है। किन्तु यह देखा गया है कि जिस किसी भी जलके अणुका विभाजन किया जावे हाइड्रोजन और आक्सीजनकी-तौलोंका अनुपात १ : ८ हिस्सेका होता है, न इससे कम न अधिक। अनेक अन्य वस्तुओंसे भी आक्सीजन निकाला गया है और तौल कर देखने पर ज्ञात हुआ है कि हाइड्रो-जनका एक भाग लेने पर आक्सीजनके आठ भाग लेने पड़ते हैं। आक्सीजन भी जिस पदार्थके साथ रहता है उसमें आठको भाज्य कोई संख्या वर्तमान रहती है। यदि जलके प्रत्येक अणुसे हाइड्रोजनका एक परमाणु तथा आक्सीजनका एक परमाणु मिले और यदि आक्सीजनका परमाणु हाइड्रोजनके परमाणुसे आठ गुना भारी हो तो इस प्रकारके अनुपात होनेका कारण स्पष्ट हो जाता है। एक बूँद जलमें करोड़ों जल-अणु हैं। जितने अणु हैं उनमेंसे हर एकका विभाजन करने पर उतने ही परमाणु आक्सीजन तथा हाइड्रोजनके मिलेंगे और आक्सीजनका प्रत्येक परमाणु हाइड्रोजनके परमाणुसे आठ गुना होगा। अतः दोनोंका अनुपात एक और आठ रहेगा। इसी प्रकार किसी दूसरे द्रवके तोड़ने पर यदि आक्सीजनके ३ या चार परमाणु मिलें तो आक्सीजनका भाग उस पदार्थमें क्रमशः २४ या ३२ होगा। एक बात और है—आक्सीजनका भाग आठ या उसकी कोई भाज्य संख्या ही होगी। इसके बीचकी कोई संख्या अर्थात् १०, १२ भाग नहीं होगा। इसका तात्पर्य यह है कि आक्सीजनका पर-माणु तोड़ा नहीं जा सकता।

यद्यपि इस बातके निर्देश करनेकी चेष्टाकी गई है कि एक बूँद जलमें कितने करोड़ अणु होते हैं और उनका क्या आकार है फिर भी हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वे जलीय अणु हैं तथा वाष्प रूपमें स्वाधीनतापूर्वक दौड़ते रहते हैं। तरल जलमें आपसमें रगड़ते हुये धक्का देते हुये चलते हैं, एवं बर्फमें पंक्ति बाँध कर अपने स्थान पर काँपते रहते हैं। इन अणुओंके तोड़ने पर पर-माणु मिल सकता है परन्तु उनमें जलत्व नहीं रहता। वे आक्सीजन और हाइड्रोजनके परमाणु हैं। हाड्रोजनका परमाणु सबसे हल्का होता है तथा आक्सीजन उसका आठ गुना भारी होता है। उन परमाणुओंको तोड़ा नहीं जा सकता। जलसे हाइड्रोजन मिलता है परन्तु हाइड्रोजन से हाइड्रोजनके अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। उसी प्रकार आक्सीजनसे केवल आक्सीजन ही मिलता है। इससे ज्ञात होता है कि जलके अणुमें हाइड्रोजन और आक्सीजन वर्तमान हैं। परन्तु हाइड्रोजन और आक्सीजनके

परिमाणुको तोड़नेसे अन्य प्रकारका सूक्ष्मतर परमाणु नहीं मिल सकता। अतएव परमाणु अभेद्य तथा अविभाज्य हैं।

जो पदार्थ अविभाज्य हैं उनकी गणना हो सकती है। और जो विभाज्य हैं उनकी गणना नहीं हो सकती। मनुष्यके दो टुकड़े हो सकते हैं परन्तु ऐसा होनेसे खंड भागमें मनुष्यत्व नहीं रहता। फूलके नोंच डालनेसे वह फूल नहीं रहता। अतएव जिसका खंड नहीं है, उसकी गणना हो सकती है। जो नापा जा सकता है वह विभाज्य है। एक तोले सोनेका हजारों भाग किया जा सकता है। फिर भी वह सोना ही कहलायेगा। इसी प्रकार जल, तेल आदिके विभाज्य होनेके कारण उनकी गणना नहीं हो सकती। किन्तु यदि वास्तवमें विभाज्य पदार्थ बहुसंख्यक अणुओंके संयोगसे निर्मित हैं तो उसकी भी गणना हो सकती है और यदि एक बूँद जलके अणुकी संख्या ज्ञात हो जावे तो जलके परमाणु निर्देशमें भूल करनेकी सम्भावना न होगी। यद्यपि इस प्रकारकी गणना असम्भव नहीं किन्तु कठिनाई यह है कि वे सूक्ष्म अणु अगोचर हैं। न तो वे स्पर्श किये जा सकते हैं और न पकड़े जा सकते हैं। निस्सन्देह ऐसे यंत्रका अविष्कार होना असम्भव नहीं जिनसे ये अणु दृष्टिगोचर हो सकें और उनकी सरलतासे गणनाकी जा सके। इसी कारण जहाँ कठिनतासे गणना होती है वहाँ नाप कर काम चला लिया जाता है।

रसायनवेत्ता जिन मूल पदार्थोंको परस्पर मिला कर पार्थिव पदार्थोंको बना सकते हैं उनकी संख्या लगभग ८० है। अतएव परमाणुके भी इतने ही जातिके भेद स्वीकार करने पड़ेंगे। किन्तु कुछ वैज्ञानिकोंका मत है कि समस्त परमाणु एक ही प्रकारके हैं। केवल उनको अविभाज्य माननेसे जाति भेद मानना पड़ता है। किन्तु क्रूक्स महोदय ने एक नूतन प्रकारकी जड़ कणिकाका आविष्कार किया है जिसको प्रोटाइल कहते हैं तथा जिस कणिकाके संयोगसे परमाणु बनता है। अब तक जो यह धारणा थी कि जिस प्रकार अणुके तोड़ने पर परमाणु मिलता है उस प्रकार परमाणु भंग नहीं किया जा सकता किन्तु अब यह ज्ञात होता है कि परमाणुका तोड़ना बहुत सरल है। अब तक विश्वास था कि हाइड्रोजनके परमाणुकी अपेक्षा सूक्ष्मतर पदार्थ जगतके अन्दर नहीं है पर अब ज्ञात हुआ कि उसको तोड़ कर टुकड़े-टुकड़े किये जा सकते हैं। हज़ारों टुकड़ोंको एकत्रित करनेसे एक परमाणु बनता है और उन्हीं कणिकाओंके एकत्रित होनेसे हाइड्रोजनका परमाणु बना है। केवल यही नहीं; सम्पूर्ण मूल पदार्थोंके भंग करने पर इस प्रकारकी कणिकायें मिलती हैं। ये कणिकायें अणु एवं परमाणुसे भी अधिक चंचल होती हैं। इनकी प्रगति प्रायः एक लाख मील प्रति सेकेण्ड होती है। रेडियम नामक धातुके परमाणु सर्वदा टूटते रहते हैं। उससे ये कणिकायें प्रतिक्षण निकलती रहती हैं। वे परिमाणुसे आबद्ध रहने पर भी वेगसे दौड़ती हैं तथा आकाशसे तरंगको उत्पन्न करती हैं। ये सूक्ष्म कणिकायें जड़-पदार्थ नहीं होतीं। यद्यपि यह ठीक है कि समस्त जड़-पदार्थके परिमाणु उन्हींके सहयोगसे बने हैं एवं वे जड़-पदार्थके उपादान हैं किन्तु इन विचित्र गुणोंके कारण इन्हें जड़ कण न कह कर विद्युत् कण ही कहना उचित होगा। मनुष्य विद्युत् शक्तिसे पूर्ण रूपसे परिचित है। उसका सहस्रों वर्षोंसे उपयोग कर रहा है, किन्तु उसके स्वरूपसे वह पूर्ण रूपसे परिचित नहीं है। इसके विषयमें अनेक मतभेद रहा है किन्तु अब ज्ञात हुआ है कि जड़ परमाणुकी सूक्ष्म कणिकाओं तथा विद्युत्में कोई भेद नहीं है। अतः हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जगतमें केवल विद्युत ही है तथा वही समस्त जड़-पदार्थोंका उपादान है। प्रत्येक वस्तुमें विद्युत् शक्ति छिपी हुई है। विद्युत् कणोंका स्थान बदलना निरन्तर जारी है। इसीको हम 'शक्ति' कहते हैं। सारा विश्व शक्तिका पारावार है। यह शक्ति अविनाशी है, पदार्थ भी अविनाशी है। जिसे हम नाश समझते हैं वह केवल स्थान परिवर्तन है। सारे विश्वका एक विद्युत् कण न तो कभी घटता है और न बढ़ता है। उसकी संख्या ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। यही नहीं, एक प्रोफेसर ने इन विद्युत् कणोंकी संख्याका भी अनुमान लगाया है जो कि $१०^{७९}$ है। उनमेंसे एककी भी उत्पत्ति अथवा विनाश ईश्वरके भी अधिकारसे बाहर है। केवल स्थान परिवर्तन द्वारा एक रूपसे दूसरेमें परिवर्तित होते रहते हैं।

पावर अलकोहल

[ले०—डाक्टर एस० दत्त, एम० ए०, पी० आर० एस०, डी० एस-सी०, डी० आई० सी० (लंदन)]

'पावर-अलकोहल' शब्दसे इन दिनों प्रत्येक मनुष्य परिचित है। अभी उस दिन दो स्कूलके बालकों की बात-चीत सुनकर मुझे हँसी आई "अलकोहल मनुष्योंको अपार शक्ति प्रदान करता है। कल्लू ही को देखो! उसको एक बोतल दे दो फिर वह दूनी स्फूर्त्तिसे काम करता है। उसी प्रकार यदि इञ्जनमें अलकोहल दिया जावे तो वह दूनी प्रगतिसे संचालित होगा। अलकोहल शक्ति प्रदान करता है; पावर अलकोहल विशुद्ध अलकोहल होता है।' पावर अलकोहलके विषयमें जनताका ज्ञान उपर्युक्त वार्तालाप से अधिक भिन्न नहीं है। इस शब्द पर जनताका ध्यान इस कारणसे विशेष रूपमें आकर्षित हुआ था कि कुछ समय पहले युक्त प्रांत और बिहारकी कांग्रेस सरकार ने चीनीके शीरेसे अलकोहल निर्माणके विषय पर एक समिति का निर्माण किया था जो कि मोटरमें पेट्रोलके स्थान पर अलकोहल प्रयुक्त किये जानेके प्रश्न पर विचार करे। समिति ने अनुसंधानके पश्चात् यह घोषित किया कि पावर अलकोहलका निर्माण शीरेसे अधिक मात्रामें किया जा सकता है और यह सम्मति दी कि पेट्रोलके साथ इसका २५ प्रतिशत मिश्रण करके मोटरमें सफलतापूर्वक प्रयोग किया जा सकता है।

उक्त समितिकी खोज अथवा सम्मतिमें कोई विशेषता अथवा नूतनता नहीं है। यह सर्व विदित है कि १ टन शीरेको जिसका घनत्व १०५° ब्रिक्स हो फफदाने और स्रवित करनेके पश्चात् (पेपेट स्टिल द्वारा) प्रायः ६३ गैलन रेक्टीफाइड स्प्रिटका निर्माण होता है जिसमें प्रायः ९५-९७ प्रतिशत इथाइल अलकोहल होता है। यह स्प्रिट स्वयं एक अच्छा ईंधन है। यह साधारणतः १ प्रतिशत विषका मिश्रण कर मेथलेटेड स्प्रिटके नामसे अत्यन्त प्रचलित है। स्टोव, लैम्प आदिमें प्रकाश और गर्मी प्रदान करनेके लिये प्रयुक्त होता है। रेक्टीफाइड, स्प्रिट स्वयं मोटर संचालन करनेके लिये प्रयोग किया जा सकता है। इसमें किसी प्रकारके मिश्रण करनेकी आवश्यकता नहीं। मोटर साइकिल जैसे वायुसे शीतल होने वाले ईञ्जनके लिये इनका प्रयोग भली भांति हो सकता है। पेट्रोलकी अपेक्षा यह केवल ८५ प्रतिशत शक्ति प्रदान करता है। किन्तु जलसे शीतल किये जाने वाले इंजनोंमें जैसा साधारण मोटरोंमें होता है अलकोहलके उपयोगसे केवल ८० प्रतिशत शक्ति रह जाती है। यदि इसके स्थान पर विशुद्ध अलकोहल प्रयोग किया जावे तो शक्तिकी उत्पत्ति ५ प्रतिशत बढ़ जाती है। कारण यह कि ईंधनकी तेजी बढ़ जाती है। अभाग्यवश आबकारीकी कठिनाइयोंके कारण न तो विशुद्ध अलकोहल और न रेक्टीफाइड स्पिरिट मोटरमें प्रयोग किया जा सकता है और जो मेथलेटेड स्पिरिट बाजारोंमें बिकती है वह इस कार्यके लिये पूर्णतः अनुपयुक्त है। इसके दो प्रधान कारण हैं :—(१) पीरीडीन जो कि विषकी भांति प्रयोग किया जाता है सामान्य मात्रामें शोरेके तेजाबमें परिवर्त्तन हो जाता है जिसका मोटरके भीतरी अंगों पर बुरा प्रभाव पड़ता है। और (२) काटचोसीनके प्रयोगसे इंजनके द्वार विशेष आदि कालिखसे भर जाते हैं और गंधकके लवणोंका गंधकके तेजाबमें परिणित हो जानेके कारण पुर्जों का शीघ्र क्षय हो जाता है। अतः यह प्रकट है कि यदि अलकोहलको मोटरमें प्रयोग किया जाता है तो उसमें किसी प्रकारके विषोंका समिश्रण करना अत्यन्त हानिकारक है। ऐसी दशामें जब तक आबकारी विभाग अपने नियममें परिवर्त्तन नहीं करता, विशुद्ध अलकोहलका मोटरमें प्रयोग होना असम्भव है।

किन्तु अलकोहल, ऐसे इंजनोंके लिये उपयुक्त ईंधन नहीं है। पेट्रोलकी अपेक्षा इसमें अनेक असुविधायें हैं। जैसा कि कहा जा चुका है अलकोहल द्वारा १० प्रतिशत कम शक्ति का उत्पादन होता है। दूसरी कठिनाई यह है कि पेट्रोलकी अपेक्षा अलकोहल द्वारा कम वाष्पका दबाव उत्पन्न होता है जिससे विशेषतः जाड़ेकी ऋतुमें मोटरकी इञ्जनके प्रथम संचालनका कार्य सुगमतासे नहीं होता। तीसरी बात यह है कि अलकोहल वाष्प और वायुके समिश्रणके जलनेकी स्फूर्ति क्षीण होनेके कारण इञ्जनकी चाल धीमी होती है। और चौथी असुविधा यह है कि जलनेकी क्रियामें थोड़ी मात्रामें एसिटिक एसिडका निर्माण भी होता है जो इञ्जनके भागोंको, विशेषतः अल्यूमीनियमके निर्मित अंशोंको, शीघ्र

ही क्षीण कर देता है। इन सब रसायनिक कठिनाइयोंके अतिरिक्त एक दूसरी असुविधा भी है। अलकोहलमें घोलनेकी शक्तिकी अधिक मात्रा है। यह सब प्रकारके रंग, वार्निश आदिको घुला देता है। अतः आधुनिक रंग-बिरंगी और चमकदार मोटरोंमें प्रयोग करनेमें इस बातका भय रहता है कि यदि अचानक अलकोहल भरते समय यह मोटर के ऊपरी भागपर छलक कर गिर जावे तो मोटरका रंग और सुन्दरता नष्ट हो जावेगी। इन सब कठिनाइयोंके होते हुए भी अलकोहलके प्रयोगमें एक सुविधा अवश्य है कि यह पेट्रोलसे अधिक स्वच्छ जलता है। यह पेट्रोलकी भांति मोटरोंके ईञ्जन एवं द्वार विशेषोंको कालिखसे नहीं भरता और न तो पेट्रोलकी भांति अलकोहलमें दुर्गंध ही है।

ऐसे मोटरके इञ्जनोंमें जिनमें पेट्रोल प्रयोग किया जाता है, रेक्टीफायड स्परिट अथवा विशुद्ध अलकोहल बिना किसी समिश्रणके भली भांति काममें लाया जा सकता है। इसके लिये मोटरके इञ्जनमें किसी प्रकारके रूपांतर करनेकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु प्रयोगों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि अधिक कार्य कुशलताके लिये ईंधनमें अधिक दबावकी आवश्यकता है। ईंधनके जलनेकी तीव्रता और ईञ्जनकी स्फूर्तिके लिये ऐसा करना अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। अधिकांश आधुनिक पेट्रोल इञ्जनोंमें और विशेषतः अल्यूमीनियम सिलिंडर वालोंमें ६७ से १०० पौंड प्रति वर्ग इञ्चके आरंभिक दबावकी आवश्यकता पड़ती है ('चाप-निष्पति' ६·५ : १ होती है)। किन्तु उन इञ्जनोंमें जिसमें अलकोहल प्रयोग किया जाता है १२५ पौंड प्रति वर्ग इञ्च प्रारम्भिक दबावकी आवश्यकता पड़ती है जिसमें 'चाप-निष्पति' ८·३ : १ होता है। अतः यह विदित है कि पेट्रोलके बराबर प्रभावके लिये यह आवश्यक है कि इञ्जनों की प्रगति बढ़ाई जावे। इस कार्यके लिये मोटरके साधारण हेडको अत्यन्त छिछले हेड द्वारा स्थानान्तर किया जा सकता है किन्तु अधिक सफलताके लिये कार्यालयके निर्माण किये हुए अधिक दबाव वाले हेडका प्रयोग करना ही उचित है। जब यह रूपान्तर हो जावे तो मोटर में अलकोहल उसी प्रकार प्रयोग किया जा सकता है जैसे पेट्रोल और उसका प्रभाव भी उसी प्रकार होता है।

किन्तु उन प्रदेशोंमें जहाँ आबकारी विभागके नियमोंके कारण विशुद्ध अलकोहल अथवा रेक्टीफायड स्पिरिटका मोटरोंमें प्रयोग करना असम्भव है केवल यही एक साधन है कि एक उपयुक्त मात्रामें पेट्रोल व अलकोहलका समिश्रण प्रयोग किया जावे। इस मिश्रणके निर्माणकी आर्थिक दशा अलकोहलके उत्पादनके व्ययके ऊपर निर्भर है। पिछले कुछ वर्षोंसे भारतमें चीनीके निर्माणकी अत्यधिक मात्रा हो जानेके कारण उन कार्यालयोंमें शीरेका उत्पादन विशाल मात्रामें होता है और कभी-कभी चार आने मनमें सरलतासे प्राप्त हो सकता है। इसको फफदाने, टपकाने और विशुद्ध करनेमें भी व्यय होगा और एक सुसंचालित और संगठित कार्यालयमें कुल व्यय ६) रुपये प्रति टनसे अधिक नहीं पड़ेगा। ऐसी दशामें रेक्टीफायड स्पिरिटका मूल्य ४ आने प्रति गैलनसे अधिक नहीं पड़ना चाहिये। युक्त प्रान्तके अधिकांश शहरोंमें पेट्रोलका मूल्य चुङ्गी आदि छोड़ कर १३ आने प्रति गैलन है। अतः पेट्रोल और अलकोहलका समिश्रण हर दशामें लाभदायक होगा। ग्रीष्म ऋतुमें इनका अनुपात १ : १ होना चाहिये अथवा ५० प्रतिशत (बराबरका) मिश्रण होना उपयुक्त है। यह ईंधन इञ्जनमें किसी प्रकारका रूपान्तर किये बिना ही सफलतापूर्वक मोटर संचालनके लिये प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु जाड़ेकी ऋतुमें इस अनुपातका मिश्रण अनेक असुविधायें उत्पन्न करता है, विशेष कर उन मोटरोंमें जिनमें पुरानी तरहके इञ्जन लगे होते हैं। ऐसी अवस्थामें अलकोहलकी मात्रा ३० अथवा २५ प्रतिशत तक घटा देनी चाहिये। अतः ऐसा समिश्रण जिसमें ७५ प्रतिशत पेट्रोल और २५ प्रतिशत विशुद्ध अलकोहल हो इस कठिनाईको दूर कर देता है और इसका प्रयोग वर्षके किसी भी मौसममें किया जा सकता है।

किन्तु इस मिश्रणमें एक बड़ी कठिनाई उत्पन्न होती है। अलकोहलका विशुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। यदि उसमें तनिक भी जलकी मात्रा होगी तो उसका घनत्व अधिक होनेके कारण मिश्रणसे अलग हो कर नीचे बैठ जावेगा और कारब्यूरेटरका संचालनस्थान ईंधन-पात्रके पेंदेमें होनेके कारण जलका भाग ही सर्वप्रथम इंजनमें जावेगा और उसकी संचालन क्रियाको रोक देगा।

इससे यह प्रकट है कि जब तक अलकोहल जलसे बिल्कुल विशुद्ध न हो पेट्रोलके साथ उसका समिश्रण नहीं किया जा सकता। अलकोहलको जलसे विशुद्ध करने के लिये अनेक व्यापारिक विधियाँ हैं। वे बेनजीन, ग्लिसरीन, कैलशियम क्लोराइड, आक्साइड और कारबाइडके प्रयोगसे विशुद्ध किये जाते हैं। किन्तु इन रसायनिक पदार्थोंके प्रयोगसे विशुद्ध अलकोहलका व्यय कम-से-कम दो आना प्रति गैलन बढ़ जावेगा। लेखककी गणनासे पूर्णरूपसे संचालित और संगठित कार्यालय द्वारा फफदाने, टपकाने, एवं जलसे पूर्णतः विशुद्ध करने पर अलकोहलका मूल्य ६ आने प्रति गैलनसे कम नहीं पड़ता जब कि कार्यालयमें शीरेका भाव ७ रुपये प्रति टन पड़ता है। सम्भवतः ऐसे अलकोहलका मूल्य ६ आनेसे भी अधिक पड़ सकता है जब शीरेका मूल्य दूरसे आनेके कारण अधिक पड़ जायेगा। लेखकके ज्ञान और गणनाके अनुसार विशुद्ध अलकोहलका मूल्य ३ आने प्रति गैलन अथवा कम पड़ना असम्भव है जैसा कि सरकारकी पावर अलकोहल कमेटीने घोषित किया है। विशुद्ध अलकोहलकी बात तो जाने दीजिये—रेक्टीफाइड स्पिरिटका मूल्य बड़े-से-बड़े कार्यालय में आठ आनेसे कम नहीं पड़ता। यदि यह मान लिया जावे कि विशुद्ध अलकोहल ६ आने प्रति गैलन प्राप्त हो जावेगा और, जैसा कि सरकार ने निर्धारित किया है, इसका २५ प्रतिशत भाग पेट्रोलमें मिश्रित किया जावे और इन दोनोंका मिश्रण निर्माण करनेकी एक संस्था स्थापित की जावे तो व्ययको दृष्टिमें रखते हुये भी यह स्पष्ट है कि इस प्रकारके मिश्रणमें केवल एक आने प्रति गैलनका लाभ है। यह भी उसी समय जब कि पेट्रोलका मूल्य १३ आनेसे कम न हो। किन्तु यदि उसका मूल्य ११ आने अथवा उससे भी कम हो जावेगा तो पेट्रोलके साथ विशुद्ध अलकोहलका समिश्रण करना व्यर्थ होगा।

इन सब कठिनाइयों को देखते हुये लेखककी सम्मतिमें देशमें विशाल मात्रामें निर्माणित चीनीके शीरेका उत्तम प्रयोग उसको रेक्टीफायड स्पिरिटमें परिणित कर देनेका है और उसीको मोटरमें पेट्रोलके स्थान पर प्रयोग किया जावे। इसके उपयोगमें मोटरके इंजनके कुछ भागोंमें थोड़ा परिवर्तन करना पड़ेगा जो कि सरलतासे किसी भी विशेषज्ञ द्वारा सम्पादित किया जा सकता है अथवा वह भाग विशेष नूतन रूपसे निर्माण किया जाकर कार्यालयसे मंगाया जा सकता है। उपरोक्त स्पिरिटको मदिराकी भांति न प्रयोग किया जा सके इस दृष्टिसे उसमें २ प्रतिशत अशुद्ध रेंडीका तेल मिलाया जा सकता है। इस मिश्रणसे इंजनको भी लाभ होगा। कारण यह है कि रेंड़ीका तेल अत्यन्त चिकना पदार्थ है और जितने भी चिकने तैल इंजनोंमें प्रयोग किये जाते हैं उनमें रेंड़ीके तेलका अधिक भाग होता है। निस्सन्देह नीच जातिके लोगोंको २ प्रतिशत रेंड़ीके तेलका मिश्रण स्पिरिटको मदिराकी भांति प्रयोग करनेमें कोई बाधक न सिद्ध होगा जो कि अपने स्वास्थ्यका ध्यान न रख कर किसी भी विषैले मादक पदार्थका सेवन करनेको प्रस्तुत रहते हैं। किन्तु देशके हितके लिये एवं उसकी आर्थिक अवस्थाको सुधारनेके लिये यह आवश्यक है कि सरकार उन लोगोंका ध्यान छोड़ दे जो स्वयं अपने जीवनको नष्ट करनेके लिये तुले हुये हैं। मोटरमें रेक्टीफायड स्पिरिटके व्यवहार करनेमें जाड़ेकी ऋतुमें प्रारंभिक कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी जब कि तापक्रम ६०° फ से नीचे हो जाता है, किन्तु यह असुविधा सरलतासे दूर की जा सकती है। मोटरके इंजनको संचालित करते समय थोड़े पेट्रोलका प्रयोग किया जा सकता है और शेष गति रेक्टीफायड स्पिरिट द्वारा प्राप्त हो सकता है। एक बार जब इंजन गर्म हो जाता है और अपना कार्य आरम्भ कर देता है तो फिर किसी प्रकारकी कठिनाई नहीं उत्पन्न होती और फिर मोटर स्पिरिटसे उसी प्रकार सफलतापूर्वक चलाई जा सकती है जिस प्रकार पेट्रोलसे। रेक्टीफायड स्पिरिट का प्रयोग, जिसका मूल्य (चुंगीके अतिरिक्त) चार आने प्रति गैलन है अत्यन्त सस्ता होगा। संयुक्त प्रान्तमें मोटरके लिये इससे सस्ता ईंधन मिलना असम्भव है और न तो पेट्रोलकी कम्पनियाँ ही इसके साथ प्रतियोगिता कर सकती हैं। लेखक ने विभिन्न अवस्थाओंमें इंजनों पर सब प्रकारके ईंधनोंका प्रयोग किया है; रेक्टीफायड, स्पिरिट, विशुद्ध अलकोहल, मेथलेटेड स्पिरिटका प्रयोग मोटरके संचालन पर किया गया हैं

[शेष पृष्ठ ६६ पर]

फलोंकी खेती पर कुछ टिप्पणियाँ

[ले०—श्री सरदार लाल सिंह, एम० एस-सी० (कैलिफोर्निया), फल-विशेषज्ञ, लायलपूर, पंजाब]

पौधोंको आजकल अनेक प्रकारकी बीमारियाँ लगने लगी हैं और फलके पौधे बेचने वालों पर बीमार पौधे न बेचनेके लिये किसी प्रकारका सरकारी बन्धन नहीं है। अतः अपने बागके पौधोंमें बीमारियाँ न लगने देनेके लिये पौधों पर रोपाईसे पहले ही चूने व गंधकके मिश्रणसे छिड़काव कर देना चाहिए। इस मिश्रणको निर्माण करनेकी सरल विधि है :—

६ पौंड महीन पिसे हुए गंधकको चार गैलन उबलते हुए पानीमें डाल दिया जाता है और उसमें ३ पौंड कच्चा चूना डाल दिया जाता है। तत्पश्चात् उसको प्रायः ४५ मिनट तक खूब उबालते हैं एवं भली भांति मिलाते भी जाते हैं। इस मिश्रणको एक मोटे कपड़ेसे छान लिया जाता है और उसमें कुछ और जल मिलाकर १५ गैलन घोल तैयार कर लिया जाता है।

इन विभिन्न बीमारियोंसे पौधोंको बचानेके लिये दूसरा उपाय यह है कि पौधोंको रोपनेसे पहले ही टूटी हुई जड़ें अथवा लंबी जड़ोंको छांट दिया जाय।

पौधे जितनी गहराई पर लगे थे उतनी ही गहराई अथवा एक दो इंच अधिक गहराई पर लगाते जाना चाहिये। गर्म प्रदेशोंमें लूसे बचानेके लिये पौधोंको दक्षिण-पश्चिमकी ओर कुछ झुकते हुए रखना अच्छा होता है। किन्तु जिन स्थानों पर तीव्र वायुका आवागमन होता है वहाँ पर जिस ओर वायुका दबाव है उसी ओर वृक्ष लगाना उचित है। आँधी चलनेकी ऋतुमें जिन पौधोंकी जड़ें ढीली पड़ गई हों उनको सीधा कर लेना चाहिये और उसके आस पासकी मिट्टीको भली प्रकार दबाना चाहिये जिससे जड़ोंके बीचमें वायु संकलित न हो। ऐसी प्रतिकूल परिस्थितिमें इन सावधानियोंसे अनेकों पौधे नष्ट होनेसे बच जाते हैं।

पौधोंके तनोंके गिर्दसे जल एकत्रित नहीं होना चाहिये। ऐसा करनेके लिये पौधोंके आस-पासकी भूमि थोड़ी ऊँची रखनी चाहिये और पौधोंको लगानेके पश्चात् शीघ्र ही सिंचाई कर देना उपयुक्त है।

पौधोंको लगानेका समय :—

आड़ू, आलू बुखारा व अंगूर जैसे पौधोंको लगानेका समय जनवरी और मार्च मासके बीचका है। आम, माल्टा आदि वृक्ष जो हमेशा हरे-भरे रहते हैं इन महीनोंके अतिरिक्त वर्षा ऋतुमें यानी जूलाईसे सितम्बर मास तक में भी लगाये जा सकते हैं।

केवल कुछ हल्की भूमिको छोड़ कर शेष प्रकारकी भूमिमें वृक्षोंकी रोपाईके समय किसी विशेष खादके देनेकी आवश्यकता नहीं होती। खादको कभी भी गड्ढेमें एक दम नहीं भर देना चाहिये। केवल अच्छे प्रकारकी खाद काममें लाना चाहिये और उसे सतहकी मिट्टीमें भली भांति मिला देना चाहिये। यदि किसी स्थान पर नदीसे लाई हुई मिट्टी प्राप्त हो सके तो उसके साथ खादका मिश्रण किया जा सकता है; यह विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है।

यदि पौधे बेचने वाले ने पौधेकी काट-छाँट न की हो तो रोपनेके पश्चात् उसको छाँटना आवश्यक है। उस प्रकारकी छाँटसे पौधेको उखाड़ते समय जड़ोंके टूट जानेके कारण जो क्षति होती है उसकी पूर्ति हो जाती है। यही नहीं; इस प्रकारकी काट-छाँटसे पौधेको अपनी रुचिके अनुसार आकार प्रदान किया जा सकता है। छाँटनेके पश्चात् वृक्षोंका तीव्र वेगसे बढ़ना आरम्भ हो जाता है और तनेके पिंड पर अनेक अंकुर निकल पड़ते हैं। उन अंकुरोंको चिमटियोंसे तोड़ कर केवल चार-पाँच अंकुर रहने देना चाहिये जो कि वृक्षमें सुडौलता प्रदान करनेमें सहायक हों। इस प्रकार वृक्ष नाटे आकारका, विस्तारयुक्त, सुन्दर आकृति का होगा।

फलोंकी सफलतापूर्वक खेती सम्पन्न करनेका अन्तिम उपाय यह है कि वृक्षके छोटे-छोटे पौधोंको सूर्यकी धूपसे जलनेसे बचाया जाय। उनको बचानेका उपाय यह है कि वृक्षके तनोंके निचले भागोंको सफेद चूनेसे पोत दिया जावे। ऐसे चूनेका घोल निर्माण करनेकी सरल विधि निम्न प्रकार है :—

अच्छे प्रकारका बुझाया हुआ कच्चा चूना २० सेर लेकर तीन कनस्टर गरम पानीमें मिलाना चाहिये और बादमें उसमें ठंडा पानी मिला कर पतला घोल तैयार कर

लेना चाहिये जिससे वह सरलतापूर्वक पौधोंके जड़ोंके ऊपर पोता जा सके। इस विधि द्वारा वृक्षोंके जलनेका भय जाता रहता है।

उपर्युक्त बातोंको ध्यानमें रख कर यदि फलोंकी खेता की जावे तो पौधोंमें किसी प्रकारकी बीमारी लगनेका भय नहीं होता और पौधे सुन्दर, संगठित होते हैं।

भारतमें चरागाहोंकी उन्नति

[शेष पृष्ठ ८३ का]

उत्पन्न की जाती है, केवल १०-१२ चौपाये प्रति एकड़ प्रति सप्ताह यथेष्ट समझे जाते हैं। वहाँ पर इस प्रकार छोटे भूमिके टुकड़े बनाये जाते हैं जिसमें उत्पन्न की हुई घास यथा-समयमें पशुओं द्वारा भली भांति चर डाली जाय। भारतवर्षके एक गाँवमें यदि सौ पशु हैं तो १०-१० एकड़के ५ चरागाहोंकी आवश्यकता होगी जिसमें क्रमशः वर्षके विभिन्न समयोंमें ३ से ६-६ दिन पर चरा जा सकेगा। घासकी ऊँचाई चरनेके समय ६ इंचसे कम न होनी चाहिये और इसके पहले कि पशु दूसरे भागमें चरनेके लिये भेजे जावें सब घासका समाप्त हो जाना आवश्यक है। फिर उस समय तक इस भागमें चरने न दिया जावे जब तक उस भागकी पुनः बारी न आवे।

सारांश यह है कि हमें चरागाहों पर विस्तार पूर्वक अनुसन्धान करनेकी यथेष्ट सामग्री प्राप्त है जिसके द्वारा उनकी बहुत उन्नति की जा सकती है। साथ ही साथ पशुओंमें भी उन्नति कर हम उनसे अच्छा दूध जनताके लिये प्राप्त कर सकते हैं। समस्त भोजन सामग्रीमें दूध मनुष्यके लिये सर्वोच्च है जो कि मनुष्यका स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये बहुत काफी है। अतः चरागाहोंकी उन्नतिका तात्पर्य है जनताकी शारीरिक उन्नति।

पावर अलकोहल

[शेष पृष्ठ ६४ का]

जिसके परिणाम स्वरूप यह ज्ञात हुआ है कि रेक्टीफायड स्पिरिट किसी भी दशामें शक्ति प्रदान करनेमें कम नहीं है। फिर इस लड़ाईके जमानेमें जब पेट्रोलका मिलना असम्भव हो गया है अलकोहलके साथ उपर्युक्त मात्रामें उसके सम्मिश्रणका प्रश्न ही नहीं है। अतः रेक्टीफायड स्पिरिटका प्रयोग करने पर पेट्रोलकी आवश्यकता अत्यन्त सीमित हो जाती है, और उसके साथ ही हमारे नित्यके कार्यक्रममें पेट्रोल न मिलनेसे कोई बाधा भी नहीं उपस्थित होती। ऐसी दशामें सरकारका कर्तव्य है कि वह शीरेसे रेक्टीफायड स्पिरिटके निर्माणमें सहयोग प्रदान करे और उसका मोटरके संचालनमें विशाल मात्रामें प्रयोग करावे।

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक—डाक्टर जी० घोष, डा० गोरख प्रसाद आदि]

आहार—नीचेकी कुछ टिप्पणियाँ डाक्टर त्रिलोकी-नाथ वर्मा कृत 'हमारे शरीरकी रचना' से संकलित की गयी हैं।

भोजनकी कुछ और चीजें—मसाले, चाय, क़हवा, कोको इनमेंसे कोई चीज़ भी जीवनके लिए आवश्यक नहीं है; न इनसे सेलोंकी वृद्धि होती है और न शक्ति उत्पन्न होती है। मसालोंसे भोजन स्वादिष्ट और रोचक बन जाता है; स्वादिष्ट भोजन अस्वादिष्ट भोजनकी अपेक्षा भले प्रकार और शीघ्र पचता है। अधिक मसाला अजीर्ण पैदा करके स्वास्थ्यको बिगाड़ता है।

भारतवर्षमें चायका रिवाज प्रतिदिन बढ़ता जाता है। अच्छी बनी हुई चाय एक प्रकारका उत्तेजक है। थकावटके बाद चाय पीनेसे थकावट कम हो जाती है। बिना आव-श्यकता उत्तेजक वस्तुओंका सेवन अच्छा नहीं। चायको पानीमें पकाना नहीं चाहिए; ऐसा करनेसे चायके हानिकारक अवयव पानीमें घुल जाते हैं। उबलते हुए जलमें चायको तीन-चार मिनट भिगोकर छान लेना चाहिए; इस थोड़ेसे समयमें इसके उत्तेजक अवयव तो पानीमें घुल जाते हैं, परन्तु हानिकारक अवयव बहुत कम घुल पाते हैं। ४ मिनटसे ज़्यादा भिगोनेसे चाय कड़ुवी हो जाती है और अजीर्ण पैदा करती है।

चाय, क़हवा और कोको आमाशयिक रसकी क्रियाको मंद करते हैं; इसलिए भोजनके साथ उनको न पीना चाहिए। दुग्ध मिलानेसे यह दोष कम हो जाता है। अधिक क़हवा पीनेसे अनिद्रा, सिरदर्द, हृदयकंप इत्यादि रोग हो जाते हैं।

गधीका दूध—गर्ध का दुग्ध स्त्रीके दुग्धसे बहुत-कुछ मिलता है। उसमें स्त्रीके दुग्धसे वसा कम होती है। जब शिशुको माताका दुग्ध अनुकूल न पड़े या यकृत रोगके कारण उसको कम वसा देना उचित समझा जाय तो उसको गधीका दुग्ध पिलाना अच्छा है। घोड़ीके दुग्धमें वसा और भी कम होती है।

मानसिक परिश्रम—पढ़ने-लिखनेवालोंको दुग्ध, दही, मलाई, उपराई (क्रीम), घृत इत्यादिका अधिक सेवन करना चाहिए; अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवालोंको चावल और शर्करा जैसी चीज़ोंका। जितनी शक्ति १ माशा वसा (घृत) से प्राप्त होती है उतनी २·२५ माशा कारबोहाइड्रेटसे मिलेगी; इससे विदित है कि शक्तिका एक नियत परिमाण प्राप्त करनेके लिए वसाकी अपेक्षा कारबोहाइड्रेटकी अधिक मात्रा खानी पड़ेगी और आमाशय (पेट) पर अधिक भार पड़ेगा। इसी लिए दिमाग़ी मेहनत करनेवालोंको अधिक कारबोहाइड्रेट खाकर अपना पेट भारी न कर लेना चाहिए; कुछ कारबोहाइड्रेटकी जगह घृत, मलाई, उपराई, बादाम इत्यादि खा सकते हैं।

भोजन पकानेके लाभ—१—पकानेसे भोजन स्वादिष्ट हो जाता है और आसानीसे चब और पच सकता है।

२—उष्णताके प्रभावसे रोगउत्पादक कीटाणु (बैक्टीरिया) मर जाते हैं; पके हुए भोजनमें हैज़ा, पेचिश इत्यादि रोगोंके बैक्टीरियाके रहनेकी कम संभावना होती है।

३—श्वेतसार (स्टार्च) के दानेमें काष्ठोजकी कई तहें होती हैं; श्वेतसारके कण काष्ठोजके इन खोलों (आवेष्टनों) से ढके रहते हैं। काष्ठोज पर हमारे पाचक रसोंका कोई असर नहीं होता। इसलिए कच्चा श्वेतसार हम अच्छी तरहसे नहीं पचा सकते। पकानेसे काष्ठोजके खोल फट जाते हैं और श्वेतसार उनके बाहर आ जाता है और पाचक रस उससे भले प्रकार मिल कर उसको ख़ूब पचा सकते हैं।

दुग्ध उबाल कर पीना चाहिए या ताज़ा बिना उबाला हुआ? उत्तर यह है कि ताज़ा दुग्ध उबाले हुए की अपेक्षा कुछ जल्द पचता है। यदि स्वस्थ गायका दुग्ध पवित्र स्थानमें स्वस्थ मनुष्य विधिपूर्वक शुद्ध किये हुए हाथोंसे शुद्ध बरतनमें निकाले तब ऐसा दुग्ध बिना उबाले पीनेमें कोई हानि नहीं, परन्तु जैसा दुग्ध आजकल मिलता है उसको बिना उबाले कदापि न पीना चाहिए। उसमें अनेक प्रकारके रोगोंके कीटाणु रहते हैं; ये एक उबाल देने से मर जाते हैं। दुग्धको बहुत देर तक नहीं पकाना चाहिए; ऐसा करनेसे वह देरमें पचता है और उसके कुछ अन्य गुण भी दूर हो जाते हैं।

१५८° फारनहाइट्के तापसे आध घण्टेसे बहुत-से बैक्टीरिया मर जाते हैं। दुग्ध खुले बरतनमें कभी न रखना चाहिए; खुला रखनेसे उसमें धूल-मिट्टी पड़ने और हवासे दूषित गैसोंके आ जानेकी संभावना रहती है।

पकानेकी विधिसे भी भोजन उत्तम या निकृष्ट बनाया जा सकता है। शाकको अधिक देर कड़ाईमें भूननेसे उसका विटैमिन कम हो जाता है। दूधको देर तक कड़ाईमें औटाने से उसके विटैमिनोंका सत्यानाश हो जाता है। चावलको बहुत देर तक पानीमें भिगो दीजिये और इस पानीको फेंक दीजिये और फिर उबाल कर मांड फेंक दीजिये; उसकी आधी शक्ति जाती रहेगी। बजाय ताज़ा फल खानेके डिब्बाबंद किये हुए फल खाइये और आपको घाटा ही रहेगा।

जिस जलमें साग-तरकारी उबाली जाय उस जलको फेंकना न चाहिए; रसदार (जूसवाली) तरकारियाँ बना लेनी चाहिये। तरकारियोंको कड़ाईमें भून कर लाल कर देना ऐसा है जैसा कोयला खा लिया। चावलका माँड़ न फेंकना चाहिये। चावल पकानेकी उत्तम विधि यह है कि चावल पक भी जावे और माँड़ भी न निकालना पड़े।

मांस—डा० त्रिलोकीनाथ वर्मा ने लिखा है—हमारी रायमें मांस खाना अच्छा नहीं है। शीतप्रधान देशोंमें भी मांस खानेकी आवश्यकता नहीं है। लेखक यूरोपमें लगभग २० मास रहा; ८-६ घण्टे रोज़ मानसिक परिश्रम करते हुए भी उसे कभी मांस खानेकी आवश्यकता नहीं हुई;

बिना मांस और मदिरा पिये बरफ़ और ओलोंकी सरदी सहनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई। यूरोपमें भी हज़ारों मनुष्य बिना मांस खाये रहते हैं।

भोजनोंके कुछ नमूने

गुरुकुल कांगड़ीके विद्यार्थियोंका भोजन (१९३६)

भोजन (२४ घण्टेमें)

आटा	८ छटाँक
चावल	१ "
दाल	२ "
घृत	$\frac{3}{4}$ "
दुग्ध	१४ "
शर्करा	१ "
शाक प्रतिदिन	

मूल अवयव—

प्रोटीन	११७ माशे
वसा	७४ माशे
कर्बोज (कारबोहाइड्रेट)	४८८ माशे

उष्णांक (कैलोरियाँ)—३०८६।

यह भोजन १८ से २५ वर्षकी आयुके विद्यार्थियोंको जिनका भार $1\frac{1}{2}$ मनके लगभग है दिया जाता है। प्रोटीन और कारबोहाइड्रेट कुछ अधिक मात्रामें हैं, वसा कुछ कम है। हमारी सम्मतिमें यदि घृत $\frac{3}{4}$ छटाँक की जगह $1\frac{1}{2}$ छटाँक, दाल २ छटाँककी जगह १ छटाँक और आटा और चावल ९ छटाँककी जगह ८ छटाँक दिये जावें तो भोजन उत्तम श्रेणीका हो जायगा; प्रतिदिन पत्ते वाले शाक (पालक, बथुआ, करम साग, करमकल्ला, चौलाईका साग) और आलू, गाजर, टमाटर इत्यादि मौसमके अनुसार दिन भरमें ३-४ छटाँकके लगभग मिलना चाहिए।

मांस-सहित भोजनका नमूना

भोजन २४ घण्टेमें

आटा	६ छटाँक
चावल घरका कुटा	३ "
बकरेका गोश्त	१ "
दूध	१० "
तैल	$\frac{1}{2}$ "
घी	$\frac{3}{4}$ "
तरकारियाँ (आलू)	४ "
करमकल्ला	४ "
आम	२ "
दाल	$\frac{1}{2}$ "

मूल अवयव—

प्रोटीन	१०५·५०
वसा	९६·४२
कर्बोज (कारबोहाइड्रेट)	४८४·२

उष्णांक (कैलोरियाँ)—३२२१, या १०% कम करके = २८९९।

यह भोजन उत्तम श्रेणीका है; पंजाबकी फ़ौजी क़ौमों का भोजन इसी प्रकारका होता है।

क़ैदियों का भोजन

चोकर सहित गेहूँका आटा	८ छटाँक
" चनेका आटा	४ "
भुना हुआ चना	२ "
दाल	१ "
तरकारी, साग	४ "
तैल	२ माशा
मिर्च, मसाला, अमचुर, नींबू, रोज़ थोड़ा-थोड़ा	

मूल अवयव—

प्रोटीन	१४२
वसा	२५
कर्बोज	५३६
विटैमिन काफी	

उष्णांक (कैलोरियाँ)—३५२२ या १०% कम करके = ३१७०।

जब चावल दिया जाता है तो आटा कम कर दिया जाता है। यह कड़ी मेहनत करने वालोंके लिये अच्छा भोजन है। इस भोजन पर क़ैदी ख़ूब पनपते हैं और साधारणतः जेलमें पत्ते वाले साग, जैसे पालक, चौराई, करमका साग इत्यदि खूब मिलते हैं; नींबू, पटुआ और अमचुर भी हर एकको मिलता है, और आटा चोकर

सहित होता है, इस कारण खाद्योजकी कमी नहीं रहती। यदि बहुतसे व्यक्तियोंके लिये ऐसे भोजनका प्रबन्ध किया जाय तो ४) मासिकके लगभग प्रतिव्यक्ति व्यय पड़ेगा।

अम्लोत्पादक और क्षारोत्पादक खाद्य पदार्थ—जितने मौलिक हमारे शरीरमें पाये जाते हैं उनमेंसे कुछ अम्लोत्पादक हैं और कुछ क्षारोत्पादक हैं। प्रधान अम्लोत्पादक मौलिक ये हैं:—फासफोरस, गंधक और क्लोरीन। प्रधान क्षारोत्पादक मौलिक ये हैं:—कैलसियम, पोटैसियम, सोडियम, लोहा और मैगनीसियम। जब दोनों प्रकारके मौलिक उपयुक्त परिमाणमें रहते हैं तो रक्त, तंतुरसों तथा तंतुओंकी प्रतिक्रिया ठीक रहती है, अर्थात् न अधिक क्षारीय, न अधिक अम्ल। जब एक ही प्रकारके भोजन खाते रहनेसे प्रतिक्रिया ठीक नहीं रहती—अधिक क्षारीय या अधिक अम्ल हो जाती है—तब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। दूधको छोड़ कर कोई खाद्य ऐसा नहीं है जिसमें सब मौलिक सम परिमाणमें हों; दूधमें भी लोहा उतना नहीं होता जितना कि शरीरको चाहिये।

कुछ खाद्य पदार्थोंमें अम्लोत्पादक मौलिक अधिक होते हैं और क्षारोत्पादक कम। ये अम्लोत्पादक खाद्य पदार्थ हैं; जैसे, मांस, अंडे, दालें, शुष्क फलोंकी गरियाँ, अखरोट इत्यादि, भाँति-भाँतिके अनाज जैसे, गेहूँ, चावल, ज्वार बाजरा, रगी, मक्का, जौ।

कुछ खाद्य पदार्थोंमें क्षारोत्पादक मौलिक अधिक होते हैं, और अम्लोत्पादक कम। ये क्षारोत्पादक खाद्य पदार्थ कहलाते हैं। जैसे—हरे पत्ते वाले साग, करमकल्ला, पालक फूलगोभी, करम (साग); कंद जैसे—आलू, शकरकंद, मूली; फल जैसे—नारंगी, सेब, केला।

रक्त और शरीरमें तंतुओंकी क्रिया ठीक रखनेके लिये यह आवश्यक है कि मिला-जुला भोजन किया जाय; अनाज, मांस, दालके साथ हरे पत्ते वाले साग, आलू और फलोंका प्रयोग होना चाहिये।

दूध न क्षारोत्पादक है न अम्लोत्पादक।

विभिन्न प्रोटीनोंका मूल्य—पहले दी गई सारिणियोंमें आहार पदार्थके प्रोटीनोंकी मात्राएँ दी गई हैं। परन्तु पचने और स्वास्थ्य वृद्धिकी दृष्टिसे सब प्रोटीनें एक समान नहीं होतीं। जो प्रोटीनें वनस्पतिवर्गसे प्राप्त होती हैं वे साधारणतः उत्तम श्रेणीकी नहीं होतीं। शरीर उनसे अपनी प्रोटीनें असानीसे नहीं बना सकता। प्राणिवर्गसे प्राप्त होने वाली (दूध, मांस, अंडा आदिसे) मिली प्रोटीनें शरीरकी प्रोटीनोंसे मिलती-जुलती होती हैं, इस कारण शरीर उनसे अपनी प्रोटीनें असानीसे बना सकता है।

यथा परिमाणमें अच्छी प्रोटीन प्राप्त न होनेसे शरीरका वर्द्धन अच्छा नहीं होता, बालक कमज़ोर रहता है, उसकी पेशियाँ कमज़ोर रहती हैं। प्रोटीनकी कमीसे शक्तिहीनता उत्पन्न होती है, शहनशीलता कम होती है, मनुष्य बहुत देर तक काम नहीं कर सकता और बुढ़ापा जल्दी आता है, रोगोंका मुकाबला करनेकी शक्ति कम हो जाती है विशेषकर क्षय, पेचिश, मलेरिया हैज़ा इत्यादि रोगोंका।

बढ़िया प्रोटीनें इन चीज़ोंमें पाई जाती हैं—दूध, दही, मट्ठा, पनीर, अंडा, मांस, मछली, हरे पत्ते वाले साग जैसे—पालक, लेटिस (lettuce), या करमकल्ला, पूर्ण गेहूँका आटा।

जौ, रगी, बाजरा, चावल, ओटमील, मटर, सेम, लोबिया, आलू, इत्यादिकी प्रोटीनें मामूली किस्मकी हैं।

मैदा और मक्काकी प्रोटीनें निकृष्ट हैं।

डाक्टर ऐकरायड ने अपनी खोजोंसे आहार पदार्थोंके प्रोटीनोंका मूल्य संख्याओंमें आँका है। ये संख्याएँ नीचे दी गई हैं। इन संख्याओंसे विभिन्न प्रोटीनोंका स्वास्थ्य-वर्द्धक मूल्य बहुत सूक्ष्म रीतिसे पता चलता है।

अंडा	९४	तिल	६७
अरहर	७४	दूध (गाय)	८५
अलसी	७८	बाजरा	८३
आलू	६७	बैंगन	७१
उरद	६४	भिंडी	८२
कंगनी	७७	भुट्टा (नरम)	६०
करमकल्ला	७६	मसूर	४१
कलेजी	७७	मांस	९८
काजू	७५	मूँग	५१
गरी	५८	मूँगफली (कच्ची)	५८
गेहूँका आटा	६६	मूँगफली (भुनी)	५६
चना	७६	लोबिया	६१

चावल (बिना पकाया)	८०	शकरकन्द	७२
चौराई (साग)	७२	सैजन (पत्ती)	४१
जौ	७१	सोयाबीन	५४
ज्वार	८३		

जो लोग मांसाहारी नहीं हैं उनको चाहिये कि वे प्रतिदिन दूध, दही पनीरका प्रयोग करें; जिनको अंडा खानेसे परहेज़ नहीं है वे प्राणिवर्गीय प्रोटीन अंडेसे प्राप्त कर सकते हैं। आहारमें कम-से-कम एक तिहाई प्रोटीन प्राणिवर्गीय होनी चाहिये, शेष वनस्पतिवर्गीय रह सकती है।

जो प्रोटीन वनस्पतिवर्गसे प्राप्तकी जाय उसको बजाय एक ही खाद्य-पदार्थके कई खाद्य-पदार्थोंसे प्राप्त करना चाहिये।

जहाँ तक हो सके कम-से-कम आधी वसा प्राणिवर्गीय हो। प्राणिवर्गीय वसामें विटैमिन होते हैं जो वनस्पति-वर्गीय वसा (तेल) में कम या नहीं रहते; वे अधिक अच्छी तरह पचते भी हैं।

काष्ठोज—तरकारी, अनाज आदिके रेशेकी तरह पदार्थ को काष्ठोज कहते हैं। भोजनमें काष्ठोजकी मात्रा भी ठीक रहनी चाहिये। काष्ठोज मनुष्य-शरीरमें पचता नहीं, उसका अधिक भाग विष्ठा-द्वारा बाहर निकल जाता है। परन्तु बिना काष्ठोजके आंतोंमें उचित गति नहीं उत्पन्न होती और ऐसा भोजन जिसमें काष्ठोज कम होता है कोष्ठबद्धता (कब्ज़) उत्पन्न कर देता है। तब आंतोंमें मलके सड़नेसे अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न हो जाते हैं। काष्ठोज विशेष कर हरे पत्ते वाले साग, बिना चोकर निकाला आटा, फलोंके गूदे इत्यादि वस्तुओंमें पाया जाता है। (यहाँ तक की टिप्पणियाँ त्रिलोकीनाथके पुस्तकके आधार पर हैं।)

पचनशीलता—आहारमें प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइ-ड्रेट आदिकी मात्रा पर ही ध्यान देनेसे काम नहीं चलता। यह भी देखना चाहिये कि भोजन सुपच है या नहीं। क्षीण पाचन-शक्ति वालोंको इस पर ध्यान देनेकी आवश्यकता विशेष रूपसे है। एक ही मात्रामें प्रोटीन आदि वाले दो आहारोंमें-से एक दूसरेकी अपेक्षा कहीं अधिक सुपच हो सकता है। कड़ा मांस या रूढ़ तरकारियाँ, नरम मांस या कोमल तरकारियोंकी अपेक्षा अवश्य ही बहुत देरमें पचती है।

सबसे अधिक सुपच आहार दूध है। कम उबाले हुये अंडे भी शीघ्र पचते हैं। ये पदार्थ घण्टे, सवा घण्टेमें पच जाते हैं। मछली आलू, टोस्ट दो-तीन घंटेमें पचते हैं। नरम मांस, गोभी, रोटी आदि तीन-चार घंटेमें पचते हैं। शूकर मांस, छेना, मूल (गाजर, मूली, चुकन्दर आदि) दाल, मटर इत्यादिके पचनेमें लगभग ४ घंटा लगता है।

कुछ आहारोंका प्रायः कुल अंश पच कर शरीरमें मिल जाता है। अन्य आहारोंका बहुत-सा अंश शरीरमें कभी मिल नहीं पाता। उदाहरणतः मांसके प्रायः सब प्रोटीनोंको शरीर अपना लेता है (शोषण कर लेता है), और मसूरकी दालका आधेसे अधिक प्रोटीन शरीरके बाहर निकल जाता है। इसीलिये निरामिष भोजियोंको उतना ही पोषण पानेके लिये अधिक आहार ग्रहण करना पड़ता है।

तेल या घीमें तली तरकारियाँ, पूड़ी, हलुआ आदि वस्तुएँ देरमें पचती हैं और बहुधा पाचन-शक्तिको क्षीण कर देती हैं। चीनी यों तो शक्ति-वर्द्धक है, परन्तु अधिक चीनी (या गुड़) खानेसे भी पाचनशक्ति बिगड़ जाती है। युवा व्यक्तिको दिन भरमें डेढ़ छटाँकसे अधिक चीनी नहीं खानी चाहिये, चाहे यह चीनी शुद्ध चीनीके रूपमें रहे, चाहे मिठाई, चाय, दूध आदिमें पड़ी रहे।

नमक—कुछ नमकका खाना भी आवश्यक है। आमिषभोजियोंकी अपेक्षा निरामिषभोजियोंको कुछ अधिक नमककी आवश्यकता पड़ती है। बहुत अधिक नमक खाना बुरा है, इसमें वृक्कों (गुरदों) और रक्तवाहिनियोंको हानि पहुँचती है।

जल—बिना जलके शरीरका काम नहीं चल सकता। जल ही आहारके अवयवोंको शरीरके विविध भागों तक पहुँचाता है, और जल ही शरीरके विभिन्न भागोंसे दूषित पदार्थोंको बहा ले जाता है। गरमीके दिनोंमें सभी पानी काफी पीते हैं, परन्तु जाड़ेमें भी काफी पानी पीना आव-श्यक है। चौबीस घंटेमें लगभग तीन सेर पानी अवश्य पीना चाहिये। चाय पी जाय तो उसी हिसाबसे सादा पानी कम पिया जा सकता है।

जब प्यास लगे तो पानी पीना चाहिये। परन्तु भोजनके तुरन्त पहले, या भोजनके साथ, या भोजनके तुरन्त बाद अधिक जल पीनेसे पाचनशक्ति क्षीण हो जाती है।

साधारण व्यक्ति बिना आहार ग्रहण किये तीस-चालीस दिन तक जीवित रह सकता है। परन्तु बिना जलके वह तीन-चार दिनसे अधिक जीवित नहीं रह सकता।

कुछ महत्वपूर्ण बातें—भोजन चाहे अच्छा-से-अच्छा ही क्यों न हो, यदि वह न पचेगा तो व्यर्थ है। इसलिये पाचनसम्बन्धी नियमों पर भी ध्यान देना आवश्यक है।

भोजन धीरे-धीरे चबा-चबा कर, शान्तिसे खाना चाहिये। बिना चबाये भोजन निगल जाना बड़ी भूल है। चबानेसे भोजनमें लार मिल जाता है और इसी लारसे स्टार्च पचता है। फिर, यदि आहार अच्छी तरह चबाया न रहेगा तो बेचारा आमाशय उस मोटे, दरदरे, आहार-पिंडोंको कैसे ठीकसे चबा पायेगा।

भोजनके समय शोर-गुल बुरा है। क्रोध, चिन्ता आदिसे भी पाचनशक्ति बिगड़ जाती है। सभी जानते हैं कि क्रोधमें चेहरा लाल हो जाता है, हाथ काँपने लगता है। इसी प्रकार आमाशय और आँतों पर भी क्रोधका बहुत प्रभाव पड़ता है, यद्यपि हम इन अवयवोंको देख नहीं सकते।

एक बार उतना ही खाना चाहिये जितना सुगमता से पच सके। पाचन क्रिया शरीरके भीतर विविध रसोंसे परिपूर्ण होती है। अधिक भोजन खा लेनेसे इन रसोंकी मात्रा भोजनके पचानेके लिये पर्याप्त नहीं होती। इसीसे वमन होता है या अधकचरा दस्त; और इस प्रकार बिना पचा भोजन शरीरसे बाहर निकल जाता है।

भोजन बँधे समयों पर करना चाहिये। बीचमें कुछ भी नहीं खाना चाहिये। एक बार भोजन करनेके बाद कम-से-कम चार घंटा बीत जाने पर दूसरी बार भोजन करना चाहिये। पाँच, साढ़े पाँच घंटे पर भोजन किया जाय तो और अच्छा। शहर वाले धनी लोग अकसर आवश्यकतासे अधिक बार खाते हैं और इसलिये पूर्णतया स्वस्थ नहीं रहते।

भोजन यथासम्भव सादा हो। घी और तेलमें तला या खूब मसालेदार भोजन उचित नहीं। भोजन करनेके बाद डेढ़ घंटे तक थोड़ा ही पानी पीना चाहिये।

तीस-पैंतीस वर्षके बाद आहारकी मात्रा कुछ कम कर देनी चाहिए। पैंतालीसके बाद आहारकी मात्रा और भी घटा देनी चाहिए। स्वादिष्ट भोजनकी लालचमें स्वास्थ्य खो बैठना निरी मूर्खता है। साठ वर्षकी आयुमें आहारकी आवश्यकता दस-बारह वर्षके बच्चेके आधेसे भी कम हो जाती है।

रोगियोंके लिए उचित आहारका वर्णन 'पथ्य' शीर्षकके नीचे मिलेगा।

इंद्रीजुलाब—शब्द-सागरके अनुसार यह शब्द संस्कृत इंद्रिय और फ़ारसी जुलाबके संयोगसे बना है और अर्थ है वह औषध (diuretic) जिससे पेशाब अधिक आता है। देखो 'मूत्रल'।

इनजेक्शन (injection), **सूची-भेदन अथवा सुई लगाना**—चिकित्सामें सुई लगानेकी प्रथा दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है। अधिकांश रोगोंमें किसी-न-किसी प्रकारकी सुई लगाई जाती है। सुई लगानेका आशय यह है कि उपयुक्त औषधि पिचकारी-द्वारा शरीरके विशेष अंगमें प्रविष्ट करा दी जाती है। डायाबिटिज़के एक रोगीको प्रति दिन सुई लगवानी पड़ती थी। इसलिए उसने अपने नौकरको यह काम सिखला दिया था। संभव है और लोग भी जानना चाहें कि सुई कैसे लगती है। इसीसे नीचे यह बात व्योरेवार बताई गई है।

सुईसे देनेके लिये औषधियाँ—सुई देनेकी औषधियाँ विशेष क्रियाओं द्वारा बनाई जाती हैं। यह आवश्यक है कि औषधि तरल रूपमें हो जिससे पिचकारीमें वह खींची जा सके। कुछ औषधियाँ घुलनशील टिकियोंके रूपमें आती हैं जो सुई लगाते समय स्रवित (डिस्टिल्ड) पानीमें घोल ली जाती हैं। कुछ औषधियाँ घुलनशील नहीं होती हैं। ये गाढ़े तैल पदार्थोंमें घोंट दी जाती हैं। सिरम (कीटाणुनाशक रक्तरस) और वैक्सिन (मरे कीटाणुओंका घोल) तो तरल रूपमें ही होते हैं।

सुई द्वारा प्रवेश हुई औषधियाँ कई प्रकारसे शरीरमें

अपनी क्रिया करती हैं। इन पर ब्योरेवार विचार यहाँ नहीं किया जा सकता। अधिकांश दशाओंमें सुई लगानेका उद्देश्य यही होता है कि दवा अपना प्रभाव शीघ्र डाले। फिर, जब रोगी मूर्च्छित रहता है और औषधि नहीं पी सकता तो इनजेक्शन लगानेमें विशेष सुविधा रहती है। इसके अतिरिक्त कुछ औषधियाँ ऐसी हैं कि पेटमें पहुँच कर नष्ट हो जाती हैं और केवल सुई द्वारा ही दी जा सकती हैं। नीचे सुई लगानेकी प्रधान विधियों पर विचार किया गया है। तीन प्रकार सुई लग सकती है।

(१) त्वचाके नीचे।

(२) मांसपेशियोंमें।

(३) शिराओंमें।

सुई लगानेकी पिचकारी—सुईके लगानेके लिये कुछ बातें ऐसी हैं जो सभी विधियोंके लिये लागू हैं। पहले इन्हें जान लेना चाहिये। फिर इन विधियोंका अंतर समझाया जायगा।

सुई लगानेके लिये अच्छी पिचकारीकी आवश्यकता है। पिचकारीके भाग ये हैं :—

(१) शीशेकी नली (बैरल), जिसमें शतांश मीटर और उसके भागोंके अथवा बूंदके निशान लगे रहते हैं, जिससे हमें ज्ञात हो सकता है कि पिचकारीमें कितनी मात्रा में दवा खींची गई और कितनी शरीरमें दी गई है।

(२) डाट (प्लञ्जर), जो नलीमें डाली जाती है। डाट बाहरकी ओर खींचनेसे पिचकारीमें औषधि आ जाती है। डाट अंदर दबानेसे औषधि बाहर निकलती है। डाट-को नलीमें डालकर ऊपरसे टोपी बन्द कर दी जाती है जिससे पिचकारी उलटने पर डाट स्वयं ही नलीसे बाहर न निकल आये।

(३) सुई, जो नलीके सिरे पर लगाई जाती है। सुइयाँ विविध मोटाई तथा लम्बाईकी होती हैं। अच्छी सुइयाँ ऐसे स्टील (इस्पात) की बनी रहती हैं कि उनमें मुरचा लग ही नहीं सकता। सुई खोखली होती है। इसके छेदमें पीतलका पतला तार डाला रहता है जिससे गर्दसे छेद बन्द न हो जाय; प्रयोगके समय यह तार बाहर निकाल लिया जाता है।

सस्ती पिचकारीमें सुईको छोड़ कर अन्य सभी भाग शीशेके बने रहते हैं। इससे काम चल सकता है, परन्तु 'रेकार्ड सिरिंज' बहुत अच्छी होती है। इसमें केवल नली ही शीशेकी बनी रहती है जिससे यदि गिर कर टूट गई तो नली अलग मँगा कर लगा ली जा सकती है। लड़ाईके पहले सस्ती पिचकारी रुपये, डेढ़ रुपयेमें और 'रेकार्ड सिरिंज' पाँच-छः रुपयेमें मिलती थी।

साधारण उपयोगके लिये २ घन शतांश-मीटर, ५ घन श०मी० और १० घन श०मीटर वाली पिचकारियोंसे काम चल सकता है। सुइयाँ भी उसी अनुसार लम्बी और मोटी या पतली मिलती हैं।

पिचकारीको सदा शुद्ध रक्खो—यह परमावश्यक है कि सुई लगानेकी क्रियामें काम आने वाली सभी वस्तुयें तथा रोगी और चिकित्सकका शरीर और हाथ बिल्कुल साफ़ रहे जिससे कीटाणुका नाम भी न हो।

पिचकारी दो प्रकारसे शुद्ध रक्खी जाती है। पहली विधि तो यह है कि उपयोगसे ठीक पहले पिचकारीके सब भाग (सुई भी) अलग करके किसी साफ़ कटोरेमें डाल दें। फिर उस कटोरेको साफ़ पानीसे भर दें। पानी कम-से-कम इतना रहना चाहिये कि पिचकारीके सभी भाग पानीमें अच्छी तरह डूब जायँ। अब इस कटोरेको आग पर गरम करना चाहिये जिससे पानी उबलने लगे। पाँच मिनट तक पानीमें उबाल लेनेके बाद चिमटीसे, जो स्वयं स्पिरिटमें या उबलते पानीमें डालकर कीटाणुरहित की गई हो, नली को बाहर निकाल लेना चाहिये। फिर डाट निकाली जाती है। पचीस तीस सेकंड तक ठंडा होने देनेके बाद चिमटी ही से डाटको पकड़े हुए उसे नलीमें पहना दिया जाता है। फिर सुईको भी चिमटीसे निकाल कर सिर पर कस दिया जाता है।

उबलते हुए या बहुत गरम पानीमें एकाएक पिचकारी डालनेसे शीशा टूट जायगा। यदि नलीमें डाट पड़ा ही रहे और पानीमें डाल कर पिचकारीको उबाला जाय तो शीशा और धातु जिससे डाट बनी है, तापसे बराबर-बराबर न बढ़ेंगे और या तो शीशेकी नली ही टूट जायगी या डाट नलीमें फँस जायगी जिससे उनका निकालना कठिन हो

जायगा। ठंडा करते समय भी यही बात लागू है। पिचकारीके भागोंको धीरे-धीरे ठंडा होने देना चाहिये। जब कुछ क्षणमें नली इतनी ठंडी हो जाय कि उसे हाथसे पकड़ सकें तब उसे बाँयें हाथमें ले लेते हैं और दाहने हाथ से चिमटी द्वारा डाट डालते हैं और सुई जोड़ते हैं। सुई को अँगुलियोंसे कभी न छूना चाहिये क्योंकि यह भाग शरीरके भीतर प्रवेश करता है। सुईके भीतरसे प.तलका तार निकाल लेना चाहिये।

दूसरी विधि यह है कि हर समय पिचकारीके सब भाग पृथक्-पृथक् करके स्पिरिटमें डाले रहें। स्पिरिट किसी चौड़े मुँह वाले शीशेके बरतन या "जार" में भरा रहता है। बरतनके पेंदेमें रूईकी पतली गद्दी डाल दी जाती है, जिससे पिचकारी या बरतन टूट न जाय। बरतनका ढकना बरतनके मुँह पर बिल्कुल सच्चा बैठना चाहिये, जिससे बन्द करने पर स्पिरिट उड़ न सके। (ऐसे बरतन उनके मुँहमें रेत या एमरी पाउडर डाल और ढक्कनसे रगड़ कर बनाये जाते हैं जिससे ढक्कन सच्चा बैठता है। ऐसे बरतन प्रत्येक बड़े शहरमें खरीदे जा सकते हैं।) स्पिरिटमें पिचकारीका सब भाग बिल्कुल डूबा रहना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर बरतनसे पिचकारीके सब भागोंको चिमटी द्वारा एक-एक करके बाहर निकाल कर जोड़ लेना चाहिये। उसके बाद साफ उबले पानीको पिचकारीमें ३-४ बार खींचकर बाहर फेंक देनी चाहिये, जिससे स्पिरिट धुल जाय।

त्वचाकी तैयारी—रोगीके शरीरके जिस भागमें सुई लगाई जाने वाली हो वहाँ त्वचाको स्पिरिटसे भीगे रुई द्वारा कुछ देर तक रगड़ कर साफ कर लेना चाहिये। टिंकचर आयोडीन लगानेसे यह हानि होती है कि त्वचा गहरे रंगकी हो जाती है, जिससे वहाँकी शिरायें अच्छी तरह दिखलाई नहीं पड़तीं; इससे स्पिरिट ही अच्छा है। परंतु यदि टिंकचर आयोडीन काममें लायें तो रुईके फाहेसे आयोडीनका रंग साफ कर लेना चाहिये। सुई लगा कर जब रुई निकाल ली जाती है तब फिर उसी स्थान पर स्पिरिटसे भीगी रुई रगड़ दी जाती है जिससे सुई-छिद्रका स्थान साफ हो जाता है और वहाँके कीटाणु मर जाते हैं तथा रक्त नहीं निकलता और साथ ही औषधि भी शरीरमें एक ही स्थान पर रुकी रहनेके बदले शीघ्र ही फैल जाती है। सुई देनेके बाद पिचकारीमें साफ पानी बार-बार खींच कर उसे धो लेना चाहिये। तब स्पिरिटसे भी यही क्रिया दुहरानी चाहिये। फिर केवल हवा ही बार-बार पिचकारीमें खींच कर बाहर निकाल देनी चाहिये, जिससे सुई और नली अन्दरसे सूख जायँ। अंतमें पिचकारीके सब भागोंको पृथक् करके और सुईके छिद्रमें पतला पीतलका तार डाल कर पिचकारी रखने वाली डिब्बीमें सब भागोंको रख देना चाहिये या स्पिरिटके बरतनमें सब भागोंको डुबा देना चाहिये जिसमें पुनः आवश्यकता पड़ने पर पिचकारी साफ और तैयार मिले।

त्वचाके नीचे वैक्सीन—मुख्यतर "वैक्सीन" तथा कुछ अन्य औषधियाँ, जैसे दर्द दूर करनेकी दवा या मनुष्यको चैतन्य करनेकी दवा या नींद लानेकी दवा त्वचाके नीचे पिचकारीसे दी जाती है। सुईकी नोक ख़ूब तेज़ होनी चाहिये। त्वचाके नीचे दी जाने वाली औषधियाँ बहुत कम मात्रामें दी जाती हैं; इसलिये १ या २ घन शतांशमीटर (c. c.) की पिचकारी उपयुक्त है। वैक्सीन दो प्रकारकी शीशियोंमें आती है। एक प्रकारमें प्रत्येक शीशीमें नियमित मात्रा रहती है। शीशीकी पतली गर्दन साथकी आरीसे काट कर सुई द्वारा कुल दवा पिचकारीसे खींच ली जाती है। दूसरे प्रकारमें शीशीमें बहुत अधिक दवा रहती है, जिसमेंसे थोड़ी मात्रा निकाली जाती है। शीशीके मुँह पर मोटा रबड़ तना रहता है। इस पर पहले स्पिरिट लगाया जाता है, और सुईको इसी रबड़में चुभा कर उपयुक्त मात्रामें औषधि खींच ली जाती है। इस प्रकारकी शीशीसे दवा निकालनेके पहले पिचकारीमें कुछ हवा पहले खींच ली जाती है और सुईको रबड़के ढक्कनमें चुभाने पर वह हवा शीशीमें भर दी जाती है, जिससे जितनी दवा शीशीसे निकाली जाती है, उतनी ही हवा शीशीमें घुस जाती है। यदि ऐसा न किया जाय तो औषधिके खींचनेमें कठिनाई पड़ेगी। दवा निकालनेके पहले वैक्सीनकी शीशीको खूब झकझोर लेना चाहिये जिससे मिलकर सब दवा एक रूप हो जाय। यदि दवा टिकियाके रूपमें हो तब किसी चम्मचमें पहले स्पिरिट लगाकर और स्पिरिटको जला कर

उसे कीटाणु-रहित कर लिया जाता है। इस चम्मचमें लगभग १ घन श०मीटर स्रवित जल और दवा डाल स्पिरिटकी ज्वाला पर घुला लेनी चाहिये। साथ ही घोलको ½ मिनटके लिये उबाल भी लेना चाहिये। ठंढा हो जाने पर इस घोलको पिचकारीमें खींच लेना चाहिये। यदि घोल एक घन शतांशमीटरसे कम हो तो पिचकारीमें थोड़ा-सा स्रवित जल भी खींच लेना चाहिये।

पिचकारीमें शीशेसे दवा खींच लेने पर, और सुईको शरीरमें चुभानेके पहले, सुईको ऊपर करके पिचकारीको पकड़ना चाहिये और जो हवा या बुलबुला पिचकारीमें खिंच आया है उसे, डाटको थोड़ा-सा दबा कर, बाहर निकाल देना चाहिये। अन्यथा वायु भी शरीरमें दवाके साथ चली जायगी और यदि शिरामें वायु पहुँचेगी तो हानि होनेकी सम्भावना है। फिर, जब सुई औषधिकी शीशीमें औषधि निकालनेके लिये डाली जाती है तब सुईकी बाहरी सतह पर भी वही दवा लग जाती है। इसको स्पिरिटसे तर रुईसे पोंछ देना चाहिये, क्योंकि कुछ औषधियाँ ऐसी होती हैं कि यदि वे त्वचाके नीचे वाली स्तरमें लग जायँ तो उस स्थान पर बहुत जलन पैदा होती है और कभी-कभी घाव भी हो जाता है, यद्यपि ये ही दवायें जब स्वच्छ सुई द्वारा त्वचाके काफ़ी नीचे पहुँचा दी जाती हैं तो उपरोक्त लक्षण नहीं उत्पन्न होते।

सुई लगाना—पूर्वोक्त विधिसे पिचकारी, औषधि तथा रोगीकी त्वचा सुई देनेके लिये तैयार कर ली जाती है। प्रायः यह सुई बाईं भुजामें बाहरके भागमें लगाई जाती है, क्योंकि लोग दाहिने हाथसे काम करते हैं। इससे इस हाथमें सुई लगाने पर हाथ हिलानेमें रोगीको असुविधा होगी। रोगीकी भुजाकी त्वचाको अपने बायें हाथके अँगूठे और तर्जनी अँगुलीमें धीरेसे पकड़ कर कुछ बाहर खींचना चाहिये जिससे वहाँकी त्वचा मांस-पेशीसे कुछ बाहर खिंच आये और दाहिने हाथमें पिचकारी लेकर उसकी सुईको त्वचा और मांसपेशीके बीचके भागमें जल्दीसे घुसेड़ देनी चाहिए। धीरे-धीरे सुई चुभानेसे कष्ट होता है। सुईको पूरा शरीरमें कभी न घुसेड़ना चाहिए। करीब तीन चौथाई भीतर घुसे और बाकी चौथाई बाहर रहे। कारण यह है कि यद्यपि सुइयाँ ऐसी ही कभी टूटती हैं, तो भी यदि कभी यह रोगीके हाथ झटकनेसे या अन्य किसी कारणसे टूटती है तब सर्वदा जड़ ही पर टूटती है। यदि पूरी सुई जड़ तक शरीरमें छोड़ दी गई है और सुई टूट जाय तो सुईका कोई भाग शरीरसे बाहर न निकला रहेगा जिससे वह आसानीसे पकड़ कर बाहर खींच ली जाय। सुई शरीरमें भोंक कर पिचकारीमें लगे नाप द्वारा उचित मात्रा तक दवा शरीरमें डाल दी जाती है। फिर सुई निकाल ली जाती है और त्वचाके उस भागको स्पिरिटसे तर रुईसे रगड़ दिया जाता है।
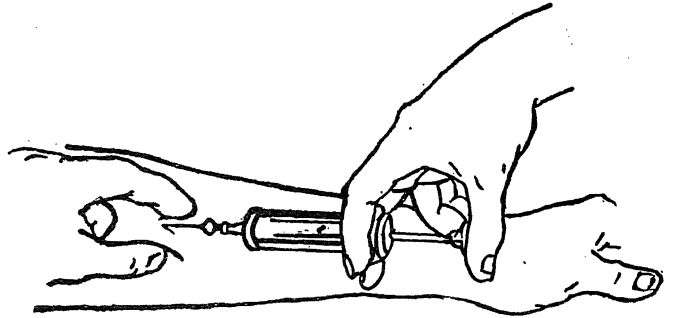
पिचकारीसे सुई लगाना।

मांशपेशियोंमें सुई लगाना—मांसपेशियोंमें सुई लगानेके लिये भी यही विधि है। प्रायः नितम्बों या कंधोंके मांसदार भागमें सुई लगाई जाती है। नितम्बोंमें लगानेके लिये रोगीको चारपाई या मेज़ पर एक करवट लिटा देना चाहिये। उपरोक्त स्थानोंमें सुई देनेका कारण यह है कि वहाँ मांशपेशियाँ अधिक होती हैं। इससे अधिक औषधि डाली जा सकती है और वहाँ रक्तका संचार अधिक रहनेसे शीघ्र ही दवा शरीरमें मिल जायगी और कष्ट कम होगा। इस कामके लिये १० घन श० मी० की पिचकारी और उसी अनुसार लम्बी सुई प्रयुक्तकी जाती है। सुई देनेके बाद साधारणतया कुछ पीड़ा होती है। यदि अधिक कष्ट हो तो गरम रुईसे सेकनेसे कुछ आराम होगा।

मांश-पेशियोंमें कीटाणुनाशक रक्त-रस (सिरम), दूध, रोगीका ही रक्त, मलेरियाके लिये कभी-कभी क्विनैन आदि औषधियाँ दी जाती हैं। उपदंश रोगके लिये भी अब नई औषधियाँ मांश-पेशियोंमें दी जाती हैं।

नवीन भौतिक दृष्टिकोण

४—परमाणुवाद (अ)

[देवेन्द्र शर्मा, एम० एस-सी०]

एक कहो सो अनेक ह्वै दीसत,
एक अनेक धरे है शरीरा।
—यारी साहब

मुहल्लेके शैतान लड़के जलूस-सा बना कर (उस समय दफा १४४ अथवा मार्शल लॉ नहीं था) उस बेचारे के पीछे तालियाँ पीटते हुये जा रहे थे, और वह भी अपनी धुनमें, मानो सबका तिरस्कार करता हुआ, गुनगुना रहा था, 'सब कोयला है, सब कोयला है, सब मिट्टी है।' हो सकता है अनजाने ही, बिना विज्ञानका अध्ययन किये हुये वह किसी सीमा तक सत्य कह रहा था। यद्यपि विश्वमें केवल कार्बन (कोयला) ही नहीं है, परन्तु फिर भी यह जीव और निर्जिव, चल और अचलमें इस बाहुल्यसे पाया जाता है कि कार्बनिक रसायन विज्ञानका एक अलग भाग बन गया है। यह जानना मनोरञ्जक है कि बहुमूल्य हीरेमें और कोयलेके एक भद्दे, कुरूप टुकड़ेमें जिसे हम यों ही फेंक देते हैं, मानवमें और छोटे-से-छोटे निकृष्ट जन्तु तथा वनस्पतिमें एक ही कार्बन है। यद्यपि हम सृष्टिमें असंख्य प्रकारकी चीज़ें देखते हैं, यहाँ तक कि कोई दो चीज़ें एक-सी नहीं, तथापि यह आश्चर्यजनक सत्य है कि ये सब चीज़ें थोड़े-से कुछ भूतोंसे मिल कर बनी हैं। इन भूतोंकी संख्या सीमित है और भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणोंसे देखने पर भिन्न है—परन्तु किसी भी कोणसे देखें १०० से कम ही है।

भारतकी आदि संस्कृति समस्त विश्वको पञ्चमहाभूत-का समन्वय बताती है—छिति, जल, पावन, गगन, समीरा। रोमन संस्कृति केवल चार तत्वोंको ही लेती है, उसमें आकाशके लिये स्थान नहीं। आज एक सुशिक्षित विद्यार्थी इस पञ्च महाभूतको अपूर्ण ज्ञानका परिणाम कह कर हँस देगा। किन्तु यह स्मरण रखने योग्य है कि यदि हम भौतिक दृष्टिसे ही देखें तो विश्वमें केवल ये ही पाँच तत्व हैं। प्रत्येक मूर्त्त वस्तु ठास द्रव अथवा गैस है, या हो सकता है उसमें तीनोंके गुण विद्यमान हों। उसमें शक्ति भी हो सकती है। जहाँ कोई मूर्त वस्तु नहीं वहाँ शून्य है (सम्भवतः सर्वव्यापी भौतिक जगतका संहत पदार्थ नहीं)। इस प्रकार पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश, क्रमशः ठोस, द्रव, गैस, शक्ति और शून्यके प्रति-निधि हैं, अथवा सापेक्षतावादकी भाषामें ये देश, काल और पदार्थके पर्यायी हैं। काल और पदार्थमें घनिष्ट सम्बन्ध है, बिना पदार्थके अस्तित्वके कालका जानना असम्भव ही है, तथा शक्ति और पदार्थमें कोई मौलिक भेद नहीं।* इन कारणोंसे पञ्चमहाभूतमें कालके लिये और सापेक्षतावाद में शक्तिके लिये कोई स्थान नहीं, परन्तु इससे सिद्धान्तोंकी पूर्णतामें कोई कमी नहीं आती, क्योंकि जब हम तत्वोंकी बातचीत करते हैं तो रूपान्तरोंको पृथक्-पृथक् नहीं रखते, सब एक ही तत्व हैं। अस्तु, हम पञ्चमहाभूतके विषयमें कह रहे थे। यहाँ पर कह देना आवश्यक है कि इस दृष्टि से सम्राट्के रत्नजटित मुकुट और सड़कके किनारे बैठे हुये असहाय कोढ़ीके सरसे बँधे हुये कपड़ेमें कोई भेद नहीं, अमरोंका अमृत, असुरोंकी सुरा और नीलकण्ठका हलाहल जब तक तीनों तरल हैं एक ही हैं। सम्भवतः यह मानव-का साम्यवादका पहला पाठ था, परन्तु कदाचित आज कोई मुझसे काग़ज़के १०० कोरे टुकड़ेके बदलेमें एक वह टुकड़ा लेना चाहे जिसे १०० रुपयेका नोट कहते हैं मैं साफ मना कर दूँगा—शायद इसलिये नहीं कि कहीं-कहीं साम्यवाद अपराध है!

गुणानुसार सृष्टिके तत्वोंको विभाजित करना रसायन शास्त्रका काम था। भौतिक विज्ञान और रसायन सहोदर हैं। यदि भौतिक दृष्टिसे पाण्डव तत्व हैं तो रसायनिकसे कौरव, पूरे सौ नहीं, वरन् केवल ९२ (उस समयकी अवस्था जब महाभारतमें ८ कौरव मर चुके हों!) जैसा कि आजका वैज्ञानिक ठहराता है। परन्तु यहाँ मैं महाभारतकी आशा नहीं करता और न होना ही चाहिये, क्योंकि प्रत्येक युद्धके परिणाम प्रायः दोनों ही पक्षोंके लिये हानिकारक होते हैं। भौतिक और रसायन शास्त्र आज इतने अभिन्न हैं कि स्वप्नमें भी कोई संघर्षका अनुमान न करेगा, एकके बिना दूसरा रह नहीं सकता।

* विज्ञान भाग ५५, सख्या १, पृष्ठ ४-५ (१९९९ वि०)

रसायनिक दृष्टिसे वर्गीकरणका अध्ययन करनेके पूर्व हमको पदार्थके स्वभावके विषयमें कुछ बहुत साधारण-सी जानकारी कर लेना आवश्यक है। प्रश्न उठता है कि पदार्थ (द्रव्य) अविरत है अथवा विश्लिष्ट। इस सम्बन्धमें प्रायः सब एक और ढंगसे प्रश्न कर चुके होंगे—क्या हम किसी वस्तुके असंख्य टुकड़े कर सकते हैं? वैज्ञानिक इसके लिये एक सीमा निर्धारित करता है जहाँ हम एक टुकड़ेके और टुकड़े बिना उस पदार्थके गुणोंमें परिवर्त्तन लाये नहीं कर सकते। इन टुकड़ोंको हम अणु कहते हैं। आगे देखेंगे कि तत्वोंके अणुओंका विभाजन करने पर गुणोंमें कोई खास परिवर्त्तन नहीं होता, वरन् हमको उनके परमाणु मिलते हैं। इस प्रकार ओषजन (oxygen) के एक अणुमें दो परमाणु हैं, परन्तु वह भी हैं ओषजन ही। दूसरी ओर हम एक बूँद पानीके सहस्रों टुकड़े कर सकते हैं और प्रत्येक टुकड़ेमें जलके गुण विद्यमान रहेंगे। परन्तु यौगिक पदार्थों जैसे जलके हर एक छोटे-से-छोटे कणका यदि आगे विभाजन करते हैं तो हमको उन टुकड़ोंमें जलके स्थान पर ओषजन (ओ) और उद्जन (उ) (hydrogen) के गुण मिलेंगे, क्योंकि पानी इन दो तत्वोंका बना हुआ है, और विभक्त होकर इनके परमाणु देता है। यह सब कुछ ऐसे ही हैं जैसे एक जनसमूहको टुकड़ोंमें बाँटा जाय। यह क्रिया हम तब तक कर सकते हैं जब तक कि प्रत्येक अणु मनुष्य) पृथक्-पृथक् न हो जाय। यदि यह क्रिया और आगे ले जाई जाती है तो हमको मनुष्य न मिल कर क्रियाकी पूर्णताके अनुसार उस बेचारे के केवल बड़े अथवा छोटे टुकड़े ही (परमाणु अथवा परमाणु के भी अवयव—आगे देखिये) उपलब्ध होंगे।

पदार्थका विश्लिष्ट स्वभाव दिखानेके लिये अन्य प्रत्यक्ष घटनाओंकी ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सकता है। प्रायः देखा गया है कि दो विभिन्न धातुओंके टुकड़े बहुत समय तक सट कर रहने पर एक दूसरेमें दूसरी धातुके चिह्न दिखाते हैं। सम्भवतः द्रव और गैसोंमें तो यह व्यापन क्रिया बहुत आती है। तब क्या दो अविरत माध्यम (mediums) एक ही समय एक ही स्थान पर हैं? हम अपनी फुटबालमें बिना आयतन बदले हुये कम अथवा अधिक हवा भर सकते हैं। अथवा उतनी ही हवाको फुटबाल या एक एक बड़े हॉलमें रख सकते हैं। यह क्रिया किसी सीमा तक ठोस तथा द्रवोंमें भी सम्भव है। यदि पदार्थ अविरत होता, उसके कणोंके बीचमें रिक्त स्थान न होते, तो उसमें घटने-बढ़नेकी गुञ्जाइश कहाँसे आती?

दर्शन अथवा विज्ञानके इतिहासमें पदार्थके विश्लिष्ट स्वभावका पहला वर्णन हम अबसे ३००० वर्ष पूर्व वैशेषिक दर्शन-कर्त्ता कणादिके दर्शनमें पाते हैं। प्रायः २५०० वर्ष पूर्व यूनानियों और २००० वर्ष रोमनोंने परमाणुवादका जिक्र किया है। ल्यूक्रेशस ने तो इसके आधार पर एक प्रसिद्ध काव्यकी रचना की। परन्तु परमाणुको आधुनिक विज्ञानकी दृष्टिसे देखनेके लिये हमको १९ वीं सदी ईसाके प्रारम्भसे पीछे जानेकी आवश्यकता नहीं। रसायनिक प्रयोगोंमें यह देखा गया है कि जब दो गैसें रसायनिक क्रिया द्वारा मिल कर कोई तीसरा पदार्थ बनाती हैं तो, यदि तीसरा पदार्थ भी गैसके रूपमें है, स्थायी तापक्रम और दबाव पर तीनोंके आयतन सबसे छोटे आयतनके पूर्णांक अपवर्त्य (integral multiple) होंगे। इस प्रकार दो आयतन उद्जन (उ) और एक आयतन ओषजन (ओ) से मिल कर उसी तापक्रम और दबाव पर जो अलग-अलग गैस होने पर था दो आयतन भाप बनेगी; और एक आयतन उ तथा एक आयतन हरिन (ह) से दो आयतन उदहरिकाम्ल (उह—hydrochloric acid) गैसके मिलेंगे। पानी बनानेके लिये उद्जन और ओषजन सदा इसी अनुपातमें मिलेंगी, और यदि एक अधिक मात्रामें है तो वह शेष बच रहेगी। यही क्रिया अन्य यौगिक पदार्थोंके बननेमें होगी। इन दृग्विषयोंको ध्यानमें रखते हुये ऐवेगैड्रो (Avagadro) ने कल्पना की कि प्रमाण तापक्रम और दबाव पर सब गैसोंके समान आयतनमें अणुओंकी संख्या बराबर होती है। अब प्रश्न उठता है कि ये अणु क्या हैं। ये पदार्थके वे सबसे छोटे कण हैं जो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं और प्रायः दो या अधिक परमाणुओंके बने होते हैं (कभी-कभी एक ही परमाणुके)। जब सन् १८०३ ई० में डाल्टन (Dalton) ने परमाणुवादकी स्थापनाकी तब यह केवल एक प्रगल्भ काल्पनिक सिद्धान्त समझा जाता था। परन्तु आधुनिक विज्ञानका विशाल प्रासाद उसी पर

बना हुआ है; और इस समय कोई ऐसा कारण दृष्टिमें नहीं आता जिससे हमको परमाणुवादको ठुकरा देना पड़े। यद्यपि इसमें कोई संशय नहीं कि नवीन प्रयोगों और अनुभवोंके फल स्वरूप आज डाल्टनके मूल सिद्धान्तमें आवश्यक परिवर्त्तन कर लिये गये हैं, फिर भी आधुनिक विज्ञानकी सुदृढ़ नींव उसी पर आश्रित है। परमाणु जैसी सूक्ष्म और अदृश्य वस्तु इतने विशाल भवनकी नींव है। यहाँ हम संक्षेपमें डाल्टनकी परमाणुकी व्याख्या देते हैं--

(१) परमाणु पदार्थके वास्तविक विश्लिष्ट कण हैं जिनका किसी भी रसायनिक रीतिसे प्रविभाजन नहीं किया जा सकता।

(२) एक ही तत्वके परमाणु आपसमें एकसे और मात्रामें समान होते हैं।

(३) विभिन्न तत्वोंके परमाणुओंके गुण भिन्न-भिन्न होते हैं, यथा मात्रा रसायनिक प्रीति आदि।

(४) यौगिक पदार्थ बनानेमें विभिन्न तत्वोंके परमाणु सरल संख्यात्मक अनुपातमें मिलते हैं, यथा १:२, १:३, २:२, २:३, १:१ आदि। परमाणुके आधे, तिहाई आदि भाग किसी क्रियामें काम नहीं आते।

(५) तत्वोंके संयोजन-भार परमाणुओंके संयोजन-भार प्रदर्शित करते हैं।

इसके पूर्व कि हम डाल्टनके दृष्टिकोणमें आवश्यक परिवर्त्तनों पर विचार करें यह जान लेना आवश्यक है कि अणु और परमाणु दोनों ही बड़े-से-बड़े अनुवीक्षण यन्त्रके लिये भी अदृश्य हैं, हाथसे छूकर उनकी बनावटका अनुमान कर लेनेकी बात तो दूर रही। हाँ, कभी-कभी अपनी सुगमताके लिये हम मस्तिष्कमें एक प्रतिमाकी कल्पना कर लेते हैं। परमाणुका ध्यान आते ही दिमाग़में एक छोटी सी ठोस गोली टपक सकती है और अणुके साथ दो या अधिक गोलियोंका समूह। परन्तु, जैसा हम देखेंगे, वे ऐसे ठोस नहीं जैसा अनुमान किया जाता है; वे बहुत पोले हैं।

हम देख आये हैं कि रसायनिक दृष्टिसे परमाणु पदार्थका सूक्ष्मतर कण है जिसे किसी रसायनिक रीतिसे आगे विभाजित नहीं किया जा सकता। परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे वह पदार्थका सबसे छोटा कण नहीं क्योंकि भौतिक विज्ञान ने उसे अधिक मूल विद्युत् कणोंके समन्वयसे बना हुआ पाया है। इतना ही नहीं, एक ही तत्वके दो परमाणुओंकी मात्रा भी भिन्न हो सकती है और होती है। क्या एक ही जातिके दो परिवारोंमें कम या अधिक प्राणी नहीं होते? प्रकृति ने अपनी जड़ सृष्टिमें भी कुछ आज़ादी दे रक्खी है, पूर्ण तो नहीं, पर हाँ कुछ उसका स्वांग। अस्तु इस विषय पर हम अगले प्रकरणमें सविस्तार विचार करेंगे--किस प्रकार परमाणु भी निरावयव नहीं है, उसके विद्युत् आवेशोंका अन्वेषण कैसे हुआ तथा परमाणुकी रचना क्या है।

सबसे मनोरञ्जक बात तो यह है कि आधुनिक भौतिक शास्त्रके अनुसार समस्त विश्व कुछ इने-गिने मूल कणोंका बना हुआ है। इन कणों पर ऋण अथवा धन विद्युत्का आवेश है अथवा वे आवेशहीन हैं। इस प्रकार इस ९२ तत्वोंसे पुनः ४-५ पर आ जाते हैं। जैसा हम पहले भी देख आये हैं मात्रा और शक्तिमें कोई मौलिक भेद नहीं, यद्यपि बाह्य रूपसे दोनों सर्वथा भिन्न हैं। पदार्थका विद्युत् आवेशोंका बना हुआ होना इस अभेदकी ओर पुष्टि करता है। कौन जाने भावी भौतिकज्ञ तुलसीदासके साथ सृष्टिमें इस वैषम्यमें एक ही मूल तत्वकी अनुभूति पावे :—

जिमि घट कोटि एक रवि छाहीं।

अथवा इस शताब्दीके बलदेव प्रसादजी मिश्रके साथ

सब एक देहके अवयव,
सब एक ज्योतिकी छाया;†

और फिर भी गलीके फूहड़ बालक उसके पीछे तालियाँ न बजायें और न पत्थर ही फेंकें।

---

† यहाँ हमको देह और ज्योतिको एक मूल तत्वके रूपान्तर मात्र ही समझना चाहिये, जैसे पदार्थ और शक्ति हैं।

सरल विज्ञान

बैटरी

बैटरियाँ दो तरहकी होती हैं; एक तो वे जिनमें बाहरसे बिजली भरनेकी आवश्यकता नहीं होती (उदाहरणतः, टॉर्चमें लगने वाली सूखी बैटरी या ड्राई सेल) और दूसरी वे जिनमें बाहरसे बिजली भरी जाती है। ऐसी बैटरीमें भरी बिजली निकल जाने पर फिर बिजली भरी जा सकती है जिससे बैटरी फिर काम देने लगेगी। यह काम बार-बार किया जा सकता है। इसलिए इस प्रकारकी बैटरी बहुत दिन तक चलती है।

पहली जातिकी बैटरीको प्राथमिक बैटरी और दूसरी जातिकी बैटरीको द्वैतीयिक या सेकंडरी बैटरी कहते हैं। दूसरी जातिकी बैटरीको ऐक्युमुलेटर भी कहते हैं।

सच पूछा जाय तो ऐक्युमुलेटरमें बिजली नहीं संचित रहती। इसके सिरोंको किसी बाहरी विद्युत्-प्रद यंत्रके सिरोंसे जोड़ने पर ऐक्युमुलेटरमें जब बिजली जाती है तो इसके पत्रोंमें (जो विशेष मसाला पुते हुए सीसा धातुके होते हैं) केवल रसायनिक परिवर्तन होता है और इसी रासायनिक परिवर्तनके कारण, ऐक्युमुलेटरको अलग कर लेने पर, वह स्वयं बिजली उत्पन्न कर सकता है। इस विद्युत-उत्पादनमें ऐक्युमुलेटरके पत्र धीरे-धीरे अपनी पुरानी अवस्थामें पहुँच जाते हैं और तब ऐक्युमुलेटर बिजली नहीं उत्पन्न कर सकता। एक बार फिर इसमें बाहरसे बिजली भेजने पर इसके पत्रोंमें रासायनिक परिवर्तन होता है और तब इस रासायनिक परिवर्तनके कारण ऐक्युमुलेटर फिर बिजली उत्पन्न कर सकता है। इसलिये प्रत्यक्ष है कि ऐक्युमुलेटरमें बिजली नहीं संचित होती, शक्ति (इनर्जी) संचित होती है। यह शक्ति पहले रासायनिक रूपमें रहती है; पीछे वह बिजलीके रूपमें प्रगट होती है।

सरलतम रूपके ऐक्युमुलेटरमें सीसेके केवल दो पत्र रहते हैं और ये फीके सल्फ्यूरिक ऐसिड (गंधकके तेज़ाब) में लटके रहते हैं। परंतु यदि पत्र केवल सीसेके रहें और उन पर कोई मसाला न पुता रहे तो ऐक्युमुलेटरमें आरंभसे ही अधिक बिजली नहीं भरी जा सकेगी। आरम्भमें बहुत ही कम बिजली भरी जा सकेगी और कई बार भरने और बिजली निकालने पर ही उनकी समाई पूर्ण रूपसे विकसित होगी। इस असुविधाको मिटानेके लिये पत्रों पर मसाला पुता रहता है जिसका मुख्य अंश लेड ऑक्साइड होता है। सपाट पत्र पर मसाला पोतनेसे मसालाके छूट कर गिर पड़नेका डर रहता है। इसलिये पत्रको ठप्पा मार कर पहले झँझरीदार बना लेते हैं और तब उस पर मसाला पोतते हैं। इस प्रकार मसाला बहुत समय तक चिपका रहता है।

अधिक-से-अधिक कितनी बिजली किसी ऐक्युमुलेटरमें भरी जा सकती है इसीको उस ऐक्युमुलेटरकी समाई कहते हैं। पत्रोंका क्षेत्रफल जितना ही अधिक होगा, समाई उतनी ही अधिक होगी। परंतु बहुत बड़े क्षेत्रफलका प्लेट यदि एक टुकड़ेमें रक्खा जाय तो उसे रखनेके लिए बहुत बड़े बरतनकी आवश्यकता होगी और इससे कई एक असुविधाएँ होंगी। इसलिये प्रत्येक पत्र (प्लेट) छोटे-छोटे और एक दूसरेके समानान्तर रक्खे टुकड़ोंसे बनता है। सिरे पर ये टुकड़े एक दूसरेसे जुड़े रहते हैं। दोनों प्लेट इसी रूपमें रहते हैं और ऐक्युमुलेटरमें इस उपाय से रक्खे रहते हैं कि वे कहीं भी एक दूसरेको नहीं छूते। इस प्रकार बहुत कम स्थानमें बहुत बड़े क्षेत्रफलके प्लेट आ जाते हैं।
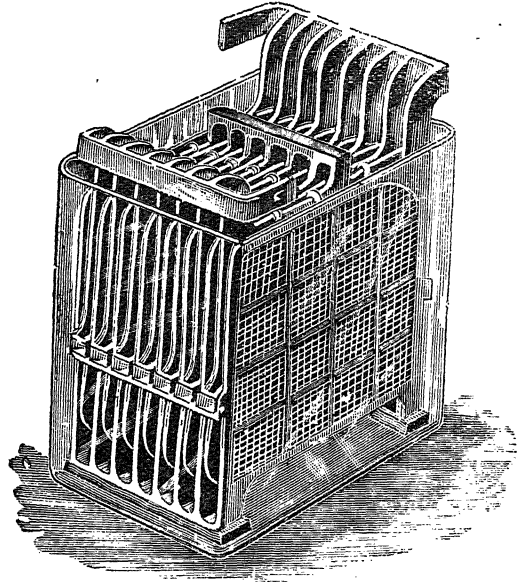
ऐक्युमुलेटर, बाहरी रूप।

वह बरतन जिसमें ये प्लेट रक्खे जाते हैं कड़े रबरका बना रहता है और इस बरतनमें फीका सल्फ्यूरिक ऐसिड भरा रहता है। कड़े रबड़में यह सुविधा रहती है कि यह तेज़ाबसे नहीं कटता और यह वैद्युत-संचालक भी नहीं है। छोटे ऐक्युमुलेटरके बरतन सेलुलायडके भी बनते हैं।

प्रायः सभी मोटर-गाड़ियोंमें ऐक्युमुलेटर लगा रहता है मोटरमें एक छोटा-सा डायनामो भी लगा रहता है, जिससे जब गाड़ी चलती रहती है तो ऐक्युमुलेटर बिजली भरती रहती है। जब रुकी हुई गाड़ीको चलाना रहता है तो ऐक्युमुलेटरसे बिजली ले ली जाती है।
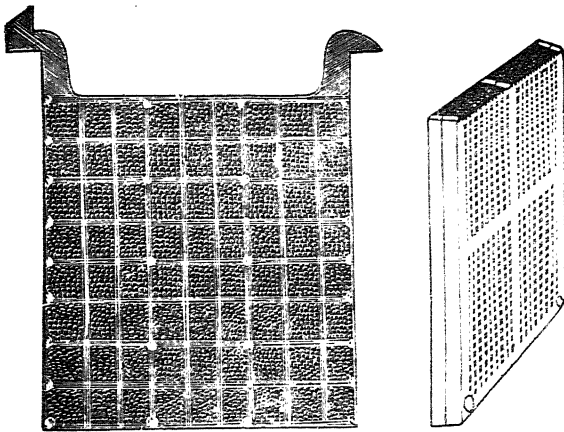
ऐक्युमुलेटरके प्लेट।

यहाँ दिये गये चित्रोंमें ऐक्युमुलेटरकी बाहरी सूरत और भीतरी बनावट दिखलायी गयी है। यह स्थायीरूपसे एक जगह रखने योग्य ऐक्युमुलेटर है। मोटर गाड़ीमें लगने वाला ऐक्युमुलेटर ढकन और नरम रबरसे इस प्रकार बंद रहता है कि तेज़ाब बाहर न छलके।

इमली के बीजों का उपयोग

देहरादूनकी वन्य अनुसन्धानशाला ने हाल हीमें एक पत्रिका प्रकाशित की है, जिसमें बताया गया है कि इमली-के बीजोंसे औद्योगिक दृष्टिसे एक महत्वपूर्ण वस्तु प्राप्त की जा सकती है।

आजकल 'पेक्टिन' नामक एक वनस्पतिका उत्पादन औद्योगिक दृष्टिसे बड़ा महत्व है। मुरब्बे और मिठाइयाँ तैयार करनेमें काम आनेके अतिरिक्त यह अन्य बहुतसे कामोंमें भी आता है। रबड़के पेड़के रसको गाढ़ा करने और जमाने, साबुनका वजन बढ़ाने, इत्र तथा उबटन आदि तैयार करने तथा दीवार पर लगानेके कागजोंको रंगने आदि कामोंमें पेक्टिन प्रयोग होता है।

अभी तक व्यापारिक पैमाने पर तैयार किये जाने वाला पेक्टिन सेब, चुकन्दर तथा अन्य फलोंका रस निकालने तथा नारंगीके छिलकोंका तेल निकालने आदिके सिलसिलेमें गौण उत्पादनके रूपमें प्राप्त किया जाता रहा है। इसलिये पेक्टिन तैयार करनेका उद्योग उन स्थानोंमें प्रारम्भ नहीं किया जा सकता जहाँ फलोंकी बहुतायत होते हुये भी रस निकालने आदिकी सुविधा नहीं है। इसलिये अभी तक भारतको बाहरसे मँगाये जाने वाले पेक्टिन पर निर्भर रहना पड़ता था।

इस खोजसे पता चला है कि इमलीके बीजोंमें बहुत अधिक पेक्टिन होता है जिसे सरलतासे संचित किया जा सकता है तथा इधर उधर भेजा जा सकता है। अब इन चीज़ोंका बड़ा महत्वपूर्ण प्रयोग किया जा सकेगा। इमलीके बीज अभी तक व्यर्थ समझे जाते थे। —भारतीय समाचार

पुरानी लिपियों और लेखों के बचाव की व्यवस्था

प्रयोगोंसे ज्ञात हुआ है कि किताबों और कागज़ोंके पन्ने वायुमें वर्तमान गंधकके छोटे-छोटे कणोंसे खराब होते हैं। इन्हींके कारण वे कुछ दिनों बाद पीले रंगके हो जाते हैं। गंधकके कणोंके अतिरिक्त अन्य भी बहुतसे पदार्थ हवामें वर्तमान रहते हैं जिनके कारण वे कमज़ोर हो जाते हैं और मुड़नेसे टूटने लगते हैं। यदि कमरेकी हवामेंसे ये कण निकाल दिये जायँ तो उस कमरेमें रक्खी पुस्तकें तथा अन्य काग़ज़ खराब नहीं होते। अमेरिकामें अब ऐसे ही कमरे बनाये गये हैं। इन कमरोंमें वायु विद्युत्‌की सहायतासे साफ करके लाई जाती है। इन्हीं कमरोंमें लड़ाई सम्बन्धी काग़ज़ोंके बस्ते भी रक्खे जाते हैं।

आग बुझना

इस महासमरमें प्रत्येक देशमें शत्रुके भेदिया लगे रहते हैं और उनमेंसे कुछका काम यह रहता है कि हमारे महत्व-पूर्ण कारखानों और गोदामोंमें किसी-न-किसी तरह आग लगा दें। इससे बचनेके लिए बड़े-बड़े विदेशी मशीन-घरों और गोदामोंमें ऐसी योजना बनायी गयी है कि आग लगने पर आप-से-आप दरवाज़े और खिड़कियाँ बंद हो जाती है और इस्पातके बड़े-बड़े बोतलोंसे कारबन-डाइ-ऑक्साइड गैस निकलने लगती है। जैसा सभी जानते हैं इस गैसके भीतर रहने पर पेट्रोल आदि जैसे शीघ्र जलन-शील वस्तुएँ भी नहीं जल पातीं। परिणाम यह होता है कि आग शीघ्र बुझ जाती है और अक्सर नाम-मात्र ही हानि हो पाती है। इन बोतलोंमें गैस इतना दबा कर भरी रहती है कि बोतल खुलने पर गैस लगभग ५०० गुना अधिक जगह लेती है। इसलिए कुछ ही बोतलोंसे इतनी गैस निकलती है कि सारा कमरा कारबन-डाइ-ऑक्साइडसे भर उठता है। आग पूर्णतया बुझ जानेके बाद द्वार आदि खोलकर पंखा चला देनेसे कुछ ही मिनटोंमें सारी गैस बाहर कर दी जा सकती है।

बिजलीसे गरम होने वाले कपड़े

अधिक ऊँचाई पर उड़ने वाले वायुयान संचालकको ठंडसे बचनेके लिये पहले बहुत-सा उपाय करना पड़ता था। यदि वह बहुत-सारे कपड़े पहनता था तो काम करनेमें बाधा उत्पन्न होती थी। कपड़े अधिक न पहनने पर वह ठिठुर जाता था और कार्य नहीं हो सकता था। इस कठि-नाईको दूर करनेके लिये अमेरिकाकी एक बिजलीकी कंपनी ने बिजलीसे गरम होने वाला कपड़ा बनाया है। इसे पहन कर शून्यसे भी ६० डिग्री सेंटीग्रेड कम तापक्रम पर काम कर सकते हैं। इससे पहले भेंडकी खालके तथा अन्य खालोंके जो कपड़े काममें आते थे उनसे ये कपड़े वज़नमें कई सेर कम हैं। ये कपड़े ऊनके बने होते हैं किन्तु अस्तर बिलकुल सूती होता है। अस्तर और ऊपरके कपड़े के बीचमें तार लगा रहता है। यह तार सामान्तर तरंगोंके आकारमें रहता है। इस प्रकार रखनेसे काम करते समय तार खिंच भी सकता है और कोई रुकावट नहीं पड़ती। आवश्यकताके अनुसार तारोंमें बिजली भेज कर इन कपड़ों को गरम किया जा सकता है। जितना अधिक गरम करना चाहें उतनी अधिक विद्युत इनमें चलती रहनी चाहिये। ऊनी कपड़ा तार की गरमीको बाहर नहीं जाने देता, किन्तु अस्तरका सूती कपड़ा बीचके तारोंकी गर्मीको शरीर तक सुगमतासे जाने देता है।

नावको बंडल बनाकर ले जाओ

अमेरिकामें प्रति सप्ताह बहुत-से लोग सैर करनेके लिये किसी नदी या झीलके किनारे जाया करते हैं। उस समय नदी या झीलमें तैरना और किश्ती खेना ये ही दो मुख्य खेल होते हैं। हर एक आदमी या जोड़ा यही चाहता है कि वह अपनी किश्तीमें बैठ कर आप खेवे। लकड़ीकी बड़ी-बड़ी किश्तियोंको वे अपने साथ ले नहीं जा सकते। इसलिये उन्होंने कपड़ोंकी बनी किश्तियोंका निर्माण किया है।

ये किश्तियाँ रबड़दार कपड़ेकी बनी होती हैं। कपड़े को किश्तीके रूपमें लानेके लिये कड़ी लकड़ी का फ्रेम काममें लाया जाता है। डाँड भी ऐसे होते हैं कि इनके कई टुकड़े किये जा सकते हैं और किश्ती चलानेके समय बहुत जल्दी अपनी ठीक अवस्थामें आ जाते हैं।

सारी किश्तीको तोड़ने या टूटी हुईको किश्तीके रूपमें लानेमें १० से २० मिनट तक लगते हैं। लपेट कर किश्ती दो छोटे बंडलोंके आकारमें आ जाती है। इन दो बंडलोंको हाथमें लेकर आसानीसे चल सकते हैं और मोटर या रेल-गाड़ीमें बिस्तरे की तरह अपने साथ लेकर चल सकते हैं।

इस किश्तीमें गुरुत्व केन्द्र जलकी सतह के नीचे रहती है, इसलिये चलते समय उलटनेका डर नहीं रहता। यदि किश्तीमें कहीं छेद हो जाय तो वह छेद साइकिल के पकंचर के समान रबड़दार कपड़ेकी एक पेवंद लगा कर ठीक किया जा सकता है। यदि किश्तीको निचली तली उथले पानीमें ज़मीन या चट्टानके किसी भागसे टकराती है तो किश्ती ऊपरको उछल जाती है।

ग्राम-सुधारकी योजना

केन्द्रीय सरकारकी ओरसे एक कोष ग्राम-सुधारके लिये स्थापित किया गया था। इस धनकी सहायतासे वे सारी योजनाएँ संचालित हैं जिनके द्वारा गावोंके रहने वालों और विशेष कर किसानोंकी आर्थिक और शिक्षा तथा स्वास्थ्य-सफाई सम्बन्धी दशामें सुधार किया जा सकता है। मुख्य योजनाएँ इस प्रकार हैं—यातायात और जल एकत्रित करने की व्यवस्थाओंमें सुधार, स्वास्थ्य-सफाईकी उन्नति, कृषि और उद्योगोंकी उन्नति, सहकारिता अन्दोलन, शिक्षा उन्नति, नालिओंकी व्यवस्था, सिंचाईकी सुविधायें, चकबंदी, कर्ज समझौता तथा पशु चिकित्साकी सुविधायें। प्रान्तीय सरकारोंको सलाह दी गई कि बहुत बड़े कार्यक्षेत्रमें शक्ति लगाकर उसे व्यर्थमें व्यय करनेके बजाय उन्हें कुछ मुख्य कार्योंको चुन लेना चाहिये जैसे गांवोंमें यातायात साधनोंके सुधार, गांवोंकी सफाई और पानी की व्यवस्था आदि ऐसी योजनायें हैं जिन पर चकबंदी, पशुओंकी उन्नति तथा बीज के सुधार आदिके बदले मुख्य ध्यान देना चाहिये।

सरकारकी अनुमतिसे संयुक्त प्रान्त अपनी सारी शक्ति ग्राम-सुधारकी संगठित मुख्य योजनाओं पर लगा रही है। अन्य प्रांतीय सरकारें भी केन्द्रीय कोष द्वारा प्राप्त धनके व्यय करनेकी नीतिका साधारणतया पालन करती रही है। जल एकत्रित करने तथा यातायातके साधनोंकी व्यवस्था करने वाली योजना सबसे अधिक लोकप्रिय है। संयुक्त प्रान्तकी मुख्य योजनाको छोड़ कर अबतकके व्ययका प्रायः ५० प्रतिशत इन दोनों योजनाओं पर व्यय किया गया है। गावोंके स्वास्थ्य तथा सफाईके प्रबन्ध पर १२ प्रतिशत तथा औद्योगिक और कृषि सम्बन्धी योजनाओं पर भी १२ प्रतिशत व्यय किया गया है। आवश्यकतानुसार सरकारी अधिकारियोंके निर्णय पर दी जाने वाली सहायतामें ५ प्रतिशतसे भी कम व्यय हुआ है। पंजाबकी सरकारको जो धन दिया गया है उसका अधिकांश भाग चकबंदी पर खर्च किया जा रहा है। मध्य प्रान्त और बरारकी सरकार ने कर्ज-समझौतेके सम्बन्धमें बहुत कुछ कार्य किया है।

मार्च १९४१ को समाप्त होने वाले १६ मासमें ३३ लाख रुपये व्यय किये गये, जब कि पिछले विवरणके वर्षमें २२ लाख रुपये खर्च किये गये थे। कई प्रान्तोंमें सहायता देनेकी प्रणाली बड़ी लोकप्रिय है। उदाहरणके लिये संयुक्त प्रान्तमें किसानोंको जल प्राप्त करनेकी उत्सुकता को ध्यानमें रख कर इस कार्यके लिये उस प्रान्तसे सम्बद्ध क्षेत्रोंमें एक-तिहाईकी जगह आधा खर्च वसूल किया जाता है। बिहार, आसाम तथा उड़ीसा आदि प्रान्तोंमें जहाँ बहुत बड़े क्षेत्रोंमें पिछड़ी हुई जातियाँ रहती हैं एक तिहाई खर्च वसूल करनेमें भी कठिनाई होती है।

भारतीय सरकार द्वारा १९४०-४१ के अन्तमें जो शेष धन प्रदान किया गया था वह ५२,७८,२९९ रुपये था जिनमें प्रान्तीय सरकारों और अन्य छोटी सरकारोंको दी जाने वाली ४५,६४,५६६ रुपयेकी रकम भी सम्मिलित है। इस धनसे मद्रास, बम्बई, बंगाल, युक्त प्रांत, पंजाब, बिहार, मध्य प्रान्त, बरार, आसाम, सीमा प्रान्त, उड़ीसा, अजमेर मेरवाड़ा और कुर्गको सहायता दी गई है।

—वीरेंद्र नारायण

विचित्र केकड़ा

हिन्द और प्रशांत महासागरके द्वीपोंमें एक विचित्र केकड़ा पाया जाता है। अन्य केकड़ोंसे इसकी शरीर रचना भिन्न होती है। इसके पेटमें नुकीले पंजे होते हैं। इसको आत्म-रक्षाकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। यह पेड़की जड़ोंको खोदकर गहरे बिलोंमें रहता है किन्तु मादा केकड़ा समुद्र ही में अंडे देती है। ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते हैं वे खुश्की ही में रहना पसन्द करते हैं।

ये नारियल पर अपनी जीविका बसर करते हैं। पेड़से गिरते ही नारियलके फलमें अपने भारी पंजोंसे छेद करके उसमेंसे सफेद गिरी निकाल लेते हैं। ये बड़े ही बलवान होते हैं और नारियलके कड़े आवरणको सरलतासे तोड़ डालते हैं। फलकी जटा उखाड़कर उस पर बार-बार चोट करनेसे शीघ्र ही फूट जाता है। कहा जाता है कि अपने मजबूत पंजोंसे मनुष्यका हाथ तोड़ सकते हैं। यह अद्भुत जीव न केवल गिरे हुये नारियलों पर ही अधिकार जमाता है बल्कि उन लम्बे वृक्षों पर चढ़ कर नारियल तोड़ता भी है।

बिलोंमें और पत्थरके नीचे रहने वाले केकड़े जब समुद्र की ओर जाते हैं तो एक दल बाँधकर चलते हैं। आगे नर-केकड़ा होता है और जलूस तेज़ीके साथ सीधी पंक्तिमें जाता है। दलकी लम्बाई प्रायः १ मील और चौड़ाई १५० फुट तक हो जाती है। समुद्रसे वापस आकर फिर वे अपने बिलोंमें घुस जाते हैं और शत्रु से रक्षाके लिये उनका मुँह बन्द कर लेते हैं।

हल्के रबरका उत्पादन

यूनाइटेड स्टेट्स रबर कम्पनी ने एक ऐसे रबरका निर्माण किया है जो कार्कसे भी अधिक हल्का होता है और कई एक विशेष गुणोंसे पूर्ण है। इस पर न तो जलका प्रभाव होता है और न सड़ता है। तेल, तेजाब आदिका भी कुछ प्रभाव नहीं पड़ता। इसके अतिरिक्त यह अधिक मजबूत, टिकाऊ और काग बनाने योग्य होता है। इनसे हल्के इन्स्युलेशन बोर्ड बनाये जावेंगे जिनका वजन एक इंच मोटे तख्तेके लिये ४½ और ५½ पौंड प्रति घन फुट होगा जो क्रमानुसार २२ और २५ पौंड प्रति इंचका बोझ सहन कर सकते हैं। १९०° तापक्रम पर यह मुलायम पड़ जाता है और उस अवस्थामें किसी भी रूपमें परिणत किया जा सकता है। इस प्रकार विभिन्न रूपकी वस्तुओंका निर्माण हो सकेगा।

हानिकारक पौधेका अन्त

हालके अनुसन्धानसे यह ज्ञात हुआ है कि अनेक महत्वपूर्ण पौधोंकी खेतीको नुकसान पहुँचाने वाले 'लन्ताना' नामक पौधेके विस्तारको एक प्रकारका रसायनिक द्रव छिड़क कर रोका जा सकता है। इस सम्बन्धमें वन्य अनुसन्धानशालामें पिछले कई वर्षोंसे परीक्षण हो रहे थे। इन परीक्षणोंसे ज्ञात हुआ कि 'सोडियम क्लोरेट' छिड़क कर इस हानिकारक पौधेके विस्तारको बहुत समय तक नियन्त्रणमें रखा जा सकता है। इस बीचमें खेतके पौधे इतने बढ़ जाते हैं कि बादमें वह स्वयं 'लन्ताना' का विस्तार नहीं होने देते। उक्त रासायनिक पदार्थके छिड़कनेसे साधारणतया १० रुपये प्रति एकड़का व्यय होगा। अतः यह प्रणाली उन्हीं क्षेत्रोंमें कार्य रूपसे परिणत किया जा सकता है जहाँ भूमि कीमती हो तथा यातायातके अच्छे साधन हों।

लन्ताना को प्लांटर्स कर्स भी कहते हैं। १८३३ में बागीचेमें शोभा देने वाले पौधेके रूपमें लन्तानाका पौधा लंकासे भारतमें लाया गया था। तबसे यह दक्षिण भारतमें पूर्ण रूपसे फैल चुका है। यह एक बहुत हानिकारक पौधा है और प्रतिवर्ष कितने ही महत्वपूर्ण खेतियोंकी वृद्धिमें बड़ा बाधक होता है और खेती योग्य भूमिमें सर्वत्र फैल जाता है।

ऑटोमैटिक टेलीफोन

तापमानमें अत्यधिक परिवर्तन और वर्षा तथा आँधी आदि किसी-न-किसी हद तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे टेलीफोनकी मशीनके कार्यमें बाधा पहुँचाते हैं। अतः उष्ण प्रधान देशकी स्थितियों के अनुसार एक विशेष प्रकार का टेलीफोन यंत्र तैयार किया जाता है। टेलीफोनके साधारण यन्त्र जिनमें नम्बर मिलानेका चक्र होता है, दुहरे तारों द्वारा टेलीफोनके मुख्य मिलन-केन्द्रसे मिले रहते हैं। ये तार या तो पृथ्वीके नीचे या खम्भोंमें बाँध कर ऊपरसे अथवा दोनों प्रकारसे मिलाये जाते हैं। मिलन-केन्द्रमें ऐसी व्यवस्था होती है जिसके द्वारा टेलीफोन यन्त्रोंके समस्त दुहरे तार एक बड़ी बैटरीसे जुड़े रहते हैं। रिसीवरके उठानेसे मिलन-केन्द्रसे आने वाले तार मिल जाते हैं और यन्त्रमें बिजली दौड़ने लगती है।

जिस संख्याको चक्र पर घुमाया जाता है उतनी ही बार चक्रमें बिजलीका प्रवाह बन्द होता रहता है जिसके कारण मिलान-केन्द्रमें आवश्यक नम्बरको मिलाने वाला स्विच काम करने लगता है। इस प्रकार दो टेलीफोन यन्त्र मिल जाते हैं और उनमें बिजलीका प्रवाह जारी हो जाता है और बोलने वालेकी आवाजकी लहरें बिजली की लहरोंमें परिवर्तित हो जाती है। ये लहरें तारों द्वारा दूसरे टेलीफोन तक पहुँच जाती है और सुनने वालेके टेलीफोन यन्त्रमें बोलने वालेका स्वर सुनाई पड़ने लगता है। प्रायः रिसीवर हुकको थपथपानेसे गलत नम्बर मिल जाते हैं। बहुधा ऐसा होता है कि हुकको दो बार जल्दी-जल्दी थपथपाया गया है तो इसका वही प्रभाव होता है जो रिसीवरको उठा कर संख्या २ में चक्रको घुमानेसे होता है इस प्रकार गलत नम्बर मिल जाता है। अतः इस प्रकारकी शिकायतें अकसर सुननेको मिलती हैं। —बीरेंद्र नारायण

गुच्छी

कुकुरमुत्ता, धरतीफूल, खुमी, भूफोड़, ढिंगरी, गगनधूल, आकाशधूल, छत्र, छत्रक, छत्रा, मधुरिका, गुच्छी ये सब एक ही जातिके पौधे हैं। इनमेंसे कुछ खाने योग्य होते हैं, कुछ अत्यन्त विषैले होते हैं और कुछ विषैले न होते हुए भी खानेके योग्य नहीं होते। इनमेंसे गुच्छी वह जाति है जो तरकारीकी तरह राँध कर खाई जाती है। अँग्रेज़ीमें मशरूम (mushroom) शब्द साधारणतः सभी प्रकारके छत्रकोंके लिये प्रयुक्त होता है। परन्तु कुछ लोग अखाद्य छत्रकको टोडस्टूल (toadstool) कहते हैं। खाने योग्य छत्रकोंको अँग्रेजीमें विशेष नाम न देकर बहुधा एडिब्ल मशरूम (edible mushroom) ही कहते हैं।

भारतवर्षके अन्य प्रदेशोंमें गुच्छी साधारणतः काश्मीरसे आती है, परंतु कई स्थानोंमें यह उगायी भी जाती है। बीज बेचने वाली बड़ी दूकानोंसे गुच्छीके बीजाणु खरीदे जा सकते हैं। यूरोपमें गुच्छी उपजानेका व्यवसाय खूब प्रचलित है।

स्वयं गुच्छीकी कई उपजातियाँ हैं, परंतु साधारणतः जो गुच्छी मिलती है वह छातेके आकारकी होती है

चित्र १—भक्ष्य धरतीफूल।

(इसका चित्र यहाँ नहीं दिया गया है)। बीचमें दण्ड होता है जो एक इंच तक मोटा और दो से पाँच इंच तक लंबा होता है। टोपी मोटी होती है। तने पर एक छल्ला-सा रहता है। टोपीकी नीचे वाली सतह पर पतले-पतले पत्र होते हैं जो प्रायः केन्द्रसे छोर तक जाते हैं। जब गुच्छी छोटी रहती है तब टोपी बन्द रहती है और इसका
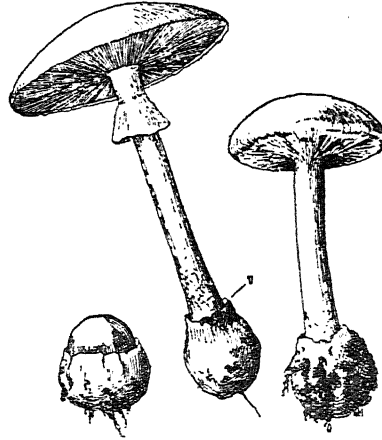
चित्र २—विपाक्त धरतीफूल।

छोर तनेसे जुड़ा रहता है। जब गुच्छी बढ़ती है तो टोपी भी बढ़ती है और एक समय ऐसा आता है जब टोपी तने से छूट जाती है। उस समय टोपीके छोरका एक अंश टूट कर तने पर लगा रह जाता है और इस प्रकार ही तने पर वह छल्ला बनता है जिसकी चर्चा ऊपरकी गयी है।

टोपीका नीचे वाला भाग कुछ समयमें काला हो चलता है। इसका कारण यह है कि उससे बीजाणु बन चलते हैं। बीजाणुओंकी बनावट सच्चे बीजसे भिन्न होती है और ये बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। एक छत्रकसे जितने बीजाणु निकलते हैं वे गिनतीमें प्रायः असंख्य होते हैं। ये बीजाणु हवामें उड़ते रहते हैं (संभवतः इसी कारण उनका नाम गगनधूल भी है) और कहीं जा गिरने पर अनुकूल जल वायु पाकर उनमेंसे नये छत्रक उगते हैं। खाने योग्य छत्रक (गुच्छी) के बीजाणुमें बादाम-सी सुगंधि रहती है।

थोड़े वर्ष पहले तक गुच्छीका उगाना बड़ा रहस्यमय समझा जाता था। लोग जानते ही नहीं थे कि क्या करनेसे

फसल अच्छी होगी। कारण यह था कि गुच्छीके उगाने पर प्रयोगशालामें कभी कोई खोज नहीं की गयी थी। परंतु अब सब बातें समझ ली गयी हैं और कोई कारण नहीं है कि परिश्रमी और समझदार व्यक्ति गुच्छियोंकी खेतीमें सफलता न प्राप्त करें। हाँ, यह अवश्य है कि तापक्रम, जल, खाद आदिमें थोड़ी ही कमी-बेशीसे गड़बड़ी हो जाती है। इसलिए सब काममें बड़ी सावधानी चाहिए।

बाहर खेतोंमें गुच्छीकी खेती विशेष सफलतापूर्वक नहीं की जा सकती है, क्योंकि वहाँ तापक्रम अपने वशमें नहीं रहता। इसे ऐसे तहखानेमें उगाना चाहिए जहाँ धूपसे रक्षा हो सके।
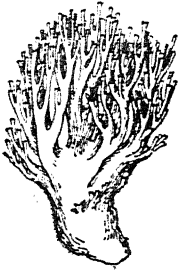
चित्र ३—भक्ष्य धरतीफूल।

गुच्छीको अच्छे खादकी बड़ी आवश्यकता रहती है और गोबर या लीदकी खाद इसके लिये उपयुक्त है। खाद काफ़ी सड़ी हो; कच्ची खादमें फफूँद (भुकड़ी) लगने लगती है। गोबरमें पुआल या लकड़ीका चूरा (बुरादा) या छिलन (जो आरा या रंदा चलानेमें निकलता है), मिला दो। ताज़ा गोबर और पुआल आदिको एक ढूहमें रख दो और सूखने न दो; तब वह शीघ्र सड़ने लगेगा। कुछ ही दिनोंमें भीतरका तापक्रम १३०° से १४०° फ़ारनहाइट तक पहुँच जायगा। तब इसको अच्छी तरह उलट-पुलट देना चाहिये। यदि आवश्यकता प्रतीत हो तो पानी भी छिड़क देना चाहिये। इस प्रकार खादको बीस-पचीस दिन तक खूब सड़ाना चाहिये। तब इसे क्यारियोंमें डालना चाहिये।

बीजाणुको किसी अच्छी विश्वसनीय दूकानसे मोल लेना चाहिये। पुराने बीजाणु मर जाते हैं और उनसे पौधे नहीं उग पाते।

तापक्रमको वशमें रखना ही सबसे अधिक आवश्यक बात है। सबसे अच्छा तापक्रम है ५४° फारनहाइट। तापक्रम ५२° से कम न होने पाये (कभी-कभी ५०° हो जाय तो कोई विशेष हानि न होगी), और ५६° से अधिक न होने पाये। ६०° से अधिक तापक्रम पर बड़ी हानि होती है। यही कारण है कि गुच्छी प्राकृतिक ढंगसे केवल ठंडे देशोंमें ही होती है। परन्तु यदि तहखानेके दरवाजे रातको और प्रातःकाल खुले रक्खे जायँ और दिनमें प्रायः बन्द रक्खे जायँ तो बहुतसे स्थानोंमें जाड़ेमें तहखाने का तापक्रम ५४° के आस-पास रक्खा जा सकता है और इस प्रकार गुच्छियोंकी एक फसल तैयारकी जा सकती है। ६०° तक तापक्रमको पहुँचने पर, चाहे यह तापक्रम एक ही दो दिन क्यों न रहे, गुच्छियाँ बहुत जल्द बढ़ जाती हैं, परन्तु उनमें गूदा नहीं रहता और वे खाने योग्य नहीं रह जातीं। ५० से कम तापक्रम पर वे इतना धीरे-धीरे बढ़ती हैं कि आर्थिक लाभ करना कठिन हो जाता है। समय-समय पर एक दो दिनके लिये तापक्रम ५०° या कुछ कम हो जानेसे गुच्छियोंको कुछ लाभ अवश्य होता है, क्योंकि इस रीतिसे भारी गुच्छियाँ उत्पन्न होती हैं।

गुच्छियोंके लिये खाद खूब चाहिये। एक प्रकारसे वे केवल खाद पर ही उगायी जाती हैं। पानी इतना देना चाहिये कि भूमि नम रहे, परन्तु तर न रहे; यदि थोड़ी-सी मिट्टीको उठा कर मुट्ठीमें दबाया जाय तो हाथ पानीसे भीग जाय, परन्तु पानी न टपके। तहखानेमें वायुके आवागमन के कारण ऊपरी मिट्टी कुछ सूख अवश्य जाती है। इसलिये प्रतिदिन एक बार कुछ पानी छिड़क देना चाहिये। वायुमें भी सीड़ रहे, ७५% सीड़ ठीक है। यदि वायु अधिक सूखा रहे तो तहखानेकी दीवारों और छत पर भी पिचकारी से पानी छिड़कना चाहिये।

एकदम बन्द तहखानेमें गुच्छियाँ स्वस्थ नहीं रह सकतीं, इसलिये वायुके आने-जानेका प्रबन्ध अवश्य रहे। फिर ऐसा प्रबन्ध भी होना चाहिये कि फालतू पानी बह कर बाहर निकल जा सके। इसके अतिरिक्त पौधोंके उगने पर सब सड़ी-गली और टूटी-फूटी गुच्छियोंको निकाल कर फेंकते रहना चाहिये। रोगग्रस्त पौधोंको जड़ सहित उखाड़ कर फेंक देना चाहिये और वहाँ बाहरसे लाई गई मिट्टी डाल देनी चाहिये। जहाँ कहीं भी कीड़े-मकोड़े दिखलाई

पड़े उनको पकड़ कर या फँसा कर नष्ट कर डालना चाहिये और हो सके तो ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये कि कीड़े उत्पात न मचा सकें।

तहखाना यदि दोहरी दीवारोंका बने तो अच्छा होगा। इस प्रकार तहखानेकी हवाके नम रहने पर भी दीवारों पर पानी नहीं जमता। बहुतसे लोग टाँड़ लगवा कर उसी पर गुच्छी बोते हैं। इस प्रकार एक तहखानेमें कई क्यारियाँ बन सकती हैं, परन्तु यदि केवल फर्श पर गुच्छी उगाई जाय तो तहखानेकी ऊँचाईको ७ फुटसे अधिक होनेकी आवश्कयता नहीं है। क्यारियोंके ऊपर बहुत जगह रहनेसे कठिनाई यह होती है कि उसका तापक्रम और आर्द्रताको वशमें रखना कठिन हो जाता है।

वायुका आवागमन कितना रहे? इस प्रश्न पर विचार करते समय ध्यान रखना चाहिये कि वायुका आवागमन कम होनेसे गुच्छीके पौधे मर जायँगे और जीवित भी रहे तो उनके तने लम्बे और टोपियाँ छोटी होंगी। इस प्रकार वे खानेके योग्य नहीं रहेंगे। अधिक हवा लगने पर कठिनाई यह होती है कि तहखानेका तापक्रम ठीक रखना कठिन होता है। वायु-आवागमन इतना हो कि प्रतिदिन क्यारियोंकी ऊपरी सतह सूख जाय और इसलिये कुछ पानी प्रतिदिन छिड़कना पड़े।

केवल बहुत थोड़ेसे स्थान ऐसे होते हैं जहाँ खुले मैदानमें गुच्छी उगाई जा सके। विशेष कठिनाई इस कारण होती है कि वायु इतना आर्द्र नहीं रक्खा जा सकता कि गुच्छियाँ स्वस्थ रहें।

क्यारियाँ और उनकी देख-रेख—जब गोबर या लीद २०-२५ दिन अच्छी तरह सड़ चुकेगा तो उसकी प्रायः सब दुर्गन्ध निकल जायगी। उसका तापक्रम भी पहलेसे कुछ कम हो जायगा। उसकी बनावट ऐसी रहेगी कि दबानेसे अब अधिक सुगमतासे उसका पिंड बन सकेगा। जब खादकी दशा इस प्रकार हो जाय तब उसे क्यारियोंमें डाला जा सकता है। अमरीका और इंगलैण्डमें क्यारियाँ ६ से ८ इंच गहरी और २½ से ४ फुट चौड़ी होती हैं। जब क्यारियोंकी दोनों ओर जानेके लिये मार्ग रहता है तो क्यारियाँ चौड़ी, अन्यथा वे सँकरी बनाई जाती हैं। फ्रांसमें सपाट क्यारियोंके बदले मेड़ बना कर मेंड़ों पर गुच्छियाँ बोई जाती हैं। चित्र ४ में सीमेंटका बना तहखाना दिखलाया गया है, और उसमें बाईं ओर क्यारियाँ और दाहिनी ओर मेंड दिखलाये गये हैं। मेंड़ बनानेमें कुछ मिहनत अवश्य अधिक पड़ती है, परन्तु इससे ऊपरी सतहका क्षेत्रफल बहुत बढ़ जाता है और उतनी ही भूमिमें अधिक गुच्छियाँ उत्पन्नकी जा सकती हैं। परन्तु जब एक-के-ऊपर-एक बने टाँड़ों पर क्यारियाँ बनाई जाती हैं तब साधारणतः सपाट क्यारियाँ ही बनाई जाती हैं। टाँड़ों पर गुच्छी उगानेसे तहखानेकी भूमि एक प्रकारसे चौगुनी या पँचगुनी विस्तृत हो जाती है, क्योंकि एक टाँड़से दूसरी टाँड़ तक केवल १½ फुट स्थान चाहिये और इसलिये बहुतसे टाँड़ लग सकते हैं।

क्यारियोंमें खाद डालनेके बाद खादको दबा देना चाहिये। कुछ लोग तो काठकी मुँगड़ीसे खादको पीट-पीट कर जमाते हैं, परन्तु ऐसा करना न तो आवश्यक है और न उपयोगी। अब खाद फिर थोड़ा-बहुत सड़ने लगती है और तापक्रम फिर बढ़ जाता है। जब तापक्रम महत्तम तक पहुँच कर कम होने लगे और ७०° या ७५° फारनहाइट तक पहुँच जाय तो बीजाणुओंको बोना चाहिए।
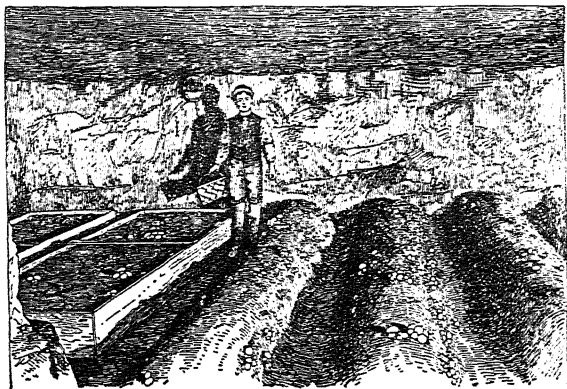
चित्र ४—सीमेंटके बने तहखानेमें गुच्छी बोआई।

अधिक तापक्रम पर बोनेसे बीजाणु मर जायँगे। अधिक कम तापक्रम पर बोनेसे बीजाणुओंके अंकुरित होनेमें बहुत समय लगेगा। बीजाणुओंके बोनेके बाद तापक्रमको धीरे-धीरे घटने देना चाहिए; एक सप्ताहमें तापक्रम ५४° फा० हो जाय।

बीजके दूकानदारोंके वहाँसे जब बीजाणु खरीदा जाता है तो वह जमा कर ईंटकी तरह बनाया रहता है। बोनेके पहले ईंटको तोड़ कर १२ टुकड़ोंमें बाँट देना चाहिये। प्रत्येक वर्ग फुट भूमिमें एक टुकड़ा बोना पर्याप्त होगा। प्रत्येक टुकड़ेको क्यारीकी सतहसे डेढ़ या दो इंच नीचे गाड़ना चाहिये। एक हाथसे टुकड़ेको पकड़े रहे और अगल-बगलकी खादको अच्छी तरह दबा दे। तब ऊपर भी मिट्टी डाल दे। ऐसा करनेसे बीजाणु ठीक गहराईसे नीचे नहीं जाने पाते। लगभग १० दिनमें बीजाणुओंके प्रस्फुटित होनेके लक्षण दिखलाई पड़ेंगे तब क्यारियोंकी सतहको एक बार फिर थोड़ा-थोड़ा दबा देना चाहिये। इस समय क्यारीकी खाद इतनी जमी रहे कि यदि उस पर कोई खड़ा हो जाय तो पैर इञ्च, दो इञ्चसे अधिक न धँसे। यदि ऊपरी सतह सूख चली हो तो पानी छिड़क देनी चाहिये। अब क्यारियों पर मिट्टी छिड़कनी चाहिये। कोई भी हल्की मिट्टी इसके लिये ठीक होगी, परन्तु बागकी पुरानी मिट्टी जिसमें कई बार खाद पड़ चुकी हो इस कामके लिये अधिक उपयुक्त होगी। इस मिट्टीमें तुरन्त पहले खाद न पड़ी हो और इसमें घास-पात भी न रहे। मिट्टीकी तह एकसे डेढ़ इंच मोटी रहे। मिट्टीको भी अच्छी तरह दबा देना चाहिये।

मिट्टी पड़ जानेके बाद क्यारियोंकी कोई सेवा न करनी पड़ेगी। अब केवल तापक्रम और आर्द्रता पर ध्यान रखनेकी आवश्यकता है। क्यारियों पर पानी आवश्यकतानुसार प्रतिदिन छिड़क देना चाहिये, परन्तु पानी कभी बहुत-सा
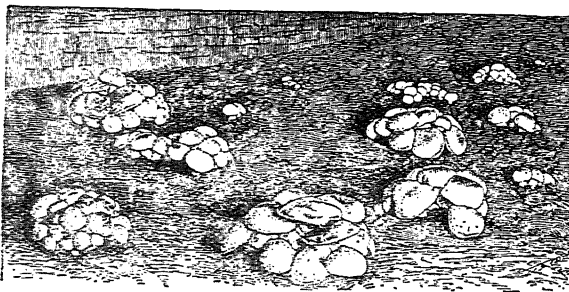
चित्र ५—गुच्छियोंकी प्रथम वृद्धि।

न देना चाहिये। छः-सात सप्ताहमें गुच्छियाँ निकलने लगेंगी (चित्र ५)। लगातार निकलते रहनेके बदले वे बहुधा पहले एक बारगी ही निकलती हैं। उनके तोड़ लिये जाने पर कुछ समय तक कोई पौधे तोड़ने योग्य नहीं रहते और तब छः-सात दिन बाद फिर प्रायः एक साथ ही बहुतसे पौधे तैयार होते हैं। एक बारकी बोआईमें महीनों तक पौधे निकलते रहते हैं।

गुच्छियोंको तभी तोड़ लेना चाहिये जब छतरीका छोर तनेसे टूटने वाला रहता है। छतरियोंके फैल जाने पर वे एक तो देखनेमें उतने अच्छे नहीं लगते और फिर छतरियोंके टूटनेका डर भी अधिक रहता है। यह न समझना चाहिये कि कुछ समय तक और पड़े रहनेसे उनकी वृद्धि होगी। वास्तवमें गुच्छियोंकी महत्तम तौल उसी समय रहती है जब छतरियाँ फैलने वाली रहती हैं।

गुच्छियोंको लोग साधारणतः ऐंठ कर जड़के पाससे तोड़ लेते हैं, परन्तु उन्हें छुरीसे काटनेमें कोई हरज नहीं होता। यदि गुच्छियोंको बेचना हो तो जड़के पास वाले भागको तनोंसे काट कर फेंक देना चाहिये और नरम बुरुशसे गुच्छियोंको इस प्रकार झाड़ देना चाहिये कि कहीं मिट्टी न लगी रहे। इस कामके लिये वे बुरुश ठीक होते हैं जो तैल-रंगोंसे रंगनेके काममें आते हैं। यदि बड़ी गुच्छियोंको छाँट कर अलग कर लिया जाय, मझोलीको अलग और छोटी गुच्छियोंको अलग तो अधिक अच्छा दाम मिल सकेगा।

उबाले आलूमें विटामिन सी

आधुनिक अनुसन्धानसे ज्ञात हुआ है कि आलू चाहे उबाला हुआ हो अथवा भूना हुआ हो—विटामिन सी प्रचुर मात्रामें पाया जाता है। यद्यपि विटामिन सी वायु एवं आँचकी प्रभावसे नष्ट होता है किन्तु तब भी उबाले हुये आलूमें उसकी मात्रा ७५ प्रतिशत सुरक्षित रहती है। उबालनेकी क्रियामें २५ प्रतिशत अथवा उससे भी कम नष्ट होता है। एक मनुष्यको जितने विटामिन सी की आवश्यकता है उसका $\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ भाग ६ छटाँक आलू द्वारा पूर्ण होता है। इसके साथ ही विटामिन बी$_1$ भी यथेष्ट मात्रामें पाये जानेके कारण इसका महत्व बढ़ जाता है। कई सप्ताहके सुरक्षित आलुओंमें ताजे आलूके बनिस्बत विटामिन सी की मात्रा कुछ कम हो जाती है।
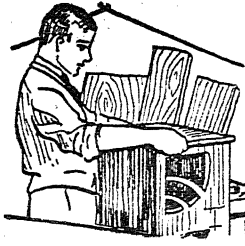
चित्र-विभूषण

कहीं-न-कहीं तुमने ऐसा चित्र देखा होगा जिसमें पात्रके शरीर पर वास्तविक कपड़ा हो और अंगों पर विशेष प्रकार-के अलंकार। ऐसे चित्रोंका निर्माण करना कुछ कठिन नहीं है। यदि इच्छा हो कि ऐसा चित्र बनायें—इस कामको चित्र-विभूषण कहते हैं (अँग्रेजीमें tinselling)—तो पहले बड़ी नापका कोई रंगीन चित्र मोल लेना चाहिये। यह चित्र कड़े काग़ज़ पर छपा हो और इसमें एक या दोसे अधिक व्यक्ति न हों। पीछे, हाथ सध जाने पर अधिक व्यक्तियों वाले चित्रोंको भी विभूषित किया जा सकता है। लोग अक्सर देवी-देवताओंके चित्रोंको ही विभूषित करते हैं। स्त्रियोंके चित्रोंको भी विभूषित किया जा सकता है, परन्तु आधुनिक पुरुषोंके चित्रोंको विभूषित करनेका परिणाम साधारणतः हास्यप्रद ही होता है, क्योंकि आधुनिक पुरुष अलंकार आदि पहनते ही नहीं हैं। यदि कोई विशेष विषय हो और इसका रंगीन चित्र न मिले तो सादे चित्र या फोटोग्राफको लेकर स्वयं रंग डालना चाहिये। तब ध्यान रखना चाहिये कि कोई भाग बिना रँगा न छूट जाय। रँगनेका काम सुरुचिपूर्ण होना चाहिये, अन्यथा शेष परिश्रम सब बेकार जायगा। रँगाई हो जाने पर, या रंगीन चित्र मोल लेने पर दूसरा काम यह होता है कि तेज़ चाकूको नोकसे या सेफ्टीरेज़रके ब्लेड की नोकसे, या तेज़ नहरनीसे चित्रके उन भागोंको काट कर निकाल दिया जाय जहाँ कपड़ा पहनाना है। इस कामको सफाईसे करना चाहिये; चित्रके कटे कोर चिकने रहें। अब इन कटे भागोंके पीछे रेशमी वस्त्र, या साटन या मखमल लगाना चाहिये। ये उचित रंगके हों और उनको इस प्रकार मोड़ा जाय या तह किया जाय कि सामनेसे वे स्वाभाविक वस्त्रके समान लगें। वे तने हुये और सपाट न रहें, वे उभरे रहें और इस प्रकार यथासंभव स्वाभाविक जान पड़ें। कपड़ेके किनारोंको गाढ़े गोंद या लेईसे चिपका देना चाहिये।

कपड़े पर तह, मोड़ और सिलाई दिखानेके लिये बहुतसे स्थानोंमें केवल रंग और बुरुशसे काम करना पड़ता है। इसके लिये कर्ताको साधारण चित्रकारीका कुछ ज्ञान होना चाहिये। तैल-रंगों और कोमल बुरुशोंका प्रयोग अच्छा है। चित्रके जो भाग काट कर निकाल दिये गये हैं उनसे पता चल जायगा कि कहाँ किस प्रकारका साया डालना चाहिये। साधारणतः जिस रंगका कपड़ा हो उसी जातिके गाढ़े रंगसे साया बनाना और धारी डालना अच्छा होता है। यदि तैल-रंगोंके बदले पानीके रंगोंका प्रयोग किया जाय तो पानीमें काफी गोंद मिला लेना चाहिये जिसमें कपड़े पर लगाने पर रंग फैले नहीं।

इसके बाद आभूषण पहनानेका काम आरम्भ करना चाहिये। इसके लिये चित्रके उचित स्थानों पर गोंद लगा कर उस पर टिकुली, सलमा-सितारा, या पन्नी आदि चमकते हुये धातु-पत्रके बने आभूषणोंको चिपका देना चाहिये। मुकुट आदिके प्रत्येक मणि, चित्रमें बने प्रत्येक आभूषण, प्रत्येक बटन, और प्रत्येक शस्त्र पर पन्नी, या टिकुली आदि, चिपकाना चाहिये। ये सब वस्तुयें चित्र-विभूषित करने वालोंकी दूकानोंमें या सलमा-सितारा वालोंके यहाँसे मोल ली जा सकती हैं। तलवार, ढाल आदि शस्त्र पर उचित रंगकी पन्नी चिपकाना चाहिये और इसके लिये उचित आकारोंको सावधानीसे पतले (ट्रेसिंग) काग़ज़ पर पहले उतार लेना चाहिये। फिर इसी ट्रेस किये काग़ज़की सहायतासे पन्नी को काटना चाहिये।

जब चित्रके सभी अंग विभूषित हो जायँ तो चित्रको कड़ी दफ्ती पर चिपका कर उसे अच्छे फ्रेममें लगा देना चाहिए।
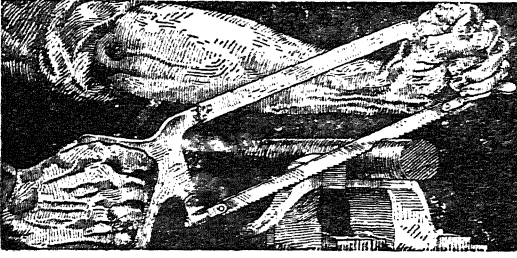
अपनी बाइसिकिल ठीक रक्खो

पेट्रोलकी कमीके कारण अब बाइसिकिलोंकी फिर बड़ी क़दर होने लगी है। लड़कोंमें तो साइकिल ही एक मात्र सवारी है, परन्तु बहुधा देखनेमें आता है कि साइकिल खड़खड़ाती रहती है चूँ-चूँ करती रहती है या भारी चलती है, और सायकिलका मालिक यही नहीं जानता कि क्या करें। नीचेके आदेशोंका पालन करनेसे बाइसिकिलके उपयोगमें अधिक आनन्द आयेगा और बाइसिकिल अधिक दिन चलेगी भी।

तेज़ साइकिल चलानेमें और साइकिलके रेसोंमें विशेष आनन्द आता है, परन्तु इसके लिए यह आवश्यक है कि साइकिल ठीकसे कसी हो; किसी पुरज़ेके छूटक कर निकल जानेका डर न रहे।

साइकिलका प्रयोग अत्यन्त स्वास्थ्यप्रद है। पैदल चलना और अच्छा भले ही हो, परन्तु कौन दो-चार मील पैदल चल कर अपने स्कूल या पाठशाला जाया करेगा?

आधुनिक बाइसिकिल लाखों मील चलनेके लिए बनी रहती हैं। यदि इसकी देख-भाल बराबरकी जाय और समय-समय पर उन पुरज़ोंको बदल दिया जाय जो चलते-चलते घिस जाते हैं तो बाइसिकिलको बीसों वर्ष तक चलना चाहिए।

निम्न बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए, सफाई, तेल देना और कसना। यह काम प्रत्येक २०० मील चल लेने पर, या प्रत्येक महीनेके अन्तमें—इनमेंसे जो अवसर पहले आवे—करना चाहिए। पीडल, पहिया, क्रैंक और स्टयरिंग वाले बेयरिंगोंमें दो-चार बूँद तेल देना चाहिए। यह तेल मोटरमें देने वाला पतला तेल हो या बाइसिकिल में देनेके लिए विशेष रूपसे बना हो। यदि पिछले पहिएमें केन्द्र वाला ब्रेक हो (बहुत कम बाइसिकिलोंमें ऐसा रहता है) और वह फिसलता हो तो उसमें मिट्टीका तेल डाल कर खूब नचाओ। जब सब मैल कट कर बाहर निकल आये तो एक या दो बूँद—अधिक नहीं—बाइसिकिलका तेल डाल दो। सिलाईकी मशीनोंमें पड़ने वाला पतला तेल बाइसिकिलके लिये उपयोगी नहीं होता।

मासिक परीक्षामें प्रत्येक तीलीकी जाँच होनी चाहिए। यदि कोई ढीली हो तो उसे तुरन्त कस लेना चाहिए। तीलीके उस सिरे पर जिधर पहियेकी परिधि रहती है चौपहल लम्बी ढिबरी (निपुल, nipple) रहती है। इसीको ऐंठनेसे तीली कसी जा सकती है, इसके लिये विशेष छोटा-सा रिंच रहता है। इससे बड़ी सुविधा होती है। साधारणतः स्क्रू रिंचसे भी यह काम हो सकता है, परन्तु इससे एक तो समय नष्ट होता है, दूसरे यह डर रहता है कि कहीं तीली इतनी न कस उठे कि चूड़ी झूठी पड़ जाय। तीली कसते समय ध्यान रखना चाहिए कि पहिया तिरपट न हो जाय। इसके लिए पहिएको घुमाना चाहिए और देखना चाहिए कि परिधिके हिसाबसे पहिया डग तो नहीं खाता (अर्थात् हटता-बढ़ता तो नहीं जान पड़ता)। यदि पहिया सच्चा न हो तो एक-एक छोड़ एकान्तर तीलियोंको ढीला करने और बीच वाली तीलीको कसनेसे पहिया सच्चा किया जा सकता है। अन्तमें देख लेना चाहिए कि सब तीलियाँ कसी रहें। बहुधा अच्छा यही होता है कि यह काम किसी चतुर कारीगरसे करा लिया जाय, क्योंकि यह काम कुछ टेढ़ा है।

चेनकी प्रत्येक कड़ीकी जाँच करनी चाहिए। यदि कोई कड़ी खराब हो गई हो या बहुत घिस गई हो तो उसे बदल देना चाहिए। ऐसी कड़ियाँ बिकती हैं जो खटके पर रहती हैं और उनको रिवेट नहीं करना पड़ता। बहुतसे लोग जब तक चेन टूटता नहीं है उसकी परवाह नहीं करते। परन्तु यदि कभी चलाते समय चेन टूट जाय तो सवार गिर सकता है, या यदि किसी स्थान पर आती हुई मोटर या या सवारीके सामनेसे हटनेके लिए पीडल पर विशेष अधिक

जोर लगाया जाय और उस समय चेन टूट जाय तो दुर्घटना हो जा सकती है।

चेनको साफ करनेके लिए कड़े बुरुश और मिट्टीका तेल काममें लाना चाहिए। खूब साफ़ कर लेने और पोंछ लेनेके बाद प्रत्येक कड़ीमें संधियोंके पास और बगलकी पत्तियोंकी भीतरी सतह पर ज़रा-ज़रा तेल देना चाहिये। एक-दो मिनट तक चेन चला कर फालतू तेलको पोंछ देना चाहिए। तेल अधिक लगे रहनेसे सब जगह गर्द चिपकता है और यह गर्द घूम-फिर कर भीतरी बेयरिंगोंमें पहुँच जाता है। केवल तेल देनेके बदले यदि तेल और ग्रैफ़ाइट दिया जाय तो और भी अच्छा है। इसके लिए तेल देनेके बाद चेनके रोलरों पर और चेनको चलाने वाले चक्रकी दाँतियों पर ग्रैफ़ाइटका टुकड़ा रगड़ना चाहिए। केवल ग्रैफ़ाइटसे काम न चलेगा क्योंकि यह चेनके बेयरिंगों तक नहीं पहुँच पाता, परन्तु केवल तेल ही दिया जाय तो काम अच्छी तरह चल सकता है।

यदि चेनमें बहुत मिट्टी और गर्द पड़ गया हो उसे साइकिल परसे उतार कर मिट्टीके तेलमें भिगाना चाहिए। फिर चेनको इधर-उधर मोड़ कर और चला कर तथा बुरुशसे रगड़ कर और अन्तमें कपड़ेसे पोंछ कर चेनको साफ़ कर लेना चाहिये।

यदि चेन चलाने वाले चक्रकी दाँतियाँ बहुत घिस गई हों तो चक्रको बदल देना चाहिए, विशेष कर यदि चेनको भी बदलना हो। यदि चेन चलाने वाला चक्र कभी चोट खानेसे ऐंठ गया हो तो उसे सीधा करा लेना चाहिए।

साइकिल पर चेन कभी बहुत ढीला न रहे। चेनके ऊपरके भागको तानने पर स्वभावतः नीचेके भागका झोल बढ़ जायगा, परन्तु चेन कभी भी इतना ढीला न हो कि ऊपरके भागको तानने पर नीचेका चेन सरल रेखाकी अपेक्षा आधा इंचसे अधिक लटके। चेनको कसनेके लिए पिछले पहिएकी धुरीकी ढिबरियोंको ज़रा-ज़रा ढीला करके चेनके तानने वाले बाल्टुओंकी ढिबरियोंको कसना चाहिए।

पहिएको घुमा कर और इस प्रकार चेनको धीरे-धीरे चला कर देखना चाहिए कि किसी स्थितिमें चेन बहुत कसा तो नहीं हो गया। यदि हो जाता हो तो समझना चाहिए कि चेनको चलाने वाले चक्रकी कुछ दाँतियाँ, या चेनकी कुछ कड़ियाँ, या दोनों बहुत घिस गई हैं और आवश्यकता हो तो उनको बदल देना चाहिए।

सफ़ाई करनेके बाद अगले और पिछले पहियों, पीडलों क्रैंक, और स्टियरिंगके बेयरिंगोंकी जाँच करनी चाहिए। यदि हचक हो तो उनको कसना चाहिए, परन्तु केवल इतना ही कसना चाहिए कि हचक मिट जाय। इन सबको कसनेके लिए कोन लगा रहता है या अन्य प्रबन्ध रहता है। पिछले पहिएकी धुरीको कसने वाला कोन सदा बाईं ओर रहता है।

यदि बेयरिंगके भीतर बहुत मैल जम जाय तो साइकिलको इस स्थितमें रख देना चाहिए कि धुरी खड़ी (ऊर्ध्वाधर) स्थितिमें आ जाय। तब कोनको ढीला कर (उल्टी ओर घुमा कर) मिट्टीका तेल इतना देना चाहिए और उस भागको इतने समय तक घुमाते रहना चाहिए कि तेल सब बह कर दूसरी ओरसे निकल जाय।

इस दो सौ मीलके अन्तकी परीक्षामें सैडिलको भी आवश्यकतानुसार कसना चाहिये। इसके अतिरिक्त सब ढिबरियोंको कस कर देखना चाहिये कि कोई ढीला तो नहीं हो गया है। इसकी विशेष आवश्यकता नयी बाइसिकिलोंमें रहती है। कभी-कभी तो पुरजे आप-से-आप ढीले हो कर रास्तेमें गिर पड़ते हैं। सीट इतनी ऊँची होनी चाहिए कि पीडलकी नीचतम स्थितिमें इसे एँड़ीसे छुआ जा सके। हैंडिलकी मूठें सैडिलसे न ऊँची रहें और न नीची। इस स्थितिमें सवारको जरा आगे झुकना पड़ता है, और यही स्थिति सुविधाजनक होती है।

फ्रेमको भी अच्छी तरह साफ़ कर लेना चाहिये। यदि उस पर पालिश कर दिया जाया करे तो फ्रेमकी चमक बहुत दिनों तक बनी रहेगी। पालिश उसी पदार्थसे करना चाहिये जिससे मोटरों पर पालिशकी जाती है। यह मोटरोंकी दूकानों पर बिकता है। साधारणतः यह मोम और तारपीन तथा कुछ अन्य पदार्थोंसे बना रहता है। निकलकी क़लई किये भागोंको ऐसे स्वच्छ चीथड़ेसे पोंछना चाहिए जिसमें जरा-सा तेल लगा रहे।

वर्षमें एक बार, हो सके तो बरसातके बाद, बाइसिकिल को खोल कर साफ़ करना चाहिए। तब प्रत्येक धुरी और बेयरिंगकी पूरी जाँच होनी चाहिए। उन्हें मिट्टीके

तेलसे साफ़ करके, नरम पेट्रोलियम जेली या हल्के ग्रीज़ से बेयरिंगको भर कर फिरसे फिट कर देना चाहिए। घिसे पुरजोंको इस समय बदल देना चाहिए। कोई पुरजा उल्टा-पुल्टा न लगे। इस अभिप्रायसे यह आवश्यक है कि एक बेयरिंग ठीक कर ली जाय तब दूसरी खोली जाय। फिर, प्रत्येक बेयरिंगके पुरज़े उसी क्रमसे रक्खे जायँ जिस क्रमसे वे खोले गए थे। विशेष कठिनाई केवल केन्द्र वाले ब्रेकोंको खोलनेमें पड़ती है। पहियोंकी परिधिमें अक्सर मुरचा लग जाता है जो ट्यूबको काट डालता है। मुरचेको खुरच कर और अन्तमें रंगमारसे अच्छी तरह रगड़ कर पहिएकी भीतरी सतहको बढ़िया एनामेलसे या मोटरकी दूकानों पर बिकने वाले रिम-पेंटसे रंग देना चाहिए और नया फीता लगा देना चाहिए। ट्यूब रंगमें न चिपके इस उद्देश्यसे पहले तो रंगको खूब सूख जाने देना चाहिये, दूसरे इस पर फ्रेंच चॉक पोत कर तब ट्यूब चढ़ाना चाहिए। एनामेलके अच्छी तरह सूखनेमें १ सप्ताह और रिम-पेंटके सूखने में १ घंटा लगता है।

टायरोंमें हवा पूरा भरा रहे। उनमें ५० से ६० पाउंड का प्रेशर रहना चाहिए। हवा इतनी हो कि खराब-से-खराब सड़क पर चलनेमें भी जब पहिया हचके तो पहिएके लोहे और सड़कके बीचमें रबड़ कचट न जाय। पहियोंमें हवा कम भरे रहनेसे टायर और ट्यूब दोनों शीघ्र खराब होते हैं।

ट्यूबको मरम्मतके बाद टायर चढ़ाते समय विशेष ध्यान रखना चाहिए कि टायर और लोहेके बीच ट्यूब दब न जाय।

साइकिलको कभी धूपमें न छोड़ना चाहिए। दूसरे आदमीको भी चढ़ा लेना बुरा है, क्योंकि साइकिल वस्तुतः एक आदमीके चढ़नेके लिए बनी रहती है।

सबसे बड़ा अंडा

न्यूयार्कके अजायबघरमें एक ऐसा अंडा है जिसे वहाँ के लोग 'अंडा-सम्राट' कहते हैं। यह संसारका सबसे बड़ा अंडा है और अफ्रीकामें पाया गया था। कहा जाता है यह अंडा "एपियार्निस" नामक चिड़ियाका है जो अब नहीं दिखलाई पड़ती। यह चिड़िया बहुत बड़ी और हाथीके बच्चे के डील-डौलके समान बताई जाती है। उपरोक्त अंडेकी परिधि ३० इंचसे कुछ अधिक है। रंग पीलापन लिये हुए है। इस अंडेमें १० सेर ४ छटाँक जल सरलतासे भरा जा सकता है।

गन्धकरहित बारूद

गत मासमें गोला-बारूद उत्पादनके बारेमें जो उल्लेखनीय उन्नति हुई है वह गन्धकरहित बारूदके निर्माण की है। यह बारूद पहले विदेशोंसे आती थी किन्तु अब गोला-बारूदके एक भारतीय कार्यालय ही में इसका निर्माण आरम्भ हो गया है। कारतूस आदिका उत्पादन करनेके लिये प्रथम बार जो इस प्रकारकी गंधकरहित बारूद भेजी गयी थी उसे सैनिक अधिकारियोंने स्वीकार कर लिया है। अब इसका निर्माण भारतके अंदर ही अधिक मात्रामें होने लगा है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६ | मकर, संवत् १९९९ । जनवरी, सन् १९४३ | संख्या ४

सपेरा बीन बजाता है

[श्रीयुत रामेशबेदी आयुर्वेदालङ्कार]

चौराहे या पार्कमें किसी वृक्षके नीचे, जहाँ लोगोंका आना जाना हो, एक हिन्दू जोगी*—सपेरा बीन बजाना आरम्भ करता है। छोटेसे तूम्बेमें ऊपर और नीचे निकले हुये नड़के दो खोखले टुकड़ोंमें से निकलती हुई बीनकी आवाज़को आपमेंसे हर एक व्यक्ति जानता होगा और उसके बजाये जानेके उद्देश्यको भी। यह आवाज़ या संगीत निठल्ले आदमियों और बच्चोंको सपेरेके चारों ओर इकट्ठा करनेमें जादूका सा काम करता है। दो गोल चपटी पिटारियोंको सामने रख कर वह अपनी बीन पर खेलना आरम्भ करता है। संगीत विचित्र और भन-भनसा होता है जो दर्शकोंको प्रकट कर रहा होता है कि कुछ अद्भुत बात होने लगी है। जोगीके दोनों हाथ नड़ की नलकियोंके छिद्रों पर खेल रहे हैं। संगीतको अधिक रोचक बनानेके लिये वह बीच-बीचमें एक लम्बा स्वर खींच लेता है, जिसके बाद लहरा बदल जाता है। सपेरे बीनकी स्वरोंको लहरा कहते हैं। अच्छी संख्याओंमें लोगोंके जमा हो जाने पर वह बांसकी एक छड़ीसे पिटारियोंके ढक्कन उठाता है और अन्दरसे उलझे हुये शरीरोंके एक समूहसे अनेक विचित्र आकृतियाँ उठ आती हैं। ये भयावह दर्वीकर (cobra) को अनेक जातियोंके जीव हैं। उनका फन फैला हुआ है। फनियोंकी आँखें शीशेकी सी स्थिरताके साथ सपेरेको घूर रही होती हैं और उनकी प्रकीर्ण ग्रीवाओंके ऊपर ऐनक के आकारके चिन्ह ऐसे प्रतीत होते हैं कि प्रदर्शनीके लिये एकत्रित लोगों पर भूतोंके से डरावने रूपमें प्रकट हो रहे हैं। फन फैला कर खड़ी हुई आकृतियाँ प्रकट रूपमें अब सम्मोहित कर ली गई हैं। बीन पर जोगीका लहरा तेज़ हो जाता है। संगीतके समय सपेरे का शरीर दाएँ-बाएँ झूमता है। सांप भी उस गतिका अनुसरण करते हैं

* सपेरेके कपड़े आम तौर पर भगवे रङ्गके होते हैं जैसे कि सन्यासियोंके। साथ ही सांपोंको अभिमन्त्रित करनेकी शक्ति भी इनमें समझी जाती है इसलिये उन्हें अनेक प्रान्तोंमें जोगी या योगी कह दिया जाता है।

और सपेरेकी गतिकी दिशामें झूमने लगते हैं। दर्शक समझते हैं, भयावह सांप बीनकी लहरों पर मस्त होकर झूम रहा है। प्रसिद्ध दर्वीकर नृत्य (cobra dance) अब आरम्भ है।

अवरुद्ध निःश्वाससे दर्शक सांपोंके इस जादूको देख रहे हैं। इतनेमें अचानक ही भयकी एक लहर तमाशाइयों में फैल जाती है। एक पिटारीमेंसे वक्रागतिसे एक जीव सरक रहा होता है। इसका सिर चपटा है और यह इतना निर्दयी है कि पहली दृष्टि ही सहज भावसे इसकी भयङ्कर घातकताको बता देती है। भारतमें प्रत्येक प्रान्तके सपेरे इसे अलग-अलग नामसे जानते हैं और अधिक पढ़े-लिखे लोगोंमें यह रसल्स वाइपर* (Russell's viper) नामसे ज्ञात है—ऐसा सरीसृप जिसने मानवीय जीवनके नाश करनेमें भयावह ख्याति प्राप्त कर ली है। प्रतिष्ठाके उसी अव्याहत भावसे सपेरा फुर्तीसे आगे पहुँचता है और इस जीवको गरदनसे दबोच लेता है। जोगीके दूसरे हाथ से एक फड़फड़ाती मुर्गीका वहाँ प्रवेश होता है। चीं-चीं करते हुये विष्किरके साथ सांपका मुख लगा कर वह सरीसृपको विश्राम करनेके लिये छोड़ देता है। भीड़ पर भय की एक सिरहन दौड़ जाती है और मुर्गी ज़मीन पर फेंक दी जाती है, जहाँ वह कुछ चण तक पंखोंको फड़फड़ाती है तब इसकी रक्तवाहनियोंके अस्पष्ट धमन ही शेष रह जाते हैं। सांप टोकरियोंमें बन्द किये जायँ उससे पहले ही मुर्गी मर चुकी है। अपने दर्वीकरोंकी शक्तिको दर्शकों पर प्रदर्शित करनेकी इच्छाको जोगी मौन भावसे व्यक्त करता है। इतनेमें ही भीड़में से अधिक सिर हिलते हैं कुछ सिक्के खनखनाते हैं और प्रदर्शन समाप्त हो जाता है।

× × ×

सपेरेके उस तमाशेको देखते हुये हममें से अधिक लोगोंको भय और अभिभूत होनेकी एक अनुभूति हुई होगी। इस उदाहरणमें हमने सपेरेके पास सांपोंकी दो सुपरिचित जातियाँ देखी थीं, जिन्होंने भारतकी मृत्यु संख्याको बीस हजार प्रति वर्ष बढ़ा दिया है। सपेरेका सांपों पर स्पष्टतया पूर्ण नियन्त्रण था। यहाँ यह प्रश्न उठता है सांपोंको जादूसे वशमें कर लेना क्या कोई विद्या है, और यदि है, तो वह कैसे सीखी जा सकती है ?

सर्प-विद्या सीखनेके लिये सांपोंका पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। उनकी जातियों और आदतोंका सूक्ष्म अध्ययन भी होना ही चाहिये।

प्रत्याक्रमणमें फनियर सांप (दर्वीकर) की स्वाभाविक प्रवृत्ति है फन फैला कर खड़े हो जाना। इस स्थितिमें आकर वह अपने आक्रान्ताकी दायें-बायें झूमनेकी गतियों और प्रत्येक गतिका अनुगमन करता है। जोगीका झूमता हुआ शरीर फणीको भी वैसी ही गति करनेके लिये बाध्य करता है, क्योंकि आक्रमण करनेके लिये उसे अपनी स्थिति बदलनी होती है। यही सर्प-नृत्यका स्पष्टीकरण दिया जा सकता है। बीनके मधुर स्वर केवल दर्शकोंकी कल्पना पर असर पैदा करते हैं और यदि अभिमन्त्रित (?) स्वर बन्द हो जाय तो नृत्य बिना किसी व्यवधानके चलता रहेगा।

हमारे इस कथनकी सत्यताके लिये आप सपेरेकी हर एक चेष्टाको गौरसे देखिये। कुछ देर बीन बजानेके बाद जब वह पिटारोंके ढक्कनको उठाता है तो आवश्यक नहीं कि सांप एक दम खड़े हो जायं। सपेरा हाथसे उनके शरीरको छू कर उन्हें उत्तेजित करेगा और तब वे 'नृत्य' की लहरमें आयेंगे। जिस समय संगीत चल रहा होता है या फणी नृत्य कर रहे होते हैं, उस समय यदि सपेरा हाथ आगे बढ़ाता है, तो सांप झट उस पर चोट करते हैं जो यह संकेत करता है कि सांप 'जादूगर' की प्रत्येक गति के अनुसार ही हिल रहे हैं।

सर्पशालासे आप दर्वीकर लीजिये सपेरेकी तरह आप उसे छड़ी या हाथसे उत्तजित कीजिए। वह फन फैला कर खड़ा हो जायगा। फैले हुये हाथकी अंगुलियोंको अन्दरकी ओर ज़रा मोड़ कर दर्वीकरके फन जैसा आकार बना लीजिये। इस बांहको सांपके आगे सपेरेकी तरह दायें-बायें हिलाइये। वह भी ठीक उसी तरह फन हिलाने लगेगा जिस तरह सपेरे ने अभी अपनी बीन पर सांपोंको नचाया था। बाहु स्थिर करने पर वह भी निश्चल खड़ा रह जायगा, सांपके पास ले जाने पर वह उस पर चोट करेगा। फिर अगल-बगल हिलायेंगे, तो वह भी वैसे ही झूमने

*संस्कृत नाम मण्डली है। मण्डली शीर्षकमें देखें।

लगेगा। आपको बीन या किसी बातकी आवश्यकता नहीं होगी।

आपने यह भी देखा था कि क्रूर मण्डली सर्प रसल्स वाइपर) के काटनेसे मुर्गी मर गयी थी, यह सत्य है। फिर सपेरे ने जादूके बलसे उस डरावने जीवको पकड़ा था? आप प्रश्न करेंगे। नहीं, जोगीके पास कोई ऐसा जादू नहीं, जड़ी या मंत्र नहीं अथवा उसकी अँगुलियोंमें कोई ऐसी सम्मोहिनी शक्ति नहीं, जो सांपको वशमें कर सके। उसके पास जो भी शक्ति है उसे हम हस्तचातुर्य कह सकते हैं। इतनी तेज़ीसे उसकी अँगुलियाँ गरदनको दबोच लेती हैं कि सांपको काटनेका अवसर ही नहीं मिलता।

× × ×

आप किसी सपेरेसे उसके वंशका इतिहास पूछें। वह बतायेगा कि उसके सब पुरखे उनके खेल-साथीके हाथों अप्रत्याशित मौत मरे हैं। अनेक बार सुननेमें आता है कि एक ही सपेरेके पास बीसियों साल रह कर भी उसका खेलका साथी दर्वीकर उसे मौतकी सज़ा देनेसे न चूका, जब कि उसके मालिकका कोई दोष न था। इन तथ्योंको देखते हुए विश्वास किया जाता है कि सांप कभी पाले नहीं जा सकते। यहाँ मैं कुछ और उदाहरण देता हूँ।

एक युवा दर्वीकरके विषैले दांतोंको तोड़ कर उसे पालनेकी आशासे मैंने मेज़की दराज़में जगह दी। कुछ दिनों तक, वह भाग न जाय, इसकी पूरी सावधानी रखी गई। कुछ दिनों बाद वह दराज़के पिछले छिद्रमेंसे स्वयं बाहर निकलता, कमरेमें घूमा करता और स्वेच्छासे दराज़में घुस जाता। मेंटकोंको वह शौकसे खाता। चूहेके सद्यः जात बच्चे एक बार उसे खानेको दिये गये। सबके सामने ही वह एक-एक करके उन्हें चट कर गया, यद्यपि सामान्यतया बन्दी होने पर सांप मनुष्यकी उपस्थितिमें कम ही खाते हैं। इसी तरह गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ीमें मैंने अजगरोंको आश्रमके अहातेमें रखा है। इनके लिए जो पिंजरा रखा गया, उसके अन्दर और बाहर वे स्वेच्छासे आते-जाते थे और आश्रमके विद्यार्थियों तथा आश्रम-मृगसे भी कुछ नहीं बोलते थे। परन्तु कुछ दिनों बाद ये अजगर भाग जाया करते और इन्हें फिर पकड़ लिया जाता था।

इन उदाहरणों पर जब हम विचार करते हैं तो सांपों के पालतू स्वभावके सम्बन्धमें किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुँचते। पहले जो उदाहरण दिये गये हैं, उनमें सांपके काटनेका कारण उसे किसी प्रकारकी उत्तेजना देना प्रतीत होता है। खेल करते हुए अपने मालिक द्वारा वह अनावश्यक रूपसे परेशान किया गया और तब क्रोधमें उसने सपेरेको काट लिया होगा।

× × ×

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो कुत्ते, बन्दर और कुछ दूसरे जानवरोंको बहुत जल्दी पालतू बना लेते हैं। कुत्ते पालने वाले जानते हैं कि जब घरमें कोई अजनबी व्यक्ति आता है तो बुद्धिमान कुत्ता उसके लिए प्रेम, उदासीनता, नापसन्दगी या क्रोध दिखाता है। हम आपसमें दैनिक व्यवहारमें इस बातको रोज़ देखते हैं। जिन्हें हमने कभी नहीं देखा, पहली बार मिलने पर ही उनमेंसे किसीके लिए हममें सहसा प्रेमके भाव उद्यत हो सकते हैं और कुछके प्रति हम सर्वथा उदासीन रहते हैं या उन्हें हम पसन्द नहीं करते। क्या यह सम्भव नहीं कि कुछ प्राणियोंमें इस प्रकार आकृष्ट और अपकृष्ट होनेकी बुद्धि मनुष्यसे अधिक तीव्र हो। कुछ मनुष्योंमें यह शक्ति या योग्यता होती है कि वे कुत्ते, बन्दर, और अन्य जानवरोंको बहुत जल्दी परिचित बना लेते हैं। जानवर उनसे बहुत जल्दी प्रभावित हो जाता है। जो लोग उन जानवरोंसे घृणा करते हैं, उनकी ओर वह कभी आकृष्ट नहीं होता।

बन्दर यह प्रतिक्रिया बहुत स्पष्ट दिखाता है। पालतू बन्दरमें आप ज़रा भी दिलचस्पी दिखाएँ वह झट आपके पास चला आयगा। आप उसकी पीठको सहलाइये, उसके माथे पर हाथ फेरिये, वह आँखें मूँद कर शान्तिसे पड़ा रहेगा और इसमें आनन्द ले रहा होगा। एक ही बन्दर कुछ ही समयमें न जाने कितने नये लोगोंको दोस्त बना लेगा। परन्तु कुछ दूसरे लोगोंके प्रति वह उदासीनता या विपरीत भाव दिखायेगा। उनके साथ मैत्री प्रारम्भ ही नहीं होगी और उस प्राणीकी तरफसे अनिच्छा स्पष्ट झलक रही होगी, जब कि वह उनके हाथसे खिसक जानेका प्रयत्न कर रहा होगा। वास्तवमें किसी भी हाथका स्पर्श-मात्र प्रतिक्रिया पैदा करनेके लिये पर्याप्त प्रतीत होता है।

अणुवीक्षण-यन्त्रकी परीक्षासे मालूम हुआ है कि सांपकी त्वचाके मृदु और पतले छिलके (scales) नाजुक बात नाड़ियों (nerves) के जालोंसे ओत-प्रोत होते हैं, जिनके कारण उनकी स्पर्श-शक्ति अत्यन्य सूक्ष्म होती है। इस पर सहृदय हाथोंका एक स्पर्श सम्भवतः बन्दर और कुत्तेकी अपेक्षा कहीं अधिक प्रभाव उत्पन्न करेगा। सांपके इस ज्ञानवाही छिलकोंके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सांपका जादू वास्तवमें क्या है? किसी विशेष प्रकारके कोमल और सहृदय हाथोंके स्पर्शसे, सम्भव है, सांप उत्तेजित होनेके बजाय शान्त हो जाता है। विषैले फनियर सांपोंके साथ अबोध बालकोंके खेलनेकी घटनाएँ प्रायः सुनी जाती है। विषधर सर्प उन्हें कुछ नहीं करता, इसका स्पष्टीकरण भी हम इसी आधार पर कर सकते हैं।

बहुत कम सपेरे होते हैं जिनमें सांपको पकड़नेकी यह रहस्यपूर्ण शक्ति होती हो। वे भयङ्कर रूपसे घातक जङ्गली सांपोंको हाथसे पकड़ लेते हैं और सरीसृप शान्त हो जाता है तथा आदेशोंको पालता हुआसा प्रतीत होता है। बिना किसी सुरक्षाका उपाय किए वे कर्कर सांप (Rattle snake) को पकड़ लेते हैं। सांप शान्त हो जाता है और उनके हाथ पर चिपट जाता है—वह कर्-कर् शब्द करना बन्द कर देता है। कोई दूसरा आदमी उसके पास हाथ ले जाय तो फिर कर्-कर् शब्द करने लगेगा। ज़मीन पर छोड़नेसे वह कुण्डली मार लेगा, कर्-कर् शब्द करेगा और जब कोई दर्शक उसके पास जानेका दुःसाहस करेगा तो वह उसके लिए तैयार हो जायगा। उसका स्वामी सपेरा जब उसे फिर उठा लेता है तब वह पहलेकी तरह शान्त हो जाता है, न काटता है, न कर्-कर् करता है।

आप ऐसे आदमीसे पूछिए कि उसने इस कार्यमें किस प्रकार दक्षता प्राप्त कर ली है? बहुधा वे लोग जवाब देंगे कि यन्त्र-सिद्धिसे सांपोंको वशमें कर लिया गया है। वस्तुतः यह बात नहीं है। सच कहने वाला जोगी आपको बताएगा कि बचपनसे ही उसकी सांपोंमें दिलचस्पी रही है। पहले वह सांप पकड़ते हुए डरता था। लाठीसे उठा कर प्रायः सांपकी गरदन पकड़ता रहा है। धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ता गया और साहस भी। अब वह जंगली सांपोंको पालतू सांपोंकी तरह या निर्विष सांपोंकी तरह निर्भय पकड़ लेता है। सांप उसे कुछ नहीं कहते। उसमें यह शक्ति कैसे आ गई? वह उत्तर देगा अभ्याससे। इससे अधिक स्पष्टीकरण उसके पास नहीं है।

सांपको अभिमन्त्रित करनेमें दूसरी महत्वपूर्ण चीज़ संगीतका प्रयोग कहा जा सकता है। कुछ दर्वीकरों पर संगीतके किन्हीं विशेष प्रकारके स्वरोंका प्रभाव पड़ता प्रतीत होता है, परन्तु इसका सर्प नृत्यसे कोई सम्बन्ध नहीं। किसी स्थान पर छिपे हुये दर्वीकरको उत्तेजित करनेसे इसका सम्बन्ध ज़रूर हो सकता है, जब कि जोगीको चीथड़े बिछी हुई मुलायम शय्या वाली पिटारीमें उसे स्थान देना हो और उस कार्यके लिए उसे धन मिलनेकी आशा हो।

चिड़ियाघरमें सर्पगृहके पास सितार बजा कर परीक्षण किये गये हैं। सितारके स्वरसे शेषनागको स्पष्टतया प्रभावित होते देखा गया है। जब सितार बजती, वह फन उठा कर खड़ा हो जाता। सांप सम्भवतः अपने ज्ञानवाही छिल्कोंसे संगीतके प्रकम्पनोंको ग्रहण करते है।

जोगी बीन बजा कर जंगलसे सांपको निकाल लेते हैं यह बात सर्वथा असत्य नहीं कही जा सकती। मालूम होता है, कोई-कोई सपेरा इस बातको जानता है कि किन विशेष स्वरोंसे सांप प्रभावित होते हैं। उसी स्वरको बजानेसे वह छिपे हुये सांपोंको निकाल लेता है और कोमल स्पर्शसे पकड़ लेता है।

कुछ भाग्यशाली दर्वीकरोंके सिरमें सुना जाता है, मणि होती है और जो इसे प्राप्त कर लेता है वह राजा बन जाता है। सांपोंमें मणि होती है इस बातको सत्य माननेके लिये हमारे पास पर्याप्त प्रमाण नहीं है। सर्प मणिकी सत्ता चरक* स्वीकार करता है। सांपसे बचनेके लिये उस समय यह गलेमें बाँधी जाती थी।

हमारे पाठकों ने बहुत बार देखा होगा—सड़कके किनारे तमाशाइयोंकी भीड़में बैठा सपेरा अपनेको सांपसे कटवा कर

* . . . . .मणिः सर्पाद् . . . . ।
. . . . .विषाहया ॥
—चरक; चि०; अ० २३; २५०-५१।

मणिकी परख कर रहा है। मणि उछल कर दंश पर जाती है और कुछ देर बाद, सपेरेके कथनानुसार, विष चूस कर वह ज़मीन पर गिर पड़ती है। स्वयं न गिरे तो सपेरा उसे छुड़ा लेता है। सपेरेकी जान मणि ने बचा ली है। विपत्तिमें काम आने वाली ऐसी दुर्लभ चीज़की मांग भीड़में बहुत अधिक होनेसे वह अच्छे दामों पर एक दो मणियाँ बेंच लेता है।

सपेरोंके पास छोटे अण्डाकार पत्थर होते हैं, जिन्हें वे सर्पमणिके नामसे बेचते हैं और कहते हैं कि ये विषको चूस लेते हैं। ये पाषाण बहुधा चूने और लकड़ीके कोयले के चूरेको मिला कर बनाये जाते हैं। इनमें जल-शोषक गुण होता है। इसलिये जब ये घाव पर रखे जाते हैं तब उस स्थानके रक्तको थोड़ा बहुत चूसते हैं। सम्भवतः विषको भी जरासा चूसते हों परन्तु विषनाशक गुण इनमें नहीं होता।

मणि बेचने वाले अनेकों सपेरोंको बुला कर मैं मणिके कार्यको गौरसे देखता रहा हूँ। असली सर्प-मणिकी पहिचान सपेरे बताया करते हैं कि वह दूरसे ही उड़ कर सांप के दंश पर जा चिपकती है क्योंकि उसका विषकी तरफ तीव्र आकर्षण होता है।

चिकने सर्प-पाषाण किनारोंकी ओर ढालू होते हैं। सपेरे अँगूठे और तर्जनी अँगुलीके बीचमें से इस सफाईसे पाषाणको फिसलाते हैं कि वह ठीक घाव पर जा कर पड़ता है। जल शोषक गुण होनेके कारण वह चिपक जाता है। जब वह द्रवको इतना चूस लेता है कि उसमें और अधिक द्रव समा नहीं सकता तो पत्थरका दंश परसे स्वयं गिर जाना स्वाभाविक प्रक्रिया है।

इस बातकी सच्चाईकी जाँच करनेके लिये आप उस सांपकी परीक्षा कीजिये जिससे अभी सपेरे ने अपनेको कटवाया था। अनेक उदाहरणोंमें काटने वाला साँप ज़हरीला ही नहीं होता। यदि सांप ज़हरीला किस्मका है तो उसके विषैले दांतोंकी परीक्षा कीजिये। मैंने एक भी उदाहरणमें ज़हरीले दाँतोंको यथा स्थान नहीं पाया। ज़हरीले दाँत पहलेसे ही तोड़ दिये गये होते हैं और दंश पर खूनकी बूँदें निकाल देने वाले सांपके साधारणतया निर्विष दाँत हुआ करते हैं। विषैले दाँत विद्यमान हों तो सपेरा सर्पमणिके विस्मयजनक प्रभावोंको प्रदर्शित करनेका मूर्खता पूर्ण साहस करनेको कभी तैयार न होगा।

भारतमें अधिकांश लोगोंका विश्वास है कि मन्त्र-तन्त्र या जादूसे सांप और बिच्छू आदिका विष उतर जाता है। इस विश्वासका स्रोत भारतीय प्राचीन संस्कृत साहित्यसे प्रतीत होता है। चरक और सुश्रुतके समयमें हमें ऐसे विश्वास मिल जाते हैं। चरक* मन्त्रोंसे विष झाड़ा करते थे। सुश्रुत तो यहाँ तक कहते हैं कि मन्त्रोंका प्रयोग करने वाला पुरुष सदाचारी और तपस्वी है तो मन्त्रोंका प्रभाव औषधोंसे भी अधिक होता है।† परन्तु अनुभव यह बतलाता है कि कुछ शब्दों या मन्त्रोंके उच्चारणसे सांपका ज़हर न कभी उतरा है, न उतरेगा। इसलिये हम इष्ट व्यक्तिके सब हितचिन्तकोंसे कहेंगे कि मन्त्रोंसे विष झाड़ने वाले ओझाको बुलानेमें एक क्षण नहीं जाया करना चाहिये।

आपमेंसे बहुत लोगों ने सपेरेको सांप पकड़ते देखा होगा, वह सांप जिसके विषैले दाँत अलग नहीं किये गये हैं। एक कपड़े या किसी दूसरे पदार्थको वह सांपके आगे दायें-बायें हिलाता है। सांप भी वैसा ही करता है और जब पदार्थ एक बार उसके मुखके समीप पहुँच जाता है, सांप उस पर आक्रमण कर देता है। सपेरा झपट कर उसकी गरदन दबोच लेता है। यदि वह अभ्यस्त है तो लाठीसे

---

* मन्त्रैर्धमनीबन्धोऽपायार्जनं कार्यम् . . . ।
—चरक; चिकित्सितस्थान, अध्याय २३; श्लोक ६० ।

† देवब्रह्मर्षिभिः प्रोक्ताः मन्त्राः सत्यतपोमयाः ।
भवन्ति नान्यथा क्षिप्रं विषं हन्युः सुदुस्तरम् ।।
विषं तेजोमयैर्मन्त्रैः सत्यब्रह्मतपोमयैः ।
यथा निर्वापते क्षिप्रं प्रयुक्तैर्न तथौषधैः ।।
मन्त्राणां ग्रहणं कार्यं स्त्रीमांसमधुवर्जिनाम् ।
मिताहारेण शुचिना कुशास्तरणशायिना ।।
गन्धमाल्योपहारैश्च बलिभिश्चापि देवताः ।
पूजयेन्मन्त्रसिद्ध्यर्थं जयहोमैश्च यत्नतः ।।
मन्त्रास्त्वविधिना प्रोक्ता हीना वा स्वरवर्णतः ।
यस्मान्न सिद्धियायान्ति . . . . ।।
—सुश्रुत; कल्पस्थान; अध्याय ५ ।

दबा कर पकड़ लेगा। फिर उसके विषैले दाँत और विषकी थैलियाँ प्रायः निकाल दी जाती हैं, जिससे काटने पर अवांछनीय घटना न कर गुजरे। विषैले दाँत निकाल दिये जाने पर भी यदि विषकी थैली नहीं निकाली गई हो तो दाँतोंके घावोंसे कभी-कभी विष बहा करता है। उससे सांप पूर्णतया हानिरहित नहीं होते। ऐसा सांप जब काटेगा उसके निर्विष दाँत इतना घाव करनेके लिये काफी होते हैं, जो उस बहते हुये विषको ग्रहण कर रक्त संचार में मिला दें। परन्तु यह देखा जाता है कि दाँत निकाल दिये जाने पर सांपोंमें काटनेकी प्रवृत्ति कम हो जाती है और काटने पर इतने भयङ्कर परिणाम नहीं होते। हां, यदि सुरक्षित विषैले दाँत (reserve fangs) क्रिया शील हो गये हैं तो परिणाम घातक हो सकते हैं। कई सपेरे इस बातको नहीं जानते इसलिये कभी-कभी तमाशा दिखाते हुये ऐसे सांपों द्वारा काटे जाने पर वे मर जाते हैं।

जैसोरमें एक सपेरा तमाशबीनोंके एक खासे मजमेको सांपका ज़हर उतारनेमें आश्चर्यजनक गुणवाली मणि और जड़ी बूटियोंकी परीक्षा करके दिखा रहा था। छोटेसे व्याख्यानके बाद जब वह अपने आपको कटानेके लिये सांपकी पिटारी खोलने लगा तो भीड़में से एक युवक विद्यार्थी ने अपनेको परीक्षणके लिये पेश किया और उन पिटारियोंमें से एक को उसने इस विश्वाससे खोला कि वह सांपके काट लेने पर बचा लिया जायगा। लेकिन जिस सांप ने उसे काटा उसके विषैले दांत फिरसे उग आये थे जिसका सपेरेको ज्ञान तक न था। दंश घातक सिद्ध हुआ और सपेरा जिस मणि और जड़ीको बड़े दावेके साथ बेच रहा था वह कुछ न कर सकी।

दीमक रोकने के उपाय

दीमकसे केवल इमारतों और उनकी वस्तुओं ही को नहीं वरन् खेती, फलों, और जंगलोंके वृक्षोंको भी व्यापक हानि पहुँचती है। देहरादूनकी अनुसंधानशालाने इनको रोकनेके लिये एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसमें दीमकोंके प्रकार, और फसलों तथा इमारतोंके लिये उनके तुलनात्मक महत्वका वर्णन किया गया है। उनके नियंत्रणके उपाय तीन वर्गोंमें बाँटे गये हैं:—इमारतोंकी रक्षा, लकड़ी तथा लकड़ीकी बनी हुई वस्तुओंकी रक्षा और हरे वृक्षोंकी रक्षा।

गोदाममें रखी जाने वाली अथवा सूखी तैयार लकड़ीके वर्गमें ऐसे उपाय बताये गये हैं जिन्हें मिलों और गोदामोंमें काममें लाया जा सकता है। सभी बल्लियों और बाड़ेकी लकड़ियोंकी रक्षा करनेकी विधियाँ भी बतायी गई हैं। हरे वृक्षोंकी रक्षाके संबन्धमें बीज बोनेकी क्यारियाँ, उद्यानों, तथा अन्य स्थानों पर पौधा लगानेके उपाय बताये गये हैं तथा हरे और पुराने सभी वृक्षोंकी दीमकसे रक्षा करने की विधियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस अनुसन्धानसे दीमकसे होने वाली हानियोंसे रक्षा की जावेगी।

सुर्खीके सम्बन्धमें वैज्ञानिक प्रयोग

ईटोंके टुकड़ोंका चूर अथवा सुर्खी भारतमें भवन निर्माणके कार्यमें लाया जाता है और इसके प्रयोगके कारण ही बहुतसे प्राचीन भवन अब तक भी सुरक्षित हैं। औद्योगिक अनुसन्धान संख्याकी जाँच करने पर यह ज्ञात हुआ है कि सुर्खीका गारा जितना पुराना होता जाता है उतना ही अधिक मजबूत होता है। इस गारेमें प्रत्येक प्रकारके ऋतुका प्रभाव सहन करनेका विशेष गुण होता है। यह भी ज्ञात किया गया है कि निम्न कारणोंसे गारेको अधिक मजबूत बनाया जा सकता है:—

(१) कैलशियमसे पूर्ण साधारणतया काममें लाये जाने वाले चूनेके बजाय अधिकांशमें मैगनीशियमसे भरे हुये चूनेका प्रयोग करना चाहिये। (२) कम पकी कच्ची ईंटोंके स्थान पर खूब पकी ईंटोंसे सुर्खी तैयार करनी चाहिये। (३) गारेको साननेके पश्चात् शीघ्र ही काममें लाना चाहिये। (४) गारेमें अधिक पानी न पड़ने पाये इस बातका ध्यान रखना चाहिये।

वर्तमान समयमें भी सुर्खी तथा गारा तैयार करनेके इसी प्रकारके दूसरे पदार्थ भारत तथा अन्य देशोंमें विस्तृत रूपसे प्रयोग किये जाते हैं। यद्यपि आजकल चुनाईके लिये सीमेंटका बहुत प्रयोग होता है लेकिन मज़बूत गारेके निर्माणके लिये सुर्खीका प्रयोग अब भी अपना विशेष स्थान रखता है। उपरोक्त संख्याकी प्रकाशित पत्रिकामें गारेकी मजबूती पर विभिन्न प्रकारके परिवर्तनोंके प्रभावकी भी जाँच का परिणाम दिया गया है और उनके क्रियात्मक प्रभाव पर प्रकाश डाला गया है।

वृक्षोंके अंग

[श्रीयुत—शान्ति स्वरूप जायसवाल, बी० एस-सी०]

वनस्पति शास्त्रके अनुसार वृक्षों और पौधोंको पाँच भागोंमें विभाजित किया गया है—फूल, फल (बीज), पत्तियाँ, तना और जड़। संसारमें पाये जाने वाले वृक्षोंकी विशाल संख्याका वर्गीकरण इन्हीं विभिन्न भागोंकी समानता तथा विभिन्नताके अनुसार किया गया है। वे पौधे जिनके फल, फूल, पत्तियाँ आदि विभिन्न भाग एक प्रकारके होते हैं सब एक वंशके कहलाते हैं एवं किसी पौधेको वंश विशेषमें रखनेके लिये उस वंशके कुछ आवश्यक गुणोंका होना अत्यन्त आवश्यक है। वृक्षोंके विभिन्न भागोंकी विशेषताओंसे परिचित होकर सरलतासे उनके वंशको निश्चित किया जा सकता है। संक्षेपमें इन्हीं विभिन्न भागोंका वर्णन, एवं उनकी विशेषताओंकी विवेचनाकी जावेगी।

फूल

पौधों और वृक्षोंका सबसे सुन्दर भाग फूलोंका होता है। ये वृक्षोंकी टहनिओं पर लगे होते हैं और बहुत तरह के होते हैं। वे फूल जिनके नीचे छोटी पत्तियोंका झुंड होता है उन्हें 'पुष्प गुञ्ज' कहते हैं जैसे सूर्यमुखी और गाजर। वे फूल जो डन्ठलसे एक ही स्थानसे निकलते हैं उनको 'गुच्छेदार फूल' कहते हैं उदाहरणार्थ जीरा, धनिया आदि। वे फूल जो तनेकी चोटी पर लगे होते हैं 'टोपीदार फूल' कहलाते हैं। गेहूँका दाना फूलके भीतर उत्पन्न होता है और जितने दाने होते हैं उतने ही फूल भी होते हैं। ऐसे फूलोंके झुंडको 'बाल' कहते हैं। बहुतसे फूलोंकी जड़से पत्तियाँ निकलती हैं और ऐसा ज्ञात होता है कि पत्तियोंकी जड़से फूल निकलता है। ऐसी पत्तियोंको 'ब्रैकट' कहते हैं। अब एक धतूरेका फूल लेकर देखो। यह फूल एक हरी डन्ठी पर लगा होता है। इस फूलकी डन्ठीके ऊपर एक हरी थैली है और उसके अन्तरगत एक दूसरी हरी थैली होती है। यह थैली लम्बी होती है और इसके नीचेका भाग हरा और ऊपरका बैंगनी होता है। ध्यानपूर्वक देखने पर ज्ञात होगा कि यह थैली पाँच पत्तियोंसे मिल कर बनी है जो कि पंखुड़ी कहलाती है। इनकी रचना विभिन्न प्रकारकी होती है। कुछ फूलोंमें ये एक दम अलग होती हैं कुछमें होती ही नहीं। भीतरकी थैली भी पाँच पत्तियोंसे बनी होती है। यह पत्तियाँ फूलकी पँखुरी कही जाती है। यह भी किसी फूलमें जुड़ी किसीमें
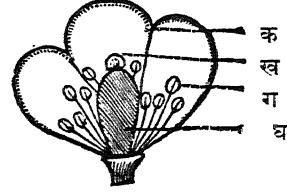
फूलके अंग

क—पँखुड़ी। ख—स्त्रीलिंग। ग—पुल्लिग। घ—गर्भ।

अलग छोटी बड़ी आदि अनेक प्रकारकी होती है। फूलके बैंगनी हिस्सेको यदि सावधानीके साथ काट कर अलग कर दिया जावे तो भीतर पाँच सफेद सींक दृष्टिगोचर होंगी ये पुल्लिंग कहलाते हैं। इनके सिरे पर जो हल्ले पीले रंगका जीरा लगा होता है उसे 'पराग केसर' कहते हैं। इनके बीचमें फूलकी डंडीके ऊपर एक हरा छोटा सा टीला है जो कि गर्भाशय या बीज-स्थान कहलाता है। इसके भीतर गर्भ केसर होता है एवं गर्भाशयमें अनेक छोटे छोटे खाने होते हैं। इसके ऊपर एक लम्बी सींक है जिसको स्त्रीलिंग कहते हैं। सींकमें ऊपरके पीले भागको नितम्ब कहते हैं। फूलमें नितंबसे लेकर स्त्रीलिंग होता हुआ एक अत्यन्त महीन छिद्र गर्भाशय तक चला जाता है। जिन फूलोंमें ये सब भाग होते हैं वे सम्पूर्ण पुष्प कहलाते हैं। कुछ फूलोंमें पुल्लिंग स्त्रीलिंग अलग अलग होते हैं अतः वे क्रमशः 'नर पुष्प' एवं मादा पुष्प कहलाते हैं।

कुछ फूलोंमें पँखुरियाँ एक दूसरेसे अलग होती हुई भी ऐंठी हुई होती हैं और एक दूसरे पर लपटी होती हैं। इनको अलग करने पर गांठके समान गर्भ दिखलाई पड़ता है। स्त्रीलिंगके ऊपर और नितंबके नीचे कई दर्जन पुल्लिंग लगे होते हैं जिनकी छोटी डन्ठलियाँ होती हैं एवं हल्के पीले रंगकी सुपारी होती है। फूलके गर्भ और डंठीके बीचमें फूलका कोष होता है। इसीके चारों ओर थैली, लिंग, गर्भ

आदि निकलते हैं। सफेद कनैलके फूलमें उसकी हरी थैली जड़में दिखलाई पड़ती है। इसकी पाँचों पँखुरियाँ अलग अलग हैं। भीतरकी फूलकी कटोरी वाली पाँचों पँखुरियाँ ऊपरकी ओर तो अलग अलग हैं किन्तु नीचेका भाग एक में मिला होता है। इन पँखुरियोंके ऊपरके भागको सावधानीसे चीरने पर भीतर रुईके समान एक बत्ती दिखलाई पड़ती है जो कि पुल्लिंगोंसे मिल कर बनी है, पुल्लिंगकी डंठिया पँखुरियों परसे निकलती है। इनके बीचमें स्त्रीलिंग है जो कि एक महीन सींक है जिस पर हरे रोयें हैं। लाल कनैलके फूलमें भीतरकी पँखुरियाँ तीन प्रकारकी होती हैं। पाँच लाल छोटी पँखुरिया, फिर पाँच बड़ी गुलाबी रंगकी जिन पर सफ़ेद धारी है। इसी प्रकार पाँच और गुलाबी रंगकी पँखुरियाँ रहती हैं। यह सब ऊपरसे तो अलग अलग रहती हैं किन्तु मध्य भागमें जुड़ी हुई होती हैं। इस फूलमें पुल्लिंग कोषके ऊपर लगे होते हैं पँखुरियों पर नहीं। ये भी रुईके समान होते हैं और संख्यामें ६ होते हैं। बीचमें स्त्रीलिंग व गर्भ-स्थान रहता है।

बीज

फूलके गर्भसे फल उत्पन्न होता है। इसके लिये यह आवश्यक है कि परागकेसर फूलके नितंबसे होकर गर्भस्थान में जावे। गर्भाशयमें पहुँचनेके पश्चात् गर्भकेसरसे उसका स्पर्श होता है जिसके फल स्वरूप बीज उत्पन्न होता है। ये बीज गर्भाशयके छोटे छोटे घरोंके फटने पर बाहर निकलते हैं अथवा पृथ्वी पर गिरनेके बाद फूलके गर्भाशय के सड़ जाने पर बाहर निकल आते हैं। बीजके ऊपर एक छिल्का होता है जिसके अन्दर या तो एक दालका बीज होगा या दो दाल वाला बीज। बीजके ऊपरका छिल्का भी अनेक प्रकारका होता है। कुछ कागज़की भांति होते हैं या झिल्लीदार, रेशेदार, काष्ठवत अथवा बिल्कुल चिपके हुये। कुछ छिल्कोंके ऊपर बालके समान रेशे होते हैं, कुछ पंखदार होते हैं। और किसीका किनारा खुरखुरा अथवा तीक्ष्ण होता है। इसके अतिरिक्त कुछ फलोंमें केवल एक ही बीज होता है, किसीमें दो, तीन, चार आदिकी संख्या होती है एवं अनेक फल ऐसे हैं जिनमें बीजोंकी संख्या बहुत अधिक होती है और उनकी संख्या निश्चित नहीं होती।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है परागकेसर व गर्भकेसरके सम्मिश्रणसे बीजकी उत्पत्ति होती है। इन दोनोंके सम्पर्क करानेमें वायु, कीड़े मकोड़े, तितिलियाँ एवं मधुमक्खी, भौंरे तथा अन्य फूलों पर बैठने वाले जीव सम्पूर्ण रूपसे सहयोग देते हैं। सच तो यह है कि अगर इनका सहयोग वृक्षोंको प्राप्त न हो तो बीज और फलकी उत्पत्ति असम्भव हो जावे। ये जीव एक फूलसे दूसरे पर शहदकी खोजमें उड़ते रहते हैं। शहद चूसनेकी क्रियामें इन जीवोंके परों अथवा रोयें पर फूलोंका परागकेसर चिपक जाता है और कुछ परागकेसर पुलिंगसे गिर कर नितम्ब व स्त्रीलिंग होता हुआ गर्भाशयमें जा पहुँचता है और गर्भकेसरके स्पर्शमें आकर बीजकी उत्पति करता है। जब वे जीव उड़ कर दूसरे फूल पर जाते हैं तो उनके साथ चिपका हुआ परागकेसर भी रहता है और जैसे ही फूलोंकी रगड़ लगती है वे परागकेसर स्त्रीलिंगके सम्पर्कमें आ जाते हैं एवं बारीक छिद्र द्वारा बीज स्थानमें पहुँच जाते हैं। जिन फूलोंमें मधु नहीं होता उनका रङ्ग प्रायः चटक व भड़कीला होता है जिससे कीड़े मकोड़े उनकी ओर आकर्षित हो जाते हैं यद्यपि वे मधुकी ही खोज में जाते हैं किन्तु उसमें मधु न मिलने पर वापस चले आते हैं यद्यपि जीवोंकी ये चेष्टा व्यर्थ जाती है किन्तु पुष्पोंके लिये उनका आगमन ही पर्याप्त होता है। केवल उनके बैठने मात्रसे परागकेसर उपरोक्त विधिसे गर्भकेसरके सम्पर्क-में आ जाता है और साथ ही साथ कुछ परागकेसर उनके अंगोंमें चिपक कर दूसरे फूलोंके हेतु चला जाता है। कुछ फूलोंमें मधु ऐसे संकीर्ण स्थानमें रहता है कि केवल एक जीव विशेष जिसके लम्बे रोयें होते हैं वही उस मधुका रसास्वादन कर सकता है अन्य दूसरे प्रकारके जीव ऐसा करनेमें असमर्थ होते हैं। इस प्रकार केवल वही जीव उनके परागकेसरको ले जा कर उसी प्रकारके पुष्पके स्त्रीलिंगसे सम्पर्क करा सकता है। इस प्रकार एक जातिके फूलों-का परागकेसर दूसरी जातिके फूलोंके स्त्रीलिंगके सम्पर्कमें आनेसे वंचित हो जाता है। अतः वर्णसंकर बीजकी सम्भावना नहीं होती। उन वृक्षोंमें जिनके फूल न तो मधु-मय, भड़कीले अथवा सुगन्धमय होते हैं परागकेसर व गर्भकेसरका सम्पर्क वायु द्वारा होता है। कारण

यह है कि जीवगण उनकी ओर आकर्षित नहीं होते । जब वायुका झोंका आता है तो कुछ परागकेसर गिर कर गर्भाशयमें पहुँच जाता है । अथवा एक वृक्षका परागकेसर उड़ कर समीपके किसी दूसरे वृक्षके फूलोंके स्त्रीलिंगके सम्पर्कमें आ जाता है । वायु द्वारा इस क्रियामें विशाल संख्यामें परागकेसर नष्ट हो जाते हैं । कारण यह है कि केवल कुछ ही गर्भाशयमें पहुँच पाते हैं । अतः इस प्रकारके वृक्षोंमें परागकेसर असंख्य मात्रामें पाये जाते हैं । कीड़ों द्वारा परागकेसरके अधिक संख्यामें नष्ट होनेकी सम्भावना नहीं होती । यद्यपि उनमें से भी अनेक परागकेसर भूमिमें गिर कर अथवा फूलोंके अन्य भागोंमें गिर कर नष्ट हो जाते हैं किन्तु फिर भी एक फूलसे दूसरे फूल पर जानेमें परागकेसर व गर्भकेसरके सम्पर्ककी अधिक सम्भावना होती है । यही कारण है कि ऐसे वृक्षोंमें परागकेसरकी संख्या भी अधिक नहीं होती । हम देखते हैं कि ये विभिन्न जीव अपने अनजान हीमें वृक्षोंकी वंश-वृद्धिके प्रधान कारण हैं यद्यपि उनका मुख्य ध्येय मधुका चूसना होता है । इस प्रकार वे एक दूसरेकी परस्पर सहायता करते हैं ।

गर्भाशयसे निकलनेके पश्चात् बीज परिपक्व होकर पुनः वृक्ष निर्माण करनेके योग्य हो जाते हैं । इसका एक भाग निकल कर भूमिकी ओर जड़का कार्य करनेके लिये चला जाता है जिसे जड़ी कहते हैं और दूसरा भाग ऊपर की तरफ पेड़का स्वरूप बननेके लिये चला जाता है जिसे 'अंकुर' कहते हैं । जब तक बीज इस योग्य नहीं हो जाते कि वे जड़ द्वारा भूमिसे अपना भोजन ले सकें उनके अन्तर्गत बीज-पत्तियाँ भोजन पहुँचानेका कार्य करती हैं । फिर क्रमशः बीज एक छोटे पौधेमें तत्पश्चात् एक विशाल वृक्षके रूपमें परिणत हो जाता है ।

पत्तियाँ

अनेक पौधों और वृक्षोंको ध्यानपूर्वक देखने पर हमें ज्ञात होगा कि उनकी पत्तियाँ विभिन्न प्रकारकी हैं—किसी वृक्षमें बहुतसी पत्तियाँ गुच्छेके समान होती है । अमरूद की पत्तियाँ एक स्थानसे दो निकलती है । आममें एक ही एक दाहिने और बायें निकलती है । पत्तियोंके बीचकी लकीर रीढ़ कहलती है और जो जालकी भांति पत्तियोंके चारों ओर फैली रहती है वे रगें कहलाती है । कुछ पत्तियोंमें रगें रीढ़ोंके समानान्तर होती हैं । और कुछमें वे विस्तृत रूपसे फैली रहती हैं जिन्हें जाली कहते हैं । कुछ पत्तियाँ सादी होती हैं और कुछ वृक्षोंमें कई पत्तियाँ मिल कर एक बड़ी पत्ती बनाती हैं और अज्ञानवश हम उन्हें पूर्ण पत्ती समझते हैं । गुलाबकी डालीसे एक बारीक हरी टहनी निकलती है; उस पर प्रायः पाँच छोटी-छोटी पत्तियाँ लगी होती हैं । यह टहनी वास्तवमें पत्तीकी रीढ़ है और पाँचों छोटी पत्तियाँ उस बड़ी पत्तीके पाँच भाग हैं जिसकी यह रीढ़ है । पत्तियोंका आकार सुईसे लेकर गोलाकार होता है । उसीके अनुसार पत्तियोंका नाम भी रखा जाता है । पत्तियोंकी चोटी भी कई प्रकारकी होती है । कुछ नोकीली पत्तियाँ होती हैं, कुछकी चोटी भीतरकी ओर दबी रहती है । कुछ पत्तियोंका दामन अथवा नीचेका भाग शाख अथवा तने पर चिपका रहता है । किसीका दामन रीढ़से नीचेकी ओर पत्तियोंके परकी भांति रहता है । पत्तियोंका किनारा भी अनेक प्रकारका होता है । सम्पूर्ण किनारा जैसे जामुनकी पत्तीमें होता है, किसी पत्तीका किनारा आरीकी दांतोंके समान होता है जैसे नीमकी पत्तीमें । आरीके किनारे भी दो प्रकारके होते हैं । किसीमें उसके दांत ऊपरकी ओर और किसीमें नीचेकी ओर होते हैं । गोभी आदिके पत्ते लहरदार होते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ पत्तियाँ चिकनी कुछ खुरखुरी अथवा कांटेदार होती हैं । बेल लताओंमें पत्तियोंके अतिरिक्त सूतके समान हरे-हरे रेशे चारों फैले रहते हैं ।

इन विभिन्न प्रकारकी मूल पत्तियोंके अतिरिक्त वे पत्तियाँ जो पौधेके कोमल भागको ढके रहती हैं सहायक पत्ती कहलाती हैं । जब पत्तियाँ फूटती हैं तो उस समय कोमल कली कुछ पत्तियोंमें छिपी रहती है जो कि केवल कलीके सहायतार्थ होती है । पुष्पोंकी पँखुड़ियाँ आदि भी पत्तियाँ ही होती हैं और वे पुष्प-पत्ती कहलाती है । इसी प्रकार जो बीजोंमें दो फूलके टुकड़े होते हैं वे भी पत्तियाँ ही हैं और उनको बीज-पत्ती कहा जाता है । बात यह है कि पुष्प-पत्ती एवं बीज-पत्तियोंका निर्माण उसी प्रकार होता है जिस प्रकार मूल पत्तियोंका अथवा उनसे थोड़ा-बहुत भिन्न । इसी कारण वैज्ञानिक गण भी उसको पत्तियाँ ही कहा करते हैं ।　　　[शेष पृष्ठ १३४ पर]

पंचांग-शोधनका नया प्रस्ताव

[हज़ारीप्रसाद द्विवेदी]

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने बाबू संपूर्णानन्दजीका निम्नलिखित आशयका महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव हमारे पास प्रचारार्थ भेजा है—

"पंचांगका महत्त्व तो सभी देशोंमें है, परंतु हमारे देशमें जहाँ लोगोंका फलित ज्योतिष पर विश्वास है और विवाह, व्यापार, खेती-जैसे काम ज्योतिषियोंके परामर्शसे किए जाते हैं, इस शास्त्रका स्थान बहुत ऊँचा है। गणनामें थोड़ी-सी भी भूल होनेसे सैकड़ों व्यक्तियोंके जीवन पर गहिरा प्रभाव पड़ सकता है। इस समय मेरी समझमें पंचांग-सम्बन्धी नीचे लिखे प्रश्न विशेष रूपसे विचारणीय हैं :—(१) संक्रांतिकी जो तिथियाँ पंचांगोंमें दी रहती हैं और हमारे घरोंमें मनाई जाती हैं, वे दृश्यगणितकी तिथियों से, जो वस्तु स्थिति पर निर्भर हैं, नहीं मिलतीं। उदाहरणार्थ वर्तमान सम्वत्‌में दृश्यमतसे मेष संक्रांति २३ मार्च १९४१ को थी जब कि विश्व-पंचांगके मतसे १३ अप्रैल १९४१ को। (२) चांद्रमास कहीं शुक्लपक्षसे आरंभ होते हैं, कहीं कृष्णपक्ष से। श्रीकृष्णजन्माष्टमी जिस दिन होती है उसको कहीं तो भाद्र कृष्ण-अष्टमी कहते हैं, कहीं श्रावण कृष्ण-अष्टमी। (३) पुराने ज्योतिष-ग्रन्थोंमें ग्रहोंकी गति-विधिके सम्बन्धमें जो अंक दिए गए हैं, उनके अनुसार ग्रहोंके जो स्थान आते हैं, वे उन स्थानोंसे भिन्न हैं जहाँ पर ग्रह सचमुच हैं। उदाहरणार्थ सौर वर्षका अर्वाचीन मान (३६५ दिन ६ घं० ९मि० ९से०) सूर्यसिद्धान्तके मतसे ३ मि० २७-५६ से० कम है और आर्यभटके मतसे ३ मि० २०·६४ सेकेन्ड।

"यदि दशमलवके दूसरे तीसरे स्थानमें भी कुछ भूल हो तो वह सैकड़ों वर्षोंमें बड़ा रूप धारण कर लेती है। हमारे ज्योतिषी इस बातको जानते हैं। अब महत्त्वका प्रश्न यह है कि फलित ज्योतिषके लिये इन दृश्य-स्थानोंसे काम लिया जाय या अदृश्यसे। इस विषयमें बड़ा मतभेद है। इसलिये मेरा प्रस्ताव है कि कुछ विद्वानोंकी एक समिति बुलाई जाय। वह विचार करे कि १. इन प्रश्नों पर विचार करना उचित और व्यावहारिक है या नहीं। २. ऐसे विचारके लिये काशीमें एक सम्मेलन बुलाना ठीक होगा या नहीं। ३. यदि ठीक हो तो उसमें किस-किसको बुलाया जाय। ४. सम्मेलनके सामने कौन-कौनसे प्रश्न रक्खे जायँ।

उक्त प्रस्तावमें श्री सम्पूर्णानन्दजी जिसे 'दृश्य' मत कहते हैं उसे वस्तुतः 'सायन' मत कहा गया होता तो ग़लतफ़हमीकी कम गुञ्जायश होती। इसका कारण हम आगे यथासम्भव ऐसी भाषामें बतानेकी चेष्टा करते हैं जो औसत शिक्षित व्यक्तिको आसानीसे समझमें आ सके। यहाँ हम यह भी स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सायन मत को 'दृश्य', और निरयण मतको (जिस मतसे विश्वपंचांग तथा अन्य भारतीय पत्रे बनते हैं) 'अदृश्य' नहीं कहा जा सकता। अपनी बात कहनेके पहले यह कह रखना ज़रूरी है कि इस समस्याको विशेषज्ञ पंडितोंके हाथमें न छोड़कर इस प्रश्नको ऐसा व्यापक बना देना चाहिए कि प्रत्येक सुसंस्कृत व्यक्ति इसमें रस ले सके।

यूरोपियन ज्योतिष और भारतीय ज्योतिषका विकास दो भिन्न रास्तोंमें हुआ है, इसलिये दोनोंमें प्रकृतिगत पार्थक्य रह गया है। भारतीय ज्योतिषका विकास ही नाना प्रकारके आचार-विचार, परम्परागत रीतिनीति, व्रत-उपवास आदिकी स्मृतिरक्षाके लिये हुआ है। इसलिये भारतीय पंचाग इसी लक्ष्यसे बनते हैं कि उनके द्वारा उक्त घटनाओं, व्रतों, उपवासों आदिका यथार्थकाल निश्चित किया जाय। इसके अतिरिक्त शुभकर्मोंकी भी एक परम्परा है। जिस दिन, जिस नक्षत्र, जिस राशिमें आज भारतीय विवाह हो रहे हैं, हज़ारों वर्षों से उसीमें हो रहे हैं। भारतीय ज्योतिष की प्रकृतिके साथ ये बातें इस प्रकार घुल-मिल गई हैं कि उनको अलग करके सोचना भारतीय पंडितके लिये असंभव है। परन्तु वह इन बातोंके कारण सायन-गणना (या आधुनिक यूरोपीय गणना) के प्रचारका विरोधी नहीं है। गणना जितनी ही शुद्ध होगी, उतनी ही यथार्थताके साथ वह ग्रह-राशि-नक्षत्रोंका निर्णय कर सकेगा। पर नाना कारणोंसे वह पहली राशिको मेष और पहले नक्षत्रको अश्विनी कहनेको बाध्य है। तभी उसकी परम्परा सुरक्षित रहेगी। यदि सायन-गणना प्रचलित कर दी जाय, तो आज

जो राशि पहली है वह कल दूसरी हो सकती है और फिर एक ज़मानेके बाद तीसरी, क्योंकि सम्पातविन्दु निरन्तर पीछे खिसकता जायगा। फिर संक्रान्ति, अधिमास, क्षयमास आदिमें इतना अधिक उलट-पलट होगा कि भारतीय ज्योतिष की प्रकृति उसे बर्दाश्त नहीं कर सकेगी।

यह ध्यानमें रखना चाहिए कि शुद्ध वर्षमान क्या पदार्थ है। आकाशमें जो विन्दु स्थिर है, उस विन्दुसे चलकर एक पूरा चक्कर लगाकर जब पृथ्वी उसी विन्दु पर आ जाती है, तब एक वर्ष पूरा हुआ कहना चाहिये। पृथ्वीके घूमनेके कारण हम सूर्यको चक्कर लगाते हुए देखते हैं, इसलिये व्यवहारमें सूर्यकी गणना ही की जाती है। हम सूर्यको ही एक राशिसे दूसरी की ओर खिसकते देखते हैं, इसलिये यहाँ भी हम सूर्यका चलना ही कहते रहेंगे। अब सूर्य किस विन्दु परसे चल रहा है, यह तो स्थिर नहीं है। सम्पात-विन्दु परसे सम्पात-विन्दु पर अगर वह आ जाय तो पूरा चक्कर नहीं लगा सकेगा, क्योंकि सालभरमें सम्पात-विन्दु थोड़ा-सा पीछे खिसक आया रहेगा। इसलिये यह स्थान ठीक नहीं है।

लेकिन उपाय यहीं भर नहीं है।

एक और विन्दु है जहाँसे सूर्यकी गणना की जा सकती है। सूर्यकी गति प्रतिदिन बराबर नहीं होती, इसीलिये उसकी एक औसत गति मान लेते हैं। सूर्य, मान लीजिए, एक दिन अपनी औसत गतिके बराबर चला। अब सालभर उसकी गति बढ़ती-घटती रहेगी; फिर जब उस औसत गतिवाले स्थान पर आएगा, तो निश्चित है कि गति-सम्बन्धी सारी जटिलताओंको पार करके वह ठीक जगह पर आ गया। इस स्थानसे भी वर्ष नापा जा सकता है; पर कठिनाई यह है कि यह भी चला करता है, सम्पातकी उल्टी दिशा में। इसपरसे जो वर्ष निकाला जायगा, उसमें सूर्यको एक चक्करसे कुछ अधिक चलना पड़ेगा। अब यद्यपि उदयास्त आदिके लिये ये मान ठीक होंगे; पर उसको एक चक्कर पूरा करनेका काल नहीं कह सकते। एक तीसरा रास्ता भी है। नक्षत्रगण प्रायः स्थिर हैं। अगर किसी एक नक्षत्रको स्थिर कर लें और सूर्य वहाँ से आरम्भ करके चक्कर काटता हुआ फिर वहीं पहुँच जाय तो, कहेंगे कि यह मान अपेक्षाकृत शुद्ध है। इसीको नक्षत्रमान कहते हैं। भारतीय पंडितों ने इसीको माना है। वे उदयास्त आदि कर्मोंके लिये इसीमें अयन-सम्पात सम्बन्धी और उच्च सम्बन्धी गति जोड़ और घटाकर काम चला लेते हैं; पर नक्षत्रोंको स्थिर रखते हैं। यह रास्ता बहुत सुविधाका है। इससे बहुत परिश्रम बच जाता है और भारतीय परम्पराकी रक्षा भी होती है।

ग्रीनविचके ज्योतिषी जो पत्रा बनाते हैं, उसमें नाक्षत्र-मान नहीं देते, बल्कि उसमें सम्पातकी गति और उच्चकी गतिका संस्कार करके देते हैं। हमारे देशमें इसीको सायन-मत कहा जाता है। इससे ग्रीनविचवाले ज्योतिषियोंको ग्रहोंकी गणनामें तो बड़ी सुविधा पड़ती है, पर नक्षत्र-स्थान ठीक करनेके लिये प्रतिवर्ष गणना करनी पड़ती है। ६५० पृष्ठके पत्रेमें २२८ पृष्ठ इन अनेक नक्षत्रोंकी गणनामें लगाए जाते हैं। भारतीय पञ्चाङ्गोंको इतनी झंझटकी ज़रूरत नहीं होती।

इसीलिये मैं निरयण गणनाका पक्षपाती हूँ।

परन्तु सायन और निरयणका अन्तर अयनांश है। और अयनांशके विषयमें भारतीय पंडितों में "नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम्"। मैंने सन् १९३८ में सात विभिन्न पंचांगोंकी तुलना करके देखा कि कोई भी दो पंचांग एक ही अयनांश नहीं मानते। दो एक उदाहरण देता हूँ। १९३८ में निम्नलिखित पंचांगोंके अयनांश इस प्रकार थे—

विश्वपंचांग (काशी)	२२°	५३′	२५″
तिलक पंचांग (पूना)	१९°	०′	०″
विशुद्धसिद्धान्त पंजिका (कलकत्ता)	२२°	५९′	२४″६५
गुप्त प्रेस पंजिका (कलकत्ता	२१°	१५′	०″
नाना-दाते-पंचांग (पूना)	२३°	३०′	०″
भारतविजय पंचांग (इन्दौर)	२२°	५९′	०″
दृग्गणित पंचांग (मद्रास)	२२°	५९′	३″
ग्रहलाघवीय पंचांग	२२°	३६′	०″

इस विषयमें मैं विस्तृत रूपसे अपना मत 'विशालभारत' (जनवरी, फ़रवरी १९३८) में व्यक्त कर चुका हूँ। यहाँ उन बातोंको दुहराना बेकार है। पाठकोंको अगर जाननेकी इच्छा हो तो वे वहाँ देख ले सकते हैं। परन्तु यहाँ इतना इतना निवेदन कर देनेमें कोई हर्ज नहीं कि धार्मिक प्रश्नों

को प्रभावित किया जा सकता था। किसी संहिता या भाष्य-का काल कितने लाख वर्ष पुराना है यह बात ज्योतिषिक समस्याओंका समाधान नहीं करेगी। इस समय सत्ययुग चल रहा है कि कलियुग, इस बेतुकी बातको उठा कर मूल प्रश्नको धुँधला नहीं कर देना चाहिये। यह सदा ध्यान रखना चाहिये कि ज्योतिषिक गणनाके बल पर किसी प्राचीन ग्रंथका काल-निर्णय करना सब समय न तो निरापद ही है और न उपयोगी ही। ज्योतिषसम्मेलनको दृढ़ताके साथ इन प्रश्नोंको छाँट कर अलग कर देना चाहिये।

प्रस्तावित ज्योतिषसम्मेलनको हम आशाकी दृष्टिसे देखते हैं। उसके निर्णय ज्योतिषकी रक्षा करते हुए होने चाहिये। उस एकताका कोई मूल्य नहीं जिसमें मूल वस्तु-को ही बलिदान होना पड़े।

—विश्वभारती पत्रिकासे

वृक्षोंके अंग

[शेष पृष्ठ १२९ का]

जड़ और तने

फल, फूल और पत्तियोंकी भाँति पेड़ोंकी जड़ और तने भी विभिन्न प्रकारके होते हैं। कुछ जड़ मूसलीदार होते हैं जैसे गाजर, मूली, कुछ पेटीदार होते हैं जैसे शलजम। इसी भाँति एक थैलीदार मूसली जड़ होती है जिसमेंसे बहुतसी सूतसी जड़ें इधर-उधर निकली रहती है जो कि भोजनार्थ सहायक जड़ें कहलाती हैं। गेहूँ, धान, गन्ना आदिमें प्रधान जड़ एक छोटी गाँठसी होती है और उसमें बहुतसी छोटी-छोटी महीन जड़ें चारों ओर फैली रहती हैं यह 'झकरा जड़े' कहलाती है। बरगदकी शाखोंमेंसे एक प्रकारकी जटासी लटकती रहती है; इनको 'वायु जड़' कहते हैं।

पृथ्वीसे निकल कर जड़ तनेके रूपमें परिणत हो जाती हैं। कुछ जड़ें तनेके रूपमें कुछ अंशतक पृथ्वीके अन्तर्गत ही दबी रहती है। जिसे 'पृथ्वी-अन्तर्गत-तने' कहते हैं। कुछ तने पृथ्वीसे निकल कर सीधे ऊपरकी ओर चले जाते हैं जैसा कि अनेक वृक्षोंमें होता है। बहुतोंके तने दीवालके सहारे अथवा पृथ्वी पर लोटते हुये चलते हैं जिन्हें बेल कहते हैं। कुछ वृक्षों अथवा पौधोंमें ऐसा होता है कि उनमें तना है ही नहीं, भूमिसे पत्तियाँ निकलती हैं। किन्तु ध्यानपूर्वक देखनेसे मालूम होता है कि जड़ों और पत्तियोंके बीचमें एक छोटासा तना है, जैसे लहसुन व प्याज में। कुछ वृक्षोंमें तनेके निकलते ही उसके दो शाखें हो जाती हैं। फिर यह शाखें बढ़ीं और पुनः उनके दो भाग हो गये; इनको 'दोधजा' कहते हैं। कुछ वृक्षोंमें एक सीधा तना और पत्तियाँ होती है, शाखायें नहीं होती। ऐसोंको 'डुन्ड' कहते हैं जैसे ताड़, खजूर आदिके वृक्ष।

कुछ वृक्षोंके तने काष्ठवत होते हैं जैसे आम, नीम, महुआ आदि और कुछ हरे जैसे गन्ना, ज्वार, बाजरा, धान आदि। कुछ पेड़ोंके तनेमें काँटें होते हैं जैसे गुलाब। इलायचीका तना चिकना और नीम आदिके तने खुरखुरे होते हैं। फिर किसी तनेका आकार गोल, किसीका चौकोर, छः पहल आदि होता है। पौधोंके हरे भागसे उनको भोजन प्राप्त होता है और उसी भागसे पेड़का पानी उड़ता रहता है। अतः जिन वृक्षोंमें पत्तियोंके अतिरिक्त तने भी हरे होते हैं और डालियाँ भी हरी होती है उनको अधिक जल और भोजनकी आवश्यकता होती है। किन्तु फल, फूल, पत्तियाँ, जड़ तने आदि वृक्षके भागोंकी इन्हीं विभिन्न विशेषताओंका अध्ययन कर संसारके विशाल वनस्पति समूह का अनेक वंशोंमें वर्गीकरण किया गया है जो कि वनस्पति-विज्ञानका एक प्रधान अंग है।

चुम्बकीय दांत

कृत्रिम दाँत लगवानेवालोंको प्रायः यह शिकायत होती है कि वे शीघ्र गिर पड़ते हैं। लेकिन एक वैज्ञानिक ने चुम्बकीय दाँतोंका अविष्कार करके यह कठिनता दूर कर दी है। इस नूतन प्रकारके दाँतोंमें ऊपर और नीचे चुम्बकके दो सेट लगे होते है जो एक दूसरेको ढकेलते हैं। इससे एक साधारण दबाव पड़ता है जो दाँतोंके सेटको खिसकने व गिरने नहीं देता। ये चुम्बक इस प्रकार लगाये जाते हैं कि प्रकट रूपसे दीख नहीं पड़ते। ये अपना कार्य एक वर्ष तक उचित रूपसे संपादित करते हैं। तत्पश्चात् उनमें पुनः चुम्बकका प्रभाव उत्पन्न करनेकी आवश्यकता पड़ती है।

ऊदबिलाव

[जगदीश प्रसाद राजवंशी, एम० ए०; बी० एस-सी०]

ऊदबिलाव नेवलेके आकारका, पर उससे बड़ा एक जन्तु है जो जल और स्थल दोनोंमें रहता है। यह प्रायः नदीके किनारे पाया जाता है और मछलियाँ पकड़-पकड़ कर खाता है। इसके बदन छोटे, पंजे जालीदार, नह टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है। रङ्ग इसका भूरा होता है। यह पानीमें जिस स्थान पर डूबता है वहाँसे बड़ी दूर पर और बड़ी देरके बाद उतराता है। लोग इसे मछली पकड़ने के लिये पालते हैं।

ऊदबिलावकी आदतें और इसके काम देखनेमें बड़े अच्छे लगते हैं। रात्रिमें यह क्या करता है उसकी बाबत तो अधिक जानकारी नहीं है किन्तु दिनमें वह जो कुछ करता है उसके विषयमें आप उसके इस वर्णनसे काफ़ी समझ सकेंगे।

ऊदबिलावके घोंसले या घरमें प्रायः दो-तीन या कभी-कभी ५-६ तक छोटे-छोटे ऊदबिलावके बच्चे आपको मिलेंगे। यह घर किसी झीलके किनारे पर खड़े पेड़के खोखलेमें होगा या उसकी जड़के पास बने एक छेदके रूपमें होगा। कभी-कभी किसी चट्टानकी दरारमें या घास और झाड़के बीचमें या किनारेकी दरारमें जहाँ ऊदबिलाव सुरक्षित समझता है अपना घर बना लेता है। घर बड़ी होशियारीसे बनाया जाता है और इसके चारों ओरकी दिवारें और ज़मीन ऊन, सन या बालोंसे ढकी रहती है जिससे बच्चोंको सोनेमें आरामसे नींद आये।

ऊदबिलाव अपने बच्चोंका बड़ा ध्यान रखता है और पहले दो महीने तक वे बच्चोंको सिवा खाना लानेके और किसी समय अकेला नहीं छोड़ता। यदि घर नदीके किनारे होता है तो बाढ़के कारण उसमें पानी भर जाता है और बच्चोंको घरसे बाहर निकलना पड़ता है। उस समय ऊदबिलाव बच्चोंको मुँहमें दबाये बहुत दूर-दूर तक ले जाता हैं।

ऊदबिलावके बच्चे बड़े चिलबिले होते हैं और अगर उन परसे ज़रा भी आँख उठा ली जाय तो ये कहीं-न-कहीं को सैर करने निकल पड़ें। जब उनका पिता ऊदबिलाव उनके लिए मछली मारने जाता है तो मौक़ा पाकर वे चुपकेसे निकल पड़ते हैं और बड़ी शानके साथ पानीके किनारे पर पहुँच जाते हैं। किन्तु पानीके पास पहुँचते ही उनकी हिम्मत पस्त हो जाती है और पानीके किनारेको मुँहसे सूँघ कर किनारेकी ओरको मुँह मोड़ लेते हैं। इतनेमें ही उनकी माँ लौट आती हैं और उनको शैतानी करते देख कर उन्हें खदेड़ कर घोंसलेमें पहुँचा देती है।

जब तक मिलता है तब तक तो ऊदबिलाव ज़मीन पर ही गोश्तकी तलाश करता है और उसी पर जीवन निर्वाह करता है। किन्तु जब स्थल पर उसे खानेको नहीं मिलता तो मछली मारनेके लिये वह पानीमें जाता है। यह पानीमें बड़ी आसानीसे घूमता है और खूब तेज़ीके साथ तैरता है, इसके लिये पानी तथा स्थल दोनों एकसे होते हैं।

जब बच्चे तीन माहके हो जाते हैं तो उनकी माँ उन्हें भी जीवन निर्वाहके साधनोंसे परिचित करवाती है। वह उन्हें पानीके पास ले जाती है। पहले पहल वे पानीसे बहुत अधिक डरते हैं किन्तु धीरे-धीरे माँके साथ-साथ वे भी मछलियोंका शिकार करना सीख जाते हैं।

पहले माँ उनसे कहती है कि देखो मैं चलती हूँ तुम मेरे पीछे आना—लेकिन वह चली जाती है और बच्चा किनारे पर डरके मारे खड़ा रहता है। यह देख कर वह लौट आती है और फिर खुद पकड़ कर या उन्हें धक्का देकर पानीमें धकेल देती है। कभी-कभी उन्हें अपनी पीठ पर बैठा कर पानीमें घुसती है और जब पानीमें चली जाती है तो उन्हें पानीमें तैरनेके लिये छोड़ देती है। किन्तु छोड़ कर माँ उनसे दूर नहीं चली जाती और जब बच्चा परेशानीमें पड़ जाता है तो उसको देखनेके लिये वह उसके चारों ओर घूमती रहती है। यदि वह बेबस हो जाता है तो स्वयं सहारा देकर उसे उठा देती है।

जब बच्चोंको पानीमें डर लगना बन्द हो जाता है तथा उन्हें तैरना भी खूब आ जाता है तब उन्हें मछली मारनेकी शिक्षा दी जाती है। जैसे अबसे पहले वे पृथ्वी-पर अपनी मांके पीछे घूम-घूम कर स्थलका ज्ञान प्राप्त किया करते थे उसी प्रकार अब माँके साथ-साथ घूम-घूम कर जलके विषयमें जानकारी प्राप्त करते हैं। मछली पकड़ना सिखानेके लिये माँ एक मछलीको दूरसे खेद कर इस प्रकार

लाती है कि वह बच्चेके ठीक सामनेको होकर चले। सामने से बच्चा उसे पकड़नेका प्रयत्न करता है। कितनी ही बार असफल होता है किन्तु प्रत्येक असफलतासे कुछ-न-कुछ सीख लेता है और उस ज्ञानको अगली बार काममें लाता है।

कुछ बातें तो ये बच्चे जन्मसे ही जानते हैं किन्तु कुछ बातोंकी शिक्षाकी आवश्यकता पड़ती है।

एक बार एक ऊदबिलावका तीन महीनेका एक बच्चा पकड़ कर लाया गया और वह पहले गांवके एक आदमीके पास एक सलाख़ लगे पींजड़ेमें दो साल तक बन्द रक्खा गया। उस समयमें वह आदमी उसे खानेसे बचे हुये कुछ गोश्तके टुकड़े दे देता था तथा कभी-कभी बाज़ार के दिन थोड़ा-सा मछलीका सिरा। कभी-कभी उसे कुछ भी खाने को न मिलता था। रोटी पर ही गुज़र करनी पड़ती। ऊदबिलाव शाक तरकारी या रोटी कभी नहीं खाता है किन्तु जब भूखों मरने लगा तो उसने भूख शान्त करनेके लिये रोटी खानी स्वीकार कर ली।

इसके पश्चात उसे एक वैज्ञानिक ले आया और उसके जीवनके विषयमें जाननेका प्रयत्न करने लगा।

जिससे उसे नवीनता न लगे इसलिये उसे पुराने पींजड़े सहित ही नई जगह ले जाया गया था किन्तु फिर भी दो दिन तक वह बड़ा उदास रहा और कुछ भी नहीं खाया। पन्द्रह दिनके पश्चात् वह कुछ परिचित हो गया और फिर हाथसे ले लेकर खाना खानेमें भी सकुचाता नहीं था। इसके बाद उसे एक दूसरे घरमें रखा गया—इस घरकी दीवारें टीनकी बनी हुई थीं और यह एक सुरंग जैसा था। इस सुरङ्गका दूसरा छोर एक पानीके छोटेसे तालावकी ओर को खुलता था।

एक हफ्ते तक तो वह उस सुरंगकी ओर बिल्कुल ही नहीं जाता था। इसलिये थोड़ेसे पानीके छींटे उस पर डाले गये। इससे घबड़ा कर वह एकदम भागा और सुरंगसे निकल कर उस तालावके किनारे एक छेदमें जाकर छिप गया। दिन भर वह यहीं पर छिपा रहा और शामको अपने स्थान पर लौट आया।

इस तालाबमें कई प्रकारकी मछलियाँ जिन्हें ऊदबिलाव प्रायः पकड़ कर खाया करते हैं लाकर छोड़ी गईं। इसके बाद तीन दिन तक उस ऊदबिलावको भूखा रक्खा गया—यह सोच कर कि जब यह भूखा रहेगा तो अवश्य ही पानीमें मछली पकड़नेके लिये उतरेगा, किन्तु फिर भी वह पानीमें नहीं उतरा। इसके बाद इस तालाबमें केवल एक फुट पानी रखा गया किन्तु फिर भी वह पानीमें नहीं उतरा। आख़िरकार उसे खानेको देना ही पड़ा।

इसके बाद उस तालाबका किनारा ढलवा बनाया गया और मरी हुई मछलियाँ बिलकुल पानीकी सतहके पास रखी गईं। ऊदबिलाव उसे खानेके लिये गया और पकड़कर खा गया। इसके बाद मछली ज़रा सी पानीके नीचे रखी गई; फिर इसी प्रकार ऊदबिलाव जाकर खा आया। इस प्रकार धीरे धीरे मछली २ फुट पानीकी सतहके नीचे रखी गई; ऊदबिलाव गया और वहाँसे मछली पकड़ लाया।

ऊदबिलाव

किन्तु अब तक ऊदबिलाव पानीके नीचे ज़मीन पर ही चलता रहता—तैरनेकी उसने ज़रा भी कोशिश न की। एक महीने तक इसी प्रकार वह ऊदबिलाव पानीके नीचे ज़मीन पर चलता रहता किन्तु तैरता बिलकुल भी नहीं।

एक दिन उसे ज़बरदस्ती पानीमें ढकेल दिया और वह तैर कर दूसरे किनारे पर जा निकला। इसके बाद एक दिन एक अपरिचित आदमी उस तालाब वाले बाड़ेके अन्दर चला गया—वह ऊदबिलाव एकदम छलांग मार कर पानीमें घुस गया। इसके बाद वह अक्सर पानीमें जाकर अपना शिकार लाने लगा। अब वह पानीमें बिलकुल चुपचाप उतरता जिससे ज़रा भी आवाज़ न होती—ठीक उसी प्रकार जैसे जंगली ऊदबिलाव पानीमें घुसा करता है।

यद्यपि बहुत सी आदतें ऊदबिलाव अपने माँ-बाप से सीखता है किन्तु बहुत सी आदतें प्राकृतिक रूपसे वे अपने आप सीख जाते हैं। जैसे यही पालतू ऊदबिलाव दिन भर तो लेटा रहता था और रातको ही शिकारके लिये निकलता था।

इसी प्रकार इसके खेलनेकी आदत भी बिलकुल जंगली ऊदबिलाव जैसी ही रहती थी। दो साल तक पींजड़ेमें बंद रहने पर भी जब उसको खोला गया और मरी हुई मछलियाँ उसके खानेके लिये रक्खी गईं तो पहले तो उसने पेट भर कर उन्हें खाया। इसके पश्चात् जो बच गईं उन्हें लेकर वह उछालता और फिर पकड़ कर पंजेसे दबाता। कभी कभी ऊदबिलाव पानीमें, पेट भरने पर भी मछलियोंसे केवल खेलनेके लिये ही, घुस जाता है। जंगली ऊदबिलावोंमें जब बच्चा मछली मारना सीख लेता है तो वह कुटुम्बसे अलग हो जाता है और अपना अलग घर बना कर रहने लगता है।

बरसातके बाद गंगाके उतर जाने पर पानीकी एक झील सी रह गई थी—यह करीब २०० गज़ चौड़ी और २ मील लम्बी थी। इस झीलमें छः सात ऊदबिलाव दिखाई पड़े। वे कमर तक पानीमें डूबे हुए थे और सीटीकी सी आवाज़ करते हुए एक दिशा की ओरको बढ़ते चले जाते थे। कुछ देर तक वे आवाज़ करते रहते और फिर एक साथ पानीमें डुबकी लगाते। इस प्रकार एक झीलकी सारी लम्बाईको पार कर मछलियोंको एक किनारे पर खदेड़ कर ले जा रहे थे। इनमेंसे एक आध पानीमें डूबनेके बाद निकलता और अपने साथ ३-४ सेरकी एक रोहू मछलीको पकड़ लाता। वह उस लाइनमें से निकल कर उस मछलीको किनारेपर रख देता। किन्तु उसके साथी लगातार उसी प्रकार चलते रहते। वह किनारे पर उस मछलीमें से थोड़ी-सी खा लेता और फिर अपने साथियोंमें जा मिलता।

जो बेचारा बची हुई मछली किनारे पर रख गया था उसे एक बगला आया और खा गया।

एक बार सरयू नदीमें एक ऊदबिलावके पीछे एक कुत्ता दौड़ा। ऊदबिलाव ने पानीमें डुबकी नहीं लगाई बल्कि सीटी देता हुआ सा पानीके ऊपर ही तैरता रहा। जब कुत्ता उससे एक गजकी दूरी पर रह गया तो उसने डुबकी लगाई और बहुत दूर फिर दूसरी जगह जाकर निकला और फिर सीटी बजानी शुरू कर दी। जब-जब वह सीटी बजाता तो चारों ओर घूम-घूम कर देखता था कि कहींसे उसे कुछ मदद मिले। इसके थोड़ी ही देर बाद तीन-चार ऊदबिलाव और देख पड़े। उन्होंने पानीमें डुबकी लगाई और कुत्तेपर हमला किया। इसके थोड़ी ही देर बाद कुत्ता रोता हुआ पानीसे बाहर निकल आया। बाहर निकलनेपर जब कुत्तेको देखा तो इसकी पीठ पर तथा इधर उधर बगलमें ऊदबिलावके काटनेके दाग थे।

वैसे तो ऊदबिलावको हर समय ही काफी दिखाई पड़ता है किन्तु रात्रिमें तो इसकी निगाह बहुत तेज़ हो जाती है। चाहे कितना ही अँधेरा क्यों न हो यह अपना शिकार बड़ी आसानीसे देख लेता है। अगर तालाबमें रातको एक छोटी सी भी मछली छोड़ दी जाय तो यह उसे पकड़ लेता है। ऊदबिलावको अन्य जंगली जानवरोंके समान सुनाई भी बहुत अधिक पड़ता है किन्तु नाकसे सूंघ कर किसी चीज़को पहचाननेमें तो बहुतसे जानवरोंसे बढ़ा हुआ है।

बहुत दूरसे ही यह आदमीको गंधसे पहचान लेता है। एक बार एक अपरिचित व्यक्ति बाड़ेमें ऊदबिलावको देखनेके लिये जाना चाहता था। उस आदमीको देखनेसे पहले ही काफी दूरसे वह ऊदबिलाव गुर्राने लगा और बड़ा बेचैन हो गया।

यों तो ऊदबिलाव हर प्रकारका गोश्त खा लेता है किन्तु सबसे अधिक ज़ायकेदार उसे मछलियाँ लगती हैं। मछलियोंमें भी वह सबसे अधिक सर्प-मछली (eel) को पसन्द करता है। यह कभी-कभी मेंढक तथा छोटी-छोटी चिड़ियाँ भी खाता है और जब मछलियाँ नहीं मिलतीं

तो छोटे-छोटे जानवरोंको भी खा लेता है।

जैसा लिखा जा चुका है जब इसका पेट भर जाता है तो खेलनेके लिये यह मछलियाँ पकड़ता है। तब हर एक मछलीसे ज़रा-सा काट कर खा लेता है और बाकी पड़ा रहने देता है। मगर तालाबमें मछलियाँ बहुत कम हों, तो वह अपने खेलके लिये इतनी मेहनत करेगा ही नहीं। जब बहुत अधिक मछलियाँ तालाबमें होती हैं तो मछलियोंसे अपने आपको रोक भी नहीं सकता। एक दिन रातको तीन ऊदबिलाव एक तालाब पर आये और रात भरमें दो हज़ार मछलियाँ मार डालीं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह पानीमें कितनी आसानी तथा तेज़ीसे तैर सकता है।

शनि-वलय

[श्री चन्द्रिकाप्रसाद बी० एस-सी०]

प्राचीन कालके ज्योतिषियोंको जितने ग्रह ज्ञात थे उनमें से शनि सूर्यसे सबसे अधिक दूरी पर है। इसका वेग अन्य जाने हुये ग्रहोंसे कम होनेके कारण, यह एक चक्कर २९½ वर्षमें लगाता है—इसका नाम शनैश्चर, धीरे-धीरे चलने वाला, पड़ा। कोरी आँखसे देखने पर इस ग्रहमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती, परन्तु दूरदर्शकसे देखने योग्य वस्तुओंमें यह अत्यन्त मनोहर है। बीचमें कुछ चपटा सा गोला, और इसके चारों ओरसे कमरबन्दकी तरह घेरे हुये, धारीदार, चौड़ा, परन्तु पतला, वलय (ring) दिखलाई पड़ता है जो एकदम अनोखा है। ऐसा वलय किसी अन्य आकाशीय पिंडके साथ नहीं देखा गया है।

वलयको पहले पहल गैलीलियो ने देखा परन्तु वह इसका ठीक रूप नहीं जान सका। इसका ठीक पता ५० वर्ष बाद हायगेन्सको लगा। बीस वर्ष बाद १६७५ में कैसिनीने देखा कि वलय दो भागोंमें बटा है और इन दोनों भागोंके बीच एक काली रेखा है। १८५० में अमेरिकाके बॉण्ड ने तीसरे "ईषत्कृष्ण" वलयका पता लगाया जो ग्रह और मुख्य वलयके बीच में था।

वलयका बाहरी व्यास १७१,००० मील है (ग्रहका व्यास ७४,००० मील है), परन्तु इसकी मोटाई केवल १० मील है। यदि हम शनिकी मूर्ति शुद्धि पैमाने पर बनावें और इसके गोलेको फुट भर बनावें तो इसका वलय पतले-से-पतले चीनी कागज़से भी पतला होगा। वलयके पतले होनेके कारण जब पृथ्वी लगभग वलयके धरातलमें आ जाती है तब कुछ दिनों तक वलय बड़े-से-बड़े दूरदर्शकोंमें भी नहीं दिखलाई पड़ते।

वलय ठोस या तरल नहीं हैं, वे छोटे-छोटे ठोस टुकड़ों से बने हैं, और प्रत्येक टुकड़ा उपग्रहकी भांति, उपग्रहोंके नियमोंसे बद्ध होकर, ग्रहकी परिक्रमा करता है।

लाप्लास और उसके बाद मैक्सवेल ने यह पूर्ण रूपसे गणित द्वारा सिद्ध कर दिया कि वलय ठोस या तरल नहीं हो सकते, क्योंकि ऐसा होने पर वे नाम मात्रकी बाहरी शक्ति—किसी उपग्रह अथवा दूरस्थ ग्रहके आकर्षण—से छिन्न-भिन्न हो जावेंगे और ग्रहसे जा लड़ेंगे।

वलयके ठोस न होनेके और भी कई प्रमाण पाये गये हैं। रश्मि विश्लेषक यंत्रके द्वारा यह मालूम हुआ है कि वलयका बाहरी किनारा भीतरी किनारेसे कम वेगसे चलता है। यह बात वलयका ठोस न होना प्रमाणित करती है। यदि वलय ठोस होता तो बाहरके किनारेका वेग अधिक होता, क्योंकि एक ही भ्रमण-कालमें बाहरके बिन्दुको बड़ा चक्कर लगाना पड़ता।

घरेलू डाक्टर

[सम्पादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरख प्रसाद आदि]

इनजेक्शन (injection)—सुई द्वारा ओषधियाँ या तो त्वचाके नीचे, या मांसपेशियोंमें या शिराओंमें पहुँचाई जाती हैं। अधिकांश ओषधियाँ त्वचाके नीचे डाली जाती हैं। मांसपेशियोंमें कीटाणुनाशक रक्तरस (सिरम), दूध, रोगीका ही रक्त, मलेरियाके लिये कभी-कभी क्विनैन आदि ओषधियाँ दी जाती हैं।

शिरा में—त्वचा और मांसपेशीमें सुई लगाना बहुत सरल है और आवश्यकता पड़ने पर उसे कोई भी सीख सकता है। परंतु बहुत-सी ओषधियाँ शिरामें डाली जाती हैं और शिरामें सुई लगानेके लिये अभ्यास चाहिये। काम कुछ कठिन भी है। इसलिये इसका ब्योरेवार वर्णन नहीं दिया जायगा। शिरामें सुई लगानेमें सुईकी नोक शिरा (vein) के पेट (lumen) में डाली जाती है जिससे पिचकारीसे ओषधि शिरामें जाकर उसी क्षण रक्तमें मिल जाय। इस कार्यके लिये ऐसी शिरा चुनी जाती है जो त्वचाके कुछ ही नीचे हो और जो काफ़ी मोटी भी हो, जिससे सुईको शिरामें डालनेमें विशेष कठिनाई न हो।

शिरामें सुई डालनेमें सदा ही कुछ कठिनाई पड़ती है, विशेष कर स्थूल शरीर वाले रोगियोंमें और बच्चों तथा स्त्रियोंमें, जिनकी शिरायें चर्बीमें छिपी रहती हैं, या बहुत छोटी होती हैं, जिसमें सुई लगाना बहुत ही कठिन हो जाता है। कुछ बूढ़े रोगियोंमें भी, जिनके शरीरमें त्वचासे कुछ ही नीचे वाली शिरायें बहुत बड़ी दिखलाई देती हैं, सुईकी नोकको शिरामें डालनेमें बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि बूढ़े रोगियोंकी शिराओंकी दीवारें कैलसियमके क्षारसे भरी रहती हैं। इससे वे कड़ी हो जाती हैं; सुई उनमें चुभती नहीं है और शिरायें फिसल जाती हैं। फिर यदि सुई शिराके भीतर प्रविष्ट भी हुई तब डर रहता है कि हाथके ज़रा-सा हिल जानेके कारण सुई शिरासे बाहर न निकल आये, या यदि अधिक बल लगा कर सुई शिरामें चुभाई जाय तो डर रहता है कि सुई झोंकेमें शिराकी दोनों दीवारोंको छेदती हुई आर-पार न हो जाय; इससे दवा शिरामें जानेके बदले ग़लत जगह पहुँच जायगी।

अधिकतर कुहनी (elbow) के मोड़पर सामनेकी ओर स्थित शिरा इस कार्यके लिये चुनी जाती है। जिस स्थान पर त्वचामें छेद करे उसी स्थानमें शिरामें भी छेद न करना चाहिये नहीं तो सुई निकालने पर छेदके रास्ते रक्त निकलने लगेगा। इसे बचानेके लिये त्वचामें सुईकी नोंक भोंक लेनी चाहिये। फिर सुईको कुछ दूर तक त्वचाके नीचे-नीचे बढ़ा कर उसकी नोकको शिरामें चुभाना चाहिये।

ऐंटिमनी-क्लोराइड बहुत बीमारियोंमें काममें आता है। यह सर्वदा शिरामें ही दिया जाता है। इस दवाकी एक बूँद भी बाहर टपक जानेसे बहुत जलन होती है और सूजन उत्पन्न हो जाती है।

संखियाके कुछ यौगिक उपदंश रोगके लिये इस विधि-द्वारा बहुत अधिक प्रयोग किये जाते हैं।

कैलसियम भी क्षयरोगमें तथा घावसे रक्त बराबर निकलते रहने पर दिया जाता है। कुनैन तथा सिरम (रक्त-रस) भी कभी-कभी इसी प्रकार दिए जाते हैं।

(कैप्टेन डाक्टर उमाशंकर प्रसाद)

इनफ़्लुएंज़ा (influenza)—इनफ्लुएंज़ा एक तीक्ष्ण संचारी रोग है जो महामारीके रूपमें होता है; इसके मुख्य लक्षण हैं ज्वर, दुर्बलता और अंगोंमें पीड़ा। अन्तमें बहुधा फेफड़ोंमें भी रोग हो जाता है।

यह रोग विभिन्न समयों पर प्रायः सभी देशोंमें होता रहा है और इसलिये इसके बहुतसे नाम पड़ गये हैं। सत्रहवीं शताब्दीमें यह रोग इटलीमें विकट रूपमें हुआ और उस समय वहाँ इसका नाम 'इनफ्लुएंज़ा' पड़ गया। इस शब्दका अर्थ है 'ग्रहदशा', अर्थात् ग्रहोंका कुप्रभाव (अँग्रेज़ी शब्द influence से तुलना कीजिये)। उस समय इटलीवालोंका विश्वास था कि इनफ्लुएंज़ा ग्रहोंके प्रभावसे होता है। इटलीमें प्रचलित नाम ही अँग्रेज़ीमें भी प्रचलित हो गया और आज तक प्रचलित है। साधारणतः इसे भारतवर्षमें फसली बुखार कहते हैं। एक प्रसिद्ध वैद्यकी सम्मति है कि इस रोगका संस्कृत नाम संचारी प्रतिश्याय है।

कारण—किन कारणोंसे शरीर ऐसी अवस्थामें पहुँच जाता है कि इन्फ्लुएंज़ाका आक्रमण हो जाता है इसका पता अभी तक नहीं चल सका है। इस रोगके इतिहाससे प्रत्यक्ष है कि यह रोग बहुधा संसार भरमें, या संसारके बड़े भागमें, एकबारगी ही महामारीके रूपमें प्रगट होता है और सैकड़ों वर्षोंसे ऐसा होता आ रहा है। सन् १८४७-४८ के जाड़ेमें यूरोपमें इस रोगने भयंकर रूप धारण किया था। इसके बाद वर्षों तक यह रोग थोड़ा-बहुत ही और कभी यहाँ, कभी वहाँ होता रहा। १८८९-९० के जाड़ेमें इस रोगने फिर प्रचण्ड महामारीका रूप धारण किया और यूरोप, अमरीका और एशिया भरमें इसके

प्रकोपका भीषण परिणाम दिखलायी पड़ा। एक बार फिर रोगकी शक्ति क्षीण हो गयी। तब यह स्फुट व्यक्तियोंको, कभी यहाँ कभी वहाँ, थोड़ा-बहुत सताता रहा, और अधिकतर इससे केवल उतनी ही असुविधा होती थी जितना साधारण सरदी-जुकाम से।

१९१८-१९ में एक बार फिर इस रोगने उग्र रूप धारण किया और सारे संसारमें फैल गया। अनुमान किया जाता है कि उस वर्षमें लगभग डेढ़ करोड़ व्यक्ति मरे—इतना तो १९१४-१८ के यूरोपीय महासमरके चार वर्षोंमें नहीं मरे थे। आश्चर्य की बात तो यह थी कि बूढ़ों या बच्चोंकी अपेक्षा युवा व्यक्ति अधिक मरे। रोगके पिछले इतिहासको देखते हुए कुछ लोगोंका अनुमान है कि १९६० या १९७० तक सम्भवतः यह रोग एक बार फिर विश्व-व्यापी महामारीका रूप धारण करेगा—हाँ, तब तक चिकित्सा-शास्त्र इस रोगको अपने वशमें कर ले तो बात दूसरी है।

कीटाणु—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि इनफ्लुएंज़ा संचार* से फैलता है, परन्तु आज (१९४२) तक भी डाक्टर लोग एकमत नहीं हो पाये हैं कि संचार किस साधन द्वारा हो पाता है। १८८९ की महामारीके थोड़े ही समय बाद फ़ाइफ़र (Pfeiffer) ने देखा कि इनफ्लुएंज़ा ग्रस्त प्रायः सभी व्यक्तियोंके थूकमें एक विशेष शलाकाणु† रहता है। इसीसे लोगोंकी धारणा हो गयी कि इसी शलाकाणु (या जर्म) से इनफ्लुएंज़ा होता है, परन्तु पीछेके प्रयोगोंसे यह भली भांति सिद्ध हो चुका है कि रोग अन्य किसी तरह उत्पन्न होता है और रोगीके दुर्बल हो जाने पर फाइफर-शलाकाणु अधिकार जमा लेता है।

आधुनिक प्रयोगोंसे अब बहुतोंका विश्वास है कि यह रोग किसी ऐसे अतिसूक्ष्म विषैले जीवाणुसे उत्पन्न होता है जो, अपनी सूक्ष्मताके कारण, बिना चमक वाली चीनी मिट्टी के बरतनोंसे छन कर बाहर निकल आ सकता है।

जब रोगीसे निकला लार, थूक, या खखारके सूक्ष्मकण अन्य व्यक्तियोंके शरीरके भीतर साँस द्वारा पहुँच जाते हैं तो यह रोग दूसरोंको हो जाता है।

रोगसे बचनेकी शक्ति—एक बार हो जाने पर दुबारा रोग कम होता है, परन्तु पूर्ण रोग-मुक्तता नहीं उत्पन्न होती। कुछ व्यक्तियोंको बहुत शीघ्र इनफ्लुएंज़ा होता है, परन्तु कुछ व्यक्तियोंको (और उनकी संख्या कम होती है) उग्र महामारीके बीचमें रहने पर भी यह रोग नहीं होता। रोगके इतिहाससे पता चलता है कि यह लगभग चालीस-चालीस वर्ष पर उग्र रूप धारण करता है। इसका कुछ लोग यह अर्थ लगाते हैं कि एक बार किसी व्यक्तिको रोग के हो जाने पर उसमें रोग-मुक्तता उत्पन्न हो जाती है और जब तक इतना समय नहीं बीत जाता कि जनताका अधिक भाग रोगग्राही हो जाय, यह रोग भीषण महामारीका रूप नहीं धारण कर सकता।

लक्षण—(१) सरल इनफ्लुएंज़ा—रोग-संचारके दो दिनके बाद रोगके लक्षण दिखलाई पड़ते हैं (देखो 'अंकुरावस्था-काल' शीर्षक लेख)। लक्षण एक तो महामारीकी उग्रता पर निर्भर हैं और फिर वे एक महामारीमें दूसरीसे कुछ भिन्न होते हैं। उदाहरणतः, एक महामारीमें फेफड़ों पर प्रकोप हो सकता है, दूसरेमें अँतड़ियों पर। परन्तु कुछ लक्षण ऐसे हैं जो बिरला ही अनुपस्थित रहते हैं। उदाहरणतः एकाएक आक्रमण इस रोगकी विशेषता है। सम्भव है सबेरे रोगी पूर्णतया स्वस्थ रहा हो और अपना कार्य नित्यकी भांति आरम्भ किया हो, और दो-चार घंटेमें ही वह खाट पर पड़ जाय और ज्वर, प्यास, अत्यन्त दुर्बलता, आँखोंके पीछे पीड़ा, और अंगोंमें तीव्र पीड़ा हो आये। ऐसा भी हो सकता है कि अंगोंकी तीव्र पीड़ाके कारण अन्य लक्षणोंकी ओर ध्यान आकर्षित ही न

---

*ऐसे रोग जो एक रोगीसे दूसरे रोगी तक हवा, पानी, आदिसे पहुँचते हैं संक्रामक या संचारी (infectious) रोग कहे जाते हैं। ऐसे रोग (जैसे खुजली) जो रोगीको छूनेसे ही दूसरोंको होते हैं संस्पर्शज (contagious) रोग कहलाते हैं। कुछ रोग न तो संचारी होते हैं न संस्पर्शज, जैसे गँठिया।

†केवल सूक्ष्मदर्शकमें दिखलाई पड़ने वाले, अत्यन्त सूक्ष्म, और छड़ी (शलाका) के रूपके कुछ वानस्पतिक पदार्थोंको शलाकाणु (bacillus) कहते हैं।

हो। टाँगोंमें विशेष रूपसे पीड़ा अधिक हो सकती है। बहुधा वे ऐसी दशा पर पहुँच जाते हैं कि उन्हें छूनेसे भी पीड़ा होती है। पीठमें भी खूब पीड़ा होती है। नाकसे रक्त गिरना कोई असाधारण बात नहीं है। बहुधा कोष्ठबद्धता (कब्ज़) भी रहती है और शीघ्र दूर नहीं की जा सकती। जब तापक्रम बढ़ता रहता है तो त्वचा सूखी रहती है। परन्तु साधारणतः प्रथम चौबीस घंटेके अन्तके लगभग पसीना खूब आता है और पीछे भी समय-समय पर पसीना हुआ करता है, निद्राहीनतासे भी व्याकुलता हो सकती है, विशेष कर उन रोगियोंमें जिनमें सिरमें और अंगोंमें अधिक पीड़ा होती है। थोड़े दिनोंमें सूखी खाँसी भी हो आती है, परन्तु कफ नहीं निकलता। यह खाँसी कई सप्ताह तक चल सकती है। मुखसे कुछ निगलने पर गलेके भीतर पीड़ा भी जान पड़ सकती है।

शरीरके अंगोंमें कोई ऐसा परिवर्तन नहीं होता जिसे देख कर इनफ्लुएंज़ाकी पहचान ठीकसे हो सके। आँख कुछ लाल हो जाती है। जीभ पर मोटी, मैली, तह जम जाती है, परन्तु कभी-कभी जीभ लाल भी हो जाती है। तापक्रम ऐसे ही कभी १००° से कम रहता है और बहुधा १०२° या १०४° तक भी हो जाता है। कभी-कभी टाइफ़ॉयड (आंत्रिक ज्वर) की तरह ज्वर सदा बना रहता है, परन्तु साधारणतः ज्वर चढ़ा-उतरा करता है और तीनसे पाँच दिनके बाद ज्वर शीघ्र कम होकर छूट जाता है। सम्भव है ज्वर दुबारा आ जाय, विशेष कर यदि रोगी शीघ्र चलने-फिरने लगे। पलकें बहुधा झपी-सी रहती हैं। ओंठ पर छाले पड़ जा सकते हैं। मूत्र कम उतरता है और बहुत गाढ़े रंगका रहता है। रख छोड़ने पर उसमें यूरेटों (urates) की तलछट बैठ जाती है। नाकके भीतरी भाग सूखे और कुछ लाल हो जाते हैं। गला भी ऐसा ही हो जाता है। थूक घोंटनेमें पीड़ा हो सकती है।

(२) इनफ्लुएंज़ाकी आंत्रिक जाति—ऊपर जिस इनफ्लुएंजाके लक्षण बताये गये हैं वह सरल इनफ्लुएंज़ा है। साधारणतः दो महामारियोंके बीच ऐसा ही इनफ्लुएंज़ा हुआ करता है। परन्तु किसी-किसी वर्ष इनफ्लुएंज़ाके अधिकांश रोगियोंकी अँतड़ी आदिमें प्रदाह हो जाता है और ऐसे इनफ्लुएंज़ाको इनफ्लुएंज़ाका आंत्रिक रूप (gastro-intestinal form) कहते हैं। यह कहना बहुत कठिन है कि ये लक्षण सचमुच इनफ्लुएंज़ाके लक्षण हैं या पृथक रोगके हैं, जिसे इनफ्लुएंज़ाके उपद्रवों* (complications) में गिनना चाहिए।

इनफ्लुएंज़ाके आंत्रिक रूपमें रोग सिर और अंगोंमें पीड़ासे आरम्भ होता है, परन्तु तापक्रम साधारणतः ९९° से ऊपर नहीं जाता। चौबीस घंटेके भीतर ही मचली, जीभ पर मोटी तहका जम जाना, वमन, पेटमें शूल और कोष्ठ-बद्धता ये लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं। वमन ऐसा उग्र हो सकता है कि तरल पदार्थ भी पेटमें न रुके। ज़रा भी कुछ पेटमें जाते ही वमन होता है और उसके बाद बार-बार वमनकी चेष्टा आप-से-आप होती रहती है, चाहे कुछ न निकले। रोग जब आगे बढ़ता है तो बहुधा बहुत-सा कफ (श्लेष्मा) वमनके साथ निकल आता है और अक्सर उसमें रक्तकी कुछ धारियाँ दिखलायी पड़ती हैं। कभी-कभी तो रक्तसे कफ रंग जाता है। पेटके दर्दको रोगी बहुधा ऐसा बतलाता है मानो घाव हो गया हो। पेटको दबानेसे पीड़ा होती है।

कभी-कभी (परंतु बहुत कम) कोष्ठबद्धताके बदले अतिसार (पेटझरी) होता है। तब मलमें श्लेष्मा और रक्त रहता है और मलमें बड़ी दुर्गंध रहती है। यदि रोग बहुत ज़ोर नहीं पकड़ता तो लक्षण ये होते हैं:—खानेकी ओरसे रुचि एकदम हट जाती है, जीभ पर मैल जम जाती है और पेटमें कुछ पीड़ा जान पड़ती है।

(३) उपद्रव—(क) फेफड़ेमें—विषाक्त जाति (toxic type)—१९१८-१९ की विश्वव्यापी महामारीमें २० प्रतिशत रोगियोंमें फेफड़े पर कुप्रभाव पड़ा। इस जातिके इनफ्लुएंज़ामें आरम्भ तो सरल इनफ्लुएंज़ाकी भांति ही होता है, परन्तु पीछे कुछ घंटोंसे लेकर कई दिनके समयमें फुफ्फुस (फेफड़ा) भी रोगग्रस्त हो जाता है। उग्रतम दशामें तापक्रम शीघ्र १०४° या १०५° तक पहुँच जाता है; परन्तु कभी-कभी तापक्रम नहीं भी बढ़ता। फेफड़ेके अंशतः बेकार हो जानेसे रक्तमें ऑक्सिजनकी कमी हो जाती

* उपद्रव किसी प्रधान रोगके बीचमें होने वाले दूसरे विकार या पीड़ाएँ (शब्दसागर)।

है जिससे रोगीका चेहरा नीला पड़ जाता है; यह नीलिमा (cyanosis) विशेष रूपसे श्लैष्मिक कलाओंमें दिखलाई पड़ती है (आँखकी पलकोंका भीतरी भाग या मुँहके भीतर के भाग आदिकी तरहकी सतहोंको श्लैष्मिक कला कहते हैं) और चौबीस घंटेके भीतर ही रोगी मर जाता है।

उग्र न्युमोनिया वाली जाति (acute pneumonic type)—यदि रोग इतना उग्र न हुआ जितना ऊपर बतलाया गया है तो फुफ्फुसके रोगग्रस्त होनेके लक्षण अधिक धीरे-धीरे प्रगट होते हैं। इन लक्षणोंका पता अनुभवी डाक्टर अपने स्टेथसकोप द्वारा तथा अन्य रीतियोंसे पा सकता है। रोगीकी छातीमें पीड़ा रहती है। धीरे-धीरे फेफड़ा श्लेष्मा या गाढ़े जल या रक्त मिले जलसे भर जाता है, चेहरा नीला पड़ जाता है और मृत्यु हो जाती है।

मुखसे निकला कफ बहुत चिटचिटा होता है जिससे बहुधा कफको मुँहके बाहर अँगुलियोंसे खींचना पड़ता है। साधारणतः इस कफमें कुछ रक्त भी रहता है। यदि रोग कभी मृदुल रहा तो कफ पहले सफेद और फेनदार रहता है, और पीछे कम परन्तु दुर्गन्धमय होता है। कुछ रोगियों-में कफ क्या पीब रहता है। कुछको तो इस प्रकारका कफ इतना गिरता है कि चौबीस घंटेमें सेर डेढ़ सेर कफ निकलता है।

रोगीके रुधिरमें श्वेताणुओंकी संख्या पहले कुछ कम परन्तु शीघ्र ही बहुत अधिक हो जाती है।

(ख) ऊपरी श्वास प्रणालीमें—इनफ्लुएंज़ाके कारण ऊपरी श्वास प्रणालीकी श्लैष्मिक कलामें रक्त बढ़ जाता है और इसलिए वे लाल हो जाते हैं, जीभ पर गंदगी जम जाती है।

कानमें तीव्र पीड़ा हो सकती है। कानका परदा लाल हो जाता है। कुछ बधिरता आ जाती है और कान बहने लगता है। साधारणतः ये सब लक्षण कुछ दिनोंमें मिट जाते हैं। नाककी छूत लग कर आँखें भी उठ आ सकती हैं।

साधारणतः स्वर यंत्र (larynx) में प्रदाह हो जाता है। कभी-कभी तो श्वास-प्रणालीके विविध अवयव इतना सूज आते हैं कि साँस लेना कठिन हो जाता है। अन्तमें ब्रॉङ्को-न्यूमोनिया हो जाता है।

(ग) पाचक अंगोंमें—कुछ रोगियोंमें इनफ्लुएंज़ाके कारण शरीरके भीतरी पाचक अंग प्रायः स्थायी रूपसे खराब हो जाते हैं। इनफ्लुएंज़ाके दब जाने पर भी सबेरे की मचली, और भूख न लगनेका दोष, महीनों या वर्षों तक रहता है; थोड़ा-बहुत उदर-शूल और रह-रह कर अति-सार होता रहता है।

(घ) स्नायु मण्डल (nervous system) में सुस्ती, सिरदर्द, रोशनीसे चिढ़, आदि लक्षण इस बातके सूचक हो सकते हैं कि मस्तिष्कमें रोग पहुँच गया है। कुछ अन्य रोगियोंमें अंगोंकी पीड़ा महीनों रह जाती है और मांसपेशियाँ क्षीण हो जाती हैं।

(ङ) इनफ्लुएंज़ाके दौरानमें, या पीछे, चमड़ी पर कई तरहके दाने निकल सकते हैं। परन्तु इनसे कोई विशेष हानि नहीं होती। बाल भी झरने लगता है, जिससे रोगी बहुत चिन्तित हो जाते हैं, विशेषकर स्त्रियाँ। कभी-कभी तो इनफ्लुएंज़ाके छूटनेके एक सप्ताहके भीतर ही सब बाल झर जाते हैं। परन्तु साधारणतः कुछ समयमें बाल फिर उग आते हैं।

(४) अनुचर रोग—प्रायः सदा ही इनफ्लुएंज़ाके बाद उदासी, सुस्ती और दुर्बलता आ जाती है। थोड़े परिश्रमसे भी चरम सीमाकी थकान जान पड़ती है। सरमें चक्कर और कभी-कभी एकाएक वमन भी हो सकता है। धीरे-धीरे ये सब लक्षण मिट जाते हैं।

एकाएक खूब पसीना भी कभी-कभी छूटता है, विशेष कर जब रोगी घंटे दो घंटे सो चुका रहता है। परन्तु बुखार छूटनेके दस दिनके भीतर ही यह लक्षण साधारणतः मिट जाता है।

मानसिक खिन्नता (mental depression) इतनी हो सकती है कि रोगी कभी-कभी आत्महत्या तक कर डालनेकी बात सोचने लगता है। मानसिक भ्रम, प्रलाप, आदि लक्षण भी कभी-कभी दिखलाई पड़ते हैं। साधारणतः ज्वर छूटनेके दो सप्ताहके भीतर ये लक्षण मिट जाते हैं।

हृदयपर भी कुप्रभाव पड़ सकता है। हृदयमें धड़कन

रहती है और दम शीघ्र फूलता है। यदि इनकी चिकित्सा न की जाय तो पाँच-छः महीने तक कष्ट रह सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि इनफ्लुएंज़ासे उठनेके बाद क्षय रोग होनेका डर कुछ बढ़ जाता है, विशेषकर ऐसे रोगियों-में जो इनफ्लुएंजाके बाद तबियत कुछ खराब रहते हुये भी जबरन शरीरिक परिश्रम करने लगते हैं।

५—भविष्य—इनफ्लुएंजाके रोगीका भविष्य क्या है यह इस पर निर्भर है कि रोग विश्वव्यापी महामारीके समय हुआ है या किसी लघु महामारीके समय। १९१८-१९ की बृहत महामारीमें तो तगड़े युवा पुरुष बहुधा रोग-ग्रसित होनेके एक दिनके भीतर मर जाते थे। इसलिये भविष्य कैसा होगा इस पर सँभल कर कुछ कहना चाहिये। आरम्भमें रोगके प्रत्यक्ष रूपसे सरल रहने पर भी यह एकाएक प्रचण्ड हो जा सकता है। उस महामारीमें एक बात सीखनेमें आई, यह कि रोगीकी चेष्टा करने पर कि हम चलते-फिरते रहें और अपना काम करते रहें उसके चंगे होनेकी सम्भावना कम हो जाती है।

लघु महामारियोंमें और स्फुट व्यक्तियोंके इधर-उधर रोगग्रसित होने पर रोगियोंमें से बहुत अधिक अंश अन्तमें पूर्णतया स्वस्थ हो जाता है।

साधारणतः, निम्न लक्षण होने पर समझना चाहिये कि भविष्य अच्छा नहीं है। बहुत समय तक निद्रानाश, तरल पदार्थोंका भी वमन द्वारा बाहर निकल आना, बराबर वमन होना, रक्तचाप (blood-pressure) का शीघ्र और अधिक कम हो जाना, तापक्रमका घटना और साथ ही नाड़ीकी गति बढ़ जाना; रक्तमें श्वेताणुओंका कम हो जाना या बहुत अधिक बढ़ जाना और साथ ही न्यूमोनिया का रहना, मिनटमें ४५ बारसे अधिक बार साँस चलना और साथ ही न्यूमोनियाका उपस्थित रहना, रक्त निकलना, मस्तिष्क-आवरण-प्रदाह, (meningitis) शरीरके भीतर कहीं पीबका बनना और घातक कँवल (pernicious anaemia) या न्यूमोनिया (pneumonia) का हो जाना सदा अशुभ है और चेहरेका बहुत नीला पड़ जाना यही सूचित करता है कि मृत्यु निकट है। पीबयुक्त ब्रौनकाइटिससे ऐसा ही कोई रोगी बचता है।

इनफ्लुएंज़ाजनित कर्ण-रोग प्रायः सदा ही अच्छा हो जाता है। स्नायुप्रदाह भी अंतमें शान्त हो जाता है, यद्यपि इसमें कई सप्ताह लग सकते हैं। बाल झड़ जाने पर बाल फिर उग आता है, चाहे इसकी कोई चिकित्सा की जाय या नहीं।

६—निदान (रोगकी पहचान —ज्वरके एकाएक चढ़नेसे, हाथ-पैरमें पीड़ासे, और नाक तथा मुखकी श्लैष्मिक कलामें लालीसे इस रोगका अनुमान कुछ अवश्य होता है, परन्तु ये लक्षण ऐसे नहीं हैं कि इनसे इनफ्लुएंज़ा-का पक्का पता चले। इसीसे कई अन्य रोगोंकी प्राथमिक अवस्थामें इनफ्लुएंज़ाका भ्रम हो जाता है, जैसे न्यूमोनिया, खसरा (measles), मूत्रप्रणाली पर बैसिलस कोली (एक विशेष प्रकारके शलाकाणु) का आक्रमण और साधारण सर्दी-ज़ुकाम। कई दिनों तक इनफ्लुएंज़ाका ठीक पता नहीं चलता। कभी-कभी इनफ्लुएंज़ामें ज्वर बराबर बना रहता है और तब लोग कभी-कभी भूलसे समझते हैं कि पैराटायफ़ॉयड ज्वर है। वे विशेष लक्षण जिनसे इनफ्लुएंज़ा की पहचान होती है सूक्ष्म है; अनुभवी डाक्टर ही उसे समझ सकता है। ये लक्षण रोगके काफ़ी बढ़ जाने पर ही दिखलाई पड़ते हैं।

७—चिकित्सा (क) बचनेके उपाय—यदि रोगियों-के बीचमें रहना पड़े तो अपनी नाकपर कई तह किया हुआ बारीक कपड़ा इस प्रकार बाँध लेना कि साँस छन कर भीतर जाय लाभप्रद होता है। खुली हवामें रहना और भीड़, सिनेमा, थियेटर आदिमें न जाना उचित है। कुछ लोगोंकी राय है कि प्रतिदिन एक बार किसी कीटाणु-नाशक घोलसे कुल्ली करनी चाहिये। परन्तु इससे लाभ होनेकी विशेष सम्भावना नहीं जान पड़ती।

इनफ्लुएंज़ासे बचनेके लिये प्रतिवर्ष जाड़ेके पहले विशेष वैकसिनका इनजेकशन लगवानेसे अवश्य लाभ हो सकता है, क्योंकि तब इनफ्लुएंज़ा होगा भी तो अधिक बखेड़ा न होगा। परन्तु ये सब दवायें १९१९ के बाद बनी हैं और उसके बाद अभी कोई बृहत महामारी नहीं हुई है जिसमें इनकी सच्ची जाँच हो सके।

(ख) कष्ट-निवारक (palliative) चिकित्सा—प्रथम लक्षणके दिखलाई पड़ते ही चारपाई पर जा पड़ना

चाहिये। यदि कोठरीका तापक्रम ६५° से कम हो तो आग जला कर कोठरी गरम रखना अनुचित न होगा, परन्तु आगको इस प्रकार चिमनीके नीचे जलाना चाहिये कि धुआँ और आगसे उत्पन्न दूषित गैस आदि कोठरीकी हवामें न मिलने पावें। इसलिये केवल अँग्रेज़ी ढङ्गसे चिमनी-सहित बने घरोंमें ऐसा प्रबन्ध हो सकता है, परन्तु भारत-वर्षमें अधिकांश स्थानोंमें इतनी सरदी नहीं पड़ती कि आगकी आवश्यकता पड़े।

रोगीको गरम कपड़ा ओढ़ाये रखना चाहिये। वायुका आवागमन रुकने न पाये। बराबर स्वच्छ हवा आती रहे, परन्तु रोगीको ऐसे स्थानमें रखना चाहिये कि वह वायुकी धारामें न पड़े—उसके पासकी वायु बदलती रहे, परन्तु वहाँ बैठने पर यह न जान पड़े कि हवा बह रही है।

कोष्ठबद्धताकी चिकित्सा करनेसे सरदर्द बहुत कम हो जाता है और तबियत हल्की जान पड़ती है। इसके लिये एनेमा देना ही अधिक उत्तम है। परन्तु यदि इसका उपाय न हो सके तो डाक्टरसे कोई उचित रेचक (जुलाब) लेना चाहिये।

यह आवश्यक है कि नींद आरम्भसे ही बराबर आती रहे। यदि पीड़ा अधिक हो तो डाक्टर ऐसपिरिन (aspirin) देगा।

यदि खाँसी हो आये तो उसकी भी दवा होनी चाहिये। इसके लिये साधारणतः डोवर्स पाउडर दिया जाता है।

यदि तापक्रम अधिक हो तो कुनकुने पानीसे शरीर को अँगोछना चाहिये। ज्वर उतारने वाली दवाओंसे यह उपचार साधारणतः अच्छा पड़ता है। २४ घंटेमें एकसे डेढ़ आउंस तक ग्लूकोज़ पानीके साथ देना भी अच्छा है। ज्वरको धीरे-धीरे दूर करनेके लिये डाक्टर कोई नुसखा लिखेगा। नाकोंसे ३ भाग लीक्विड पैराफ़िन और एक भाग नरम पैराफ़िनका मिश्रण सुड़कना भी बहुधा लाभ-दायक होता है। इससे नाकके भीतरके रास्ते साफ़ रहते हैं और साँस लेनेमें कम कष्ट होता है।

आहार बहुत हल्का होना चाहिये। प्रथम दो दिन तक केवल पानी, बारली (barley) डाल कर औटाया जल, नींबूका रस डाल कर बनाया जल, पानी मिलाया दूध या बहुत हल्की चायसे ही काम चलाना चाहिये, परन्तु यदि आवश्यकता जान पड़े तो अंगूरका रस या संतरेका रस (इच्छा हो तो सोडा-वाटरके साथ), या ग्लूकोज़ पड़ा जल दिया जा सकता है। इनमेंसे ग्लूकोज़-को छोड़ कर अन्य पेयोंमें आहार-तत्व बहुत कम मात्रामें रहेगा, परन्तु इस प्रकारका लंघन ही अन्तमें अधिक उप-योगी सिद्ध होता है। पीछे कुछ अनाज (अच्छी तरह गला कर), दूध, मधु (शहद), फुल्का (हल्की चपाती या रोटी) और थोड़ा-सा मक्खन दिया जा सकता है। यदि रोग बहुत हल्का हो तो आरम्भसे ही कुछ अधिक भोजन दिया जा सकता है।

आंत्रिक जातिके इनफ्लुएंज़ामें बराबर संयमसे आहार देना पड़ेगा। कई सप्ताह तक तरकारी, फल और मांसादिसे परहेज़ करना पड़ेगा।

हृदयमें धड़कन रहने पर, और यह महीनों तक बनी रह सकती है, बहुत दिनों तक आराम करनेकी आवश्यकता है। यह जरूरी नहीं है कि रोगी चौबीसों घण्टे चारपाई पर पड़ा रहे। चारपाई पर पड़े रहनेके समयोंके बीचमें वह कुछ काल तक धीरे-धीरे चल भी सकता है, परन्तु चलनेके कालको बहुत धीरे-धीरे ही बढ़ाना चाहिये।

इनफ्लुएंज़ाके पश्चात् होने वाली खिन्नता और दुर्ब-लताके लिये भी विश्राम ही मुख्य चिकित्सा है, परन्तु यदि सम्भव हो तो हवा-पानी बदलनेके लिये कहीं अन्यत्र अधिक स्वास्थ्यप्रद देशमें चला जाना चाहिये। ईस्टन्स सिरप आदि टॉनिकोंसे भी लाभ होता है।

अन्य गुरु उपद्रवोंमें (न्यूमोनिया, मेनिंजाइटिस आदि में) डाक्टर क्या करेगा यह बतलानेकी यहाँ आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

(ग) रोग-निवारण—अभी तक कोई ऐसी चिकित्सा नहीं ज्ञात है जिससे इनफ्लुएंज़ा अच्छा हो जाय। परन्तु ऐसा जान पड़ता है कि विशेष सिरम (serum) के इनजेक्शनसे लाभ होगा। १९१८-१९ वाली महामारीके अन्तके लगभग यह पद्धति निकली। इसीसे इसकी पूरी जाँच नहीं हो सकी। (ब्रिटिश इनसाइक्लोपीडिया ऑफ़ मेडिकल प्रैक्टिस में डाक्टर ए०एच० डाउथवेट, एम०डी०, एफ़० आर० सी० पी०, गाइज़ हॉस्पिटलके फ़िज़िशियन, के लेखके आधार पर।)

इनसुलिन (insulin)—मनुष्यके पेटके भीतर एक ग्रंथि होती है जिसका नाम है क्लोम (pancreas)। इससे जो रक्त निकलता है वह आहारके पचानेमें सहायता देता है। इस रसमें इनसुलिन रहता है। इनसुलिनसे आहारमेंकी शर्करा (चीनी) या शर्कराकी जातिके पदार्थ पचते हैं। जब शरीरमें पर्याप्त मात्रामें इनसुलिन नहीं बनता तो डायाबिटीज़ रोग हो जाता है जिसमें मूत्रमें शर्करा आ जाती है। सन् १९२१ में टोरंटो (कैनाडा) के डाक्टर बैनटिंग ने इनसुलिनका आविष्कार किया और इसे अल्पमूल्यसे बनानेमें सफल हुये। अब तो यह पदार्थ दवाखानोंमें बराबर खरीदा जा सकता है। यह डायाबिटीज़की चिकित्सामें बहुत लाभप्रद सिद्ध हुआ है। इस वस्तुके उपयोगसे डायाबिटीज़के कारण होने वाली मृत्यु-संख्या घट कर आधी हो गयी है। इनसुलिन साधारणतः इनजेक्शनसे त्वचाके नीचे दिया जाता है (देखो इनजेक्शन)। इसकी मात्राको अत्यन्त सावधानीपूर्वक, शरीरके भीतर उपस्थित शर्कराके अनुसार, देना पड़ता है। कम या अधिक देने पर हानि होती है। डायाबिटीज़जनित मूर्च्छामें इनसुलिन विशेष रूपसे उपयोगी सिद्ध हुआ है।

इमलशन (emulsion)—उन गाढ़े तरल पदार्थोंको इमलशन कहते हैं जिनमें साधारणतः तैल पदार्थ पानी आदिमें मिश्रित रहता है। ये साधारणतः दूधिया रंगके होते हैं। दूध स्वयं इमलशन है। कॉड लिवर ऑयल, अर्थात् कॉड नामक मछलीकी कलेजीका तेल, रोगियोंको साधारणतः इमलशनके रूपमें दिया जाता है और यह इमलशन ग्लिसरिन डाल कर बनाया जाता है। इससे दो लाभ होते हैं। एक तो तेलका स्वाद छिप जाता है और इसलिये दवा कम अस्वादिष्ट हो जाती है। दूसरे यह अधिक पचनशील भी हो जाता है।

इमली (tamarind)—इमली एक प्रसिद्ध फल है। ऊपर पतला कड़ा छिलका होता है। छिल्केके भीतर खट्टा गूदा होता है जो फलके पकने पर लाल और कुछ मीठा हो जाता है। आयुर्वेदिक पद्धतिमें तो इसका आदर होता ही है, पाश्चात्य पद्धतिमें भी इसका उपयोग होता है। इसमें टारटरिक ऐसिड और ऐसिड पोटैसियम टारटरेट रहते हैं। इससे हल्का जुलाब (रेचक) भी बनता है और शरबत भी बनता है जो ज्वरोंमें प्यास बुझानेके काममें आता है। लैफ्टिनैंट करनल जी० टी० बर्डवुड ने अपनी पुस्तक 'प्रैक्टिकल बाज़ार मेडसिन्स' में निम्न नुसखे दिये हैं—

(१) इमली (पक्की)	½ छटाँक
खजूर	½ छटाँक
दूध	१¼ सेर

औटाओ और छानो। यह अच्छा रेचक (दस्तावर) है।

(२) इमलीका गूदा	½ छटाँक
पानी	३ पाव

मलो और छानो। फिर उसमें छोड़ो—

लौंग	¼ तोला
इलायची	¼ तोला
कपूर	१ रत्ती

यह भूख मिटनेकी दवा है, स्कर्वीमें भी लाभदायक है और प्यास बुझानेके लिये शरबतकी तरह भी पिया जा सकता है।

इलायची (cardamom)—इलायची (संस्कृत एला) के दो भेद होते हैं, सफेद (छोटी) और काली (बड़ी)। बड़ी इलायची तरकारी आदि तथा नमकीन आदि भोजनोंके मसालेमें दी जाती है। छोटी इलायची मीठी चीज़ोंमें पड़ती है और पानके साथ खाई जाती है। चिकित्साकी दृष्टिसे छोटी इलायचीमें ही गुण अधिक होता है, यद्यपि छोटी न मिलने पर बड़ीका उपयोग किया जा सकता है।

इलायची बहुत अच्छा अग्निवर्धक (carminative) तथा पाचक और सुगन्धिप्रद पदार्थ है। इलायचीसे बने पाचकके दो नुसखे नीचे दिये जाते हैं। ये लेफ्टिनैंट करनल बर्डवुडकी पुस्तक प्रैक्टिकल बाज़ार मेडसिन्ससे उद्धृत किये गये हैं।

१—इलायचीके दाने (चूर्ण)
सोंठ (चूर्ण)
लौंग (चूर्ण)
जीरा
} बराबर-बराबर

मात्रा—½ छोटा चम्मच (चाय वाला)।

२—इलायची
सौंफ़
जीरा, भूना
} बराबर-बराबर

मात्रा—भोजन उपरांत १ छोटा चम्मच भर।

इलायचीके दानोंसे तेल भी निकाला जाता है। इसका स्वाद और सुगन्धि दोनों बहुत आकर्षक होते हैं। अँग्रेज़ी दवाओंमें कम्पाउण्ड टिंकचर आफ़ कार्डमम प्रयुक्त होता है। इसमें इलायचीसे निकले तेलके अतिरिक्त दारचीनी और जीराका तेल, ग्लिसरिन तथा ऐलकोहल पड़ा रहता है और कोचिनियल डाल कर रंग लाल कर दिया जाता है। यह अन्य पेय ओषधियोंमें स्वाद और रंग लानेके लिये बहुधा छोड़ा जाता है। अजीर्णमें और वायुनाश करनेके लिये या उदरशूलकी चिकित्सामें यह बिना अन्य ओषधियों-के ही दिया जाता है।

इल्ला (wart)—इल्ला उस छोटी कड़ी फुन्सी-को कहते हैं जो चमड़े पर निकलती है। शब्दसागरके अनुसार इल्ला संस्कृत शब्द कीलसे उत्पन्न हुआ है। इल्लेको मसा भी कहते हैं जो संस्कृत शब्द मांसकीलका अपभ्रंश है। इल्लाको चर्मकील, किण, या अधिमांस भी कहते हैं। अँग्रेज़ीकी साधारण भाषामें इसे वार्ट और चिकित्सासम्बन्धी पुस्तकोंमें इसे वेरूका (verruca) कहते हैं।

इल्ला निरुपद्रव होते हैं। दो-चार इल्लोंसे कोई हानि नहीं होती। वस्तुतः ये छोटे-छोटे अर्बुद होते हैं (देखो अर्बुद)। ऐसा जान पड़ता है कि ये किसी छलनी-भेदी जीवाणुओंसे उत्पन्न होते हैं*। सम्भव है कि केवल एक प्रकारके ही छलनी-भेदी जीवाणु हैं जिनसे सभी प्रकारके इल्ले बनते हैं, और इल्लेकी जाति केवल इसी बात पर निर्भर है कि जीवाणु शरीरके किस अंगमें घुसते हैं, परन्तु अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि इन छलनी-भेदी जीवाणुओंकी जातियोंकी संख्या एकसे अधिक है।

इल्लोंकी आठ जातियाँ हैं। इनका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है।

(१) साधारण इल्ला (verruca vulgaris) छोटी-सी फुन्सीकी तरह होता है और चमड़ेकी सतहसे ऊपर उभड़ा रहता है। पहले तो यह सुईकी नोकके समान छोटा रहता है परन्तु शीघ्र बढ़ कर बड़ा हो जाता है। इसकी सतह कुछ खुरदुरी और सींगकी तरह कड़ी हो जाती है। रंगमें कुछ कालिमा भी आ जाती है। साधारणतः कई एक इल्ले साथ निकलते हैं। ऐसे इल्ले हाथ और अँगुलियोंकी पीठ पर अधिक निकलते हैं। साधारण इल्ले वर्षों तक बने रहते हैं। बहुधा उनकी संख्यामें वृद्धि ही होती रहती है, परन्तु कभी-कभी अपने आपसे वे मिट भी जाते हैं। साधारण इल्लेको छूतका रोग समझना चाहिये, परन्तु छूत बहुत तीव्र नहीं होती है। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, सम्भवतः यह किसी छलनी भेदी जीवाणुके कारण होता है।

(२) बच्चोंके इल्ले (verruca juvenilis)—बच्चोंको होने वाले इल्ले चिपटे होते हैं; साधारणतः कई इल्ले साथ ही निकलते हैं और अधिकतर हाथ, कलाई या मुख पर निकलते हैं। इन इल्लोंके आस-पासकी त्वचामें प्रदाहके कोई भी लक्षण नहीं दिखलाई पड़ते। साधारण त्वचासे ये इल्ले कुछ मैले रंगके होते हैं और छूनेमें कड़े नहीं होते। नापमें मसूरसे मटर तक ये हो सकते हैं (चित्र देखो)। ये बहुत समय तक एक रूप बने रहते हैं। साधारणतः उनकी संख्या बढ़ती ही जाती है। परन्तु कभी-कभी वे आप-से-आप मिट भी जाते हैं।

* छलनी-भेदी जीवाणु (filter-passing virus) उन सजीव जीवाणुओंको कहते हैं जो इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे बिना चमक वाले (unglazed) चीनी मिट्टीकी छलनी (छनना) से छन कर निकल आते हैं। साधारण जीवाणु (या कीटाणु) इन छलनियोंको नहीं पार कर सकते। छलनी-भेदी जीवाणु अपनी अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण सूक्ष्मदर्शक यन्त्र (माइक्रॉसकोप) में नहीं दिखलाई पड़ते।

(३) साधारणतः मुख (चेहरा), गरदन और खोपड़ी पर होने वाले काले, कड़ी सतह वाले इल्ले।

बच्चोंके इल्ले।

(४) लम्बे, पतले सूत्रसम (filiform) इल्ले जो साधारणतः गरदन या पलक पर निकलते हैं।

(५) उपदंशी (venereal) इल्ले—ये विशेष इल्ले जननेन्द्रियों पर और गुदास्थान पर होते हैं। नन्हें-नन्हें कई इल्लोंके मिल जाने पर इनका रूप फूलगोभीकी तरह दिखलाई पड़ता है। कुछ समय बाद ऊपरी सतहके छिल जाने पर उसमेंसे चेपयुक्त* पीब भी निकलता है जो गंदा और दुर्गन्धमय होता है। बहुत समय तक डाक्टरोंका विश्वास था कि ये इल्ले सूज़ाक (gonorrhoea) के कारण होते हैं, परन्तु अब बहुतोंका विश्वास है कि ये किसी विशेष छलनी-भेदी जीवाणुके कारण होते हैं।

(६) तलवेके इल्ले साधारणतः पैरोंके तलवेमें होते हैं और अधिकतर १३ से ३५ वर्षकी आयुमें होते हैं। ये इल्ले कड़े होते हैं और दबाने पर दुखते हैं।

(७) वृद्धोंका इल्ला (verruca plana senilis)—सम्भवतः वृद्धोंका इल्ला अन्य इल्लोंसे पूर्णतया विभिन्न है। सुविधाके लिये इसे भी इल्ला कहा जाता है। यह साधारणतः मुख (चेहरे) पर और धड़ पर होता है, विशेष कर पीठ पर। ऐसे इल्ले चिपटे और गाढ़े रंगके होते हैं। खुरचने पर कड़ा, सींगकी-सी बनावटका, पदार्थ निकलता है। ये इल्ले बहुधा उन लोगोंको होते हैं जिन्हें पहले वसाधिक्य (seborrhoea) का दोष रहा हो। इनको कटवा कर निकलवा देना ही अच्छा है, क्योंकि पड़े रहने पर कभी-कभी उनसे उपद्रव होने लगता है।

(८) क्षय रोगके कीटाणुओंसे उत्पन्न इल्ले। इनका वर्णन क्षय रोगके सम्बन्धमें मिलेगा।

चिकित्सा—खानेकी दवासे कभी-कभी लाभ होता है, परन्तु उसका भरोसा नहीं किया जा सकता। जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, इल्ले अकसर अपने-आप मिट जाते हैं और सम्भवतः इसी कारण कुछ ओषधियाँ प्रसिद्ध हो गई हैं। डाक्टर मैक्केन्ना अपनी पुस्तक "डिज़ीज़ेज़ ऑफ़ दि स्किन" में लिखते हैं कि इस बातका प्रमाण है कि इल्ले आश्वासन (suggestion) से अच्छे हो जा सकते हैं। [यदि डाक्टर रोगीको कोई-सी भी ओषधि दे दे, चाहे वह विशुद्ध जल ही क्यों न हो, और रोगीसे कह दे कि इससे तुम अच्छे हो जाओगे, और रोगीको विश्वास हो जाय कि वह अच्छा हो जायगा, तो यह आश्वासन हुआ। कुछ रोग ऐसे हैं कि वे केवल आश्वासनसे ही अच्छे हो सकते हैं। प्राचीन झाड़-फूँक भी आश्वासन-चिकित्सा ही है।] कई पुराने डाक्टरोंका विश्वास था कि चूनेके पानीको दिनमें तीन बार पीनेसे (मात्रा ४ छोटा चम्मच), या कोई जुलाब (जैसे मैगनीसियम सलफ़ेट) इतना देनेसे कि दिनमें दो-तीन पतले दस्त हुआ करें एक या दो सप्ताहमें इल्ले अच्छे हो जाते हैं।

आधुनिक चिकित्सा-पद्धतिमें वे या तो किसी क्षतकारी ओषधि (सिलवर नाइट्रेट, पिकरिक ऐसिड, या नाइट्रिक

* चेप = चिपचिपा या लसदार रस।

ऐसिड) से जला दिये जाते हैं या छुरी (वस्तुतः चम्मच के आकारकी विशेष छुरी) से काट कर अलग कर दिये जाते हैं और घाव पर सिलवर नाइट्रेट छुआ कर मरहम-पट्टी कर दी जाती है। कारबन डाइऑक्साइड स्नो (carbon dioxide snow) से दागनेसे भी इल्ले मिट जाते हैं। कारबन डाइऑक्साइड साधारण ताप-क्रम पर गैसके रूपमें रहता है। खूब ठंढा करने और दबाने से यह जम जाता है और तब यह बर्फ (स्नो) का रूप धारण कर लेता है, परन्तु यह बर्फ साधारणसे कहीं अधिक ठंढा होता है—इतना ठंढा कि शरीर पर जहाँ कहीं यह पड़ जाता है वहाँ जल जाता है।

डायाथर्मी (diathermy) अर्थात् वैद्युत-तरंगों के प्रयोगसे भी इल्ले सुखा दिये जा सकते हैं। एक्स-रश्मियों (X-rays) के प्रयोगसे भी ढाई-तीन सप्ताहमें इल्ले मिट जाते हैं। बड़े इल्लोंकी चिकित्सामें रेडियमका भी उपयोग किया जाता है।

उपदंशी इल्लोंको मरक्यूरिक परक्लोराइड लोशनसे धोकर बराबर स्वच्छ रखना चाहिये और उस पर किसी कीटाणुनाशक पाउडरको (जैसे साधारण टैल्क (talc) पाउडर तीन भाग, सैलिसिलिक ऐसिड १ भाग) दिनमें कई बार लगा कर सुखा डालनेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे इल्ले बहुधा मिट जाते हैं। न मिटें तो क्षतकारी ओषधियोंसे उन्हें जलाना पड़ेगा, या पूर्वोक्त वैद्युत-चिकित्सा करानी पड़ेगी।

इसबगोल (seeds of Plumbago ovata)—इसबगोल एक झाड़ीका बीज है। बीज तिलके आकारके होते हैं जो भूरे और गुलाबी रंगके होते हैं। यह शीतल बद्धकारक और रक्तातिसार-नाशक है। यह बवासीर, नकसीर, रक्तसार, अतिसार और सूज़ाकमें दिया जाता है। यूनानी चिकित्सामें इसका व्यवहार अधिक होता है। लैफ्टिनैंट करनल जी० टी० बर्डवुडके मतानुसार यह औषध बहुत अच्छा शामक (demulcent) है, अर्थात् पेटके भीतरी प्रदाहका शमन करता है। उनकी पुस्तक प्रैक्टिकल बाज़ार मेडसिन्समें कई नुसखे हैं जिनमें से एक यहाँ उद्धृत किया जाता है।

इसबगोल	१ तोला
पानी	६ छटाँक

रात भर फूलने दो। मात्रा—दो छोटे (अर्थात् चायके) चम्मच भर, दिनमें तीन बार।

ईथर (ether)—ईथर एक तरल पदार्थ है जो रोगियोंको अचेत करनेके लिये प्रयुक्त होता है। देखनेमें यह पानीकी तरह स्वस्छ होता है और इसमें हलकी मीठी गन्ध होती है। इसमें बहुत शीघ्र आग लग सकती है। इसलिये ईथरकी शीशीको दियेके पास कभी न खोलना चाहिये।

ईस्टन्स सिरप (Easton's syrup)—ईस्टन्स सिरप एक प्रसिद्ध टॉनिक (बलवर्धक ओषधि) है जिसमें कुनैन (quinine), स्ट्रिकनीन (strychnine) और लोहा पड़ा रहता है। ओषधि पीनेके पहले शीशीको अच्छी तरह हिला लेना चाहिये, क्योंकि स्ट्रिकनीन भारी होता है और नीचे बैठ जाता है। जब अधिक मानसिक परिश्रमके कारण स्नायु थक जाते हैं तो यह ओषधि विशेष उपयोगी सिद्ध होती है। परीक्षाओंके समय यह दुर्बल परीक्षार्थियोंको बहुधा लाभ पहुँचाती है।

उकवथ (eczema)—उकवत या उकवथ (संस्कृत उत्कोथ) शब्दसागरके अनुसार एक चर्म-रोग है जिसमें दाने निकलते हैं, खाज होती है और चेप बहा करता है। परन्तु वस्तुतः ये लक्षण किसी एक विशेष रोगके नहीं हैं; जब कभी भी त्वचामें प्रदाह (inflammation) होता है, चाहे यह किसी भी कारण हो, तो ये लक्षण उत्पन्न होते हैं। इसलिये यह कहना कि उकवथ कोई विशेष रोग है जिसका कोई विशेष उपचार है अनुचित होगा। बात वही है जैसे ज्वरमें; ज्वर कोई विशेष रोग नहीं है—यह मैलेरिया, टाइफॉयड, चेचक, इनफ्लुएंज़ा आदि रोगोंमें होता है और ये सब विभिन्न रोग हैं। उनकी चिकित्सा भी पृथक्-पृथक् और मूल रोगोंके अनुसार है।

पहले पाश्चात्य चिकित्सा-पद्धतिमें एकज़ेमा (eczema) शब्द भी प्रायः उसी प्रकार प्रयुक्त होता था जैसे उकवथ। उकवथ (= उत्कोथ) का अर्थ है मथ उठना।

एकज़ेमा शब्द एक यूनानी शब्दसे निकला है जिसका अर्थ है उबल पड़ना। इस प्रकार यह शब्द कई विभिन्न चर्मरोगोंके लिये प्रयुक्त होने लगा। आधुनिक पुस्तकोंमें इस शब्दका धीरे-धीरे तिरस्कार किया जा रहा है। अब इसे त्वचाप्रदाह (dermatitis, डरमैटाइटिस) कहते हैं। फरना या फलना (= शरीरमें छोटे-छोटे दानोंका निकल आना जिससे पीड़ा होती है—शब्दसागर) त्वचा-प्रदाहका ही एक रूप है।

जब त्वचा पर किसी प्रकारका प्रकोपन (irritation) पड़ता है, चाहे बाहरसे, चाहे भीतरसे, तो शरीर के अन्य भागोंकी भांति वह भी प्रकुपित हो जाती है। इसीको त्वचाप्रदाह कहते हैं। प्रकोपन जितनी ही अधिक रहता है और त्वचा जितनी ही अधिक नरम रहती है, प्रदाह उतना ही अधिक होता है।

प्रदाहकी पहली अवस्था यह है कि त्वचा लाल हो जाती है। इसे लालिमा (erythema) कहते हैं। इसका कारण यह है कि रक्तवाहिनियाँ शिथिल हो जाती हैं और उनमें अधिक रक्त पैठ जाता है। दूसरी अवस्था यह है कि शिथिल वाहिनियोंकी दीवारोंसे अधिक रक्तरस या चेप त्वचाके नीचे पहुँच जाता है। इसके कारण त्वचा की जीर्ण-शीर्ण ऊपरी तहके अणु एक-एक करके और इसलिये अदृश्य रूपसे छूटते रहनेके बदले, जैसा स्वस्थ्य शरीरमें होता रहता है, एक दूसरेसे चिपक जाते हैं और इस प्रकार वे भूसी (scales) के रूपमें छूटते हैं। यदि अधिक चेप बाहर निकल आया तो बाहर निकलने पर चेप सूख जाता है और इस प्रकार खुट्टी या पपड़ी (crust) बन जाती है।

यदि त्वचाके नीचे चेप इतना शीघ्र आता है कि वह उसी वेगसे बाहर नहीं निकल पाता, तो त्वचाकी ऊपरी झिल्ली या उपचर्म (epidermis) के नीचे चेप एकत्रित हो जाता है और नीर भरे नन्हें-नन्हें दानोंके रूपमें दिखलाई पड़ता है। इन नीर भरे दानोंको फुंसी (संस्कृतमें पनसिका और अँग्रेज़ीमें vesicles) कहते हैं। कभी-कभी ये फफोलेकी तरह बड़े भी हो जाते हैं, तब उन्हें स्फोट (blebs या bullae) कहते हैं। कभी-कभी भीतरसे इतना चेप बाहर आता है कि उपचर्म बह जाता है। तब प्रकुपित लाल तलसे चेप बराबर निकलता हुआ दिखलाई पड़ता है। इसीको वीपिंग एकज़ेमा (weeping eczema, अर्थात् अश्रुस्रव उकवथ) कहते हैं।

जब बहुत दिनों तक प्रदाह वर्तमान रहता है तो त्वचा के नीचेके स्तर मोटे और कड़े हो जाते हैं। इसको केराटोसिस (keratosis) कहते हैं जिसका अर्थ है सींग बनना अर्थात् सींगकी तरह कड़ा हो जाना।

इस प्रकार लाल होना, सूजन, भूसी छूटना, पपड़ी बनना, फुंसी, स्फोट, चेप बहना, कड़ा हो जाना सब एक ही क्रियाकी भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं। मुख्य बात यह है कि पता लगाया जाय कि त्वचाप्रदाह हुआ क्यों और उस कारणका उपचार किया जाय। सूखा (dry) एकज़ेमा, अश्रुस्रव एकज़ेमा, पनसिका वाली (vesicular) एकज़ेमा, आदि नाम देकर विभाजन करनेका कुछ महत्व ही नहीं है।

दुर्भाग्यवश अभी तक बहुतसे एकज़ेमा या उकवथमें यही नहीं पता चलता कि कारण क्या है। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि कुछ रोगोंमें त्वचाप्रदाह ऐसा रूप धारण करता है जिसके लक्षण उकवथ (= एकज़ेमा) से बहुत भिन्न होते हैं। उन रोगोंका वर्णन यहाँ नहीं किया जायगा।

लक्षण—उकवथके लक्षण ऊपर बतलाये जा चुके हैं। स्मरण रखना चाहिये कि प्रदाहके सभी लक्षण त्वचा-प्रदाहमें वर्तमान रहता है। ये हैं लाली, सूजन, ऊष्णता और पीड़ा। परन्तु पीड़ा कम होती है, उसके बदले खुजली मचती है। वस्तुतः खुजली हीके कारण अधिक बेचैनी होती है। चेप पहले तो स्वच्छ रहता है, परन्तु समय बीतने पर उसमें पीब भी आता है।

त्वचाप्रदाहके निम्न भेद माने जाते हैं :—

(१) अभिघाती (traumatic) (२) कृत्रिम (artefacta) (३) संचारी (infective) और (४) चैतन्यताजनित (sensitisation dermatitis)

इनमें से प्रत्येकके कई उपविभाग किये जाते हैं। नीचे मुख्य जातियोंका संक्षिप्त वर्णन है।

अभिघाती त्वचाप्रदाह—अभिघाती त्वचाप्रदाह

त्वचाका तीक्ष्ण प्रदाह है और यह प्रकोपक पदार्थोंके संपर्कसे या विशेष भौतिक कारणोंसे उत्पन्न होता है*। उदाहरणतः, त्वचा पर तेज़ाब पड़ जानेसे जो त्वचाप्रदाह होगा उसे अभिघाती त्वचाप्रदाह कहेंगे। राई, सिरका, तारपीन, अमोनिया, कास्टिक, तेज़ाब, कारबोलिक ऐसिड आदिसे ऐसा त्वचाप्रदाह उत्पन्न होता है। कभी-कभी तो जान-बूझकर ऐसा त्वचाप्रदाह उत्पन्न किया जाता है, उदाहरणतः, गँठियाकी पीड़ाको कम करनेके लिए राईका लेप लगा कर।

ऐसे त्वचाप्रदाहकी चिकित्सा यह है कि त्वचा पर फिर प्रकोपक न लगने पावे और उस पर कोई शांतिप्रद ओषधि लगाई जाय, जैसे कैलामैन लोशन (calamine lotion) जिसमें १ प्रतिशत इकथियोल (ichthyol) पड़ा हो।

धूपसे भी त्वचाप्रदाह उत्पन्न हो सकता है। यह भौतिक कारणोंसे उत्पन्न त्वचाप्रदाहका उदाहरण है। ऐसा प्रदाह साधारणतः गोरे जातियोंको (यूरोपियनोंको होता है।

एक्स-रश्मियोंसे भी त्वचाप्रदाह हो सकता है। अधिक लगनेसे तीक्ष्ण और धीरे-धीरे बहुत समय तक लगनेसे जीर्ण त्वचाप्रदाह उत्पन्न होता है। इसी कारण एक्स-रश्मिसे चिकित्सा करने वाले डाक्टरोंको बहुत सावधान रहना पड़ता है।

कृत्रिम त्वचाप्रदाह—स्वयं अपने हाथों अपनेको नोच-खसोट कर या रासायनिक पदार्थोंका उपयोग करके उत्पन्न किये त्वचाप्रदाहको कृत्रिम त्वचाप्रदाह कहते हैं। साधारणतः यह हिस्टीरिया-ग्रस्त युवा स्त्रियोंमें देखनेमें आता है (देखो हिस्टीरिया, hysteria)। लोगोंकी समवेदना प्राप्त करनेके लिए, या काम-काजसे छुटकारा पानेके लिए भी बहुधा कृत्रिम त्वचाप्रदाह उत्पन्न किया जाता है। हिस्टीरियामें विवेचन-शक्ति इतनी मंद पड़ जाती है कि उचित-अनुचितका विचार रह नहीं जाता। ऐसे रोगी बहुधा अंतमें पागल हो जाते हैं। डाँट-डपट या मार-पीटसे रोगियों पर कोई अच्छा परिणाम नहीं पड़ता। पूछने पर वे साफ इनकार कर जायँगे कि उन्होंने स्वयं अपने घाव बनाये हैं। ओषधियोंसे भी कुछ लाभ नहीं होता। हींग या नीम पिलानेसे कभी-कभी कुप्रवृत्ति रुक जाती है; कभी-कभी उपहाससे भी लाभ होता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सासे भी लाभ हो सकता है। यदि किसी क्षतकारी ओषधिके प्रयोग करनेका सन्देह हो तो खोज कर पता लगाना चाहिए और उसे हटा देना चाहिए। हिस्टीरिया-ग्रस्त स्त्रियाँ अपने साधनोंको छिपानेमें बहुत चतुर होती हैं और इसलिए कारणका पता लगाना बहुधा असम्भव होता है। एक प्रसिद्ध त्वचा-विशेषज्ञ ने लिखा है कि "सब कुछ सावधानी रखने पर भी त्रिया-चरित्रके आगे कभी-कभी पुरुष बेचारेकी नहीं चल पाती, चाहे वह त्वचा-विशेषज्ञ ही क्यों न हो।" का न करहिं अबला प्रबल !

संचारी त्वचाप्रदाह—संचारी त्वचा-प्रदाह सूक्ष्म जीवाणुओंके कारण होता है। ये जीवाणु निम्नमें से कोई भी हो सकते हैं—

(१) स्ट्रेप्टोकोकाई (streptococci)।

(२) स्टैफिलोकोकाई (staphylococci), केवल अकेले या उपरोक्त जीवाणुओंके साथ।

(४) भुकड़ी (फफूँद) की जातिके जीवाणु। सेबॉरिक डरमैटाइटिस (seborrhoeic dermatitis) इसी कारण होता है।

(५) एक विशेष प्रकारके दाद (दद्रु, ringworm) में जिसे साधारणतः धोबीकी खाज (dhobie's itch) कहते हैं त्वचा बहुत कुछ वैसी ही हो जाती है जैसे उकवथ में।

स्ट्रेप्टोकोकाईजनित त्वचाप्रदाह—स्ट्रेप्टोकोकाईके उपद्रव कई रूप धारण कर सकते हैं, परन्तु वह रूप जो उकवथसे मिलता-जुलता है स्ट्रेप्टोकोकाईजनित त्वचा-प्रदाह (streptococcal dermatitis) है। अधिकतर यह ऐसे बच्चोंकी खोपड़ीकी चमड़ी (शिरस्-त्वचा, scalp) पर होता है जिन्हें आहारमें विटैमिन ए की कमी रहती है। बड़ोंमें यह बहुधा कानके पीछे (कानकी जड़के पास), या नितंबोंकी बीच वाली संधि पर,

* तीक्ष्ण (acute) रोग वे कहे जाते हैं जो शीघ्र महत्तम पर पहुँचते हैं। इसका उल्टा है जीर्ण (chronic) अर्थात् ऐसे रोग जो बहुत दिनों तक रहते हैं।

या ऊरुसंधिकी तहमें, या नाभिमें होता है। मोटी स्त्रियोंके स्तनोंके नीचे भी यह हो सकता है। इन स्थानोंसे फैलकर यह अन्यत्र भी पहुँच सकता है। इस प्रकार यह साधारणतः ऐसी ही जगह होता है जहाँ त्वचामें तह रहती है, अर्थात् त्वचाके दो आसन्न भाग एक दूसरे पर पड़ते हैं और पसीना आदिके कारण त्वचा दुर्बल हो जाती है। तहोंकी संधि पर त्वचा फट जाती है। यदि तान कर देखा जाय तो फटे स्थानसे दो-चार बूँद रुधिर निकल पड़ता है। यह फटा स्थान अच्छा होता रहता है परन्तु तनिक भी तनाव पड़नेसे फिर फट जाता है। इस फटे स्थानके चारों ओरकी त्वचा क्षत हो जाती है और उसमें से चेप निकलता रहता है। इस क्षत स्थानकी सीमाओं पर पपड़ी रह सकती है।

जब शिरस्त्वचामें रोग रहता है तो त्वचा तनी-सी रहती है। बाल कम हो जाते हैं। उसमें पीली, चिपचिपी पपड़ी बन जाती है और बाल लटिया जाता है (अर्थात् एक दूसरेसे चिपक जाता है)। पपड़ी छुड़ाने पर दिखलाई पड़ता है कि नीचेकी त्वचामें प्रदाह है और सब जगहसे चेप निकल रहा है। शिरस्त्वचाके साथ-साथ कानके पीछे जड़के पासके स्थानमें भी प्रायः रोग रहता है। जब रोग अच्छा होने लगता है तो चेप कम निकलता है। पपड़ी बनना बन्द हो जाता है। उसके बदले रूसी बना करती है, और त्वचामें लाली रहती है। अन्तमें सूखी रूसी बहुत समय तक रह सकती है। (रूसी = सिरके चमड़े पर जमा हुआ भूसीके समान छिलका—शब्दसागर)

निदान—अन्य रोगोंसे स्ट्रेप्टोकोकाईजनित त्वचा-प्रदाहका पृथक्करण कठिन है। त्वचाको खुरच कर भूसी की परीक्षा सूक्ष्मदर्शकसे करने पर, और आवश्यकता हो तो रोगाणुओंको जिलेटिनमें पाल कर जाँच करनेसे सच्चा पता लग सकता है।

चिकित्सा—स्ट्रेप्टोकोकाईजनित त्वचाप्रदाहको अच्छा करनेमें समय लगता है। विशेष कीटाणुनाशक घोलोंसे धोना और गंधक, मरक्यूरिक ऑक्साइड आदि पड़ा मरहम लगाना यही उपचार है। रोग अच्छा हो जाने के बाद भी कुछ समय तक बराबर, और फिर कभी-कभी, मरहम लगाते रहना चाहिए, अन्यथा रोगके फिरसे उभड़ आनेका डर रहता है। उन भागोंको सदा स्वच्छ रखना चाहिए। नरम कपड़ा या गॉज़ (रुई नहीं) बीचमें रख कर त्वचाके आसन्न भागोंको अलग रखना चाहिए, और स्टार्चरहित डस्टिंग पाउडर छिड़ककर उन भागोंको सूखा रखना चाहिए।

स्टैफिलोकोकाईजनित त्वचा-प्रदाह—इस रोगमें बालोंकी जड़ोंके पास पीब आने लगता है। इसीको नाईकी खाज (barber's itch) कहते हैं।

यह रोग मरहम और अन्य दवाओंसे शीघ्र अच्छा नहीं होता, परन्तु एक्स-रश्मियोंसे अच्छा किया जा सकता है।

कभी-कभी खोपड़ीके उस भागकी त्वचा जहाँ यह रोग होता है कड़ी पड़ जाती है और ऊभड़-खाबड़ दिखलाई पड़ती है; केवल कुछ बालोंके जड़ोंमें पीब दिखलाई पड़ता है; अधिकांश बाल छोटे और कड़े हो जाते हैं। परन्तु ऐसा रोग बहुत कम दिखलाई पड़ता है।

भुकड़ीजनित त्वचाप्रदाह—भुकड़ी (फफूँद) की जातिके जीवाणुओं (vegetable fungi) के कारण कई प्रकारके रोग होते हैं, इनमेंसे कुछ रोग उकवथ (=एकज़ेमा) से बहुत मिलते-जुलते हैं। उकवथ-सदृश रोगोंमें से प्रधान है वसाधिक त्वचाप्रदाह (सेबॉरिक डरमैटाइटिस, seborrhoeic dermatitis)। यह उन लोगोंको अधिक होता है जिनके शरीरमें वसा (तैल या चर्बी) अधिक बनती है और इसलिए त्वचा साधारणसे अधिक तैलयुक्त होता है। इसी लिए इसे वसाधिक (=सेबॉरिक) त्वचाप्रदाह कहते हैं। यह एक विशेष वानस्पतिक भुकड़ी (लैटिन नाम पिटिरोस्पोरन pityrosporon) के कारण होता है। वसाधिक त्वचाप्रदाहके दो भेद माने जाते हैं। एक तो प्रधानतः सिर में होता है और बच्चों तथा जवानों दोनोंको होता है; सिर से फैल कर यह अन्यत्र भी हो जा सकता है। दूसरा वह है जो सिरमें न होकर छाती और पीठमें ही होता है और साधारणतः बच्चोंको ही होता है। दोनोंकी चिकित्सा एक ही है। इसलिए इन भेदों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। पूर्वोक्त जीवाणुके साथ बहुधा दो और

जीवाणु भी रहते हैं और तीनों एक दूसरेकी सहायता करते हैं।

कारण—ऊनी कपड़े पहनने, गंदगी (प्रतिदिन स्नान न करने) आदिसे रोग होनेकी संभावना बढ़ जाती है। अधिकांश डाक्टरोंका मत है कि ये जीवाणु शरीरमें सदा ही रहते हैं। अवसर पाकर ये उभड़ आते हैं। कुछ कहते हैं कि कहीं-न-कहीं अन्यत्रसे रोगका छूत लगता होगा।

लक्षण—जब रोग खोपड़ीसे आरम्भ होता है तो वहाँ लाली रहती है, और प्रदाहके अन्य लक्षण भी थोड़ी-बहुत मात्रा में रहते हैं। कुछ चेप भी निकलता है। जब रोग केशसे ढके स्थानसे आगे बढ़ता है तो सीमा-रेखा चन्द्राकार रहती है। धीरे-धीरे कान तक रोग पहुँच जाता है और कानके आगे, पीछे, दोनों ओर हो जाता है। त्वचा या तो लाल हो जाती है और चेप निकलता है या तेलयुक्त भूसी छूटती है। रोग चेहरे पर भी हो जाता है, विशेष कर ललाट, नाक, ठुड्ढी, और होंठ और नाकके बीचके स्थान पर। बढ़ते-बढ़ते रोग गरदन और छाती तक पहुँच सकता है। रोगकी पहचान करनेके लिए रोगग्रस्त क्षेत्रके छोरको देखना चाहिए। वहाँ लाल-लाल दाने दिखलाई पड़ेंगे, जो देखनेमें और छूनेमें तेलयुक्त जान पड़ेंगे।

जब रोग सिर पर न होकर केवल धड़ पर होता है तब साधारणतः चकत्ते गोल और पृथक-पृथक होते हैं। ये लाल और कुछ कड़े होते हैं और उनमेंसे तेलयुक्त या सूखी भूसी छूटती है। परन्तु रोगीकी शिरस्त्वचा (खोपड़ी की खाल) को देखनेसे पता चलेगा कि उसे वसाधिक-दोष है—उसकी त्वचा तेलयुक्त रहती है।

चाहे सिर पर हो, चाहे धड़ पर, वसाधिक त्वचाप्रदाह में थोड़ी खुजली होती है।

कभी-कभी यह रोग लिंगेन्द्रियों पर हो जाता है। तब अधिक बेचैनी होती है, विशेष कर उनको जिन्हें पसीना अधिक आता है। अंडकोश पर लालीसे लेकर पूर्ण विकसित रूपमें यह रोग हो जा सकता है। पुरुषोंके लिंग-मुंड पर रोगके हो जाने पर रोगी बहुत चिन्तित हो जा सकता है।

चाहे रोग कहीं भी हो, इसकी ठीक पहचान कठिन है क्योंकि कई अन्य रोगोंमें भी ऐसे ही लक्षण होते हैं।

चिकित्सा—सब प्रकारका वसाधिक त्वचाप्रदाह गंधक से अच्छा हो जा सकता है। पहले जलमें मिला कलॉयड गन्धक*, पीछे रोगके दबने पर गन्धकका मरहम अच्छा रहता है। यदि रोग ऐसे स्थान पर हो जहाँ कपड़ा पहना जाता है तो बराबर ध्यान रखना चाहिये कि वहाँ ऊनी कपड़ा त्वचाको न छूने पाये। एक्स-रश्मियोंसे भी लाभ होता है।

बाहरी चिकित्साके अतिरिक्त वसाधिक्यको भी मिटानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इसके लिए कोष्ठबद्धताको दूर करना चाहिये। पाचन-शक्तिमें कोई अन्य दोष हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिए। बाहर (खुले मैदानमें) अधिक रहना, हलका व्यायाम करना, सादा भोजन खाना ये लाभप्रद हैं। चीनी, मैदा अन्य कारबोहाइड्रेट, वसा (घी, मक्खन, मलाई, रबड़ी, भैंसका दूध, तेल) ये सब हानिप्रद हैं। मदिरा (शराब) भी बुरी है। हरी तरकारियाँ, (पत्तेवाली तरकारियाँ) और फल अधिक खाना चाहिए। चीनी एकदम बन्द हो जाय तो अच्छा। बिना चोकर निकाला आटा खाना चाहिए। मिरच, मसाला, अचार, मांस और सभी गरिष्ठ भोजनका परित्याग कर देना चाहिए। सोडा-वाटर, लेमनेड आदि भी न पीना चाहिए। पर्याप्त व्यायाम करना चाहिए, परन्तु इतना धीरे-धीरे कि साधारणसे अधिक पसीना न हो। थोड़ा कलॉयड गन्धक पीना भी हितकर होता है।

दाद—(दद्रु, ringworm) कई जातियोंका होता है। उनमेंसे एकका नाम ही एकज़ेमा (एकज़ेमा मारजिनेटम ऑफ़ हेबरा, eczema marginatum of Hebra) पड़ गया है। यह साधारणतः लिंगेन्द्रियों के आस-पास होता है, और वहाँसे आसन्न भागों तक फैल जाता है। भारतवर्षमें अँग्रेज़ों ने इसका नाम धोबीज़ इच (dhobie's itch) या धोबीकी खाज रख दिया है।

---

* जब गन्धकके कण विशेष रासायनिक रीतियोंसे इतने सूक्ष्म बनते हैं कि उनसे पानी दूधिया-सा होकर रह जाता है और रक्खे रहने पर भी गन्धक बैठने नहीं पाता तो कहा जाता है कि गन्धकका कलॉयड घोल बना है।
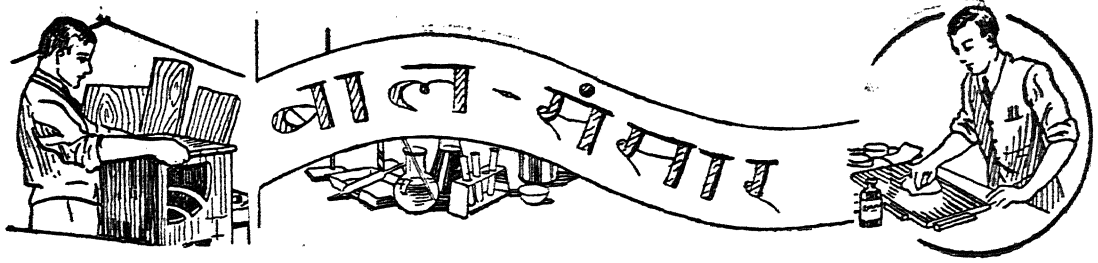
जादू

प्रत्येक चतुर बालकको कुछ-न-कुछ जादू दिखला सकना चाहिये। जादू जानने वाले लड़के पार्टी आदिमें दूसरोंका मनोरञ्जन कर सकते हैं, और इसमें स्वयं भी मज़ा मिलता है। फिर एक लाभ यह है कि जादू जानने वाले लड़केको कोई आसानीसे धोखा नहीं दे सकता।

जादू दिखानेके लिये बहुधा विशेष वस्तुओंकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु कुछ खेल ऐसे हैं कि उनमें केवल हाथकी सफाई चाहिये। ये खेल यंत्र वाले खेलोंकी अपेक्षा कुछ कठिन होते हैं, क्योंकि इनमें अभ्यासकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु एक बार अच्छी तरह अभ्यास हो जानेके बाद हाथकी सफाई वाले खेल प्रायः सभी जगह और सभी अवसरों पर दिखाये जा सकते हैं। इन खेलोंमेंसे ताशके और सिक्कोंके खेल प्रसिद्ध हैं। नीचे हम सिक्कोंकी वर्षा नाम का एक खेल बताते हैं जो ठीक प्रकारसे दिखाने पर बहुत आश्चर्यजनक जान पड़ता है। परन्तु अच्छी तरह अभ्यास हो जानेके पहले इसे दूसरोंको न दिखाना चाहिये। खेल करने वालेको ज़रा भी झिझक न होनी चाहिये।

इस खेलको सीखनेके पहले दो चार विशेष चालें सीखनी पड़ती हैं। इन चालोंकी आवश्यकता केवल इस लेखमें बताये गये खेलमें ही नहीं, प्रायः सभी सिक्कोंके खेलोंमें पड़ती है। इसलिये इन चालोंको एक-एक करके अच्छी तरह सीख लेना चाहिये। बिना इनमें पक्का हुये असली खेल दिखानेकी चेष्टा न करनी चाहिये।

हथियाना—नौसिखियेको पहले हथियाना (पामिंग, palming) सीखना चाहिये। हथियानेका अर्थ है कि सिक्केको गदोरीमें इस प्रकार रक्खा जाय कि सामनेसे (हाथकी पीठकी ओरसे) हाथ खाली ही जान पड़े। यह काम गदोरीको ज़रा-सा सिकोड़ लेनेसे होता है। हथियाने की शक्ति प्राप्त करनेके लिये रुपया या पुराने चालका अधन्ना (ताँबे वाला) लो। अन्य सिक्के छोटे पड़ते हैं और उनके हथियानेमें नौसिखियेको विशेष कठिनाई होगी। पहले रुपयेको दाहिने हाथकी गदोरी पर लगभग बीचमें रक्खो, जैसा चित्र १ में दिखलाया गया है। अब हथेलीको ज़रा-

चित्र १
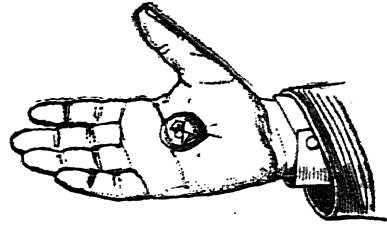
सा संकुचित करो। यदि सिक्का ठीक स्थान पर रक्खा रहेगा (और दो-चार बार चेष्टा करने पर ठीक स्थानका पता शीघ्र लग जायगा), तो गदोरीके संकुचित होनेसे गदोरीका मांसल अंश सिक्केकी कोरको दबा देगा और इसलिये सिक्का अच्छी तरह पकड़में आ जायगा (चित्र २)। इसके
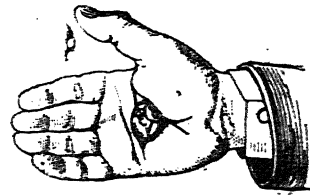
चित्र २

बाद इस बातका अभ्यास करना चाहिये कि पूर्वोक्त रीतिसे सिक्केको पकड़े रहने पर भी हाथ और अँगुलियोंको स्वाभाविक रीतिसे अन्य कामोंमें लगाया जाय और तो भी सिक्का न गिरे। थोड़े ही अभ्याससे यह भी आ जायगा। इन कामोंमें इस बात पर ध्यान दिया जाय कि गदोरी या तो अपनी ओर रहे या नीचेकी ओर। दर्शकोंकी ओर गदोरी कभी भी न जाय, नहीं तो उनको सिक्का दिखलाई पड़ जायगा और भंडाफोड़ हो जायगा। जब दाहिने हाथमें सिक्का हथियाना अच्छी तरह आ जाय तो बायें हाथसे हथियानेका अभ्यास करना चाहिये। इसके बाद सिक्केके बदले घड़ी, अंडा या

नींबू हथियाना सीखना चाहिये, क्योंकि जादूगरीमें इन वस्तुओंके हथियानेकी आवश्यकता भी बहुधा पड़ती है।

पास करना हथियाना अच्छी तरह आ जाने पर पास (pass) करना सीखना चाहिये। पास करनेका उद्देश्य और अर्थ यह है कि दर्शकको जान पड़े कि एक हाथकी वस्तु दूसरे हाथमें रख दी गई, परन्तु उस वस्तुको असलमें पहले वाले हाथहीमें छिपा लिया जाय। यदि बार-बार एक ही भांतिसे पास किया जाय तो दर्शकोंको सन्देह हो जायगा, इसलिये यह आवश्यक है कि जादूगर कई रीतियोंसे पास करना जाने। तो भी नौसिखिया नीचे दिये गये पासोंमें से १ और ४ को सीख कर आरम्भमें काम अच्छी तरह चला सकता है।

पास १— सिक्केको दाहिने हाथमें दूसरी और तीसरी* अँगुली और अँगूठेसे पकड़ो (चित्र ३), परन्तु वस्तुतः सिक्का पहली और तीसरी अँगुलियोंकी दाबसे टिका रहे, अँगूठा केवल दिखानेके लिये सिक्केको छूता रहे। अब अँगूठेको हटा लो और अँगुलियोंको इस प्रकार बन्द करो कि सिक्का हथियानेकी स्थितिमें आ जाय (चित्र ४)। यदि आरम्भमें सिक्का अँगुलियोंके बीच ठीक जगह पर रक्खा जायगा तो अँगुलियोंको बन्द करने पर सिक्का आप-से-आप गदोरीके ठीक उसी भाग पर पहुँचेगा जहाँ सिक्का हथियाया जाता है। अँगुलियोंको फिर फैलाने पर सिक्का गदोरीमें दबा रह जायगा, जैसा चित्र २ में दिखाया गया है। जब इस प्रकार का पास हाथको निश्चल रख कर करना आ जाय तो उसी क्रियाको हाथको चलाते रख कर करना चाहिये। यह हाथ दाहिनी ओरसे बायें हाथ तक जाय। बायाँ हाथ आरम्भमें खुला रहे, परन्तु ज्योंही दाहिने हाथकी अँगुलियाँ बायें हाथकी गदोरीको छूएं, त्योंही बायाँ हाथ इस प्रकार बन्द कर लिया जाय मानों दाहिने हाथका सिक्का बायेंमें आ गया हो। ठीक प्रकारसे यह पास करने पर यही जान पड़ेगा कि सिक्का दाहिने हाथसे बायेंमें आ गया है। पास करनेके बाद बायें हाथको बन्द रखना चाहिए, मानों उसमें सिक्का बन्द है। दाहिने हाथको नीचे लटकने देना चाहिए; और वह हाथ खुला रहे (मुट्ठी मत बन्द करो)। इस प्रकार दर्शक समझेंगे कि उसमें कुछ नहीं है, यद्यपि इसी हाथमें सिक्का हथियाया हुआ है।
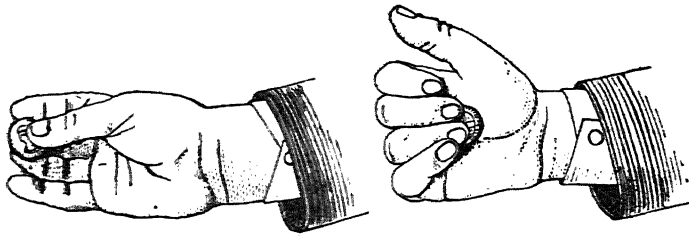
चित्र ३ चित्र ४

* अँगूठेकी बगल वाली अँगुलीको पहली अँगुली, बिचली अँगुलीको दूसरी अँगुली और उसके बाद वालीको तीसरी अँगुली कहते हैं।

अभ्यासकी आवश्यकता—अँगुलियोंको बन्द करने और खोलनेका काम कुछ अभ्यासके बाद इतना चटपट किया जा सकेगा कि लोग देख न पायेंगे कि अँगुलियाँ मोड़ी भी गईं थीं। फिर, अँगुलियोंको मोड़नेका काम उस समय किया जाता है जब हाथ स्वयं तेज़ीसे बायें हाथकी ओर जाता रहता है। हाथके चलते रहनेके कारण अँगुलियोंका मुड़ना आसानीसे दिखलाई नहीं पड़ता।

यदि सिक्केके बदले किसी कुछ बड़ी वस्तुको पास करना हो, उदाहरणतः घड़ी या अंडेको, तो उसे पहले अँगुलियोंमें रखनेकी आवश्यकता नहीं है। उसे आरम्भसे ही गदोरीमें रक्खा जा सकता है और तब इतना ही पर्याप्त है कि हाथ को बाईं ओर ले जाने पर गदोरीको ज़रा-सा सिकोड़ लिया जाय। वस्तुके बड़े होनेके कारण उसे गदोरी पर अँगुलियोंसे दबाये बिना ही अच्छी तरह पकड़ा जा सकता है।

दर्पणके सामने—स्मरण रक्खो कि चाहे वस्तु बड़ी हो, चाहे छोटी, दोनों हाथोंको इस प्रकार चलना चाहिये कि दर्शकको यही ज्ञात हो कि वस्तु दाहिने हाथसे बायेंमें चली गई। इसलिये दर्पणके सामने खड़े हो कर (दर्पणके प्रतिबिम्बमें वही दृश्य तुम्हे दिखलाई पड़ेगा जो दर्शकोंको दिखलाई पड़ता है) एक बार वस्तुको सचमुच बायेंमें जाने देना चाहिये और एक बार पास करना चाहिये। दोनों

क्रियाओंको ध्यानपूर्वक देखना चाहिए। यदि दोनों कार्योंमें कहीं भी अन्तर जान पड़े तो समझना चाहिए कि पास करनेका काम ठीक नहीं हो रहा है—अवश्य ही पास करने में दाहिने हाथकी अँगुलियोंको मोड़ना भी पड़ता है, परन्तु हाथोंकी गतिके कारण दर्शक उसे न देख पायेंगे। अभ्यास करते समय पहले सब काम धीरे-धीरे, सावधानीसे, करना चाहिए। जैसे-जैसे अभ्यास बढ़ेगा, तैसे-तैसे तेज़ी आप-से-आप आ जायगी। दाहिने हाथसे मिलनेके लिए बायें हाथको उठना चाहिए। परन्तु जब तक दाहिना हाथ अपनी यात्रा आरम्भ न करे तब तक बायेंको भी न चलना चाहिए। कुछ लोग इसमें गलती करते हैं; बायाँ हाथ पहलेसे अपनी स्थितिमें पहुँच जाता है और तब उठा हुआ और खुला बायाँ हाथ बहुत भद्दा और अस्वाभाविक जान पड़ता है।

जादूकी छड़ी—जादूगर लोग अपनी सहायताके लिए अकसर छोटी-सी छड़ी रखते हैं जिसको जादूकी छड़ी (मैजिक वैंड, magic wand) कहते हैं। पास करनेके बाद जादूकी छड़ीका सँभल कर उपयोग करने से इस बातको छिपानेमें कि वस्तु अभी तक दाहिने ही हाथ में है बड़ी सहायता मिलती है। इस कामके लिए जादूगरको पास आरम्भ करनेके पहिले, छड़ीको लापरवाहीसे (अर्थात् बिना इस काम पर जोर दिए) बायीं बगल (बाहँ और धड़के बीच) दबा लेना चाहिए, जिससे दर्शक समझें कि दोनों हाथ खाली रखनेके लिए ही ऐसा किया गया है। पास करनेके बाद दाहिने हाथसे छड़ीको पकड़ कर बगलसे खींच लेना चाहिए। ऐसा करना दर्शकों को पूर्णतया स्वाभाविक जान पड़ेगा। इसके बाद जब तक सिक्केको कहीं ठिकानेसे दूर करनेका अवसर न मिले, छड़ीको हाथमें लिए ही रहना चाहिए। छड़ीको पकड़नेमें अँगुलियोंको आप-से आप इस प्रकार रहना पड़ता है कि गदोरीमें हथियाया गया सिक्का अच्छी तरह छिप जाता है, साथ ही हाथ पूर्णतया स्वाभाविक स्थितिमें रहता है। इसी रीतिका प्रयोग पास करनेकी अन्य विधियोंके बाद भी हो सकता है।

पास २—यह पास प्रथम पाससे कुछ आसान है और कभी-कभी उसके बदले इससे काम निकाला जा सकता है। सिक्केको दाहिने हाथमें पहली और तीसरी अँगुलियों के बीच कोरके बल पकड़ो; ये अँगुलियाँ सिक्केकी कोरको दबाये रहें। बिचली अँगुली एक ओरसे और अँगूठा दूसरी ओरसे सिक्केको छूता रहे (चित्र ५)। दाहिने हाथको
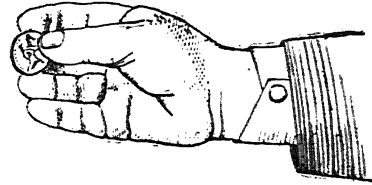
चित्र ५

बायें हाथकी ओर ले जाओ और साथ ही तेज़ीसे अँगूठेको सिक्केकी सतह पर इस प्रकार सरका दो कि अँगूठेका पहला जोड़ सिक्केकी कोरके ज़रा-सा बाहर चला जाय (चित्र ६ देखो)। अब अँगूठेको ज़रा-सा मोड़ लो और इस प्रकार
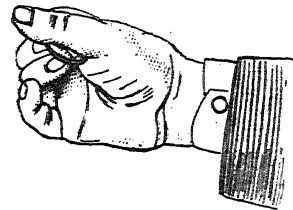
चित्र ६

सिक्केको अँगूठेकी प्रथम संधि और अँगूठेकी जड़के बीच कस लो (चित्र ७)। जैसा पास १ में बतलाया गया
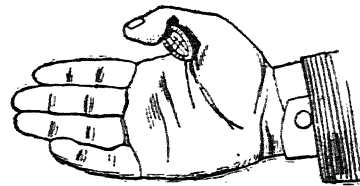
चित्र ७

था, ज्योंही दाहिना हाथ बायेंको छूये, बायें हाथको बन्द कर लो। इसके बादसे बराबर अँगूठेको कुछ गदोरीकी ओर झुकाये रखना चाहिये, जिसमें सिक्का दर्शकोंको न दिखलाई पड़े। पास करनेकी यह रीति बहुत अच्छी तो नहीं है, परन्तु यह शीघ्र सीखी जा सकती है, और यदि सफाईसे काम किया जाय तो दर्शकोंको तनिक भी सन्देह नहीं

होता। फ्रिकेल नामका प्रसिद्ध जादूगर इस पासको ही बहुत पसन्द करता था।

पास ३—बायें हाथकी गदोरीको ऊपरकी ओर करके उस पर सिक्का रक्खो, जैसा चित्र १ में है। दाहिने हाथ को बायेंके ऊपर ले जाकर उस हाथकी अँगुलियोंसे सिक्केको उठानेका दिखाव करो और दाहिने हाथकी मुट्ठी तुरन्त ठीक उसी स्वाभाविक रीतिसे बाँध लो जैसा सिक्केको वस्तुतः उठा लेने पर किया जाता। उसी समय बाएँ हाथ-की गदोरीको ज़रा-सा सिकोड़ लो जिसमें सिक्का बाएँ हाथ में कस उठे। अब बाएँ हाथको गिरा लो और बगलमें ढीला लटकने दो।

पास ४—इस पासको टूर्निकेट भी कहते हैं। यह बहुत सरल और साथ ही बहुत अच्छा पास है। बाएँ हाथमें अँगूठे और अँगुलियोंके बीच सिक्केको इस प्रकार
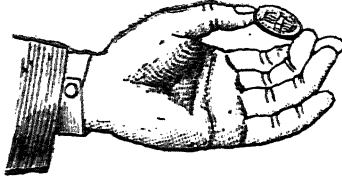
चित्र ८

पकड़ो जैसा चित्र ८ दिखलाया गया है। गदोरी ऊपर रहे। अब दाहिने हाथको बाएँके समीप ले जाओ; दाहिने हाथका अँगूठा सिक्केके नीचे जाय और अँगुलियाँ
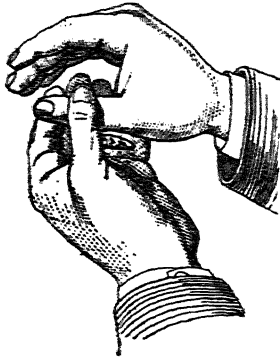
चित्र ९

ऊपर; और ज्योंही अँगूठा और अँगुलियाँ सिक्केके ऊपर और नीचे पहुँच जायँ उनको स्वाभाविक रीतिसे बन्द कर लो। दर्शक समझेंगे कि तुमने सिक्केको दाहिने हाथमें ले लिया है, परन्तु वस्तुतः ज्योंही सिक्का दाहिने हाथकी अँगुलियोंकी आड़में आ जाता है त्योंही इसे चुपकेसे बाएँ हाथकी गदोरी पर गिरा दिया जाता है (चित्र ९)।

दाहिने हाथको बिना रोके ही ऊपर और कुछ आगे चला कर हटा लेना चाहिये। तुम्हारी निगाह बराबर दाहिने हाथ पर रहे। इस प्रकार दर्शकोंका ध्यान भी दाहिने ही हाथ पर रहेगा। सिक्का अभी बाएँ हाथमें ही है (चित्र १०)। परन्तु इस हाथको गिरानेमें जल्दबाज़ी न करना
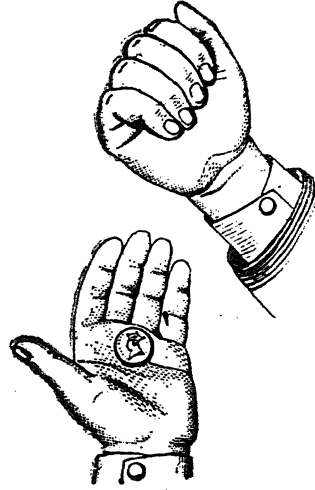
चित्र १०

चाहिये। केवल इसे इस प्रकार रखना चाहिये कि गदोरी तुम्हारी ओर रहे और अँगुलियाँ ज़रा-सी मुड़ी रहें। क्षण भर बाद हाथको धीरेसे बगलमें गिर पड़ने दो। अँगुलियोंके कुछ मुड़ी रहनेके कारण सिक्का उसीमें रह जायगा।

इस विधिसे अठन्नी, चवन्नी भी पास किये जा सकते हैं जिन्हें अन्य विधियोंसे पास करनेमें, उनके छोटे होनेके कारण, विशेष कठिनाई पड़ती है। गेंदोंके साथ जादूगरी करनेमें भी यह पास बड़ा उपयोगी सिद्ध होता है।

पास ५—यह पास टूर्निकेटका ही रूपांतर है। सिक्के को चित्र ११ में दिखलाई गई रीतिसे बाएँ हाथके अँगूठे और पहली और दूसरी अँगुलियोंसे पकड़ा जाता

है। तब सिक्केको दाहिने हाथके अँगूठे और पहली और दूसरी अँगुलियोंसे ले लेनेका दिखावा किया जाता है। इसके लिये दाहिना हाथ बाएँ पर कुछ तेज़ीसे आये और दाहिने हाथकी पीठ दर्शकोंकी ओर रहे। ज्योंही दाहिने
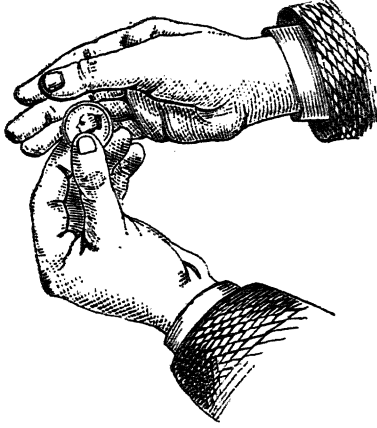
चित्र ११

हाथकी अँगुलियोंके कारण सिक्का दर्शकोंकी आँखसे छिप जाय, उसे धीरेसे सरका कर बाएँ हाथकी गदोरीमें आ जाने देना चाहिये और साथ ही दाहिने हाथको स्वाभाविक रीतिसे उठा लेना चाहिये, मानों उसमें सिक्का आ ही गया हो।

पास ६—इस पासका प्रयोग तब अच्छा होता है जब तीन या चार सिक्के हों, क्योंकि सिक्कोंकी खनखनाहटसे लोगोंको धोखा खानेमें सहायता मिलती है। मान लो चार रुपयोंको पास करना है। सिक्कोंको दाहिने हाथमें लो, जैसा चित्र १२ में दिखलाया गया है, अर्थात् वे

चित्र १२

हथेलीके बीचमें न रह कर कलाईकी ओर रहें। अब दाहिने हाथको तेज़ीसे बाईं ओर ले जाओ; अँगुलियाँ आगे बढ़ी रहें जिसमें दाहिने हाथकी अँगुलियोंका सिरा बाएँ हाथ पर झटकेसे लगे। अँगुलियाँ बाएँ हाथकी गदोरीसे लगभग समकोण पर मिलें, परन्तु दाहिने हाथकी अँगुलियोंको कुछ मोड़ लो। परिणाम यह होगा कि सिक्के बाएँ हाथमें चले जानेके बदले (जैसा दर्शकोंकी आँख और कानको जान पड़ता है), वे केवल खिसक कर गदोरीसे अँगुलियों पर चले आते हैं (चित्र १३)। झटका खानेसे वे ज़ोरसे खनखना
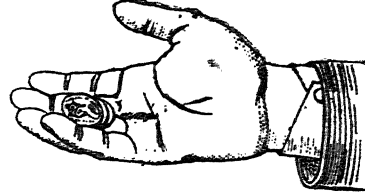
चित्र १३

भी उठते हैं। बायीं मुट्ठी बन्द कर ली जाती है और दाहिने हाथके अँगूठेको धीरेसे सिक्कों पर लाकर सिक्कोंको दबा लिया जाता है और फिर दाहिने हाथको धीरेसे बगलमें गिरने दिया जाता है। इस प्रकार सिक्के दुबारा नहीं खनकने पाते। यदि वे दुबारा खनक उठें तो भंडाफोड़ हो जायगा और सभी जान जाएँगे कि सिक्के अभी दाहिने हाथमें ही हैं।

पास ७—यदि किसीका हाथ इतना छोटा हो कि रुपया ठीक तरहसे हथियाया न जा सके, या सिक्का इतना बड़ा हो कि वह गदोरीमें हथियाया न जा सके तो इस पासका प्रयोग किया जा सकता है। दाहिने हाथमें सिक्केको पहली और दूसरी अँगुलियों और अँगूठेसे पकड़ो, परन्तु सिक्के को बाएँ हाथमें रखनेका दिखावा करते समय अँगूठेसे सिक्के को खिसका कर उस स्थितिमें ला दो जो चित्र १४ में
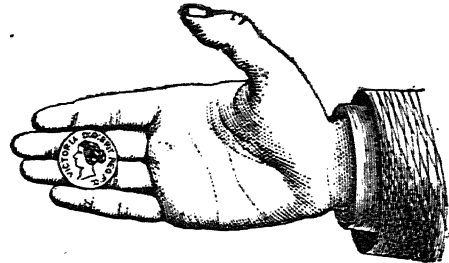
चित्र १४

दिखलायी गयी है। वहाँ पहली और चौथी अँगुलियोंसे सिक्केकी कोर दबा कर उसे पकड़ लिया जाता है और इस प्रकार दाहिना हाथ पूरा खुला रहता है।

पास ८—इस पासकी विशेषता यह है कि जादूकी छड़ी पकड़े-ही-पकड़े इस रीतिसे पास किया जाता है। हाथमें छड़ीको पकड़े रह कर अन्य रीतियोंसे काम नहीं किया जा सकता। चित्र १५ में दिखलाई रीतिसे
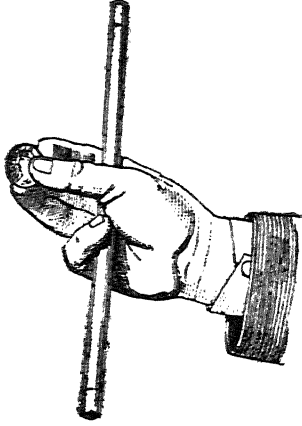
चित्र १५

सिक्के और छड़ीको पकड़ो। अब सिक्केके सिरेको बाएँ हाथकी गदोरी पर तपाकसे दे मारो (अर्थात् लड़ा दो) और बाएँ हाथकी मुट्ठी बन्द कर लो। दर्शक समझेंगे कि सिक्का बाएँ हाथमें चला गया, परन्तु गदोरीसे लड़ते ही सिक्का खिसक कर चित्र १६ में दिखलाई गई स्थितिमें चला जाता है। प्रत्यक्ष है कि सिक्केको इतने हल्के हाथ पक-

चित्र १६
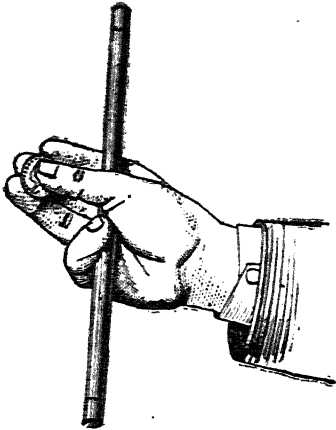
ड़ना चाहिये कि उसके खिसकनेमें बाधा न पड़े। इस स्थितिमें सिक्का अँगुलियोंके पीछे छिप जाता है, परन्तु इसके बाद तुरन्त ही दाहिने हाथकी अँगुलियोंको धीरेसे मोड़ कर छड़ी और सिक्केको स्वाभाविक रीतिसे पकड़ लेना चाहिये, क्योंकि यदि अँगुलियाँ कुछ समय तक चित्र १६ की स्थितिमें तनी रहेंगी तो लोगोंको सन्देह हो जायगा। परन्तु इसमें एक विशेष सावधानीकी आवश्यकता है, वह यह कि दाहिने हाथकी मुट्ठी बन्द करनेमें सिक्का छड़ीसे लड़ कर खनकने न पाये, क्योंकि सिक्केके खनकते ही लोगोंका ध्यान उधर चला जायगा।

अन्य रीतियाँ—यह न समझना चाहिए कि ऊपरके सभी पासोंको प्रत्येक जादूगर इस्तेमाल करता है। प्रायः सभी प्रसिद्ध जादूगरोंका अपना-अपना प्रिय पास होता है, जो या तो ऊपरके बतलाये गये पासोंमें से हो सकता है, या अपने निजी आविष्कारसे निकाला गया पास हो सकता है। जिस किसी रीतिसे सिक्का इस प्रकार पकड़ा जा सके कि दूसरोंको उसका पता न चले उसे पासके लिये प्रयुक्त किया जा सकता है। अपने-अपने हाथोंके आकार या बनावटके अनुसार कोई जादूगर एक पास पसन्द करता है, कोई दूसरा।

ऊपर दाहिनेसे बाएँ हाथमें सिक्का देनेकी बात बतलाई गई है, परन्तु यदि कोई जादूके ही बल जीविका निर्वाह करना चाहे तो उसे बाएँ हाथसे भी हथियाने और पास करनेका पूरा अभ्यास करना चाहिये। कभी-कभी दर्शक इस प्रकार घेरे रहते हैं कि दाहिने हाथका प्रयोग असम्भव हो जाता है। साधारणतः जादूगर इस प्रकार खड़ा होता है कि उसका बायाँ बगल दर्शककी ओर रहे। सिक्केको दाहिने हाथसे पास करने पर जान पड़ता है कि सिक्का बाएँ हाथमें गया। जब दाहिना हाथ नीचे गिरता है तो सिक्का उसीमें रहता है। जादूगर अपने कपड़ोंमें कई विशेष पॉकेट (खलीता, जेब) लगवाये रहते हैं। इसलिये दाहिने हाथके नीचे गिरने पर सिक्केको किसी विशेष पॉकेटमें चुपकेसे डाल देना सरल होता है, क्योंकि दाहिना बगल दर्शकोंसे उलटी ओर रहता है।

दर्पणकी उपयोगिता—पास १ के सम्बन्धमें दर्पण के सामने अभ्यास करनेको लिखा गया था। परन्तु केवल पास १ में ही नहीं, सभी पासोंमें और ताशके खेलोंमें भी बड़े दर्पणके सामने अभ्यास करनेसे लाभ होगा। पहले

तुम्हें उस कामको सचमुच करना चाहिए जिसका दिखावा जादूगरीमें किया जाता है और सावधानीसे देखना चाहिये कि हाथ किन-किन स्थितियोंमें पड़ता है और किस प्रकार चलता है। पास करते समय यथासम्भव यही चेष्टा करनी चाहिए कि दर्शकोंके दृष्टिकोणसे हाथोंकी गति और स्थितियोंमें अस्वाभाविकता कुछ भी न आने पाये। इसके अतिरिक्त एक बात पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है, वह यह कि आँखें बराबर उस हाथके साथ-साथ चलें जिसमें लोग समझ रहे हैं कि वस्तु है। दर्शकोंकी दृष्टि और ध्यानको उस हाथकी ओर ही सीमित रखनेकी यही सबसे अच्छी रीति है।

जब जादूगर एक रुपया अच्छी तरह पास कर सके तो उसे दो और फिर तीन या चार सिक्कोंसे पास करनेका अभ्यास डालना चाहिये।

चेतावनी—यहाँ एक बातकी चेतावनी देना आवश्यक है। इन पासोंको ही अलग-अलग एक-एक खेल न समझ लेना चाहिए। ये विविध खेलोंके प्रधान अंग हैं। यदि जादूगर, इस बातका दिखावा करे कि सिक्का दाहिने हाथसे बायेंमें गया और तब यह दिखावे कि वह बायें हाथसे लापता हो गया, और इस प्रकार बेवकूफीसे दर्शकोंको बूझ लेने दे कि सिक्का बराबर दाहिने ही हाथमें था, तो संभव है दर्शक इस बातकी प्रशंसा करें कि जादूगर ने बड़ी सफाईसे काम किया और बड़ी सफाईसे उनकी आँखोंको धोखा दिया, परंतु उसके बाद वे उन सब खेलोंमें से अधिकांशका भेद समझ जायँगे जिनमें हथियाने और पास करनेकी आवश्यकता पड़ती है। यदि सिक्केको तुरंत निकालनेकी आवश्यकता पड़ ही जाय तो जादूगरको चाहिए कि वह सिक्केको किसी दर्शककी मूँछ या बाल मेंसे निकालनेका दिखावा करे और पहलेसे यह कह देना न भूले कि देखो, सिक्का अमुक स्थानमें जा रहा है। ऐसा कहनेसे दर्शकोंका ध्यान उधर चला जाता है और जादूगर की ओरसे ध्यान हट जाता है। जादूगरके हाथमें तो सिक्का रहता ही है। बस निर्दिष्ट स्थान पर हाथके पहुँचते ही सिक्केको अँगुलियोंके बीचमें ला देनेसे ही ऐसा जान पड़ेगा मानों वह निर्दिष्ट स्थान हीसे निकल पड़ा है।

यह सलाह तो हुई उस हाथके बारेमें जिसमें सिक्का है। अब उस हाथके बारेमें जिसमें सिक्का नहीं है कुछ बतलाना आवश्यक है। जब कभी तुम किसी वस्तुको किसी मुट्ठीमें, या किसी यंत्रमें (झूठ-मूठ) रक्खो तो यह

नियम बना लेना चाहिए कि बिना बीचमें कुछ अन्य जादूगरीका लटका किये वहाँसे वस्तुका लापता हो जाना नहीं दिखलाना चाहिए। यह लटका चाहे बहुत सरल हो, परंतु ऐसा अवश्य हो कि लोग दुविधामें पड़ जायँ और सोंचने लगें कि संभवतः इन्हीं पिछली क्रियाओंके कारण वस्तु लापता हुई है। कभी तो नाम-मात्र ढकोसले से काम चल जायगा—जादूकी छड़ीसे छू देना, या कोई मंत्र पढ़ देना या केवल एक अँगुलीसे छू देना काफ़ी हो सकता है; परंतु इस ढकोसलेको कभी भी एकदम छोड़ न देना चाहिए, अन्यथा लोगोंको तुरंत संदेह हो जाता है कि संभवतः आरंभसे ही वहाँ वह वस्तु नहीं थी। एक बहुत सरल उदाहरणसे यहाँ काम चल जायगा। मान लो पास १ से तुमने प्रकट रूपसे बायें हाथमें एक रुपया रक्खा है (वस्तुतः रक्खा कुछ नहीं है और रुपया दाहिने हाथकी गदोरीमें कसा है)। [शेष अगले अंकमें]

समालोचना

सर्प संसार—लेखक—डाक्टर रामशरणदास, डी० एस-सी०। प्रकाशक—श्री रामनारायण लाल, पब्लिशर और बुकसेलर, इलाहाबाद। मज़बूत सुन्दर जिल्द, अनेक सादे चित्र, पृष्ठ संख्या १४४, छपाई साफ सुथरी, अच्छा कागज़, मूल्य १।।)।

इस पुस्तकमें विभिन्न प्रकारके सांपोंका परिचय तथा उनके स्वभाव आदिका वर्णन किया गया है। सर्प-विषके गुण, विविध सांपोंके काटनेसे उत्पन्न होने वाले लक्षण, सर्प-दंशका ऐलोपैथिक तथा देशीय चिकित्सा प्रणालीसे व्यवहारिक उपचार आदि विषय सरल भाषामें बतलाये गए हैं। पुस्तकके अन्तमें भारतवर्षमें विषैले और निर्विष सांपोंका भौगोलिक वितरणका उल्लेख करके संसारके विषैले सांपोंका परिचय दिया गया है।

सांप एक ऐसा जीव है जिसके विषयमें यह नहीं कहा जा सकता कि वह किस समय किसी मनुष्यको काट लेगा। दिनमें, रात्रिके घने अंधकारमें, शहरमें, घरके अन्दर अथवा सुनसान जंगलमें जहाँसे बस्ती या अस्पताल कोसों दूर है, सांप अचानक काट सकता है। बहुधा यह पता लगाना भी कठिन हो जाता है कि रोगीको किस जातिके सांप ने काटा है—विषैले अथवा विषहीन। अधिकतर सांप विषैले नहीं होते और सर्प-विषयक ज्ञानके अभावके कारण बहुधा देखा गया है कि विषहीन सांपके काट लेने पर भी केवल भय और घबराहटसे हृदयकी गति रुक जाती है और रोगी मर जाता है। इसीलिए प्रत्येक व्यक्तिको निर्दोष सांपोंकी पहचान ठीक-ठीक जानना बहुत ज़रूरी है। इस पुस्तकमें सांपोंकी पहचानकी जिस रीतिका वर्णन किया गया है तथा सांपके काटनेकी जो चिकित्सा बताई गयी है वह वैज्ञानिक ढङ्गकी होने परभी इतनी सरल तथा सर्वसाधारणके समझने योग्य शैलीमें है कि प्रत्येक व्यक्ति हर एक स्थान पर इससे सुगमतासे लाभ उठा सकता है। भारतमें रोज आदमी सांपके काटनेसे मरते हैं। इस तथ्यको ध्यानमें रखते हुए यह स्पष्ट है कि भारतीय भाषाओंमें इस विषयक साहित्यकी कितनी ज़रूरत है। सांप और उसके विषके सम्बन्धमें जानने योग्य प्रायः सब बात संक्षेपमें पुस्तकके अन्तर्गत आ गई है। प्रत्येक हिन्दी जानने वालेसे लोगों तथा उसके निजी हितके लिए आशा करेंगे कि वह इस पुस्तकको अवश्य पढ़ेगा। विद्वान् लेखक डाक्टर रामशरणदासको हम रचनाके लिए धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि वे इसके अगले संस्करणको अधिक विस्तारसे लिखेंगे, जिससे हिन्दीकी पुस्तकें भी डाक्टर डिटमार, कर्नल वाल, कर्नल घारपुरी, श्री निकलसन और होपले आदि की रचनाओंके समक्ष रक्खी जा सकें। बाहरके चित्रकी तरह अन्दरके चित्रोंको भी अधिक सुन्दर और वास्तविक बनाया जा सकता था। —रामेशबेदी

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग
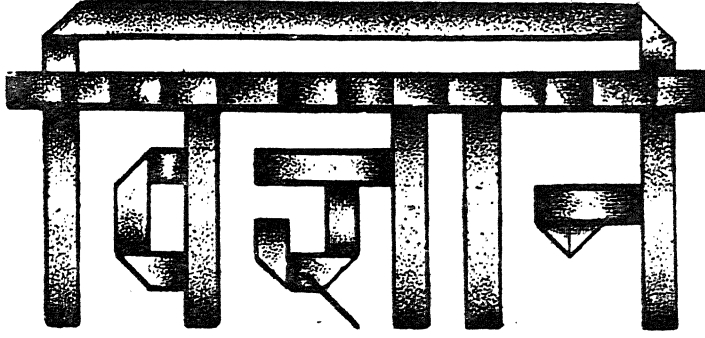
विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६	कुंभ, संवत् १९९९। फरवरी, सन् १९४३	संख्या ५

शरीर-विद्युत्

[ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान, विद्यालंकार, एम० एस-सी० विशारद]

विश्वमें होने वाली प्रायः सब प्रकारकी क्रियाओंमें विद्युत्का संसर्ग अवश्य पाया जाता है, जड़-जगत्में रगड़ (घर्षण), जलका वाष्पीकरण, तरल पदार्थोंका झिल्ली पार करना, रासायनिक क्रिया एवं चुम्बकत्व आदि समस्त क्रियाओंके होनेमें विद्युत् उत्पन्न हुआ करती है। शायद ही कोई ऐसी भौतिक क्रिया हो जिसके सम्पादनमें विद्युत्-प्रधान एवं गौण रूपसे भाग न लेती हो। प्राणि-जगत् भी इस विश्व-व्यापी पदार्थ की पहुँचके बाहर नहीं है।

पहले हम इस बात पर विचार करेंगे कि किसी जीवित शरीरकी मांस-पेशीका सामर्थ्य (energy) से क्या सम्बन्ध है? चूँकि मांस-पेशियाँ उष्ण होती हैं अतः वे निश्चय ही निरन्तर ताप उत्पन्न किया करती हैं।

सच तो यह है कि जितनी मात्रा शरीरमें उत्पन्न होती है उसमें से अधिकांशका उत्पादन मांस-पेशियों ही में होता है। विश्राम-कालमें भी मांस-पेशियाँ ताप उत्पन्न करती हैं। हाँ, इस अवस्थामें काम करते रहनेके समयकी अपेक्षा गर्मी बहुत कम मात्रामें उत्पन्न होती है।

काम करते समय ये मांस-पेशियाँ गर्मी उत्पन्न करनेके अतिरिक्त कुछ वैद्युत धारा भी उत्पन्न करती हैं। हाँ, यह बात सिद्ध करना कि अमुक मांस-पेशी विद्युत् उत्पन्न करती है ज़रूर कुछ दुस्तर है क्योंकि विद्युत्-धाराके अस्तित्व-प्रदर्शन करनेके लिये हमें एक अत्यन्त नाज़ुक धारा मापक यंत्र (galvanometer) को उपयोगमें लाना पड़ता है जो तापमापक यंत्रकी अपेक्षा कहीं अधिक पेचीदा होता है।

इस यंत्र द्वारा जाँचने पर हमें ज्ञात होता है कि जब मांस-पेशियाँ निष्क्रिय रहती हैं तब वे वैद्युत-धारा नहीं उत्पन्न करतीं किन्तु उनके सक्रिय अथवा संकुचित होते ही वे वैद्युत धाराएँ पैदा करने लगती हैं। उनके अस्तित्वको हम धारा मापक यंत्रमें स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं। यद्यपि

बिजलीकी ये धाराएँ बहुत हलकी होती हैं तथापि जब तक पेशियाँ क्रियाशील रहती हैं तब तक इनमें धाराएँ निरन्तर प्रवाहित होती रहती हैं।

हृदय भी एक मांस-पेशी--एक पोली और पेचीदा मांस-पेशी है। यह अपनी प्रत्येक धड़कन एवं संकोचनमें एक अत्यन्त दुर्बल एवं हीन वैद्युत धारा उत्पन्न करती है। इस धाराका प्रदर्शन किसी अंधेरी कोठरीमें दर्पण धारा मापक (mirror galvanometer) द्वारा भली भांति कराया जा सकता है। दर्पण धारा-मापक यंत्रका आविष्कार लार्ड केल्विन ने समुद्री तारों (cables)में वैद्युत धारा-की सत्ताका पता लगानेके लिये किया था। बादको यह यंत्र शरीर-विद्युत्की धाराओंको बतानेमें भी उपयोगी सिद्ध हुआ। इस यंत्रमें होकर जब धारा प्रवाहित होती है तब दर्पणमें से परावर्तित होकर चंचल प्रकाश सामनेके परदे पर दायें-बाएं हिलने-डुलने लगता है।

चूँकि हृदय एक स्वतः धड़कने वाला अंग है और शीत रक्तके प्राणीसे निकाले जानेके अनन्तर कई घंटे तक इसके धड़कनेकी क्रिया जारी रह सकती है, अतएव जब तक हृदय जीवित रहेगा तब तक उससे उत्पन्न वैद्युत धाराएँ यंत्रके दर्पणको परिचालित करती रहेंगी। वस्तुतः यह दृश्य अत्यन्त हृदयस्पर्शी होता है। अंधेरी कोठरीके नीरव वातावरणमें घंटों पहले मारे गये मेंढकके नन्हें-से जीवित हृदयकी धड़कनके साथ तालबद्ध होकर प्रकाशका मूक कम्पन होता रहता है।

मुर्गीके अंडेके भीतर भ्रूणमें हालका बना हुआ धड़-कता हुआ हृदय इतनी काफ़ी वैद्युत-धारा उत्पन्न करता है जिसका अस्तित्व हम धारा-परिज्ञापक यंत्रमें स्पष्ट रूपसे देख सकते हैं।

यदि हम किसी औषधि द्वारा हृदयको बिना मारे ही निश्चेष्ट कर दें तो इस अवस्थामें वह तब तक विद्युत् नहीं उत्पन्न करता है जब तक वह पुनः धड़कना न आरम्भ कर दे।

शरीर-विद्युत्के सम्बन्धमें की हुई अभी हालकी खोज यह हुई है कि हम धड़कते हुए मानव-हृदय द्वारा जनित धाराओंका चित्र खींच सकते हैं। यह कार्य रज्जु धारा मापक (string galvanometer) नामक बहु-मूल्य यंत्रसे किया जाता है। इस खोजसे हृदय सम्बन्धी रोगोंके निदानमें अपार सहायता मिली है।

शरीर-विद्युत्का अत्यन्त मनोरम प्रदर्शन जीवित नेत्रके रेटिना (नेत्र-पटल) से किया जाता है। मेंढकको मार कर उसका नेत्र निकाल लेते हैं और उसे अंधेरी कोठरीमें रक्खे हुए धारा मापक यंत्रके सम्पर्कमें रख कर जोड़ देते हैं। अब हम नेत्रकी पुतलीके सम्मुख एक प्रज्वलित लकड़ी लाते हैं तो धारामापक यंत्रमें बहुत समय तक वैद्युत धाराएँ बहती रहती हैं। नेत्र पटल प्रकाशकी उत्तेजनासे प्रभावित होकर वैद्युत्-धारा उत्पन्न करता है। विशेष कौतूहल तो तब होता है जब प्रकाश हटाने पर धाराएँ और भी प्रबल हो जाती हैं।

उत्तेजनासे प्रभावित होकर प्रायः समस्त जीवित तन्तु विद्युत् उत्पन्न करते हैं। उदाहरणके लिये जब कोई बात नाड़ी अपनी अनुभूतियोंका वहन करती है तो उस समय हम उसमें केवल वैद्युत् धाराका अनुभव करते हैं। जब कोई ग्रंथि स्रवित होती है; मांस-पेशीका संकोचन होता है; हृदय धड़कता है और जब नेत्र अवलोकन करते हैं तब सदैव विद्युत् उत्पन्न होती है, यद्यपि ये धाराएँ अत्यन्त हीन हुआ करती हैं।

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो गया कि शरीरमें विद्युत् उत्पन्न हुआ करती है। सभी सजीव पदार्थ जीव तन्तु और उद्भिज विद्युत् उत्पन्न करते हैं। पत्र, पुष्प और फल उत्तेजित किये जाने पर वैद्युत्-धारा उत्पन्न करते हैं। यह बात स्पष्ट रूपसे सिद्ध की जा चुकी है कि पके सेबकी अपेक्षा कच्चा सेब अधिक बलवान धारा उत्पन्न करता है।

शरीर-विद्युत्के अनुसंधान कर्त्ता श्री लीगी गैल्वनाय थे। ये बोलोना विश्वविद्यालयमें व्यवच्छेद शास्त्रके आचार्य थे। आचार्य गैल्वनाय ने यह अनुसधान संयोग वश ही किया। उन्होंने देखा कि एक मृत मेंढककी जीवित पिछली टांगें जो लोहेकी पटरी पर रक्खे हुए ताँबेके आँकड़े पर लटकी हुई थीं, जब लोहेके संसर्गमें आईं तो उनकी मांस-पेशियाँ फड़कने लगीं। इस प्रयोगसे गैल्वनाय ने यह परिणाम निकाला कि इस क्रियामें मेंढककी टांगोंमें विद्युत् उत्पन्न हुई; टांगोंका फड़कना शरीर-विद्युत्का ही प्रदर्शन

करता है। किन्तु उसके भाई आचार्य वोल्टाने इस प्रयोग-को दूसरी दृष्टिसे देखा। उसने कहा कि गैल्वनायके प्रयोग-में विद्युत् अवश्य बनती है किन्तु वह जीवित मांस-पेशियों-से नहीं बनती है वरन् दो भिन्न धातुओं-ताँबे और लोहेके स्पर्शसे बनती है अर्थात् जब मेंढककी टाँगका अँगूठा लोहेके संसर्गमें आया तो टाँगोंसे होकर कुंडली (circuit) पूरी हो गई जिसके फलः स्वरूप टांगकी मांस पेशियोंमें फड़कन उत्पन्न हुई।

आचार्य गैल्वनायने इस विरोधकी तनिक भी परवाह न की और अपने प्रयोगमें निरत रहा। अंतमें वह कई निर्णायक (convincing) प्रयोगोंके निरूपण करने-में सफल हुआ जो 'धातुओंके अभावमें आकुंचन' नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें सबसे अनूठा प्रयोग तो वह है जिसमें उसने शरीरसे पृथक किये हुए हृदय पर मांस-पेशीकी एक स्नायु रज्जु (Nervous supplying muscle) को रक्खा। हृदयकी प्रत्येक धड़कन वैद्युत्-धारा उत्पन्न करती है जो स्नायु-रज्जुको उत्तेजित करती है जिससे मांस-पेशीमें फड़कन न उत्पन्न होती है। सचमुच देखने-में यह दृश्य अत्यन्त विस्मय जनक होता है। मृत मेंढक-की जीवित टांग शरीरसे अलग किये हुए हृदयकी धड़कन-से लय मिला कर फड़क ही रही है।

आश्चर्य तो इस बातका है कि मछलियोंकी श्रेणीमें हमें शरीर-विद्युत्के अत्यन्त चमत्कारपूर्ण उदाहरण मिलते हैं। इसके (शरीर-विद्युत्) द्वारा वे केवल आत्मरक्षा ही नहीं करती हैं वरन् इसे अपनी उदर पूर्तिका भी साधन बनाती हैं। वे अपने शिकारको बिजलीका तेज धक्का मार कर सन्न कर देती हैं और ख़ुद चम्पत हो जाती हैं। इनमेंसे विद्युत्-ईल जो अमरीकाकी नदियोंमें पायी जाती हैं लगभग चार सौ वोल्ट शक्तिका धक्का मार सकती हैं। इन विद्युत-ईलोंकी एक जाति टारपीडो होती है, परमात्मा ने जिन्हें यह विचित्र शक्ति शत्रुओंसे आत्मरक्षा एवं भोजन प्राप्तिके लिये प्रदान की है।

सूक्ष्म दर्शक यंत्रने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि वैद्युत्-मछलियोंकी कुछ मांस-पेशियोंमें घोर परिवर्तन हो गया है और अब वे साधारण पेशियोंके समान गति और ताप उत्पन्न करनेके स्थान पर विद्युत् कहीं अधिक प्रबल विद्युत्, उत्पन्न करने लगी हैं।

जिस भांति साधारण मांस-पेशी क्रियाशील होनेके लिये चालक नाड़ियों (नाड़ी-केन्द्रों) से प्राप्त आवेगों पर निर्भर रहती हैं उसी भांति इन मछलियोंके वैद्युत्-अंग (Electric organs) भी नाड़ी-केन्द्रकी सेलों पर निर्भर होते हैं। असलमें सुषुम्णा स्थित नाड़ी-कोष जो एक ओर की वैद्युत्-बाटरीको 'दागती' है सबसे दीर्घ होता है। दोनों ओरके नाड़ी-कोषोंमें सूत्रोंकी भरमार होती है जो केन्द्रसे नीचे उतर कर बाटरीकी ओर अनेकों नन्हें और पतले सूत्रोंमें विभाजित होकर वैद्युत्-अंगोंके विविध पटलोंमें मिल जाते हैं।

किसी भांतिकी छेड़छाड़ होने पर मछली धक्का मारती किन्तु वह ऐसा स्वेच्छानुकुल भी कर सकती है। उनका धक्का लगातार वैद्युत्-धाराके रूपमें नहीं होता है। वह तो एक प्रकारसे आवेगोंके दौरोंके क्रमसा होता है। यह धक्के इतने प्रचंड होते हैं कि मनुष्य तकको स्तब्ध कर देते हैं। समुचित उपकरणोंके प्रयोगसे बिजलीकी इन धाराओंसे घंटी बजाई जा सकती है; लैम्प प्रदीप्त किये जा सकते हैं।

इन बातोंको देख कर सृष्टिके चतुर सिरजनहारकी अनुपम कारीगरीकी विवश होकर प्रशंसा करनी ही पड़ती है। वह किस खूबीसे कि एक मांस-पेशीसे अधिकाधिक ताप और न्यूनतम विद्युत्-उपलब्ध करता है और दूसरी ओर उसी पेशीसे कुछ हेर-फेर करके न्यूनातिन्यून ताप और अधिकाधिक विद्युत्-प्राप्त रहता करता है। उस विश्व-नियामकके कृत्योंकी थाह पानेके हेतु हम लोगोंको सतत संलग्न रहनेकी परमावश्यकता है क्योंकि उसकी सृष्टिमें कोई भी पदार्थ साधारण और कौतूहल-विहीन नहीं है।

मधुमक्खीके डंकसे रोग मुक्त

मधुमक्खियोंका काटना बहुत पीड़ामय कहा जाता है और अधिकांश लोग मधुमक्खियोंके छत्तेके पास जानेसे डरते हैं। किन्तु डाक्टरों ने उनके डंकसे कुछ रोगोंको मुक्त करनेका साधन घोषित किया है। कहा जाता है कि जो मधुमक्खी वसन्त ऋतुमें उत्पन्न हुई हो और उत्पन्न होने के दो ही दिन पश्चात् किसी गठिया रोगसे पीड़ित व्यक्तिको काट ले तो वह शीघ्र ही रोगसे चंगा हो जाता है।

फनियर

[श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

बोधिसत्व अपने एक जन्ममें हज़ार फनों वाले फनियर सांपके रूपमें पैदा हुए थे। देवदत्त ने इस रेंगने वाले जीवको पकड़ लिया। इस पर देवता बहुत क्रुद्ध हुए और उन्होंने देवदत्तको शाप दिया कि तुम्हारी सन्तान सदाके लिए सांप पकड़ने वाली सपेरा बन जायगी। लङ्काके बूढ़े सपेरे अपनी जातिका ऐतिहासिक मूल स्रोत इस कहानीसे सुनाया करते हैं।

सांपको पकड़नेमें ये लोग बहुत दक्ष होते हैं। लङ्काके रहने वाले बौद्ध लोग जीव हिंसा हो जानेके भयसे सांपोंको मारना तो पसन्द नहीं करते परन्तु उनके घरके पास या गांवके बाहर नज़दीक ही फनियर (cobra) का रहना किसी भी समय ख़तरेका कारण बन सकता है, इस भयकी आशङ्कासे उस डरावने फनियर (दर्वीकर) से छुटकारा पानेका सबसे अच्छा तरीका यही समझा जाता है कि सपेरेको बुला कर पकड़वा दिया जाय।

सांप पकड़नेके तरीकेको देखना मनोरंजक होता है। सांप मिलनेकी आशासे दीमकोंकी बांबीके सामने ज़मीन पर घुटने उठा कर सपेरा बैठ जाता है और दांये घुटनेको इधर-उधर हिलाता हुआ अपनी विचित्र बीनसे कुछ मोहक स्वर निकालना आरम्भ करता है और मनोरंजनके लिए इकट्ठे हुए दर्शकोंके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता कि कुछ ही देर बाद वे सामने बांबीमें से निकलते हुए फनियरको देखते हैं। सांप फन उठा लेता है और क्रोधमें भरा हुआ मालूम पड़ता है। सपेरा इसकी परवाह नहीं करता और सांपको पकड़ लेता है।

इस प्रयोजनके लिए सांप पकड़ने वालेको अच्छा इनाम दिया जाता है। इनाम प्राप्तिके लोभसे वे पकड़े हुए सांपको अपने थैलेमें से भी किसी स्थान पर चुपकेसे छोड़ दिया करते हैं। इसकी यह चाल गाँव वाले भोले-भाले अपढ़ लोगों पर ही नहीं चलती बल्कि पढ़े लिखे शहरी भी इस तरहसे ठगे जाते हैं।

जंगलमें से सपेरा फनियरको अपने निजू स्वार्थके लिए पकड़ता है। वह इससे अपनी रोज़ी कमायेगा। जंगलमें सांपोंके किसी अच्छे प्रदेशका पता लगा कर वह लाठी और एक छड़ी लेकर चल पड़ता है। लाठीके अगले सिरे पर लोहेका दो तरफ़ मुड़ा हुआ हुक (hook) लगा रहता है। ज़मीन पर रेंगनेके कारण सांपके शरीरसे रेत पर बनी, लम्बी जाती हुई रेखासे वह उसके जानेका मार्ग निश्चित करता है और उसका अनुगमन करता हुआ वह सांपके निवास स्थान पर पहुँच जाता है। इस विश्रामगृहमें वह सांपको कुण्डली मारे हुए बैठा पाता है। यह स्थान छोटी और घनी झाड़ियोंसे बना कुंज हो सकता है।

अब सपेरेकी चातुरी दिखानेका ठीक समय है। एक हाथसे दर्वीकरको लाठीसे खींचता हुआ वह दूसरे हाथको छड़ीसे उसे छेड़ता है। सांप खड़ा हो जाता है, गुस्सेमें भर फुङ्कार मारता है और हमला करनेके लिए फन ऊपर उठा लेता है। वार करने पर फन नीचे जाते ही लाठीके शिकंजेसे उसकी गरदन खाली जाती है और इससे पहले कि वह काटनेका कोई विफल प्रयत्न करे अँगुली और अँगूठेके बीचमें उसकी गरदन अच्छी तरह दबोच ली जाती है। उसके ज़हरीले दांत निकाल डाले जाते हैं और सपेरेकी पिटारीमें रक्खा जाकर वह घर ले जाया जाता है।

सपेरे प्रायः फनियर सांपोंके साथ खेल कर अपनी जीविका कमाते हैं। लोगोंमें आम विश्वास है कि सपेरे जादूके बलसे इन्हें पकड़ लेते हैं। वास्तवमें सांपों पर किसी जादू या मंत्रका प्रभाव नहीं होता यह हम पहले विवेचना कर आये हैं। दर्वीकरको संगीत सुननेका शौक इतना अधिक होता है कि यह कई घण्टों तक लगातार सुन सकता है और इसका ध्यान कभी इधर उधर नहीं जाता। गतिमान् चीज़को यह ध्यानसे देखता है इसलिए बीन बजाते हुए सपेरा अपने सिर और बीनको हिलाता भी जाता है। बीनके लगातार स्वर उसे मुग्ध कर लेते हैं। एक बार बहुत समय तक लगातार सितार बजता रहा और हमने देखा कि कमरेके एक कोनेमें एक दर्वीकर फन उठाये खड़ा हुआ तन्मय हो आनन्द ले रहा है। फनियरको छोड़ कर दूसरे सांपोंमें संगीतके लिए इतना प्रेम नहीं देखा जाता। मण्डली (viper) के सामने घण्टों बीन बजती रहे वह परवाह नहीं करेगा और न ही हिलते हुए पदार्थको ऐसे

ग़ौरसे देखेगा जैसे दर्वीकर देखता है।

पुरातन भारतीय लेखकोंने सांपोंका अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। फन वाले सांपोंको वे फणी या दर्वीकर* नामसे जानते थे। संस्कृतमें दर्वीका अर्थ कड़छी होता है। फैले हुए फनकी आकृति भी कड़छीकी तरह होती है। फनके ऊपर जो ऐनक जैसा चिह्न होता है उसे सुश्रुत† में स्वस्ति चिह्न सदृश या अंकुशके चिह्न जैसा लिखा है।

दर्वीकरके तीन भेद होते हैं। तीनोंके रंगों और शीर्ष चिह्नोंमें फ़र्क होता है। बंगालमें इनमेंसे दो भेद होते हैं। अधिक मिलने वाली क़िस्मके फन पर ऐनकका सा ↄ निशान होता है। दूसरा भेद जो बंगालमें आम तौर पर मिलता है, उसके फन पर सफ़ेद या मैलेसे रंगका चक्र होता है। तीसरा भेद काला होता है और इस पर कोई स्पष्ट निशान नहीं होता है। सिन्ध, राजपूताना और पंजाब-के शुष्क प्रदेशोंमें यह क़िस्म बहुधा मिलती है।

सर्पदंशसे होने वाली अधिक मौतोंके लिए दर्वीकर ज़िम्मेवार है। दक्षिणीय एशियामें सर्वत्र कैस्पियन समुद्रसे चीनके दक्षिण तक भारत और मलाया द्वीप समूहोंमें यह पाया जाता है। भारतके प्रत्येक भागमें यह होता है। हिमालयमें आठ हज़ार फुटसे लेकर नीचे लंका तक मिलता है। पहाड़ोंकी चट्टानोंके बीचकी दरारोंमें, ईंटोंके पुराने भट्टों, खण्डहरों और मानवीय निवासोंमें रहता देखा गया है। भारतमें इसकी कई क़िस्में मिलती हैं। नाजा ट्रिपुडिएन्स (Naja tripudians) और नाजा बंगेरस (Naja bungarus) दर्वीकर की दो मुख्य भयंकर किस्में हैं।

प्रायः सब सपेरोंके पास फनियर होता है। इसकी लम्बाई छः फुट आठ इञ्च तक देखी गई है। इस लम्बाई वाले सांपका ज़हर निकाला गया है। यह तीस ग्रेन हुआ था। एक ग्रेनका दसवाँ हिस्सा मनुष्यके लिए घातक होता है।

* दर्वीकरः फणी ज्ञेयो ....।
—चरक; चिकि०; अ० २३; श्लो० १२४।

† रथाङ्गलाङ्गलच्छत्रस्वस्तिकाङ्कुशधारिणः।
ज्ञेया दर्वीकराः फणिनः शीघ्रगामिनः॥
—सु०, क०; अ० ४।

पातञ्जल योग शास्त्रके अनुसार फनियरकी आयु दो सौ सालसे अधिक कही जाती है। एक ही सांप एक जादूगरके पास बीस पच्चीस साल तक रहता देखा गया है। दर्वीकरमें बुढ़ापेके चिह्न नज़र आते हैं। कुछ लोगोंका विश्वास है कि बुढ़ापेमें इसकी पूछ झड़ कर छोटी हो जाती है परन्तु इसमें सचाई मालूम नहीं होती क्योंकि छोटे या जवान सांपकी पूछ भी छोटी देखी गई है और बूढ़े सांपकी पूछ पूर्ण लम्बाईकी देखी गई है। मोर और नेवले आदि-से लड़ाईमें यह सम्भवतः कट जाती है।

विविध भारतीय भाषाओंमें दर्वीकरके नाम इस प्रकार हैं—

हिन्दी—फनियर या फनिहर सांप।

बंगाली—गोखरू (ↄ वाला फनियर), दूधी गोखरु (सफ़ेद फनियर); कालो सांप, केली सांप (काला फनियर); कूटी, काल कूटी, काल सांप (भयङ्कर विषधर काला फनियर); आल कूटी (बंगालमें धानके खेतोंके किनारे रहने वाला काला फनियर); पद्मनाग (काला फनियर जिसके फन पर कमल सदृश सफ़ेद या सुनहरी रंगका अण्डाकार किनारा होता है, फणी वंश—cobra family) में यह सबसे अधिक सुन्दर सांप है—गहमन, गोमो कूटी (गेहुँए रंगका फनियर); तिन्तुली गोखरू (इमलीके रंगका फनियर)।

कोरोमण्डल तट—नागू।

मैसूर—नागरभू।

लङ्का—नागपा।

मद्रास—नल्लम्पम्बू।

पश्तो— चमचमार मार।

यह डरपोक सांप है और मनुष्यको देखते ही बच कर भागनेकी कोशिश करता है। क्योंकि यह दृढ़कौल है इस लिए बदला लेनेके लिए अपने ही तरीकेसे मौका पाकर घूम कर खड़ा हो जाता है। चूहों, मूसों, अण्डों, बिल्लीके बच्चों, मेंढकों आदिकी तलाशमें यह घरमें घुस जाता है। इसलिए ऐसा घर जहाँ इन जीवोंकी बहुतायत हो, बहुत सम्भवतः फनियरका निवास हो सकता है। बिल्लियाँ इसको बहुत

दुश्मन हैं। कुत्ते इस पर कभी आक्रमण नहीं करते परन्तु इस पर भौंकते हैं और लोगोंका ध्यान इस तरह सांपकी ओर खींच देते हैं। बिल्लियाँ इसे देखते ही हमला करती हैं। फनियर और बिल्लीकी लड़ाई एक मज़ेदार तमाशा होती है। यह एक मृत्यु-युद्ध होता है और इसकी समाप्ति दोनोंकी मृत्यु पर होती है।

कई बार देखनेमें आता है कि फनियर एक घरको अपना स्थिर निवास बना लेता है, परन्तु पहले पहल यह कैसे प्रारम्भ हुआ? जब फनियर किसी आबाद घरमें रातको घुसता है तो यह भोजनकी खोज करता है और पौ फटनेसे पहले ही घरको छोड़ जाता है। यदि घरके दरवाजे कस कर बन्द हैं और उसके घुसने योग्य कोई रास्ता नहीं तो वह कभी घरमें नहीं घुस सकेगा। सूर्योदय पर बाहर निकलते हुए उसे आस पास कोई छिद्र मिल गया तो वह एक दम उसमें घुस जायगा। कभी-कभी यह भी हो जाता है कि घरसे बाहर निकलनेसे पहले ही दिन निकल आता है तब वह वहीं कहीं आस पास छिपनेकी कोशिश करता है। इस तरह यह मानवीय निवास स्थानोंमें अपना घर बना लेनेको बाध्य हो जाता है। जगह आरामदेह हुई, उसे किसी प्रकारकी असुविधा नहीं दीख पड़ी तो यह वहीं रहने लग जायगा। मादा फिर अण्डे देगी और अपनी वंश-वृद्धि करेगी।

वर्षाका प्रारम्भ फनियरके अण्डे देनेका मौसम है। आबाद घरोंके अलावा उजाड़ दीमकोंकी बाम्बियोंको ये पसन्द करते हैं। इन्हें वे अपना घर बना लेते हैं। अण्डे दिये जानेके बाद लगभग दो मास तक इनमेंसे छोटे छोटे लगभग सात इञ्च बड़े, मुलायम सुन्दर बच्चे निकलते हैं। इन्हें विषैला बन जानेमें देर नहीं लगती है।

एक बार जंगलमें घास फूस पर रक्खे हुए फनियरके चार अण्डे मुझे मिले। भाग्यवश सांप और सांपिन बाहर शिकारकी खोजमें गये हुए थे। इन चार साबुत अण्डोंके अतिरिक्त अण्डोंके कुछ छिलके भी वहाँ पड़े हुए थे जिससे मालूम होता था कि उनमेंसे बच्चे बाहर निकल चुके हैं। इससे मैंने अनुमान लगाया कि ये अण्डे भी अब परिपक्व होने वाले होंगे। अण्डोंको मैं उठा लाया और उन्हें एक शीशेकी अलमारीमें घास फूस बिछा कर रख दिया। दस बारह दिनमें अण्डे पूर्ण पक्व हो गये और उनमेंसे सुन्दर चमकीले बच्चे बाहर निकल कर अलमारीमें रेंगने लगे। जल्दी ही ये बढ़ने लगे। मेंढक इन्हें खानेके लिए दिये जाने लगे। शीशेको जब छुआ जाता तो ये गुस्सेमें शीशे पर ज़ोरसे फन मारते। बच्चों और बड़ों ने इन्हें छेड़ना अपना खेल बना लिया था। किसी भी दिन वे कोई दुर्घटना पैदा कर सकते हैं, यह सोच कर, अलमारीके अन्दर क्लोरोफ़ौर्म छिड़क कर उनका अन्त कर दिया गया।

श्रीयुत डिटमार ने ७, फनियरके पूर्णतया चिकने, भरे हुए, मलाईके से सफ़ेद रंगके बीस अण्डोंको पोसनेका परीक्षण किया। ये अण्डे एक ही सांपिन ने एक बारीमें दिये थे। ये सवा इञ्च लम्बे और व्यासमें ६/८ इञ्च थे। लगभग पचास प्रतिशतक अण्डोंमेंसे बच्चे निकाले जा सके। ये पचहत्तर अंश फारनहैट औसत तापमानमें रक्खे गये थे। धीरे-धीरे ये आकारमें बढ़ने लगे थे और उनकी बाह्य रेखाएँ गोल हो गई थीं। अण्डे देनेके बादसे पक्व होने तक कुल समय सात सप्ताह लगा था।

फनियरका बच्चा खूबसूरत जीव होता है। उसमें पैतृक वीरता होती है, परन्तु वह समझ नहीं होती जो अनुभवसे आती है। बिना किसी बातके यह सशङ्क गश्त लगाने लगेगा और इसकी चेष्टाओंको देखनेके लिए खड़े हुए लोगोंका ज़रा भी ख़्याल नहीं करेगा। परन्तु ज़रा इसे लकड़ीसे छू तो दीजिये, अभिमानी मां-बापका दिलेर बेटा ललकारता हुआ अपना फन उठा लेगा और गुस्सेमें भर कर आपका पीछा करेगा। जवानीमें फनियरमें अधिक विष होता है*। तरुणावस्थामें ज़िन्दादिली और अनुत्तरदायित्व उच्छृंखलता होनेसे ये अधिक ख़तरनाक होते हैं। आयुकी वृद्धिके साथ-साथ समझ और ज़िम्मेवारी आ जाती है।

फनियर सांपोंके उस समूहमें परिगणित होता है जिसमें विषैले दाँत मुखके सामनेके सिरे पर (front-fanged) होते हैं। इन्हें आधुनिक श्रेणीकरणमें प्रोटीरेग्लिफस (proteraglyphus) सांप कहा जाता है।

---

* दर्वीकरस्तु तरुणः .... ।

—सु०; क०; अ० ४।

फनियरके दाँत वास्तवमें खोखले नहीं होते परन्तु अन्दरकी ओरसे गढ़े वाले होते हैं। जबड़ेकी हड्डीके साथ ये मज़बूतीसे जुड़े होते हैं और हड्डी पर भी हिल नहीं सकते। प्रत्येक विषैला दांत एक दृढ़ झिल्लीमें बन्द होता है और विष ग्रंथिकी प्रणाली इसके आधार पर खुलती है। एक बार टूट जाने पर मनुष्योंमें फिर दांत नहीं आते। सांपोंमें ऐसी बात नहीं। वे सारी आयु भर अपने दांतोंको फिर नया बनाते रहते हैं। फनियरके ज़हरीले दाँतोंको निकाल दीजिये। वह पन्द्रह या बीस दिनमें उनकी जगह नये उग आयँगे। फनियरमें सुरक्षित विषैले दांतों (reserve fangs) का एक जोड़ा होता है।

फनियरके दंशमें एक, दो, तीन और कभी-कभी इससे अधिक निशान भी बन सकते हैं। एक सांपमें दो ही विषैले दांत (poison fangs) होते हैं, यह सत्य है। परन्तु एक बारके दंशमें केवल एक ही विषैला दांत प्रविष्ट हो ऐसा सम्भव है जब कि सांपने काटनेका प्रयत्न एक पार्श्वसे या तिरछा हो कर किया हो। जब तीन या अधिक दांतके चिह्न देखनेमें आते हैं उस अवस्थामें घातक लक्षण प्रकट होते हैं।* फनियर एक बार काट कर कभी-कभी दुबारा काट लेता है। दोनों बारमें अच्छी तरह काट पाया है तो निशान चार बन जाते हैं और विष बहुत प्रविष्ट किया जाता है। पहिले या दूसरे दंशमें सांप अच्छी तरह नहीं काट सका तो निशान तीन ही रह सकते हैं। दर्वीकर का दंश सीधा किसी शिरामें हुआ है और सीरम तुरन्त न मिल सके तो बचनेकी आशा बहुत कम करनी चाहिये।

फनियर सांपके दंशमें दांतोंके चिह्न सूक्ष्म और काले रंगके होते हैं। दंश स्थानसे रक्त स्राव नहीं होता और वह स्थान कछुयेकी पीठकी तरह उभर जाता है।† फनियरका विष सूक्ष्म और कटु होनेसे वात प्रकोपक लक्षण उत्पन्न करते हैं।‡ दंश स्थान पर जलन होती है और यह कुछ देरमें सारे शरीर पर फैल जाती है। ज्ञानवाही नाड़ियों (sensory nerves) के पक्षाघातके कारण बहुतसे रोगियोंको जलन अनुभव नहीं होती। दंष्ट अंग या सारे शरीरकी संज्ञाका नाश भी हो सकता है। त्वचाके छूनेका ज्ञान नहीं होता। मुख, आंख, त्वचा, नाखून, मल और मूत्र काले पड़ जाते हैं। रोगी बहुत चिन्तित दीखता है—सम्भवतः मृत्युके भयके कारण। आत्महत्या करनेकी प्रवृत्ति बहुत कम-दो हज़ारमें एक-व्यक्तियोंमें देखी गई है। मुख और नाकसे झाग और जलीय लार बहुत निकलती है। लार कभी-कभी चिपचिपी होती है। वमन, जिसमें श्लेष्मा होती है, सफेद झागदार या हरे रंगकी हो सकती है। कभी-कभी इसमें खूनकी आभा होती है। खांसी आती है। कुछ उदाहरणोंमें खांसी और वमनके साथ खून आता है। बहुत थोड़े रोगियोंमें जीभ सूजी हुई तथा आंखें लाल और प्रायः स्थिर नहीं होतीं, जीभका पक्षाघात हो जाता है, रोगी लड़खड़ाता हुआ बोलता है; नाकसे बोलनेकी कोशिश करता है पर ऐसा कर नहीं पाता। हिचकी और सूखे डकार आते हैं। जोड़ोंमें दर्द होती है। जम्भाइयाँ आती और अंगोंमें झटके लगते हैं। सर्दी लग कर ज्वर चढ़ जाता है। बहुत कम रोगियोंमें ठण्डा पसीना आता है। पीठ, कमर, जांघ और हड्डियाँ अकड़ जाती हैं। मन्यास्तम्भ और हनुग्रह हो जाता है। (epiglattis) ऐंठ जाता है। पेटमें शूल तथा ऐंठन होती है। मल शुष्क हो जाता है। हृदयमें वेदना, हृत्कम्प तथा नाड़ी मन्द और अस्पष्ट अनुभव होती है। सिर भारी मालूम देता है और गिर पड़ता है। मनुष्य ऐसा अनुभव करता है जैसे किसी ने उसे ज़ोरसे सिरके पीछे गरदन पर चोट की है और वह गिर पड़ता है। फेफड़ोंका कार्य बन्द हो जाता है। अधिकांश उदाहरणोंमें फेफड़ोंके बन्द होनेसे मृत्यु होती है और हृदय धड़कता रहता है। कुछ उदाहरणोंमें विष धीरे-धीरे घातक कार्य करे इससे पहिले हृदय बन्द हो जाता है। सम्भवतः डरके कारण ऐसा होता है। बहुत दंष्ट

---

* गूढ़सम्पादितं वृत्तं पीड़ितं लम्बितार्पितम्।
सर्पितं तद्सृशवाधं दंशा येऽन्ये न ते भृशाः॥
—चरक; चिकित्सित, अध्याय २३ श्लोक १३४।

† दर्वीकर कृतो दंशः सूक्ष्मदंष्ट्रापदोऽसितः।
निसद्धरक्तः कूर्माभो वातव्याधिकरो यतः॥
—चरक; चिकित्सित; अध्याय २३; श्लोक १२६।

‡ विशेषाद्रूक्ष कटुकम्. . . .।
—चरक; चिकित्सित; अध्याय २३; श्लोक १२५।

व्यक्तियोंको हर एक चीज़ लाल दीखती है। आंखके ढेले एक झिल्लीसे ढक जाते हैं जो मृत्युकी समीपताको प्रकट कर रहे होते हैं। बेहोशी आ जाती है, गला घुर-घुर बोलता है। जब कुछ समय तक श्वास प्रश्वास उथला और अपर्याप्त रहता है तो व्यक्ति सोता हुआ-सा मालूम पड़ता है और धीरे-धीरे होश गुम हो जाते हैं। कोई-कोई व्यक्ति
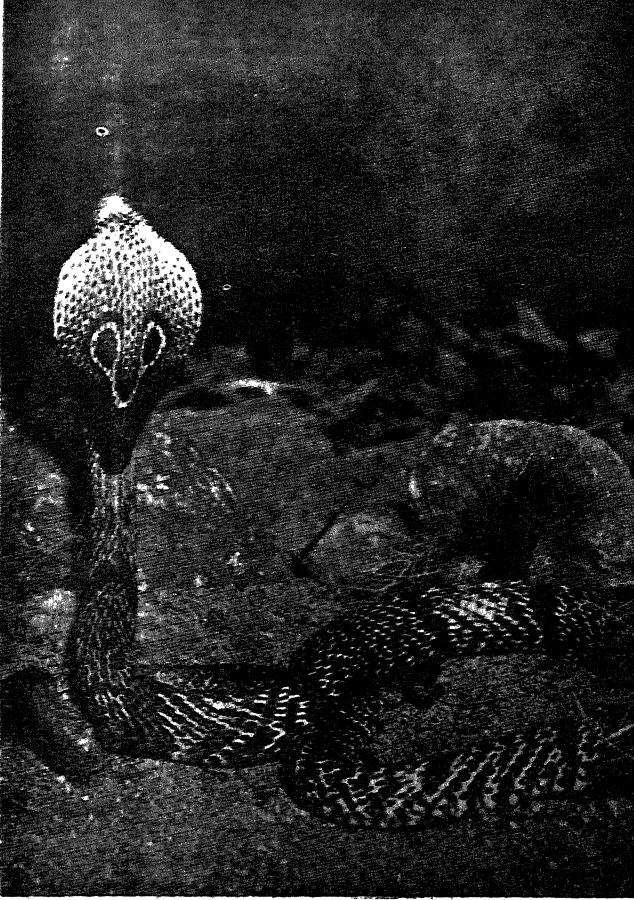
फनियर सर्प ।

मरते तक होशमें रहते हैं और कई लोग मरनेसे पूर्व घंटों मूर्छित रहते हैं। मूत्र नहीं आता, सारे शरीरके बाल खड़े हो जाते हैं और हाथसे खींचने पर गिर पड़ते हैं। रोगी बच भी गया तो दंश स्थान पर हड्डियोंका नाश (necrosis) और दूषित व्रण (indolent ulcers) हो जाते हैं। किसी-किसीके दांत ढीले हो जाते हैं और मुखमें व्रण हो जाते हैं। वाग्भट्ट❀ ने भी प्रायः यही लक्षण विस्तारसे लिखे हैं।

पहले यह विश्वास किया जाता था कि फनियर और मण्डली (viper) के विषका कार्य एक जैसा ही है और दोनोंके लक्षणमें जो भिन्नता होती है वह केवल विषकी मात्रामें भिन्नताके कारण हैं। बादमें यह पता लगा कि इन दोनों विषोंका कार्य एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न होता है। एप्सटीन (Epstein) ने १९३० में दक्षिणीय अफ्रीका के दर्वीकर—Naja plana (Naja ninea)—के विषके कार्यका अध्ययन किया और उसने यह पाया कि श्वास प्रश्वासके बन्द होनेमें मृत्यु होती है। अनैच्छिक मांसपेशियों-पर भी इस विषका सीधा प्रभाव होता है। पहले ये सिकुड़ती हैं और बादमें शिथिल हो जाती हैं। कर्नल चोपड़ा और इसवारिहाने १९३९ में भारतीय दर्वीकर — (Naja najanil tripudians) ने विषके कार्यका फार्माकोलौजिकल अध्ययन किया। प्राणियोंकी जातियोंके अनुसार विषकी न्यूनतम घातक मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। बिल्लियों और चूहों पर कम प्रभाव होता है।

[शेष अगले अंकमें]

❀ . . . . . .तत्र दंशः फणावताम् ।
कूर्मपृष्ठोन्नतो रूक्षः सूक्ष्मदंष्ट्रापदान्वितः ॥
विकाराः श्यविताववक्त्रनखमूत्राक्षिविट्त्वचाम् ।
शीतज्वरः सन्धिरुजा निद्रानाशो विजृम्भिका ॥
मन्यास्तम्भः सिराध्यानं पृष्टकव्यस्थिवाग्ग्रहाः ।
शिरोगुरुत्वमरुचिः कासश्वासौ हनुग्रहः ॥
शूलमुद्वेष्टनं कोष्ठे शोषरोधौ मलाश्रयो ।
सन्दिग्धवाक्त्वं नैश्चेष्ट्यं मृतस्येव विसंज्ञता ॥
फेनलालोद्गमौ हिध्या कण्ठे घुरूघुरायणम् ।
शुष्कोद्गारो मुहु स्ते वातजश्चापरे गदाः ॥
अष्टांग समूह; उ; अ० ४१ ।

विद्युत सम्बन्धी कुछ साधारण बातें

(आर० जी० सक्सेना, एम० एस-सी०)

तार द्वारा एक स्थानसे दूसरे स्थानका समाचार भेजने की क्रियाको प्रायः सभी पाठकों ने देखा होगा, पर यह जानकारी भी हममेंसे बहुतोंको केवल इसी सीमा तक है कि टेलीग्राफ आफिसमें हमने तारका डमीका गरगट्टका भेजना एवं उसका उत्तर इसी प्रकारकी ध्वनिमें मिलना सुना है। यह ध्वनि किस प्रकार एक स्थानसे दूसरे स्थान तक चली जाती है इसका सम्यक विवेचन हममेंसे बहुत थोड़े ही व्यक्ति करनेकी जिज्ञासा रखते हैं।

रेडियो अथवा बेतारके तारसे केवल यही तात्पर्य नहीं कि समाचार एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बिना किसी माध्यम द्वारा पहुँचाये जावें, क्योंकि यदि ऐसा मान लिया जावे तो 'हिलियो' या 'फ्लैग-सिगनल' अर्थात् झण्डियों द्वारा संकेत आदि क्रियाओंकी, जिनसे समाचार एक स्थानसे दूसरे स्थान पर बिना किसी माध्यम द्वारा भेजे जाते हैं, गणना रेडियोमें ही की जानी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं है। रेडियोसे तात्पर्य उस विशेष क्रियासे है जिसमें विद्युत-चुम्बकीय तरंगें समाचार वाहनका कार्य करती हैं। अतएव रेडियोको समझनेके लिये विद्युत और चुम्बक शक्तियोंका कुछ ज्ञान कर लेना नितान्त आवश्यक है।

आधुनिक समयमें विद्युत शक्ति कोई आश्चर्यजनक नहीं समझी जाती। साधारणसे नगरोंकी गलियोंमें इसके द्वारा प्रकाश किया जाता है, पंखा चलाये जाते हैं, बाज़ारमें तीन-चार आनेके सूखे विद्युत घट (Dry Cell) बिकते हैं जिनके द्वारा टॉर्च (Electric Torch) जलाई जाती है, जो आज सर्वसाधारणके उपयोगकी वस्तु बन रही है। साइकिलोंमें आगे प्रकाश करने वाले दीपोंको विद्युत पहुँचाने वाले सस्ते विद्युतोत्पादक यंत्रों (डायनामों Dynamos) का बाज़ारोंमें बाहुल्य है।

विद्युत घट

विद्युत शक्तिके आविष्कारका श्रेय गैलवैनी और वोल्टा नामक दो वैज्ञानिकोंको है। वोल्टा महाशय इटैलियन थे। उन्होंने सर्वप्रथम यह बतलाया कि यदि दो विभिन्न धातुओंके पत्र या छड़, जैसे तांबा और जस्ता, किसी चीनी मिट्टी अथवा काँचके बर्तनमें पृथक्-पृथक् रक्खे जावें और उसमें गन्धकका अम्ल (सलफ्यूरिक ऐसिड) पानी मिला कर डाला जाय तो दोनों पत्तरोंको एक तार द्वारा जोड़ने पर गैसके बुलबुले तांबेके पत्र पर जमा होने लगते हैं और रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। यदि कोई विद्युत धारा-मापक यंत्र दोनों पत्रोंके बीचमें तार द्वारा जोड़ दिया जाये तो यह
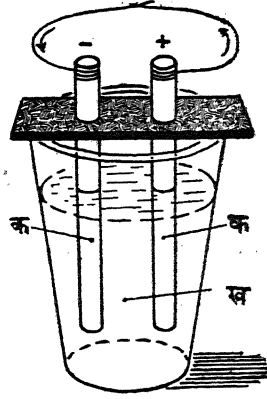
चित्र १—सरल विद्युत घट।

क, क—धातुकी छड़े (एक ताँबेकी, दूसरी जस्ते की); ख—फीका सलफ्यूरिक ऐसिड।

यन्त्र विद्युत धाराकी सूचना देगा। यही वोल्टा निर्मित साधारण विद्युत घट कहलाता है। घटके बाहर तारमें विद्युत धाराका प्रवाह तांबेके पत्रसे जस्तेके पत्रकी ओर होगा। इसलिये तांबेका पत्र धन सिरा और जस्तेका पत्र ऋण सिरा कहलाता है। ऐसे घटमें विद्युत-धारा थोड़ी देर चलनेके पश्चात् शनैः शनैः लुप्तप्राय हो जाती है।

इसके पश्चात् इससे अच्छे अनेक विद्युत घटोंका निर्माण हुआ जो उनके आविष्कर्ताओंके नाम पर बुन्सेन घट (Bunsen cell), डेनिअल घट (Daniel cell) लैक्लांशी घट (Leclanche cell) आदि नामोंसे प्रचलित हुए। ये सारे घट एक ही सिद्धान्त पर कार्य करते हैं। परन्तु उनमें निर्माणकोंने विद्युत धाराके क्षीण होनेका निराकरण भिन्न-भिन्न उपायोंसे किया है। इन्हीं कुछ विद्युत घटोंकी बनावट व उनमें काम आने वाले पदार्थोंका विवरण नीचे उद्धृत करते हैं। समस्त घट दो श्रेणियोंमें विभाजित हैं, (१) एक द्रव वाले घट (Single

fluid cells) (२) दो द्रव वाले घट (Double fluid cells)। एक द्रव वाले घटोंमें लैक्लांशी घट और बाइक्रोमेट घट मुख्य हैं। दो द्रव वाले घटोंमें बुन्सेन घट और डेनिअल घट प्रधान हैं।

एक द्रव वाले घट

लैक्लांशी घट—एक काँचके बर्तनमें नौसादर (Ammonium chloride) का संतृप्त (saturated) घोल भरा हुआ है (चित्र २), उसमें एक बगल शुद्ध जस्तेका एक छड़ है, बीचोबीच एक विशेष प्रकारके कोयले (कार्बन) की एक चिपटी सरिया
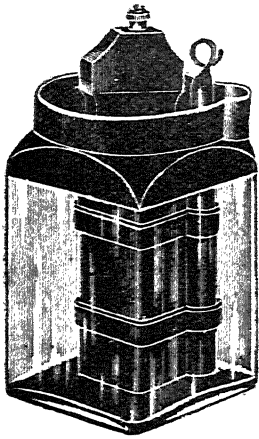
चित्र २—लैक्लांशी घट।

रक्खी है। इसके चारों ओर मैनगनीज़ डाइऑक्साइड (Manganese dioxide), ग्रैफाइट (Graphite) और कार्बनके छोटे-छोटे टुकड़े गोंदमें गूधकर और साँचेसे दबाकर तथा गरमीसे कड़ा करके चिपका दिया गया है। अकसर जस्तेको केंद्र वाले छड़से रबड़की पट्टियों द्वारा बाँध दिया जाता है, जैसा चित्रमें दिखलाया गया है। विद्युत कार्बनसे जस्तेमें जाती है, इसलिये कार्बनका सिरा धनात्मक ध्रुव और जस्तेकी सरियेका सिरा ऋणात्मक ध्रुव कहलाता है।

बाइक्रोमेट घट—एक काँचके बर्तनमें (चित्र ३) लाल कसीस (पोटैसियम बाइक्रोमेट Potassium bichromate) का संतृप्त घोल और थोड़ा सलफ्यूरिक ऐसिड पड़ा है। बीचमें शुद्ध जस्तकी सरिया है। जस्तको घोलसे बाहर निकाल लेनेका प्रबन्ध है। जब इस घटसे विद्युत न लेना हो तो जस्तको घोलसे बाहर कर देना चाहिये, क्योंकि चाहे घटसे विद्युत् लिया जा रहा हो या नहीं, जस्त धीरे-धीरे घोलमें घुलता रहता है। जस्तकी दोनों ओर कार्बनकी दो सिल्लियाँ हैं जो जस्तसे सर्वथा पृथक हैं। कार्बनके
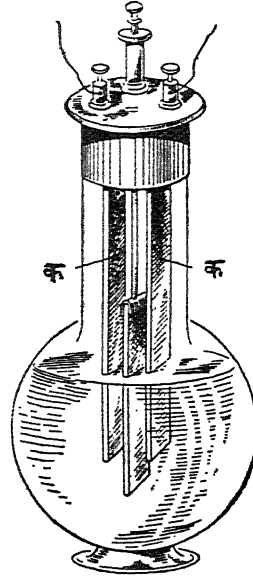
चित्र ३—बाइक्रोमेट घट
क, क—कारबनकी सिल्लिया; बीचमें जस्ता है।

दोनो टुकड़े तार द्वारा एक दूसरेसे जुड़े हैं। इस घटमें भी कार्बन धनात्मक ध्रुव (Positive pole) और जस्त ऋणात्मक ध्रुव (Negative pole) रहता है।

दो द्रव वाले घट

बुन्सेन घट—एक काँच अथवा चीनी मिट्टीके पालिश-

चित्र ४—बुन्सेन घट
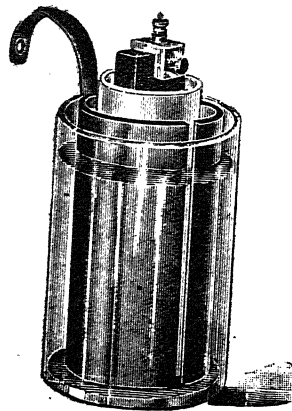
दार बर्तनमें हल्का गन्धकाम्ल (सलफ्यूरिक ऐसिड) भरा

है (चित्र ४)। इसके भीतर शुद्ध जस्तके पत्रका बना हुआ पोला बेलन रक्खा है। इस बेलनके भीतर चीनी मिट्टीका बिना चमकका बर्तन रहता है। उसमें तेज़ शोरेका अम्ल (नाइट्रिक ऐसिड Nitric acid) रहता है और बीचमें कार्बनकी चौकोर सरिया रहता है। इसके ऊपर पीतलकी एक मूठ रहती है जिसमें ढिबरी और पेंच रहते हैं। इनके द्वारा तार कार्बनसे जोड़ा जा सकता है कार्बन और जस्त क्रमशः धनात्मक और ऋणात्मक सिरे होते हैं।

डेनिअल घट—अकसर तांबेका बेलनाकार बर्तन धन ध्रुवका कार्य करता है और साथ ही बर्तनका, और इसीमें नीला कसीस (Copper sulphate) का संतृप्त घोल भरा रहता है, परंतु कभी-कभी बेलनके रूपमें मोड़कर ताँबेका पत्र काँचके बर्तनमें रक्खा रहता है (चित्र ५)। नीले कसीसके रवे (Crysta's) बर्तनकी तलीमें पड़े रहते हैं जिससे घोल हल्का न होने पाये। एक चमकरहित चीनी मिट्टीके बर्तन में पानी मिश्रित गन्धकाम्ल भरा
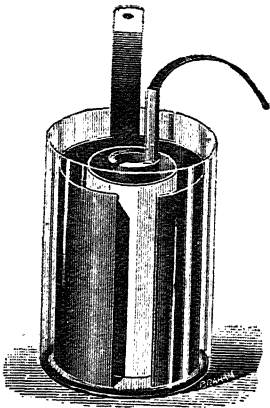
चित्र ५—डेनियल घट।

रहता है। पारेकी कलई की हुई एक जस्तकी गोल सरिया इस बर्तन में रक्खी रहती है, और चमकरहित चीनी मिट्टी का बर्तन स्वयं पूर्वोक्त नीले कसीसके घोलके बीचमें रक्खा रहता है। तांबा धन और जस्त ऋणात्मक सिरे होते हैं।

विद्युत घटकी प्रक्रिया

उपरोक्त वर्णित सारे विद्युत घटोंमें जस्तकी सरिया या पत्र ऋणात्मक सिरेका कार्य करता है, और कार्बन की सरिया या ताम्रपत्र धनात्मक सिरेका। प्रयोगसे यह सिद्ध हो चुका है कि शुद्ध जस्तका टुकड़ा किसी अम्ल या नमकके घोलमें डालने पर उसमें नहीं घुल सकता। यदि इसी घोलमें तांबा, कार्बन अथवा किसी दूसरी धातुके टुकड़ेको डाल कर उनका सम्बन्ध दोनोंके सिरोंको मिला कर, अथवा उन्हें एक तार द्वारा जोड़ कर, किया जाय तो रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जायगी और जस्त विद्युत वैच्छेद्य (Electrolyte) में घुलने लगेगा। इसके घुलनेसे जो हाइड्रोजन अम्लमेंसे निकलता है वह जस्तके बजाय ताम्र अथवा कार्बनके सरियेमें निकलता हुआ प्रतीत होता है। इससे वैज्ञानिकों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि रासायनिक क्रियाके फल स्वरूप रासायनिक शक्तिका विद्युत शक्तिमें परिवर्तन हो जाता है, और यह शक्ति हाइड्रोजनके अदृश्य अणुओं द्वारा जस्तके पत्रसे ताम्र अथवा कार्बनके ध्रुव तक चली जाती है। वहाँ इस शक्तिको ताम्र अथवा कार्बनकी सरिया ग्रहण कर लेती है। फलतः यह ध्रुव जस्तकी अपेक्षा ऊँची कक्षा (High potential) का हो जाता है। वास्तवमें अम्ल और ताम्र अथवा कार्बन के बीच कोई रासायनिक प्रतिक्रिया नहीं होती। यदि जस्ता बिल्कुल शुद्ध हो तो कोई रासायनिक प्रतिक्रिया किसी विद्युत घटमें उस समय तक नहीं होती जब तक धनात्मक सिरा और ऋणात्मक सिरा तारसे जोड़े नहीं जाते। दूसरे शब्दोंमें रासायनिक क्रिया और विद्युत-धारा-प्रवाह एक पूर्ण विद्युत घटमें साथ-साथ ही हो सकते हैं। अतएव विद्युत घट एक ऐसा यन्त्र है जो रासायनिक शक्तिको विद्युत शक्तिमें परिवर्तित कर देता है।

तांबे अथवा कार्बनकी सरिये पर प्रकट होने वाली हाइड्रोजन वास्तवमें विद्युत घटकी परिचालन क्रियाके मार्ग में बाधा उत्पन्न करने वाली पाई गई है, क्योंकि यह देखा जाता है कि साधारण विद्युत घटमें थोड़े समय तक धारा प्रवाह होनेके पश्चात् घट कुंठित हो जाता है, अर्थात् कार्य करना बन्द कर देता है। इसका ज्ञान एक यन्त्र द्वारा जिसे धारा मापक (Galvanometer) कहते हैं किया जा सकता है। अन्वेषण करने पर यह पता लगा कि यदि विद्युत घटके ताम्र अथवा कार्बन पत्र पर एकत्रित हुये हाइड्रोजनके बुलबुलेको दूर कर दिया जावे तो कुंठित हुआ विद्युत घट पुनः कार्य करने लगता है। विद्युत घट के कार्यके कुंठित होनेको आङ्गल भाषामें पोलेराइज़ेशन

(Polarisation) कहते हैं। भिन्न-भिन्न विद्युत घटोंमें ध्रुवाच्छादन (पोलेराइज़ेशन) को पृथक्-पृथक् उपायों द्वारा दूर किया गया है। लैक्लांशी घटमें कार्बन तक पहुँचनेके लिये विद्युत वाहक हाइड्रोजन अणु मैनगनीज़ ऑक्साइडमें होकर जाते हैं। यहाँ वे ऑक्सीजनसे मिल कर पानी बन जाते हैं। बाइक्रोमेट घटमें वे लाल कसीस के ऑक्सीजनसे मिलकर पानी बन जाते हैं। बुन्सेन घटमें वही कार्य शोरेके अम्लसे होता है, और डेनिअल घटमें तूतियासे।

जो जस्त विद्युत घटोंमें उपयोग किया जाता है उसे रासायनिक रूपसे शुद्ध होना चाहिये; परन्तु ऐसा जस्त बहुधा प्राप्त नहीं होता। अशुद्ध जस्त काममें लानेसे अन्य धातुओंके समिश्रण होनेके कारण धनात्मक ध्रुवसे असम्बन्धित होते हुये भी जस्त और अम्लमें रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और जस्त गलने लगता है। इस प्रकार रासायनिक शक्तिका थोड़ा-सा अंश ही विद्युत शक्तिके रूपमें मिलता है, शेष शक्ति तापशक्तिके रूपमें नष्ट हो जाती है। इसको रोकनेके लिये वैज्ञानिकों ने एक उपाय निकाला है, और वह है जस्तकी सरिये पर पारेकी कलई कर देना। इससे शुद्ध जस्तके अणु ही अम्लके सम्पर्कमें आते हैं, अशुद्धियाँ नीचे ही दबी रह जाती हैं।

जस्तकी सरिये पर कलई करना

पारेकी कलई जस्तके सरिये पर बड़ी सुगमतासे इस प्रकारकी जा सकती है कि एक चीनी अथवा इनेमलके बर्तनमें थोड़ा हल्का तेज़ाब डालकर उसमें जस्तको डालिये और थोड़ी देर (३ मिनट) पड़ा रहने दीजिए। इसके पश्चात् एक चीनीकी छोटी प्यालीमें पारा लेकर सरियेके एक सिरेको ५ मिनट तक पारेमें डूबा रहने दिया जावे। अब पारा सरियेमें चिपट जावेगा। पश्चात् सरियाके सिरेको उल्टा करके किसी कपड़ेसे पारेको नीचेकी ओर पोंछने पर पारा सारे सरिये पर फैल जावेगा। अगर कहीं लगनेसे रह भी जावे तो उसे थोड़ी देरके लिये फिर तेज़ाबमें छोड़ कर वही क्रिया दोहराई जावे। इस प्रकार सरिया पर पारेकी कलई हो जाती है।

अन्य रीतियोंसे विद्युत—उपरोक्त घटोंके अतिरिक्त कई अन्य घट भी हैं जिनसे विद्युत उत्पन्न होती है। परन्तु इनके वर्णनकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। घटोंके अतिरिक्त, डायनामों (dynamo) चला कर भी विद्युत उत्पन्नकी जाती है। फिर एक घट ऐसा भी होता है कि बाहरसे उसमें विद्युत भेजने पर उसमें स्वयं विद्युत देनेकी शक्ति आ जाती है। ऐसे घटोंको ऐक्युमुलेटर (accumulator) कहते हैं (चित्र ६, ७)।
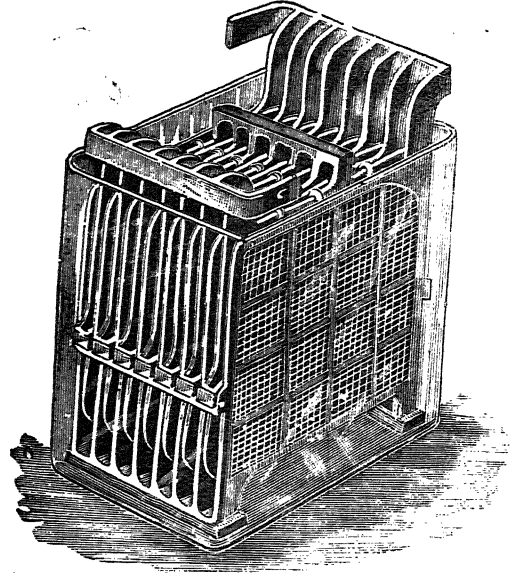
चित्र ६—ऐक्युमुलेटर, बाहरी रूप।
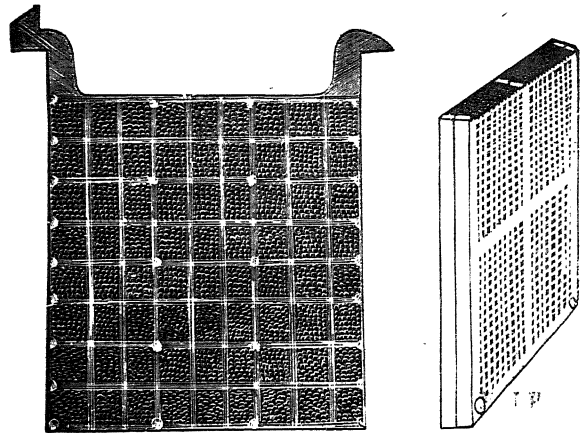
चित्र ७—ऐक्युमुलेटरके प्लेट।

घटोंको जोड़ना

विद्युत जल-धाराके समान प्रवाहित होने वाली शक्ति मानी गई है। अतएव जिस प्रकार जल-धारा उच्च स्थानसे निम्न स्थानकी ओर जाती है उसी प्रकार विद्युत धारा भी उच्च अवस्थासे निम्न अवस्थाकी ओर जाती है। अँग्रेज़ीमें अवस्था भेदको पोटेन्शियल डिफरेंस (Potential difference) कहते हैं। किसी भी विद्युत घटका धनात्मक ध्रुव उनके ऋणात्मक ध्रुवसे उच्च अवस्थामें होता है। यही कारण है कि घटके दोनों ध्रुवोंको जोड़नेसे उसमें बाहरकी ओर विद्युत धनसे ऋण ध्रुवकी ओर जाती है। इस क्रियाको एक दृष्टान्त द्वारा भली भांति समझाया जा सकता है। चित्र ८ अ में क एक पानीकी टंकी है जो किसी ऊँचे स्थान पर रक्खी हुई है। ग एक
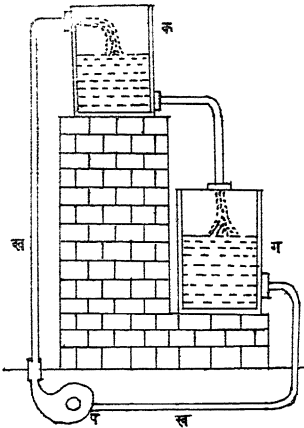
चित्र ८—जलधारा।

दूसरी टंकी है जो उससे नीचे स्थान पर रक्खी है ये दोनों एक नली द्वारा जुड़ी हुई हैं। अब यह स्पष्ट है कि पानी टंकी क से टंकी ग में आ जायेगा। ख एक दूसरी नली है जो एक पम्प प द्वारा ग का पानी क में वापिस पहुँचा देती है। इस पम्पके अनवरत कार्य करनेसे पानीकी धारा आवाधित रूपसे प्रवाहित होती रहेगी।

ठीक इसी प्रकार विद्युतके धन ध्रुवके ऊँची और उसके ऋण ध्रुवके नीची अवस्थामें होनेके कारण और उनके एक तार द्वारा जुड़े रहनेसे विद्युत धारा धनसे ऋण ध्रुव की ओर प्रवाहित होती है। घटके भीतर रासायनिक क्रिया द्वारा उत्पन्न हुई शक्ति धाराको जस्तसे कार्बनकी ओर ले जाती है। इस शक्तिको विद्युत संचालन शक्ति कहते हैं। यह शक्ति वही कार्य करती है जो दृष्टान्तमें पम्प करता है। रासायनिक परिवर्तनमें अणु एक दूसरेसे पृथक् होकर नये योगिक बनाते हैं। अतएव जो शक्ति उन्हें प्रथम दशामें मिलाये रखती है वह स्वच्छन्द होकर विद्युतके रूपमें प्रकट होती है। यह शक्तियोंके रूपान्तरका एक उदाहरण है। विद्युत संचालन शक्तिका जिस एकाईमें माप होता है, उसे वोल्ट (Volt) कहते हैं। विद्युत धाराके नाप दो प्रकारसे किए जाते हैं। पहिली तो संचालन शक्तिको और दूसरी विद्युत मात्राको नाप कर। विद्युत मात्राकी माप ऐम्पिअर (Ampere) नामकी एकाईमें होता है।

विद्युत संचालन शक्ति और विद्युत मात्रामें वही अन्तर है जो पानीके बहावके ढाल और बहने वाली पानीकी मात्रा-में है। किसी दशामें अधिक ऊँचाईसे बहने वाले पानीकी पतली धारा अधिक मात्रा वाली धाराकी अपेक्षा, जो समतल स्थानमें बह रही हो, अधिक उपयोगी हो सकती है (उदाहरणतः फव्वारा छोड़नेमें)। इसी प्रकार कभी आवश्यकतानुसार अधिक वोल्ट वाली और कभी अधिक ऐम्पिअर वाली विद्युत धारा अधिक उपयोगी होती है। दो अथवा अधिक विद्युत घटोंको दो प्रकारसे जोड़ा जा सकता है, जैसा चित्र ९ और १० में बताया गया है।
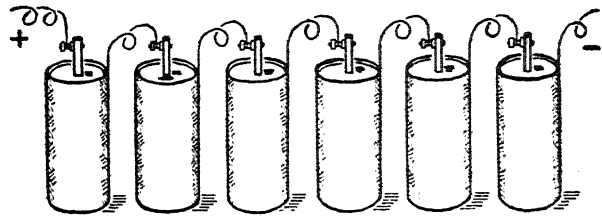
चित्र ९—पंक्ति-सम्बन्ध।
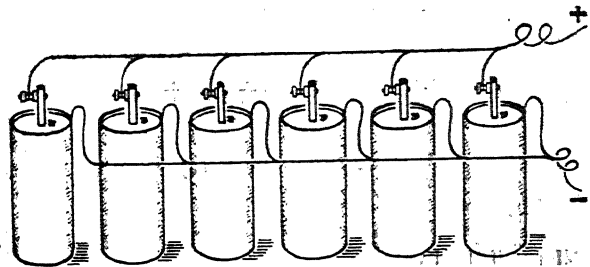
चित्र १०—समानांतर सम्बन्ध।

यदि अधिक वोल्ट वाली धारा चाहिए तो एक घटके ऋण ध्रुवके दूसरे घटके धनात्मक ध्रुवसे जोड़ना चाहिए। यदि इस प्रकार ६ घट जोड़े जायँ (चित्र ६) तो पहिले घटका धन और दूसरे घटका ऋण सिरा एक घटकी अपेक्षा ६ गुने वोल्टकी धारा देंगे। इसे पंक्ति सम्बन्ध (Series Connection) कहते हैं। यदि अधिक ऐम्पीअर वाली धारा वांछित हो तो सब घटोंके धन सिरों को एक ओर और सब ऋण सिरोंको दूसरी ओर जोड़ना चाहिए चित्र १०। इसे समानान्तर सम्बन्ध कहते हैं। एक तीसरे प्रकारका सम्बन्ध होता है। इसे पंक्ति समानान्तर सम्बन्ध (Series parallel connection) कहते हैं। मान लीजिये १२ बुन्सेन घट जोड़ने हैं जिनमेंसे प्रत्येककी विद्युत संचालन शक्ति २ वोल्ट है। किसी कार्य विशेषके लिये मान लीजिये कि हमें ८ वोल्टकी विद्युत धारा चाहिए। अब ८ को २ से भाग देनेसे ४ आता है; इसलिए हमको चार-चार घटोंके तीन समूह करना चाहिए। प्रत्येक ४ घट
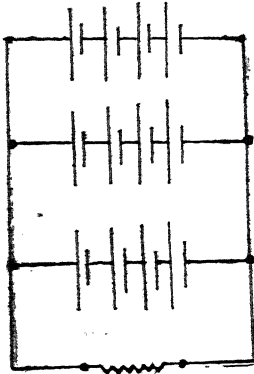
चित्र ११--पंक्ति-समानांतर संबंध।

वाले समूहको हमें पंक्ति सम्बन्धमें जोड़ना चाहिये, जिससे प्रत्येक समूहकी विद्युत शक्ति ८ वोल्ट हो। अब प्रत्येक समूहके सब धन ध्रुवोंको एक ओर और सब ऋण ध्रुवोंको दूसरी ओर जोड़ना चाहिये। इस प्रकार पंक्ति समानान्तर सम्बन्ध पूर्ण होनेसे (चित्र ११) बैटरीसे ८ वोल्टकी विद्युत

चित्र १२—घट सूचित करनेका चिह्न।

धारा इतनी मात्रामें मिलेगी जो एक घटसे तिगुनी होगी। चित्र ११ में एक घटको छोटी-बड़ी दो रेखाओंकी जोड़ीसे सूचित किया गया है। यही साधारण प्रथा है (चित्र १२)। चित्र १३ में दो घटोंका पंक्ति संबंध और चित्र १४ में समानान्तर संबंध दिया गया है।
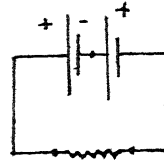
चित्र १३—दो घटोंका पंक्ति संबंध।

विद्युत शक्ति एक स्थानसे दूसरे स्थान तक चालक द्वारा, जो तारकी शकलमें होती हैं ले जायी जाती हैं।
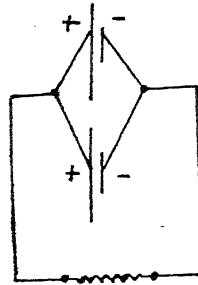
चित्र १४—दो घटोंका पक्ति संबंध

प्रत्येक चालक-तार धाराके कार्यमें कुछ-न-कुछ बाधा डालता है। विद्युत बाधाका अन्वेषण सबसे पहले ओम (Omh) ने किया था।

ओम का नियम

ओमके नियमको एक दृष्टान्त द्वारा बताया जाता है। मान लीजिये कि पानीकी दो समान टंकियाँ हैं। उसमेंसे
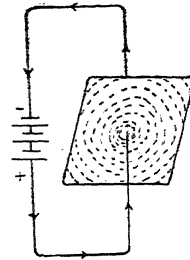
चित्र १५—विद्युत-धारा जनित शक्ति-रेखाएँ।

एकमें जो पृथ्वीसे ४ फुटकी ऊँचाई पर रक्खी है, दो नल लगे हैं जो पानीको नीचे लाते हैं, एक आधे इंच क्षेत्रफल का और दूसरा एक इंच क्षेत्रफलका। अब स्पष्ट है कि एक इंच वाले नलसे आधे इंच वाले नलकी अपेक्षा प्रति सेकण्ड दुगना पानी निकलेगा। इससे यह निष्कर्ष भी निकाला जा

सकता है कि पानीके बहावमें आधे इंच वाले नलने एक इंच वाले नलकी अपेक्षा दुगनी बाधा उपस्थित की, अर्थात् धारा-प्रवाह और बाधा विपरीत अनुपाती हैं। यह भी मान लिया कि दूसरी टंकी पृथ्वीसे ८ फुटकी ऊँचाई पर रक्खी है, और उसमें आधे इंचका नल पानी नीचे लानेके लिये लगा हुआ है। पहली टंकीको क नामसे और दूसरीको ख नामसे यदि सम्बोधन किया जाय तो यह स्पष्ट है कि पृथ्वीतलके पास ख के पानीका भार क के भारकी अपेक्षा दुगना होगा; अर्थात् ख में पानीकी संचालन शक्ति क की अपेक्षा दुगनी है, क्योंकि ख की ऊँचाई क से दुगनी है। प्रयोग द्वारा यह देखा जा सकता है कि ख टंकीसे आधे इंच वाले नलसे प्रति सेकंड उतना ही पानी निकलेगा जितना कि टंकी क से एक इंच वाले नलसे। क और ख टंकियोंके आधे इंच वाले नलोंकी बाधा यद्यपि समान है और एक इंच वाले नलसे वह दूनी है, तथापि ख के पानीकी संचालन शक्ति दूनी होनेके कारण उसके आधे इंचके नलमें से क के एक इंचके नलके बराबर ही प्रति सेकण्ड पानी निकलता है, और उसके आधे इंच वाले नल की अपेक्षा दुगना। इन परीक्षणोंके फलों को क्रमबद्ध रूपसे इस प्रकार लिखा जा सकता है।

१—क टंकीके आधे इंच वाले नलसे उसके एक इंच वाले नलकी अपेक्षा दुगना पानी निकलता है। अतएव दोनों नलोंकी बाधा समान होते हुये भी ख की संचालन शक्ति क से दुगनी है। इस फलको एक समीकरण द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया जाता है :—

संचालन शक्ति / धाराकी मात्रा = बाधा. . . .(१)

यहाँ संचालन शक्तिसे तात्पर्य पानीके उस भारसे है जो एक वर्ग इंचकी सतह पर पड़ता है, और वह पौंड प्रति वर्ग इंचकी एकाई पर नापा जाता है। मान लीजिये कि क टंकीके पानीका भार ८ पौंड प्रति वर्ग इंच है और उसके आधे इंच वाले नलसे १ पौंड प्रति सेकण्ड पानी निकलता है, तो उसके एक इंच वाले नलसे २ पौंड प्रति सेकंड पानी निकलेगा। समीकरण (१) से आधे इंच वाले नलकी बाधा ८/१ = ८ हुई, और एक इंच वाले नलकी बाधा ८/२ = ४ हुई। अब इन निर्णयोंसे हम यह गणित करते हैं कि दूसरी टंकी ख के आधे इंच वाले नलसे प्रति सेकण्ड कितना पानी निकलेगा।

यह तो स्पष्ट ही है कि यदि टंकी क का भार ८ पौंड प्रति वर्ग इंच है तो उससे दूसरी ऊँचाई पर रक्खी हुई टंकी ख का भार १६ पौंड प्रति वर्ग इंच होगा। आधे इंच वाले नलकी बाधा ८ आई है; अब यदि इस नलसे निकलने वाले पानीकी अज्ञात मात्राको हम य पौंड प्रति सेकण्ड मान लें तो समीकरण (१) से १६/य = ८, अर्थात् य = १६/८ = २ प्रति सेकंड।

अर्थात् प्रयोग द्वारा जो बात मालूम हुई वही गणितसे निकली। अतएव समीकरण (१) की सत्यता प्रमाणित हो जाती है।

इसी प्रामाणिक समीकरणका ओम ने विद्युत बाधा के सम्बन्धमें सबसे प्रथम अन्वेषण किया था।

एकाइयों की परिभाषा

अ—ऐम्पिअर यदि एक अनवरत विद्युत धारा सिलवर नाइट्रेट (Silver Nitrate) के घोलमें से १ सेकण्डमें ०·००१११८ ग्राम रजत पृथक् कर सकती है तो यह धारा एक ऐम्पिअरकी कही जाती है।

इ—वोल्ट—यदि किसी चालकमें जिसकी बाधा १ ओम है एक ऐम्पिअरकी धारा प्रवाहित की जावे तो उसके सिरोंमें जो अवस्था भेद (Potential Difference) उत्पन्न होगा उसे वोल्ट कहेंगे।

उ—ओम—यदि १४·४५२१ ग्राम शुद्ध पारा ०° सेंटीग्रेड तापक्रम पर लेकर उसे ऐसी सर्वत्र सम व्यासकी नलीमें भर दिया जावे जिसकी लम्बाई १०·६३ से० मी० हो और मुँहका क्षेत्रफल १ वर्ग मिलीमीटर हो तो इसमें होकर जाने वाली विद्युत धाराको १ ओमकी बाधा मिलेगी।

ओमका नियम इस प्रकार भी व्यक्त किया जा सकता है कि एक चालकमें प्रवाहित होने वाली धाराकी मात्रा उस चालकके दोनों सिरों पर आरोपित विद्युत संचालन शक्तिकी समानुपाती होती है। डेनिअल घटकी संचालन शक्ति लगभग १ वोल्ट है। यदि एक तारका ऐसा टुकड़ा लिया जावे कि उसको घटके धन और ऋण ध्रुवोंसे मिलाने पर उसमेंसे एक ऐम्पीअरकी धारा प्रवाहित होने लगे तो उस तारकी बाधा १ ओम मानी जायगी, क्योंकि समीकरण (१) के अनुसार १ वोल्ट / १ ऐम्पीअर = १ ओम बाधा।

इस समीकरणका विद्युत सम्बन्धी गणितमें इतना अधिक उपयोग होता है और रेडियोसे सम्बन्ध रखने वाली क्रियाओंमें भी आगे चल कर हमें इसकी इतनी अधिक आवश्यकता होगी कि पाठकोंको इसे भली प्रकार हृदयंगम कर लेना नितान्त अभीष्ट है।

कई विद्युत घटोंको पंक्ति रूपमें अथवा समान्तर रूपमें अथवा पंक्ति समानान्तर रूपमें जोड़नेसे जो समूह बनता है उसे बैटरी (Battery) कहते हैं।

विद्युत धारा के गुण

१—धारासे ताप उत्पादन—प्रत्येक चालक धाराके मार्ग में कुछ-न-कुछ बाधा डालता ही है। किसी धातुका एक तार जितना अधिक लम्बा और पतला होगा उसकी बाधा उतनी अधिक होगी, अर्थात् विद्युत बाधा तारकी लम्बाईके समानुपात और उसके आड़े क्षेत्र (Cross-section) के विपरीत अनुपातमें होती है। धाराके मार्गमें बाधा आने पर विद्युत शक्ति तापके रूपमें बदल जाती है। किसी पतले तारमें धारा प्रवाहित करनेसे वह कितना प्रतप्त होगा यह नीचेके सूत्रसे प्रकट है।

ताप = धाराकी मात्रा^{2} × बाधा × समय......(२)

२—धाराका चुम्बकीय प्रभाव—सन् १८२० ई० में ओइस्टेंड (Oestend) ने सर्वप्रथम यह बतलाया था कि नोक पर समतुलित चुम्बक या सुईके पास धारा वाहक तार ले जानेसे चुम्बककी सुई ठीक उसी प्रकार घूम जायगी जैसे उसके पास कोई चुम्बक ले जाया गया हो। इससे यह सिद्ध होता है कि धारा वाहक तारके चारों ओर एक चुम्बकीय चेत्र है। यही प्रभाव निम्न प्रकार भी देखा जा सकता है। एक लम्बे तांबेके तारके दोनों सिरे यदि एक शक्तिशाली बैटरीसे जोड़ दिये जावें और उस तारको लोहेके बुरादेमें डुबाया जावे तो बुरादा तारमें चिपट जाता है। यदि उस तारमें धारा प्रवाह बन्द कर दिया जावे तो बुरादा तारसे स्वतः छूट जाता है। तांबेका तार अचुम्बकीय वस्तु होनेके कारण चुम्बक बन नहीं सकता। अतएव स्पष्ट है कि तारके चारों ओर आकाशमें शक्ति-रेखाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जो धारा बन्द होने पर विलीन हो जाती है। तारके चारों ओर शक्ति-रेखाओंका क्या रूप होता है यह नीचेके प्रयोगसे ज्ञात होता है।

एक कागज़के पुट्ठेमें होकर एक तांबेका तार निकाला और उसके दोनों सिरोंको विद्युत बैटरीसे जोड़ दिया। अब पुट्ठे पर कुछ लोहचूर्णके कण तारके चारों ओर बखेर दिये। पुट्ठेको धीरेसे थपथपाने पर लोहचूर्णके कण तारके चारों ओर वृत्ताकार रूप धारण कर लेते हैं जिनका कि एक ही केन्द्र होता है जैसा कि चित्र १५ में बतलाया गया है। इससे स्पष्ट है कि तारके चारों ओरके चुम्बकीय क्षेत्रमें शक्ति रेखाएँ वृत्ताकार होती हैं। ऐसा क्षेत्र एक सीधे तार में धारा प्रवाह होनेसे बनता है।

यदि विद्युत ले जाने वाला तार सीधा रहनेके बदले वृत्तके रूपमें रहे तो शक्ति-रेखाएँ पिहित (बंद) वक्रोंके रूपकी होती हैं जो चालक तारको घेरे रहती हैं। केवल केंद्रसे होकर जाने वाली शक्ति-रेखा सीधी होती है; आस-पासकी शक्ति-रेखाएँ लगभग सीधी होती हैं। इन बातोंका प्रमाण ऊपर वर्णित प्रयोगके समान प्रयोगोंसे मिल सकता है।

रिवीकी तैरने वाली बैटरी—इस बैटरीसे यह बतलाया गया है कि एक वृत्ताकार झुके हुये तारमें बहने वाली विद्युत धाराके कारण वह तार ठीक चुम्बक जैसा कार्य करता है। शीशे या एनेमलकी एक चौड़ी तश्तरीमें हल्का गन्धकका तेज़ाब भरा हुआ है।

[शेष अगले अंकमें]

घरेलू डाक्टर

[ले—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरख प्रसाद आदि]

दाद—(दद्रु, ringworm) कई जातियोंका होता है। उनमें एकका नाम ही एकज़ेमा (एकज़ेमा मारजिनेटम ऑफ़ हेबरा, eczema marginatum of Hebra) पड़ गया है। यह साधारणतः लिंगेन्द्रियों के आस-पास होता है, और वहाँसे आसन्न भागों तक फैल जाता है। भारतवर्षमें अँग्रेज़ों ने इसका नाम धोबीज़ इच (dhobie's itch) या धोबीकी खाज रख दिया है।

कारण यह है कि उनका विश्वास है कि इसकी छूत धोबी-के घरसे कपड़ोंमें लग कर आती है। इस रोगका उत्पादक एक वानस्पतिक जीवाणु है जो कठिनाईसे मरता है। जहाँ यह लग जाता है वहाँ त्वचा गुलाबीसे लेकर गहरे लाल रंगकी हो जाती है। रोग जाँघ और अंडकोश तक पहुँच जाता है और साधारणतः वहीं यह रोग होता है। इसमें बड़ी खुजली मचती है। परन्तु पसीना और खुजलानेसे फुंसियाँ निकल आती हैं और चेप निकलने लगता है, जिसमें वहाँकी त्वचा उकवथग्रस्त जान पड़ती है। छूत कभी-कभी पैरकी अँगुलियोंके बीचमें, या काँखोंमें पहुँच जाती है। तब वहाँ भी रोग हो जाता है।

ग्रंथिल त्वचाप्रदाह।

बेनज़ोइक ऐसिड तथा सैलिसिलिक ऐसिड पड़े मरहमों-से, टिंक्चर आयोडीनसे, तथा कुछ अन्य मरहमों या लोशनों से यह रोग दूर हो सकता है। अच्छे हो जाने पर सफाई पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

ग्रंथिल त्वचाप्रदाह—संचारी त्वचाप्रदाहोंमेंसे एक विशेष जाति है ग्रंथिल त्वचाप्रदाह (varicose dermatitis)। वस्तुतः इसे ग्रंथिल शिरा सम्बन्धी त्वचाप्रदाह कहना चाहिए। यह रोग बहुतोंको होता है, परन्तु स्त्रियोंको अधिक होता है। धनिकोंकी अपेक्षा यह गरीबोंको अधिक होता है। यह साधारणतः ३५-४० वर्षकी आयुके बाद होता है। यह रोग पैरोंमें घुटनेसे लेकर घुट्टियों (टखनों) तक होता है, और साधारणतः टाँगोंके निचले आधोंमें रोगका जोर अधिक रहता है। पदोंकी पीठ (तलवे की दूसरी ओरका भाग) रोगग्रस्त हो जा सकता है, परन्तु तलवे में रोग नहीं होता। रोग कभी-कभी जाँघों तक पहुँच जाता है, परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। रोग बहुत धीरे-धीरे आरम्भ होता है। रोगी ने सम्भवतः देखा होगा कि टाँगके नीचेके भागोंमें कुछ वर्षोंसे कभी-कभी खुजली रहती थी। त्वचामें लाली, फुंसी आदि कुछ नहीं रहती, केवल त्वचा कुछ सूखी-सी रहती है। रोगीकी शिराएँ, कस कर मोज़ा बाँधनेसे, बहुत समय तक प्रतिदिन खड़े रहने वाले रोजगारमें लगे रहनेसे, या गर्भाधान जनित चाप (दबाव) के कारण, ग्रंथिल (varcose) हो जाती हैं। इससे प्राकृतिक ढंगसे उत्पन्न हुआ रद्दी पदार्थ त्वचासे दूर नहीं हो पाता। तब त्वचा कमजोर हो जाती है और कोई संचारी रोग उसे धर दबाता है; साधारणतः स्टैफिलोकोकाई या कोई मुकड़ीकी जातिके जीवाणु अपना अड्डा जमा लेते हैं। चेप बहुत बहता है। कहीं-कहीं पीबयुक्त घाव भी हो जाते हैं।

चिकित्सा—स्वच्छताकी विशेष आवश्यकता है। आरम्भमें ही, जब टाँगोंमें कभी-कभी खुजली जान पड़े, उन्हें कारबोलिक लोशन आदिसे धोते रहना चाहिये। पैरमें नाम मात्र बादामका तेल या कॉड लिवर ऑयल मालिश कराना भी अच्छा है।

जब रोग तीक्ष्ण हो उठे तो चारपाई पर पड़ा रहना चाहिए। पैताना सिरहानेसे तीन-चार इंच ऊँचा रहे (कोई ऐसा रोग भी हो जिसमें इसकी मनाही हो तो बात दूसरी है)। कैलामिन लोशन आदि लगा कर पहले रोगको रोका जाता है। तब सैलिसिलिक ऐसिड आदिका मरहम लगाया जाता है। घाव हों तो उन्हें ऐक्रिफ्लेविन लोशन

या ऐसी ही दवाओंसे धोया जाता है। यह रोग अकसर अच्छा होते-होते फिर उभड़ पड़ता है। जब तक रोगी पूर्णतया न अच्छा हो जाय उसे बिस्तर पर ही पड़ा रहना चाहिए। जब रोगी पूर्णतया अच्छा हो जाय तो उसे टाँगों पर पट्टी बाँधनी चाहिए।

जब रोगी बिस्तर पर नहीं पड़ा रह सकता है तो विशेष दवाओंसे चुपड़ी रबड़-युक्त पट्टियाँ बाँधी जाती हैं। परन्तु यदि घाव हो गए हों या चेप बहुत अधिक निकलता हो तो इस प्रकार काम नहीं चलता।

क्षय और उपदंश (आतशक) रोगके कारण भी ग्रंथिल त्वचाप्रदाहके लक्षण दिखलाई पड़ सकते हैं, परन्तु अनुभवी डाक्टरोंको इसकी पहचानमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

चैतन्यताजनित त्वचाप्रदाह—चैतन्यताजनित त्वचाप्रदाह और अभिघाती त्वचाप्रदाह (जिसका वर्णन पहिले किया जा चुका है) दोनों किसी-न-किसी प्रकारके उत्तेजक या क्षतकारी पदार्थसे होते हैं, परन्तु इनमें अन्तर यह है कि अभिघाती त्वचाप्रदाह ऐसे तीव्र पदार्थोंसे होता है जो सब व्यक्तियोंकी त्वचा पर आक्रमण कर बैठता है; परन्तु चैतन्यताजनित त्वचाप्रदाह ऐसे पदार्थोंसे होता है जो सबको नहीं, केवल चैतन्य त्वचा वालोंमें उकवथ उत्पन्न करता है। कुछ लोग चैतन्यताजनित त्वचाप्रदाहको ही एकज़ेमा (= उकवथ) कहते हैं, अभिघाती त्वचाप्रदाहको एकज़ेमामें नहीं गिनते। चैतन्यताजनित त्वचाप्रदाह बाहरी या भीतरी कारणोंसे हो सकता है। बाहरी कारणोंका एक उदाहरण यह है किसी असहनशील शरीर वालेको जूँ या चिल्लड़ पड़ जाय और वह अपनेको खुजाये और उससे उकवथ हो जाय।

रोगशीलताके कारण—यह निश्चय है कि कई उकवथ (एकज़ेमा) वाले रोगियोंमें रोगशीलता कुछ असाधारण रूपमें होती है, जिसके कुछ विशेष कारण होते हैं। उकवथके होने और अतिचैतन्यतामें घनिष्ठ सम्बन्ध है। कुछ परिवार ऐसे होते हैं कि उनमें यह रोग अधिक होता है। इन परिवारोंके व्यक्तियोंमें ऐसे पदार्थोंसे उकवथ हो जाता है जो साधारण मनुष्योंमें कोई लक्षण नहीं उत्पन्न करते। डायाबिटीज़, वृक्कप्रदाह और गठिया (gout) के रोगियोंको उकवथ अधिक आसानीसे होता है। खरँहा त्वचा (xeroderma) वालोंको भी उकवथ अधिक होता है।

अंतरङ्ग कारणों से उकवथ—अंतरंग कारणोंसे उत्पन्न उकवथमें विष निम्न रीतियोंमें से किसी भी रीतिसे बन सकता है—

(१) दूषित पाचनसे (विशेष कर प्रोटीनोंके ठीक न पचनेसे)। इससे भोजन पेटमें सड़ने लगता है और इस प्रकार उसमें विष उत्पन्न होने लगता है। जब इस विषका शोषण शरीरमें होता है तो त्वचामें उकवथ हो जा सकता है। कुछ भोजन, विशेष कर दूधकी मलाई, या दूधका प्रोटीन, अतिचैतन्य लोगोंमें पाचनशक्तिके साधारणतः ठीक रहने पर भी उकवथ उत्पन्न कर सकता है।

(२) शरीरमें ऐसे केन्द्रोंके उपस्थित रहनेसे जहाँ कहीं पीव बनता हो, जैसे मसूड़ेमें, या गलग्रंथियों अर्थात् टॉनसिलों (tonsils) में।

(३) उपत्वचाके कहीं पर नष्ट होनेसे। इससे विष उत्पन्न होता है जो अन्यत्र उकवथ उत्पन्न करता है। उदाहरणतः, यदि किसीको पैरोंमें ग्रंथिल त्वचाप्रदाह हो जाय तो उपचर्मके वहाँ पर नष्ट होनेसे जो विष बनता है उसके कारण भुजामें या अन्यत्र उकवथ हो जा सकता है, जो तब तक न अच्छा होगा जब तक पैर का रोग न अच्छा होगा।

(४) सम्भवतः स्नायुओंके थकानसे, उदाहरणतः तीव्र मानसिक चिन्ता, पीड़ा, हर्ष आदि से।

(५) किसी अन्य रोगके लिये किसी सिरम (serum रक्तरस) का इनजेक्शन लगानेसे।

उपरोक्त कारणोंसे सबको उकवथ नहीं होता। किसी-किसीको हो जाता है। रोगका होना निम्न बातों पर निर्भर है—

(क) रोगीकी अतिचैतन्यता—जैसा ऊपर बतलाया जा चुका है, ऐसे परिवारके व्यक्तिको यह रोग अधिक होता है जिसमें अतिचैतन्यता (allergy, उसे देखो) प्रचलित रहती है। जिन्हें स्वयं खरँहा-त्वचा, वसाधिक

स्फोट आदि रोग हुआ करते हैं उन्हें उकवथ अधिक सुगमतासे होता है।

(ख) रोगीके साधारण स्वास्थ्यकी उत्तमता। बराबर कोष्ठबद्धता रहनेसे भोजनमें उत्पन्न विष सारे रक्तको दूषित कर देता है। पीबयुक्त मसूढ़े या रोगग्रस्त गलग्रंथि (टॉनसिल) से भी जो विष उत्पन्न होता है वह रक्तको दूषित कर देता है। स्वयं इसी कारणसे भी उकवथ हो सकता है, जैसा ऊपर बताया गया है, परन्तु यदि ऐसा न भी हुआ तो अन्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा ऐसे व्यक्तिको रोग किसी भी दूसरे कारणसे अधिक शीघ्र होगा। रक्ताल्पता (anaemia, अनीमिया) के रोगियोंको भी उकवथ अधिक होता है।

(ग) उत्पादक कारणोंसे कितने समय तक सम्पर्क रहा है, इस पर भी उकवथका होना, न होना, निर्भर है। उदाहरणतः, सागवानकी लकड़ीका तेल किसी-किसीमें उकवथ उत्पन्न करता है। स्वभावतः रोग होनेकी सम्भावना उसे अधिक है जो प्रतिदिन उस लकड़ीको चीरा करता है। फिर, सम्भव है दो आराकसोंमें से एक काम करनेके बाद रोज़ अपना हाथ-पैर-मुँह धोकर काम छोड़ता हो और दूसरा हाथ-पैर धोनेकी परवाह न करता हो। स्वभावतः दूसरेको उकवथ होना अधिक सम्भव है।

विषज उकवथ—अब कुछ विशेष बाह्य पदार्थोंके सम्पर्कसे होने वाले उकवथोंका वर्णन किया जायगा। ये पदार्थ वानस्पतिक, पाशविक या खनिज हो सकते हैं, और इनसे उत्पन्न उकवथको विषज उकवथ (Dermatitis venenata) कहते हैं।

विषज उकवथ ऐसे वनस्पतियों, रासायनिक पदार्थों इत्यादिसे उत्पन्न होते हैं, जो साधारण व्यक्तियोंकी त्वचा पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं दिखलाते। कुछ समय तक ऐसे पदार्थोंके सम्पर्कसे रोगशील व्यक्तियोंमें भी रोग नहीं उत्पन्न होता, परन्तु सहनशीलताकी सीमाके उल्लंघन होते ही प्रतिक्रिया दिखलाई पड़ती है। यह सीमा उस पदार्थके गुण और स्वभाव तथा उसके फीके या बलवती होनेके अतिरिक्त व्यक्तिकी रोगशीलता पर भी निर्भर है। यदि रोगके प्रथम लक्षणके दिखलाई पड़ते ही तुरन्त उन पदार्थोंसे सम्पर्क तोड़ दिया जाय तो रोग शीघ्र अच्छा हो जाता है और रोगी दो-तीन सप्ताह पश्चात् फिर उन पदार्थोंके सम्पर्कमें आ सकता है, और सावधानीसे काम करने पर कुछ समय तक बचा रह सकता है। परन्तु यदि एक बार वह व्यक्ति उस पदार्थसे इतने समय तक सम्पर्कमें रहे कि उकवथ अच्छी तरह जड़ पकड़ ले तो उसका एक तो अच्छा होना बहुत कठिन होता है, दूसरे उसकी रोगशीलता इतनी बढ़ जाती है कि अच्छे हो जाने पर भी जब कभी वह व्यक्ति उस पदार्थके सम्पर्कमें आयेगा तो बहुत शीघ्र फिर उकवथ हो जायगा।

रोगशील व्यक्तियोंमें उकवथ उत्पन्न कर सकने वाले वानस्पतिक पदार्थोंमें कुछ पौधोंके फूल, कुछके कन्द, कुछके रस और कुछ विशेष लकड़ियाँ हैं। भारतीय पदार्थोंकी पूरी सूची कहीं देखनेमें नहीं आई। इंगलैंडमें निम्न पौधोंसे उकवथ होना माना जाता है—primula, rhus (virginia creeper, poison ivy, poison dogwood, etc.) daffodils, chrysanthemums (गुलदाउदी), haycinth, oleander (कनेर) और कभी-कभी violets (वॉयलेट) और roses (गुलाब), lily bulbs (लिलीके कन्द), teak (सागवान), mahogany (महोगनी), Danzig oak। इन सब वस्तुओंसे रोगशील व्यक्तियोंमें केवल लाली ही नहीं, पूर्णरूपमें विकसित उकवथ हो सकता है।

उन रासायनिक पदार्थोंकी गिनती गिनाना असम्भव है जिनसे उकवथ हो सकता है, क्योंकि वे प्रायः असंख्य हैं। सस्ते साबुन और सोडासे अकसर उकवथ होता है। परन्तु रोग हाथमें (गदोरीकी उल्टी ओर) होता है। वहाँसे रोग बाहों तक पहुँच सकता है। गदोरीकी ओर रोग नहीं होता क्योंकि वहाँ त्वचा कड़ी होती है। लकड़ी पर पॉलिश करने वालोंको भी अकसर उकवथ होता है; यह तारपीन, पोटैसियम बाइक्रोमेट, आदिके कारण होता है। फ़ोटोग्राफ़रोंको उकवथ पायरो और मेटल (metol) के कारण हो सकता है। कुछ लोग तो तनिक-सा मेटल भी नहीं सह सकते। अलकतराके कारखानोंके मज़दूरोंको अकसर उकवथ अलकतरेके कारण होता है। राजगीरोंको चूना और सीमेंटसे उकवथ हो सकता है। नानबाइयोंको

पावरोटी बनानेके लिये खमीरयुक्त आटा सानते रहनेसे उकवथ हो जा सकता है। कई एक खिजाब ऐसे होते हैं कि उनसे उकवथ हो सकता है। यह स्मरण रखना चाहिये कि इन पदार्थोंसे पहली बार सम्पर्कमें आते ही रोग नहीं हो जाता। एक ही खिजाब वर्षों तक लगाया जा सकता है और तब एकाएक एक बार, जब सहनशीलताकी सीमा पार हो चुकी रहेगी, रोग उभड़ पड़ेगा। खिजाबसे हुये उकवथ-में बालको जड़से नष्ट करके दवा लगानी चाहिये, अन्यथा दवामें घुल कर खिजाब और भी उपद्रव मचा सकता है। धनी स्त्रियोंमें फ़र (fur)—जानवरोंके रोयेंदार चर्म—पहनने का फैशन है। कुछ फ़र रँगे होते हैं। इन रंगोंमें से कुछ रंग रोगशील व्यक्तियोंमें उकवथ उत्पन्न कर सकते हैं।

इस प्रकारके उकवथोंकी पहचान निम्न बातों पर ध्यान देनेसे होती है—(१) रोगका इतिहास, (२) या तो फुन्सियाँ हो जाती हैं या भूसी छूटती है; चेप भी किसी-न-किसी अवस्थामें निकलता है, (३) रोगग्रस्त भागकी सीमा-रेखा तीक्ष्ण रूपसे निर्धारित नहीं होती, (४) जहाँ-जहाँ रोग मिटता रहता है वहाँ क्षत-चिह्न (scar) नहीं बनते। तीन-चार अन्य रोग हैं जिनके लक्षण विषज उकवथसे मिलते-जुलते हैं। अनुभव ही बतला सकता है कि कौन-सा रोग क्या है।

भविष्य—चाहे किसी भी कारणसे उकवथ हुआ हो, इस रोगमें साधारणतः जानका डर नहीं रहता, परन्तु बूढ़े व्यक्तियोंके शरीरके अधिकांश भागोंमें उकवथका हो जाना मृत्युका सूचक है। छोटे बच्चोंमें उकवथ इतना उग्र रूप धारण कर सकता है कि आक्षेप (हाथ पैर नचाना, convulsions) उत्पन्न हो जा सकता है और अन्तमें मृत्यु हो जा सकती है।

बाह्य पदार्थोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुये उकवथमें जब तक कारणको दूर न किया जायगा उकवथ अच्छा न हो सकेगा। उकवथका प्रत्येक रोगी अच्छा किया जा सकता है और यदि उकवथके साथ पीबयुक्त जीवाणु न लग जायँ तो उकवथके बाद क्षतचिह्न नहीं रह जाते। कितने दिनमें उकवथ छूटेगा यह नहीं बताया जा सकता, क्योंकि यह रोग चिकित्सा होते रहने पर भी बार-बार उभड़ता रहता है।

बच्चोंका उकवथ अधिक समय लेता है। यदि दाँत निकलनेके पहले ही रोग अच्छा हो जाय तो दाँत निकलते समय उकवथके फिरसे उभड़नेका विशेष डर नहीं रहता। परन्तु यदि दाँत निकलते समय तक उकवथ न अच्छा हो तो जब तक पहली बारके सब दाँत नहीं निकल आते उकवथ साधारणतः अच्छा नहीं होता।

चिकित्सा—रोगग्रस्त अंगको विश्राम मिलना चाहिये। किसी प्रकारके उत्तेजक पदार्थका सम्पर्क उस अंगसे न होना चाहिये। साधारण स्वास्थ्यकी उन्नति पर ध्यान देना चाहिये। कोष्ठबद्धतासे बचना चाहिये। पानी खूब पीना चाहिये। आवश्यकता हो तो लवणीय रेचक* (saline aperient) प्रतिदिन लेना चाहिये। आहार हलका और सुपाच्य हो, साथ ही शक्तिप्रद भी हो। अधिक नमक खाना भी हानिकर है। शूकर माँस, मछली, अचार और गरिष्ट भोजनका परित्याग करना चाहिये। चीनी बहुत ही कम खानी चाहिए। कहवा, मदिरा आदि एकदम छोड़ देना चाहिए। चाय पी जाय तो बहुत ही हलकी और थोड़ी-सी। कोई भी पेय, चाहे यह सादा पानी ही क्यों न हो, बहुत गर्म करके पीना हानिकर है।

यदि त्वचा केवल लाल हो या नन्हें दाने निकल आये हों तो मरहम नहीं लगाना चाहिये। उस समय कैलामिन लोशन या ज़िंक ऑक्साइड पड़ा डस्टिंग पाउडर लगाना चाहिये।

जब फुन्सियाँ निकल आयें तो बोरिक पड़े मैदेकी ठंढी पुलटिस बाँधनी चाहिये और उसे बार-बार बदलना चाहिये। २४ घंटे बाद कैलामिन लोशन लगाना आरम्भ करना चाहिये। पीछे, फुन्सियोंके दब जाने पर, ज़िंक ऑक्साइड पड़े मरहम-का उपयोग करना चाहिये। यदि मरहमसे फुन्सियाँ बढ़ने लगें तो कुछ और समय तक कैलामिन लोशन लगाना चाहिये।

यदि चेप बहने लगा हो तो पहले मैदे और बोरिक ऐसिडकी ठंढी पुलटिस बाँधनी चाहिये। इसकी ठंढकसे केशिकायें संकुचित होती हैं। चेपको मैदेकी लेई सोख लेती है, इससे पपड़ी नहीं बनने पाती और चेप अन्यत्र फैल

*मैगनीसियम सलफेट आदि लवणीय रेचक हैं। रेंडी-का तेल आदि लवणीय रेचक नहीं हैं।

कर रोगको बढ़ाने नहीं पाता। जब चेपका बहना बन्द हो जाय तो कैलामिन लोशन लगाना चाहिये। उसमें आउंस पीछे १ ग्रेन गन्धक भी पड़ा रहे तो अच्छा है। पीछे कोई शान्तिप्रद मरहम लगाना चाहिये (जैसे ज़िंक ऑक्साइड-का मरहम)। उग्र उकवथमें तेज़ मरहमोंसे नुकसान होता है।

कई सप्ताहके पुराने उकवथको अर्ध-जीर्ण (sub-acute) उकवथ कहा जा सकता है। इसमें कुछ अधिक तेज़ मरहम (ज़िंक ऑक्साइडके अतिरिक्त कुछ सैलिसिलिक ऐसिड आदि पड़े मरहम) प्रयुक्त हो सकते हैं।

जीर्ण सूखे उकवथमें लिकर कारबोनिस डिटरजेन्स (liquor carbonis detergens) केड ऑयल (cade oil), रिसोर्सिन (resorcin) या गन्धक आदि पड़े मरहम लगाये जा सकते हैं।

जीर्ण चेप वाले उकवथमें कलॉयड गन्धक तथा कुछ अन्य विशेष ओषधियोंसे लाभ होता है।

अब नीचे उकवथोंका वर्णन शरीरके अंगोंके अनुसार किया जायगा, क्योंकि रोगके लक्षण बहुत-कुछ अंगके अनुसार विभिन्न जान पड़ते हैं।

शिरस्त्वचा (खोपड़ीकी चमड़ी scalp) का उकवथ—यह सूखा या चेपयुक्त हो सकता है। बच्चों में साधारणतः चेपयुक्त होता है। चैतन्यता, वसाधिक्य या जीवाणु इसके कारण हो सकते हैं। बच्चा खुजलीके कारण बेचैन रहता है; वह बार-बार सिर खुजानेकी चेष्टा करता है और यदि उसे ऐसा न करने दिया जाय तो खाट पर या गोदमें अपना सर इधर-उधर हिलाकर उसे रगड़ा करता है। फीके मरक्यूरिक परक्लोराइड लोशन (२००० भाग पानीमें १ भाग परक्लोराइड) की पट्टी बाँधनेसे जब रोग कुछ शांत हो तो मरहम आदि लगाया जा सकता है। खोपड़ी पर उकवथ होने पर बालको जड़से कतर देना ही अच्छा होता है, रोगी चाहे बालक हो चाहे युवा।

कान पर उकवथ—यह या तो शिरस्त्वचाके उकवथके नीचे उतर आने पर होता है, या कानके पीछेसे आरम्भ होता है जहाँ त्वचाकी दो परतें प्रायः एक दूसरेको छूती रहती हैं और इसलिये आर्द्र रहती हैं, या कानके भीतर से आरम्भ होता है और बाहर तक आ जाता है। कानकी पीछेकी त्वचा अकसर फट जाती है और उसमें जीवाणु प्रवेश कर जाते हैं। पीड़ा भी बहुत होती है। जब रोग ज़ोर पकड़ता है तो कान बहुत सूज आता है। कान पर मांस बहुत कम रहता है। इसलिये कानके सूजने पर बड़ी पीड़ा होती है। मैदे और बोरिककी ठंढी पुलटिस, बोरिक या मरक्यूरिक परक्लोराइडका फीका लोशन (फटे स्थान पर सिलवर नाइट्रेटका घोल), अन्तमें लैसरका पेस्ट (Lassar's paste), जिसमें ज़िंक ऑक्साइड, स्टार्च पाउडर, लैनोलिन और वेसलिन बराबर-बराबर मात्रा में रहते हैं, उपयोगी सिद्ध होगा। सिलवर नाइट्रेटका घोल ५ से १० प्रतिशतका हो। जब शोथ मिट चले तब फटे स्थानोंको इससे रंग देनेसे वहाँ पपड़ी-सी बन जाती है और जीवाणुओंका भीतर घुसना कठिन हो जाता है। लैसर्स पेस्टमें आउंस पीछे २ ग्रेन गन्धक भी मिला रहे तो अच्छा। रोगके अच्छा हो जाने पर भी कुछ समय तक दवा होती रहनी चाहिये। कानके भीतर उकवथ हो तो लोशनोंसे तर रुईसे कानको बन्द करना चाहिये। जब मरहम लगाना हो तब भी ऐसा ही करना चाहिये। उकवथ होने पर कभी सूखा पाउडर कानमें न डालना चाहिये, क्योंकि ऐसा करनेसे चेप और पाउडरसे ऐसी कड़ी पपड़ी बनती है कि कान सदाके लिये खराब हो जा सकता है।

चेहरे पर उकवथ—पलकों पर उकवथ हो जानेसे साधारण लक्षणोंके अतिरिक्त पलकें बहुत सूज भी आती हैं, यहाँ तक कि सुर्खबादा (erysipelas) का सन्देह होने लगता है। चेहरे पर चाहे कहीं भी उकवथ हो, बड़ी खुजली होती है। पहले लोशन (कैलामिन, या लेड सब-ऐसिटेट, या मरक्यूरिक परक्लोराइड का) और रोगके शांत हो जाने पर लैसर्स पेस्ट उचित है। रोगी तेज़ धूप, ठंढी हवा, लू आदिसे बचा रहे। बच्चोंके चेहरे पर उकवथ होने पर अच्छा होनेमें बड़ा समय लगता है। दाँत निकलने, ज़रा-सी बदहज़मी, ठंढी हवा, आगकी गरमी, लू, झारदार तेल या उबटनसे रोग बार-बार उभड़ पड़ता है। पहले स्टार्च और बोरिककी ठंढी पुलटिस, फिर कैलामिन लोशन, और अन्तमें लैसरका पेस्ट या ज़िंक ऑइंटमेंट ठीक रहता है। डाक्टर कुछ खानेकी दवा भी दे सकता है (जैसे

कलॉयड गन्धक, आदि)। लोगोंका अंधविश्वास है कि दवा लगाने और दवा खानेसे रोग भीतर घुस जा सकता है। यह गलत है। असली बात यह है कि किसी अन्य तीक्ष्ण रोग (खसरा—मीज़ल्स—या न्यूमोनिया) होनेसे उकवथ मन्द पड़ जाता है, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि उकवथके दबनेसे ये रोग उभड़ पड़ते हैं।

काँखका उकवथ—काँखका उकवथ साधारणतः बड़ोंको होता है। काँखमें पसीना आदि बहुत हुआ करता है और वहाँ वसा भी अधिक निकलती रहती है। इसलिये वहाँ उकवथ शीघ्र होता है। बाल कटा कर तथा स्टार्च और बोरिककी ठंढी पुलटिस बाँध कर स्थानको स्वच्छ कर डालना चाहिये। पीछे मरक्यूरिक बाइक्लोराइड लोशन या कलॉयड गन्धकके लोशनकी पट्टी बाँधनी चाहिये।

कुचाग्र (ढेपुनी) का उकवथ—यह अलवाँती (दूध पिलाने वाली) स्त्रियोंको हो जाता है। साधारणतः कारण यह होता है कि दूध लगा रह जाता है या निकलता रहता है और सड़ जाता है। परन्तु रोग अन्य स्त्रियोंको भी हो सकता है। यदि शरीरमें कहीं अन्यत्र खजुली (scabies) का रोग हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। कुचाग्रका उकवथ जब तक दूध पिलाना बन्द नहीं किया जाता साधारणतः अच्छा नहीं होता। यदि दूध न पिलाया जाय तो पहले स्टार्च और बोरिककी ठंढी पुलटिस बाँध कर पपड़ी छुड़ा डालनी चाहिये। फिर लैसरका पेस्ट २ प्रतिशत गन्धक डालकर लगाना चाहिये। जब-जब मरहम लगाना हो तो पहले लगे मरहमको ऑलिव ऑयल लगा कर छुड़ा डालना चाहिये।

स्तनके नीचे उकवथ—यह साधारणतः मोटी स्त्रियोंको होता है। जहाँ त्वचाकी दो परतें एक दूसरे पर पड़ती हैं वहाँ पसीना, गन्दगी, भीतर से निकला वसा आदि रह जाता है और उसीसे त्वचा फट जाती है, या ऊपरी सतह नरम पड़ जाती है, और जीवाणु घुस जाते हैं, जिससे उकवथ हो जाता है। पहले स्टार्च और बोरिककी ठंढी पट्टी बांध कर उस भागको स्वच्छ कर लेना चाहिये, फिर कैलामिन लोशनसे तर लिंट (पट्टी) रखनी चाहिये। फटे स्थान पर ५ प्रतिशत सिलवर नाइट्रेट घोलसे रँगना चाहिये। अंतमें ज़िंक ऑक्साइड पड़ा मरहम लगाना चाहिये। अच्छे हो जाने पर भी कुछ समय तक मरहम लगाते रहना चाहिये। फिर उस भागको सदा स्वच्छ रखना चाहिये और कोई उपयुक्त खनिज पाउडर (जैसे फ़ुलर्स अर्थ (Fuller's earth) लगाते रहना चाहिये।

गुदा-स्थान पर उकवथ—गुदा-स्थान पर उकवथ हो जाय और कोष्ठबद्धता, बवासीर (अर्श), केंचुआ या डायाबिटीज़ हो तो इनकी भी चिकित्सा होनी चाहिये। इस स्थान पर उकवथ होनेसे बड़ी खुजली मचती है। रोग आस-पासकी त्वचा पर फैल जाता है। पूर्ण स्वच्छताकी आवश्यकता है। प्रत्येक बार मल त्याग करने पर साबुन और पानीसे गुदा-स्थानको धोना चाहिये और फिर मरक्यूरिक बाइक्लोराइड लोशनमें तर की हुई रुईसे पोंछना चाहिये (४००० भाग पानीमें एक भाग बाइक्लोराइड रहे)। यह लोशन कीटाणुनाशक ही नहीं है, खुजलीको भी शांत करता है। त्वचाकी परतें जहाँ एक दूसरे पर पड़ें वहाँ कैलामिन लोशनसे तर पट्टी (लिंट) रखनी चाहिये और पट्टीको दिनमें कई बार बदलना चाहिये। कहीं त्वचा फटी हो तो ५-१० प्रतिशत सिलवर नाइट्रेट घोलसे वहाँ रँगना चाहिये। अन्तमें मरहम लगाया जा सकता है। बराबर खुजाते रहनेसे वहाँकी त्वचा अकसर चमड़ेकी तरह कड़ी पड़ जाती है। तब डाक्टर लोग कास्टिकसे दाग कर और छुरीसे छिल कर चिकित्सा आरंभ करते हैं। एक्स-रश्मियोंसे भी लाभ होता है।

योनि पर उकवथ—स्त्रियोंकी योनि पर उकवथ होने से बड़ी तकलीफ होती है। यह रोग बहुधा गर्भाशय (uterus) के खिसकने, या श्वेत प्रदर या ग्लाइकोसूरिया (glycosuria) के साथ होता है। इनमेंसे कोई रोग हो तो उसकी भी चिकित्सा करनी चाहिये। रोगिणीको पूर्ण विश्राम मिलना चाहिये। रोगग्रस्त भागको पूर्णतया स्वच्छ रखना चाहिये। इसके लिये १ भाग मरक्यूरिक बाइक्लोराइड और ६००० भाग पानीके लोशनसे धोना चाहिये। जहाँ त्वचाकी परतें एक पर एक पड़ें वहाँ पतले कैलामिन लोशनसे तर पट्टी (लिंट) रखनी चाहिये।

सर्वत्र कैलामिन लोशन लगाना चाहिए। कहीं घाव हो गया हो तो १ या २ प्रतिशत सिलवर नाइट्रेटके घोलसे उसे रंग देना चाहिए। मरहम तभी लगाना चाहिए जब रोग शांत हो जाय। एक प्रतिशत जिंक ऑयंटमेंट ठीक होगा। डाक्टर कई तरहका मरहम दे सकता है और पीनेकी दवा भी दे सकता है। कोष्ठबद्धता, अर्श (बवासीर) केंचुआ आदि हो तो उसकी भी चिकित्सा करनी चाहिए।

हाथ और पैर पर उकवथ—हाथ या पैरके तीच्ण उकवथमें वह अंग सूज आता है और दाने तथा स्फोटसे शीघ्र ही पीब आने लगता है। दानों और स्फोटोंको फोड़ डालना चाहिए। रोगग्रस्त अंगको गरम बोरिक लोशनमें १५-२० मिनट तक रखना चाहिए और तब उन पर बोरिक लोशनकी पट्टी बाँध देनी चाहिए। प्रातः काल और संध्या समय ऐसा ही करना चाहिए। जब प्रदाह (सूजन) कम हो जाय तो बोरिक लोशनके बदले फीके लिकर कारबोनिस डिटरजेन्स (liquor carbonis detergens) से प्रतिदिन धोना चाहिए (एक भाग लिकर, ३०० भाग जल रहे) और लैसरका पेस्ट लगाना चाहिए।
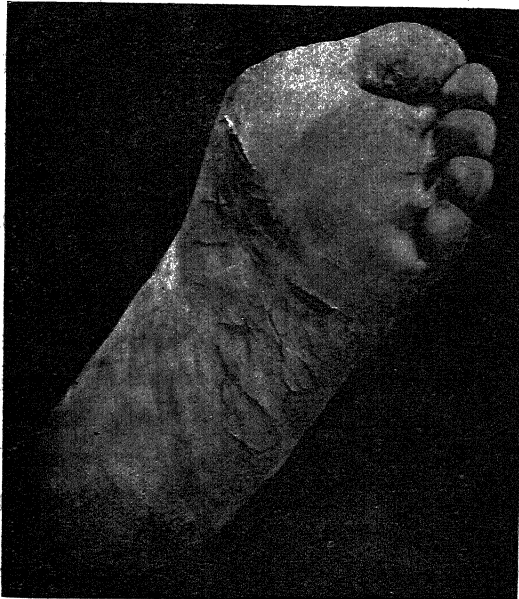
पैरका जीर्ण उकवथ।

जब घाव भर जाय तो अधिक तेज मरहम लगाये जा सकते हैं। रोग अच्छा हो जाने पर भी कोई हलका मरहम, या ग्लिसरिन और गुलाबजल, लगाते रहना चाहिए। ग्लिसरिन और गुलाबजलसे त्वचा नरम होती है।

हाथ और पैर का जीर्ण उकवथ—हाथके जीर्ण उकवथमें गदोरीकी त्वचा कड़ी हो जाती है और फट जाती है। पैरके जीर्ण उकवथमें तलवेकी त्वचामें ये ही लक्षण हो जाते हैं। साथ ही अन्यत्र भी उकवथ रह सकता है। हाथ-पैरके जीर्ण उकवथको लिकर कारबोनिस डिटरजेन्स (ऊपर देखो) के लोशनसे धोना चाहिए, परन्तु घोलको धीरे-धीरे तेज कर देना चाहिए (१ भाग लिकर और ६० भाग पानी तक)। मरहम भी साधारणसे अधिक तीव्र रहे। एक्स-रश्मियोंसे भी लाभ होता है।

कुछ साधारण बातें—उकवथकी चिकित्सामें समय लगता है। इसमें किसी अनुभवी चिकित्सकके हाथ अपनेको सौंप कर धैर्य रखना चाहिए। चिकित्सा बदलते रहनेसे हानि होती है। जब कभी एकाएक चिकित्सा बदली जाती है तो रोग कुपित हो जाता है।

उकवथके रोगमें साबुन और पानीका बहिष्कार न करना चाहिए; वस्तुतः ये दोनों लाभ पहुँचाते हैं क्योंकि इनके प्रयोगसे भूसी, चेप आदि दूर होता है, परन्तु पानी शुद्ध हो (खारा न हो) और साबुन क्षाररहित और सुगन्धरहित रहे। यदि साबुन लगानेसे रोग बढ़ता जान पड़े तो बादामकी खली या बेसनका व्यवहार किया जा सकता है।

हवा-पानी बदलनेके लिये किसी अधिक स्वास्थ्यप्रद स्थान या पहाड़ पर जानेसे भी बहुधा लाभ होता है।

कीटाणुजनित उकवथोंमें विशेष वैकसिनों (vaccines) के इन्जेक्सनसे भी लाभ होता है।

उखड़ना (dislocation) — अस्थियों (हड्डियों) की किसी संधि (जोड़) पर हड्डियोंके इधर-उधर खिसक जाने या अपनी साधारण स्थितिसे हट जानेको उखड़ना या संधिभंग कहते हैं। लोग कहते हैं कि हाथ उखड़ गया है, या पैर उखड़ गया है।

संधिभंगका वर्णन पहले आकस्मिक चिकित्साके संबंधमें किया जा चुका है (देखो आकस्मिक चिकित्सा)।

उड़नशील तेल (essential oil)—ऐसे तेलोंको जो गैस बन कर उड़ जाते हैं उड़नशील तेल कहते हैं। बहुधा इनमें सुगंधि रहती है। ऐसा तेल बहुतसे फूलों और पौधोंमें होता है। वस्तुतः फूलों और पौधोंकी गंध इन्हीं तेलोंके कारण होती है। ये तेल चिकित्सामें अत्यन्त उपयोगी होते हैं। चिकित्साकी दृष्टिसे ऐसे तेल कई समूहोंमें बाँटे जा सकते हैं। उदाहरणतः तारपीन, कपूर आदिका प्रयोग इस कारण होता है कि त्वचा पर उनका विशेष प्रभाव पड़ता है। एक दूसरे समूहमें वे उड़नशील तेल हैं जो वृक्क (गुरदे) को उत्तेजित कर सकते हैं, जैसे कोपाइवा (copaiba), चन्दनका इत्र (oil of sandal wood), कबाबचीनी (cubebs) इत्यादि। कुछ उड़नशील तेल पाचन शक्ति बढ़ाते हैं, जैसे पिपरमिंट (peppermint), सौंफ, अदरक, मिरचा, जायफल, दारचीनी आदिमें रहने वाले उड़नशील तेल। ऐसे उड़नशील तेल भी हैं जो अपने विचित्र गन्धके कारण हिस्टीरियाके रोगमें दिये जाते हैं, जैसे हींग और वलेरियन (valerian)।

उत्तेजक (stimulant)—ऐसी ओषधि या अन्य वस्तुको उत्तेजक कहते हैं जिससे शरीरकी क्रियामें वृद्धि हो। ऐसी ओषधि या वस्तुको जो शरीरके किसी अंग को कुपित करे प्रकोपक (irritant) कहते हैं। बहुतसे हिन्दी लेखक प्रकोपक शब्दके बदले बहुधा उत्तेजक लिख जाते हैं, परन्तु यह अनुचित है। उदाहरणतः, यदि चूनेके सम्पर्कमें बहुत दिनों तक रहनेसे किसीको उकवथ हो जाय तो चूनेको प्रकोपक कहना चाहिए, न कि उत्तेजक। ऐसी ओषधिको जो शरीर पर धीरे-धीरे प्रभाव डाले और उसकी क्रियाशीलतामें धीरे-धीरे वृद्धि करे शक्तिवर्धक ओषधि (tonic, टॉनिक) कहते हैं। उत्तेजकका परिणाम शीघ्र ही दिखलाई पड़ना है। मद्य (शराब) थोड़ी मात्राओंमें उत्तेजकका काम करता है, परन्तु अधिक मात्रामें यह मस्तिष्क-केन्द्रोंका दमन करता है। अमोनिया, कड़ी चाय और कहवा (कॉफ़ी) भी उत्तेजकका काम करते हैं। चाय और कहवा पी जाती है। स्मेलिंग साल्ट (smelling salts) सूँघा जाता है। इससे अमोनिया गैस निकलती रहती है। सेंकना त्वचाके लिए उत्तेजकका काम करता है। कई उत्तेजकोंमें शरीरके केवल एक अंग पर प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतः, हृदय, फेफड़ा, पाचन-शक्ति, वृक्क (गुरदा), मस्तिष्क, सुषुम्ना, त्वचा आदि के लिए अलग-अलग उत्तेजक प्रयुक्त होते हैं, परन्तु कुछ उत्तेजकोंसे एकसे अधिक अंगों पर साथ ही प्रभाव पड़ता है।

उदरकला-प्रदाह (peritonitis)— पेट की भीतरी सतहको उदरकला कहते हैं। इस कलाके प्रदाह (inflammation) को उदरकला-प्रदाह कहते हैं। यह प्रदाह कई कारणोंसे उत्पन्न हो सकता है और इसकी उग्रतामें भी बड़ी विचित्रता हो सकती है। प्रदाह उदरकलाके केवल एक अंशमें हो सकता है या सारी उदरकलामें। उदरकला-प्रदाह बहुधा आमाशयकला क्षत (gastric ulcer), आंत्रिक ज्वर (टाइफ़ॉयड), पथरी (gall-stones), या ऐसे किसी रोगसे आरम्भ होता है जिसमें आमाशय, अँतड़ी, पित्ताशय या मूत्राशयमें छेद हो जाता है और इस प्रकार सड़ा-गला अंश उदरमें निकल पड़ता है। ऐसा भी हो सकता है कि पेटके भीतर कोई फोड़ा या अर्बुद फूट पड़े और उससे उदरकला-प्रदाह आरम्भ हो जाय। उपांत्र-प्रदाह (अपेंडिसाइटिज़) से भी उदरकला-प्रदाह बहुधा हो जाता है। कभी-कभी उदर-ग्रन्थियोंमें क्षयरोग रहने पर अंतमें तीव्र (acute) उदरकला-प्रदाह हो जाता है।

लक्षण—पहले पेटमें बड़ी पीड़ा होती है और वमन होता है। तापक्रम १०४ या १०५ डिगरी तक पहुँच जाता है। कुछ अतिसार (पेटझरी) भी आरम्भमें हो सकता है, परन्तु शीघ्र ही कोष्ठबद्धता (कब्ज़) उत्पन्न हो जाता है। रोगी चित (पीठके बल) लेट कर पैर सिकोड़ लेता है और साँस बहुत ओछी चलती है (अर्थात् साँस साधारणकी तरह गहरी नहीं चलती), पेट फूल आता है और ज़रा भी छूनेसे पीड़ा होती है। जीभ पर सफेद काई जम जाती है और जीभ सूखने लगती है। चेहरा तन जाता है और रोगी बहुत चिंतित जान पड़ता है।

इस लोकका अन्त

[छोटू भाई सुथार, बी० एस-सी०, विशारद]

कल जो सृष्टि थी वह आज नहीं है और आगामी कलकी सृष्टि आजकी-सी न होगी। आज जिसका अस्तित्व है कल उसका नाश होगा और जिसकी कल्पना भी नहीं है वैसी अनेक बातें भविष्यमें सत्य सिद्ध बन पड़ेंगी। पृथ्वीपरके जीवोंका जन्म-मृत्यु एक सुनिश्चित तथ्य है। जिसका जीवन है उसका अंत भी है। पृथ्वी और जीवोंका अस्तित्व किसी घटनाचक्रके अधीन है—कोई जल्दी लुप्त होता है तो कोई कालांतरके बाद। मृत्यु या अस्तित्वका नाद हमेशा गूँजता ही रहता है।

पृथ्वीपर आजकल जो कुछ चराचर सृष्टि है वह आँखों देखी सत्य घटना है। पृथ्वी पहले कैसी थी, उस वक्तकी सृष्टि क्या थी, इन तथ्योंसे आज हम भली भांति परिचित हैं। भूगर्भशास्त्रियों ने पृथ्वीके प्रस्तरोंका इतिहास खोज निकाला है और पृथ्वीके आज तकके विकासकी कड़ियोंको श्रृंखलाबद्ध किया है। पृथ्वीका भी लय होगा इसमें सन्देह नहीं है, किन्तु वह कैसे होगा इस प्रश्न पर अनेक प्रकारके तर्क-वितर्क होते आये हैं। पुराणकारों नें भी सृष्टि और प्रलयका उल्लेख किया है। अब देखें कि आधुनिक वैज्ञानिक इस समस्याको कैसे सोचते हैं।

सबसे पहली और सर्वसामान्य बात यह है कि पृथ्वीकी सकल जीव-सृष्टि सूर्यकी बदौलत ही है। सूर्य ही हमारा पालनकर्ता है। जीनेके लिये हमें जितनी चीजें चाहिये सूर्य द्वारा ही मिलती रहती हैं। अगर सूरज ठंढा पड़ गया तो? तब सारी सृष्टि विलीन हो जायगी और इसके प्रत्यक्ष प्रमाण बहुत सूक्ष्म रूपमें हम सूर्य-सर्व-ग्रहणके समय देख भी चुके हैं। दो मिनटकी सूर्य तेजकी गैरहाजरी पृथ्वी पर कैसी आफ़त ढा देती है।

सूर्यके एकाएक ठंढा हो जानेका अभी कोई डर नहीं है किन्तु रफ़्ता-रफ़्ता वह ठंडा होता जा रहा है और एक दिन वह बिल्कुल ठंढा पड़ जायगा। और तब या उससे पहले हमारी पृथ्वी कभीकी ख़तम हो चुको होगी।

जीनेके लिये हमें प्राणवायु (आक्सीजन) चाहिये। पर्वतकी ऊँची चोटियों पर रहनेवालोंको हर एक साँसमें हमसे कम प्राणवायु मिलती है। और यह भी सत्य है कि पृथ्वीपरकी जीव-सृष्टि अपने आपको परिस्थितिके अनुकूल बनाये रखनेकी चेष्टा करती है। पृथ्वीपरकी प्राणवायुकी मात्रा आधा कीजिये फिर भी जीवन उसके अनुकूल हो जायगा। उससे भी कम कीजिये, जीवन उससे भी अनुकूल होनेका प्रयत्न करेगा। जब प्रतिकूल अवस्था होगी तभी जीवनका अन्त होगा।

हम देखते हैं कि दियासलाई, कोयला, गैस, इत्यादि को जलानेमें और साँस लेनेमें प्राणवायु खर्च होती रहती है। पृथ्वीकी जीव-सृष्टि हमेशा इस अमूल्य निधिको घटाती रहती है। अगर पृथ्वीपर वृक्ष-सृष्टि न होती तो शायद इस धनका और पृथ्वीका कबका नाश हो चुका होता। वृक्ष इत्यादिकी सहायतासे हम प्राणवायुको वापिस पा जाते हैं।

ये सभी बातें समझी जा सकती हैं किन्तु टीनके डिब्बों का जंग खा जाना, ऐल्यूमीनियमके बर्तनका काला पड़ जाना, चांदीके धातुओंमें मुरचा लग जाना ऐसी प्रक्रियायें हैं जिनसे प्राणवायुका ह्रास हमेशाके लिये हो जाता है। वैज्ञानिक भाषामें उसे प्राणवायुकी कैद कहते हैं क्योंकि उतना प्राणवायु हमेशाके लिये नष्ट हो जाती है। अब ख़्यालमें आयेगा कि पृथ्वीकी ज़्यादातर प्राणवायु इसी कैदमें है। पर्वतोंमें, कच्ची धातुओंमें, रेतमें, कीचड़में और खुद पानीमें प्राणवायु कैद है। वस्तुओंके जलवायुसे नष्ट होनेमें प्राणवायुका साथ रहता है। इस प्रकार आक्सी-जन सब जगह दिखाई पड़ेगा किन्तु वह श्वासके लिये अनु-पयुक्त है। मंगलमें कुछ ऐसा ही दीखता है। वहाँकी ताम्रवर्ण दुनियामें प्राणवायु सभी जगह है किन्तु कैदकी शोचनीय अवस्थामें।

क्या सूर्यका वायुमण्डल नष्ट हो सकता है? अभी ऐसी सम्भावना नहीं है किन्तु सुदूर भविष्यमें ऐसा होगा। कैसे? सूर्यमें हाइड्रोजन गैस ज़्यादा है। सूर्यस्थित कार्बनको वह हमेशा एक प्रकारकी कार्बोहाइड्रेटमें रूपांतरित करती रहती है। वही नयी गैस बादमें कार्बन, ओषजन (प्राणवायु) और हीलियमके रूपमें फूट पड़ती है। और इस क्रियामें वह उद्जन (हाइड्रोजन) को नष्ट

करती है। सूर्यपर यह प्रक्रियायें चलती रहती हैं और आहिस्ता-आहिस्ता वहाँकी उद्जन कम होती जाती है। सूरजके ताप और प्रकाश इसी उद्जन (हाइड्रोजन) की जलनके परिणाम हैं। उद्जन सूर्य शक्तिकी विकीर्णक है। एक समय ऐसा आयेगा जब सूर्यका हाइड्रोजन-निधि समाप्त हो जायगा।

कई वैज्ञानिकोंका कहना है कि तबसे शक्तिहीन (हाइ-ड्रोजन-हीन) सूर्य संकुचित होता जायगा और उसका तेज मन्द पड़ जायगा। आख़िरमें वह एक बृहत् क्रिया-शून्य गोलेके रूपमें शेष रह जायगा और तब उसके चारों ओर सौर-परिवारके शायद सभी सदस्य आ चिपके होंगे। व्याध या लुब्धकका युगल-तारा एक श्वेत वामन-तारक है। यह है तो यूरेनसके आकारका किन्तु इसका वज़न बहुत भारी है। उसका घनत्व पानीके घनत्वसे दो लाख (२,००,०००) गुना है। सूर्यकी और अन्य तारोंकी वैसी दशा होगी ऐसा माना जाता है।

सूर्य इस दशापर पहुँचनेके पहले बहुत तेजस्वी हो जायगा। बुझता दीपक अन्तिम प्रकाशका रोब जमायेगा। जैसे-जैसे सूर्यका हाइड्रोजन कम होता जायगा, वैसे-वैसे एक समय वह अत्यन्त प्रज्वलित हो उठेगा और दूसरे ही क्षण शक्तिहीन निश्चेष्ट। एक वैज्ञानिक ने हिसाब लगाया है कि तब सूर्य आजसे १०० गुना अधिक प्रकाशित रहेगा। डरनेकी बात नहीं है—सूर्यके अन्तिम श्वासकी तिथि १०,०००,०००,००० ईस्वी सन् है। और उससे बहुत पहले शुक्र इत्यादिकी जीव सृष्टि नष्ट हो चुकी रहेगी।

लेकिन अत्यन्त गरमीका एक दूसरा पहलू भी है। सर जेम्स जीन्सका कहना है कि जैसे-जैसे सूर्य ठंढा पड़ता जायगा वैसे-वैसे यह पृथ्वीसे दूर हटता जायगा। उसका प्रकाश पृथ्वीको कम मिलता जायगा। अरबों वर्षोंके बाद पृथ्वीका उष्णतामान आजकी अपेक्षा बहुत कम हो जायगा। सम्भव है उस समय भी सृष्टि फलती फूलती हो। किन्तु उसके बाद जीवन प्रतिकूल होता जायगा और अन्तमें नष्ट हो जायगा। तब पर्वत खड़े स्मारक होंगे और नदी-झीलों का पानी जमकर उनके प्रतिस्पर्शी पठार बनेगा। शायद ऐसा भी हो कि मनुष्य तब तक अपने बुद्धिबलसे जिन्दा रह सके और हमारी कल्पनाकी कठिन परिस्थितियों (रोग, मृत्यु) पर विजयी हो। कौन जाने कलकी।

वही वैज्ञानिक दूसरी कल्पना करता है। वह कहता है कि शायद पृथ्वीका अन्त इससे भी पहले हो। कोई दुर्घटना घट जाय और हमारी पृथ्वीकी जान जोखिममें पड़ जाय। सूर्य कोई दूसरे तारेसे टक्कर खा जाय या कोई बड़ी उल्का पृथ्वीसे भेंट कर जाय; तब हमारे बचनेकी बात तो दूर रही, पृथ्वीके अस्तित्वका ही पता न होगा।

चित्र १—तारोंकी रगड़।

एक और भी नज़ारा सोचने योग्य है। आजकल अनेक विस्फोटक (exploding) तारोंकी खोज हुई है। ये तारे बाहरी आकाशगंगाकी नीहारिकाओंमें भी दिखाई पड़े हैं। वे एकाएक अनेक गुने तेजस्वी हो जाते हैं और बादमें लापता रहते हैं। इनको महानव (Super Novae) तारे कहते हैं। हमारे आकाशगंगामें अनेक नवीन (Novae) तारक है जो इसी भांति चमक कर फिर सामान्य तारक बन जाते हैं। दोनों प्रकारके अनेक तारोंके अस्तित्वका पता लगाया गया है और उनके अध्ययनसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि हर एक बाहरी नीहारिकामें ३०० से ६०० वर्षोंमें कोई न कोई तारा इसी नवीन रूपको प्राप्त करता है। हमारी इसी आकाशगंगामें हर साल २० सामान्य नवीन तारकोंका विस्फोट होता रहता है। हिसाबसे मालूम हुआ है कि आकाशगंगाके अरबों सितारोंको उनके लम्बे जीवन-पथमें पारी-पारीसे एक दफ़ा हरेकको अवश्य नवीन तारक होना पड़ता है। हमारा सूर्य भी अपवाद नहीं हो सकता। किन्तु अभी ऐसा होनेमें देर है।

ये सितारे कैसे विस्फोटक हो जाते हैं उसका खास पता नहीं लगा है, फिर भी इतना अवश्य है कि सुदूर

विश्वमें हमसे अज्ञात अनेक घटनायें हो रही हैं जिन्हें समझना अभी शायद हमारे लिये मुश्किल है।

उल्काओंका उल्लेख भी आवश्यक है। बालूके कण-जैसी, और इससे बढ़ कर बड़ी प्रचण्ड शिलायें-जैसी अनेक उल्कायें सूर्यके इर्द-गिर्द परिकमा करती रहती हैं। पृथ्वी जब उनकी कक्षामें होकर गुजरती है तब उल्कायें पृथ्वीके वायुमण्डलमें रगड़ खाकर प्रकाशित हो उठती हैं। तब वे वेगसे पृथ्वी पर आ गिरती है। सामान्य अनुभव है कि ऊँचेसे पड़नेवाली छोटी-सी कंकड़ी भी हमारा सर तोड़ देती है। उल्काओंकी अपनी गति होती है और साथ-साथ उन पर पृथ्वीका गुरुत्वाकर्षण भी होता है। फलस्वरूप अनेक बड़ी उल्कायें पृथ्वी पर ऐसे धमाकेके साथ आ गिरती हैं कि तबाही आ जाती है। अमरीकाके ऐरिझोना विस्तारमें अनेक वर्ष पहले एक बड़ी उल्का गिरी थी। उसकी आवाज़ ५०० मील तक सुनाई पड़ी थी; अनेक वृक्षोंका नाश हो गया था और उल्काके नीचे १ मील व्यासकी भूमि नीचे धँस गई थी। इससे जो नुकसान हुआ होगा उसका अंदाज़ा लगाना मुश्किल है।

सिद्धान्तसे यह प्रतिपादित करनेमें आता है कि वह प्रतिदिन हमसे दूर हटता जाता है। ठीक है, हम बलासे छूटे। किन्तु सिद्धान्त यह भी कहता है कि बादमें वही चन्द्र पृथ्वीकी ओर खिंच आयेगा और धीरे-धीरे वह पृथ्वीके नज़दीक आता जायगा। उसकी पृथ्वीके साथ टक्कर न होगी। चन्द्रका पृथ्वीके साथ टक्कर न लेना उसके टक्कर लेनेसे भी ज़्यादा खतरनाक है। पृथ्वीसे कुछ दूर रहते ही ज्वार-भाटेके बल-दबावसे चन्द्रके छोटे-छोटे टुकड़े हो जायेंगे। शनिके चारों ओर जैसे वलय हैं वैसे ही पृथ्वीके चारों ओर चन्द्र-कणोंके वलय हो जायेंगे।

बादमें छोटे-छोटे टुकड़े पृथ्वी पर गिरना आरम्भ करेंगे। समझ लीजियेकी तब नये प्रकारका चन्द्र-उल्कापात होगा और वह भी ज़ोरोंसे। साथ-साथ चन्द्रके इतने निकट होनेकी वजहसे पृथ्वीमें बड़े जोरोंका ज्वार-भाटा आयेगा। वह इतना प्रचण्ड रहेगा कि थोड़े ही दिनोंमें जमीन टूटने लगेगी। पानीके साथ, धरती भी, असमान रूपमें आकर्षणका भोग बनेगी और अनुचित दबावसे पृथ्वीमें दरारें पड़ जायँगी। पृथ्वीकी पपड़ी फट जायगी, आग्नेय पर्वत

चित्र २—उल्काके नीचे १ मील व्यासकी भूमि-नीचे धँस गयी।

कुछ साल पहले तिहाई मील व्यासकी एक बड़ी उल्का चंद्रसे दुगने अंतर पर आ गयी थी। पृथ्वी पर यह गिरी होती तो किसी भी आबाद बस्तीको वह चन्द मिनटोंमें ही खतम कर देती। माना जाता है कि भारी उल्कापातसे भी पृथ्वीकी जीव-सृष्टिका सहजमें ही नाश हो सकता है।

और चन्द्र? उसका सामीप्य भी खतरेसे खाली नहीं है। अभी वह २४०,००० मीलकी दूरी पर है। एक

और भूकम्प सारी पृथ्वी पर फैल जायँगे और इससे उत्पन्न धूल, दूषित वायु और गरमीसे बचे-खुचे जीवनका नाश हो जायेगा।

ये सभी कल्पनाकी नींवपर दीवारें हैं। हो सकता है कि इसी प्रश्नके जीव-विज्ञान और अन्य विज्ञानोंके और भी पहलू हों। और तब शायद चन्द्रके दूर जानेकी कल्पना कोरी कल्पना ही ठहरे। विज्ञानकी कसौटी जिसको

शुद्ध बतावे वही अन्तिम सत्य होगा। इस समय ये सभी अनुमान ही अनुमान हैं।

चित्र ३—शनि और वलय

पञ्चाङ्ग-शोध

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०

[सरस्वतीसे उद्धृत]

[बाबू सम्पूर्णानन्द जीके प्रस्ताव पर काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने एक पञ्चाङ्ग-शोध-समिति बनाई है जिसकी एक बैठक २१-११-४२ को हुई थी। बैठकमें सर्वसम्मतिसे निश्चय हुआ कि इस सम्बन्धमें निम्नलिखित प्रश्न समितिके सदस्यों तथा अन्य ज्योतिष-प्रेमी विद्वानोंका मत जाननेके लिए उनके पास भेजे जायँ—

पञ्चाङ्ग-शोधनका स्वरूप-निर्णय; अर्थात् पञ्चाङ्गमें किस प्रकारके परिवर्तन हों—

(क) पञ्चाङ्ग दृश्य-गणनानुसार बनना चाहिए या

(ख) प्राचीन गणनानुसार?

(ग) यदि प्राचीन गणनानुसार बने तो किस सिद्धान्तके अनुसार और क्यों, या

(घ) यदि आपके मतानुसार किसी उपायान्तरका अवलम्बन करना ठीक हो तो उसका क्या स्वरूप हो?

(ङ) यदि दृश्य-गणनानुसार पञ्चाङ्ग बनेंगे तो उनसे व्रतादिक धार्मिक कृत्योंके सम्बन्धमें अथवा धर्मशास्त्रियोंकी दृष्टिसे जो बाधायें उपस्थित होंगी, उनके निराकरणके लिए आपकी सम्मतिमें क्या उपाय होना चाहिए?

उक्त समितिके एक सदस्य डाक्टर गोरखप्रसाद ने इन प्रश्नोंका उत्तर ऐसे सरल और स्पष्ट ढङ्गसे लिखकर हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजा है कि वह हमारे पाठकोंको अत्यन्त रोचक प्रतीत होगा। इसीसे हम उसे यहाँ प्रकाशित करते हैं—सम्पादक, सरस्वती

एक बरसातसे दूसरी बरसात तकके समयको वर्ष कहते हैं। वर्ष और वर्षामें घनिष्ठ सम्बन्ध है; एक शब्द दूसरेसे निकला है। अब्द, वत्सर, संवत्सर, शरद् ये सब पर्यायवाची शब्द भी ऋतुओंसे सम्बन्ध रखते हैं। अँगरेज़ीमें भी ऋतुओंसे वर्ष-मान बतानेकी प्रथा प्रचलित है; उदाहरणतः, बोलते हैं 'ए चाइल्ड आफ़ टेन समर्स'।

एक बरसातसे दूसरी बरसात तक या एक शरद् ऋतुसे दूसरी शरद् ऋतु तकके वर्षको सायन वर्ष (ट्रापिकल इयर) कहते हैं। सूक्ष्म परिभाषा यों दी जा सकती है कि सूर्यके एक उत्तरायण-आरम्भसे दूसरे उत्तरायण-आरम्भ तकके कालको सायन वर्ष कहते हैं। (सूर्यके उत्तरकी ओर चलनेको उत्तरायण कहते हैं।)

परन्तु वर्षकी नाप दूसरे प्रकारसे भी हो सकती है। तुलसीदास ने लिखा है—"उदित अगस्त्य पन्थ-जल सोखा"। इस प्रकार अगस्त्य या अन्य किसी तारेके एक उदयसे दूसरे उदय तकके कालको भी हम वर्ष कह सकते हैं। इस वर्षको ज्योतिषमें नाक्षत्र वर्ष (साइडीरियल इयर) कहते हैं। सूक्ष्म परिभाषा यों दी जा सकती है कि किसी तारेसे चलकर, एक चक्कर लगाकर, उसी तारे तक सूर्यके फिर पहुँच जानेके कालको एक नाक्षत्र वर्ष कहते हैं।

दुर्भाग्यकी बात है कि नाक्षत्र वर्ष और सायन वर्ष ये दोनों बराबर नहीं होते। ये मनुष्यकी गणनाके कारण भिन्न नहीं हैं; सूर्यकी गति ही ऐसी है कि दोनोंमें अन्तर है। अन्तर कम है (कुल २० मिनट), परन्तु यदि बराबर एक ही प्रकारके वर्षका व्यवहार करते रहें तो प्रति-वर्ष २० मिनटका अन्तर पड़ते-पड़ते एक हज़ार वर्षोंमें १४ दिनका अन्तर पड़ जायगा।

अब प्रश्न यह है कि प्रतिदिनके व्यवहारके लिए हम सायन वर्ष लें कि नाक्षत्र वर्ष। यदि हम सायन वर्ष लेते हैं तो केवल यही एक असुविधा रहती है कि धीरे-धीरे वर्षारम्भके दिन सूर्यके निकट पड़नेवाले तारे बदलते जायँगे; अर्थात् सूर्य किस नक्षत्रमें है इसमें धीरे-धीरे गड़बड़ी पड़ती जायगी। उदाहरणतः, यदि आज हम मकर-संक्रान्तिसे वर्ष आरम्भ करें तो सायन-वर्षके व्यवहार करते रहनेसे आजसे कोई दो हज़ार वर्षों में धनुकी संक्रान्तिसे वर्षका आरम्भ होने लगेगा।

परन्तु यदि हम नाक्षत्र वर्ष लें तो वर्षके हिसाबसे ऋतुओंमें धीरे-धीरे गड़बड़ हो जायगा। उदाहरणतः, यदि हम आज ग्रीष्म ऋतुसे वर्षका आरम्भ करें तो आजसे दो हज़ार वर्षमें वर्षका आरम्भ शुरू बरसातमें पड़ेगा। यदि इस समय सावन-भादोंमें पानी बरसता है तो आजसे कोई ६००० वर्षमें सावन-भादोंके महीने उस समय पड़ेंगे जब शरद् ऋतु रहेगी और कड़ाकेकी सरदी पड़ती रहेगी।

सुदूर प्राचीन कालमें जब ज्योतिषका ज्ञान इतना अच्छा नहीं था जितना पीछे हुआ, लोग यही नहीं जानते थे कि सायन और नाक्षत्र वर्षोंमें कोई अन्तर है। इसलिए कभी वे बरसातसे और कभी तारेसे वर्ष जोड़ा करते थे। भारतीय ज्योतिषियों ने वर्षका जो मान अपनाया है वह न तो ठीक सायन है और न ठीक नाक्षत्र; क्योंकि तब समयको ठीक-ठीक नापनेका अच्छा साधन नहीं था। परन्तु उनका वर्षका मान लगभग नाक्षत्र मान है।

प्रश्न अब यह है कि वर्षमानके चुनावमें हम नक्षत्रोंका त्याग करें कि ऋतुओंका। साधारण पुरुष चाहे वह ज्योतिष न भी जानता हो, कम-से-कम इतना तो कह ही सकता है कि उसे यह पसन्द है कि सावन-भादों सदा बरसातमें पड़ा करें या यह कि वे धीरे-धीरे जाड़ेकी ओर खिसकते जायँ। जबसे भारतीय ज्योतिषमें नाक्षत्र और सायन वर्षों पर विचार हो रहा है (अर्थात् आजसे कोई डेढ़ हज़ार वर्ष पहलेसे) अब तक लगभग २२ दिनका अन्तर पड़ चुका है। वस्तुतः इन दिनों भादोंमें वह ऋतु रहती है जो कालिदासके समय कुवारमें रहा करती थी। खिचड़ीका त्योहार पहले उस समय मनाया जाता था जिस दिन दिन-मान सबसे छोटा होता था (अर्थात् जिस दिनसे उत्तरायणका प्रारम्भ होता था); अब यह कोई २२ दिन पीछे पड़ता है।

मेरी रायमें सायन-वर्षको ही अपनाना चाहिए, क्योंकि मनुष्यके जीवनके लिए नक्षत्रोंकी अपेक्षा ऋतुओंका कहीं अधिक महत्त्व है।* भारतवर्षको छोड़कर सभ्य संसार में अन्यत्र सभी जगह सायन-वर्ष ही प्रचलित है।

दृश्य गणना

एक प्रश्न और है, वह है दृश्य और अदृश्य गणना का। ग्रहणोंकी गणना प्राचीन ढङ्गसे करने पर घंटे, दो घंटेका अन्तर पड़ जाता है। यदि प्राचीन गणनाके अनुसार उत्तर निकला कि आज १ बजे दिनमें सूर्य-ग्रहणका आरम्भ होगा और आधुनिक गणनाके अनुसार उत्तर निकला कि आज २॥ बजे ग्रहणका आरम्भ होगा तो अनुभवसे देखा गया है कि आधुनिक गणित ही सर्वदा सत्य उतरता है। कारण प्रत्यक्ष है। प्राचीन गणना-प्रणाली इतनी सूक्ष्म नहीं थी कि आज लगभग डेढ़ हज़ार वर्षके बाद उसी रेटसे, उसी पुराने मानसे, गणना की जाय और अन्तर न पड़े। इसमें कोई लज्जाकी बात नहीं है। यदि हमारे पास कोई ऐसी घड़ी हो जो बराबर डेढ़ हज़ार वर्ष तक चलती रहे और उसकी चालमें डेढ़ हज़ार वर्षमें कुल दो घंटेका अन्तर पड़े तो यह भला लज्जा की बात होगी? यह तो अत्यन्त अद्‌भुत घड़ी होगी। एक वर्ष चलते रहने पर ऐसी घड़ीमें कुल सवा सेकेंडका अन्तर पड़ेगा! हमें गर्व होना चाहिए कि हमारे प्राचीन आचार्यों ने ऐसी सच्ची गणना-प्रणाली बतलाई कि आज डेढ़ हज़ार वर्षके बाद भी कुल घंटे, दो घंटेका ही अन्तर पड़ रहा है। हमें गर्व होना चाहिए कि भारतवर्षमें ज्योतिष उस समय भी अत्यन्त उच्च स्थान पर पहुँच गया था जब योरपके लोग जंगली थे।

परन्तु यह कोई गर्वकी बात नहीं है कि हम अपने प्राचीन आचार्यों से आगे न बढ़ सकें—हम आज भी उसी लकीरके फ़क़ीर बने रहें। धर्मशास्त्रियों ने न जाने कैसे यह निश्चय किया है कि प्राचीन प्रणालीको छोड़कर आधुनिक प्रणालीके अपनानेमें धर्मका ह्रास होता है। परन्तु सब कुछ करने पर भी साधारण जनता इस बातको स्वीकार नहीं कर सकी है कि ग्रहणके लिए स्नान १ बजे करना उचित है जब उसकी आँखोंको ग्रहण २॥ बजे दिखलाई पड़ता है। इस संकटसे बचनेके लिए धर्म-शास्त्रियों ने एक युक्ति अन्ततः सोच ही ली है। वे कहते हैं कि ग्रहण दृश्य घटना है; इसलिए इसकी गणना आधुनिक (पाश्चात्य) रीतिसे होनी चाहिए*, परन्तु तिथि आदि घटनायें अदृश्य हैं, उसकी गणना प्राचीन रीतिसे होनी चाहिए।

मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो यह बात वैसी ही है जैसे किसी नगरमें बड़े-बड़े चौराहों पर पुलिसवाले यह देखनेके लिए खड़े रहें कि कोई व्यक्ति रातको बिना लैंप लगाये बाइसिकिल पर तो नहीं चलता, और धर्मशास्त्री कहे कि भाई, जहाँ पुलिसवाले खड़े हों वहाँ साइकिलसे उतरकर चलो, अन्यत्र

* श्री हजारीप्रसाद द्विवेदीकी यह धारणा (विश्व-भारती-पत्रिका, अप्रैल १९४२) कि निरयन-गणना रखनेसे सुगमता होती है, नितान्त भ्रम है। क्रियात्मक ज्योतिषमें (समय, स्थिति आदि ज्ञात करनेमें) सायन नक्षत्र-स्थानोंकी ही आवश्यकता पड़ती है। —गोरख प्रसाद

* इसीको दृश्य-गणना कहते हैं। —गो० प्र०

साइलिक पर चढ़कर चला करो।

तिथियोंमें एक तिथि पूर्णिमा भी है। स्कूलके भी विद्यार्थी जानते हैं कि चन्द्रग्रहणका मध्य उस क्षण पर होता है जब ठीक पूर्णिमा होती है*। इसलिए यदि तिथियोंकी गणना प्राचीन रीतिसे की जाय तो चन्द्र-ग्रहणके समय पूर्णिमाकी गणनाकी त्रुटि पकड़ी जा सकती है। इसी प्रकार सूर्य-ग्रहणके समय अमावस्याकी गणनाकी त्रुटि पकड़ी जा सकती है। इसलिए यदि सच पूछा जाय तो दृश्य और अदृश्य घटनाओंमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है; केवल ग्रहणके अवसर वे चौराहे हैं जहाँ जनता ग़लती पकड़ सकती है। यदि ज्योतिषमें आधुनिक रीतियोंका अपनाना अधर्म है तो धर्मशास्त्रियोंकी यह व्यवस्था कि ग्रहणोंकी गणना आधुनिक प्रणालीसे की जाय, क्या उचित है?

मेरी सम्मति

मेरी रायमें आधुनिक रीतियोंसे गणना करना अधर्म नहीं है। गणित न भारतीयोंका है, न पाश्चात्योंका। उसमें कोई छूत नहीं लगी है। यह कहना कि पूर्णिमाकी परिभाषा ही यही है कि पूर्णिमा वह क्षण है जो अमुक प्राचीन ग्रन्थके अनुसार गणना करने पर निकले, भ्रम है। यदि यह परिभाषा दी जाय तो भविष्यमें क्या होगा? आज घण्टे दो घण्टेका अन्तर पड़ रहा है, कुछ हज़ार वर्षोंमें दिन दो दिनका अन्तर पड़ने लगेगा और तब हमारे धर्म-शास्त्रियोंके अनुसार बने पञ्चाङ्गोंमें पूर्णिमा उस समय लिखी रहेगी जिस समय आकाशमें स्पष्ट रूपसे अपूर्ण चन्द्रमा वर्त्तमान रहेगा; अमावस्या पञ्चाङ्गोंमें तब मिलेगी जब आकाशमें चन्द्र-कला चमकती रहेगी! तब जनता स्वयं पञ्चाङ्गोंको न मानेगी और तिथियोंकी भी वही दशा होगी जो इस समय ग्रहणों की हुई है; उस समय झख मारकर व्यवस्था देनी पड़ेगी कि तिथियोंकी गणना भी दृश्य-गणनानुसार ही हुआ करे। अभी अन्तर केवल घण्टे दो घण्टेका ही है; इसलिए अभी जनता धोखेमें रक्खी जा सकती है। अन्तरके पर्याप्त बढ़ जाने पर प्रणाली बदलनी ही पड़ेगी। तब अभीसे गणना शुद्ध क्यों न कर ली जाय?

भूतकालमें भी ज्योतिषमें समय-समय पर सुधार होता रहा है। वराहमिहिरके समयके सूर्य-सिद्धान्त और पीछेके सूर्य-सिद्धान्तमें बहुत अंतर है। फिर, हमारे सभी प्राचीन ग्रंथोंमें वर्ष इत्यादिके मान एक ही नहीं हैं। यदि इनमेंसे कोई एक ही मान्य समझा जाय तो क्यों?

मैं तो सारे पञ्चांगकी गणना आधुनिक प्रणालीसे करनेका पक्षपाती हूँ। इसमें हमारे प्राचीन ग्रन्थोंकी कोई मानहानि नहीं है, साथ ही हम लाभमें रहेंगे—हम अपने धर्म-कर्म बिलकुल ठीक समय पर कर सकेंगे।

* सूक्ष्म गणनाके अनुसार इसमें कुछ मिनटोंका अन्तर हो सकता है, परन्तु इतनेकी यहाँ उपेक्षा की जा सकती है। —गो० प्र०

एक वैज्ञानिक आविष्कार

अमेरिकन रासायनिक समिति ने कोर्नेल विश्वविद्यालय के प्रोफेसर विन्सेन्ट डु गिवनू द्वारा बायोटिनके रासायनिक संयोगका आविष्कार कर लिये जानेकी घोषणा की है। बायोटिन प्रकृतिका सबसे अधिक पोषक तत्व है और बड़ी कठिनाईसे प्राप्त होता है। इस आविष्कारके फलस्वरूप संश्लेषण प्रक्रिया द्वारा बायोटिन बनानेका उपाय निकल आयेगा। शुद्ध रूपमें बाइटोनका मिलना बड़ा कठिन है।

इस समय समस्त संसारमें केवल १/१० औंस बायोटिन उपलब्ध है।

प्रसिद्ध रासायनिकोंका मत है कि प्रोफेसर डु गिवनू ने बायोटिनके अणुके जिस तीन परिमाण वाले रूपका आविष्कार किया है वह आधुनिक विज्ञानकी एक बड़ी भारी सफलता है, जिससे रसायन, प्राणिशास्त्र और औषधि-विज्ञानके क्षेत्रोंमें महत्वपूर्ण नई उन्नति हो सकेगी।

बायोटिनके अणुमें ३२ परमाणु होते हैं। यह प्रायः १० एंगस्ट्राम अर्थात् प्रायः एक सेंटीमीटरके एक करोड़वें भागके बराबर लम्बा होता है। इन ३२ परमाणुओंमें १० कारबनके, १६ हाइड्रोजनके, तीन आक्सीजनके, दो नाइट्रोजनके और एक गन्धकका परमाणु होता है।

परीक्षणोंसे प्रकट हुआ है कि मनुष्य तथा उच्चकोटिके अन्य जीवोंको जीवित रहनेके लिये बायोटिन अत्यावश्यक है। बायोटिनके बिना भूमण्डल पर जीव उत्पन्न नहीं हो सकते थे। —भारतीय समाचार

विज्ञान-परिषद्‌का

वार्षिक विवरण (१९४१-१९४२)

अन्य वर्षोंकी भांति विज्ञान-परिषद् प्रयागका यह उनतीसवाँ वर्ष भी साधारणतया सन्तोषजनक स्थितिमें समाप्त हुआ। 'विज्ञान' का प्रकाशन समय पर होता रहा। सम्पादनका कार्य डा०गोरखप्रसाद जी ने किया और इस वर्ष उनकी सहायताके लिये ३०) मासिक पारिश्रमिकपर सहायक सम्पादककी नियुक्तिकी गई। श्री जगदीशप्रसाद राजवंशी ने १५ फरवरी १९४२ तक सहायक सम्पादकका काम किया। इसके पश्चात् समयाभावके कारण उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। अब तक सहायक सम्पादकके वेतनका भार पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसीके ऊपर था; पर स्वामी हरिशरणानन्द जीके पत्रोंसे ज्ञात हुआ कि विज्ञानको वे इतनी आर्थिक सहायता न दे सकेंगे कि विज्ञानके सम्पादन पर ३०) मासिक व्यय किया जा सके। अप्रैल १९४२ की अंतरंग सभा ने इस विषय पर विचार किया। हमें हर्षसे कहना पड़ता है कि हमारे सभापति प्रो० सालिगराम भार्गव ने विज्ञानके सम्पादनके लिये ३६०) की सहायता देनेका वचन दिया। उनकी आर्थिक सहायतासे १५ अप्रैल से कुँवर वीरेन्द्र नारायण सिंहजी सहायक सम्पादकके पद पर नियुक्त किये गये, और अब तक वे इस पद पर कार्य कर रहे हैं। परिषद् प्रो० भार्गवकी इस सहायताके लिये अत्यन्त कृतज्ञ है।

विज्ञानके अगस्त तकके अंकका मुद्रण पंजाब आयुर्वेदिक फार्मेसी प्रेस, अमृतसर, द्वारा हुआ। पर वर्तमान महासमर जनित विशेष कठिनाइयोंके कारण स्वामी हरिशरणानन्द जीको उपर्युक्त प्रेस बन्द कर देना पड़ा है। इसलिये १९४२ के सितम्बरके अंकसे विज्ञान का मुद्रण फिर प्रयागसे होने लगा है। स्वामीजीकी फार्मेसीके साथ प्रकाशन सम्बन्धी जो शर्तें निश्चित हुई थीं, वे इस प्रकार अब विछिन्न हो गईं। विज्ञानके प्रकाशन के सम्बन्धमें स्वा० हरिशरणानन्द जी से मिली सहायता का ब्योरा आगे दिया है।

इस वर्षकी प्रकाशित पुस्तकें श्री रामेशवेदी लिखित "त्रिफला" और श्री जुगड़ान लिखित "मधु-मक्खी पालन" हैं। दोनों पुस्तकें अत्यन्त सामयिक और उपयोगी हैं। मधु-मक्खी-पालन पुस्तककी भूमिका श्री आर० एस० पंडित ने लिखी जिसके लिये हम उनके कृतज्ञ हैं परिषद्के सभ्योंके पास "भारतीय चीनी मिट्टियाँ" और "जिल्दसाज़ी" की पुस्तकें भी इस वर्ष भेज दी गयीं, जिनका गतवर्षके विवरणमें उल्लेख किया गया था। "घरेलू डाक्टर" पुस्तकके इस समय तक २३ फर्मे छप चुके हैं।

सरकारसे हमें अन्य वर्षोंकी भांति इस वर्ष भी ६००) की सहायता मिली जिसके लिये हम शिक्षा विभागके आभारी हैं।

इस वर्ष निम्न सज्जन परिषद्के पदाधिकारी रहे—

सभापति—प्रो० सालिगराम भार्गव
उपसभापति—(१) डा० धीरेन्द्र वर्मा
(२) प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा
प्रधान मंत्री—श्री मनोहरण शरण कमठान
मंत्री—डा० रामशरण दास
कोषाध्यक्ष—श्री गोपाल स्वरूप भार्गव
स्था० अंतरंगी—१—डा० श्रीरंजन
२—श्री सत्यजीवन वर्मा
३—श्री वेदमित्र
४—प्रो० ए० सी० बनर्जी
५—डा० गोरखप्रसाद
बाह्य अंतरंगी—१—प्रो० श्यामाचरण
२—प्रो० हीरा लाल खन्ना
३—प्रो० एम० एल० शराफ
४—डा० सन्तप्रसाद टंडन
५—डा० दौलत सिंह कोठारी
आय-व्यय निरीक्षक—डा० सत्य प्रकाश
प्रधान सम्पादक—डा० गोरख प्रसाद।

हमें खेद है कि हमारे अंतरंगी सदस्य प्रो० श्यामाचरण जीका अकस्मात् स्वर्गवास हो गया। परिषद्में उनकी पुस्तक "पाश्चात्य खगोल ज्योतिष" प्रकाशित होनी आरम्भ हुई थी। उनकी मृत्युके कारण यह काम भी रुक गया है, परन्तु आशा है कि डाक्टर गोरखप्रसाद जीकी सहायतासे यह पुस्तक कुछ महीनोंमें छप कर तैयार हो जायगी।

इस वर्षके वार्षिक अधिवेशनमें पारिभाषिक शब्दोंके सम्बन्धमें अच्छी चर्चा रही जिसमें प्रो० फूलदेव सहाय वर्मा, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्य प्रकाश, डा० सद्-गोपाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, आदि सज्जनों ने भाग लिया।

अक्टूबर १९४१ से सितम्बर १९४२ तककी आय-व्यय का लेखा निम्न प्रकार है—

आय

	रु०आ०पा०
सभ्योंसे वार्षिक शुल्क	७४-० -०
आजीवन सदस्य शुल्क	१००-० -०
विज्ञानके ग्राहकोंसे	२९५-५ -६
पुस्तकोंकी बिक्रीसे	४४६-१४ -३
{ अपनी पुस्तकोंसे लगभग ३४६) { अन्य पुस्तकोंसे ” १००)	
स्वामी जीसे	४००-० -०
पुराने हिसाबमें ३८७-१३-० विज्ञानके, इस वर्षके लिए, १३- ३-०	
सरकारसे	६००-० -०
डा० गोरखप्रसादसे उधार	१००-० -०
प्रो० भार्गवसे (सहायक सम्पादकके लिये)	१५०-० -०
योग	२१६६-३ -६
गत वर्षका शेष	११७-१५ -३
योग	२२८४-३ -०

व्यय

विक्रयार्थ पुस्तकोंकी जिल्दसाजी ...	१६२-० -०
चपरासी वेतन...	५१-४ -६
सहा० सम्पादकको पारिश्रमिक ...	३००-० -०
क्लर्कका वेतन	१७८-८ -०
ब्लाक पर	२१८-१३ -३
इक्का ठेला	१५-१५ -३
टिकट	१८७-४ -३
साइकिल पर	१३-० -३
स्टेशनरी	१२-२ -६
कागज़	२३४-० -६
रेलभाड़ा	२०-१५ -०
बिक्रीके लिये पुस्तकें	८३-० -३
सम्पादनके लिये पुस्तकें	६३-११ -६
छपाई नवीन पुस्तकोंकी	२८०-० -०
मकान किराया	३६-५ -६
म्युनिस्पल टैक्स	२०-१२ -०
बैंक कमीशन	३-० -०
अन्य व्यय	०-४ -०
डा० गोरखप्रसादको उधार लौटाया ...	१००-० -०
	१९८१-१ -३
इस वर्षका शेष	३०३-१ -९
	२२८४-३ -०

इस वर्ष श्री वेंकट लाल ओझा, हैदराबाद (दक्षिण) परिषद्के आजन्म सभ्य बने। इस समय परिषद्के आजन्म सभ्योंकी संख्या २२ है। सभ्योंकी संख्या ६३ है और विज्ञानके ग्राहक लगभग १४० हैं। हमें खेद है कि हमारे सभ्य प्रो० बी० एस० तम्माका देहान्त हो गया।

विज्ञानकी छपाई का लेखा यों है :—

विज्ञानके मद में आय जो प्रयाग में हुआ

सभ्योंसे प्राप्त वार्षिक शुल्कका आधा ...	३७-० -०
ग्राहकोंका चंदा	२९५-५ -६
स्वामी जीसे प्राप्त हुआ	१२-३ -०
सरकारसे	६००-० -०
प्रो० भार्गवसे	१५०-० -०
	१०९४-८ -६

विज्ञानके मदमें व्यय जो प्रयागमें हुआ

सहायक सम्पादक	३००-० -०
क्लर्क	१७८-८ -०
चपरासी	५१-४ -६
ब्लाक	२१८-१३ -३
कागज़ (२४ रीम अमृतसर भेजा जिसमें १४ घरेलू डाक्टर में लगा, १३ विज्ञानमें) १३ रीमका दाम	१२५-२ -०
इक्का ठेला	१५-१५ -३

टिकट (कुल १८७।)।, जिसमें कुछ पुस्तकों पर खर्च हुआ) विज्ञानके लिये, अनुमानसे	१२०-० -०
साइकिल मरम्मत और टैक्स	१३-० -३
स्टेशनरी (कुल १२।।)।।), विज्ञानके लिये अनुमानसे	१०-० -०
रेल भाड़ा	२०-१५ -०
सम्पादन के लिये पुस्तकें	६३-११ -६
	१११७-५ -९
आय	१०९४-८ -६
घाटा	२२-१३-३

इस प्रकार हमें यहाँ २२।।।-)। का घाटा हुआ। यह हमें स्वामी जीसे मिलेगा। इसके अतिरिक स्वामी जी ने छपाई, अमृतसरमें खरीदा कागज़, ब्लाक आदि पर ६००) का घाटा और सहा होगा। [७००) के लगभग खर्च किया होगा। विज्ञानके ग्राहकोंसे लगभग १००) मिला होगा।] स्वामी जीकी इस सहायताके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

परिषद्‌की आर्थिक स्थिति—इस समय हमारे पास लगभग १०,००० पुस्तकें बिक्रीके लिये तैयार हैं जिनकी बिक्रीका मूल्य लगभग १५,०००) है। यदि लागत ही जोड़ा जाय तो इनका मूल्य लगभग ५०००) होगा। हमारी ग्राहक-संख्या विशेष सन्तोषजनक नहीं है। सभ्योंकी संख्या भी बहुत कम है। यदि इन दो बातोंमें उन्नति हो सके तो भविष्यकी कोई चिन्ता न रह जायगी।

विज्ञान परिषद् का
१९४२-४३ का बजट

आय

सरकार से	६००)
ग्राहकोंसे	४२०)
विज्ञापन	१०)
स्वामी जीसे सहायता	३३५)
सभ्योंसे	११०)
अपनी पुस्तकोंसे	४००)
अन्य पुस्तकों पर कमीशन ...	२०)
मकानका किराया	६०)
विशेष चन्दा, पुस्तक प्रकाशन ...	१००)
प्रो० सालगराम भार्गवसे	२१०)
गत वर्षकी बचत	३०३)
	२५६८)

व्यय

विज्ञानके लिये कागज़	३०) मासिक
कागज़ कवर के लिए	६)
विज्ञापनके लिए कागज़	३)
छपाई	४०)
प्रूफ दिखाई	शून्य
ब्लाक	३०)
पुस्तक आदि	१०)
रैपर	१)
डाक व्यय	५)
वी० पी० (लौटी)	२)
	१२७)
१२ महीने	१५२४)
दफ्तरका क्लर्क	१५)
चपरासी	८)
डाक व्यय	५)
कागज़ कलम	२)
	३०)
साल भर का	३६०)
किराया दफ्तर	२४)
दफ्तरकी पुस्तकोंकी जिल्द	१०)
मरम्मत मकान, फरनिचर	१००)
नवीन पुस्तकोंकी छपाई आदि... ...	५००)
फुटकर	५०)
	२५६८)
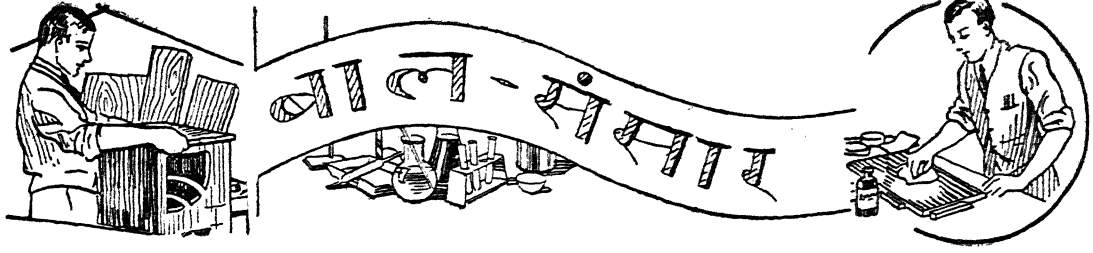
जादू

[गतांकसे आगे]

यदि तुरंत तुम दाहिने हाथको खोल दोगे और इस प्रकार दिखला दोगे कि वहाँ रुपया नहीं है तो दर्शक असली बात ताड़ लेंगे, अर्थात् वे बूझ लेंगे कि वस्तुतः तुमने बायें हाथमें रुपया रक्खा हो नहीं था। परंतु यदि तुम बायें हाथको खोलनेमें एक या दो मिनट लगा दो और इतनी देर तक दर्शकोंमें यही धारणा बनी रहे कि रुपया बायें हाथमें है और तब, मुट्ठी खोलनेके पहले, उसे जादूकी छड़ीसे छू दो, या और नहीं कुछ तो मुट्ठीको धीरे-धीरे खोलो और गदोरीके अन्तिम भाग (कलाई के पास वाले भाग) को दाहिने हाथ की दो अँगुलियोंसे रगड़ते रहो (चित्र १७) तो दो लाभ होता है। एक तो
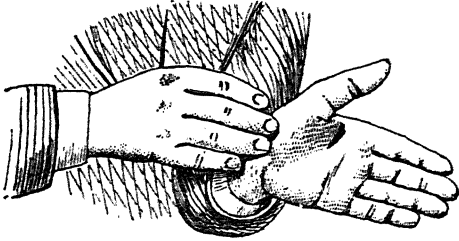
चित्र १७

दाहिने हाथको कुछ काम करनेको मिल जाता है और इससे दर्शकोंके दिलमें यह धारणा उत्पन्न नहीं होने पाती कि उसमें कुछ छिपा है। दूसरे, संकेतसे दर्शकों तक यह संदेश पहुँच जाता है कि रुपयेके लापता होनेका कारण यह है कि गदोरीको किसी रहस्यमय रीतिसे सहला दिया गया। यह आश्चर्यजनक है कि ऐसी छोटी-सी बातसे भी जनता कितने चक्करमें पड़ जाती है। दर्शक अच्छी तरह जानता है कि बंद मुट्ठीको छड़ीसे छूने या दूसरे हाथकी अँगुलीसे सहलानेसे रुपया गुम नहीं हो सकता। परंतु वह अपनी आँखोंसे देखता है कि रुपया लापता हो ही गया। ऐसी अवस्थामें उसका मस्तिष्क उस कारणको ग्रहणकर लेता है जिसे बाज़ीगर संकेतसे बताता है। यदि बायें हाथकी मुट्ठी खोलनेके पहले रुपया कहीं दूर किया जा सके तो ऐसे ढकोसलेकी विशेष आवश्यकता नहीं है, क्योंकि दाहिना हाथ वस्तुतः खाली रहने पर वह भी दिखलाया जा सकता है और तब सिक्केके एकदम लापता हो जानेका पक्का प्रमाण पाकर दर्शक आश्चर्यमें पड़ा रह जाता है; और तब किसी विशेष संकेतकी आवश्यकता नहीं रहती; दर्शक जो चाहे सो सिद्धांत बनाता रहे।

रुपयोंकी वर्षा—रुपयोंकी वर्षा वाला खेल पारस पत्थरसे कहीं अधिक आश्चर्यजनक है। रसायनज्ञोंकी कीमिया—पीतलसे सोना बनानेका ढंग—भी इस कलाके आगे सर झुकाती है। यहाँ तो बाज़ीगरकी तीक्ष्ण दृष्टि और सिद्ध हस्त हवासे बने-बनाये रुपये पकड़ते हैं। खेद यही है कि बीस रुपया पकड़नेमें उस बेचारेका बीस रुपया खर्च हो जाता है और इस रीतिसे वह धनी नहीं हो सकता !

दर्शकोंको यही जान पड़ता है कि जादूगर ने किसीका हैट मँगनी माँग लिया। अपने कुरते या कमीज़के बाहों (आस्तीनों) को चढ़ा कर वह कहता है कि मुझे दस रुपयोंकी आवश्यकता है (दस नहीं तो बारह या पंद्रह, कोई भी ऐसी ही संख्या हो, काम चल जायगा)। दर्शक अपने-अपने खलीतोंमें हाथ डाल कर रुपया निकालना चाहते हैं, परंतु जादूगर इस बातको ताड़ कर कहता है "नहीं-नहीं, आप रुपया न निकालें। धन्यवाद ! आज रात तो बहुत-से रुपये उड़ते हुए दिखलाई पड़ रहे हैं। हम इन्हींसे काम चला लेंगे। देखिये, एक रुपया यहाँ लैंपमें चिपका है; खूब ! और एक तो यह दीवार पर रेंग रहा है। और एक तो पंडितजीके साफेमें घुसा जा रहा है। क्षमा कीजियेगा, महाशय, एक रुपया तो आपकी मूँछोंमें अटका है। और आप, देवी जी, ज़रा पैर हटानेका कष्ट तो करें, एक रुपया आपकी चप्पलके नीचे दब गया है", इत्यादि। प्रत्येक बार जब जादूगरको रुपया दिखलायी पड़ जाता है—

दर्शकोंको तो वहाँ कुछ दिखलायी नहीं पड़ता—वह बड़े तपाकसे उसे पकड़ लेता है और तब दर्शक भी देखते हैं कि हाँ, सचमुच रुपया पकड़ा गया है। जादूगर इस रुपये को हैटमें डाल देता है, जिसे वह बायें हाथमें पकड़े रहता है। अंतमें जादूगर हैट उलट कर दिखला देता है कि वस्तुतः रुपये पकड़-पकड़ कर उसमें रक्खे गये हैं और किसी प्रकारकी 'धोखेबाज़ी' नहीं की गयी है।

खेल कैसे किया जाता है यह सुगमतासे समझमें आ जायगा। यह 'हथियाने' की कलाका ही एक उदाहरण है, यद्यपि खेलका प्रभाव हाथकी सफ़ाई पर उतना निर्भर नहीं है जितना खिलाड़ीके बात करनेके ढंग और आत्मविश्वास पर। जादूगर पहलेहीसे अपने पास दस रुपया (या जितना कुछ भी तय किया जाय) रख लेता है। इनमेंसे दो को वह अपने दाहिने हाथकी गदोरीमें हथिया लेता है। शेष रुपयोंको वह बायें हाथ ही में रहने देता है। जब वह हैटको बायें हाथमें लेता है तो वह हैटको इस प्रकार पकड़ता है कि अँगूठा बाहर पड़े और चारों अँगुलियाँ भीतर। [कड़े हैटमें असुविधा होगी, हैट नरम —फेल्ट हैट—हो। फेल्ट कैपसे भी काम चल सकता है।] रुपये अँगुलियों और हैटके बीच दबे रहते हैं और जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ती है वे एक-एक करके हैटमें गिराये जाते हैं। इसमें भी अभ्यास चाहिए। जब जादूगर पहले रुपयेको देखनेका बहाना करता है तो वह गदोरीमें रक्खे दो रुपयोंमें से एकको खिसक कर अँगुलियोंमें आ जाने देता है और हवामें रुपया पकड़नेका दिखावा करके उसे दर्शकोंके सामने यों उपस्थित करता है मानों उसे उसने अभी ही पकड़ा है। इस रुपयेको वह वस्तुतः हैटमें डाल देता है और ऐसा प्रबन्ध करता है कि सब देखते हैं कि रुपया हैटमें डाला गया। इसी प्रकार वह दाहिने हाथमें बचे हुए रुपयेसे दूसरी बार भी रुपया पकड़ता है, परंतु जब इसे हैटमें डालनेकी पारी आती है तो वस्तुतः न उसे डालकर केवल डालने भरका दिखावा करता है। वस्तुतः वह रुपयेको शीघ्रतासे दाहिने हाथमें ही हथिया लेता है और बायें हाथ के रुपयोंमेंसे एकको हैटमें गिरा देता है। रुपये पर रुपयेके गिरनेकी खनखनाहटको सुन कर स्वभावतः दर्शक समझते हैं कि हैटमें वही रुपया डाला गया है जो उनको जरा ही पहले दिखलाया गया था। इसी प्रकार बार-बार रुपया पकड़ा जाता है और हैटमें डाला जाता है। जब बायें हाथके सब रुपये हैटमें डाल दिये जाते हैं तो जादूगर अंतिम बार रुपया पकड़ता है और उसे उछाल कर हैटमें लोक लेता है, जिससे सभी देखते हैं कि वह रुपया भी हैटमें गया। अब रुपयोंको थालीमें, या दर्शकोंमें से किसी एककी गोदमें उलट दिया जाता है और किसीसे रुपयोंके गिनने-का आग्रह किया जाता है। गिनने पर पता चलता है कि रुपये ठीक उतने ही हैं जितने पकड़े गये थे।

कुछ सिद्धहस्त जादूगर इस खेलका अंत भी सुंदर रीतिसे करते हैं। जब वे सब रुपयोंको हैटमें डाल चुकते हैं तो कहते हैं कि 'रुपये तो खूब इकट्ठे हुए' या 'हैट अब भारी हो चला' या कोई ऐसी ही टिप्पणी करते हैं और साथ ही, मानों संख्याका अनुमान करनेके लिए, वे दाहिने हाथको हैटमें डाल कर रुपयोंको चला (हिला) देते हैं। हाथ निकालते समय वे चुपकेसे उसमें तीन-चार रुपये हथिया लेते हैं। अकसर रुपयोंको दूसरी और तीसरी अँगुलियोंकी नीचेवाली संधियों पर दबा कर वे उसे कसे रहते हैं। अब दनादन एक-एक करके वे तीन-चार रुपये पकड़नेका दिखावा करते हैं और वस्तुतः रुपयोंको एक-एक करके हैटमें डालते जाते हैं।

कभी-कभी ऐसा भी देखनेमें आता है कि दो-तीन रुपया साधारण रीतिसे हैटमें डालनेका दिखावा करनेके बाद कोई कोई जादूगर एक या अधिक रुपयोंको टोपीकी पेंदीमें से डालनेका दिखावा करते हैं। क्षण भर तो अवश्य इससे आश्चर्य होता है, परन्तु इससे दो-चार चतुर दर्शक भांप लेते हैं कि टोपीमें गिरने वाले जिस रुपयेका शब्द सुनाई पड़ता है वह दूसरा है, और हाथमें दिखलाई पड़ने वाला रुपया दूसरा है, और इस प्रकार खेलका रहस्य अंतमें समझ ही जाते हैं।

यह तो प्रत्यक्ष ही है कि इस खेलमें जादूगर अपने हाथोंको खोल कर दिखला नहीं सकता। इससे कभी-कभी कोई चतुर दर्शक ताड़ लेता है कि खेल कैसे होता है (विशेष कर यदि जादूगरने टोपीकी पेंदीमें से भीतर रुपया पहुँचानेका भी ढकोसला किया हो)। ऐसे अवसरों पर कोई दर्शक बोल भी उठता है कि जादूगर एक ही रुपयेको

बार-बार पकड़ रहा है यदि एक विशेष यंत्र हो, जिसका पूरा वर्णन नीचे दिया गया है, तो सिद्ध किया जा सकता है कि दर्शककी धारणा गलत है। जादूगर हाथको खाली दिखला कर भी हवामें रुपया पकड़ सकता है।

इस यन्त्रको धनदा (=धन देने वाली) कहते हैं। यह चिपटी, टीनकी बनी नली होती है जो लगभग आठ इञ्च लम्बी, सवा इञ्च चौड़ी और केवल इतनी मोटी होती है कि रुपया इसमें फिसल सके। एक ओर (ऊपर की ओर) यह खुली रहती है, परन्तु नीचेकी ओर कमानीदार खटका लगा रहता है। चित्र १८ में समूची धनदा दिखलाई गई है और चित्र १९ में इसकी काट तथा खटकेकी बनावट बड़े पैमाने पर दिखलाई गई है। चित्र १९ में खटके
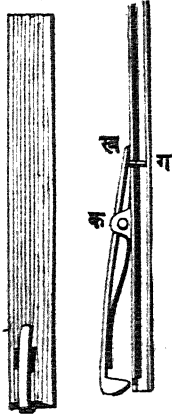
चित्र १८ चित्र १९

की सामान्य स्थिति दिखलाई गई है, अर्थात् खटका कमानीके कारण साधारणतः इसी स्थितिमें रहता है। जब खटका अपने सामान्य स्थितिमें रहता है तो खूँटी (कील) ग के कारण, जो नलीके टीनमें छेद द्वारा भीतर घुसा रहता है, रुपयेका रास्ता रुका रहता है। परन्तु यदि खटकेका नीचे वाला सिरा दबा दिया जाय तो खटका धुरी क के बल ज़रा घूम जाता है। इस प्रकार नलीका नीचे वाला मुँह खटकेके मुड़े सिरेसे बन्द हो जाता है, परन्तु खूँटी ग बाहर चली जाती है। इससे एक रुपया सरक कर नीचे चला आता है। अब खटकेको छोड़ने पर नीचे वाला रुपया नलीसे बाहर निकल पड़ता है, परन्तु अन्य रुपये खूँटी ग के कारण नलीमें ही रह जाते हैं। जब धनदाको काममें लाना रहता है तो इसमें ४ या ५ रुपये रख दिये जाते हैं और इसे वास्कटके नीचे लटका दिया जाता है (इसे वास्कटमें फँसानेके लिये इसके सिरे पर एक हुक बना रहता है)। इसे इस प्रकार लटकाना चाहिये कि इसका नीचे वाला सिरा वास्कटकी निचली छोरसे नाम मात्र ही ऊपर रहे और खटका शरीरकी ओर रहे। यदि अब नलीको वास्कटके बाहरसे ही ज़रा-सा दबाया जायगा तो एक रुपया नीचे उतर आयेगा और नलीसे दबाव हटाने पर वह रुपया हाथमें लिया जा सकेगा।

धनदाका काम पूर्वोक्त खेलके सम्बन्धमें अब स्पष्ट हो गया होगा। जादूगर अपने कमीज़के बाहोंको चढ़ा कर और इस प्रकार यह संकेत करके कि रुपया बाँहमें नहीं छिपा रहता अपना हाथ दिखलाता है। दर्शक देख लेते हैं कि हाथमें कुछ नहीं है। बातोंमें जनताको भुलाये रख कर, बिना उनका ध्यान अपने हाथों पर आकर्षित किये, खिलाड़ी क्षण भरके लिये अपने हाथको प्रत्यक्ष असावधानीसे वास्कटकी छोरके पास चला जाने देता है; कलाई ऊपर रहे और अँगुलियाँ नीचे। इसी क्षणमें ज़रा-सा दबाते और ढीला करते ही एक रुपया हाथमें आ जाता है। इसे वह हथिया लेता है और समय आने पर पहले बतलाई गई रीतिसे वह रुपया पकड़नेका दिखावा करता है।

यह स्मरण रखना चाहिये कि धनदामें चार ही पाँच रुपये रक्खे जा सकते हैं और बार-बार हाथको वास्कट तक ले जानेमें लोगोंको सन्देह हो जा सकता है। इसलिये सबसे अच्छा तो यही है कि साधारण रीतिसे खेल आरम्भ किया जाय और तीन-चार रुपया साधारण रीतिसे पकड़नेके बाद यह बहाना किया जाय कि किसीने कहा कि रुपया हाथ ही में रह जाता है। तब उस रुपयेको सबके सामने हैटमें फेंक दिया जाय और (शब्दोंसे नहीं, केवल हाथोंकी चेष्टाओंसे) अपने दाहिने हाथको दिखला कर कि वह खाली है—बायें हाथ पर किसीको सन्देह भी नहीं होता—चुपकेसे धनदासे एक रुपया निकाल लिया जाय। इस रुपयेसे तीन-चार रुपये पकड़नेका दृश्य दिखलाया जाय, इत्यादि। जैसा जहाँ अवसर मिले वैसा किया जाय।

समालोचना

आयुर्वेदीय विश्वकोष—तृतीय खण्ड। लेखक व संकलनकर्त्ता श्री बाबू रामजीतसिंह जी वैद्य तथा श्री बाबू दलजीतसिंह जी वैद्य।

प्रकाशक—पं० विश्वेश्वर दयालु वैद्यराज, अनुभूत योगमाला आफिस, बरालोकपुर, इटावा। पृष्ठ संख्या ७०० $\frac{२२ \times २९}{८}$। से कै हस्व तक। मूल्य अजिल्दका ५।) सजिल्द ६।)। नाम तो इस ग्रन्थका आयुर्वेदीय विश्वकोष रक्खा गया है, किन्तु ग्रन्थको देखनेसे नामकी सार्थकता सिद्ध नहीं होती। क्योंकि ग्रन्थमें जिन औषधियों और वस्तुओं के नाम दिये गये हैं वह आयुर्वेद शास्त्र तक सीमित नहीं रहे, प्रत्युत इसमें एलोपैथी, यूनानी, मिसरानी आदि कई चिकित्सा पद्धतियोंमें उपयोजित वस्तुओं, औषधियोंके नाम बड़ी भारी मात्रामें संग्रहीत किये गये हैं। इसलिये ग्रन्थका आकार बहुत ही बढ़ गया है। इस भागमें एक्सट्रैक्टम्-र्‌हीयाई शब्दसे कै हस्वकी समाप्ति तक १०५४५ शब्द आये हैं तो कई लाख शब्दोंका यह ग्रन्थ आठ दस खंडों से कममें समाप्त होने वाला नहीं। इतने बड़े कामको बाबू रामजीत सिंह व दलजीत सिंहजी ने उठा कर हिन्दी भाषाके चिकित्सा भण्डारको पूर्ण करनेका जो आयोजन किया है वह अत्यन्त स्तुत्य है। इस ग्रन्थके पूर्ण होने पर वैद्य संसारको चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद, यूनानी, एलोपैथी) के औषध शब्द संग्रहसे बहुत कुछ ज्ञान वृद्धि हो सकती है। यही नहीं, आपने एतद्‌देशीय भाषाओंके नाम भी देकर ग्रंथ-की उपयोगिताको और भी बढ़ा दिया है। ग्रंथ उपादेय है, विशेष कर वैद्योंके लिये।

चिकित्सा तत्त्व प्रदीप—द्वितीय खण्ड। लेखक—श्री स्वामी कृष्णानन्द जी, प्रकाशक श्री ठाकुर नाथू सिंह जी वर्मा, संचालक कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, मु० व पोस्ट कालेड़ा-बोगला, अजमेर। साइज़ २० × ३० = १६ पेजी, पृष्ठ संख्या ११२२, मूल्य अजिल्द ५॥) सजिल्द ६। रु०

स्वामी जी महाराजका यह ग्रन्थ पचनेन्द्रिय संस्थान व्याधि, सार्वाङ्गिक व्याधि, रक्त रचना विकृति और श्वास संस्थान व्याधि नामक चार प्रकरणोंमें समाप्त हुआ है।

स्वामीजी महाराज यह ग्रन्थ ऐसे वैद्योंके लिये संकलन कर रहे हैं जो प्रायः भिन्न-भिन्न चिकित्सा पद्धतियों द्वारा रोगका ज्ञान व चिकित्साका ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उन्हें इस ग्रन्थसे महान् लाभ होगा। अनेक ग्रन्थोंका संग्रह न कर इस एक ही ग्रन्थके पासमें होने पर वैद्य बहुत कुछ जान सकता है। जिस तरह हिन्दी भाषाभिज्ञ वैद्योंमें किसी समय रसराज महोदधि ग्रंथ या अमृतसागर ख्याति प्राप्त कर चुका है, उसी तरह आशा है स्वामी जी महा-राजका लिखा यह ग्रंथ भी शीघ्र ही ख्याति प्राप्त कर लेगा।

—हरिशरणानन्द।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—विश्वप्रकाश, कला प्रेस, प्रयाग

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५६ | मीन, संवत् १९९९ । मार्च, सन् १९४३ | संख्या ६

हमारी नवीन योजना

'विज्ञान' में अनेक प्रकारके लेख छपते रहे हैं, परंतु आजसे पहले कभी क्रमानुसार सभी विषयोंके मूल ज्ञानका परिचय करा देना संभव नहीं हो सका था। अब ऐसा प्रतीत होता है कि 'विज्ञान' द्वारा कि एक छोटे-से वैज्ञानिक विश्वकोशका धीरे-धीरे निर्माण कर देना असंभव नहीं है।

परंतु विश्वकोश भी कई कोटिके हो सकते हैं। वर्तमान के लिए संपादकको ऐसे विश्वकोषकी अधिक आवश्यकता जान पड़ती है जिसमें सरलतम ज्ञानका अत्यंत विशद वर्णन हो—जिसे पाठशालाके विद्यार्थी भी समझ सकें और विज्ञान एकदम न जानने वाले भी; जो बच्चोंको भी रोचक लगे और बड़ोंको भी।

इसलिए विचार है कि विज्ञानके कोई-कोई अंक विशेष विषयों पर निकलें और वे ऐसे हों कि उनके संग्रहसे छोटा-सा सरल विश्वकोश बन जाय। अभी तो यही चेष्टा की जायगी कि लगभग बारह अंकोंमें विज्ञानके सभी अंगों पर कुछ-न-कुछ प्रकाश पड़ जाय। पीछे ऐसे अंक भी जोड़े जा सकते हैं जिनमें विशेष तथा कुछ कठिन विषयोंके ब्योरेवार विवरण रहें।

प्रथम अंकमें जंगली जंतुओंके अत्यंत मनोरंजक जीवन-वृत्तांत हैं और यह पाठकोंके सामने है। आगामी अंकोंमें पेड़-पौधोंकी दुनिया; ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत, रेडियो आदि संबंधी बातें; रसायन, गणित, ज्योतिष और यंत्रशास्त्र; और फिर मनोरंजक और उपयोगी वस्तुओंको अपने हाथ बनानेकी रीतियोंका सचित्र और ब्योरेवार वर्णन भी रहेगा।

आशा है हमारे पाठकोंको यह योजना पसंद आयेगी। पाठकगण इस योजनाका समाचार दूसरों तक पहुँचा कर, और संभव हो तो नवीन ग्राहक बनाकर, हमारी यथेष्ट सहायता कर सकते हैं।

वैज्ञानिक साहित्यमें वर्तमान समय चित्रोंका युग है। जो बात पेजों लिख डालने पर स्पष्ट नहीं हो पाती वह एक फ़ोटोग्राफ़से प्रत्यक्ष हो जाती है। इसलिए प्रस्तावित 'सरल विज्ञान-सागर' में पर्याप्त चित्र भी रहेंगे।

एक तो इस विचारसे कि विज्ञानके ग्राहकोंको इस पुस्तककी आवश्यकता न पड़ेगी, दूसरे काग़ज़की मँहगीके कारण, इस ग्रंथकी बहुत थोड़ी-सी ही प्रतियाँ अलगसे छपायी जा रही हैं। विज्ञानके ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे अपने 'विज्ञान' की प्रतियोंको भली भांति सुरक्षित रक्खें, जिससे उन्हें पोथीको अलगसे मोल लेनेकी आवश्यकता न पड़े।

—संपादक

मनुष्यकी सेवामें जंतुशास्त्र

[प्रोफ़ेसर दक्षिणारंजन भट्टाचार्य, पी० एच० डी०, डी० एस सी०, एफ़० ज़ेड० एस०, के एक भाषणका सारांश]

इतने कम स्थानमें जंतुशास्त्रके सभी सेवाओंका गिनाना असंभव है ; केवल प्रमुख सेवाओंका नाम गिनाया जा सकेगा। औषधि-विज्ञानमें जंतुशास्त्रके ज्ञानसे बड़े उपयोगी फल मिले हैं। जीवाणुओंके कारण रोगोंका होना अपेक्षाकृत थोड़े ही समयसे हमें ज्ञात हुआ है। प्रतिविष, वैक्सिन आदि सब एक प्रकारसे जंतुशास्त्रकी देन हैं और इससे लाखों व्यक्तियोंकी जान प्रतिवर्ष बचती है। डिफ़्थीरिया, पीला ज्वर, टाइफ़ाइड आदिसे न जाने कितने व्यक्ति पहले मरा करते थे, परंतु अब यह सब बदल गया है। गत ९० वर्षोंसे हमने इन रोगों पर अपना अधिकार जमा लिया है। तिल्लो, कोढ़, क्षय, डिफ्थीरिया, टाइफायड, ग्लैंडर्स, हैज़ा, प्लेग, हनुस्तंभ, ग्रैनग्रीन, प्रसूति ज्वर, मलेरिया, निद्रा रोग, घावोंका पकना, इत्यादिके उत्पादक कारणोंका आज हमें पूरा पता है। आतशक, मलेरिया, आँव, पीला ज्वर, और अंकुशा-जनित रोगोंका जंतुशास्त्रसे विशेष घना संबंध है। इनमेंसे प्रत्येक रोग किसी जीवसे उत्पन्न होते हैं ; ये जीव मनुष्यके शरीरमें पराश्रितकी तरह रहते हैं और उनसे उत्पन्न दूषित पदार्थोंके कारण मनुष्यको रोग होता है। पूर्वोक्त रोगोंके अतिरिक्त ऐडिसन रोग, मधुमेह, कैनसर और अर्बुद पर भी हम विजय पा गये हैं। इनका भी जंतुशास्त्र से संबंध है। रक्तमेह, फाइलेरिया और लिवर-रॉट पर काम हो रहा है।

कृषिशास्त्र और ढोरपालनमें भी जंतुशास्त्र ने बड़ी सहायता पहुँचाई है। भूमिके भीतर ऐसे जीवाणु होते हैं जो खेतीको लाभ पहुँचाते हैं; परंतु कुछ ऐसे भी जीवाणु होते हैं जो हमारे लाभदायक जीवाणुओंको नष्ट कर डालते हैं। जंतुशास्त्रके नवीन खोजों ने हमें बताया है कि हम किस प्रकार इन हानिकारक जीवाणुओंको अपने वशमें रख सकते हैं। इसके अतिरिक्त सैकड़ों तरहके कीड़े, टिड्डी और फतिंगे हैं जो फसलको हानि पहुँचाते हैं, इनके जीवन-इतिहासोंके अध्ययनसे हमें पता चला है कि इनको नष्ट करने का क्या उपाय किया जाय। परंतु अब भी इस क्षेत्रमें बहुत कार्य करना बाकी है। कृषिविशेषज्ञों और जंतुशास्त्रियों को एक दूसरेके सहयोगसे आगे बढ़नेकी विशेष आशा है। यह न समझना चाहिए कि सभी कीड़े हमारे शत्रु हैं। कुछ, जैसे रेशमके कीड़े और मधुमक्खियाँ, हमारे लिए विशेष लाभदायक भी हैं।

हमारे ढोरोंके रोगोंके अध्ययनके सम्बन्धमें कई कीड़े-मकोड़ोंका भी अध्ययन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त हम जानते हैं कि केंचुआ हमारे खेतोंके लिये कितना उपयोगी है। सीप और घोंघोका जीवन इतिहास जान कर आज हम असली मोतीकी खेती कर सकते हैं। भेंड़के शरीरमें रहने वाली किलनी और सिटसी मक्खीके कारण फैलने वाले रोगोंको अब हम समझ गये हैं। परन्तु अब भी बहुत-सी बातें हैं जिनका अध्ययन करना आवश्यक है।

मछलियोंके पालनेमें भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। अमरीका, यूरोप, जापान, और चीनमें इस विभागसे देशको बहुत धन मिलता है। आशा है कि भारतीय वैज्ञानिक मत्स्य-पालन पर खोज करके इस विषयकी ऐसी सच्ची नींव डालेंगे कि पीछे इससे विशेष धनार्जन हो सकेगा।

जंतुशास्त्रका यह भी ध्येय है कि हम उत्तर दे सकें कि मनुष्य कहाँसे आया और कहाँ जा रहा है। किसी दिन हम मृत्युके रहस्यका भी भेद जान जायँगे। उत्तम जीवनके विविध साधनोंका भी पता हमें जंतुशास्त्रसे ही मिलेगा। जन्म, पुनर्युवावस्था प्राप्ति, मृत्यु, प्रजनन शास्त्र, कोशशास्त्र, लिंगनिर्धारण, जंतुओंका स्वभाव इत्यादि विषयों पर जोरोंसे खोज हो रहा है।

फ़िज़ीऑलोजी, अर्थात् वह शास्त्र जो बतलाता है कि मनुष्यके विविध अंगोंका कार्य क्या है, जन्तु शास्त्रके ही अन्तर्गत है। मनुष्यके भीतरकी ग्रंथियाँ--थायरॉयड, पैराथायरॉयड, ऐड्रिनल, लिंग-ग्रंथि आदि, कई विशेष रासायनिक पदार्थ उत्पन्न करती है। उन सबका पृथक-पृथक अध्ययन भी बहुत उपयोगी है। उन्हीं पर मनुष्यकी नाप, तौल, आकार, केश, बोली आदि निर्भर है।

ऐन्थ्रॉपॉलॉजी – अर्थात् मनुष्य और मनुष्यके जीवनका विज्ञान—बहुत-कुछ जन्तुशास्त्रसे सम्बन्धित है। प्राचीन मनुष्य युवा अवस्थाके पश्चात् बहुत काल तक जीवित नहीं रह पाता था, ऐसा पता पुराने अस्थ्यावशेषोंसे चलता है। लोगोंकी धारणा है कि सतयुगका प्राणी दीर्घजीवी होता था और अब उसका जीवन-विस्तार कम होता जा रहा है। परन्तु आँकड़ोंसे उल्टा ही परिणाम निकलता है। पैतृत्व (हेरेडिटी) भी हमारे शरीर और जीवनको बहुत कुछ बदल डालता है, ठीक उसी तरह जैसे जन्तुओंमें। (शेष फिर)

सरल

विज्ञान-सागर

संपादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

रीडर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

बारह अंकोंमें

अंक १

जंतुओं का विचित्र संसार

इलाहाबाद

विज्ञान-परिषद्

जंतुओंका विचित्र संसार

१
प्राणियोंकी जातियाँ

संसारके प्राणियोंकी जातियाँ प्रायः असंख्य हैं और पहली बार तो ऐसा जान पड़ता है कि उनको किसी भी प्रकार क्रमबद्ध नहीं किया जा सकता। परन्तु बात ऐसी नहीं है। वैज्ञानिकों ने उनको बहुत सुन्दर ढङ्गसे क्रमबद्ध किया है।

यदि संसारके सभी प्राणी वैज्ञानिक क्रमके अनुसार हमारे सामने खड़े किये जा सकते तो हम देखते कि उनके बाहरी आकार और उनकी भीतरी शरीर-रचनामें धीरे-धीरे अन्तर पड़ता है। सचमुच, यदि वर्तमान प्राणियोंके साथ-साथ उन प्राणियों पर भी विचार किया जाय जो पहले होते थे परन्तु अब मर-मिट गये हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि प्राणियोंमें धीरे-धीरे अन्तर पड़ता गया है और एक ही प्रकारके मूल प्राणियोंसे विकास होते-होते आजके सब विभिन्न प्राणी उत्पन्न हुये हैं। यही 'विकास-सिद्धान्त' है।

यह देखना अत्यन्त रोचक है कि विभिन्न प्राणियोंका रूप-रंग कैसा है, उनकी रहन-सहन कैसी है, वे क्या खाते हैं, क्या करते हैं, और कहाँ रहते हैं। परन्तु यह भी उतना ही रोचक है कि देखा जाय कि प्राणियोंकी विभिन्न जातियोंमें क्या सम्बन्ध है, उनमें क्या समता है, क्या विभिन्नता है।

यदि अनियमित क्रमसे प्राणियोंका परिचय प्राप्त किया जाय तो यह ज्ञान उतना उपयोगी और आकर्षक नहीं होता जितना उनको वैज्ञानिक क्रमके अनुसार अध्ययन करनेसे। यही कारण है कि पहले संक्षेपमें बतलाया जायगा कि वैज्ञानिक लोग प्राणियोंको किस प्रकार विविध समुदायोंमें क्रमसे रक्खा करते हैं।

पहली बात तो यह है कि कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनमें रीढ़ होती है और कुछ ऐसे जिनमें रीढ़ नहीं होती। उदाहरणतः, मनुष्यमें रीढ़ होती है, बकरीमें भी रीढ़ होती है, और मछलीमें भी। परन्तु मक्खी, केंचुए या चींटीमें नहीं होती। इसलिये वैज्ञानिकोंने सब प्राणियोंको दो समूहोंमें बाँटा है—

(१) पृष्ठवंशी,

(२) अपृष्ठवंशी।

संस्कृतमें रीढ़को पृष्ठवंश कहते हैं और इसलिये उन प्राणियोंको जिनमें रीढ़ होती है पृष्ठवंशी कहा जाता है। जिनमें रीढ़ नहीं होती उनको अपृष्ठवंशी कहते हैं।

फिर पृष्ठवंशी प्राणियोंको पाँच श्रेणियोंमें बाँटा गया है—

(१) स्तनपोषी, अर्थात् वे जिनमें मातायें अपने बच्चोंको अपने स्तनका दूध पिलाती हैं, जैसे मनुष्य, गाय, कुत्ता आदि।

(२) पक्षी, अर्थात् चिड़िये।

(३) उरंगम, अर्थात् वे प्राणी जो प्रायः अपने पेटके बल चलते हैं, जैसे छिपकली, घड़ियाल, साँप आदि।

(४) स्थलजलचर, अर्थात् वे प्राणी जो स्थल (भूमि) पर भी रह सकें और जलमें भी रह सकें, जैसे मेंढक।

(५) मत्स्य, अर्थात मछलियाँ, जो केवल जलमें रह सकती हैं।

अपृष्ठवंशियोंकी श्रेणियों पर कहीं और विचार किया जायगा।

पूर्वोक्त श्रेणियोंमेंसे प्रत्येकको कई वर्गोंमें बाँट दिया गया है। उदाहरणतः, स्तनधारियोंमें एक वर्ग मांसभुक (= मांस खाने वाले) पशुओंका है। इस वर्गमें सिंह, बाघ, बिल्ली, कुत्ता, सियार, भेड़िया, भालू, ऊदबिलाव आदि पशु रक्खे गए हैं, क्योंकि ये सब अन्य जानवरोंको मार कर उनका मांस खाते हैं।

ऊपर बतलाया जा चुका है कि विकास बहुत धीरे-धीरे हुआ है और प्राणियोंकी विविध जातियोंमें, यदि वे विकास-क्रममें रक्खे जायँ, थोड़ा-थोड़ा ही अंतर दिखलाई पड़ता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि श्रेणियों और वर्गोंमें प्राणियोंका विभाजन एकदम पक्की तरह नहीं हो पाता।

उदहरणतः, यदि मांसभुक पशुओं पर ही विचार किया जाय तो देखा जायगा कि कुछ ऐसे भी पशु हैं जो कभी-कभी ही मांस खाते हैं और साधारणतः अन्य रीतियोंसे अपना जीवन निर्वाह करते हैं। बहुधा शरीर-रचना आदि पर विचार करनेसे वैज्ञानिक लोग निश्चय रूपसे बतला सकते हैं कि किसी विशेष प्राणीको किस वर्गमें रखना चाहिए, परन्तु कभी-कभी वे भी धोखा खा गए हैं, और पीछेके खोजोंसे पता चला है कि असली बात क्या है। प्राणी ताशके पत्ते नहीं हैं कि उन्हें एक बच्चा भी छाँट कर शुद्ध समूहोंमें बाँट सके।

वंश, गण और जाति

प्रत्येक वर्गमें इतने प्राणी पड़ते हैं कि उनको वंशों में बाँटा जाता है। उदाहरणतः, मांसभुकोंमें एक वंश बिल्लियोंका है, जिसमें सिंह, बाघ और बिल्ली रक्खे गए हैं; ये तीनों एक दूसरेसे बहुत मिलते-जुलते हैं। इसी प्रकार मांसभुकोंमें एक वंश कुत्तोंका है, जिसमें कुत्ता, सियार, भेड़िया आदि रक्खे गए हैं।

परन्तु केवल वंशसे ही काम नहीं चलता, क्योंकि प्रत्येक वंशमें ऐसे विभिन्न जन्तु पड़ते हैं जैसे बाघ और बिल्ली। इसलिए वंशोंको विविध गणोंमें बाँट दिया गया है। प्रत्येक गणमें वे प्राणी रहते हैं जो एक दूसरेसे बहुत ही अधिक मिलते-जुलते हैं। अंतमें प्रत्येक गणके प्राणी कई जातियोंमें बाँट दिए गए हैं। प्रत्येक जातिमें केवल वे प्राणी रक्खे गए हैं जो इतने समान होते हैं कि उनको एक ही माता-पिताकी संतति मानना असम्भव नहीं प्रतीत होता।

प्रत्येक प्राणीके वैज्ञानिक नाममें दो शब्द रहते हैं। पहला शब्द सूचित करता है कि वह प्राणी किस गणका है और दूसरा यह बतलाता है कि प्राणी उसमेंसे किस जातिका है। उदाहरणतः, हाथियोंको लैटिनमें एलीफ़ैस कहते हैं और इस प्रकार भारतवर्षके हाथियोंको एलिफ़ैस इंडिकस और अफ़रीकाके हाथियोंको एलिफ़ैस ऐफ्रिकैनस कहते हैं। इन दोनों जातियोंके हाथियोंमें इतना अन्तर है कि वे एक ही माँ-बापके बच्चे हो नहीं सकते। इसी प्रकार सिंहको फ़ीलिस लियो, बाघको फ़ीलिस टाइग्रिस, तेंदुयेको फ़ीलिस पार्डस और घरेलू बिल्लीको फ़ीलिस डोमेस्टिका कहते हैं।

साधारण बोलचालकी भाषामें एक ही जानवरका नाम भिन्न-भिन्न प्रदेशोंमें भिन्न-भिन्न पड़ गया है। इससे वैज्ञानिक कार्यमें बड़ी गड़बड़ी और बाधा पड़ती थी। अब धीरे-धीरे वैज्ञानिकोंके चुने उन दो शब्द वाले लैटिन नामोंका प्रचार बढ़ता जा रहा है जिनके कुछ उदाहरण ऊपर दिये गये हैं। वैज्ञानिकोंके बीच तो बिना लैटिन नामके काम ही नहीं चलता।

संसारमें प्राणियोंकी जातियोंकी संख्या पाँच लाखसे ऊपर है। इसलिये इस ग्रंथमें सब जातियोंका प्रदर्शन नहीं कराया जा सकता, केवल प्रमुख या विशेष मनोरंजक जातियोंकी ही चर्चा की जायगी। एक बात और है। यदि हम विकास-सिद्धान्तका अनुसरण करें तो हमें पहले उन प्राणियोंका दिग्दर्शन करना चाहिये जो आरम्भमें हुये और तब क्रमानुसार अधिकाधिक विकसित प्राणियों पर ध्यान देना चाहिये। परन्तु वर्तमान-सरीखे पुस्तकोंमें साधारणतः उल्टे ही क्रमसे चला जाता है, और यही हम भी करेंगे।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि उच्च कोटिके जीव निम्न श्रेणियों और वर्गोंमें से सभीसे होकर विकसित नहीं हुये हैं, कई वर्ग तो मूल विकास-रेखासे शाखाके रूपमें निकल पड़े हैं।

२

स्तनपोषी

स्तनपोषी प्राणियोंमें रीढ़ होती है, उनका रुधिर गरम होता है, शरीर पर रोयें या बाल होते हैं और बचपनमें वे अपनी माताका दूध पीते हैं। आज स्तनपोषियोंकी संख्याको देख कर यह कल्पना करना असम्भव हो जाता है कि एक ऐसा भी समय था जब इस पृथ्वी पर कोई स्तनपोषी प्राणी था ही नहीं, परन्तु सच्ची बात यही है। भूमिमें दबे प्राचीन प्राणियोंकी बची-खुची हड्डियोंसे यह प्रत्यक्ष है कि आजसे कोई सात करोड़ वर्ष पहले स्तनपोषी जीव नहीं होते थे। तब उरंगमोंका राज था। यद्यपि बड़े उरंगम अत्यन्त बड़े और डरावने होते थे, तो भी जब स्तनपोषी उत्पन्न हुये तो उन्होंने उरंगमोंको धीरे-धीरे दबा

डाला। वे उरंगमोंके अंडोंको खा जाया करते थे। फिर स्तनपोषी साधारणतः झुंड-के-झुंड साथ रहा करते थे। इससे भी वे उरंगमोंपर अधिक सुगमतासे विजय पा सके।

प्राचीन स्तनपोषी ठीक उसी प्रकारके न थे जैसे वे आज हैं। कुछ स्तनपोषी जो आज छोटे हैं पहले बहुत बड़े होते थे। कुछ जो आज बड़े हैं पहले बहुत छोटे होते थे। आज प्राणियोंमें मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है, परन्तु प्राचीन कालमें उसकी प्रभुता इतनी व्यापक नहीं थी।

३

गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी, ओरांग-उटान, इत्यादि

प्रधानक वर्ग

विकासकी दृष्टिसे उच्चतम वर्गके पशु वे हैं जिनको प्रधानक कहते हैं। इसी वर्गमें मनुष्यसे मिलते-जुलते बनमानुस, लंगूर, बन्दर आदि हैं। यदि बनमानुसों या बन्दरोंकी हड्डियोंका मिलान मनुष्यकी हड्डियोंसे किया जाय तो तुरन्त पता चलता है कि दोनोंकी शरीर-रचना प्रायः एक-सी है। प्रमुख अन्तर इसीमें है कि बन्दरोंमें मनुष्यकी अपेक्षा कोई अंग छोटे, कोई बड़े होते हैं। बनमानुसोंमें तो बाहरी रूपमें भी समानता है क्योंकि उनमें भी पूँछ नहीं होती। इन बनमानुसोंकी रहन-सहन और आहार-विहार भी मनुष्योंसे बहुत मिलती-जुलती है। आज भी कुछ असभ्य जंगली मनुष्य-जातियाँ इस पृथ्वीके कोने-अँतरेमें वर्तमान हैं जो बनमानुसोंसे विशेष अधिक विकसित नहीं हैं। इन जातियोंके मनुष्य पेड़ोंपर रहते हैं, फल और अन्य जंगली उपज खाते हैं और कपड़ा पहनना, रसोई रींधना, पढ़ना-लिखना, पूजा-पाठ, रीति-रसम नहीं जानते। तो भी निम्नतम मनुष्य उच्चतम बनमानुसोंसे बुद्धिमें कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर है।

प्रधानकोंमें गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी और ओरांग-उटान, लंगूर, बन्दर, लीमर, लोरिस और टार्सियस आदि जन्तु हैं। इनमेंसे कुछका ब्योरेवार वर्णन नीचे दिया जाता है।

गोरिल्ला

बनमानुसोंका अर्थ है जंगलका मनुष्य और इस शब्दसे उन वानरोंका बोध होता है जो मनुष्यसे इतने मिलते-जुलते हैं कि उनके मनुष्य होनेका भ्रम हमें हो सकता है। यों तो वानरका ही अर्थ है वह जन्तु जिसके बारेमें सन्देह हो कि वह क्या (=वा) मनुष्य (=नर) तो नहीं है और हमारा हिन्दी शब्द बन्दर 'वानर' का ही अपभ्रंश है। बनमानुसोंमें गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी, या ओरांग-उटान इन तीनोंको सम्मिलित किया जा सकता है, क्योंकि तीनों मनुष्यसे बहुत मिलते-जुलते हैं।

आजसे कोई दो सौ वर्ष पहले जब यात्रा करनेके साधनोंमें बहुत उन्नति नहीं हुई थी और सचित्र पुस्तक, फ़ोटोग्राफ़, आदिका चलन बहुत कम था, गोरिल्लाके बारेमें विचित्र बातें प्रसिद्ध थीं, यहाँ तक कि लोगोंका विश्वास था कि गोरिल्ला मानव स्त्रियोंको पकड़ ले जाते हैं और उन्हें अपनी स्त्री बना कर रखते हैं।

आज भी गोरिल्लाके सम्बन्धमें पूरी जानकारी नहीं है, तो भी हम उनके बारेमें बहुत-सी बातें अब ठीक-ठीक जानते हैं। जबसे इस जन्तुको पशु-वाटिकाओंमें पाला गया है और वैज्ञानिकोंको सुविधाजनक रीतिसे उनकी रहन-सहनका सूक्ष्म अध्ययन करनेको मिला है तबसे बहुत-सी नवीन बातोंका पता चला है*।

गोरिल्ला मध्य अफ्रीकाके घने जंगलोंमें होता है। वहाँ की भाषामें गोरिल्ला शब्दका अर्थ है 'जंगली मनुष्य'। बनमानुसोंमें यह सबसे बड़ा और बलवान है। इसके बृहद् आकार और अन्य गुणोंके कारण वैज्ञानिक इसीको मनुष्यसे निकटतम प्राणी मानते हैं। देखनेमें यह गहरे भूरे, प्रायः काले, रंगका होता है। सारे शरीर पर बाल होता है। इसका शरीर भारी और बलवान होता है। नर गोरिल्ला

* ऐसी बाटिकाको जहाँ बहुत मेलके जन्तु दिखलानेके लिये पाले जाते हैं पशुबाटिका (अँग्रेज़ीमें जूलॉजिकल गार्डेन) कहते हैं।

लगभग ६ फुट ऊँचा और २० मन तौलका होता है। वह मनुष्यकी तरह खड़ा भी हो सकता है, परन्तु चारों हाथ-पैरोंके बल बन्दरकी तरह चलता है और इसलिये लोग यह नहीं समझ पाते कि वह वस्तुतः मनुष्यकी ही ऊँचाईका होता है। जवान गोरिल्लामें पाँच-छः मनुष्योंके बराबर बल होता है और यह अपूर्व बल उसे केवल फल, मूल, कन्द, गन्ना और चिड़ियोंके खानेसे प्राप्त होता है।

गोरिल्ला

इसके बृहद आकार और अन्य गुणोंके कारण वैज्ञानिक इसीको मनुष्यसे निकटतम प्राणी मानते हैं।

गोरिल्ला खेतोंमें घुस कर भी कभी-कभी नुकसान करते हैं परन्तु अधिकतर वे जंगलोंमें ही रहते हैं। उनसे छेड़खानी करने पर या खेतोंसे उन्हें भगानेकी चेष्टा करने पर वे मनुष्य पर आक्रमण कर सकते हैं, परन्तु साधारणतः वे शांत स्वभावके होते हैं और मनुष्यसे दूर रहते हैं। एक समय लोगोंकी धारणा थी कि गोरिल्ला बड़े भयंकर जन्तु होते हैं, परन्तु यह निर्मूल धारणा थी।

गोरिल्लाके अपने निजी घरेलू नियम हैं। एक बारमें केवल एक बच्चा उत्पन्न होता है और कई वर्षों तक वह अपने माँ-बापके साथ रहता है। गोरिल्लोंके एक परिवारमें एक बड़ा नर, उसकी कई पत्नियाँ, और छोटे-बड़े कई बच्चे रहते हैं। परिवार एक स्थानसे दूसरे स्थान तक चलता-फिरता रहता है। दिन तो चलने और खाने-पीनेमें व्यतीत होता है, परन्तु रातको किसी उचित स्थानमें पड़ाव पड़ता है। साधारणतः प्रति रात्रि किसी नवीन स्थानमें पड़ाव पड़ता है। नारियाँ और बच्चे किसी घने पेड़ पर चढ़ जाते हैं और वहाँ शाखायें और टहनियाँ जमा कर सोने भर का स्थान बना लेते हैं। वहीं वे सो जाते हैं, परन्तु गृहस्वामी पेड़की जड़के पास ही बैठा हुआ सोता है। पीठ को वह तने पर टेक लेता है और अपनी छाती पर वह अपने हाथोंको मोड़ लेता है।

जब गोरिल्ला कभी कुपित होता है तो ऐसा घोर गरजन करता है कि उसका नाद कोसों दूर तक सुनाई पड़ता है। जिन पुराने यात्रियों ने गोरिल्लाको देखा था उनका कहना था कि गरजनेके ऊपरसे गोरिल्ला अपने छातीको नगाड़ेकी तरह पीट कर भी कोलाहल करता है, परन्तु अब पता चला है कि अपने शत्रुको डरानेके अभिप्रायसे वह ऐसा नहीं करता। मोक और मैना नामकी गोरिल्ला-दम्पति लंडनकी पशुवाटिकामें थी, और जब कभी इन गोरिल्लोंमें कोई तीव्र आवेग उत्पन्न होता था, चाहे क्रोधका, चाहे हर्षका, तो ये छाती पीटते थे; कभी गर्जनके साथ, कभी चुप रह कर।

पहले तो गोरिल्लोंको कहीं भी पालना असम्भव था। बाँध कर रखनेसे वे मर जाया करते थे। परन्तु अब आधुनिक विज्ञानके बल पर उनके लिये अनुकूल वातावरण उपस्थित कर देनेमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती। उदाहरणतः, मोक और मैनाके लिये कृत्रिम धूप बिजलीकी बत्तियोंसे उत्पन्न की गई है। उनका घर खुला रक्खा जाता है जिससे वायु स्वच्छंदतासे आ-जा सके; साथ ही उस घरको इतना गरम रक्खा जाता है कि इन गोरिल्लोंको मध्य अफ्रीकाकी

तरहकी जलवायु मिलती है। ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि उनको व्यायाम करनेका भी यथेष्ट अवसर मिले और उनको भोजन भी खूब सावधानीसे दिया जाता है जिससे उन्हें किसी आवश्यक आहार-अंशकी कमी न पड़े। उनको कंद, मूल, फल, साग-भाजी और अंडे दिये जाते हैं। जाड़ेमें कुछ मांस भी दिया जाता है। मद्य और तम्बाकूका निषेध है, यद्यपि गोरिल्ला आदि बनमानुस बहुत शीघ्र इन मादक पदार्थोंका सेवन करना सीख जाते हैं। जब मोक और मैना लंडनमें लाये गये थे तो वे बच्चे ही थे, परन्तु आधुनिक पालन-विधियोंसे वे बराबर स्वस्थ रहे हैं और इस समय खूब हृष्ट-पुष्ट हैं। बरलिनकी पशुवाटिकामें भी कई गोरिल्ले हैं।

चिम्पैंज़ी

लोगोंको चिम्पैंज़ी बड़ा प्यारा लगता है। यह बड़ा ही खुशमिजाज़ और मसखरा होता है। गोरिल्लासे यह इस बारेमें पूर्णतया भिन्न है, क्योंकि गोरिल्ले-का स्वभाव मौन और रुखा होता है। रोम-रहित मुखड़े, बड़े कान, मनुष्योंकेसे हाथ-पैर और सुंदर चिकना चमकदार काले चर्मके कारण वह बहुत कुछ मनुष्य-सा लगता है, जिससे लोगोंकी समवेदना बरवश उसकी ओर खिंच जाती है।

चिम्पैंज़ी गोरिल्लेसे कम मोटा होता है और गोरिल्लेकी तरह उसके तोंद भी नहीं होती। चिम्पैंज़ी भी बहुत बलिष्ट होता है। मादाकी अपेक्षा नर ज्योढ़ा बली होता है और लम्बाईमें भी मादासे एक फुट बड़ा होता है। नरकी लंबाई लगभग ५ फुट होती है। कई वैज्ञानिकों ने चिम्पैंज़ी तथा अन्य मनुष्य-सदृश बन्दरोंकी 'बोली' समझनेकी चेष्टा की है, परन्तु यह नहीं सिद्ध किया जा सका है कि वे कोई बोली बोलते हैं।

गोरिल्लाकी तरह चिम्पैंज़ी भी साधारणतः कंद, मूल, फल, शाक, भाजी आदि ही खाकर रहता है और उसी देशके जंगलोंमें मिलता है जहाँ गोरिल्ला। अभी तक ठीक पता नहीं चल सका है कि चिम्पैंज़ीका पारिवारिक जीवन किस ढंगका होता है, परन्तु विश्वास किया जाता है कि बच्चे कई वर्ष तक अपने माँ-बापके साथ रहते हैं। जवान चिम्पैंज़ी झुंड-के-झुंड चलते हैं और बड़ा ऊधम मचाते हैं।

पशुवाटिकाओं और सरकसोंमें, तथा पालतू जानवरों की तरह, चिम्पैंज़ी बहुत बार पाले गये हैं। उनकी बुद्धि-मानी तथा हास्यप्रियताकी अनेक कहानियाँ सुनाई जा सकती हैं।
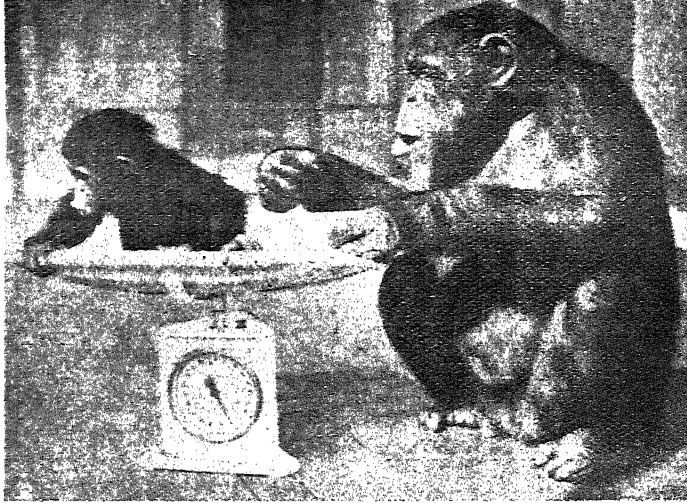
चिम्पैंज़ी

लोगोंको चिम्पैंज़ी बड़ा प्यारा लगता है। यह बड़ा ही खुशमिजाज़ और मसखरा होता है। यहाँ वह अपने बच्चेको तराज़ूमें तौल रहा है।

चिम्पैंज़ीको अकेला रहना नापसन्द है। यदि और कोई साथी न मिलेगा तो वह किसी छोटे बन्दरको ही अपना मित्र बना लेगा। कुछ लोगोंने 'चिम्प' को—प्यारसे लोग अकसर चिम्पैंज़ी-को चिम्प कहते हैं—अपने बच्चोंके साथ पाल-पोस कर बड़ा किया है। ऐसी परि-स्थितिमें मानुषिक आचरणको चिंप मानव बच्चोंसे अधिक शीघ्र सीखता है, परन्तु कुछ ही वर्षोंमें वह पीछे छूट जाता है। बड़ा होने पर, विशेषकर छः-सात सालकी आयुके बाद, उसके स्वभाव पर भरोसा नहीं किया जा सकता; कभी-कभी

वह अनायास ही कुपित हो जाता है।

चिम्पैंज़ीको अपनी प्रशंसा बड़ी मीठी लगती है। बूलिंगर ने अपनी पुस्तक 'वर्ल्ड नैचुरल हिस्ट्री' में लिखा है कि छोटा-सा एक चिंप उनसे बहुत हिल-मिल गया था और एक बार एक प्रीतिभोजमें उनके साथ था। बड़ी स्वच्छता और नियमसे वह भी भोजमें साथ दे रहा था। वह छुरी-काँटोंका प्रयोग भी शुद्ध ढंगसे कर रहा था। जब लोग हँसते तो वह भी प्रसन्न होता और ताली पीटता। भोजके अन्तमें फल आये। इस पर वह अपने लोभको न रोक सका। उसने चट दोनों हाथोंको डालीमें छोड़ दिया। लोग हँस पड़े। चिंप तुरन्त समझ गया कि भूल हुई और लजा कर अपने मुँहको तुरन्त अपने हाथोंमें छिपा लिया।

चिम्पैंज़ी कपड़ा पहनना शीघ्र सीख लेता है और उसे सुंदर कपड़े पहनना बहुत अच्छा लगता है। थोड़ा-सा ही सिखाने पर वह बाइसिकिल चलाना भी सीख सकता है। हामबुर्ग (जरमनी) की पशुवाटिकामें एक चिम्प था जो बाइसिकिल पर चढ़ कर सड़कों पर चला जाता था और फलवालोंकी दूकानोंसे फल लूट कर बड़ी तेज़ीसे बाइसिकिल दौड़ा कर भाग आता था।

चिम्पमें बुद्धि भी होती है। यदि फल ऊँचे पर टँगे हों और उसे दो-चार बक्स दिखाई पड़ जायँ तो वह एकके ऊपर एक बक्स रख कर फल उतार लेगा। एक चिंपैंज़ीके कुछ दाँत सड़ गये थे और उखाड़ दिये गये। क्लोरोफ़ार्मकी मूर्च्छा दूर होने पर उसे दवासे कुल्ली करना सिखलाया गया। अवश्य ही इससे उसकी पीड़ा कुछ शांत हुई होगी। फिर क्या था, वह बराबर कुल्ली कर लेता और अच्छे होने पर भी कुल्ली करनेको तैयार था।

थोड़े दिनोंसे बड़े पशुवाटिकाओंमें ऐसा वातावरण उपस्थित किया जा सका है कि चिंपैंज़ी उसमें वैसा ही स्वस्थ रह सके जैसा वह अफ्रीकाके जंगलोंमें रहता है। फ़लतः, उन वाटिकाओंमें बच्चे भी उत्पन्न हुये हैं। देखा गया है कि माता चिम्पैंज़ी अपने बच्चोंको बड़ी सावधानीसे पालती है और यदि वे नटखटी करते हैं तो उनको चाँटे भी लगाती है।

ओरांग-उटान

ओरांग-उटान चिम्पैंज़ी और गिबनसे बड़ा होता है। परन्तु कदाचित् इसका मानसिक विकास चिम्पैंज़ीसे कम है। ओरांग-उटानके बारेमें पहले बहुतसी दंतकथायें प्रचलित थीं लेकिन अब पूर्वके देशोंमें जहाजोंके आने-जानेकी सुविधा के कारण इसका वास्तविक जीवन मालूम हो गया है। ओरांग-उटान मलय भाषाका शब्द है और इसका अर्थ है जंगलका मनुष्य। भ्रमवश अँग्रेज़ीमें इसे ओरांग-उटांग भी कहते हैं।

ओरांगकी खाल भूरी लाल होती है। बालोंका रङ्ग भी इसी प्रकारका होता है। वह बहुत धीरे-धीरे, बल्कि कहना चाहिये कि आलसियोंकी तरह चलता है। वास्तवमें यह पेड़ों पर रहने वाला जानवर है और इसलिये इसके लम्बे-लम्बे हाथोंकी कलाइयाँ बहुत प्रबल होती हैं। कलाईकी हड्डियाँ भी विशेष रूप की होती है। उम्र बढ़ने पर सिर आगे झुक जाता है और कभी-कभी नर ओरांगके मुँहके दोनों तरफ़की खाल लटक जाती है। इसी प्रकार गलेके सामनेका भाग लटक कर छाती तक आ जाता है। आँखें बहुत पास होती हैं, नथुने और कान छोटे-छोटे होते हैं। ऊपरका होंठ बड़ा होता है लेकिन ओरांग उसे बड़ी शीघ्रता से सिकोड़ कर अपने दांतोंको दिखानेके लिये सर्वदा प्रस्तुत रहता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि ओरांग केवल बोर्नियो और सुमात्रा द्वीपोंमें ही पाया जाता है। यहाँ यह घने और आर्द्र जंगलोंमें रहता है। एक अद्भुत बात यह है कि ओरांगके शरीरका रंग वही है जो वहाँके निवासी मनुष्योंका है, और यह भी कुछ जंगली मनुष्योंकी भांति पेड़ पर रहता है। मनुष्योंको छोड़ कर इसके मुख्य शत्रु साँप और शेर, चीते आदि हैं।

फसलों पर चढ़ाई करनेके लालचको छोड़ कर ओरांग बहुत ही कम भूमि पर आता है। गोरिल्लाकी तरह यह भी घोंसला या एक प्रकारका मंच बना कर रहता है। धूप और वर्षासे बचनेके लिये यह घास-पत्तीकी छतरी बना लेता है। बन्दी जीवनमें (पशुवाटिकाओंमें) यह अखबार या पुआलसे भी छतरी बना लेता है। केवल एक बार एक बंदी ओरांगने घोंसला बनाया था। कुछ पहले लण्डनकी पशुवाटिकासे रातमें एक बड़ा ओरांग भाग निकला। दूसरे

दिन प्रातः वह आरामसे एक स्वयं बनाये घोंसलेमें बैठा मिला।

ओरांगकी शिक्षाकी ओर बहुत कम लोगोंने ध्यान दिया है। ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें यथेष्ट बुद्धिमानी और तर्कशक्ति है। न्यूयार्ककी पशुवाटिकाके एक ओरांग ने एक लकड़ीकी चाभी बनाई थी। एक बार एक दूसरे ओरांगके पिंजड़ेके निकट भूलसे एक लोहेका टुकड़ा पड़ा रह गया। उसने उस टुकड़ेको उठा लिया और उससे, पिंजड़ेसे बाहर निकलनेके लिये, छड़ोंको मोड़ और झुका कर रास्ता बनाने लगा। यही नहीं, बल्कि उसने इस कामके लिये अपने एक चिम्पैंज़ी साथीसे भी सहयता ली। यह चिम्पैंज़ी भी उसी पिंजड़ेमें बन्द था। बहुधा यह देखा गया है कि ओरांग जब कभी किसी कामको करना आरम्भ करता है तो उसे बहुत मेहनतसे और दत्तचित होकर करता है।

ओरांगका जीवन मनुष्यके जीवनसे बहुत कुछ मिलता-जुलता है। यह परिवार सहित झुंडोंमें रहता है और दिनमें खाना खाता और रातमें सोता है। बच्चेकी शिक्षाका भार पूर्ण रूपसे स्त्री पर ही रहता है और जिस प्रकार पूर्वमें बच्चे बहुधा माताकी गोदीमें रहते हैं उसी प्रकार ओरांगकी माता बचपनमें उसे अपनी गोदमें रखती है। पेड़ों पर रहनेके कारण ओरांगके दैनिक कार्यक्रममें कुछ विशेषता हो गई है। बिना मंच बनाये यह किसी भी स्थानमें अधिक समय नहीं बिताता। ओरांग वही पानी पीता है जो बरसातसे या ओससे पेड़ोंके तनों और शाखाओंके जोड़ोंमें बने गड्ढोंमें इकट्ठा हो जाता है। एक पशुवाटिकाके बन्दरघरमें एक बाल्टीमें पानी भर दिया गया। यद्यपि वहीं एक कटोरी रक्खी थी तो भी ओरांग ने कुछ पुआल उठा लिया और उसको पानीमें डुबो कर चूसने लगा। यह ओरांग जंगलमें काफी समय तक रह चुका था।

ओरांग-उटान

गोरिल्ला और चिम्पैंज़ीकी तरह ओरांग-उटान भी मनुष्यसे बहुत मिलता-जुलता है, परंतु संभवतः इसका मानसिक विकास चिम्पैंज़ीसे कम है।

यद्यपि ओरांग बच्चोंकी भांति बहुत शान्त जानवर है लेकिन कभी-कभी वह बहुत भयंकर और भीषण हो जाता है। यह आदत नर-ओरांगमें बहुत पाई जाती है। जितने भी नर ओरांग पकड़े जाते हैं— चाहे वे जीवित पकड़े गये हों या मृत — उनमेंसे बहुतोंके शरीरपर लड़ाइयोंके चिह्न होते हैं। यह देखा गया है कि ओरांगकी उँगलियोंके सिरे बहुत छोटे होते हैं—कदाचित इसका यह कारण हो कि ओरांग जब लड़ते हैं तो एक दूसरेका हाथ पकड़ कर चबा डालते हैं।

ओरांगका सबसे बड़ा शत्रु साँप है। इसमें सन्देह नहीं कि ओरांगका इससे डरना ठीक ही है क्योंकि जिन जंगलोंमें यह रहता है वहीं बड़े-बड़े विषैले साँप भी पाये

जाते हैं। कदाचित् ओरांग अपने स्वयंके अनुभवसे ही से साँपसे डरता है। एक लण्डनकी पशुवाटिकामें एक छोटेसे ओरांगके साथ एक विषहीन साँपको रख दिया गया। इस ओरांगने कभी साँपको नहीं देखा था। साँपसे डरनेको कौन कहे, वह उसके साथ इतना धींगामुश्ती करने लगा कि साँपकी रक्षाके लिये यह उचित समझा गया कि दोनोंको अलग कर दिया जाय।

ओरांग-उटानके बारेमें न्यूयार्ककी पशुवाटिकाके निरीक्षक डा० डिटमार्शका वर्णन बहुत मनोरञ्जक है। स्वयं उनके ही शब्दोंमें इसका वर्णन सुनिये—

मुझे सबसे अधिक आनन्द ओरांग-उटानके साथ मिलता है। एक बार मुझे सैनफ्रांसिसको जाकर एक ओरांग उटान लानेकी आज्ञा मिली। ओरांग-उटान सिंगापुरसे आया था। सैनफ्रांसिसकोमें एक चीनीके यहाँ चावल पकवा कर मैंने ओरांगको खिलाया। तब स्टेशन गया। रेलगाड़ी-वालोंने पहले तो बहुत झकझक की, लेकिन अन्तमें ये ओरांग-उटानको गाड़ीमें जगह देनेको सहमत हो गये। मैंने बहुत ही सुरक्षित रूपसे ओरांग-उटानके पिंजड़ेको गाड़ीमें रखवा दिया और उनके चारों तरफ लोहेके नल भी लगा दिये। मेरा डिब्बा ओरांग-उटानके डिब्बेसे सात डिब्बे आगे था। इसलिये मैंने एक आदमीको कह दिया कि अगर कोई ज़रूरत हो तो मुझे आकर कह जाये। आधी रातके समय मेरे डिब्बेको किसी ने बड़े जोरसे खटखटाया। कुली-ने क्षमा मांगते हुये मुझसे कहा कि डिब्बेमें आपकी आवश्यकता है। नींदमें झूमता हुआ उधरकी ओर बढ़ा। वहाँ जाने पर मालूम हुआ कि एक रेल कर्मचारी जो कि सामान-की जाँच कर रहा था, ओरांग-उटानके पिंजड़ेके पास आया। शायद उसे कोई कागज नहीं मिल रहा था, इसलिये उसने अपनी जेबसे कागजोंको निकाल कर पिंजड़ेके ऊपर रक्खा और उनमेंसे छाँटने लगा। इसी समय रेल एक ओर मुड़ी और ओरांग जाग पड़ा। शायद ओरांगकी समझमें यह बात नहीं आई कि यहाँ पर खम्भेके समान यह क्या खड़ा है। उसने अपने लम्बे हाथ निकाल कर उन 'खम्भों' को ज़ोरसे ऐंठ दिया। बेचारा कर्मचारी आह-आह करता हुआ एक तरफ गिर पड़ा। भाग्यवश उसका सिर नहीं फूटा .. सुबह मैंने देखा कि पिंजड़ा पाँच-छः जगहसे टूटा हुआ था। एक स्टेशन पर मैंने ओरांग-उटानको जल-पान कराया। दोपहरके समय एक दूसरे स्टेशन पर जब मैं चाय पी रहा रहा था तो मुझे ओरांगके डिब्बेकी ओरसे चीखें और हँसी-की आवाज़ सुनाई पड़ी। एकदम मैं समझ गया कि मेरे ओरांगका इसमें अवश्य कुछ हाथ है। वहाँ जाने पर देखा कि सारे डिब्बेमें मरोड़े हुये कागज़ोंका ढेर लगा है—और धीरे-धीरे वह ढेर बढ़ता ही जाता है। वास्तवमें एक समाचार-पत्र बेचने वाला लड़का वहाँ पर ओरांगको देखनेके लिये आया था। ओरांग ने एक झपट्टेमें उसके समाचार-पत्र छीन लिये और उन्हें फाड़ने लगा। इतनी देर आलस-में बैठनेके पश्चात् जब ओरांगको यह खेल मिला तो पता नहीं उसको कितना आनन्द हुआ; वह बीच-बीचमें किल-कारी भी मारता जाता था। मैंने उस लड़केको तुरन्तु सब समाचार-पत्रोंका मूल्य दे दिया।

कुछ समय पश्चात् एक कुली फिर मेरे डिब्बेमें आया और बिना क्षमा माँगे हुये ही उसने मुझसे जल्दी ही ओरांगके पास चलनेको कहा। वहाँ जाकर मैंने देखा कि ओरांगके हाथमें एक चाकू है और वह उससे आस-पास खड़े हुये दर्शकोंको डरा रहा है। पूछनेसे मालूम हुआ कि एक कुली नये सामानों पर लेबिल चिपकाने आया था। यह सोच कर कि कहीं किसी सामानके पीछे रख कर चाकू भूल न जाय उसने उसे ओरांगके पिंजड़े पर रख दिया। लेबिल काट कर उसने दुबारा फिर वहीं चाकू रख दिया। आवाज होनेसे ओरांग जाग गया और चुपकेसे उसने चाकू पिंजड़ेमें खींच लिया। कुलीने पहले तो चाकू-को खोजा, लेकिन ज्योंही उसने उसे ओरांगके हाथमें देखा वह फौरन कूद पड़ा और एक दूसरे कुलीको बन्दरके मालिकके पास भेजा। बड़ी देर तक सोचनेके पश्चात् मैंने ओरांगको एक तेलकी कुप्पी दिखाई। उसमेंसे तेल गिरता देख कर शायद ओरांगने यह सोचा कि चाकूसे अच्छा यह खेल है। चाकू गिरा दिया और कुप्पी ले ली। तब चुपकेसे मैंने चाकू हटा दिया। —गिरीशचन्द्र शिवहरे

गिबन

मानव-सदृश बन्दरोंमें सबसे निम्न स्थान गिबनोंका है। ये सुमात्रा, मलाया प्रायःद्वीप, आदि, स्थानोंमें पाये जाते

हैं। इन्हें भी पूँछ नहीं होती, परन्तु गोरिल्ला, चिम्पैंज़ी, और ओरांग आदिकी अपेक्षा मनुष्य और गिबनोंमें समता कम है। सुमात्राके गिबनोंकी एक जातिका बन्दर जब चाहता है तो हवा भर कर अपने गलेको फुटबालकी तरह फुला सकता है और तब उसकी बोली इतनी प्रबल निकलती है कि कई मील तक सुनाई देती है।

बैबून

गिबनोंके बादपूँछ युक्त बन्दरोंकी पारी आती है। इनकी कई सौ जातियाँ हैं अफ़रीकाके एक जातिके बन्दर बैबून कहलाते हैं, और भारतवर्षके साधारण बन्दरोंकी तरह ये जंगलमें न रह कर मैदानोंमें रहते हैं। जंगलमें रहनेवाले पूँछयुक्त बन्दरोंकी पूँछे मज़बूत होती हैं, क्योंकि वे पेड़ों पर चढ़ने और रहनेमें इससे काम लिया करते हैं, परन्तु बैबूनोंकी पूँछें बहुत काममें न आनेके कारण, हज़ारों वर्षोंके विकास में, दुर्बल हो गई हैं, और बराबर भूमि पर चलते रहनेसे उनकी हथेलियाँ रूखी और कड़ी हो गई हैं। पृथ्वी पर सूँघ-सूँघ कर अपना आहार ढूँढते रहनेके कारण उनकी घ्राणशक्ति अत्यन्त तीव्र हो गई है। आँखें धँसी हुई होती हैं और इस प्रकार सूर्य-रश्मियोंके चकाचौंधसे उनकी रक्षा होती है। परंतु इन्हीं धँसी आँखों और लम्बी थूथन (या नाक) के कारण बैबून बड़ा भयानक लगता है। दाँत भी बड़े और तेज़ होते हैं जिससे वह अपनेको हिंस्र जीवोंसे रक्षा कर सकता है। जब दो नरोंमें लड़ाई होती है तब भी ये दाँत खूब काममें आते हैं।

अन्य प्रधानकोंकी तरह बैबून भी अधिकतर कंद, मूल, फल, शाक-पात खाता है। परन्तु थोड़ी-बहुत मात्रामें वह मांस भी खाता है। बड़े पशुओंका मांस इसे मिले कहाँ, यह रेगिस्तानके बालूको खोजा करता है और साँप, कीड़े-मकोड़ों, अंडे आदि जो कुछ पाता है खा जाता है। यदि बर्रें या बिच्छू मिल जाय तो बड़ी ही सफ़ाईसे उसका डंक तोड़ कर फेंक देता है और शेषको चट कर जाता है। जब पेट भरा रहता है तो आहारको अपने गालमें भर लेता है और उसे सुविधानुसार खाता है। यह आदत भारतीय बन्दरोंमें भी है और निस्सन्देह उनके गालोंकी समाई विकास-सिद्धान्तानुसार धीरे-धीरे बढ़ती गई होगी, क्योंकि एक साथ झुंडोंमें रहनेके कारण अपने पड़ोसियोंसे छिपा कर आहार उठा रखनेमें कठिनाई पड़ती रही होगी।

बैबूनोंकी रहन-सहन इस बातका सजीव प्रमाण है कि एकतामें ही शक्ति है। बैबून सदा झुंडोंमें रहते हैं। एक-एक टोलीमें बीस-पचीससे लेकर कई सौ बन्दर हो सकते हैं। खेतिहर एक नहीं लाख उपाय करें, जब बैबून किसी खेतमें पिल पड़ते हैं तो बिना अपना पेट भरे नहीं टलते। शेर और चीतेसे भी वे अपनी रक्षा इसी एकताके कारण

बैबून

अफ़रीकाके एक जातिके बन्दर बैबून कहलाते हैं। धँसी आँखों और लम्बी थूथनके कारण वे बड़े भयानक लगते हैं।

सफलतापूर्वक कर सकते हैं। प्रत्येक टोलीमें कई परिवार रहते हैं और प्रत्येक परिवारका अलग सरदार होता है। प्रत्येक सरदारकी कई पत्नियाँ और अनेक बच्चे रहते हैं। इन सब पर सरदार बड़ी दृढ़तासे शासन करता है। स्वभावतः बच्चोंकी संख्या बढ़ती जाती है और वे जवान होते चलते हैं। तब एक दिन कोई तगड़ा जवान किसी सरदारकी पदवी और पत्नियोंको छीनने पर तुल जाता है। फिर दोनोंमें घमासान लड़ाई होती है। बन्दरोंकी टोली ऐसे अवसरों पर दो पक्षोंमें बँट जाती है और सभी युद्धमें सम्मिलित हो जाते हैं। कितनोंको घाव लगता है। कुछ प्राण भी खो बैठते हैं। अन्तमें निर्णय हो ही जाता है कि

सरदार कौन रहेगा। इसी प्रकार यदि कोई नारी बैबून अपने सरदारको छोड़ किसी अन्य नरके साथ हो लेती है तो प्रायः सारी टोलीमें घमासान युद्ध छिड़ जाता है और बहुधा पापिनको अपने प्राणोंसे हाथ धोना पड़ता है।

परन्तु साधारणतः बैबूनोंकी टोलियाँ आपसमें बड़ी एकतासे रहती हैं। कभी-कभी तो उनकी सहयोगिता देख कर आश्चर्य होता है। जब कभी बैबून लोग किसी फल-वाटिकाको लूटना चाहते हैं तो अँधेरी रात तक प्रतीक्षा करते हैं और तब चुपकेसे अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचते हैं। वहाँ आते ही सरदार कई बन्दरोंको पहरा देनेका काम सिपुर्द कर देता है। तब कई अनुभवी बन्दर वाटिकामें घुस जाते हैं। उनमेंसे कुछ पेड़ों पर चढ़ जाते हैं। अपने गालोंमें फलोंको भर कर वे नीचेके बन्दरोंको दे आते हैं। ये सब बाहरके बन्दरोंको फल पहुँचा देते हैं। इस प्रकार सब बन्दरोंका गाल भर जाता है और तब वे उसी प्रकार चुपके-चुपके अपने पड़ावकी ओर चल देते हैं जिस प्रकार वे आये थे।

ऐलफ्रेड ब्रेहम नामक यात्री ने अपनी पुस्तक 'नॉर्थ पोलसे इक्वेटर तक' में एक आँखोंदेखी बात लिखी है जिससे बैबूनोंकी बुद्धि और अपने बच्चोंके लिये प्रेम दोनोंका परिचय मिलता है। इस यात्रीके पास कई शिकारी कुत्ते थे और घाटीमें चलते समय एक बार बैबूनोंकी एक टोली मिल गई जो एक ओरसे दूसरी ओर जा रही थी। कुत्तों-ने उनको तुरन्त दौड़ाया। नारी बैबूनें तो सब भाग गईं, परंतु नरों ने कुत्तोंका तुरन्त सामना किया। ये खों-खों करने लगे, और पृथ्वी पर हाथ पटकने लगे। उन्होंने मुँह खोल कर अपने दाँत इस विकट रूपसे कुत्तोंको दिखलाया कि कुत्ते शिकारमें अत्यन्त चतुर और अभ्यस्त होते हुये भी, डर कर पीछे हट गये। जब कुत्तोंको फिर ललकारा गया और बन्दरों पर वे दुबारा झपटे तब तक बन्दरोंने अपनी मोर्चा-बन्दी कर ली थी और सब बन्दर सुरक्षित स्थान पर पहुँच गये थे।

परन्तु एक छोटा-सा बच्चा, जो सम्भवतः छः महीने-का रहा होगा, पीछे छूट गया। कुत्ते उसी पर झपटे और वह बेचारा ज़ोर-ज़ोरसे चिल्लाने लगा। तो भी कुत्तोंके पहुँचनेके पहले ही, वह एक चट्टानके ऊपर चढ़ गया। कुत्तोंने चारों ओरसे उसे घेर लिया कि जब वह उतरे तो उसे पकड़ लें। परन्तु उनके भाग्यमें यह गौरव नहीं लिखा था। एक बुड्ढा बैबून अपने सुरक्षित स्थान पर से उतर पड़ा और बिना ज़रा भी घबराहटके, गर्व और सम्मानके साथ, घिरे हुये बच्चेकी तरफ बढ़ा। उसमें भयके कोई भी चिह्न नहीं थे। यदि कोई भी कुत्ता उसकी ओर बढ़नेकी चेष्टा करता तो वह ऐसी घुड़की सुनाता और ऐसी भयङ्कर आकृति दिखाता कि कुत्ता सिटपिटा जाता। अन्तमें वह चट्टान पर चढ़ गया और बच्चेको उठा कर उसी गर्वके साथ लौट गया। कुत्ते मुँह देखते ही रह गये और उसका कुछ बिगाड़ नहीं सके।

इधर तो सरदार अपनी जान पर खेल कर बच्चेको बचानेके लिये उतरा, उधर शेष सब बन्दर चट्टानके किनारे पर बढ़ आये और वहींसे वे खों-खों और गर्जनकी ध्वनि ऐसी उठाई कि कोई भी होता तो डर जाता, कुत्ते क्या थे। छोटे और बड़े, बूढ़े और बच्चे, सभी इस शोर मचानेमें शरीक थे।

भारतवर्षके बन्दरोंकी तरह बैबून भी लोगोंके कपड़े उठा ले जाते हैं और मनुष्योंको तंग करते हैं। अफ्रीका वालोंमें किंवदंती है कि बैबून मानव बच्चोंको उठा ले जाते हैं और उन्हें पालते हैं। सिनेमाके शौकीनोंने टारज़नका नाम सुना होगा जिसे बन्दरों ने पाला था और जो मनुष्य होते हुये भी बन्दरोंकी तरह एक पेड़से दूसरे पेड़ कूद सकता था, परन्तु जहाँ तक जाँच-पड़तालसे पता चला है, यह बात ठीक नहीं जान पड़ती कि बैबून मानव बच्चे उठा ले जाते हैं।

बैबूनोंमें बच्चा एक समयमें एक उत्पन्न होता है। माता पहले तो बच्चेको अपने पेटमें चिपका कर चलती है; फिर, उसके बड़े हो जाने पर, कुछ समय तक उसको अपनी पीठ पर चढ़ा कर चलती है, ठीक उसी प्रकार जैसे भारतीय बन्दरोंमें होता है।

भारतीय बन्दर

भारतके साधारण बन्दरोंसे सभी परिचित होंगे। कई शहरोंमें वे इतनी अधिक मात्रामें रहते हैं कि लोग उनसे तंग आ जाते हैं। संयुक्त प्रान्तके कुछ मन्दिरोंमें हज़ारों

बन्दर रहते हैं। शहरके बन्दरोंकी बँदर-घुड़की प्रसिद्ध है। दाँत दिखाने और खों-खों करने पर ही उनका शत्रु भाग जाता है, लड़नेकी नौबत नहीं आती। उनकी एकता भी प्रसिद्ध है। यदि एक बन्दर आपत्तिमें फँस जाय तो सब उसकी सहायताके लिये टूट पड़ते हैं।

इस जातिके बन्दरोंमें—इनका लैटिन नाम है मकाका रीसस—जाड़ा सहन करनेकी अद्भुत शक्ति होती है। इसी लिए बहुतसे बंदर पकड़ कर यूरोप और अमरीका भेज दिये जाते हैं और वहाँ इनके लिए अच्छा दाम मिलता है। कुछ तो पशुवाटिकाओंमें पाले जाते हैं; कुछ पर वैज्ञानिक अनुसंधान किया जाता है। गत यूरोपीय महासमरमें इन बेचारे बंदरों पर तरह-तरहकी गैसें छोड़ कर इस बातकी जाँच की जा रही थी कि शत्रुके मारनेके लिए कौन-सी गैस सर्वोत्तम होगी। ब्रिटेनके भिखमंगे भी इन बंदरोंका उपयोग करते हैं। वहाँ भीख माँगना जुर्म है। भिखमंगोंको पकड़ कर पुलिस वाले अनाथालयोंमें भेज देते हैं। इस असुविधासे बचनेके लिए वे एक पालतू बंदर अपने कंधे पर चढ़ा लेते हैं और कोई बाजा अपने साथ ले लेते हैं। बाजा बजाते हुए वे गलियोंमें घूमा करते हैं। उनको इस प्रकार पर्याप्त भिक्षा मिल जाती है, इतना कि अनाथालयों की अपेक्षा वे कहीं अधिक चैनसे रह सकें।

भारतमें लंगूर भी रहते हैं। ये साधारण बंदरोंसे बड़े होते हैं और बहुत फुरतीले होते है। एक छलाँगमें ३० फुट पार कर लेना इनके लिए असंभव नहीं है। इनकी पूँछ बहुत लंबी होती है, शरीरका रंग मटमैला होता है और मुख काला होता है। साधारणतः ये पहाड़ी प्रदेशोंमें ही रहते हैं। मंदिरोंमें मुफ्तका माल खानेको मिलनेके कारण कहीं-कहींके मंदिरोंमें भी बहुतसे लंगूर रहते हैं। इनको कुछ लोग हनुमान कहते हैं।

अन्य बंदर

बंदर प्रायः सभी गरम देशोंमें होते हैं और उनमें थोड़ा-बहुत अंतर होता है, परंतु यहाँ पर उन सबका अलग-अलग वर्णन नहीं दिया जा सकता। कुछ विचित्र बंदरोंकी ही संक्षिप्त सूचना नीचे दी जाती है।

मैनड्रिल—मैनड्रिल हमारे साधारण बंदरोंसे बड़ा होता है; यदि वह अपनी पिछली टाँगोंके बल खड़ा हो जाय तो चार फुटसे कुछ लंबा ही ठहरेगा। परंतु इस बंदरका मुख ऐसा विचित्र होता है जैसा किसी अन्य बंदरका नहीं होता। नाक कहिए या थूथन, यह अंग बहुत लंबा होता है और उस परकी त्वचामें इस प्रकार झुर्रियाँ पड़ी रहती हैं कि गहरी धारियाँ दिखलाई पड़ती हैं। यह त्वचा चटक नीले रंगकी होती है और नाक चटक लाल रंगकी होती है। गुलाबी कान, और बादामी रंगके गलमुच्छे आकृतिको और भी विचित्र बना देते हैं। जब मैंने, कुछ वर्ष हुए, कलकत्तेका "चिड़ियाखाना" (पशुवाटिका) देखा था तो वहाँके सब बंदरोंमें यही सबसे अधिक विचित्र जान पड़ता था। यह बंदर पश्चिमी अफ्रीकाका निवासी है और छोटी-छोटी टोलियोंमें रहता है। वहाँके निवासी इससे बहुत डरते हैं। इसमें इतना बल होता है कि वह अकेला ही तेंदुएसे भिड़ जाता है और उसे परास्त कर देता है।

ऊनी बंदर—ऊनी बंदर देखनेमें बहुत चित्ताकर्षक होता है। भेंड़के ऊनकी तरह इसके शरीर पर घना भूरे या खाकी रंगका बाल होता है। मुँह काला और पूँछ बड़ी लम्बी होती है। इस पूँछको वृक्षोंकी शाखा पर लपेट कर उसके सहारे वह लटक भी सकता है। इसका स्वभाव बहुत
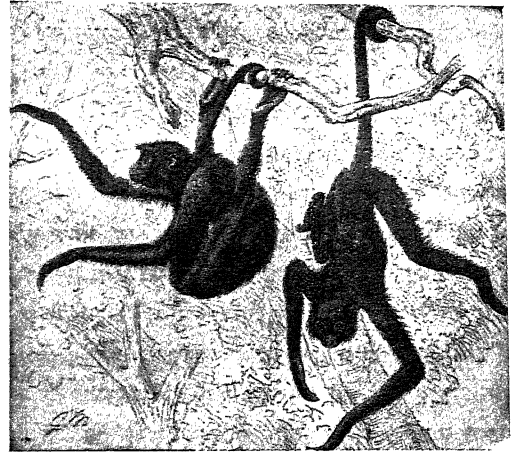
मकड़ी-बन्दर

शरीरके हिसाबसे इस बंदरके हाथ, पैर और पूँछ सब इतने बड़े होते हैं कि जान पड़ता है कि जैसे पाँच टाँगोंकी कोई बड़ी-सी मकड़ी हो।

शांत होता है और यद्यपि इसके दांत बड़े और पैने होते हैं यह दूसरोंसे लड़ना नहीं चाहता।

मकड़ी-बंदर—शरीरके हिसाबसे इस बंदरके हाथ, पैर और पूँछ सब इतने बड़े होते हैं कि जान पड़ता है कि जैसे पाँच टाँगोंकी की कोई बड़ी-सी मकड़ी हो। वृक्ष-शाखा-में पूँछको लपेट कर उसके बल वे लटक सकते हैं। इतना ही नहीं, यदि कभी नदी पार करनेको आवश्यकता पड़े तो वृक्षसे पूँछके बल लटकते हुए एक बंदर पर दूसरा बंदर अपनी पूँछ लपेट कर लटक जायगा, और फिर उससे अन्य बंदर लटक जायँगे। इस प्रकार लम्बी जंजीर-सी बन जायगी। अब पेंघ मार कर ये सब झूलेंगे और जब नदीके उस पारका कोई वृक्ष पकड़में आ जायगा तो पहला बंदर इस पारके वृक्षको छोड़ देगा और इस प्रकार समूची टोली उस पार हो जायगी। मकड़ी-बंदर मेक्सिको तथा आस-पासके देशोंमें होता है।

गिलहरी-बंदर—यह बंदर बहुत छोटा, लग-भग गिलहरीके बराबर होता है। यह दक्षिणी अमरीकाके कुछ प्रांतोंमें होता है और वहाँके लोग इसे अकसर पालते हैं।

मारमोसेट—मारमोसेट तो गिलहरीसे भी छोटे होते हैं। इनकी कई जातियाँ हैं। बड़े-से-बड़ा मारमोसेट गिलहरीके बराबर होता है। रूपमें वे नन्हें-नन्हें लंगूरसे होते हैं, परन्तु मुख काला नहीं होता। कई जातियोंका रंग चटक और सुहावना होता है। एक चटक नारंगी रंगका होता है। दक्षिणी अमरीकाकी महिलाएँ छोटे मारमोसेटको अपने जूड़ोंमें पालती हैं। कहीं कुछ खाने योग्य कीड़ा-मकोड़ा या अन्य वस्तु दिखलाई पड़ गयी तो वहाँसे वह एकाएक निकल पड़ता है और उसे लेकर फिर अपनी मलकिनके जूड़ेमें घुस जाता है। वहाँ आरामसे बैठकर उसे खाता है। पहले ठंढे देशोंमें पालतू मारमोसेट शीघ्र मर जाया करते थे, परन्तु अब विटैमिनयुक्त भोजन (विशेष कर कॉड लिवर ऑयल) और कृत्रिम सूर्य-रश्मियोंके ज़ोरसे उन्हें ब्रिटेन आदि शीत प्रधान देशोंमें भी सफलतापूर्वक पाला जाता है।

लीमर—लीमरोंकी शरीर रचना यद्यपि बंदरों की-सी ही होती है तो भी थूथन निकले रहनेके कारण वे बंदरोंसे भिन्न जान पड़ते हैं। वस्तुतः उनमें और कीटभुकोंमें (अर्थात् कीड़ा-मकोड़ा खाने वाले पशुओं में) कई बातोंमें समता है। आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं जो इस बातका प्रमाण है कि लीमर रातमें विचरने वाला है। इसके दाँत छोटे और बहुत-से होते हैं।

लीमर अधिकतर मैडागैस्कर टापूमें होते हैं। यह टापू अफ्रीकाके पास है। अभी कुछ ही सौ वर्ष पहले तथा वहाँ एक बड़ी जातिका लीमर होता था जिसका शरीर प्रायः

लीमर

यह छल्लेदार पूँछवाला लीमर है। इसका मुँह कुत्तोंसे मिलता-जुलता है, परन्तु रहन-सहन और शरीर-रचना बंदरों-जैसी है।

मनुष्यके समान होता था, परंतु अब यह जाति लुप्त हो गयी है। वर्तमान समयमें जो लीमर मिलते हैं उनमेंसे छल्लेदार पूँछ वाला लीमर प्रसिद्ध है। इसका रंग सुरमई होता है, और मुँह तथा चोटी काली होती है। पूँछ लंबी और छल्लेदार होती है, अर्थात् पूँछ पर एक सुरमई, एक काला, फिर एक सुरमई और तब एक काला, इसी प्रकार अंत तक, छल्ले या अँगूठी की तरह चिह्न रहते हैं। यह चट्टानोंमें रहता है, दिनमें विचरता और रातमें सोता है इस बातमें यह अन्य लीमरोंसे भिन्न है—और हाथ-पैर

फैला कर धूपमें पड़ा रहना इसे बहुत पसन्द है।

लीमरोंकी आठ जातियाँ हैं; लीमर मूससे लेकर बड़े कुत्तेके बराबर होते हैं। इनमेंसे सबसे बड़ेको इंद्रिस कहते हैं। उसके देशके निवासी इसका बहुत आदर करते हैं। जिन वृक्षोंमें यह रहता है उसे दवाके काममें लाते हैं। वहाँके निवासियोंका विश्वास है कि यदि कोई इंद्रिसको भाला फेंक कर मारना चाहे तो वह भाला पकड़ कर शिकारीका ही शिकार करता है और उसका निशाना कभी चूकता नहीं। इंद्रिसकी बोली बड़ी दूर तक सुनाई पड़ती है। इसका मुँह कुछ-कुछ कुत्तोंसे मिलता जुलता है और 'कुत्तेके सिर वाले मनुष्य' की जो प्राचीन कहानियाँ उस देशमें हैं सम्भवतः लीमरकी ही किसी लुप्त जातिसे उत्पन्न हुई होंगी।

लीमरोंसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती एक गण लोरिसों की है, जिनमेंसे एक जाति दक्षिणी भारत तथा लंकामें मिलती है। उसे वहाँ 'देवांत्सी पिल्ली' कहते हैं। लोरिस शब्द एक डच शब्दसे निकला है जिसका अर्थ है मसखरा। इसके पूँछ नहीं होती। यह कुल ८ इंचका होता है। रंग धूमिल होता है और शरीर पर घना कोमल बाल होता है। आँखें बहुत बड़ी-बड़ी, नरम, और पास-पास होती हैं, हाथ और पैरकी हथेलियाँ बहुत गुदगर (गद्देदार) होती हैं परन्तु यह वृक्षोंकी शाखाओंको खूब ज़ोरसे पकड़ सकता है। मद्रासमें बहेलिया इसे जंगलोंसे पकड़ लाते हैं और बेचते हैं। कुछ लोगोंका विश्वास है कि देवांत्सी पिल्लीकी आँखोंका सुरमा बहुत लाभदायक होता है, सम्भवतः इसलिए कि उसकी आँखें इतनी बड़ी-बड़ी होती हैं।

अन्य लीमरोंकी तरह देवांत्सी पिल्ली रात्रिमें विचरती है। दिनमें यह गेंदके सामान लिपटी पड़ी सोती रहती है। दिनमें जब आँखें खोलती है तो अपने हाथोंसे आँखों पर आड़ कर लेती है।

टारसियर—प्रधानक वर्गमें लीमर तो हैं ही; इनके अतिरिक्त टारसियर भी हैं जो मलाया, सीलीबीज़ आदि देशोंमें पाये जाते हैं और मूसके बराबर होते हैं। इनके हाथ-पैर मेंढकोंके हाथ-पैरकी तरह होते हैं। पूँछ बड़ी लंबी होती है और आँखें बहुत बड़ी। कुल मिला कर सारे जानवरकी सूरत बड़ी विचित्र लगती है। यह रात्रिको बाहर निकलता है और कीड़े-मकोड़े खाकर रहता है। बड़े कीड़ोंको खाते समय यह आँख बन्द कर लेता है और कीड़ेको मुँहमें दबा लेता है। फिर उसकी टाँगोंको तोड़ कर पहले फेंक देता है। आँखें इसलिये मूँद लेता है कि उनमें कीड़ोंके पैरोंकी चोट न लग जाय।

४
छछूँदर
कीटभुक वर्ग

स्तनपोषी प्राणियोंमें से एक वर्ग कीटभुकोंका है। कीटभुकोंका रूप चूहोंकी तरह होता है। सिर लम्बा, थूथन लम्बी, और दाँत पैने होते हैं। ये रातमें विचरने वाले होते हैं और प्रधानतः कीड़े-मकोड़े खाकर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। यद्यपि शरीर-रचनाके विचारसे वे प्रधानकोंके निकट सम्बन्धी हैं, तो भी उनका मस्तिष्क बहुत कम विकसित रहता है। सारे संसारमें कीटभुक फैले हुये हैं और उष्ण तथा शीतोष्ण देशोंमें पाये जाते हैं।

कीटभुकोंकी कई जातियाँ हैं। यहाँ दो का वर्णन पर्याप्त होगा।

छछूँदर—छछूँदर भारतवर्ष तथा अन्य कई देशोंमें होता है। देखनेमें यह बहुत-कुछ चूहेके समान होता है, परन्तु थूथन लम्बा होता है। शरीर पर कोमल बाल होते हैं। ये जन्तु रातमें ही बाहर निकलते हैं। दिनमें उन्हें बड़ी चकाचौंध लगती है। रात्रिमें छछूँदर नालियोंमें से होकर घरोंमें घुसता है और खटका होने पर छु-छु-छु-छु करके चीखता और भागता है।

इसके शरीरसे बड़ी दुर्गन्ध निकलती है। यही इसकी रक्षाका साधन है। इसी दुर्गन्धके कारण न तो इसे बिल्ली खाती है और न साँप।

हेजहॉग—हेजहॉग नामका कीटभुक यूरोप और एशियामें होता है। इसमें विचित्रता यह है कि शरीरपर बालके बदले काँटे होते हैं जो लगभग एक इंच लम्बे होते हैं।

इसे साँप विशेष रूपसे अच्छे लगते हैं। उन्हें यह खोज-खोज कर पकड़ता और खाता है। कुछ लोगोंका विश्वास है कि सर्पोंका विष इसपर नहीं असर करता, परन्तु यह भ्रम है। काँटोंके कारण साँप इसे काट नहीं पाता, परन्तु यदि थूथन आदि पर विषैला साँप इसे अच्छी तरह काट पाता है तो वह भी मर जाता है।

जब हेजहॉगपर कोई शत्रु आक्रमण करता है तो यह अपने शरीरके काँटोंको खड़ा कर लेता है और यदि आवश्यकता हुई तो थूथन, मुँह और पंजोंको पेटके नीचे छिपा लेता है। जिससे चारों ओर काँटें-ही-काँटें दिखलाई पड़ते हैं।

हेजहॉग चूहे भी खूब खाता है।

५

चमगादड़

अजिनपत्रा-वर्ग

अजिनपत्राका अर्थ है अजिन (= चर्म) के पत्र (= पंख) वाला, अर्थात् ऐसा जन्तु जिसे चमड़ेका पंख हो। इस वर्गके सभी प्रकारके चमगादड़ हैं। चमगादड़ोंकी सैकड़ों जातियाँ हैं और प्रायः सदा ही बर्फ़से ढके स्थानोंको छोड़ अन्यत्र सभी जगहोंमें किसी-न-किसी प्रकारका चमगादड़ पाया जाता है। तो भी बड़े चमगादड़ गरम देशोंमें ही मिलते हैं। चमगादड़ रातको निकलते हैं और दिनमें सोते हैं।

चमगादड़ोंके पंजे चिड़ियोंके-से नहीं होते। वे वस्तुतः अँगुलियोंके बीचकी झिल्लीके बढ़ जानेसे बन गये हैं; साथ ही अँगुलियाँ भी बढ़ कर खूब लम्बी हो गई हैं। पैरोंके बल टहनी पकड़ कर चमगादड़ सोते समय उल्टा लटका रहता है। चमगादड़ोंमें सुननेकी शक्ति बड़ी तीव्र होती है। हालमें बहुतसे प्रयोग किये गये जिससे पता चला है कि चाहे कितना भी अँधेरा हो, चमगादड़ उड़ते समय तार, रस्सी, शाखा आदिसे बच सकता है। इसके लिये वे चीखते-चिल्लाते चलते हैं और तार आदि रुकावटसे जो आवाज गूँज कर लौटती है उसे वे सुन लेते हैं। उनके चीखनेका स्वर इतना उच्च होता है (अर्थात् उनकी लहर-लम्बाई इतनी छोटी होती है) कि मनुष्यका कान उसे सुन नहीं पाता। चमगादड़ोंकी विविध जातियोंके

चमगादड़

चमगादड़ चिड़िया नहीं है। वह स्तनपोषी जंतु है। माता अपने बच्चेको दूध पिलाती है। चमगादड़ जब विश्राम करना चाहते हैं तो पैर से किसी वृक्षकी टहनी पकड़ कर उलटा लटक जाते हैं। इस चित्रमें फलाहारी यूरोपीय चिमगादड़ दिखलाया गया है।

मुखड़ों पर विविध ढंगकी चित्रकारी रहती है। कई वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि इनसे उनको उच्च स्वरके नादको सुननेमें सहायता मिलती है।

चमगादड़ चिड़िया नहीं है। वह स्तनपोषी जन्तु है। माता अपने बच्चेको दूध पिलाती है। वह अँडे नहीं देती;

उसके बच्चे उत्पन्न होते हैं। एक बारमें एक या दो बच्चे उत्पन्न होते हैं।

चमगादड़ मूसके बराबरसे लेकर कई फुट लम्बे पंख वाले होते हैं। किसानोंको चमगादड़ोंसे यह लाभ होता है वे हानिकारक कीड़ोंको खा जाते हैं। मेक्सिकोमें तो उनके निवासके लिये लोगोंने ऊँचे-ऊँचे धरहरे खड़े कर दिये हैं जिनमें चमगादड़ आकर दिनमें सोते हैं। उनकी विष्ठा-का अच्छा दाम मिलता है क्योंकि यह उत्तम खाद होती है। परन्तु कुछ चमगादड़ फल खा कर रहते हैं। उनसे फल वाटिकाओंको बड़ी हानि पहुँचती है। एक जातिके चमगादड़ केवल मछली खा कर रहते हैं। सबसे विचित्र चमगादड़ तो ब्रैज़ीलका वैम्पायर नामक चमगादड़ है जो केवल रुधिर पीकर रहता है। इस चमगादड़का शरीर

चमगादड़ोंकी मुखाकृतियाँ

चमगादड़ोंकी कई जातियाँ होती हैं और कईके मुखड़े अत्यन्त हास्यप्रद होते हैं। वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि मुखड़ेकी विचित्र चित्रकारीसे चमगादड़ ऐसे उच्चस्वर नाद भी सुन सकते हैं जो मनुष्यको नहीं सुनाई देते।

मूसके बराबर होता है और यह घोड़े, अन्य चौपाये या मनुष्य पर इतने चुपकेसे आकर बैठता है और खून चूसता है कि नींद नहीं खुलती। जब और बड़े प्राणी इसको नहीं मिलते तो वह मुर्गी मुर्गा तकका रुधिर चूसता है। एक बारमें छटाँक खून पी जाता है। इसके थूकमें ऐसा रासा-यनिक पदार्थ रहता है कि उससे खून जमने नहीं पाता। चमगादड़को तो इससे लाभ होता है परन्तु उस बेचारेको जिसका खून चूसता है दुर्गति हो जाती है। जब चमगादड़ खून चूस कर उड़ जाता है तो आहत प्राणीके घावसे बहुत समय तक रुधिर निकलता रहता है इसके अति-रिक्त घाव अक्सर पक जाता है या किसी रोगके कीटाणु शरीरमें प्रविष्ट कर जाते हैं। इसलिये वहाँके लोग इस चमगादड़से बहुत डरते हैं।

भारतवर्षमें एक बहुत बड़ा चमगादड़ होता है जिसकी शरीरकी लम्बाई १४ इञ्च तक और पंखकी चौड़ाई, फैलाने पर एक सिरेसे दूसरे सिरे तक साढ़े चार फुट तक होती है। इसे उत्तरी भारतमें बादून कहते हैं।

"दिनमें बादून पेड़ों पर उल्टे लटके रहते हैं। जिस पेड़ पर ये बसेरा लेते हैं वह उनसे भर जाता है और वे उसको छोड़के किसी दूसरे पेड़ पर विश्राम नहीं करते। मार मार कर भगाये जाने पर भी वे अपने पेड़को बड़ी कठिनाईसे छोड़ते हैं। सारे दिन आंखें मूँदे लटके रहते हैं, संध्या होते ही वृक्ष पर कुछ चहल-पहल आरम्भ हो जाती है और वे एक डालसे दूसरी पर उड़ने लगते हैं। अँधेरा होते ही एक-एक करके उड़ कर चल देते हैं। फिर सम्पूर्ण रात्रि उदरभरणकी चिन्तामें निमग्न रहते हैं। जामुन, गूलर, बेर आदि सब प्रकारके फल खानेके शौकीन होते हैं। फलोंके बागोंमें उनके द्वारा बड़ी हानि होती है।

प्रभातसे पूर्व लौट कर अपने पेड़ पर फिर पहुँच जाते हैं और जो कोलाहल उस समय मचता है वह देखने और सुननेके योग्य होता है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसी को सबसे ऊँचा स्थान मिल जाय, और उसके पास कोई दूसरा व्यक्ति न लटके। इन पारस्परिक झगड़ोंमें वे एक दूसरेको खूब काटते और अँगूठेके लम्बे नखसे नोचते खसोटते हैं। सभी गला फाड़-फाड़के कर्कश स्वरसे चीख़ते चिल्लाते हैं।

यदि कोई जलाशय समीप होता है तो ये चमगादड़ प्रायः जलके बराबर उड़ते देखे जाते हैं। बादूनके शरीरसे तीक्ष्ण दुर्गन्ध निकलती है।" —जंतु जगतसे

६
सिंह आदि हिंसक जन्तु

मांसभुक वर्ग

मांसभुक वर्गमें वे जन्तु रक्खे गये हैं जो मांस खाकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। इनको हिंस्र या हिंसक जन्तु भी कहते हैं। इसी वर्गमें शेर, बाघ, बिल्ली, कुत्ता, भालू, सियार, ऊदबिलाव आदि हैं। यद्यपि इनके रूप-रंगमें बड़ा अन्तर रहता है तो भी इन सभी जन्तुओंमें एक विशेषता होती है। वह यह कि इन सबके दाँतोंमें एक बड़ा-सा कुकुर-दंता होता है। कुकुर-दंता उस दाँतको कहते हैं जो नुकीला और भीतरकी ओर कुछ झुका हुआ रहता है। इस दाँतसे माँस चीरनेका काम लिया जाता है। कुकुरदंतेको कुछ लोग कील और कुछ लोग सुइयाँ भी कहते हैं। मांसभुकोंके पंजोंमें नुकीले नख भी होते हैं।

इसी वर्गमें बिल्ली वंश है जिसमें सिंह, बाघ, बिल्ली आदि हैं। इनके विविध जातियोंके आकार, रङ्ग और बालोंकी लम्बाईमें महान अन्तर होते हुये भी सबकी शरीर-रचना प्रायः एकसी है। हमारे अपढ़ भाई भी इस बातको समझते हैं और कहते हैं कि बिल्ली बाघकी मौसी है। बिल्ली वंशकी एक-दो जातियाँ लुप्त हो गई हैं। इनमेंसे एक तो खंगदंती बाघ था। इस बाघके दोनों ऊपरी कुकुरदंते इतने बड़े होते थे कि वे मुँहके बाहर हाथ भर निकले रहते थे।

बिल्ली वंशके प्राणी ऊष्ण (गरम) और शीतोष्ण (=न बहुत गरम, न बहुत ठंढे) देशोंमें पाये जाते हैं।

सिंह

सब जन्तुओंमें सिंह सदासे ही बड़ा रोबीला जानवर रहा है। पहले यह यूरोपमें भी होता था, परन्तु अब यह केवल अफ्रीका और भारतके कुछ स्थानोंमें (विशेष कर काठियावाड़में) मिलता है। अफ्रीका और भारतके सिंह एक ही जातिके हैं। भारतवर्षमें बाघोंके कारण सिंहोंकी संख्या बहुत कम हो गई है। जब कभी सिंह और बाघमें लड़ाई हो जाती है तो अधिक वीर और चतुर बाघ ही जीतता है। फिर, बहुतसे शेर मनुष्यके शिकार हो जाते हैं। सौ, सवा सौ वर्ष पहले भारतवर्षके उत्तरी-पश्चिमी भागके कई स्थानोंमें भी सिंह पाया जाता था।

बड़ा सिंह लगभग १० फुट लम्बा और कदमें साढ़े तीन फुट ऊँचा होता है। तौल लगभग ६ मन होती है। जन्मसे साढ़े तीन वर्षमें सिंह जवान गिना जाता है। सिंह और सिंहनी अपना घर किसी कंदरा या खोहमें बनाते हैं। वहीं वह दिनमें सोते हैं। साधारणतः रातको ही बाहर निकलते हैं।

एक बारमें तीनसे छः बच्चे होते हैं। बच्चे चितकबरे होते हैं। पीछे एक रङ्गके हो जाते हैं। जब सिंह बाहर
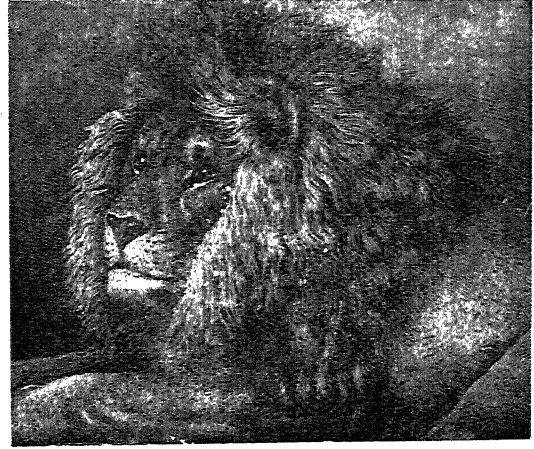
सिंह
सिंह बड़ा रोबीला जंतु होता है। उसकी गरदन पर लंबे-लंबे बाल होते हैं।

जाता है तो बहुधा सिंहनी और बच्चे भी उसके साथ हो लेते हैं। अविवाहित सिंहोंकी भी टोली कभी-कभी दिखलाई पड़ जाती है जिसमें पन्द्रह-बीस सिंह हो सकते हैं।

सिंहको शेर भी कहते हैं। बिल्लीकी तरह शेरके

पैरोंके नीचे भी गद्दियाँ रहती हैं जिससे वह बहुत चुपकेसे अपने शिकारके पास पहुँच जाता है। बिल्लियोंकी तरह शेर भी अपने नखोंको पंजोंके भीतर खींच ले सकता है। इस प्रकार नख पत्थर आदिकी रगड़से घिसने नहीं पाते और सदा तीक्ष्ण रहते हैं। बिल्लियोंकी पूँछोंकी तरह शेरके भी पूँछें होती हैं। इनसे, बिना अपने शिकारसे आँख उठाये ही, शेरको पता चलता रहता है कि उसके शरीर के घुसने भरकी जगह है या नहीं। पूँछोंकी चौड़ाई शरीरकी चौड़ाईके बराबर होती है। बिल्लीकी आँखोंकी तरह शेरकी आँखोंकी भी पुतलियाँ रातको खूब बड़ी हो जाती हैं। इससे शेरको बहुत मंद प्रकाशमें भी वस्तुयें दिखलाई पड़ती रहती हैं। शेरकी जीभ पर बड़े-बड़े दाने उभड़े रहते हैं। इनके कारण जीभ बड़ी रूखी रहती है। इनसे चाट कर शेर हड्डियोंसे मांस छुड़ा लेता है। यदि शेर मनुष्यकी त्वचाको चाटे तो शीघ्र त्वचा फट जायगी।

शेरके शिकार करनेका ढङ्ग यह है कि वह भोज्य जन्तुओंके मार्गके पास कहीं छिप कर बैठ जाता है। बहुधा वह पनघटके आस-पास छिपता है। आवश्यकता पड़ने पर शिकारके पीछे चुपकेसे पहुँच जाता है, या शेरनी एक ओरसे जन्तुओंको खदेड़ती है और दूसरी ओर शेर छिपा बैठा रहता है।

अवसर पाते ही शेर छलाँग मार कर अपने शिकार पर कूद पड़ता है। एक ही थप्पड़में जन्तु बेकाम हो जाता है और घोड़े, बैल, हिरन आदि तककी हड्डी-पसली टूट जाती है। सिंह बहुधा पहले इच्छा भर खून पी लेता है और तब पेट भर मांस खाता है। सिंहनी और बच्चोंके खा लेने पर जो कुछ मांस बच जाता है उसे छोड़ कर परिवार चल देता है। बचे मांसको सियार, लकड़बघ्घा, गिद्ध आदि खा जाते हैं।

शेरका गरजना प्रसिद्ध है। उसे दहाड़ते सुन कर सभी जन्तु काँप उठते हैं।

सिंहका रंग भूरा होता है। शरीर पर धारी या धब्बे नहीं होते। गरदन पर लम्बे-लम्बे बाल होते हैं। सिंहनी सिंहसे छोटी होती है और उसकी गरदन पर लम्बे बाल नहीं होते।

एक शिकारी ने अफ्रीकामें एक बार शेरके कुटुम्बको शिकार करते देखा था। उसने इसका निम्न वर्णन दिया है—

"मेरा कैम्प जूलूलैण्डमें पड़ा था। संध्या-समय मैं टहलनेको आधे मील निकल गया था कि ज़ेबरा घोड़ेका एक दल सामने भागता हुआ दिखाई दिया। जब वे मुझसे लगभग २०० गज़के अन्तर पर थे तो मैंने देखा कि दलके सबसे पहले ज़ेबरा पर, वज्रके समान, कोई पीला जन्तु तड़पा, जिसके धक्केसे घोड़ा तुरन्त गिर गया। मुझसे कोई ६० गज़ पर एक ऊँचा पेड़ था। इससे पूर्व कि शेरको इधर-उधर देखनेका अवकाश मिले, मैं कुतूहलवश दौड़के उस पेड़ पर चढ़ गया। ऊपर चढ़ कर जब मैंने देखा तो शेर उस सुन्दर धारीदार जन्तुका प्राण ले चुका था किन्तु अभी खाना आरम्भ नहीं किया था। पहले वह ज़ोर-ज़ोरसे गर्जा और उसके गर्जनका उत्तर भी मिला। कुछ मिनटोंमें एक शेरनी दौड़ती हुई, चार बच्चों सहित, उसी ओरसे आई जिधरसे ज़ेबराका दल आया था। निःसन्देह शेरनी उन जन्तुओंको खदेड़ कर इस स्थान पर लाने ही के लिये भेजी गई थी।"

"शेरका कुटुम्ब ज़ेबराके चारों तरफ खड़ा हुआ बड़ा सुहावना मालूम होता था। बच्चे शिकारको चीरने-फाड़नेकी चेष्टा करने लगे परन्तु मोटी खालमें उनके दाँत नहीं घुसते थे। शेर बैठ गया और शेरनी भी बच्चोंको शिकारसे हटा के चार-पाँच गज़के अन्तर पर बैठ गई। तब शेर उठा और ज़ेबराके मृतशरीरको खाना आरम्भ किया। शीघ्र उसने शिकारकी एक पिछली जाँघ खा डाली। तब वह हटके कुछ दूर जा बैठा। तत्पश्चात् शेरनी उठी और उसने ज़ेबराके खालके चिथड़े-चिथड़े कर दिये और मांसके बड़े-बड़े टुकड़े मुँह भर-भरके, निगलने लगी। बच्चोंको भी खानेसे नहीं रोकती थी। ये छोटे-छोटे शेर एक दूसरे पर गुर्राते थे और परस्पर झगड़ा करते थे। कभी-कभी आपसमें लड़ाई भी हो पड़ती थी। किन्तु शेरनी इन झगड़ोंकी ओर कुछ ध्यान न देती थी। हाँ यदि कोई बच्चा उसके खानेमें बाधा डालता था तो पंजेसे थप्पड़ मार देती थी। शीघ्र ज़ेबराकी थोड़ी सी हड्डियाँ ही शेष रह गईं जिनका मांस नोचनेके लिये सहस्रों गिद्ध आकाशमें चक्कर लगाने लगे

थे। तब शेरका कुटुम्ब चल दिया, शेरनी सबसे आगे और शेर सबसे पीछे था। शेर घूम-घूम कर देखता जाता था कि उसका कोई पीछा तो नहीं कर रहा है।"

सूडनके एक रखवारे ने अपनी आँखों देखी घटनाका वर्णन करते हुये बताया है कि किस प्रकार कभी-कभी शेर मनोरञ्जनके लिये जन्तुओंका शिकार करते हैं। उसने
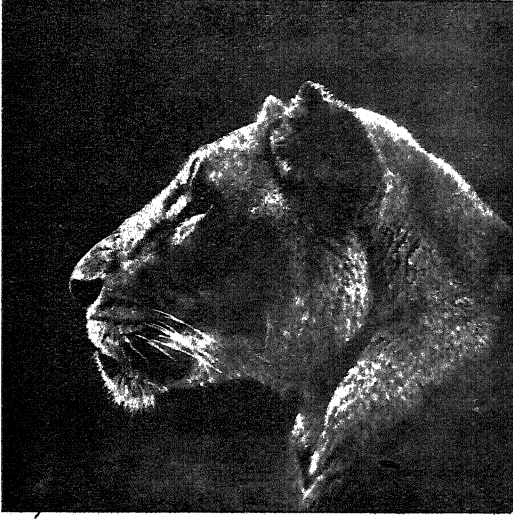
सिंहनी

सिंहनी सिंहसे छोटी होती है और उसकी गरदन पर लंबे बाल नहीं होते।

देखा कि शेरके बच्चोंकी एक टोली ने एक घोड़ेको घेर लिया और सारे दिन वे उसे इधरसे उधर दौड़ाते रहे। अन्तमें घोड़ा डर और थकानके मारे मर गया तो खिलाड़ी सन्तुष्ट होकर ठाटसे चल दिये।

जब शेर भूखसे पीड़ित हो जाता है तो वह बहुत ढीठ हो जाता है और मनुष्योंको भी उठा ले जाता है। साधारणतः वह मनुष्योंसे डरता है और उनसे दूर ही रहता है। परन्तु एक बार शेरको मनुष्य-मांसका मज़ा मिल जाता है तो वह बहुधा मनुष्यको ही पकड़ा करता है। बहुत भूख लगने पर वह मरे जानवरको भी खा सकता है, परन्तु साधारणतः वह अपने हाथोंसे मारे शिकार को ही खाता है।

कहा जाता है कि शेर गाय-बैलको लिये हुये चौड़ी-चौड़ी खाइयों या दस-बारह फुट ऊँची दीवार कूद जाता है।

पालतू शेर पचीस-तीस वर्ष तक जीते हैं। जंगलोंमें भी उनका जीवन विस्तार सम्भवतः इतना ही होता होगा।

सरकसोंके लिये सिंहोंकी बड़ी मांग रहती है। उनके सिखानेकी विधियोंका निम्न वर्णन पाठकोंको रोचक प्रतीत होगा।

गोबलकी पशुशाला अमरीकाके सिनेमाकेंद्र हॉलीवुडके पास है। चित्रोंके लिये जब शेरोंकी जरूरत पड़ती है तो वे यहाँसे किरायेपर जाते हैं। वे यहाँ बचपनसे पाले और सिखाये जाते हैं। छोटे बच्चेका पालना ही सबसे कठिन होता है और गोबल पशुशालामें शेरोंके शिक्षक श्रीरोट महाशयको दाईगीरी भी करनी पड़ती है। अपने ३७ वर्षकी नौकरीमें रोटने चींटी-खोरसे लेकर जिराफ तक पाला है।

सब जानवरोंके बच्चोंको दूध की आवश्यकता पड़ती है और शेरके बच्चोंको तो प्रत्येक घण्टेमें एक बार दूध चाहिये। पहले सप्ताहमें, जब बच्चा केवल आध सेरका होता है एक बारमें एक ही दो चम्मच दूध पी सकता है। धीरे-धीरे उसकी खुराक बढ़ती जाती है और तीसरे सप्ताहमें करीब १० छटाँक दूध रोज पीने लगता है।

बच्चोंको नहलाना भी पड़ता है। प्रत्येक बच्चेके बाल दिनमें दो बार ब्रुशसे साफ किये जाते हैं और गरम पानी में भिगोयी रूईसे बच्चे पोंछे जाते हैं। रातके समय बच्चे छोटे-छोटे कटघरोंमें बन्द किये जाते हैं। इनमें नर्म स्वस्थ कंबल रक्खे रहते हैं जिनपर बच्चे आरामसे पड़ रहते हैं।

शेरके बच्चोंको जब भूख लगती है तब वे बिल्लीकी तरह म्याऊँ-म्याऊँ बोलते हैं। पर जब उनका पेट भरा रहता है और वे खुश रहते हैं तब वे गुर्राते हैं। इन बच्चोंके बाल बिल्लीके बालसे बड़े और घने होते हैं। बिल्लियोंके बच्चोंकी तरह शेरके बच्चोंकी आँखें जन्मके समय बन्द रहती हैं और उन्हें एक सप्ताह तक प्रकाशसे बचाना पड़ता है। बिल्लियोंके बच्चोंकी तरह शेरके बच्चे भी छोटेपनमें बड़े खिलाड़ी होते हैं, परन्तु बड़े होनेपर आलसी हो जाते हैं।

साधारणतः बच्चोंका पालन-पोषण शेरनीपर ही छोड़ दिया जाता है। शिक्षक केवल इस परिवारपर अपना निगाह रखता है और देखा करता है कि इनके स्वास्थ्यमें कोई गड़बड़ी न होने पाये। परन्तु यदि माँ बीमार हो, या वह अपने बच्चोंको मार डालना चाहे जैसा कभी-कभी कटघरोंमें बन्द शेरनियाँ करती हैं, तो बच्चोंको शेरनीसे अलग कर देना पड़ता है और उनको दूध पिलाकर जिलाना पड़ता है।

शेरके बच्चे दो-तीन सप्ताहके हो जानेपर भी रबड़की टोंटी लगी बोतलोंसे दूध पीते हैं क्योंकि तबतक उनके दाँत नहीं उगे रहते। परन्तु इतने ही समयमें उनके पंजे मजबूत हो जाते हैं। बच्चोंको इनकी आवश्यकता ढालू जमीनोंपर चढ़नेमें पड़ती है। वे गिरनेसे बहुत डरते हैं। इसलिये वे पंजा खूब धंसा-धंसाकर ऊपर चढ़ते हैं। यदि शेरके बच्चे जमीनपर पड़े हों तो वे बिल्लीके बच्चोंकी तरह शान्त रहते हैं, परन्तु यदि उनको उठाया जाय तो वे यथाशक्ति अपने पंजोंसे जमीनको पकड़ लेते हैं।

शायद लोग समझते हों कि दाँत निकलते ही शेरके बच्चे मांस बड़े चावसे खाते होंगे परन्तु सच्ची बात यह है कि उनको माँस खाना सिखलाना पड़ता है। यदि बच्चा अपनी माँ के साथ रहता है तो माँ स्वयं यह सिखला देती है, परन्तु यदि बच्चे बोतलसे दूध पिलाकर पाले जाते हैं तो नौकरको मांस खाना सिखलाना पड़ता है। इसके लिए पहले वह अपने हाथ पर मांस रगड़ लेता है और बच्चोंसे अपना हाथ चटवाता है। जब कुछ दिनोंमें बच्चेको मांसका स्वाद मिल जाता है तब उसको थोड़ा सा बारीक कुटा हुआ कीमा दिया जाता है। धीरे-धीरे मांसकी मात्रा बढ़ा दी जाती है।

शूकर-मांस छोड़कर अन्य दूसरे सभी तरहके मांस इनको अच्छे लगते हैं। अधिकतर घोड़ेका मांस दिया जाता है। कुछ दिनों बाद कीमेके अतिरिक्त उनको कुछ ऐसी हड्डियाँ भी दे दी जाती हैं जिनपरसे प्रायः सभी मांस हटा दिया रहता है। बच्चे इन हड्डियोंसे खेलते हैं, चाटते हैं, चबाते हैं और उसपर लगा सब माँस खा जाते हैं। समूचा मांस उनको वर्ष भरके हो जानेके बाद मिलता है। तब उनको करीब चार सेर मांस रोज मिलता है। इसके दो साल बाद इनकी खुराक बढ़ जाती है और वे ८ सेर या अधिक मांस प्रति दिन खाते हैं।

बच्चोंके प्रति बड़े शेरोंको वैसा ही आकर्षण रहता है जैसा मनुष्योंमें। गोबल पशुशालामें पचास शेर हैं। उनके कटघरे एक घासके मैदानके किनारे पर हैं। यदि कोई मनुष्य इस मैदानमें बैठे, पढ़े या खाये, तो शेर कुछ परवाह नहीं करते, परन्तु जब नौकर किसी शेरके बच्चेको घासपर खेलनेके लिये छोड़ जाता है तो शेर खड़े हो जाते हैं और जब तक बच्चा वहाँ रहता है उसे ध्यानसे देखा करते हैं। शेरनी और बाघिन अपने बच्चोंकी प्राणपणसे रक्षा करती हैं, परन्तु लकड़बघ्घिन कभी दो बच्चोंसे अधिकको नहीं पोसती। यदि उसे दोसे अधिक बच्चे पैदा होते हैं तो वह दोको रख लेती है और शेषको कटघरेके बाहर ढकेल देती है। इन बच्चोंकी तुरन्त सेवा करनी पड़ती है, क्योंकि यदि वे इस प्रकार घण्टे, दो घण्टे, पड़े रह जाते हैं तो मर जाते हैं। ज़ेबरा बड़ी अच्छी मां होती है और अपने बच्चोंको बड़ी सावधानीसे पालती है, परन्तु पालतू ऊँटनी फूहड़ होती है। कभी-कभी तो उसका पैर बच्चों पर ही पड़ जाता है। इसलिये ऊँटनीके बच्चोंको अलग पालनेमें अधिक अच्छा रहता है।

परंतु जानवरोंमें बँदरिनसे बढ़कर माँ नहीं होती। प्रथम एक या दो सप्ताह तक तो बँदरिनें बच्चेको बराबर अपनी गोदमें रखती हैं। पीछे बच्चेको अलग खेलनेकी इज़ाज़त मिल जाती है, परंतु माँ बराबर निगरानी किया करती है। यदि बच्चा भागनेके लिये झपटे तो माँ हाथ बढ़ाकर चट पूँछ पकड़ लेती है। जब बच्चे खाने लगते हैं तब माँ पहले सब चीज लेती है। यदि बच्चा कोई हानि-कारक चीज़ खानेकी चेष्टा करे तो माँ थप्पड़ मारकर उसे दूर कर देती है।

शेरके बच्चोंको बचपन ही से पाले और उनके साथ हमेशा मेहरबानीसे पेश आवे तो वे पीछे यों ही कभी खूंखार होते हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों वे बड़े और मजबूत होते हैं उनके साथ खेल करना अधिकाधिक कष्टप्रद होता

जाता है, क्योंकि वे बहुत भारी और बड़े डील-डौलके होते हैं।

जिन शेरोंसे सरकसोंमें उनका शिकारी कुश्ती लड़ता है, वे इसी तरह बचपनसे पाले जाते हैं और कुत्तेकी तरह वे अपने मालिकसे प्रेम करते हैं।

रोटका कहना है "दो दिनके प्यारसे जानवर जितना अपने वशमें आ जाते हैं उतना वे दो महीने की मार-पीटसे नहीं आ सकते। मैंने एक बार बारह जंगली शेरोंको पकड़ मंगवाया और कुल तीन सप्ताहमें ही वे इतने सध गये कि सरकसमें तमाशा दिखलाने लगे। मैं जो हाथमें बराबर चाबुक लिये रहता हूँ वह तो महज़ इशारा करने या तड़कानेके लिये है। यदि मैं शेरोंको पीटनेका आदी होता तो कभी भी एक बारगी इतने शेरोंके साथ खेल न दिखा सकता।"

रोटका सबसे प्यारा शेर 'बॉबी' है। यह अभी १७ ही महीनेका हुआ है, लेकिन अभी ही वह ५ मनका हो गया है। इससे रोट कुश्ती लड़ता है। रोटने इसे अपने घर बचपनसे पाला है जब वह कुल आध सेर तौलमें था। कुछ महीने पहले 'बॉबी' मकानमें जहाँ चाहे तहाँ जाने पाता था और बराबर कुत्ते-मुर्गियों और रोटके बच्चोंके साथ खेला करता था। अब चूँकि वह बहुत बड़ा हो गया है उसको बड़ेसे कटघरेमें रक्खा जाता है।

परन्तु रोज सबेरे पासके कृत्रिम 'जंगल'में उसे कई घण्टेके लिये छोड़ दिया जाता है जिसमें उछल-कूद करनेसे उसका व्यायाम हो जाय। 'बॉबी' पूरा पालतू है और मालिका हुक्म पाकर उसने सिनेमा-चित्रोंके लिये बहुतसे खेल किये हैं। इन खेलोंमें उसके आस-पास ही बहुतसे लोग थे जिनपर वह चाहता तो झपट सकता था, परंतु उसने कभी वार नहीं किया।

पाँच मनके शेरसे कुश्ती लड़ना कोई खेल नहीं है। बड़े-बड़े पहलवान शीघ्र थक जाते हैं। परन्तु जानवरका दिल शीघ्र नहीं भरता। इसलिये कभी कभी उसे खुश रखने के लिये कई पहलवानोंको उससे पारी-पारी लड़ना पड़ता है। रोटका कहना है कि 'यदि 'बॉबी' में कोई दोष है तो यही कि वह खेल समाप्त करना कभी नहीं चाहता और कभी-कभी उससे छुटकारा पाना कठिन हो जाता है। दस बार कुश्तीमें पटके जाने और कई बार टुनमुनिया खानेके बाद, और विशेषकर जब दो ज़बरदस्त पंजे देरतक जमीन पर मुझे दाबे रहते हैं शीघ्र थकान आ जाती है। एक बार जब बॉबी छोटा ही था मैं पेड़पर चढ़कर सेब तोड़ रहा था। बॉबीको शैतानी सूझी। कूदकर उसने मेरी बगलमें बैठना चाहा। हम दोनों धड़ामसे नीचे आ रहे!'

'बॉबी' की माँ अब आठ वर्षकी हुई। बिरली ही शेर-नियाँ पकी रसोई खाती होंगी, परंतु बॉबीकी माँकी बात दूसरी है बात यह है कि रोटने उसे अपने कुत्तोंके साथ पाला था। खानेके समय शेरनीको कच्चा माँस मिलता था और कुत्तोंको रींधा हुआ माँस, बिस्कुट और अन्य रसोई। अपना भाग खा लेनेपर वह अकसर खाना खतम करनेमें कुत्तोंकी सहायता कर दिया करती थी।

शेरनीने जब अपने साथी कुत्तोंको शाक-भाजी खाते देखा तो उसका भी मन चला कि तरकारी खाऊँ। अब तो वह हर तरहकी तरकारी खाती है। यहाँतक कि निरी मूली या आलूकी तरकारी भी खा जाती है, और यदि मिल जाय तो आधी बाल्टी दाल भी पी जाती है।

रोटने केवल सब शेरों या बाघोंको बचपनसे ही नहीं पाला है। कुछ तो थोड़ा बड़े होनेपर पकड़े गये थे। ऐसे शेरोंके मिज़ाजकी पहचान रोट तभी कर लेता है जब वे कटघरेमें बन्द रहते हैं। जो जानवर आदमीको देखकर बार-बार कटघरेके छड़ोंपर हमला करता है उसका सिखाना असम्भव होता है। यदि शेर या बाघ अच्छे मिज़ाजका हुआ तो उसको गरदनमें खूब चौड़ा और मज़बूत पट्टा पहना दिया जाता है। इस पट्टेमें सिक्कड़ बाँध दिया जाता है और सिक्कड़का बाहर निकाल कर उसे कई नौकर पकड़े रहते हैं। तब रोट कटघरा खोलकर भीतर घुसता है। यदि शेर झपटता है तो बाहरवाले सहायक शेरको पीछे खींच लेते हैं। रोट जानवरकी पहुँच-के बाहर रहकर उसको पुचकारता है। धीरे-धीरे वह उसके अधिक नज़दीक जाता है और अपनी चाबुकके सिरेसे उसकी पीठ भी सुहराने लगता है। कुछ दिन बीतने पर शेरके पास एक तिपाई रख दी जाती है। साधारणतः शेर तुरन्त कूदकर उसपर बैठ जाता है। यदि अबतक

शेर पालतू-सा हो गया तो इसके बाद सिक्कड़ खोलकर उसे रोट सिखाता है।

चाहे कितने भी प्रेमसे शेर पाला जाय, और चाहे वह कितना भी परच जाय, धोखा हो जानेकी सम्भावना बराबर ही रहती है। रोटको शेरोंने कई बार नोच-खसोट लिया है, लेकिन साधारणतः किसी भूलके कारण ही ऐसा हुआ। सबसे अधिक जोखिमकी बात तब हुई थी जब एक दरजन बड़े-बड़े बाघ अखाड़ेमें कतार बाँधकर उतर रहे थे। कतारमें ज़रा धक्कम-धक्का आवश्यकतासे अधिक हो गयी और पंक्तिके दूसरे शेरने अगुएकी पूँछको जोरसे काट लिया। सरदार शेर चौंक उठा, जोरसे गरजता हुआ उछल पड़ा और गिरा कहाँ? ठीक रोटके कन्धेपर। पंजोंसे बचनेके लिये हाथ उठाते-उठाते-भरमें रोटका मुख और कन्धा चिर उठा। रोट चट शेरोंके चढ़नेके लिये रक्खी हुई तिपाइयोंके बीचमें हो गया। सरकसके खेलमें ऐसा हुआ था। खेल बन्द करनेके बदले रोटने तुरन्त रूमाल अपने सरपर बांध लिया और खेल पूरा किया। इसके बाद वह अस्पताल पहुँचाया गया। वहाँ ठीकसे मरहम-पट्टी कराकर वह सरकसमें आ गया और अपना आखिरी तमाशा भी दिखलाया, जिसमें १६ शेरोंका खेल था! रोटका कहना है कि लोगोंका यह विश्वास, कि शेर ज्योंही मनुष्यका खून चख लेता है त्योंही खूँखार होकर उस मनुष्यको मार डालता है मिथ्या है।

बाघ

बाघ लगभग शेरके ही बराबर होता है, और तौल भी लगभग उतनी ही होती है। परन्तु यह भारतवर्षसे तुर्किस्तान तक सभी जगह और मलाया, सुमात्रा, चीन और साइबीरियामें होता है। साइबीरियामें बड़ी ठंढ रहती है और वहाँके बाघ झबरे होते हैं।

गरम देशोंके बाघोंकी खालके बाल छोटे होते हैं। खालका रंग पीला होता है और उस पर तरह-तरहकी काली या गाढ़ी भूरी धारियाँ होती हैं। किसी दो बाघकी धारियाँ ठीक एक तरहकी नहीं होतीं। बचपनमें जैसी धारियाँ रहती हैं वैसी ही अन्त तक रह जाती हैं। सिंहकी तरह बाघकी धारियाँ मिटती नहीं हैं। बाघिनके मूँछें नहीं होतीं। अन्यथा और बाघिनके रूपमें विशेष अन्तर नहीं रहता। बाघ पानीसे नहीं डरते। कुछ तो मछली पकड़ कर खाते हैं। हाथी, गैंडे और जंगली साँड़ को छोड़ अन्य सब जन्तुओंको बाघ आसानी से मार लेता है। प्रतिवर्ष भारतमें कई सौ मनुष्य बाघोंके शिकार बन प्राण खोते हैं। बाघ शेरकी तरह दहाड़ नहीं सकते। उनकी बोली ज़ोरदार ज़रूर होती है, परन्तु शेरकी तरह भय उत्पादक नहीं होती।

बाघकी शरीर-रचना ठीक बिल्लीकी जैसी होती है। हाथ-पैर उसी प्रकार मांसल होते हैं जैसे बिल्लीके। नख भी वैसे ही पैने और वक्र होते हैं और काम हो जाने पर उसी प्रकार वे पंजोंके भीतर छिप जाते हैं। बिल्लीकी तरह बाघके पदोंमें भी गद्दियाँ होती हैं। दांत भी वैसे ही तेज़ होते हैं, जिससे वह मांस सुगमतासे चीड़-फाड़ सकता है। जीभ भी उसी प्रकार काँटेदार होती है। आँखें भी बिल्ली हीकी तरह होती हैं जिनकी पुतलियाँ अँधेरेमें बहुत बड़ी हो जाती हैं, इससे अत्यन्त मन्द प्रकाशमें भी बाघ देख सकता है। मूँछें भी ठीक बिल्ली हीकी तरह होती हैं जिससे मार्गका पता चलता रहता है। वास्तवमें बाघ को यदि बड़ी बिल्ली कहा जाय तो कुछ भी अनुचित न होगा।

अपनी धारियोंके कारण जंगलमें कुछ ही दूर रहने पर बाघ प्रायः अदृश्य हो जाता है। यदि वह एक दम सफेद या काले रंगका होता तो इतनी सुगमतासे न छिप सकता। बाघ भी शेरोंकी तरह किसी गुप्त स्थानमें छिपा रह कर एकाएक शिकार पर टूट पड़ता है। उसके शरीरके आघात से गाय, बैल, हिरन आदि मूर्च्छित हो जाते हैं। शेरकी तरह थप्पड़ मार कर बाघ हड्डी पसली नहीं तोडता। वह अपने शिकारके शरीरमें नख धँसा कर दबोच लेता है और दाँतसे मांस फाड़ डालता है। साधारणतः वह जानवरको उसी स्थानमें नहीं खाता जहाँ वह मारता है। पहले वह लाशको घसीट कर कहीं निरापद स्थानमें ले जाता है, और तब उसे खाता है। जो नहीं खा पाता उसे छोड़ कर चल देता है और फिर दूसरे दिन उसे खाने आता है।

भारतवर्षके लोग बाघको तीन तरहका बतलाते हैं—लोदिया अर्थात् शिकारी बाघ, ऊँटिया अर्थात् गाय, बैल,

भेड़, बकरी, ऊँट आदि मनुष्यके पालतू जानवर खाने वाला बाघ, और नरभोजी अर्थात् मनुष्यको खाने वाला बाघ। वैज्ञानिक दृष्टिसे ये सभी बाघ एक ही जातिके हैं। यह विभाजन केवल बाघोंके स्वभावके अनुसार हुआ है।

लोदिया बाघ जवान बाघ होते हैं। उनमें फुरती और बल रहता है और वे जंगली जानवरोंको मार कर खाते हैं। ऐसे बाघोंसे खेतिहरोंको लाभ होता है क्योंकि वे खेतोंको नष्ट करने वाले हिरन आदिको मारते रहते हैं।

ऊँटिया बाघ साधारणतः कुछ बुड्ढे बाघ होते हैं। इनमें इतनी शक्ति नहीं रह जाती कि जंगली जानवरोंको पकड़ सकें। इसलिये वे रातके समय बस्तियोंका चक्कर काटा करते हैं और जब कभी भूला-भटका पशु उनको मिल जाता है तो उस पर झपट पड़ते हैं। ऐसे बाघ कभी-कभी बड़ा उत्पात मचाते हैं। वे प्रायः रोज ही कोई-न-कोई जानवर पकड़ ले जाते हैं। पहले तो वे गरदन तोड़ कर उसे मार डालते हैं और फिर उसे अपनी माँद तक घसीट ले जाते हैं। ऐसे बाघ भी हुये हैं जो बारह महीनेमें सत्तर गाय, या बैल पकड़ ले गये हैं।

नरभोजी बाघ इनसे भी अधिक भयानक होते हैं। ये वे बाघ हैं जिनको मनुष्य-मांसका स्वाद मिल गया है। कहा जाता है कि जब बाघ एक बार किसी मनुष्यका मांस खा लेता है तब उसे किसी पशुका मांस अच्छा ही नहीं लगता। साधारणतः नरभोजी बाघ बुड्ढा होता है जो अपनी दुर्बलताके कारण साधारण आहार प्राप्त करनेमें असमर्थ होता है। ऐसे बाघ किसी जंगली सड़कसे थोड़ी ही दूर पर माँद बनाते हैं और सड़ककी दूसरी ओर जाकर छिप जाते हैं। जब सड़क पर कोई तगड़ा मनुष्य जाता है तो उसे नहीं छेड़ते, परन्तु यदि कोई लड़का, या स्त्री या दुर्बल व्यक्ति उधरसे जाय तो उस पर वे झपट पड़ते हैं और तुरन्त अपनी माँदमें उसे घसीट ले जाते हैं। एक बाघ ने इस प्रकार एक वर्षमें सौ से अधिक व्यक्तियोंको मार डाला था।

जवान बाघोंमें अद्‌भुत शक्ति होती है। बड़े बैलोंको लेकर वे आसानीसे झाड़ी, बाड़ा, दीवार आदिसे कूद पड़ते हैं, परन्तु सिंहोंकी अपेक्षा वे अधिक डरपोक होते हैं। गाय-बैल आदिके झुंड उनको भगा देते हैं। मनुष्यसे वे यथासम्भव दूर ही रहते हैं और बहुधा मनुष्यको देख कर वे भाग जाते हैं, विशेष कर यदि मनुष्य स्वयं न भाग पड़े मेजर कैम्बेल ने लिखा है—

"मध्य हिन्दमें एक छोटा-सा लड़का भैंसें चरानेको नित्य एक जंगलमें जाया करता था। जंगलमें एक भयंकर बाघनी चार बच्चों सहित प्रायः देखी जाती थी। बाघनी ने बारम्बार उस लड़केको पकड़ना चाहा किन्तु भैंसें उसकी

बाघ

बाघ लगभग शेरके ही बराबर होता है, परंतु उसके शरीर पर धारियाँ होती हैं।

सदा रक्षा कर लेती थीं। बाघनीको आते देख सब भैंसें एक संग उस पर दौड़ पड़ा करती थीं और बाघनीको भगा देती थीं। बालकको भी भैंसों पर भरोसा था और वह निःसंकोच उनके संग चला जाया करता था।

दुर्भाग्यवश बालकको एक दिन खेलकी धुन समाई और वह एक दूसरे लड़केको भी अपने संग ले गया। खेल-कूद में दोनों बालक ऐसे निमग्न हो गये कि उनको यह ध्यान न रह गया कि भैंसोंका साथ न छूटना चाहिये। उस दिन

बाघनीको घातका अच्छा अवसर मिल गया। बाघनी और उसके बच्चोंको आते देख बेचारे बालक भैंसोंकी ओर भागे और भैंसें भी उनकी रक्षाके लिये तुरन्त दौड़ पड़ीं। किन्तु बाघनीको उस दिन सफलता हो गई और वह नये बालक को उठा ले गई।

मेजर कैम्बेलका कैम्प घटनास्थलसे निकट ही था। सूचना पाते ही मेजर साहब वहाँ जा पहुँचे और दूसरे दिन बाघनीको उन्होंने मार लिया। आश्चर्ययुक्त बात यह थी कि मेजर साहब ने दूसरे दिन भी उस निर्भय बालकको भैंसोंके संग जंगलमें उपस्थित पाया। उससे पूछा जाने पर लड़के ने उत्तर दिया कि मुझे बाघनीका ज़रा भी डर नहीं है और बड़ी भैंसकी ओर संकेत कर बोला कि जब तक वह मेरे पास है तब तक कोई बाघ मुझे नहीं मार सकता।"

बाघोंका शिकार बहुधा हाथियोंकी सहायतासे किया जाता है। शिकारी लोग हाथियोंकी पीठों पर कसे हौदोंमें बैठे रहते हैं। दो-चार शिकारी जंगलमें उपयुक्त स्थान चुन कर हाथियोंको खड़ा कर लेते हैं। तब तीन ओरसे हाँका करने वाले, चिल्लाना, कनस्टर पीटना, पड़ाका छोड़ना या अन्य प्रकारसे शोर मचाना आरम्भ कर देते हैं बाघ डर जाता है और उधर भागता है जिधर शोर नहीं होता रहता। परन्तु इधर हाथी रहते हैं। उनको देख वह कहीं छिप जाता है। परन्तु शोर मचाने वाले धीरे-धीरे निकट आते जाते हैं। इस प्रकार लाचार होकर किसी-न-किसी ओर भागना पड़ता है और साधारणतः किसी शिकारीकी बन्दूकका निशाना बनता है। परन्तु कभी-कभी कुपित होकर अपनी जान पर खेल जाता है। क्रोधसे आँख फाड़े और दाँत निकाले वह किसी हाथी पर टूट पड़ता है। हाथी सब बहुत रुके हुये रहते हैं, परन्तु कभी-कभी उनकी हिम्मत छूट जाती है और एक-दो भाग पड़ते हैं, तो भी यदि शिकारी अनुभवी रहता है तो शीघ्र बाघको गोली मार कर गिरा देता है।

जिन लोगोंकी इतनी समाई नहीं रहती कि वे हाथी पर चढ़ कर शिकार करें, या इतनी हिम्मत नहीं रहती कि हाथी पर चढ़ कर शेरका सामना करें, वे किसी उपयुक्त वृक्ष पर मचान बाँध लेते हैं और उसी परसे बाघका शिकार करते हैं। साधारणतः मचानको उस मार्गके पास बाँधते हैं जिधरसे होकर बाघ पानी पीने आया जाया करता है। मचान पर शिकारी अँधेरा होते ही चुपकेसे आकर बैठ जाते हैं और रात भर अगोरते रहते हैं। बाघ अकसर सबेरा होनेके कुछ समय पहले आता है। कभी-कभी लोग बाघके आधा खाये हुये पशुके कहीं आस-पास मचान बाँधते हैं, क्योंकि शिकारी जानते हैं कि बाघ अवश्य बचे हुये शिकारको खाने आता है। या ऐसा भी किया जाता है कि मचानके पास बकरी बाँध दी जाती है। कुछ तो यहाँ तक करते हैं कि बकरीके कानमें काँटा चुभा देते हैं और काँटेमें तागा बाँध देते हैं। तागेके दूसरे सिरे को मचान पर बैठे-ही-बैठे खींचा जा सकता है। तागेके खींचनेसे बकरीको पीड़ा होती है और वह चिल्लाने लगती है। उसकी चिल्लाहट सुन कर अधिक दूर रहने पर भी बाघ मचानकी ओर आ जाता है।

तेंदुआ और चीता

तेंदुआ और चीता दोनों बहुत-कुछ बाघकी तरह होते हैं। परन्तु बाघसे ये बहुत छोटे होते हैं। चीता तेंदुआ से छोटा होता है। तौलमें तेंदुआ लगभग दो मनका होता है। और चीता लगभग पौन मनका। कुछ वैज्ञानिक इनको विभिन्न जातियोंके प्राणी मानते हैं, परन्तु अधिकांश वैज्ञानिक इनको एक ही जातिका मानते हैं। तेंदुआ और चीता भारतवर्षमें होते हैं। तेंदुआ अफ्रीकामें भी होता है। तेंदुआ और चीताके शरीर पर चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। तेंदुआ और चीता दोनों पेड़ पर भी चढ़ सकते हैं, परन्तु भारी होनेके कारण तेंदुआ पेड़ पर कम चढ़ा करता है।

यद्यपि तेंदुआ बाघसे छोटा और कम बलवान होता है, तो भी अधिक फुरतीला और चतुर होनेके कारण वह अधिक हानि करता है। शरीर रचनामें यह बाघकी तरह ही होता है। रंग भी वैसा ही होता है, परन्तु धारियोंके बदले इस पर चित्तियाँ रहती हैं। पेड़ पर चढ़ सकनेके कारण तेंदुआ बाघसे भी भयानक होता है। यह ऊँचे और चिकने पेड़ों पर भी चढ़ सकता है। जब शिकारी काफ़ी ऊँचा मचान बाँध कर बाघका शिकार करता है तो बाघसे घायल होनेका डर उसे नहीं रहता, क्योंकि बाघ पेड़ पर

न चढ़ सकेगा और न मचान तक उछल सकेगा। परन्तु तेंदुएकी बात दूसरी है। घायल होते ही, यदि वह तुरन्त मर न जाय, वह पेड़ पर चढ़ जायगा और शिकारीको नीचे खींच लायेगा। परन्तु तेंदुएका घायल होना भी कठिन है। बाघ कभी सर उठा कर पेड़ोंकी ओर नहीं देखता, और अकसर बेखटके मचानके नीचेसे होता हुआ चला जाता है, परन्तु तेंदुआ तो पेड़ पर चढ़ कर भी शिकार करता है। इसलिये वह ऊपर-नीचे सब ओर अपनी तीक्ष्ण दृष्टि दौड़ाता चलता है।

तेंदुएको कुत्तेका मांस बहुत ही अच्छा लगता है और कुत्तेको पकड़नेके लिये बड़ी-बड़ी जोखिम उठाता है। साधारणतः वह बहुत चुपकेसे कुत्तेके पीछे पहुँच जाता है, और फिर काफ़ी पास पहुँच जाने पर एक छलाँगमें कुत्ते पर टूट कर उसका गला इस प्रकार दबोच लेता है कि बेचारा भूँक भी नहीं पाता।

तेंदुआ

तेंदुआ बाघसे छोटा होता है और इसके शरीर पर धारियों-के बदले चित्तियाँ होती हैं।

एक प्रसिद्ध फ्रेंच शिकारी ने तेंदुएके शिकारके संबन्धमें आपबीती निम्न रोमांचकारी घटनाका वर्णन किया है। यह अफ्रीकाकी बात है।

"कुछ अरबों ने हाँफते हुए आकर सूचना दी कि एक तेंदुआ एक बकरीको उठा ले गया है और झाड़ीमें छिपा है। मैं उनके साथ हो लिया। अरब लोग मुझे एक खड्डके किनारे ले गये और दूरसे ही वह स्थान दिखा दिया जहाँ तेंदुआ बकरी ले कर छिपा था। मैं खड्डके किनारे झाड़ी में छिप गया। मुझसे लगभग २० फुट पर एक बकरी बाँध कर अरब लोग डरके मारे वहाँसे भाग गये। शीघ्र ही तेंदुआ बज्रके समान बकरी पर आ टूटा। सन्नाटा खींच कर मैंने साँस तक रोक ली, किन्तु अभी गोली नहीं चलाई। चन्द्रमा मेघाच्छन्न हो रहा था और मैं यही राह देख रहा था कि चन्द्रमाका प्रकाश हो तो गोली चलाऊँ। इतनेमें सहसा तेंदुआ मेरे पाससेही निकलता हुआ दिखाई दिया। बकरीको ऐसी सुगमतासे दाबे था जैसे बिल्ली चूहेको उठा लेती है। घोर अन्धकार होनेसे तेंदुएका सिर-पैर मुझे कुछ न दिखाई दिया। अधीर हो मैंने बन्दूक चला दी। गोली लगते ही तेंदुआ गिरा और बकरीको छोड़ गर्जन करने लगा। गोलीसे उसकी दोनों अगली टाँगें टूट गईं किन्तु उसने यह न देख पाया कि गोली किधरसे आई। मैं यह तो समझ गया था कि यदि मैं किञ्चिन्मात्र हिला-डुला तो वह दुष्ट तुरन्त देख लेगा, किन्तु मुझे यह भय भी हुआ कि कहीं अकस्मात मेरे ऊपर वह घात न कर बैठे। अतएव मैंने निश्चय किया कि उठ कर खड़ा हो जाना चाहिये। ज्योंही मैं खड़ा हुआ तेंदुआ चुप हो गया और उसने झाड़ीकी ओर टक-टकी लगाई। एक दो क्षण तक अन्धकार के कारण मुझे कुछ दिखाई या सुनाई न दिया, जिससे मुझे यह विश्वास हो गया कि तेंदुआ मर गया। तब मैं झाड़ीसे बाहर निकला। मैं अति चौकन्ना था। जैसे ही पशु ने मुझे देखा, दस फ़ुटकी छलाँग मार कर वह मेरे ऊपर आया। मैंने दूसरी गोली उसके सिर पर मारी, किन्तु उसकी फुरतीके कारण मेरा निशाना चूक गया। गोली उसकी गरदनको झुलसाती हुई निकल गई। भयङ्कर तेंदुए ने आँख झपकते मुझे चित गिरा लिया और क्रोधके वेगमें पहले उसने मेरी गरदन चबा डालना चाहा। भाग्यवश मेरे कालर और वस्त्रों ने मेरी गरदन बचा ली। अब बायें हाथसे तो मैं उसको रोकता था और सीधे हाथसे

उन्मत्त-सा हो अपना छुरा निकालनेकी चेष्टा करता था। छुरा मेरी पेटीमें पीछेकी ओर लटका हुआ था और चित गिरनेके कारण मेरे नीचे दब गया था। मेरे बायें हाथको तो उसने आरपार चबा डाला और मुँहको भी भयानक रूपसे घायल कर डाला। उसके ऊपरके जबड़ेका एक दाँत मेरी नाकमें घुस गया और एक दाँत मेरी बाईं आँखके पाससे घुसा। इससे मेरे जबड़ेकी हड्डी टूट गयी।

"जब मुझे विश्वास हो गया कि केवल एक हाथसे मैं उसको न हटा पाऊँगा तो मैंने छुरेकी निष्फल खोज त्याग दी और भरपूर बल लगाकर दोनों हाथोंसे दुष्टकी गरदन पकड़ ली। तब उसने मेरा मुँह पकड़ा और अपने भीषण दाँत मांसमें घुसाकर मेरे जबड़ेको चूर-चूर कर दिया। हड्डीके चटकनेसे मुझे ऐसी पीड़ा हुई मानों कोई मेरा भेजा पीस रहा हो। मेरा मुँह उसके मुँहमें था, जिसमेंसे गरम-गरम दुर्गन्धमयी श्वास निकलती थी, और मुझे ऐसा जान पड़ता था कि मेरी श्वास घुट जायगी। अन्तमें निराश हो मैंने अपना सारा बल लगा कर उसका मुँह हटा ही दिया। तब फिर उसने मेरा बायाँ हाथ पकड़ा और कुहनीके पास बारम्बार काटा। यदि मैं बहुतसे वस्त्र न पहने होता तो हाथकी हड्डी काँचके सामान चूरचूर हो गई होती।

"मैं अब तक चित पड़ा था। तेंदुए ने फिर मेरा मुँह पकड़नेकी चेष्टा की। मैंने उसको रोकना चाहा, किन्तु अब मैं बहुत थक गया था। उस पशु ने मेरा सिर पकड़ लिया। तब निराशासे मुझमें नये बलका सञ्चार हुआ और मैंने मन-ही-मन ठाना कि रहा-सहा बल लगा कर एक बार और अपनी रक्षाके लिये प्रयत्न करूँगा। पशुको अलग कर मैंने ऐसे बलसे धक्का मारा कि खड्डके ढालू पार्श्व पर वह लुढ़क चला। अगले दोनों पंजे टूट जानेके कारण वह ऐसा निस्सहाय हो गया था कि ढाल पर रुक न सका, वरन् लुढ़कता, गरजता नीचे तक चला गया। उस दुष्टसे छुटकारा पाकर मैं उठा। थूका तो चार दाँत और बहुत-सा रक्त बाहर निकल पड़ा।

मेरा प्राण ईश्वर ने ही बचा दिया।"

शिकारी चीता

भारतवर्षमें लोग एक विशेष प्रकारके चीतेको पालते भी हैं और उससे शिकारमें सहायता लेते हैं। इसे शिकारी चीता कहते हैं। इसका मुख चीते-जैसा और शरीर कुत्ते की तरह होता है। रंग चीतेकी तरह होता है, परन्तु वैज्ञानिक लोग इसे चीतेसे भिन्न जातिमें गिनते हैं। थोड़ी दूर तक चीता अन्य सभी जन्तुओंसे तेज़ दौड़ सकता है; घुड़दौड़ी घोड़े और शिकारी कुत्ते उसके आगे बहुत सुस्त जान पड़ते हैं। परन्तु वह बहुत दूर तक नहीं दौड़ सकता। इसलिये

शिकारी चीता

भारतवर्षमें लोग एक विशेष प्रकारके चीतेको पालते हैं और उससे शिकारमें सहायता लेते हैं।

यदि वह एक ही दौड़में अपने शिकारको नहीं पाता तो फिर उसका पीछा नहीं करता। लोग चीतेको कटघरेमें बन्द करके और बैलगाड़ी पर लाद कर साथ ले जाते हैं। जंगलमें पहुँच कर उसे कटघरेसे निकाल लेते हैं और केवल एक रस्सीमें बाँधे रहते हैं। शिकार दिखलाई पड़ने पर फंदा खोल देते हैं। सर सैमुयल बेकर ने बड़ौदामें चीताके साथ शिकार करनेका अच्छा वर्णन दिया है। वे लिखते हैं कि "हम लोग चीतेके पीछे-पीछे घोड़ेपर सवार हो कर निःशब्द चल रहे थे। कोई सवा सौ गज़ पर दो हिरन दिखलाई पड़े। वे हमें ध्यानसे देख रहे थे। तुरन्त ही

चीता झपटा। क्या ही आश्चर्यजनक वेग था। भयंकर शत्रुको देख कर हिरन भी छलांगें मारते भगे। चीतेने पीछा न छोड़ा। कुछ ही क्षणोंमें हिरन और चीता झाड़ियों की आड़में हो गये। हमने भी घोड़े दौड़ाये। तीन सौ गज़से कम दूरी पर ही चीता एक हिरनको पटक कर उस पर चढ़ बैठा था। हिरन चित पड़ा था और चीता ने उसकी गरदनको धर दबोचा था। हिरनका दम घुट रहा था। अब उसका छटपटाना भी बन्द हो गया था।

"रखवारे ने चीतेकी आँखोंकी पट्टी चढ़ा दी, तो भी चीते ने हिरनको छोड़ा नहीं। अब रखवारे ने रस्सीसे हिरन के गलेको कस कर बाँध दिया और छुरेसे गलेका एक नस काट दिया। रुधिरका फव्वारा बह निकला। रुधिरको उसने कटोरेमें रोप लिया। जब यह करीब भर चला तो चीतेकी आँखें खोल दी गईं। खून देख कर चीते ने हिरनको छोड़ दिया और अपने चिरपरिचित प्यालेकी ओर लपका। जब वह रुधिर पीकर तृप्त हो गया तो उसकी आँखों पर फिर पट्टी बाँध दी गई और कटघरेमें उसे बन्द कर दिया गया, क्योंकि उस दिन फिर वह शिकारके पीछे न दौड़ता।"

शिकारी चीते अक्सर बहुत हिल-मिल जाते हैं और अपने स्वामीसे बड़ा प्रेम करते हैं।

बिल्ली-वंशके अन्य सदस्य

बाघ या तेंदुएसे मिलते-जुलते कई जानवर होते हैं जो अन्य देशोंमें पाये जाते हैं, परन्तु उनके वर्णनकी यहाँ आवश्यकता नहीं है। इनमेंसे एक जैगुआर और एक प्यूमा है। दोनों अमरीकामें होते हैं। घरेलू बिल्लीसे तो सभी भली भाँति परिचित होंगे। घरेलू बिल्लियोंसे मिलती-जुलती, परन्तु उससे कहीं अधिक खूँखार, जंगली बिल्लियाँ होती हैं। इनकी कई जातियाँ हैं। प्रायः सभी जंगली बिल्लियाँ घरेलू बिल्लीसे बड़ी होती हैं। एक जाति (लैटिन नाम फ़ेलिस बंगालेनसिस, अर्थात् बंगाली बिल्ली) ऐसी भयंकर होती है कि वह हिरन को भी मार डालती है। इसके लिये वह किसी पेड़ पर चढ़ कर छिपी बैठी रहती है और जब हिरन उधरसे आता है तो उसकी गरदन पर कूद पड़ती है और चिपट जाती है। हिरन चाहे कितना भी लोट-पोट करे या उछल-कूद मचावे बिल्ली उसे छोड़ती नहीं और धीरे-धीरे गरदन चबा कर हिरनको मार डालती है।

बिल्ली-वंशके अन्तर्गत एक गणके सदस्योंको लिंक्स कहते हैं और अँग्रेज़ीमें लिंक्स-आइड (= लिंक्सकी तरह आँखों वाला) का अर्थ होता है बहुत तीव्र दृष्टिवाला। वस्तुतः इन जन्तुओंकी दृष्टि बड़ी तीक्ष्ण होती है। इनकी शरीर-रचना बिल्लियोंकी तरह ही होती है, परन्तु लम्बी टाँगें, कुछ झबरे बाल और खड़े नुकीले कानके कारण वे बिल्लियोंसे स्पष्टतया भिन्न जान पड़ते हैं। भारतवर्षमें स्याहगोश नामका लिंक्स मिलता है, विशेषकर गुजरातकी ओर। यद्यपि शरीर भूरे रंगका होता है तो भी इसके कान काले होते हैं। इसीसे इसे स्याहगोश कहते हैं (फ़ारसीमें स्याह = काला, गोश = कान)। यह पूँछ छोड़ कर, लगभग डेढ़ हाथ लम्बा और एक हाथ ऊँचा होता है। यह खरगोश और पक्षियोंका शिकार करके अपना निर्वाह करता है।

सिंह, बाघ, तेंदुआ, घरेलू बिल्ली, बनबिलार और लिंक्सके अतिरिक्त बिल्ली-वंशमें एक जन्तु ऐसा है जो बिल्ली-वंश और नेवला-वंशके बीचका प्राणी जान पड़ता है। इसकी टाँगें अपेक्षाकृत छोटी और शरीर तथा पूँछ लम्बी होती है—कुल मिला कर लगभग पाँच फ़ुट—
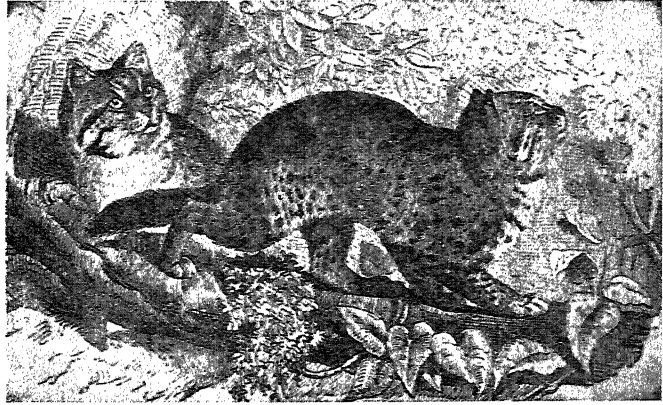
बंगाली बिल्ली
यह ऐसी भयंकर होती है कि हिरनको भी मार डालती है।

जिससे यह जन्तु नेवलेकी तरह लम्बा जान पड़ता है। यह मैडागास्करमें होता है और पेड़ों पर रह कर लीमरों और पक्षियों पर उदर-पालन करता है। अवसर पाने पर यह बकरियों पर भी आक्रमण करता है। वहाँके निवासी इस जन्तुसे बहुत डरते हैं। यह जन्तु गरज या बोल नहीं सकता, केवल जोरसे फुफकारी छोड़ता है। इसका नाम है फ़ौसा।

नेवला-वंश

बिल्ली-वंशियोंकी अपेक्षा नेवला-वंशके सदस्योंका सिर अधिक लम्बा होता है और दाँतोंकी रचना कुछ भिन्न होती है। इस वंशमें कई जातियाँ हैं और इनमें नेवला सबसे छोटा जन्तु है। इस वंशके अन्य जन्तुओंमेंसे सबसे प्रसिद्ध गंधबिलाव है जो कुछ-कुछ बिल्ली-सा होता है। इसकी पूँछकी जड़के नीचे एक थैली होती है जिससे एक द्रव पदार्थ

गंधबिलाव

यह देखनेमें कुछ-कुछ बिल्ली-सा होता है, परंतु इसकी पूँछकी जड़के नीचे एक थैलो होती है जिससे सुगंधि निकलती है।

निकलता है। उसमें बड़ी तीव्र गन्ध होती है। इस पदार्थ को अन्य वस्तुओंसे मिलाने पर कस्तूरी-जैसी सुगन्धि तैयार की जाती है। गंधबिलाव घरेलू बिल्लीसे कुछ ही बड़ा होता है और इस पर धारियाँ या चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। देखनेमें यह जानवर सुन्दर लगता है और पाला भी जाता है। गंधबिलावोंकी एक जाति भारतवर्षमें भी मिलती है। इसे बंगालमें गंधगोकुल और महाराष्ट्रमें कस्तूरी कहते हैं। इसे मुश्क-बिल्ली भी कहा जाता है।

नेवलोंको सभी ने देखा होगा। ये भूमि पर रहते हैं (वृक्ष पर नहीं)। इतने छोटे होते हुये भी वे निर्भीकतासे भीषण विषैले फनियर सर्पोंसे भिड़ जाते हैं और उनको मार डालते हैं। केवल अपनी विद्युत-सी गतिके कारण ही वे सर्पोंसे जीत पाते हैं। नेवला सर्पके सामने इधर-उधर पैतरा बदलता रहता है और ज्यों ही सर्पकी निगाह चूकती है वह झपट कर उसका गला दबोच लेता है। साँपोंको वह बड़े चावसे खाता है। चूहे भी वह खूब पकड़ता है और अवसर पाता है तो मुर्गे-मुर्गियोंको मार डालता है। नेवले छोटे-बड़े और विविध-धारियोंके होते हैं और उनकी जातियोंकी संख्या तीससे ऊपर होती है।

पालतू नेवले और सर्पकी आँखों-देखी लड़ाईका निम्न वर्णन शिक्षाप्रद है। डाक्टर ऐक्टन लिखते हैं—

नेवले और साँपकी लड़ाई

मुझे यह दृश्य देखनेका अवसर एक बार मिला था। कोठरीमें एक फणधर नाग छोड़ दिया गया और वह भागने के प्रयत्नमें इधर-उधर दौड़ने लगा। नेवला बड़ा निडर बन कर सर्पके पीछेसे उसके पास पहुँच गया और धीरेसे अपनी नाकसे उसे छू दिया। सर्प थोड़ा घूमा, पर फिर भागने लगा। नेवला ने फिर उसका पीछा किया। उसने निश्चय कर लिया था कि फन काढ़ कर चोट करनेके लिये नागको वह बाध्य करेगा। कभी-कभी इसके लिये नेवला सर्पकी पूँछमें दाँत भी काट लेता था कि सर्प क्रोधित हो जाय। नेवला खूब जानता था कि जिस समय सर्प अपना सर भूमि पर रक्खे है उस समय मुँहके पास जानेमें बुद्धिमानी नहीं है। इस प्रकार तंग आकर साँपने फुँफकार मारी और चोट करनेके लिये सर उठा लिया। इधर नेवला दाँत निकाले, बालोंको खड़ा किये, दृष्टि सर्प पर गड़ाये, साँपके चोट करनेकी सीमाके बाहर निडर खड़ा रहा, और मुँहसे रह-रह कर शब्द करता रहा कि सर्प कुपित हो कर वार करनेके लिये फन पटके। यह व्यापार एक-दो मिनट तक चलता रहा। जब सर्प खूब क्रोधमें आ गया तब नेवला साँपके चोट करनेकी सीमाके भीतर घुस गया और

अपना मुँह फाड़ अपने पैने छोटे-छोटे दाँत दिखलाने लगा। सर्प ने एक क्षणमें अपनी सब शक्तियाँ संग्रह करके ज़ोरसे वार किया। क्रोधमें अंधा होकर सर्प ने नेवले पर चोट तो अवश्य की, पर नेवला उसी क्षण एक ओर उछल कर बच गया और ज्योंही सर्पका फन भूमि पर आया, उसी क्षण झपट कर नेवलेने अपने तीखे दाँतोंसे सर्पकी आँखोंके पीछे फणमें भरपूर काट लिया। इस काटनेसे सर्प-की वह मांसपेशी जो विषको थैलीको दबा कर शत्रु के शरीरमें विष डालती है बेकार हो गई।

यदि नेवलेका यह वार खाली जाय और सर्पका नीचे का जबड़ा पहले वारके बाद लटक न पड़े, बल्कि मुँह अब भी बन्द ही रहे, तो नेवला दूसरी बार फनकी दूसरी ओर उसी दाँव-पेंचसे काट खाता है और इस प्रकार सर्पकी मुँह बन्द करनेकी शक्तिको नष्ट कर देता है। इस भाँति चोट खाया हुआ और अंग-भंग सर्प, जिसे अब अपने मुँहको बन्द करनेकी शक्ति नहीं रह जाती, अपने फनको नेवले पर दुबारा चोट करनेके लिये निराश होकर ही फिर उठायेगा। परन्तु इसके बाद तो नेवला अपने शत्रु के पीछे बुरी तरह पड़ जाता है।

नागने अपने टूटे मुँहसे पुनः चोट की, पर नेवला फिर पीछे उछल कर बच गया और ज्योंही सर्पका फन भूमिके पास आया नेवलेने दूसरी चोट की, परन्तु इस बार आँखोंके आगे। उसके विषैले दाँतोंके साथ ही ऊपरका जबड़ा भी टूट गया। दूसरी ओरका दाँत भी उसी प्रकार बेकाम कर दिया गया। इस प्रकार सर्पके विषैले दाँत तथा विष-ग्रंथि बेकार हो गये। नेवला अब निश्चिन्त हो गया। सर्प अब उसके हाथोंमें था, क्योंकि हताश सर्प अब घबड़ाया हुआ बिना देखे ही इधर-उधर चोट करने लगा था। इस लड़ाई का अन्त अब आ गया। नेवले ने उछल कर सर्पकी गर्दन को बलपूर्वक दाँतोंसे पकड़ लिया। जब तक सर्पका सब हिलना-डुलना शांत न हो गया नेवला उसे पकड़े रहा।

नेवला सर्पसे अधिक बलशाली समझा जाता है। इसका एक मात्र कारण नेवलेकी फुरती ही है। सर्प तो बहुत धीरे-धीरे पैतरा बदलता है और खड़े हो जाने पर निश्चित स्थान पर ही चोट करता है। इसलिये नेवले जैसे फुरतीले छोटे शत्रु पर उसका कुछ भी वश नहीं चलता और नेवलेके विजय प्राप्त करनेमें कुछ भी शंका नहीं रहती। जो सर्प विषैले नहीं होते हैं उनके फनको तो नेवला सीधे ही कूद कर पकड़ लेता है और अपने मुँहमें उसका गला घोंट कर उसे मार डालता है। नेवलेका यह समझ जाना कि सर्प विषैला है अथवा नहीं बड़े आश्चर्यकी बात है। इसका भेद शायद यही है कि नेवला अपने शत्रु के ऊपर कभी भी तब तक आक्रमण नहीं करता जब तक एक बार वह उसे चोट करते देख न ले। एक बार चोट करते ही नेवला समझ जाता है कि शत्रु को वह किस प्रकार वशमें ला सकेगा। यदि अपनेसे भी अधिक वेग-शाली सर्प उसका सामना करे तो वह उसके पास कदापि न फटकेगा।

लकड़बग्घा

लकड़बग्घेके नाममें बाघ शब्द आनेसे ऐसा भ्रम होता है कि ये बाघके ही वंशके होंगे, परंतु ये उस वंशके जंतु नहीं हैं। लकड़बग्घोंका अलग ही वंश माना जाता है। लकड़ शब्दसे यह न समझना चाहिए कि ये जंतु पेड़ों पर चढ़ते हैं। जब पहले-पहल इन जानवरोंका नाम लकड़बग्घा रक्खा गया होगा तो सम्भवतः लोग इसे तेंदुएकी जातिका जंतु समझे होंगे। तेंदुआ बाघकी तरह भी होता है और पेड़ पर भी चढ़ता है।

लकड़बग्घे पुरानी दुनिया (एशिया, यूरोप और अफ़्रीका) में प्रायः सभी जगह मिलते हैं। ये लगभग भेड़ियेके बराबर होते हैं। गरदन लंबी और शरीरका पिछला भाग कमजोर होता है। लकड़बग्घोंमें विशेषता यह है कि उनके दाँत और जबड़े बड़े बलिष्ठ होते हैं। वे मरे पशुओंका मांस खाते हैं और उन हड्डियोंको भी अपने दाँतोंसे दबा कर चूर-चूर कर सकते हैं जिन्हें सिंह नहीं तोड़ पाता।

एक प्रकारसे लकड़बग्घे मनुष्य जातिका बड़ा उपकार करते हैं। वे उस मांसको खा जाते हैं जो पड़ा-पड़ा सड़ता और दुर्गंध उत्पन्न करता। परंतु उनकी कुरूपता और अस्वच्छता, उनकी दुर्गंधि और गड़े मुरदोंको उखाड़ कर खानेकी बानके कारण सभी उनसे घृणा करते हैं। उनकी बोली गम्भीर और एक विचित्र प्रकारकी चिल्लाहट होती

है जो पागल मनुष्योंकी हँसी-सी होती है। इसी लिये लकड़बग्घे अँग्रेज़ीमें लाफ़िंग हाइईना (लाफ़िंग = हसने वाला ; हाइईना = लकड़बग्घा) भी कहलाते हैं।

लकड़बग्घे बहुत डरपोक होते हैं। जब तक उन्हें इधर-उधर पड़ा मांस, खाल, हड्डी आदि खानेको मिल जाता है तब तक वे अन्य जंतुओंसे नहीं बोलते। भूखसे बहुत पीड़ित होने पर वे भेड़-बकरी आदि पर आक्रमण कर सकते हैं। लकड़बग्घे सामनेसे कभी नहीं लड़ते। वे भागते हुए जानवरोंको पीछेसे उछल-उछल कर नोचते-खसोटते रहते हैं। रुधिर बहते रहनेसे जब जानवर गिर पड़ता है तब उसे खाते हैं। लकड़बग्घे बहुधा झुंडमें रहते हैं और बकरी आदिको मारनेके लिए भी कई लकड़-बग्घे एक साथ लगते हैं। मनुष्यसे लकड़बग्घे बहुत डरते हैं, परंतु जब वे बहुत भूखे रहते हैं तो सोते हुए मनुष्य पर (साधारणतः बच्चों पर) आक्रमण कर बैठते हैं।

अफ़्रीकामें लकड़बग्घे बस्तियोंके आस-पास उसी प्रकार अधिक संख्यामें रहते हैं जैसे यहाँ सियार। वे इतने साव-धान और चतुर होते हैं कि सोती हुई माताकी गोदसे बच्चेको उठा ले जाते हैं और माताकी नींद नहीं टूटती।

कुत्ता-वंश

कुत्ता-वंशमें घरेलू और जंगली कुत्तोंके अतिरिक्त भेड़िया, लोमड़ी और सियार आदि भी हैं। ये जंतु एक दूसरेसे बहुत भिन्न जान पड़ते हैं, परंतु उनकी शरीर-रचनामें इतनी समता है कि निस्सन्देह उन सबको एक ही वंशका सदस्य मानना चाहिये। कुत्तावंशियोंका मुँह सदा लंबा होता है; बिल्लीवंशियोंका छोटा। बिल्लीवंशियोंकी अपेक्षा कुत्तावंशियोंमें दाँतोंकी संख्या भी अधिक होती है और नख पंजोंके भीतर छिप नहीं सकते।

कुत्ते

हमारे घरेलू कुत्ते किस जंगली जंतुसे उत्पन्न हुए हैं इस पर आज भी बहुत मतभेद है। कुत्तोंके आदि पितामह का आज कहीं पता नहीं है, परंतु सियार और भेड़ियेकी कुछ जातियोंको कुछ लोग कुत्तोंका मूल मानते हैं। सम्भव है कि प्राचीनतम मनुष्य ने कुत्तोंकी कई आदि जातियोंको पाला हो और इन जातियोंकी संकरता (मिश्रण) से तरह-तरहकी नवीन जातियाँ उत्पन्न हुई हों। भारतवर्षके ढोल और ऑस्ट्रेलियाके डिंगो नामक जंगली कुत्तोंके बारेमें वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि वे पालतू कुत्तोंकी ही जातियाँ हैं जो कभी छूट कर जंगलमें चली गयीं और अब जंगली हो गयी हैं।

आधुनिक प्रजनन-विज्ञानसे कई नवीन भाँतिके कुत्ते उत्पन्न किये गये हैं। कुछ तो ऐसे छोटे होते हैं कि वे पॉकेटमें रक्खे जा सकते हैं, कुछ ऐसे कि वे भेड़ियेसे भी बड़े होते हैं। मोटे हिसाबसे कहा जा सकता है कि कुत्ते छः तरहके होते हैं :—

ब्लड-हाउंड

इसकी घ्राण-शक्ति आश्चर्यजनक होती है। घंटों पहले भागे मनुष्यकी गंध खोजता हुआ यह उसे पकड़ सकता है।

(१) भेड़ियेकी तरह कुत्ते। ये कुत्ते बहुत बड़े होते हैं। इनमें से एक, जिसे अँग्रेज़ीमें कॉली कहते हैं, यूरोपीय भेड़ चराने वालोंकी बड़ी सहायता करता है। भेड़ कितनी दूर तक भी क्यों न बिखर गये हों, वह भेड़-समूहके चारों

ओर दौड कर और आवश्यकतानुसार भूँक कर शीघ्र उनको इकट्ठा बटोर लेता है। आज्ञा पाने पर भेड़ोंको घर ले जाता है और भूले-भटके भेड़ोंको खोज लाता है। यदि भेड़ोंको कोई जंतु हानि पहुँचाना चाहे, या चोर चुराना चाहे, तो कुत्ता उस पर टूट पड़ेगा और उसकी दुर्दशा कर डालेगा। इसी मेलके एक दूसरे कुत्तेको सेंट बरनार्ड कहते हैं। ऐसे कुत्ते इस प्रकार सिखाये रहते हैं कि बर्फमें थक कर गिर पड़े मनुष्योंकी जानकी वे रक्षा करें। इनका उपयोग स्विटज़रलैंडके पहाड़ों पर होता है। उनकी पीठ पर खाने-पीनेका सामान बाँध दिया जाता है और वे बरफमें भूले-भटके या बरफकी आँधीसे गिरे पथिकोंकी खोजमें घूमा करते हैं। उन्हें पा जाने
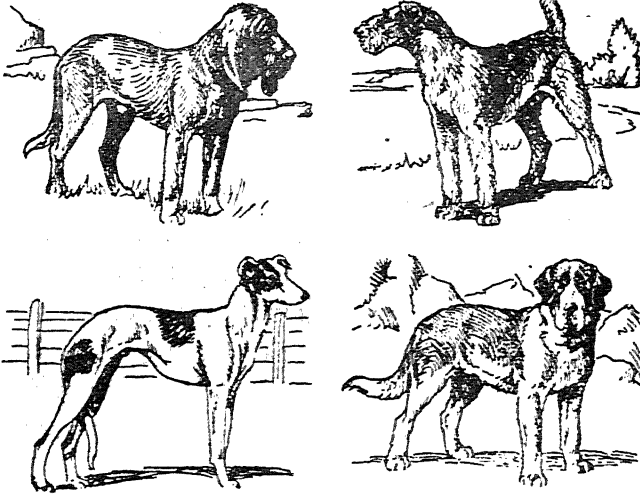
कुत्तोंकी विभिन्न जातियाँ

ब्लड-हाउंड टेरियर
ग्रे हाउंड सेंट बारनार्ड

पर आहार-सामग्री देकर रास्ता बताते हुए उस मठमें ले जाते हैं जहाँ यात्रियोंके ठहरनेका प्रबंध रहता है। कोई-कोई यात्री गिर पड़े रहते हैं और हिम-वर्षा होते रहनेसे बरफमें दब जाते हैं। इन कुत्तोंकी घ्राण-शक्ति ऐसी तीव्र होती है कि वे ऐसे यात्रियोंका भी पता पा जाते हैं। बरफ खोद कर उनको निकाल लेते हैं और इतनी ज़ोरसे भूँकते हैं कि मठ तक सुनाई पड़ जाता है। तब वहाँसे सहायता आ जाती है। इन कुत्तोंके कारण बहुतों का प्राण बच गया है।

(२) रखवाली करने वाले कुत्ते। नामसे ही स्पष्ट है कि ये कुत्ते क्या काम करते हैं। ये मझोले नापके होते हैं और बहुत चौकन्ने रहते हैं।

(३) ग्रे हाउंड या शिकारी कुत्ते। ये दुबले और बड़े होते हैं, और बहुत वेगसे दौड़ सकते हैं।

(४) प्रबल घ्राण-शक्ति वाले कुत्ते। ये भी शिकारके काममें आते हैं। इनमेंसे एक कुत्ता—ब्लड हाउंड—बहुत प्रसिद्ध है। यह बहुत बड़ा होता है और इसकी आकृति डरावनी होती है। कान लटके रहते हैं और आठ-नौ इंचके होते हैं। मुखड़ेकी त्वचा ढीली होती है और कई स्थानोंमें लटकी हुई रहती है। इसकी घ्राण-शक्ति आश्चर्य जनक होती है। घंटों पहले भागे मनुष्यकी कोई वस्तु, जैसे रूमाल या कपड़ा या जूता, सुँघा देने पर ब्लड हाउंड वैसी ही गंध खोजता हुआ मनुष्यका पीछा करेगा। नदीमें कूद कर तैर जानेके सिवाय इससे पिंड छुड़ाना कठिन हो जाता है। ये भागे मनुष्यको पकड़ पायें तो उसे चीर-फाड़ डालें।

प्रबल घ्राणशक्ति वाले कुत्तोंमें से एक पॉइंटर नामका कुत्ता होता है जो शिकारकी गंध पाते ही उसकी ओर मुँह करके और अपनी पूँछको तान कर चुपचाप खड़ा हो जाता है।

(५) टेरियर अर्थात् भूमि खोद सकने वाले कुत्ते। इनमें से कुछ बिलमें घुसे चूहोंको मिट्टी खोदकर पकड़ सकते हैं। ये छोटे कुत्ते होते हैं। शौकके लिए पाले जाने वाले कुत्तोंमें से अधिकांश इसी जातिके होते हैं।

(६) छोटे थूथन वाले कुत्ते। ये कुत्ते बड़े होते हैं। थूथन छोटा और शरीर भारी होता है। इनके जबड़ेका बल प्रसिद्ध है। इनमेंसे एक—बुलडॉग—बहुत ही प्रसिद्ध है। जिस किसीको यह क्रोधमें पकड़ लेता है उसे छोड़ना ही नहीं जानता, चाहे जान ही चली जाय।

कुत्तेकी स्वामिभक्ति प्रसिद्ध है। वह बुद्धिमान भी बहुत होता है। मनुष्योंकी तरह कुत्तोंमें क्रोध, ईर्ष्या, प्रीति, घृणा सभी भाव पाये जाते हैं। हिममय प्रदेशोंमें वह बोझा घसीटनेके काममें लाया जाता है।

ढोल—ढोल जंगली कुत्ता है। भारतवर्षके किसी-किसी स्थानमें इन कुत्तोंके झुंड-के-झुंड मिलते हैं।

इससे मनुष्य बहुत डरते हैं और ठीक भी है। ढोल साधारणतः मरे जानवरोंका मांस नहीं खाते; वे स्वयं

कुत्तोंकी विभिन्न जातियाँ

नाटा टेरियर पॉइंटर
बुलडॉग कॉली

शिकार करते हैं और दलमें रह कर शिकार करते हैं। वे अपने शत्रुके बल या नापकी परवाह ज़रा भी नहीं करते। अपने शिकारके पीछे बड़े धैर्यसे लग जाते हैं और थकना तो वे जानते ही नहीं। बाघ तकको ये परेशान कर डालते हैं और देखा गया है कि अन्तमें वे बाघको मार कर खा भी गये हैं। बचपनमें इनके रंगमें लाली रहती है, परंतु पीछे रंग गाढ़ा सुरमई हो जाता है।

भेड़िया

जैसे बाघ एक तरहकी बिल्ली है, उसी तरह भेड़िया एक तरहका कुत्ता है। भेड़िये और सभी प्रकारके बड़े कुत्तोंके संकर बच्चे उत्पन्न हो सकते हैं; अर्थात् ऐसा हो सकता है कि माता भेड़िया हो और पिता कुत्ता, या माता कुतिया हो और पिता भेड़िया।

जब तक मरे जानवरोंका मांस मिलता है भेड़िया शिकार नहीं करता। जब भूख लगती है और मरा जंतु नहीं मिलता तो भेड़िये शिकार भी करते हैं, परंतु ये अकेले शिकार नहीं करते। बहुतसे भेड़िये मिल कर शिकार करते हैं। ये बाघकी तरह शिकारको कभी दबोचते नहीं। उसका पीछा करते रहते हैं और उछल-उछल कर उसका गला नोचते रहते हैं। जब रक्त बहते रहनेसे जंतु बेदम होकर गिर जाता है तब उसका मांस खा डालते हैं।

भेड़िये बड़े डरपोक होते हैं। केवल भूखसे अत्यन्त पीड़ित होने पर ही वे मनुष्य पर आक्रमण करते हैं। उनकी प्राण-शक्ति बहुत तीव्र होती है। इसलिये वे अपने योग्य आहार या शिकार का पता बहुत दूरसे पा जाते हैं। भेड़िया कुत्तेकी तरह पालतू भी किया जा सकता है परन्तु उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

कुछ भेड़ियोंको मनुष्य-मांसका ऐसा चसका लग जाता है कि वे बार-बार मनुष्यको ही मारते हैं। मुड़वारा (मध्य प्रान्त) में एक बार इतने नरभोजी भेड़िये हो गये थे कि सरकार ने उनके मारनेके लिये ५०) प्रति भेड़िया इनाम नियत कर दिया था। कई भेड़िये मारे गये, परन्तु कई व्यक्तियों ने अपनी जान भी गवाँई। एक साहब पेड़की आड़से दो भेड़ियोंकी ताकमें खड़े थे कि वे पास आवें तो बन्दूक चलावें। इतनेमें पीछे एक सूखी टहनीके चटखनेका शब्द सुनाई पड़ा। घूम कर देखा तो दो और भेड़िये पीछेसे उन पर झपटने ही वाले थे। न जाने कैसे, सम्भवतः भयके कारण, बन्दूक दग गई। गोली भेड़ियेकी ओर तो नहीं गई, परन्तु सब भेड़िये भाग गये और शिकारीका प्राण बच गया।

कभी-कभी भेड़ियेके हाथमें मानव-बच्चोंके पड़ जाने पर भेड़िये उनको अपने ही बच्चोंकी तरह पाल लेते हैं। ऐसी घटनाएँ इतिहासोंमें तो हैं ही। परंतु अभी हालमें मिदनापुर (बंगाल) में ऐसे दो बच्चे पकड़े गये थे। उनका विवरण एक बार विज्ञानमें छपा था (लेखक—श्री सुरेश शरण अग्रवाल, एम.एस-सी.)। वह नीचे उद्धृत किया जाता है।

भारतवर्षके दोनों भेड़िया-बालक सर्वप्रथम ९ अक्टूबर १९२० को भेड़ियोंके बीच भेड़ियोंकी भाँति रहते देखे

गये थे और देखने वाले एक ऐंगलीकन मिशनरी (ईसाई पादरी) रेवेरेण्ड जे. ए. एल. सिंह थे। वे भारतवर्षके आदिमनिवासियोंमें ईसाई मत प्रचारके लिये घूम रहे थे और उनके साथमें कुछ ऐंग्लो-इन्डियन (गोरे) थे जो भारतके इस उत्तरी-पूर्वी भागमें, जहाँ चीते आदिकी बहुतायत है,

भेड़िया
जैसे बाघ एक तरहकी बिल्ली है, उसी तरह भेड़िया एक तरहका कुत्ता है।

आखेटके लिये आये थे। एक गाँवमें उन्होंने सुना कि कोई सात मीलकी दूरी पर एक ऊँची पहाड़ी पर एक 'देव' रहता है। संध्याका समय था। उसी ओर वे सब मुड़ पड़े और एक पेड़के तले चीतेका आखेट करनेका प्रबन्ध किया। यहाँ पर उन्होंने उस पहाड़ी परसे 'देव' के आनेकी प्रतीक्षा की।

रेवेरेण्ड सिंह लिखते हैं:—तब, एकदम, एक बड़ा-सा भेड़िया एक भींटेमेंसे निकला। उसके पीछे उसीके आकार तथा डील-डौलका दूसरा था। दूसरेके पीछे एक तीसरा था जिसके बाद दो छोटे-छोटे भेड़िये थे। इन छोटे भेड़ियोंके उपरान्त शीघ्र ही 'देव' निकला। यह एक भयानक जन्तु था जिसके हाथ पैर तथा शरीर मनुष्यकी भाँति थे। उसके बाद ही दूसरा भयानक जन्तु निकला जो पूर्णतया उसीके समान था, किन्तु उससे कुछ छोटा। उनके नेत्र मनुष्यके नेत्रोंके विपरीत चमकीले तथा धँसे हुये थे। परन्तु मैं तुरन्त इसी परिणाम पर पहुँचा कि वे मनुष्य हैं।

"पहले देव ने अपनी कुहनियाँ भींटेके सिरे पर रक्खीं और बाहर कूदनेसे पूर्व इस ओर तथा उस ओर देखता रहा। ऐसा ही व्यवहार छोटे 'देव' ने किया। दोनों-के-दोनों चारों हाथ-पैर पर दौड़ते थे।"

उस समय दूरबीन केवल रेवरेण्ड सिंहके पास थी, फलतः उनके साथी उन जन्तुओंका मनुष्य होना नहीं पहचान पाये। आगे चल कर रेवरेण्ड सिंह लिखते हैं—मेरे मित्रों ने देवोंको मारनेके लिये बन्दूकें सीधी कीं और यदि मैं मना न करता तो वे उन्हें मार देते। मैंने उनकी बन्दूकें रोकीं और उनमेंसे दोको अपनी दूरबीन दी और उनसे कहा कि वह 'देव' मनुष्यकी संतान है।

रेवरेण्ड और उनके साथियों ने दस अक्टूबर १९२० को इन्हीं देव तथा भेड़ियोंको देखा। उन्होंने चाहा कि इन्हें पकड़ें और उस गाँवके आदिम निवासियोंसे अपनी इच्छा प्रकट की कि वे 'देव' तथा उनके स्थानको जालसे घेर डालें। परन्तु 'देव' के डरके कारण उन्होंने अस्वीकार किया। अतएव दूसरे दिन रेवरेण्ड सिंह एक दूरके गाँवमें गये और वहाँसे कुछ लोगोंको लाये कि वे भेड़ियोंको अपने भींटेमेंसे खोद निकालें। उन गाँववालोंको 'देव' आदिकी कुछ भी खबर नहीं थी। मजदूरी पानेके नाते उन्होंने उपर्युक्त कार्य करना स्वीकार किया।

रेवरेण्ड सिंह लिखते हैं—'फावड़ेके कुछ हाथ चलाने के बाद भींटेसे जल्दी एक भेड़िया निकला और अपनी जान बचानेके लिए जंगलमें भागा। दूसरा भी शीघ्र ही निकला और प्रथमकी तरह भयातुर भाग गया। इसी तरह एक तीसरा प्रकट हुआ। बिजलीकी भाँति वह उनपर टूट पड़ा और खोदनेवालोंसे बदला लेनेकी ठानी। मार खाने पर वह भागता, किन्तु शीघ्र ही खोदनेवालोंके आगे-पीछे दौड़ता और बीच-बीचमें शोर करता वह अविश्राम दौड़ता था, कभी जमीन को दाँतोंसे खुरचता था और भींटेके आस-पास किन्तु दूर चक्कर लगाता था।

मेरी बड़ी इच्छा थी कि इसको पकड़ लूँ, क्योंकि यह शायद माता भेड़िया थी, जैसा कि उसके व्यवहारसे जान पड़ता था। मैंने आश्चर्यान्वित हो सोचा कि माता भेड़िया बच्चोंके लिये तड़प रही है। मैं तो वहाँ अचेत-सा खड़ा

था। इतनेमें उन गाँववालोंने तीर तथा भालोंसे उसे मार डाला और वह गिर पड़ी।

वहाँकी खुदाई तो आसानीसे हो गई। सिंह साहेबका कहना है कि वह स्थान एक डेकचीके रूपका था, साफ और चिकना, मानों सीमेन्ट किया हो। स्थान बिलकुल साफ़ था। रक्त क्या, हड्डीका भी कहीं कोई चिह्न नहीं था। फिर कहते हैं—'पूरा भेड़िया-परिवार उसी भीटेमें रहा करता था। दो छोटे भेड़िये और दोनों 'देव' वहाँ एक कोनेमें एक दूसरेसे चिपटे हुये थे। उनको एक दूसरेसे पृथक करना वास्तवमें एक समस्या थी। 'देव' छोटे भेड़ियों की अपेक्षा अधिक भयानक थे; वे मुँह बनाते, दाँत दिखाते और फिर चिपटनेके लिये दौड़ते थे।'

मनुष्यकी संतानको बचानेवाले इस सोचमें पड़े कि क्या करें। तब एकके विचारानुसार उनके ऊपर कम्बल सदृश कपड़ा फेंका गया जो गाँववाले ओढ़े हुए थे। इस प्रकार भेड़िया तथा बालक अलग किये गये और पकड़ लिये गये। भेड़िये गाँववालोंको दे दिये गये, जिन्हें उन्होंने बेच डाले, और सिंह साहेब उन दोनों बच्चोंको मिदनापुर अपने घर ले आये जहाँ वे अपनी स्त्रीके साथ एक अनाथालय चलाते थे।

सिंह साहेबको आशा थी कि अनाथालयके बालकोंसे कुछ वर्षों तक सम्पर्कमें आनेके बाद ये भेड़िया-बालक भी बिलकुल मनुष्यके बालककी तरह व्यवहार करेंगे। बड़ी लड़कीका नाम, जिसकी अवस्था कोई आठ वर्षको थी, कमला रक्खा गया और छोटीका जो केवल डेढ़ वर्षकी थी, अमला। श्रीयुत सिंह और उनकी स्त्री ने निश्चय कर लिया था कि इन बालिकाओंकी कथा किसीको बतलायेंगे नहीं, अन्यथा बड़ी होने पर उनका विवाह नहीं होगा। परन्तु बहुत दिनों बाद जब वे दोनों बीमार पड़ीं और डाक्टरको दिखलाया तो उसने उनके जीवनकी घटनायें जाननेकी इच्छा की। तबसे उन बालिकाओंकी चर्चा सर्वत्र फैल गई और शीघ्र ही संसार भरमें यह समाचार ज्ञात हो गया।

रेवरेण्ड सिंह और उनकी स्त्री इस प्रकाशनसे बहुत दुखी हुईं। इसी कारणसे नहीं कि उनकी पुत्रियोंका विवाह अब नहीं होगा, किन्तु इस कारणसे भी कि अब उनके पास दर्शकों और समाचार-पत्र-प्रतिनिधियोंकी भीड़ लगी रहेगी, और संसारके कोने-कोनेसे पत्र आयेंगे। परन्तु विज्ञानका तो इसीसे भला हुआ कि समाचार प्रकाशित हो गया, क्योंकि इसी प्रकारकी कोई ३० घटनाओंमेंसे यह प्रथम थी, जब जानवरोंके बीचमेंसे जानवरोंकी भाँति रहते हुए मनुष्योंको निकाला गया।

सिंह साहेब और उनकी स्त्री उन्हें नवजात शिशुकी भाँति पालते-पोसते थे और वास्तवमें वे थे ही शिशु अवस्था में। आठ और डेढ़ वर्षके उन बच्चोंको चारपाई पर बाँध कर रक्खा जाता था। वे कपड़े तो तुरन्त फाड़ डालते थे। फलतः उनका वस्त्र लँगोटा ही था। बच्चोंकी भाँति वे केवल दूध पीते थे। कच्चा मांस उन्हें नहीं दिया जाता था, जैसा वे पहले खाया करते थे। उनकी यह आदत बहुत दिन तक रही। कुछ समय पश्चात् एक दिन बिल्लीके बच्चेको कच्चा मांस खाता हुआ देखा तो अपने सूँघनेकी शक्तिसे, जो बहुत दिनों तक तीव्र रही, उन्होंने मांसको पहचान लिया।

दूध पर रहते-रहते जब इनमें शक्ति आ गई तब उन्हें चारपाईके बाहर आने-जाने दिया गया। वे सूर्यके प्रकाशसे डरते तथा घृणा करते थे, परन्तु रातको निरुद्देश चारों हाथ-पैरों पर घूमा करते थे। उनका व्यवहार मनुष्यकी भाँति नहीं था। भेड़ियेकी भाँति वे मनुष्यसे डरते, घृणा करते तथा बचते थे। अन्य जीव-जन्तु उन्हें प्रिय थे और उनसे वे इतने परिचित लगते थे कि उनसे उन्होंने बहुतसी बातें सीखीं। वे कुत्तोंसे प्रेम करते थे और शीघ्र ही उनसे उन्होंने प्लेटमेंसे दूध लपलप करके पीना सीख लिया और इससे भी अधिक आश्चर्यकी बात थी उनका दरवाजे पर आना और चारों टाँगोंसे फिर अन्दर घुसनेके लिये उसे धक्का लगाना। आरम्भमें तो उनकी रुचि, उनकी लगन, उनकी सहानुभूति सब जानवरकी ओर थी। रेवरेण्ड सिंहकी डायरीसे विदित होता है कि कितने कष्टसे तथा धीरे-धीरे उनका ध्यान जानवरोंसे मनुष्योंकी ओर लाया गया। उनको यह सिखानेके लिये कि मनुष्यकी भाँति टाँगोंके बल खड़े हों उन्हें लम्बी-लम्बी तथा जटिल कसरतें करानी पड़ीं यही नहीं, उनसे एक बिल्लीकी नकल करवाई गई जिसमें वे पेड़ पर चढ़ें और उनको टाँगके पुट्ठे ढीले पड़ें। पेड़से कूदने में वे मनुष्यकी नकल तो कदापि नहीं करते थे, बिल्लीकी तो उन्होंने कर भी ली। मनुष्यकी संगत उन्हें भाती नहीं थी, वे

घण्टों तक बिल्लीके बच्चोंके साथ-साथ फिरते थे। दोनोंमें से किसी ने भी सीधे खड़े होकर दौड़ना नहीं सीख पाया। वे सीधे चलना सीख गये,परन्तु कुछ विचित्र ढंगसे चलते थे।

अमलाकी अचानक मृत्युसे उनकी उन्नतिमें बाधा पड़ी। अमला छोटी होनेके कारण शीघ्र सीखती थी और फिर कमला उसकी नकल कर लेती थी। संसार भरमें अपने सदृश एकके देहावसान पर कमलाको बड़ा दुःख पहुँचा और वह निस्तेज-सी हो गई। ऐसा अकेलापन सभी कठिनतासे सहते हैं परन्तु भाग्यवश उसकी रुचि मनुष्योंमें बढ़ती गई, विशेष कर श्रीमती सिंहमें, जो सदैव उसे भोजन कराती थीं।

धीरे-धीरे कमलाका मानव प्रेम बढ़ा। वह लगभग ५० शब्द बोलना भी सीख गई और प्रायः उनसे छोटे-छोटे वाक्य बना लेती थी। वह अपने कपड़े भी पहनने लग गई। 'अपनेपन' का भाव बढ़ा। उसकी रुचिके लिए उसके कपड़े लाल रंगके होते थे। अंतमें वह बालकोंकी भाँति कपड़ा पहननेकी इच्छा भी प्रकट करने लगी और अन्य बालकोंके साथ घूमने भी जाती थी। उसकी बुद्धि इतनी प्रखर हो गई कि बहुतसे काम कर देती थी और बच्चोंमें खेलती तो थी ही।

इस विवरणसे स्पष्ट है कि जन्म होने पर शिशुके लक्षण ऐसे ही होते हैं कि वह भविष्यमें बढ़ कर पूरा मनुष्य बन सकता है। परन्तु मनुष्य बननेके लिए यह परमावश्यक है कि वह आरम्भसे उनकी संगतिमें रहे। यदि बहुत काल तक वह मनुष्य मात्रसे वञ्चित रक्खा जाय तो मनुष्यकी कई चारित्रिक बातें, भाषा, रहन-सहन, कूदना-फिरना आदि वह नहीं सीख सकता। शोक है कि अमला जल्द ही मर गई, अन्यथा वह अपनी बहन कमलाकी अपेक्षा अधिक 'मनुष्य' निकलती। परन्तु वातावरण ही सर्वेसर्वा प्रभाव नहीं रखते।

सियार

सियार गरम देशोंमें प्रायः सर्वत्र पाया जाता है। यह मझोले कुत्तेके बराबर होता है। भारतवर्षका सियार साधारणतः पीलापन लिये भूरा होता है। सियारसे मनुष्यको यह लाभ होता है कि बाहर पड़े मरे जंतुओं और बाघ,सिंह आदिके खाने पर बचे मांस तथा बस्तियोंमें कूड़ा-कर्कटके साथ फेंके गये मांसेको वह खा जाता है। इस प्रकार सियार सफाईका काम करते हैं; यदि मांस आदि पड़ा रह जाय तो उनके सड़ने पर निकली हुई दुर्गन्धि वायुको दूषित करेगी। परन्तु सियारोंसे हानि भी होती है। वे चोर होते हैं और अवसर पाते ही छोटे पालतू जन्तुओंको उठा ले जाते हैं। सियार खेतोंमें लगे गन्नेको भी काट डालते हैं क्योंकि उन्हें गन्ना अच्छा लगता है। खरबूजा आदि फलको भी सियार खा जाते हैं। उन्हें भुट्टे भी पसन्द हैं। प्राचीन कथाओंमें सियारको बहुधा बाघ या सिंहका दरबारी कहा गया है। कारण यह है कि सियार अकसर बाघ आदिके पीछे-पीछे लगे रहते हैं और वह इस लालचसे कि जब बाघ शिकार करेगा और भर पेट खा कर हटेगा तो कुछ खानेको मिल जायगा। सियार बड़े डरपोक होते हैं। वे यथासम्भव स्वयं कभी नहीं शिकार करते और यह आँखों देखी बात है कि वे डंडा लिये लड़केसे भी भाग जाते हैं। लड़कोंका वह खेल जिसमें एक पूछता है कि "सियार मारने जाओगे? डरोगे तो नहीं?' इसी आधार पर है कि सियारोंसे डरना डरपोकपनेकी हद है।

आकारमें सियार बड़ी-सी लोमड़ीकी तरह होता है। मुँह लम्बा होता है और पूँछ घने बाल वाली। सियार सदा बड़े दलोंमें रहते हैं। दिनमें वे झाड़ियों या भूमिके भीतर खोहोंमें रहते हैं, और केवल रातको बाहर निकलते हैं।

यदि सियारोंका दल शत्रुओंसे घिर जाय तो वे बड़ी दृढ़ता और क्रूरतासे लड़ते हैं। एक दो बार ऐसा भी देखा गया है कि अकेला सियार कुत्तोंसे घिर गया है और बचनेका कोई उपाय न देख कर मुरदा बन गया। कुत्तोंके नोचने-खसोटने पर भी उसने दम साध रक्खी, परन्तु जब कुत्ते उसे मृत समझ कर हट गये तो वह उठा और इधर-उधर झाँक कर सरपट भागा।

जब एक सियार बोलता है तो अन्य सब उसके साथ बोलने लगते हैं। विचित्र ढंगसे ये हुआँ-हुआँ करते हैं। कभी-कभी किसी सियारको वही रोग—जल संत्रास—हो जाता है जो कुत्तोंको होता है, और जिससे कुत्ते पागल हो जाते हैं। तब सियार अपनी भीरुता भूल जाता है और जो कोई सामने पड़ जाता है उसीको काट लेता है।

सियार पाले भी जा सकते हैं। यदि वे बचपनमें पाले जायँ तो कुत्तेकी तरह अपने स्वामीकी आज्ञा भी मानते हैं। परन्तु वे सियार जो एक बार स्वतन्त्रताका स्वाद पा चुके रहते हैं पूर्णतया पालनू नहीं किये जा सकते। वे कभी-न-कभी धोखा देते हैं।

लोमड़ी

लोमड़ियाँ प्रायः सभी देशोंमें होती हैं। लोमड़ी बड़ी धूर्त और कपटी गिनी जाती है, और यह ठीक भी है।
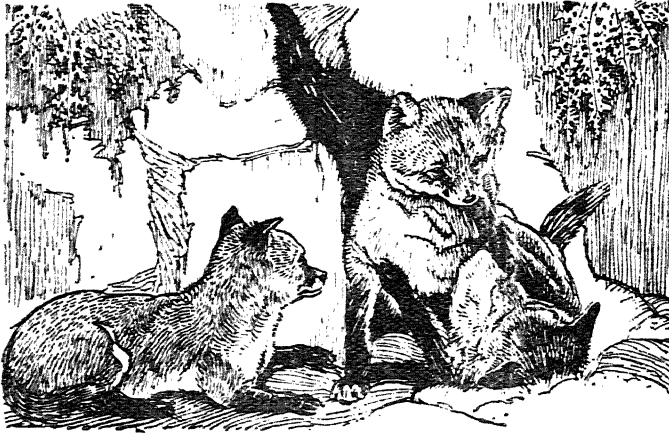
लोमड़ीके बच्चे
लोमड़ियाँ बड़ी धूर्त और कपटी होती हैं।

इसका रूप-रंग कुत्तोंसे बहुत भिन्न होता है। इसका मुँह कुत्तोंको अपेक्षा अधिक पतला होता है, टाँगें भी शरीरके हिसाबसे छोटी होती हैं, पूँछ अधिक बाल-वाली और लम्बी होती है और कान खड़े होते हैं। आँखमें बिल्लियों-सा गुण होता है—दिनमें पुतलियाँ बहुत छोटी हो जाती हैं, रातमें बहुत बड़ी।

भेड़िया और सियार तो दल बाँध कर रहते हैं, परन्तु लोमड़ियाँ अलग-अलग रहना पसन्द करती हैं। एक परिवारकी लोमड़ियाँ एक दूसरेकी सहायता करते हुए शिकार अवश्य कर लेती हैं, परन्तु कई परिवारोंकी दलबन्दी कभी देखनेमें नहीं आती।

लोमड़ी भूमिके भीतर माँद बना कर रहती है। माँदोंको वह स्वयं खोद भी सकती हैं, परन्तु ऐसा अधिक सम्भव है कि उसने किसी दूसरे जन्तुके खोदे माँदको हड़प कर लिया हो। माँदोंमें विशेषता यह होती है कि भाग निकलनेके लिये इनमें कई मार्ग बने रहते हैं जिससे एक मार्ग छेक जाने पर भी वह निकल भागे।

लोमड़ियाँ दिन भर माँदोंमें छिपी रहती हैं और रातको आहार ढूँढने बाहर निकलती हैं। इनकी घ्राण-शक्ति (सूँघनेकी शक्ति) बड़ी प्रबल होती है, साथ ही आँख, कान भी बड़े तेज़ होते हैं। पकड़े या मारे जानेका डर रहते ही इन्हें बहुधा किसी-न-किसी तरहसे पता चल जाता है। इसीलिए लोमड़ियोंका पकड़ा जाना कठिन है। ये बड़े दबे पाँव, चुपके-चुपके, चलती हैं। साथ ही बहुत चतुर होती हैं। इसलिए इन्हें अपने खाने भर किसी-न-किसी तरह मिल जाता है। खरगोश, मुर्गी आदि जंतु, ये ही लोमड़ीके आहार हैं। कभी लोमड़ी दिखलाई भी पड़ जाती है तो वह इतने वेगसे भागती है कि कुत्ते भी उसे पकड़ नहीं पाते। विलायतमें लोमड़ीका शिकार धनी लोग बड़े चावसे करते हैं। कई व्यक्ति तेज़ घोड़ों पर चढ़ और सधे शिकारी कुत्तोंको साथ लेकर किसी खेतमें पहुँचते हैं, और लोमड़ीके माँदकी खोज करते हैं। कहीं कोई मिला तो कुत्तेके भूँकनेके कारण लोमड़ी किसी दूसरे मार्गसे निकल भागती है। कुत्ते और शिकारी उसके पीछे दौड़ पड़ते हैं। लोमड़ी इनको खूब छकाती है। शीघ्र ही वह आँखोंके ओझल हो जाती है। परंतु कुत्ते उसके मार्गको सूँघते हुए उसका पीछा करते ही रहते हैं। लोमड़ी भी सीधे न भाग कर बार-बार मुड़ती रहती है और झाड़ियोंमें से होकर जाती है। तेज़ दौड़ सकनेके कारण समय-समय पर उसे विश्राम करनेका अवसर भी मिल जाता है। परंतु वह बेचारी एक रहती है और शिकारी तथा कुत्ते अनेक। बहुधा अंतमें कुत्ते उसे पकड़ ही लेते हैं और उसे या तो कुत्तोंके दाँतोंसे या किसी शिकारीकी छुरीसे प्राण खोना पड़ता है। कभी-कभी अंत तक लोमड़ी नहीं पकड़ी जा सकती, तब सभी शिकारी और कुत्ते निराश होकर घर लौटते हैं।

लोमड़ियोंकी चतुराईके बहुत-से किस्से विलायतमें सुनाये जाते हैं। कहा जाता है कि एक बार एक लोमड़ी ने देखा कि कहीं छिपनेका ठिकाना अच्छा नहीं है, केवल एक ऊँची भीत है। वह उधर दौड़ कर गयी और कूद कर पार हो गयी। परंतु भाग जानेके बदले जड़के पास दुबक कर बैठ रही। कुत्तोंने भी पीछा किया, परंतु ज्योंही वे भीतके उस पार होकर आगे दौड़े, लोमड़ी फिर इधर कूद आई और भाग निकली।

एक प्रसिद्ध जंतु-प्रेमीने दो लोमड़ियोंकी परस्पर सहायताका अद्भुत वर्णन दिया है। वह स्वयं नालेके पास था। उससे थोड़ी ही दूर पर, पहाड़ीकी ढालू सतह पर, एक चट्टान था। वहीं दो लोमड़ियाँ खेल रही थीं। अचानक एक लोमड़ी चट्टानके एक कोनेमें छिप गयी और दूसरी उस पार चली गयी। थोड़ी देरमें दिखलाई पडा कि उधरसे एक खरहा भागा आ रहा है और लोमड़ी उसको भगाती हुई पीछे-पीछे दौड़ रही है। चट्टानके इधर आते ही छिपी हुई लोमड़ी खरहे पर कूद पड़ी, परंतु निशाना चूक गया और खरहा निकल भागा। उसकी इस भूल पर दूसरी लोमड़ी बहुत झल्लाई और अपनी साथिन पर ही टूट पड़ी। दोनोंमें इस प्रकार गुत्थम-गुत्था हो रहा था कि शिकारी पास चला आया और दोनोंको एक ही निशानेमें मार डाला।

फिर, एक खेतिहरका बयान है कि एक लोमड़ी एक बड़े-से बत्तखको पकड़े भागी जा रही थी। चार-फुट ऊँचा बाँध रास्तेमें पड़ता था। तीन बार लोमड़ी ने चेष्टा की कि बत्तखको लिए ही कूद जायँ, पर सफल न हो सकी। कुछ समय तक बैठी वह चुपचाप बाँधको देखती रही। तब उठी और बत्तखकी गरदन पकड़ कर, बाँध पर अपने अगले पैरोंको टेक कर, खड़ी हो गयी और बत्तखकी चोंचको बाँधकी एक दरारमें खोंस दिया। तब छलाँग भर कर वह बाँध पर चढ़ गयी, झुक कर बत्तखको खींच लिया और दूसरी ओर चली गयी।

लोमड़ीकी कुछ जातियोंके चर्मको यूरोपकी स्त्रियाँ अपना वस्त्र बनानेके लिए बहुत पसन्द करती हैं, क्योंकि चर्म पर घने, सुन्दर और नरम बाल रहते हैं। लोमड़ी शब्द संस्कृत लोमशसे निकला है जिसका अर्थ हो है अधिक और बड़े लोम (बाल) वाली। इसलिए यूरोप और अमरीकामें लोमड़ियोंकी 'खेती' होती है, अर्थात् बहुत-सी लोमड़ियाँ इसी लिए पाली जाती हैं कि उन्हें मार-मार कर उनकी खाल बेची जाय।

ऊदबिलाव और बिज्जू आदि

ऊदबिलाव और बिज्जू एक ऐसे वंशके सदस्य हैं जिनमें कई एक छोटे मांसभुक हैं, जो रूपमें लोमड़ी और नेवलेके बीचमें होते हैं। स्टोट, वीज़ल, मर्टिन, अर्मिन, फ़ेरेट, बैजर आदि शीतप्रधान देशोंमें होने वाले जंतु इसी वंशमें हैं। इनमें से कई एकका चर्म, सुन्दर लोमयुक्त होनेके कारण, वस्त्रादि बनानेके काम आता है। इसी वंशमें स्कंक नामक जंतु भी है, जो यूरोपमें इतना बदनाम है कि किसी व्यक्तिको स्कंक कह देना वैसी ही गाली है जैसे यहाँ किसी को सूअर कह देना। इस विस्तृतवंशके सभी सदस्योंके वर्णन करनेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हम यहाँ केवल ऊदबिलाव, बिज्जू और स्कंकका वर्णन करेंगे। इनमेंसे प्रथम दो तो भारतवर्षमें होते हैं, तीसरा यहाँ नहीं होता।

ऊदबिलाव

ऊदबिलाव नेवलेके आकारका, पर उससे बड़ा, एक जन्तु है जो जल और स्थल दोनोंमें रहता है। यह प्रायः नदीके किनारे पाया जाता है और मछलियाँ पकड़-पकड़ कर खाता है। इसके बदन छोटे, पंजे जालीदार, नह टेढ़े और पूँछ कुछ चिपटी होती है। रङ्ग इसका भूरा होता है। यह पानीमें जिस स्थान पर डूबता है वहाँसे बड़ी दूर पर और बड़ी देरके बाद उतराता है। लोग इसे मछली पकड़ने के लिये पालते हैं।

ऊदबिलावकी आदतें और इसके काम देखनेमें बड़े अच्छे लगते हैं। रात्रिमें यह क्या करता है इस विषयमें तो अधिक जानकारी नहीं है किन्तु दिनमें वह जो कुछ करता है उसके विषयमें आप उसके निम्न वर्णनसे काफ़ी समझ सकेंगे।

ऊदबिलावके घोंसले या घरमें प्रायः दो-तीन, या कभी-कभी ५-६ तक, छोटे-छोटे बच्चे आपको मिलेंगे। वह घर किसी झीलके किनारे पर खड़े पेड़के खोखलेमें होगा या उसकी जड़के पास बने एक छेदके रूपमें होगा।

किसी चट्टानकी दरारमें या घास और झाड़के बीचमें या किनारेकी दरारमें, जहाँ ऊदबिलाव सुरक्षित समझता है, अपना घर बना लेता है। घर बड़ी होशियारीसे बनाया जाता है और इसके चारों ओरकी दीवारें और ज़मीन ऊन, सन या बालोंसे ढकी रहती है जिससे बच्चोंको आरामसे नींद आये।

ऊदबिलाव अपने बच्चोंका बड़ा ध्यान रखता है और पहले दो महीने तक वह बच्चोंको सिवा खाना लानेके और किसी समय अकेला नहीं छोड़ता। यदि घर नदीके किनारे होता है तो बाढ़के कारण उसमें पानी भर जाता है और बच्चोंको घरसे बाहर निकालना पड़ता है। उस समय ऊदबिलाव बच्चोंको मुँहमें दबाये बहुत दूर तक ले जाता है।

ऊदबिलावके बच्चे बड़े चिलबिले होते हैं। अगर उन परसे ज़रा भी आँख उठा ली जाय तो वे कहीं न-कहीं को सैर करने निकल पड़ेंगे। जब उनकी माता उनके लिये मछली मारने जाती है तो मौक़ा पाकर वे चुपकेसे निकल पड़ते हैं और बड़ी शानके साथ पानीके किनारे पर पहुँच जाते हैं। किन्तु पानीके पास पहुँचते ही उनकी हिम्मत पस्त हो जाती है और पानीके किनारेको मुँहसे सूँघ कर किनारेकी ओर वे मुड़ जाते हैं। इतनेमें ही उनकी माँ लौट आती है और उनको शैतानी करते देख उन्हें खदेड़ कर घोंसलेमें पहुँचा देती है।

जब तक मिलता है तब तक तो ऊदबिलाव ज़मीन पर ही गोश्तकी तलाश करता है और उसी पर जीवन निर्वाह करता है। किन्तु जब स्थलपर उसे खानेको नहीं मिलता तो मछली मारनेके लिये वह पानीमें जाता है। वह पानीमें बड़ी आसानीसे घूमता है और खूब तेज़ीके साथ तैरता है। उसके लिये पानी तथा स्थल दोनों एक-से होते हैं।

जब बच्चे तीन मासके हो जाते हैं तब उनकी माँ उन्हें भी जीवन-निर्वाहके साधनोंसे परिचित करवाती है। वह उन्हें पानीके पास ले जाती है। पहले पहल वे पानीसे बहुत डरते हैं किन्तु धीरे-धीरे माँके साथ-साथ वे भी मछलियोंका शिकार करना सीख जाते हैं।

माँ पहले उनसे कहती है कि देखो मैं चलती हूँ तुम मेरे पीछे आना—लेकिन वह चली जाती है और बच्चा किनारे पर डरके मारे खड़ा रहता है। यह देख कर वह लौट आती है और फिर खुद पकड़ कर या उन्हें धक्का देकर पानीमें ढकेल देती है। कभी-कभी उन्हें अपनी पीठ पर बैठा कर पानीमें घुसती है और जब पानीमें चली जाती
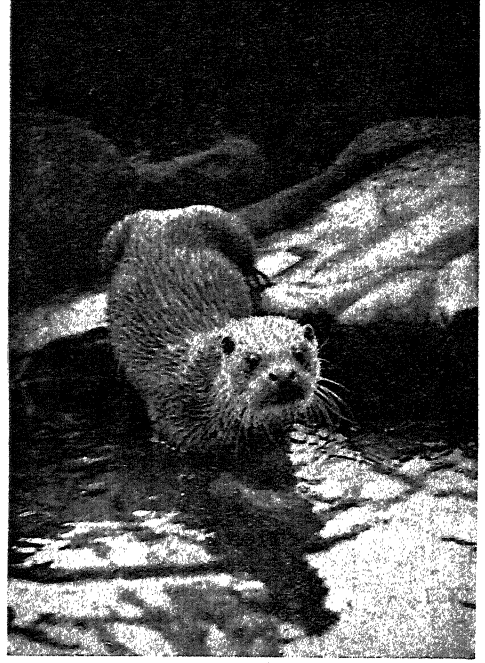
ऊदबिलाव

ऊदबिलाव जल और स्थल दोनोंमें रह सकता है और मछलियाँ पकड़ कर खाता है।

है तो उन्हें पानीमें तैरनेके लिये छोड़ देती है। किन्तु छोड़ कर माँ उनसे दूर नहीं चली जाती और जब बच्चा परेशानीमें पड़ जाता है तो उसको देखनेके लिये वह उसके चारों ओर घूमती रहती है। यदि वह बेबस हो जाता है तो स्वयं सहारा देकर उसे उठा देती है।

जब बच्चोंको पानीमें डर लगना बन्द हो जाता है तथा उन्हें तैरना भी खूब आ जाता है तब उन्हें मछली पकड़नेकी शिक्षा दी जाती है। जैसे अबसे पहले वे पृथ्वी

पर अपनी माँके पीछे घूम-घूम कर स्थलका ज्ञान प्राप्त किया करते थे उसी प्रकार अब माँके साथ घूम-घूम कर जलके विषयमें जानकारी प्राप्त करते हैं। मछली पकड़ना सिखानेके लिये माँ एक मछलीको दूरसे खेद कर इस प्रकार लाती है कि वह बच्चेके ठीक सामने होकर चले। सामने से बच्चा उसे पकड़नेका प्रयत्न करता है। कितनी ही बार असफल होता है किन्तु प्रत्येक असफलतासे कुछ-न-कुछ सीख लेता है और उस ज्ञानको अगली बार काममें लाता है।

कुछ बातें तो ये बच्चे जन्मसे ही जानते हैं, किन्तु कुछ बातोंकी शिक्षाकी आवश्यकता पड़ती है।

एक बार एक ऊदबिलावका तीन महीनेका बच्चा पकड़ कर लाया गया और गाँवके एक आदमीके पास एक सलाख़ लगे पींजड़ेमें दो साल तक बन्द रक्खा गया। वह आदमी उसे खानेसे बचे हुए कुछ गोश्तके टुकड़े दे देता था तथा कभी-कभी बाज़ारके दिन थोड़ासा मछलीका सिरा। कभी-कभी उसे कुछ भी मांस खाने को न मिलता था। रोटी पर ही गुज़र करनी पड़ती थी। ऊदबिलाव शाक तरकारी या रोटी कभी नहीं खाता किन्तु जब भूखों मरने लगा तो उसने भूख शान्त करनेके लिये रोटी खानी स्वीकार कर ली।

इसके पश्चात् एक वैज्ञानिक उसे ले गया और उसके जीवनके विषयमें कुछ जाननेका प्रयत्न करने लगा।

उसे नवीनता न लगे इसलिये उसे पुराने पींजड़े सहित ही नई जगह पहुँचाया गया था, किन्तु फिर भी दो दिन तक वह बड़ा उदास रहा और कुछ भी नहीं खाया। पन्द्रह दिनके पश्चात् वह कुछ परिचित हो गया और तब हाथसे लेकर खाना खानेमें भी सकुचाता नहीं था। इसके बाद उसे एक दूसरे घरमें रक्खा गया—इस घरकी दीवारें टीनकी बनी हुई थीं और यह एक सुरङ्ग जैसा था। इस सुरंगका दूसरा किनारा एक पानीके छोटेसे तालाबकी ओर खुलता था।

एक हफ्ते तक तो वह उस सुरंगकी ओर बिल्कुल ही नहीं गया। इसलिये थोड़ेसे पानीके छींटे उस पर डाले गये। इससे घबड़ा कर वह एक दम भागा और सुरंगसे निकल कर उस तालाबके किनारे एक छेदमें जाकर छिप गया। दिन भर वह यहीं पर छिपा रहा और शामको अपने स्थान पर लौट आया।

इस तालाबमें कई प्रकारकी मछलियाँ जिन्हें ऊदबिलाव प्रायः पकड़ कर खाया करते हैं लाकर छोड़ी गयीं। इसके बाद तीन दिन तक उस ऊदबिलावको यह सोच कर भूखा रक्खा गया कि जब वह भूखा रहेगा तो अवश्य ही पानीमें मछली पकड़नेके लिए उतरेगा। किन्तु फिर भी वह पानीमें नहीं उतरा। इसके बाद इस तालाबमें केवल एक फुट पानी रक्खा गया; फिर भी वह पानीमें नहीं उतरा। आख़िरकार उसे खानेको देना ही पड़ा।

इसके बाद उस तालाबका किनारा ढलवा बनाया गया और मरी हुई मछलियाँ बिलकुल पानीकी सतहके पास रक्खी गईं। ऊदबिलाव उसे खानेके लिये गया और पकड़ कर खा गया। इसके बाद मछली पानीके ज़रा-सा नीचे रखी गई। उसे भी ऊदबिलाव जाकर खा आया। इस प्रकार धीरे-धीरे मछली पानीकी सतहसे २ फुट नीचे रक्खी गई। ऊदबिलाव गया और वहाँसे मछली पकड़ लाया। किन्तु अब तक ऊदबिलाव पानीके नीचे ज़मीन पर ही चलता रहता था—तैरनेकी उसने ज़रा भी कोशिश न की। एक महीने तक इसी प्रकार वह ऊदबिलाव पानीके नीचे ज़मीन पर चलता रहता, तैरता बिलकुल ही नहीं। एक दिन उसे ज़बरदस्ती पानीमें ढकेल दिया गया। तब वह तैर कर दूसरे किनारे पर जा निकला। एक दिन एक अपरिचित आदमी उस तालाब वाले बाड़ेके अन्दर चला गया। वह ऊदबिलाव एकदम छलांग मार कर पानीमें घुस गया। अब तो वह अक्सर पानीमें जाकर अपना शिकार लाने लगा। वह पानीमें बिलकुल चुपचाप उतरता जिससे ज़रा भी आवाज़ न होती—ठीक उसी प्रकार जैसे जंगली ऊदबिलाव पानीमें घुसा करता है।

बहुत-सी आदतें ऊदबिलाव अपने माँ-बापसे सीखता है, किन्तु बहुत-सी आदतें प्राकृतिक रूपसे वह अपने-आप सीख जाता है। जैसे यही पालतू ऊदबिलाव दिन भर तो लेटा रहता था और रातको ही शिकारके लिये निकलता था।

इसी प्रकार इसके खेलनेकी आदत भी बिलकुल जंगली ऊदबिलाव जैसी ही रहती थी। दो साल तक पींजड़ेमें बंद रहने पर भी जब उसको खोला गया और मरी हुई मछलियाँ उसके खानेके लिये रक्खी गईं तो पहले तो उसने पेट भर कर उन्हें खाया। जो बच गईं उन्हें लेकर वह उछालता और फिर पकड़ कर पंजेसे दबाता। कभी-कभी ऊदबिलाव पेट भरने पर भी मछलियोंसे केवल खेलनेके लिये ही पानीमें घुस जाता है। जंगली ऊदबिलावोंमें जब बच्चा मछली मारना सीख लेता है तो वह कुटुम्बसे अलग हो जाता है और अपना घर अलग बना कर रहने लगता है।

बरसातके बाद गंगाके उतर जानेपर पानीकी एक झील सी बन गई थी—यह करीब २०० गज़ चौड़ी और २ मील लम्बी थी। इस झीलमें छः सात ऊदबिलाव दिखाई पड़े। वे कमर तक पानीमें डूबे हुए थे और सीटी की-सी आवाज़ करते हुए एक दिशा की ओर बढ़ते चले जाते थे। कुछ देर तक वे आवाज़ करते रहते और फिर एक साथ पानीमें डुबकी लगाते। इस प्रकार झीलकी सारी लम्बाईको पार कर मछलियोंको एक किनारे पर खदेड़ कर ले जा रहे थे। इनमेंसे एक-आध पानीमें डूबनेके बाद निकलता और अपने साथ ३-४ सेरकी एक रोहू मछलीको पकड़ लाता, और लाइनसे निकल कर उसको किनारे पर रख देता। किन्तु उसके साथी लगातार उसी प्रकार चलते रहते। वह किनारे पर उस मछलीमें से थोड़ी-सी खा लेता है और फिर अपने साथियोंमें जा मिलता।

जो बची हुई मछली किनारे पर रक्खी गयी थी उसे एक बगला आया और खा गया।

एक बार सरयू नदीमें एक ऊदबिलावके पीछे एक कुत्ता दौड़ा। ऊदबिलावने पानीमें डुबकी नहीं लगाई बल्कि सीटी देता हुआ पानीके ऊपर ही तैरता रहा। जब कुत्ता उससे एक गजकी दूरी पर रह गया तो उसने डुबकी लगाई और बहुत दूर जाकर निकला, और फिर सीटी बजानी शुरू कर दी। जब-जब वह सीटी बजाता था वह चारों ओर घूम-घूम कर देखता था कि कहींसे उसे कुछ मदद मिले। थोड़ी देर बाद तीन-चार ऊदबिलाव और देख पड़े। उन्होंने पानीमें डुबकी लगाई और कुत्ते पर हमला किया। थोड़ी ही देर बाद कुत्ता रोता हुआ पानीसे बाहर निकल आया। बाहर निकलने पर जब कुत्तेको देखा गया तो उसकी पीठ पर तथा इधर-उधर बगलमें ऊदबिलावके काटनेके दाग थे।

वैसे तो ऊदबिलावको हर समय ही काफ़ी दिखाई पड़ता है, किन्तु रात्रिमें इसकी निगाह बहुत तेज़ हो जाती है। चाहे कितना ही अँधेरा क्यों न हो वह अपना शिकार बड़ी आसानीसे देख लेता है। अगर तालाबमें रातको एक छोटी-सी भी मछली छोड़ दी जाय तो वह उसे पकड़ लेता है। ऊदबिलावको अन्य जंगली जानवरोंके समान सुनाई भी बहुत अधिक पड़ता है, किन्तु नाकसे सूँघ कर किसी चीज़को पहचाननेमें तो वह बहुत जानवरोंसे बढ़ा हुआ है।

बहुत दूरसे ही वह आदमीको गंधसे पहचान लेता है। एक बार एक अपरिचित व्यक्ति बाड़ेमें ऊदबिलावको देखनेके लिये जाना चाहता था। उस आदमीको देखनेसे पहले ही काफ़ी दूरसे वह ऊदबिलाव गुर्राने लगा और बड़ा बेचैन हो गया।

यों तो ऊदबिलाव हर प्रकारका गोश्त खा लेता है लेकिन सबसे अधिक ज़ायकेदार उसे मछलियाँ लगती हैं। मछलियोंमें भी वह सबसे अधिक ईल-मछलीको पसन्द करता है। वह कभी-कभी मेंढक तथा छोटी-छोटी चिड़ियाँ भी खाता है और जब मछलियाँ नहीं मिलतीं तो छोटे-छोटे जानवरोंकी भी खा लेता है।

जैसा लिखा जा चुका है जब इसका पेट भर जाता है तो खेलनेके लिये यह मछलियाँ पकड़ता है। हर एक मछली से ज़रा-सा काट कर खा लेता है और बाकी पड़ा रहने देता है। तालाबमें मछलियाँ बहुत कम हों, तो वह अपने खेलके लिये इतनी मेहनत करेगा ही नहीं। जब बहुत अधिक मछलियाँ तालाबमें होती हैं तो मछलियोंसे अपने आपको रोक भी नहीं सकता। एक रात तीन ऊदबिलाव एक तालाबपर आये और रात भरमें दो हज़ार मछलियाँ मार डालीं। इससे अनुमान किया जा सकता है कि यह पानीमें कितनी आसानी तथा तेज़ीसे तैर सकता है।—जगदीश प्रसाद राजवंशी, एम.ए.,बी.एस-सी.

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५७	मेष, संवत् १९९९। अप्रैल, सन् १९४३	संख्या १

तारा-समूह

[ले०—डा० गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

आकाशमें जो तारे दिखलाई पड़ते हैं, वे पहिचानकी सुविधाके लिये तारा-समूहों (constellations) में बाँट दिये गये हैं। इनके हिन्दी नामोंको मैंने अगस्त १९४२ के विज्ञानमें प्रकाशित किया था। उन नामों पर श्री छोटू भाई सुथारसे बहुत मनोरंजक लिखा-पढ़ी हुई है, जिससे मेरी सम्मति अब यह है कि पूर्व छपे नामोंमें कुछ सुधारकी आवश्यकता है, परन्तु केवल उन नामोंको देनेके बदले जिनमें परिवर्तन करनेकी आवश्यकता जान पड़ती है, मैं समूची सूची ही छाप देता हूँ, क्योंकि पाठकोंको इसीमें सुविधा रहेगी।

तारा-समूहों की सूची

१.	Andromeda ...	देवयानी
२.	Antlia	पंप
३.	Apus	खग
४.	Aquarius	कुंभ
५.	Aquila	गरुड़
६.	Ara	वेदी
७.	Aries	मेष
८.	Auriga	रथी
९.	Bootes	भूतेश
१०.	Caelum	टंक
११.	Camelopardus ...	जिराफ
१२.	Cancer	कर्क
१३.	Canes Venatici ...	मृगयाशुन
१४.	Canis Major ...	श्वान
१५.	Canis Minor ...	श्वानिका
१६.	Capricornus ...	मकर
१७.	Carina	नौतल
१८.	Cassiopeia	शर्मिष्ठा
१९.	Centaurus	नराश्व
२०.	Cepheus	वृषपर्वा
२१.	Cetus	तिमि

२२.	Chamaeleon ...	गलगति
२३.	Circinus	परकार
२४.	Columba	कपोत
२५.	Coma Berenices ...	केश
२६.	Corona Australis ...	दक्षिण किरीट
२७.	Corona Borealis ...	उत्तर किरीट
२८.	Corvus	काक
२९.	Crater	चषक
३०.	Crux	स्वस्तिक
३१.	Cygnus	हंस
३२.	Delphinus	उलूपी
३३.	Dorado	असिमीन
३४.	Draco	कालिय
३५.	Equuleus	अश्वक
३६.	Eridanus	वैतरणी
३७.	Fornax	भट्टी
३८.	Gemini	मिथुन
३९.	Grus	बक
४०.	Hercules	शौरी
४१.	Horologium ...	होरामाप
४२.	Hydra	वासुकी
४३.	Hydrus	जलिका
४४.	Indus	सिंधु
४५.	Lacerta	शरट
४६.	Leo	सिंह
४७.	Leo Minor	लघुसिंह
४८.	Lepus	शशक
४९.	Libra	तुला
५०.	Lupus	वृक
५१.	Lynx	बिडाल
५२.	Lyra	वीणा
५३.	Mensa	शैल
५४.	Microscopium ...	सूक्ष्मदर्शक
५५.	Monoceros	एकशृंग
५६.	Musca	मक्षिका
५७.	Norma	अंकिनी
५८.	Octans	अष्टांश
५९.	Ophiuchus	सर्पधर
६०.	Orion	मृग
६१.	Pavo	मयूर
६२.	Pegasus	खगाश्व
६३.	Perseus	ययाति
६४.	Phoenix	गृध्र
६५.	Pictor	चित्रकार
६६.	Pisces	मीन
६७.	Piscis Australis ...	दक्षिण मीन
६८.	Puppis	नौपृष्ठ
६९.	Pyxis	दिक्सूचक
७०.	Reticulum	जाल
७१.	Sagitta	शर
७२.	Sagittarius ...	धनु
७३.	Scorpio	वृश्चिक
७४.	Sculptor	शिल्पी
७५.	Scutum	ढाल
७६.	Serpens	सर्प
७७.	Sextans	षडंश
७८.	Taurus	वृष
७९.	Telescopium ...	दूरदर्शक
८०.	Toucan	चक्रवाक
८१.	Triangulum ...	त्रिकोण
८२.	Triangulum Australe	दक्षिण त्रिकोण
८३.	Ursa Major ...	सप्तर्षि
८४.	Ursa Minor ...	ऋक्षिका
८५.	Vela	नौवस्त्र
८६.	Virgo	कन्या
८७.	Volans	उड़ंकू
८८.	Vulpecula	लोमश

ऊपर हिन्दीके बदले संस्कृत शब्द इस अभिप्रायसे रक्खे गये हैं कि वे बँगला, मराठी, गुजराती, आदिमें भी प्रचलित हो सकें।

रंगाणुओंके विषम परिवर्तन और कृषिमें उनकी उपयोगिता

(विज्ञान-परिषद्के वार्षिकोत्सव पर दिये गये भाषणका सारांश)

[प्रोफेसर श्रीरंजन, डी० एस-सी०]

आजकलके संघर्षके अन्धकारपूर्ण दिनोंमें जब कि संसार में सब ओर रक्तपात हो रहा है और लोग भूखसे दुःखी हैं, लोगोंका ध्यान केवल विनाशकारी शस्त्रोंके निर्माणमें ही नहीं है, बल्कि साथ ही उन बड़ी आर्थिक समस्याओंको हल करनेकी ओर भी है जिनके ऊपर केवल एक समाजका ही नहीं किन्तु सारी मनुष्य जातिका हित आश्रित है। इस सम्बन्धमें रूसका उदाहरण लिया जा सकता है जिसका उत्थान पिछले कुछ वर्षोंमें ही हुआ और जो एक निर्धन देशकी स्थितिसे उन्नत और बढ़े-चढ़े देशोंमें आ गया। इसका मुख्य कारण उसके कृषि-व्यवसायकी उन्नति ही है।

हमारा भारतवर्ष भी कृषि-प्रधान देश है किन्तु दुःख है कि अन्नोत्पादनकी दृष्टिसे भारतवर्ष बहुत पिछड़ा हुआ है। यह देख कर कुछ आशा होती है कि पिछले कुछ समयसे इस ओर बहुत उपयोगी कार्य किया जा रहा है।

आज इस छोटीसी वक्तृताका विषय "रंगाणुओंके विषम परिवर्तन और कृषिमें उनकी उपयोगिता" (Chromosomes mutation and crop improvement) है। आजकी बैठकमें कुछ व्यक्ति जीव-शास्त्रसे विशेष परिचित नहीं इसलिये मैं संक्षेपमें पहले यह बतानेका प्रयत्न करूँगा कि रंगाणु (chromosome) क्या है। प्रत्येक पौधेका शरीर अनेक कोशों (cells) से बना हुआ है जो इतने छोटे होते हैं कि हमारी आँखें उन्हें देख नहीं पाती। प्रत्येक कोशमें जीवरस (protoplasm) और उसके मध्यमें एक केन्द्रीय-शक्ति (nucleus) होती है। जीव-रस एक सजीव पदार्थ है जिसमें जीवनके सभी लक्षण रहते हैं, जैसे संवर्द्धन शक्ति, पाचन क्रिया और चेतना।

केन्द्रीय-शक्ति केवल जीवरसको ही प्रेरित नहीं करती, बल्कि पौधेकी सभी शक्ति या क्रियाओं पर अधिकार रखती है। इसके अतिरिक्त केन्द्रीय-शक्ति पर यह निर्भर है कि पौधा या जीव बड़ा होगा या छोटा, काला होगा या श्वेत-संक्षेपमें सभी मूल पैतृक लक्षण उसमें निहित है।

यदि अणुवीक्षण यन्त्र (microscope) के द्वारा बड़े आकारमें देखा जाय तो पता चलेगा कि केन्द्रीय-शक्ति में कुछ लम्बे रेशे होते हैं जो चारों ओर छूटे हुये दिखाई देते हैं। इन्हीं रेशोंमें जीव या पौधेके सभी लक्षण और शक्तियाँ निहित रहती हैं। इन्हींको रंगाणु कहते हैं। यहाँ विस्तारपूर्वक मैं इनके विषयमें न बता सकूँगा कि इनमें क्या-क्या परिवर्तन होते-रहते हैं और किस प्रकार सन्ततिमें मूल रंगाणु आते हैं। यह विषय अत्यन्त रोचक है परन्तु यह एक अलग व्याख्यान हो जायगा। आज मैं यह बतानेकी चेष्टा करूँगा कि रंगाणुओंके परिवर्तनसे पौधोंमें भी विचित्र परिवर्तन हो जाते हैं।

हमारे पूर्वज जिस गेहूँको उत्पन्न करते थे आज भी वे उसी रूपमें होते यदि इन रंगाणुमें बहुत प्रबल परिवर्तन न हो गये होते। मोहंजदारो और हरप्पाकी खोजों ने यह सिद्ध कर दिया कि करीब छः हजार वर्ष पहले भी गेहूँकी उत्पत्ति होती थी। आज उन्हें देखनेसे यह अनुमान किया जाता है कि सम्भवतः कि वह गेहूँ छोटा टी० मोनोकोक्कम था। पाँच हजार वर्ष पहले ट्रोजन लोग भी इस गेहूँको खाया करते थे। इसकी रोटी भूरे रंगकी होती है। इससे थोड़े अच्छे प्रकारका गेहूँ टी० डाइकोक्कम होता है। यह प्राचीन बैबीलोनियामें छः हजार वर्ष पहले उगाया जाता था। इसके बीजके चित्र मिश्र देशकी कब्रोंमें हांथी दांतों-में खुदे हुये मिलते हैं। परन्तु आजकल सबसे अच्छा गेहूँ टी० बलगेयर है। टी० मोनोकोक्कममें १४ रंगाणु होते हैं। विश्वास किया जाता है कि प्रत्येक रंगाणुमें कई रेशे (chromosome threads) होते हैं। इन रेशोंमें कुछ पदार्थोंकी स्थिति मानी जाती है जिन्हें जनक (genes) कहते हैं। जो एक रेशेमें गुथे हुये रहते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि बड़ी-बड़ी शक्ति वाले अणुवीक्षण यंत्रके द्वारा भी नहीं देखे जा सकते। इन जनकों ही में पौधेके विशेष लक्षण रहते हैं। ये लक्षण रंगाणुओंके साथ-साथ मूल पौधोंसे सन्ततिमें पहुँचते हैं। वे जनक प्रोटीनके अणु बताये जाते हैं। अनेक रासायनिक पदार्थ और प्रकाश की किरण इन जनकोंमें प्रबल परिवर्तन कर देते हैं और जब एक बार यह परिवर्तन हो जाता है वह फिर अपने नये रूपमें स्थिर हो जाते हैं। इसीके आधार पर नये नये

रूपके पौधे उत्पन्न किये जाते हैं। ऐसे ही परिवर्तनोंको विषम परिवर्तन (mutations) कहते हैं। ये परिवर्तन या तो रासायनिक पदार्थोंसे जैसे कालचीसीन या इण्डोल ऐसिटिक ऐसिड आदिके प्रयोगसे या एक्स-रश्मि आदिसे किये जा सकते हैं। अर्थात् रासायनिक पदार्थ या रश्मि) किरणें जनकोंको परिवर्तित करते हैं जिससे नये प्रकारके जनक पैदा हो सकते हैं। इन्हींके कारण सन्ततिमें भी परिवर्तन आ जाता है।

इस क्षेत्रमें सर्वत्र कार्य हो रहा है और भारतवर्षके भीतर भी इस ओर खोजका कार्य पिछड़ा हुआ नहीं है। श्री अमोन ने कपासके पौधे पर कोलचीसीनके प्रभावका निरीक्षण किया है। उन्होंने यह मालूम किया है कि आम तौरसे जो कपासके पौधे बांझ थे वे कोलचीसीनके प्रयोगसे बीजधारी हो गये और इनके परागरजके आकारमें स्पष्ट वृद्धि हो गई। यह वृद्धि रंगाणुओंकी संख्याके अनुपातसे ही हुई और रंगाणुओंकी संख्यामें वृद्धि कोलचीसीनके प्रभावसे हुई।

देहली इम्पीरियल ऐग्रीकलचरल रिसर्च इन्स्टीट्यूटके पाल महोदयने कोलचीसीनके प्रयोगसे छोटी मिर्चेके पौधेसे बड़ी मिर्चें उत्पन्न की हैं। श्रीयुत बादामी ने गन्नेकी कलियों पर एक्स-रश्मियोंके प्रयोगसे मैसूरमें बहुत महत्वपूर्ण कार्य किया। उन्होंने देखा कि परिवर्तित पौधोंमें यद्यपि शक्कर की मात्रा कोई विशेष रूपमें कम नहीं हुई किन्तु वे पौधे मूल पौधोंकी अपेक्षा शक्तिमें और बढ़नेमें बहुत अच्छे निकले। उन्होंने कपासके पौधों पर भी एक्सरश्मियोंके प्रयोग किये। उन्होंने पता चलाया कि तीसरी सालमें सूत निकालनेका परता ३३ व ३५ प्रतिशतके बीचकी अपेक्षा ३८ से ४० तक हो गई और उनके रेशोंकी लम्बाई भी २०-२३ की अपेक्षा २५-२८ मिलीमीटर तक हो गई। पिछले चार वर्षोंसे हम अपनी वनस्पति-शास्त्रकी प्रयोगशालामें उन गेहूँके पौधोंका अध्ययन कर रहे हैं जिनको हमने एक्सरश्मियोंके प्रयोग द्वारा परिवर्तित किया था। संयुक्त प्रान्तमें गेहूँ प्रमुख खाद्यके रूपमें उपयोगमें लाया जाता है और वह इस प्रान्तकी प्रमुख उपज है। गेहूँका फसल कम पानी अधिक वर्षा अति शीत या रोगसे नष्ट हो जाता है। वैज्ञानिक लोग सारे संसारमें यह प्रयत्न करते जा रहे हैं कि किस प्रकार उन्नत प्रकारका गेहूँ पैदा किया जाय जो केवल अच्छा दाना और भूसा ही न दे बल्कि अधिक सबल और पुष्ट भी हो।

युक्त प्रान्तके कृषि विभाग द्वारा स्वीकृत अच्छे प्रकार के गेहूँ सी १३, पूसा ४, पूसा १२ और पूसा ५२ हैं। हमारी प्रयोगशालामें एक्सरश्मियोंके द्वारा परिवर्तित गेहूँ पूसा ५२ से उत्पन्न किये गये हैं। इनसे ११ नये प्रकारके गेहूँ पैदा किये गये हैं। इन विभिन्न प्रकारके गेहुँओंके दानों के बाह्य रूप तथा आकारमें ही अन्तर नहीं है बल्कि आहारकी दृष्टिसे उनकी उपयोगितामें भी अन्तर है। इन गेहुँओंमें से किसीके दाने कड़े और कठोर हैं और कुछ मुलायम और आटा देनेवाले होते हैं। इन गेहुँओंमें खनिज पदार्थोंकी मात्रा भी भिन्न-भिन्न मात्राओंमें पाई जाती है।

डाक्टर सबनिस, प्रिंसिपल, ऐगरीकलचरल कॉलेज कानपुर ने इन परिवर्तित गेहूँके भिन्न-भिन्न प्रकारोंकी परीक्षा करते हुये यह देखा जाता है कि एक्स १ और एक्स १० नम्बरके परिवर्तित गेहुँओं ने पूसा ५२ नामक गेहूँकी अपेक्षा एक एकड़ भूमिमें बीस प्रतिशत अधिक गेहूँ दिया। इन परिवर्तित गेहुँओंमें रंगाणुओंकी संख्यामें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ है, किन्तु उनके आकारमें बहुत परिवर्तन हो गया है।

यदि भारतवर्ष अपनी प्राचीन समृद्धिको प्राप्त करना चाहे और केवल निजी आवश्यकता पूर्ति करने वाला ही नहीं बल्कि, सारे संसारका भंडार बनना चाहे तो उसे इस प्रकारके अथवा अन्य प्रकारके प्रयोगों द्वारा उन्नति करना परम आवश्यक है।

ढाई वर्षों के अनुसंधानका सुपरिणाम

सरकारी वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान समिति ने गत ढाई वर्षों में जो अनुसंधान कार्य किया है उसके परिणामस्वरूप २५ व्यापारिक योजनाएं तैयार की गई हैं। इनके अतिरिक्त कितनी ही युद्ध-उत्पादन सम्बन्धी योजनाओंकी भी व्यवस्था की गयी है जिनका विवरण यहाँ नहीं दिया जा सकता।

इन योजनाओंसे औद्योगिक प्रगतिको कई दिशाओंमें प्रोत्साहन मिला है। वनस्पति घी, रंग और वार्निश, गन्धक तथा चिकने पदार्थ आदिके उद्योगोंको विशेष लाभ पहुँचा है।

नवीन भौतिक दृष्टिकोण

५—परमाणुवाद (आ)

[श्री देवेन्द्र शर्मा, एम० एस-सी०]

कहानी है और सच भी हो सकती है। किसी बुद्धिमान मनुष्य ने एक हाथीका भार निकालनेके लिये एक अनूठा युक्ति निकाली। हाथीके लिये तुला बनाना असम्भव तो नहीं पर उन दिनों काफ़ी कठिन अवश्य रहा होगा, क्योंकि यह तबकी बात है जब सम्भवतः यन्त्र-कौशल आधुनिक सीमासे बहुत दूर था और न वही ज़माना था जब

'सैल बिसाल आनि कपि देहीं,
कंदुक इव नल नील ते लेहीं।'

परन्तु कुछ भी हो, राजाका हुक्म था। भार निकालना था, चाहे जैसे भी हो, पर ठीक-ठीक! अतः हाथीको नदी किनारे ले जाकर एक नावमें खड़ा किया। इससे जहाँ तक नाव पानीमें धँसी वहाँ एक चिह्न लगा दिया, और फिर हाथी को उतार कर उसके स्थान पर पत्थरके इतने टुकड़े भरे कि पानी की सतह उस चिह्न तक आ जाय। अब इन पत्थरोंको तौल लेना अपेक्षाकृत बहुत सरल था। यह विज्ञानकी एक साधारण-सी बात है जो किसी समय बहुत महत्व रखती होगी। तबसे अब तक वैज्ञानिक ने अनेक भौतिक और अनूठी युक्तियोंसे बड़ी-से-बड़ी और छोटी-से-छोटी वस्तुओंके परिमाण और विन्यासका पता लगा लिया है—एक ओर नीहारिकायें, नक्षत्र और ग्रह तथा उनके बीचके व्यवधान हैं, दूसरी ओर अणु परमाणु और उनके भी अवयवोंकी मात्रा एवं विन्यास!

हम पीछे देख आये हैं कि अणुओं तथा परमाणुओं का बड़े-से-बड़े अणुवीक्षण यन्त्रसे भी देखना असम्भव है—प्रसङ्गेन अणुवीक्षण यन्त्र मिथ्या नाम है क्योंकि वह अणुको देखनेमें सर्वथा असमर्थ है। तब इन अदृश्य कणोंका भार कैसे निकाला जाता है? यहाँ हाथीका परिमाण निकालने की विधिका कुछ उल्टा सा करते हैं। यदि हाथीकी मात्रा मालूम हो और पत्थरोंकी संख्या भी तो प्रत्येककी मात्रा का पता लगाया जा सकता है, यह मानते हुये कि हमारे सब टुकड़े सामान मात्राके हैं। कम-से-कम अपने प्रयोगके लिये हम एकसे टुकड़े (अणु अथवा परमाणु) चुन सकते हैं। क्योंकि एक कणको लेकर उसका अध्ययन करना असम्भव है। हमारे लिये समूहका अध्ययन करना आवश्यक हो जाता है। कण इधर-उधर उल्टे-सीधे जाते हैं। कौनसा कण कब क्या करेगा हम नहीं बता सकते। परन्तु सबकी सम्मिलित शक्ति क्या होगी अथवा मिल कर कितना दबाव डालेंगे, यह बताया जा सकता है जिससे एक कण की मात्रा अथवा अमुक आयतनमें उनकी संख्याका अनुमान किया जा सकता है। उदाहरणके लिये एक भारी जन समूह को लीजिये। जैसा कि गैसोंमें प्रायः होता है यह समूह सुघटित सेना (मखिभ) नहीं है और न उसके पास कोई हथियार ही है। अब मान लीजिये कि उसके ऊपर गोली बरसाई जा रही है। व्यवस्थाहीन जन इधर-उधर दौड़ेंगे। और कोई भी गोली किसीके भी लग सकती है। साधारणतया कोई नहीं कह सकता कि कब किसके गोली लगेगी, पर हाँ यह अनुमान किया जा सकता है कि एक निर्धारित समयमें कितने पुरुष (भूल गया, अब तो स्त्रियों की संख्याका भी अनुमान लगाना होगा!) गोलीके शिकार होंगे। यही नहीं, यदि समुदाय आगे बढ़ कर आक्रमणकारियोंको खदेड़ दे तो हम उसके बल तथा उसमें मनुष्यों की संख्याका अनुमान लगा सकते हैं। कुछ इसी प्रकार गैसोंमें भी हम अणुओं तथा परमाणुओंकी संख्याका पता लगाने चलते हैं। इस समूहकी शक्ति और बलको हम अपने यन्त्रोंसे नाप लेते हैं, फिर उसकी मात्रा ताप आदि की अवगतिसे विद्रोहियों (१) की संख्याका अनुमान करते हैं। इस प्रकार एक ग्राम* हाइड्रोजनमें प्रमाण तापक्रम और दबाव (शून्याङ्क सेण्टीग्रेड तथा वायु दबाव) पर ६०३०००,०००००० ;०००००० ,०००००० ($६\cdot०३ \times १०^{२३}$) परमाणु होंगे और दो ग्राममें इतने ही अणु अथवा इसके दुगने परमाणु। जैसा कि हम परिचित हैं। एवेगैड्रोके सिद्धान्तानुसार प्रमाण तापक्रम और दबाव पर सब गैसोंके समान आयतनमें अणुओंकी संख्या समान

---

* एक तोलेमें प्रायः ११·६५ ग्राम होते हैं।

होती है। एक अणु ग्राम* गैसका प्रमाण तापक्रम और दबाव पर आयतन २२४०० घन-सेण्टीमीटर (या २२·४ लिटर†) होता है जिसमें अणुओंकी संख्या ६·०३ × १०²³) है। इन बड़ी संख्याओंका अनुमान करनेके लिये हम हाइड्रोजनकी मात्रा घटाते हैं, फिर भी एक ग्रामके एक खरब वें भागमें प्रायः ६ खरबसे भी अधिक परमाणु होंगे। जैसा हम जानते हैं हाइड्रोजन सब तत्वोंसे हलका है। इसके एक परमाणुका परिमाण प्रायः ·०,००००००, ००००००,००००:०,००००००,१४ तोले हैं—डेढ़ तोले के १० शंख वें भागके १० लाख वें भागसे भी कुछ कम !

मेरे 'परमाणु' शब्द लिखनेमें जो स्याही खर्च होती है उसमें शंखों अणु अथवा परमाणु हैं और उस स्याहीका भार भारी-से-भारी परमाणुसे भी पद्मों गुना अधिक है। 'कहउँ नामु बड़ राम तें निज विचार अनुसार' में कहा नहीं जा सकता किस विचारसे गोस्वामी जी ने यह निर्णय दिया है; पर इतना जरूर जानते हैं कि हमारा लिखा हुआ 'परमाणु' नाम वास्तविक बड़े-से-बड़े परमाणुसे भी बहुत बड़ा है !!

इन कथाश्रुत सी संख्याओंको हम परोक्ष रूपसे (indirectly) ही जान पाये हैं जैसा ऊपर भी कह दिया गया है। परन्तु इससे उनकी सत्यता नहीं घटती, क्योंकि जिस सिद्धान्तकी सहायतासे ये फल आते हैं उसके अन्य फल भी प्रयोग द्वारा सत्य प्रमाणित हो चुके हैं। दूसरे, अन्य रीतियों तथा प्रयोगोंसे भी हम इन संख्याओं पर आते हैं।

गुरुत्वाकर्षण और विद्युत्—इसके पूर्व कि हम परमाणु की अधिक विवेचना करें, पहले पदार्थके कुछ विशेष गुणों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। हम पीछे‡ देख आये हैं कि प्रत्येक वस्तु दूसरीको अपनी ओर खींचती है। सन् १६८७ ई० के न्यूटनके इस गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्त ने विज्ञानकी प्रगति ही बदल दी। दो वस्तुयें यदि एक दूसरी को किसी खास बलसे खींचती है तो उनकी मात्रा क्रमशः ३ गुनी और पांच गुनी हो जाने पर आकर्षणका बल ३ × ५ = १५ गुना बढ़ जायगा, और यदि दूरी पांच गुनी हो गई तो बल पहलेकी अपेक्षा ५ × ५ = २५ वाँ भाग ही रह जायगा। अब प्रश्न उठता है कि इस बलकी इकाई क्या है। हमने देखा है कि जब हथेली पर एक रुपया (१ तोला) रक्खा जाता है तो वह हाथ पर दबाव डालता है। उसके दस हज़ारवें भागकी कल्पना की जा सकती है। इससे जो बल पड़ेगा बलकी इकाई उससे भी कुछ कम है। यह इकाई डाइन कहलाती है (१ ग्राम = प्रायः ९८० डाइन)।

हम जानते हैं कि दो समान विद्युत् आवेश एक दूसरे को प्रतिसारित करते हैं और दो असमान आवेशोंमें आकर्षण होता है। इस प्रकार

← + + → प्रतिसरण (दोनों धन आवेश)

← — — → प्रतिसरण (दोनों ऋण आवेश)

→ + — ← आकर्षण (एक धन और दूसरा ऋण आवेश)

प्राचीन विज्ञानमें विद्युतको एक भार हीन तरल माना गया था। आकर्षण अथवा प्रतिसरणके बलकी इकाई निर्धारित करनेमें कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि पदार्थका गुरुत्वाकर्षण सम्बन्धी सिद्धान्त तब तक पर्याप्त उन्नति कर चुका था। अतः विद्युत आवेशकी इकाई निश्चय करनेके लिये बलकी इकाईकी सहायता ली गई—यदि दो बिलकुल एकसे विद्युत आवेश एक दूसरेसे एक सेण्टीमीटरके व्यवधान पर आपसमें १ डाइनके बलसे प्रतिसरित होते हैं तो हम उनको एकांक—आवेश कहेंगे। यह हमारा स्थिर-विद्युत् एकांक (electrostatic unit) हुआ।

हम कह आये हैं कि भौतिक विज्ञानके शैशवमें

---

* अणुओंकी मात्रा ग्राममें व्यक्त। ऑक्सीजनके एक परमाणुका भार १६·०० ग्राम मान कर अन्य तत्वोंके परमाणुओंको सापेक्ष मात्रा ग्रामोंमें व्यक्तकी गई है (सुविधाके लिये)।

† एक लिटर या १००० घन सेण्टीमीटर वह आयतन है जो प्रायः १७ छटाँक अथवा ८६ तोले पानीका होता है। स्थूल मानेन सेर भर पानीका आयतन।)

‡ विज्ञान, भाग ५५, संख्या ६, पृष्ठ २०४ (१९९६ वि०)

विद्युतको एक अविरत भारहीन तरल माना गया था। परन्तु नये दृग्विषयोंके अविर्भावके साथ इस कल्पनाको त्रुटिपूर्ण पाया गया। फ़ैरेडेके विद्युत-विश्लेषण सम्बन्धी प्रयोगोंसे ज्ञात हुआ कि किसी पदार्थके एक विद्युत द्वारसे दूसरे तक ले जानेमें प्रति ग्राम-परमाणुके लिये ९६४९४ कूलम्ब* विद्युत्-धारा या इसके बहुनुकल (१, २ या ३...) की आवश्यकता पड़ती है। इस प्रकार ६३.५७ ग्राम (१ परमाणु-ग्राम) ताँबेको किसी वस्तु पर निक्षेप (deposit) करनेके लिये २ × ९६४९४ कूलम्ब विद्युतकी आवश्यकता होगी। इन प्रयोगों ने विद्युतके विश्लिष्ट स्वभावका पूर्ण प्रमाण तो नहीं दिया पर हाँ इसके पक्षमें आगेके प्रयोगोंके फलोंको स्वीकार करनेकी तैयारी अवश्य कर दी है।

ऋणाणुः—सन् १८९४ में जे० जे० टॉमसन् ने कम दबाव पर गैसोंमें विद्युत भेजनेमें एक नई किरणोंको देखा। क्योंकि वे ऋण-विद्युद्वारसे निकलती हैं उनका नाम कैथोड-किरण (cathode rays) रक्खा गया। इनमें एक यह विशेषता थी कि विद्युत अथवा चुम्बकीय क्षेत्रमें वे अपना सरल मार्ग छोड़ कर घूम जाती थीं। यह घुमाव उसी तरह का है जैसा एक धारा-वाहक चालकका विद्युत अथवा चुम्बकीय क्षेत्रमें होता है। ऋण द्वार (cathode) से धन द्वार (anode) की ओर कणोंके जानेका अर्थ है कि उन पर ऋण आवेश है। फलतः उनका नाम ऋणाणु (electron) रक्खा गया। अन्य प्रयोगोंसे, जिनका यहाँ सविस्तार वर्णन सम्भव नहीं, इन ऋणाणुओंकी मात्रा, आवेश तथा आवेश और मात्राका अनुपात निकाले गये। ये संख्यायें बहुत ही सूक्ष्म हैं। मात्रामें ऋणाणु हाइड्रोजनके अणुका प्रायः २००० वाँ भाग है—अधिक ठीक होगा १८३४ वाँ; ग्रामोंमें व्यक्त करते हुये केवल ०.०००००००,००००००,००००००,००००००, ०००९१ (९.१×१०^{-२८}) ग्राम। और एक ऋणाणु पर जो आवेश है वह हमारे स्थिर-विद्युत एकांकके दो अरबवें भागसे भी कुछ कम ही है (०.००००००,०००४८०२५)! इस प्रकार दो ऋणाणु एक सें०मी०की दूरी पर एक दूसरेको ०.००००००,००००००,००००००,०२३०६४ डाइनके बलसे प्रतिसारित करेंगे। डाइनके अनुमानसे हम देखते हैं कि ये राशियाँ न के बराबर हैं, परन्तु ऋणाणुके लिये जिसकी मात्रा इतनी सूक्ष्म है कि हम गुरुत्वाकर्षण के प्रभावको छोड़ भी दें, यह प्रतिसरण बहुत महत्व रखता है, यद्यपि १ सेण्टीमीटर आदिकी दूरी पर यह भी न के बराबर ही है।

अब प्रश्न उठता है कि जगत्में ऋणाणुका साथी धनाणु भी है या नहीं? यदि है, तो उसके गुण क्या हैं? यहाँ भौतिक विज्ञानके नवीन दृश्य ने पहले कुछ विषमता दिखाई। ऋणाणुके अन्वेषणके साथ जो धनात्मक कण पाया गया यद्यपि उसका आवेश परिमाणमें ऋणाणुके बराबर ही था तथापि उसकी मात्रा हाइड्रोजनके परमाणुकी मात्राके बराबर थी। इस कणको प्रोटोन (proton) कहा गया, और हम अपनी सुविधाके लिये धनकण कहेंगे—धनाणु नाम ऋणाणुके यथार्थ प्रतिरूपके लिये रखते हैं जिसके आस्तित्वकी सम्भावनाका पहला संकेत डिराकके सापेक्षता दृष्टांत-यन्त्र-शास्त्रमें था, और जिसके प्रयोग द्वारा अनुसन्धानका श्रेय ऐण्डरसन (Anderson) को (१९३२) है। इसकी मात्रा तथा आवेश ऋणाणुके बराबर ही होते हैं, परन्तु प्रकृतिमें स्वतन्त्रतावस्थामें इतनी बहुतायतसे नहीं पाया जाता जितना ऋणाणु। मात्रामें धनकणके बराबर किन्तु आवेश हीन एक कणका शाडविक (Chadwick) ने उसी साल अन्वेषण किया। इसको न्यूट्रौन (neutron) नाम दिया गया और हम उदासीन कण अथवा हीन कण कहेंगे – भौतिक जगत्में वह किसी प्रकार कम उपयोगी अथवा हीन नहीं, केवल विद्युत अथवा चुम्बकीय क्षेत्रोंमें उदासीन और अनासक्तिसे सरल मार्ग गामी रहता तथा आवेश-हीन है। प्रायः जिन कठिन कार्यों के सम्पादनमें आवेश असफल होता है, आवेश-हीन पार उतरते हैं। उनको साहस कर पीछे पछताना नहीं पड़ता। अस्तु! हीनकण परमाणुओंके पिण्डोंकी विवेचना करने पर फिर आयगा अतः कुछ समयके लिये विदा!

सन १८९६ ई० में हेनरी बेकेरल ने यूरेनियम तथा

---

* १ कूलम्ब = १ ऐम्पियर धारा १ सेकण्ड तक, या १० ऐम्पियर $\frac{१}{१०}$ से० तक इत्यादि। अर्थात् ऐम्पियर और समय (सेकण्डोंमें) का गुणन = कूलम्बोंमें आवेश।

उसके लवणोंमें एक ऐसी किरणोंका अस्तित्व पाया जो कागज़में लपेटी हुई फ़ोटोग्राफ़िक प्लेट पर भी प्रभाव डाल देती हैं। ऐक्स किरणें (रॉञ्जन रश्मियाँ) भी ऐसा करती हैं, परन्तु वे विद्युत अथवा चुम्बकीय क्षेत्रोंमें मुड़ती नहीं। यह एक विशेषता बेकेरल रश्मियोंमें थी। इसी दिशामें और अनुसन्धान करने पर सन् १८९८ में प्रोफ़ेसर और श्रीमती क्यूरी ने पोलोनियम तथा रेडियम नामक दो नये तत्वोंकी खोज की जिनमें यूरेनियमकी अपेक्षा यह गुण (रेडियम धर्मिता) कहीं अधिक है। प्रायः उसी समय श्मिट (Schmidt) ने थोरियम और दो साल बाद (१९००) डेबर्न (Debierne) ने ऐक्टीनियम नामक रेडियम धर्मी तत्वोंका पता लगाया। इन सबसे जो किरणें निकलती हैं वे साधारण मोटाईकी अपार दर्शक वस्तुओं (यथा ताम्र, एल्यूमीनियम पत्रादि) से पार निकल जाती है। इनकी अधिक परीक्षा करने पर ज्ञात हुआ कि चुम्बकीय क्षेत्रोंमें ये तीन भागोंमें विभाजित हो जाती हैं। इनमें से एक तो उन किरणोंका समूह होता है जिन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, दूसरेमें वे किरणें रहती हैं जो एक ओर मुड़ जाती हैं और उनमें बहुत अधिक वक्रता आ जाती है। तीसरे समूहमें वे किरणें रहती हैं जो दूसरी ओर मुड़ती हैं परन्तु उनका नवीन मार्ग बहुत अधिक वक्र नहीं हो पाता। जिन किरणों पर क्षेत्रका कोई प्रभाव नहीं पड़ता उन्हें गामा किरण (γ-rays) कहा गया। ये प्रकाश किरणोंके समान ही हैं पर इनका ऊर्मिलम्बान बहुत कम (रॉञ्जन रश्मियोंसे भी कम तथा शक्ति बहुत है। एक ओर बहुत शीघ्र मुड़ने वाली किरणें हमारी परिचिता ऋणाणु-रश्मियाँ (β rays) हैं। तीसरी किरणें दूसरी ओर दीर्घ चापाकारमें मुड़ती हैं, अतः या तो उनके कणोंका ऋणाणुओंसे भार कम और आवेश उतना ही परन्तु धन अथवा भार वही और आवेश अधिक या दोनों अधिक होंगे। अन्य प्रयोगोंसे ज्ञात हुआ कि इन कणोंका भार हाइड्रोजन परमाणुओंसे चौगुना और आवेश दो धनाणुओंके बराबर है। ये हीलियम परमाणुके पिण्ड मात्र हैं। इनको आल्फ़ा किरण (α-ray) नाम दिया गया।

इन प्रयोगोंसे पता चलता है कि परमाणु भी कुछ और छोटे अवयवोंसे मिलकर बने हैं जो अन्तमें केवल विद्युत आवेश मात्र हैं। इस कल्पनामें भी पहले एक कठिनाई थी। ऋणाणु और धन कणके अन्वेषण पर प्रश्न उठा कि ऋणाणुके विभिन्न भाग एक दूसरेको प्रतिसारित क्यों नहीं करते जिसके फल स्वरूप वह फट पड़े। यह कठिनाई निर्मूल है क्योंकि ऋणाणुको हम मूल (सारभूत) मानते हैं और उसके भागोंका प्रश्न ही नहीं उठता। हम मूल अथवा सारभूतके कारणोंका अन्वेषण नहीं कर सकते क्योंकि तब वे सारभूत ही नहीं रह जाते और प्रायः प्रश्नों की शृंखला अबद्ध हो जाती है। उदाहरणके लिए यदि हम ईश्वरको सृष्टिका रचयिता मानते हैं तो वह सारभूत है (मैं सबको माननेके लिए विवश नहीं करता) और उसके (ईश्वरके) रचयिताके विषयमें प्रश्न करने पर रचयिताओंकी अबद्ध शृंखला बन जायगी। इसी प्रकार ऋणाणुके अवयव, फिर अवयवोंके अवयव,......... अनन्त शृंखला! परन्तु मानवको सीमा चाहिए, और ऋणाणु उसका अव्यय है। इस शताब्दीके प्रारम्भमें ऋणाणु और धनकण ही अव्यय माने जाते थे (आल्फ़ा कणको चार धनकणों और ऋणाणुओंका समन्वय माना, परन्तु अब वह दो हीन कणों और २ धनकणोंका बना है, तथा आशा है भविष्यमें कोई परिवर्तन न होगा)। जैसा कि हम आगे देखेंगे हीनकण धनाणु आदि भी अव्ययोंकी श्रेणीमें हैं, यद्यपि धनकण हीनकण और हीनकण धनकण हो सकता है (फिर अव्यय कौन सा?), और हमारे दस वर्ष पूर्वके ज्ञानमें भी परिवर्त्तनकी आवश्यकता हो गई है। कौन जाने अन्तमें अव्यय एक ही हो! 'कैसे सरूप और कैसे सुभायन?' पता नहीं इसका उत्तर विज्ञान कब देगा।

घरलू डाक्टर

[संपादक—डाक्टर जी० घोष, डाक्टर गोरखप्रसाद आदि]

उदरकला-प्रदाह—पेटकी भीतरी सतहके प्रदाह-को उदरकला-प्रदाह कहते हैं। लक्षण ये हैं—

लक्षण—पहले पेटमें बड़ी पीड़ा होती है और वमन होता है। तापक्रम १०४ या १०५ डिगरी तक पहुँच जाता है। कुछ अतिसार (पेटझरी) भी आरम्भमें हो सकता है, परन्तु शीघ्र ही कोष्ठबद्धता (कब्ज़) उत्पन्न हो जाता है। रोगी चित (पीठके बल) लेट कर पैर सिकोड़ लेता है

भविष्य अंधकारमय समझना चाहिए। प्रसवके बाद उदरकला-प्रदाह और प्रसूति ज्वर (puerperal fever) में रोगिणीके बचनेकी आशा बहुत कम रहती है।

चिकित्सा—उदरकला-प्रदाहमें साधारणतः पेट चीर कर पीवयुक्त मालको निकाल देना पड़ता है। आमाशय आदिमें छेद होने पर जब पेटके भीतर सड़ा-गला माल बिखर जाता है तो ऑपरेशन (शल्य-चिकित्सा) तुरन्त होना चाहिए। देर करनेसे ऑपरेशनसे भी लाभ नहीं हो पाता। क्षयरोगजनित उदरकला-प्रदाहमें चीर-फाड़ नहीं की जाती। केवल ओषधियोंसे काम चलाया जाता है।

उदरकला-प्रदाहमें रोगीको चुपचाप लेटे रहना चाहिए। स्वच्छ वायु मिलती रहनी चाहिए। आहार बहुत हलका और स्वास्थ्यप्रद रहे।

उदावर्त (prolapse of rectum)—गुदाके भीतरी परतको काँच कहते हैं और उदावर्त उस रोगको कहते हैं जिसमें काँच बाहर निकल आती है। इस रोगको गुदाग्रह, गुदावर्त और काँच भी कहते हैं। यों तो साधारण मलत्यागमें गुदाका भीतरी स्तर थोड़ा-सा बाहर निकल आता है, परन्तु मल-त्याग-क्रियाके समाप्त होने पर यह भाग फिर भीतर चला जाता है। केवल कोई असाधारण कारण रहने पर ही ऐसा नहीं हो पाता। उदाहरणतः, अर्श (बवासीर) रोगके रहने पर या गुदाके आस-पासकी मांस-पेशियोंके बहुत दुर्बल रहने पर। तब काँच बाहर ही निकली रह जाती है।

उदावर्तके कारणोंमें से दो प्रमुख हैं। एक तो यह कि गुदा-संकोचनी मांसपेशी तथा आस-पासकी अन्य पेशियाँ दुर्बल होती हैं। बच्चोंमें साधारणतः यही कारण रहता है। उन स्त्रियोंमें भी जिनमें प्रसवके समय भीतरी मांस-पेशियाँ फट जाती हैं या दुर्बल हो जाती हैं उदावर्त हो जाता है।

दूसरा कारण है जीर्ण कोष्ठबद्धता (कब्ज़)। यह अधिकतर युवा और वयस्क लोगोंमें ही वर्तमान रहता है। साथ ही यदि अर्श भी हो तो उदावर्तकी सम्भावना और भी बढ़ जाती है। अर्श और कोष्ठबद्धताके रहने पर मल-त्यागमें अधिक बल लगाना पड़ता है, जिससे काँच कुछ अधिक बाहर निकल आती है और अन्तमें यह निकला भाग गुदा-संकोचनी-पेशीके भीतर नहीं जा पाता। बच्चोंके पेटमें केंचुआ रहनेसे भी उदावर्त हो जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी वस्तुके निगल जाने पर जो पचने वाला न हो और काफी बड़ा हो उदावर्त हो सकता है, चाहे व्यक्ति बच्चा हो, चाहे जवान। इसके अतिरिक्त, उदावर्त किसी भी स्थानीय प्रकोपक (irritant) से हो जा सकता है, जैसे मांसार्बुद, प्रॉस्टेट ग्रन्थि-वृद्धि, या तीव्र अतिसार।

कारण चाहे कुछ भी हो, उदावर्त पहले अधूरा (incomplete rectal prolapse) ही रहता है, परन्तु यदि इसका उचित उपचार न किया जाय तो गुदा-मार्गकी समूची परत बाहर निकल आती है, कभी-कभी तो १० इंच तक। तब कहा जाता है कि उदावर्त पूर्ण है (complete rectal prolapse)। साधारणतः स्थानीय प्रकोपन (irritation) से काँच इंच, सवा इंच, से अधिक नहीं निकलती; परन्तु दुर्बल मांसपेशियोंके कारण उत्पन्न उदावर्त शीघ्र पूर्ण उदावर्तमें परिणत हो जाता है।

कभी-कभी, जब गुदा-संकोचनी-पेशी ठीक रहती है तो यह पेशी काँचको ज़ोरसे दबा लेती है और इस प्रकार काँचका गला घुट जाता है। तब उचित उपाय तुरन्त करना चाहिए, अन्यथा काँचके सड़ जानेका डर रहता है।

चिकित्सा—कारणको दूर करना चाहिये। जैसे, यदि कोष्ठबद्धता, मांसार्बुद, अर्श, केंचुआ आदि कुछ हो तो उसकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि मांसपेशियोंकी दुर्बलताके कारण उदावर्त होता हो तो उसका उपाय शीघ्र करना चाहिये जिसमें पूर्ण उदावर्त न होने पाये। उदाहरणतः, यदि बच्चोंमें इस कारण उदावर्त होता हो तो उनसे लेटे-लेटे मल त्याग कराना चाहिये और मल त्यागके बाद चूतड़ोंको कस कर बाँध देना चाहिये। यह प्रायः तब तक जारी रखना चाहिये जब तक बच्चा हृष्ट-पुष्ट न हो जाय और इसके लिये उसे कॉड लिवर ऑयल (कॉड मछलीकी कलेजीका तेल) पीनेको देना चाहिये।

बच्चोंमें ऑपरेशन (शल्यचिकित्सा या चीड़-फाड़) की आवश्यकता नहीं पड़ती, केवल पूर्वोक्त व्यवस्थासे काम

चल जाता है। परन्तु बड़ोंमें ऑपरेशनकी आवश्यकता पड़ सकती है।

उदासी (mental depression)—जब कोई काम बिगड़ जाता है या किसी प्रिय सम्बन्धीकी मृत्यु हो जाती है तो व्यक्तियोंमें उदासी या खिन्नताका होना स्वाभाविक है। परन्तु कुछ विशेष रोगोंमें अनायस ही उदासी उत्पन्न होती है, जैसे इनफ्लुएंज़ा में (उसे देखो) और कभी-कभी यह उदासी इतनी प्रबल होती है कि रोगी आत्महत्या तक कर डालता है। ऐसी उदासी अस्थाई होती है। बहुधा उदासी केवल एक बुरी आदत होती है। यदि व्यक्ति चाहे तो इस बुरी आदतको छोड़ सकता है। परन्तु इन सब प्रकारोंकी उदासीके अतिरिक्त एक अन्य उदासी भी है जो उन्माद (पागलपन) या सनक (झक) का पूर्व लक्षण है। इसलिये अपने प्रियजनोंमें अकारण उदासीसे सावधान रहना चाहिये। उन्माद, सनक, हिस्टीरिया, चिन्ता, म्लानता रोग (melancholia), व्याधिकल्पना रोग (hypochondriasis), पागलोंका सर्वाङ्गवात (general paralysis of the insane) और मानसिक रोग इन शीर्षकों वाले लेखोंके पढ़नेसे पता चल जायगा कि अस्थाई और रोग-जनित उदासियोंमें कैसे पहचान की जाय।

उन्निद्र रोग (insomnia)—नींदका न लगना या उन्निद्र रोग यह सूचित करता है कि या तो मनस् (mind) या शरीर ठीक काम नहीं कर रहा है। कई मानसिक रोगोंमें उन्निद्रता भी एक लक्षण रहता है। उन्निद्रतासे स्वास्थ्य बहुत शीघ्र बिगड़ जाता है। छोटे बच्चोंमें उन्निद्रता वर्तमान रहनेसे उनके बढ़नेमें रुकावट उत्पन्न हो जाती है और न तो उनका मनस् और न शरीर पूर्ण रूपसे विकसित हो पाता है। मानसिक रोगोंसे उन्निद्रता उत्पन्न हो तो बात दूसरी है, अन्यथा उन्निद्रता बहुधा निम्न कारणोंसे होती है—दूषित वायु (जैसे बन्द कोठरीकी वायु), गरमी, मच्छर, अव्यायामी जीवन, सोने जानेके पहले खूब पेट भर खाना, बहुत रात तक जागते रहना, या मस्तिष्कके थक जाने पर भी मानसिक परिश्रम करते रहना, आदि। कुछ सूक्ष्म चेतनावत (नाज़ुक मिजाज़) व्यक्तियोंको नवीन स्थान, अपरिचित वातावरण, शोर-गुल, प्रकाश, साधारणसे ऊँची या नीची तकिया, कड़ा बिछौना आवश्यकतासे अधिक या कम ओढ़ना आदिसे नींद नहीं लग पाती। शारीरिक पीड़ा और कुछ विशेष रोगोंमें भी नींद नहीं लगती है या कम लगती है। चिन्ता, भय आदिसे भी निद्रा नाश हो जाती है।

बार-बार उन्निद्रता रहने पर उन्निद्रताका ऐसा भय उत्पन्न हो जाता है कि बहुधा इस भयके कारण नींद नहीं लगती। यह भय स्वाभाविक है, परन्तु अपने मानसिक बलसे इसको दूर करना चाहिये। एक रात नींद नहीं लगी तो इसका यह अर्थ नहीं कि दूसरी रात भी नींद नहीं लगेगी। मनमें दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि कारणके दूर हो जाने पर उन्निद्रता अपने-आप मिट जायगी। कारणकी खोज करनी चाहिये। यदि वस्तुतः कोई रोग हो तो डाक्टर की राय लेनी चाहिये, परन्तु यदि कोई रोग न हो तो निम्न नियमोंके पालनसे उन्निद्रता बहुत शीघ्र दूर हो जाती है :—

सोनेके पहलेके कुछ घंटोंको किसी मनबहलावमें बिताना चाहिये, परन्तु यह मनबहलाव शांत हो, उत्तेजक नहीं। प्रति रात्रि एक नियत समय पर सोने जाना चाहिये। सोनेसे डेढ़-दो घंटे पहले ही भोजन कर लेना चाहिये और नित्य उसी समय भोजन करना चाहिये। कड़ी चाय और कहवासे उन्निद्रता बढ़ती है। गरम दूध पीनेसे नींद लगती है। सोनेका कमरा शांत स्थानमें हो। उसमें वायुके आने-जानेका प्रबन्ध अच्छा हो (आमने-सामनेके जँगले खुले रहें), गरमीमें पंखेका प्रबन्ध रहे, जाड़ेमें अच्छे गद्दे पर सोये और ओढ़ना गरम परन्तु हल्का रहे (रज़ाईमें नई, अच्छी तरह धुनी हुई रुई रहे)। कुछ गरम कपड़ा भी पहन लेना चाहिये, जिसमें करवट लेने पर ठंढे ओढ़ने-बिछौनेसे नींद न खुल जाय। जाड़ेके दिनोंमें सोनेके पहले हाथ-पैर सेंकना और बिछौनेमें गरम पानीसे भरा रबड़की बोतल रख कर पैरको गरम रखनेका उपाय कर लेना भी अच्छा है। सोनेके पहले स्नान भी उत्तम है। जाड़ेमें गरम पानीसे और गरमीमें ठंढे पानीसे स्नान करें।

लेट जाने पर किसी विशेष बात पर सोचना नहीं चाहिये। किसी भी विषय पर न सोचना ही अच्छा है।

सोचनेकी क्रिया रुक जानी चाहिये। यह सोचना कि नींद नहीं आयेगी, या यह चेष्टा करना कि नींद तुरन्त लगे, ये दोनों ही बातें बुरी हैं।

एक बातकी चेतावनी देना अत्यन्त आवश्यक है और वह यह कि निद्रा लानेके लिये ओषधियोंका सेवन करना बहुत बुरा है; अनुभवी डाक्टरकी रायसे विशेष परिस्थितियों में ओषधि खाई जाय तो बात दूसरी है।

उन्माद (dementia)—उन्माद एक प्रकार का पागलपन है जो पैदाइशी नहीं होता। एक बार बुद्धि परिपक्व हो जानेके बाद जब मस्तिष्ककी शक्तिका लोप हो जाता है तो रोगको उन्माद (dementia) कहते हैं। जब जन्मसे ही बुद्धि नहीं रहती तो रोगको बोध-हीनता (amentia) कहते हैं।

उन्मादके लक्षण या तो एकबारगी दिखलाई देने लगते हैं या रोग बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। एकबारगी शुरू होने पर रोगी शीघ्र ही मूर्ख-सा (idiotic) हो जाता है, परन्तु धीरे-धीरे रोगके आगमन होनेमें मस्तिष्क की शक्तिका लोप बहुत धीरे-धीरे होता है। ऐसे रोगीको किसी बातकी उत्सुकता नहीं रहती। वह खाने-पहनने, हाल-रोजगार तथा अपने परिवार सभीसे उदासीन हो जाता है। वह किसी गूढ़ विषय पर एकाग्र चितसे ध्यान नहीं लगा सकता। स्मरणशक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। वह अपने को वशमें नहीं रख पाता और क्षणमें अकारण हँसने या रोने लगता है। रोगके अधिक बढ़ने पर उसे किसी कार्यमें लज्जाका अनुभव नहीं होता है। भूख प्रायः खूब रहती है, परन्तु रोगी दुर्बल होता जाता है।

उन्मादके कई कारण हैं :—

(१) पागलपनके कुछ अच्छा होनेके बाद उन्मादकी दशा रह सकती है।

(२) वृद्धावस्थामें, जब शरीरके सब अंगोंकी भाँति मस्तिष्कमें भी दुर्बलता आ जाती है, उन्माद उत्पन्न हो जा सकता है।

(३) मस्तिष्कके कुछ रोग, जैसे मस्तिष्कका फोड़ा, मस्तिष्कके धमनीका फट जाना, मस्तिष्कके झिल्लीका प्रदाह, इत्यदि, उन्मादके कारण हो सकते हैं।

उन्मादके रोगीकी चिकित्सा करते समय ध्यान रखना चाहिये कि रोगी अपनेको या अन्य पुरुषको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचा सके। साथ ही पौष्टिक भोजन, अच्छा स्थान तथा अच्छी दिनचर्य्याका प्रबन्ध कर देना चाहिये। रोगके कारणको हटानेका प्रयत्न करना उचित है।—उमा-शंकर प्रसाद।

उपजिह्वा (ranula)—जब जीभके नीचे रसार्बुद (cyst) निकलता है तो उसे उपजिह्वा कहते हैं (देखो अर्बुद)। यह धीरे-धीरे बढ़ता है और पहले उप-जिह्वाके वर्तमान रहनेका पता नहीं चलता। पीछे तो यह इतना बड़ा हो जाता है कि बोलना और खाना कठिन हो जाता है। उपजिह्वाके निकलनेका कारण साधारणतः यह होता है कि जीभसे लार निकलने वाली कोई नलिकामें पथरी बन जाती है (देखो पथरी)। उपजिह्वाकी चिकित्सा यही है कि उसे काट कर निकाल दिया जाय। उसकी भीतरी दीवारको भी खुरच डालना पड़ता है, अन्यथा रोग फिरसे हो जाता है। यदि उपजिह्वाको केवल चीर कर उसका रस बहा दिया जाय तो कुछ समयके लिए उपजिह्वा पिचक जायगी और अस्थायी रूपसे रोग दूर हो जायगा, परन्तु धीरे-धीरे उसमें रस फिर आ जायगा।

उपदंश (syphlis)—उपदंश वही रोग है जिसका वर्णन पहले आतशक शीर्षकके नीचे दिया जा चुका है। देखो आतशक।

उपद्रव (complication)—किसी प्रधान रोगके बीचमें होने वाले दूसरे विकारको उपद्रव कहते हैं, जैसे इनफ्लुएंज़ामें फेफड़ेका खराब हो जाना।

उपवास (fasting)—उपवास या लंघन प्रायः सबको कभी-न-कभी करना पड़ता है। अधिकांश रोगोंमें कुछ-न-कुछ लंघन करना ही पड़ता है। कुछ रोगोंमें लंघन बहुत उपयोगी होता है, जैसे मधु-प्रमेहमें। लगातार लंघन करते रहनेसे प्राण चला जा सकता है। कभी-कभी किसी हृदय-हीन सासके अपने किसी बहूको लंघन करा कर मार डालनेकी बात सुननेमें आती है। इसी प्रकार

कभी-कभी लड़कियोंको जान बूझ कर, या बच्चोंको रोगके कारण, माँ स्तन-पान न करा कर भूखों मार डालती है।

उपवास करनेसे आमाशयके कीटाणु तथा विषैली वायु शरीरमें बहुत कम हो जाती है। इसलिये कभी-कभी उपवास करना आवश्यक है। जिनकी पाचनशक्ति दूषित हो वे प्रति सप्ताह एक दिन उपवास करें तो अच्छा है। उपवासके दिन केवल संतरेका रस थोड़ा-सा लें तो कोई हरज नहीं है। लम्बे उपवासमें दो-तीन दिन भूख सताती है। उसके बाद मनुष्य कमजोर होने लगता है पर क्षुधा नहीं सताती। यदि जल लेता रहे तो मनुष्य बहुत दिन तक जीवित रह सकता है। उपवास तोड़ते समय तुरन्त बहुत भोजन नहीं कर लेना चाहिये, बल्कि आरम्भमें कुछ फलका रस तथा दूध पीना चाहिये। फिर धीरे-धीरे भोजन बढ़ाना चाहिये। लम्बे उपवासमें मनुष्यके शरीरसे सब चर्बी मिट जाती है, आँखें बैठ जाती हैं, हड्डियाँ निकल आती हैं, और तब मांसपेशियाँ घटने लगती हैं, और स्थाई हानि हो जा सकती है। इसलिये बिना डाक्टरकी सलाहसे, और बिना डाक्टरकी निरीक्षणता में रहे, लम्बा उपवास किसीको न करना चाहिये।—उमाशंकर प्रसाद

उबटन—सरसों, तिल, और चिरौंजी आदिके गाढ़े लेपको शरीर पर मलनेको उबटन करना (या उबटन लगाना) कहते हैं। उबटनके साथ तेल भी लगाया जाता है। उबटन करनेकी प्रथा यूरोप आदि देशोंमें नहीं है। बच्चोंको तेल-उबटनसे लाभ होता है। एक तो शरीर स्वच्छ हो जाता है। दूसरे, मालिशसे शरीरके विविध अंगों का व्यायाम हो जाता है (देखो मालिश)।

सरसोंमें एक विशेष उड़नशील तेल होता है जिससे उसमें झार (तीखी गंध) होती है। कुछ बच्चे इसे नहीं सह सकते। इसलिये सरसोंको बहुधा पहले भून लिया जाता है। इससे उड़नशील तेल उड़ जाता है और झार कम हो जाती है। बासी उबटनमें, या पानीमें भिगा कर रक्खे हुये सरसोंमें, झार बहुत बढ़ जाती है, और उसका व्यवहार न करना ही उचित है।

उरःशूल (mastodynia)—छातीकी किसी भी पीड़ाको उरःशूल कहा जा सकता है, परन्तु साधारणतः उरःशूल छातीके स्नायुओंकी ऐसी पीड़ाको कहते हैं जिसके लिये कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं होता। छातीकी पीड़ा साधारण कारणोंसे भी उत्पन्न हो सकती है। स्त्रियोंमें बहुत भारी लटकते हुये स्तनोंके कारण पीड़ा हो सकती है। इसका उपचार यह है कि चोली पहनी जाय जिससे स्तनोंको कुछ अवलम्ब मिल जाय। अस्थायी पीड़ाके लिये सेंक और मालिश, और गरम कपड़ा पहनना, या उस स्थानको गरम रखनेके लिये रुई बाँधना काफ़ी है। परन्तु यदि पीड़ा इन सरल उपचारोंसे न मिटे तो किसी योग्य डाक्टरसे परीक्षा करवानी चाहिये, क्योंकि सम्भव है यह लक्षण किसी अन्य गुरुतर रोगका पूर्व लक्षण हो।

उल्व (placenta)—उल्व उस झिल्लीको कहते हैं जिससे गर्भमें बच्चा लिपटा रहता है; आँवल; खेरी।

ऊरुसंधि (groin)—ऊरु जंघेको कहते हैं और ऊरुसंधि शरीरके उस भागको कहते हैं जहाँ पेट जंघे के सामने वाले पृष्ठसे मिलता है। यहाँ छिछला गड्ढा-सा रहता है। बहुत मोटे व्यक्तियोंमें यहाँ त्वचाकी दो परतें एक दूसरेसे रगड़ खा सकती हैं। मोटे बच्चोंमें भी इसी बातका डर रहता है। इसलिये यदि इस भागको स्वच्छ रखने पर विशेष ध्यान न दिया जाय तो वहाँ चर्म रोग आदिके हो जानेका डर रहता है। बच्चे जब कभी मल करें तो ऊरुसंधिको धो देना चाहिये। फिर उस स्थानको पोंछ कर सूखा कर देना चाहिये और इच्छा हो तो वहाँ पाउडर लगा देना चाहिये। उबटन करते समय भी ऊरु-संधिको अच्छी तरह स्वच्छ कर देना चाहिये।

ऊरुसंधिकी त्वचासे थोड़े ही नीचे बड़ी रक्तवाहिनियाँ और लसीका ग्रंथियाँ रहती हैं। इसलिये यहाँका गहरा घाव तुरन्त घातक हो सकता है। कुछ रोगोंमें यहाँकी लसीका ग्रंथियाँ बड़ी हो जाती हैं और तब लोग कहते हैं कि कौड़ी या गिलटी निकल आई। प्लेगमें यहाँ गिल्टी निकलती है। सुषुम्ना, वृक्क और लिंगेंद्रियोंके रोगोंमें ऊरुसंधिमें पीड़ा होती है और गिलटी हो सकती है। ऊरुसंधिकी सूजन निम्न किसी भी कारणसे हो सकती है:—

(१) ग्रंथिका बढ़ जाना। ऊरुसंधिकी ग्रंथियोंके बढ़नेका कारण निम्नमेंसे कोई एक हो सकता है। (क) उस अंग पर ज़ोर पड़ना या रगड़ पड़ना, (ख) किसी पीबयुक्त घावसे छूत लग जाना, (ग) क्षय रोगके कीटाणुओंका संचार, (घ) उपदंश (आतशक), (ङ) प्लेग आदि रोग, (च) फाइलेरिया, (छ) कुछ अन्य विशेष रोग।

(२) फोड़ा निकलना। यह फोड़ा तीव्र या जीर्ण किसी भी प्रकारका हो सकता है।

(३) अंत्रच्युति या हर्निया (hernia)। इसका वर्णन पहले दिया जा चुका है (देखो अंत्रच्युति)।

(४) जन्मसे ही अंडका ऊरुसंधिमें रह जाना और अंडकोशमें न उतरना।

(५) अंडकोशवृद्धि।

(६) अर्बुद तथा कुछ अन्य रोग।

(७) धमनीका ग्रंथिल होना।

(८) हड्डियोंके रोगके कारण हड्डी पर नवीन स्तर बन जाना।

ऋतु—रजोदर्शनके उपरान्त उस कालको ऋतु कहते हैं जिसमें स्त्रियाँ गर्भधारणके योग्य होती हैं। देखो 'जननेन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान'।

एक्स-रश्मि (X-rays)—एक्स-रश्मियाँ एक विशेष प्रकारकी रश्मियाँ हैं जो प्रकाशकी रश्मियोंसे बहुत-कुछ मिलती-जुलती हैं, परन्तु हमारे नेत्र इन्हें अनुभव नहीं कर पाते हैं।

एक्स-रश्मियों और प्रकाशमें मुख्य भेद यह है कि एक्स-रश्मियोंकी लहर-लम्बाई बहुत कम है। इसी गुणके कारण ये रश्मियाँ उन वस्तुओंके भीतर भी प्रविष्ट हो सकती हैं जिनके भीतर प्रकाशकी रश्मियाँ नहीं प्रवेश कर पातीं। यद्यपि हम इन्हें अपने नेत्रोंसे अनुभव नहीं कर सकते, तो भी ये रश्मियाँ साधारण फोटोग्राफीके प्लेट और फिल्म पर अपना प्रभाव डालती हैं।

एक्स-रश्मियोंमें भी जितनी ही छोटी लहर-लम्बाईकी रश्मियाँ होंगी उनमें उतनी ही अधिक दूर तक वस्तुओंमें प्रवेश करनेकी शक्ति होगी। चिकित्साके लिये बहुत ही छोटी लहर-लम्बाईकी रश्मियोंका प्रयोग होता है।

एक्स-रश्मि उत्पन्न करने और उसे प्रयोगमें लानेके लिये (फोटो खीचने या रोग निवारण करनेके लिये) विशेष मशीनोंकी आवश्यकता पड़ती है। मोटे तरहसे यह समझना चाहिये कि शीशेकी एक नली होती है जिसे एक्स-रश्मि नली कहते हैं। इसके दोनों सिरों पर धातुकी छड़ें लगी रहती हैं। शीशेकी नलीकी प्रायः सब वायुको निकाल कर नलीका मुँह पिघला कर बन्द कर दिया जाता है। जब इस नलीका सम्बन्ध किसी अत्यन्त अधिक वोल्ट (volt) की बिजलीकी मशीनसे कर दिया जाता है तो एक्स-रश्मियाँ निकलने लगती हैं।

साधारणतः २२० वोल्टकी विद्युतशक्ति बत्ती जलाने, पंखा चलाने आदिके लिये मकानोंमें दी जाती है परन्तु एक्स-रश्मिके लिये १,५०,००० से ६,००,००० वोल्टकी बिजलीकी आवश्यकता होती है। इसलिये वोल्ट बढ़ानेके लिये ट्रैन्सफार्मर काममें लेते हैं। ट्रैन्सफार्मरके लिये आल्टरनेटिंग विद्युतधारा चाहिये। यदि शहरमें डाइरेक्ट धारा है तो 'कनवर्टर' नामक यन्त्र द्वारा इससे पहले आल्टरनेटिंग धारा बनाई जाती है। ट्रैन्सफार्मरमें २२० या ११० वोल्टकी विद्युत धारा रूपांतरित होकर बहुत ऊँचे वोल्टकी हो जाती है। लेकिन यह भी आल्टरनेटिंग धारा ही होती है। इसलिए इसे 'रेक्टिफायर' नामक यन्त्रसे डाइरेक्ट धारामें बदल लिया जाता है। तब इस विद्युत धाराको एक्स-रश्मि नलीमें भेजा जाता है। बहुत ऊँचा वोल्ट काममें लाना पड़ता है, इससे इस बात पर सदा ध्यान रखना पड़ता है कि कहींसे विद्युत-शक्ति निकल कर मनुष्यको घायल न कर दे।

एक्स-रश्मिके उत्पादकके अतिरिक्त मरीजको खड़ा कर के या लिटा कर, तथा सिर, दाँत, पैर आदि विविध अंगों का सुविधाजनक रीतिसे फोटो लेनेके लिये विशेष टेबुल आदिकी आवश्यकता पड़ती है। फिर, एक्स-रश्मि-नली इस प्रकार आरोपित रहती है कि वह घुमा-फिरा कर और हटा-बढ़ा कर इच्छित स्थितिमें लाई जा सके। हृदय, आँत आदिमें निरन्तर गति होती रहती है जिसे रोका नहीं जा सकता है। इससे इन अँगोंके फोटो लेनेमें ध्यान रखना पड़ता है कि एक्स-रश्मियाँ इतनी प्रबल रहें कि प्रकाश-दर्शन (एक्सपोज़र, exposure) क्षण मात्रका हो,

अन्यथा इन अंगोंकी गतिके कारण फोटो तीक्ष्ण न उतरेगा।

एक्स रश्मियोंमें ऐसी शक्ति होती है कि वे कागज़, लकड़ी, मांस आदिको पार कर सकती हैं और वे फोटोके

आमवात-ग्रस्त हाथोंका एक्सरश्मि-चित्र

हड्डियाँ सब स्पष्ट दिखलाई पड़ रही हैं। कुछ हड्डियाँ टेढ़ी हो गयी हैं।

प्लेट या फिल्म पर वही प्रभाव डालती हैं जैसा साधारण प्रकाश। यदि प्लेटको अल्युमिनियमके डिब्बे या बक्समें बन्द रक्खा जाय तो उस पर साधारण प्रकाश नहीं लग सकेगा। अब यदि इस डिब्बेको एक्स-रश्मि-नलीके नीचे रख दिया जाय और उस पर हाथ रक्खा जाय तो एक्स-रश्मि-नलीको चालू करने पर जो रश्मियाँ निकलेंगी वे हाथ को पार करती हुई प्लेट पर पड़ेंगी और वहाँ अपना असर डालेंगी। त्वचा और मांस आदि बहुत मुलायम होता है। इससे एक्सरश्मियाँ इनमेंसे अधिक मात्रामें पार होकर प्लेट पर पड़ेंगी। परन्तु हड्डी कड़ी होती है, इससे इसको बहुत कम किरणें पार कर सकेंगी और यहाँ प्लेट पर कम परिवर्तन होगा। फल यह होगा कि प्लेटको डेवेलप करने पर (विशेष रासायनिक पदार्थोंसे धोने पर) हाथका स्पष्ट फोटो प्लेट पर उतर आयेगा और उसमें हड्डियाँ भी दिखलाई देंगी (चित्र देखो)।

एक्स-रश्मियोंके प्रयोगसे यह पता लगाना बहुत सरल है कि हड्डी टूटी है या नहीं, बैठाने पर ठीक बैठ गई है या नहीं, जुड़ रही है या नहीं, यदि कोई गोली शरीरमें घुस गई है तो कहाँ फँसी है, गुर्देमें पथरी है कि नहीं और कितनी बड़ी है, बच्चे ने सेफ्टीपिन निगल लिया है तो वह कहाँ अटका है, फेफड़ेमें यक्ष्मा है या नहीं, और है तो घाव कितने बड़े हैं, फेफड़ोंकी झिल्लियोंमें प्रदाहके कारण पानी तो नहीं आ गया है, आदि। इस प्रकार रोग पह-चाननेमें बड़ी सहायता मिलती है।

यदि प्लेटके स्थान पर बेरियम प्लैटिनो सायनायड पोता हुआ शीशा रक्खें तो इस मसाले पर एक्स-रश्मियोंके पड़ने पर इसमें हरी चमक उत्पन्न होगी। इसलिये अँधेरी कोठरी में, रोगीको मसालेदार शीशे और एक्सरश्मि-नलीके बीच

पेटका एक्सरश्मि चित्र

बेरियम मिला हुआ भोजन खिला कर एक्सरश्मि चित्र लेनेसे अँतड़ियाँ स्पष्ट दिखलाई पड़ती हैं, जैसा इस चित्रमें।

में रख कर, परदे पर उसके अंगकी भीतरी बनावट आदि बिना फोटो खींचे आँखोंसे भी देखी जा सकती है। इस से अपनी आँखोंसे बराबर देखते रह कर डाक्टरको हड्डी बैठानेमें या गोली आदि निकालनेमें बड़ी सरलता होती है।

अब साधारण फोटोके कैमरे इतने तेज़ लेंज़के साथ मिल सकते हैं कि उनसे हरे प्रकाशसे चमकते हुये परदे का फोटो खींचा जा सकता है। इस प्रकार अब अपेक्षाकृत बहुत सस्तेमें एक्स-रश्मि फोटो खींचे जा सकते हैं (चित्र देखो), क्योंकि कैमरासे खींचा गया चित्र दो-चार इंचका हो सकता है। साधारण रीतिसे खींचा एक्स-रश्मि चित्र रोगीके शरीरके अंगके बराबर ही होता है।
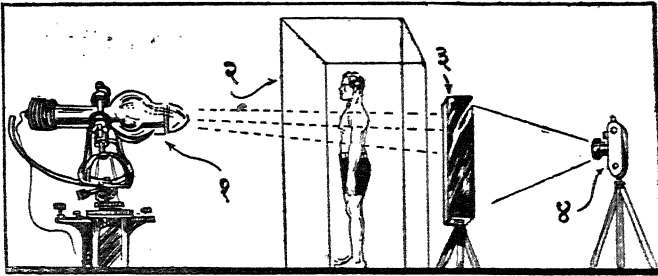
सस्ता एक्सरश्मि-चित्र

अब अंगके पीछे एक्सरश्मियोंसे चमकने वाले परदेको रख कर उस परदेका साधारण चित्र छोटे पैमाने पर खींचा जा सकता है। १—एक्सरश्मि उत्पादक ; २—रोगीका कटघरा ; ३—परदा जो एक्सरश्मियोंसे चमकने लगता है ; ४—साधारण कैमरा ।

हड्डियोंके बदले जब अँतड़ियोंका फोटो खींचना रहता है तो रोगीको बेरियमका मिश्रण पिलाया जाता है और कुछ-कुछ घण्टों पर एक्स-रश्मि-चित्र खींचा जाता है। बेरियम एक्सरश्मियोंके लिये अपारदर्शक है और रोगीके लिये हानिकर भी नहीं है। इन फ़ोटोग्राफ़ोंके अध्ययनसे डाक्टर तुरन्त बता सकता है कि आँतोंमें कहाँ क्या खराबी है।

एक्सरश्मियोंसे कुछ रोगोंकी चिकित्सा भी की जाती है। इन किरणोंके लगनेसे कुई तरहके कीटाणु मर जाते हैं। इससे रोग-निवारणमें एक्सरश्मियाँ उपयोगी हैं। परन्तु चिकित्सामें विशेष सावधानीकी आवश्यकता है, अन्यथा बहुत हानि पहुँच सकता है, क्योंकि इन रश्मियोंसे शरीर और शरीरके भीतरी अंग एक प्रकारसे जल जाते हैं। अधिक एक्स-रश्मियोंके लगनेसे अँगुलियाँ गल कर गिर जाती हैं, जैसे कोढ़में। पहले जब एक्सरश्मियोंके गुणोंका पूरा ज्ञान नहीं था, कई डाक्टर इस प्रकार अपाहिज हो गये, परन्तु अब सब बातें ज्ञात हो गई हैं और विशेषज्ञोंको एक्सरश्मियोंके प्रयोगमें कोई कठिनाई नहीं पड़ती।

—उमाशंकर प्रसाद।

एड़ी—पदके पिछले गद्दीदार भागको ऐड़ी या ऐंड़ी कहते हैं। इसके भीतर एक हड्डी होती है। जब हम खड़े होते हैं तो शरीरका भार इसी हड्डी पर पड़ता है। जैसे अन्य हड्डियोंमें रोग होता है वैसे ही एड़ीकी हड्डीमें भी रोग हो सकता है, अन्यथा एड़ीमें कोई विशेष रोग नहीं होता। जूतेकी रगड़से एड़ीकी त्वचा घिस जा सकती है, इतना कि छूनेसे पीड़ा हो; या बराबर थोड़ी-थोड़ी रगड़से वहाँकी त्वचा कड़ी हो जा सकती है या घट्ठे पड़ जा सकते हैं। इसका उपचार यह है कि कड़े और तंग जूते न पहने जायँ। यदि एड़ीमें बड़ी पीड़ा उत्पन्न हो उठे तो सम्भव है कि यह आमवातका लक्षण हो (देखो आमवात)।

एथिल क्लोराइड (ethyl chloride)—एथिल क्लोराइड एक तरल पदार्थ है जो विशुद्ध ऐलकोहल और हाइड्रोक्लोरिक ऐसिडसे बनता है। त्वचा पर लगाने पर जब यह वाष्प बन कर उड़ता है, तो बड़ी ठंढ उत्पन्न होती है। इसी कारण छोटी-छोटी शल्यक्रियाओंमें इसका उपयोग किया जाता है। उदाहरणतः, यदि इल्ला काट कर निकालना हो तो उस पर ऐथिल क्लोराइडकी पतली धार छोड़ी जाती है। इससे वहाँका स्थान इतना ठंढा हो जाता है कि वहाँ की त्वचा सुन्न हो जाती है और पीड़ा अनुभव करनेकी शक्ति मिट जाती है। तब इल्ला काट कर निकाल दिया जा सकता है और रोगीको विशेष पीड़ा न होगी। एथिल क्लोराइड पतली गरदन वाली शीशियोंमें

बन्द करके बिकता है। इस गरदनको काट या खोल कर शीशीको हाथमें पकड़ लिया जाता है। हाथकी गरमी लगते ही एथिल क्लोराइडकी धार ज़ोरसे बाहर निकलती है। इसके अतिरिक्त बच्चोंकी छोटी-मोटी शल्यचिकित्साके लिए क्लोरोफार्मसे बेहोश करनेके बदले बहुधा एथिल क्लोराइड ही सुँघाया जाता है।

एनेमा (enema)—गुदासे जल या अन्य तरल पदार्थको अँतड़ीमें डालनेको एनेमा कहते हैं। यह क्रिया विभिन्न उद्देश्योंसे की जा सकती है; जैसे गुदा-मार्गसे मल या वायु निकालनेके लिए, पोषण करनेके लिए, बेहोश करनेके लिए एक्स-रश्मियोंसे फोटो लेनेके लिए, इत्यादि। एनेमा देनेके लिये रोगीको चित, या बायें करवट लिटाना चाहिये। रबड़ या मोमजामा बिस्तर पर बिछा देना चाहिये जिससे बिस्तर खराब न हो। एनेमा लगानेके लिए दो प्रकारका सामान आता है। साधारणतः, एक बरतन होता है जिसमें तरल पदार्थ भर लेते हैं। इस बरतनके पेंदेमें छेद रहता है जिसमें टोंटी लगी रहती है। इस टोंटीमें रबड़की नली, प्रायः ३ फुट लम्बी, लगी होती है। नलीके नीचेके सिरे पर शीशे या सेलुलायडकी दूसरी टेढ़ी नली लगी रहती है जिसे वेसलीन लगा कर, गुदा द्वारमें १½″ तक डाल दिया जाता है। आहिस्तासे डालनेसे कष्ट नहीं होता। टोंटी खोलने पर तरल पदार्थ गुदा द्वारमें धीरे-धीरे चला जायगा। ध्यान रक्खो कि एनेमाके बरतनको बहुत ऊँचा नहीं उठाना चाहिए, अन्यथा पानीके दबावसे गुदाके फटने या अन्य हानि होनेका डर रहता है।

एनेमा लगानेका दूसरा औजार इससे बढ़िया पर कुछ मँहगा होता है। इसमें रबड़की नलीके बीचमें एक गेंदके आकारका रबड़का पम्प लगा रहता है। रबड़की नलीके एक सिरेमें तो गुदामें डालनेकी टोंटी रहती है और दूसरे सिरे पर शीशे या सेलुलायडकी दूसरी टोंटी लगी रहती है जिसे साधारण प्यालीमें रक्खे एनेमा देने वाले तरल पदार्थमें डुबा देते हैं। रबड़के गेंदको बार-बार दबाने और ढीला करनेसे तरल पदार्थ खिंच कर गुदामें जाता है। यहाँ भी ध्यान रखना चाहिये कि बलपूर्वक पम्प करनेसे गुदाके फटनेका डर रहता है। यह ध्यान रक्खो कि एनेमा लगाने के पहले सब औजार, रबड़की नली तथा टोंटी आदिको पानीमें उबाल लेना चाहिये जिससे वे कीटाणुरहित हो जायँ।

एनेमा ढाई पावसे लेकर आधी छटाँककी मात्रा तक दिया जाता है। बच्चोंको अवस्थाके अनुसार बहुत कम मात्रामें दिया जाता है। १ से ५ वर्षके बच्चेको डेढ़से ढाई छटाँक तथा १ सालसे छोटे शिशुको आधी छटाँककी मात्रा उचित होगी। ५-१० वर्ष तक ३ से ४ छटाँक मात्रा है। टट्टी करानेके लिये ढाई पाव पानीमें आध छटाँक बढ़िया साबुन घोल कर एनेमा बनाया जाता है। कभी-कभी पानीमें ४-८ ड्राम रेंड़ीका तेल, या २-४ चम्मच तारपीनका तेल भी डाला जाता है। जैतूनका तेल (ऑलिव ऑयल) को भी काममें लाते हैं। एनेमाको कुनकुना रहना चाहिये, चाहे यह किसी भी चीज़से बना हो। बहुत तेज़ बुखारमें (१०५°-१०६°में) बरफकी थैली सिरपर रखने तथा बदन पर बरफ रगड़नेके साथ ही बरफके ठंढे पानीका एनेमा भी दिया जाता है। बवासीरमें रक्त रोकनेके लिये १ औंस हैज़लीन (hazeline) के साथ १ पाइंट बर्फका ठंढा पानी बहुत उपयोगी होता है।

अतिसारमें अफीमके सतके १५ बूँदके साथ स्टार्च और म्युसिलेजका एनेमा देते हैं। यह २-४ औंसकी मात्रा में काफी होता है और शीशेकी पिचकारीसे लगाया जाता है। ग्लिसरीनका एनेमा (२ औंस तक) मोतीझरा (टायफ़ायड) में प्रायः दिया जाता है।

केंचुआ (thread-worms) के रोगमें क्वैसिया (quarssia) या नमक का एनेमा लगाया जाता है। पुराने आँवमें पोटैसियम परमैंगनेट, सिल्वर नाइट्रेट आदिका भी एनेमा लगता है।

खोपड़ीमें सख़्त चोट लगने पर मैगनीसियम सल्फ़ेट १½ औंस और पानी ६ औंसका एनेमा प्रत्येक ४ घण्टे पर बहुत उपयोगी होता है।

एक्सररश्मियोंसे फोटो खींचनेमें बेरियमके मिश्रणको काममें लाते हैं।

बेहोश करनेके लिये या नींद लानेके लिये ईथर (ether) या पोटैसियम ब्रोमाइड (potassium

bromide) आदि औषधियोंका घोल काममें लाते हैं।

पेटके बड़े आपरेशनके बाद या अधिक कमज़ोरीमें यह एनेमा बहुत धीरे-धीरे प्रत्येक ४ घण्टे बाद दिया जाता है :—

नमक	१ ड्राम
ग्लूकोज़	१ ड्राम
पानी	१ पाइंट

कभी-कभी मुँहसे रोगी भोजन नहीं खा सकता है, या किसी कारण नहीं खिलाया जाता है। पोषण के लिये ऐसी अवस्थामें गुदा द्वारा भोजन दिया जाता है। ऐसे एनेमाको देनेके पूर्व गुदाको साफ पानीके एनेमासे २४ घण्टेमें १ बार धो लेना आवश्यक है। इस एनेमाकी मात्रा ४ औंससे अधिक नहीं होनी चाहिये। पेशाब उतारनेकी रबड़की नंबर ८ वाली नली काममें लानी चाहिये। वेसलीनसे नली-को चिकना करके प्रायः ६ इंच गुदामें आहिस्तासे डालना चाहिये। फिर एनेमा बहुत धीरे-धीरे बूँद-बूँद करके डालना चाहिये। इस भाँति दूध, चाय, एखनी (मांसका रसा), अंडेकी सफेदी तथा शक्करका रस दिया जाता है। दूध, अंडा आदिमें विशेष औषधियाँ डाल कर पकाया जाता है जिससे आमाशयके रसके गुदामें न रहने पर भी ये वस्तुएँ पच कर शरीरमें सोखी जा सकें।

—उमाशंकर प्रसाद।

एपसम साल्ट (epsom salt)—मैगनी-सियम सलफ़ेटका पुराना नाम एपसम साल्ट है। यह रेचक (दस्तावर) है। चायके चम्मचसे एक बारमें जितना उठ सकता है उतना लगभग एक खूराक समझा जाता है। सोकर उठते ही प्रातःकाल इसे लेना चाहिए और पहले इसे थोड़ेसे पानीमें घोल लेना चाहिये। ऐसा भी किया जाता है कि एक खूराकको चार भागोंमें बाँट कर पन्द्रह-पन्द्रह मिनट पर एक-एक भाग लिया जाय। कुछ लोगोंको एपसम साल्टसे पेटमें मरोड़ उठता है, परन्तु साधारणतः इसका कारण यह होता है कि वे इसके साथ यथेष्ट पानी नहीं लेते। लगभग ३ छटाँक पानीमें एक चम्मच एपसम साल्ट घोलना चाहिये। डाक्टर लोग अकसर एपसम साल्ट के साथ अन्य दवायें भी देते हैं जिससे मरोड़ न उत्पन्न हो।

ऐंचा-ताना (squint)—दोनों नेत्रोंके अक्षों में समानान्तरता न होनेसे व्यक्ति ऐंचा-ताना हो जाता है। इससे दोनों आँखोंकी पुतलियाँ एक ही वस्तुकी ओर नहीं देख पातीं। इस रोगके तीन मुख्य कारण हैं :—(१) दोनों नेत्रोंकी मांसपेशियाँ सहयोगके साथ काम नहीं कर पातीं हैं; एक कमज़ोर होती है। साधारणतः कमज़ोर मांसपेशी भी शक्ति लगा कर दूसरे नेत्रके बराबर ही अपनी आँखको घुमानेकी चेष्टा करती है परन्तु नेत्रोंके बहुत परिश्रमके बाद, या किसी रोगके बाद जिससे विशेष दुर्बलता आ जाती है, कमजोर मांसपेशी थक जाती है। तब दोनों नेत्रोंके अक्ष समानान्तर नहीं रह सकते और व्यक्ति ऐंचा-ताना हो जाता है। इससे प्रत्येक वस्तु दोहरी दिखलाई पड़ने लगती है। आरम्भमें ऐसा ऐंचा-तानापन सिर्फ कुछ समयके लिये ही होता है और थकावट दूर होने पर फिर नेत्रपेशियाँ बराबर काम करने लगती हैं। परन्तु प्रायः दिन-पर-दिन यह रोग बढ़ता जाता है और कुछ समय बाद ऐंचा-तानापन सर्वदाके लिये हो जाता है। कमजोर नेत्रका जो चित्र नेत्रपटल पर बन कर मस्तिष्क तक पहुँचता है उसे मस्तिष्क न देखनेका प्रयत्न करता है जिससे अंशतः एक पर एक चढ़ी मूर्तियाके स्थान पर केवल बलिष्ठ नेत्रकी एक स्पष्ट मूर्ति दिखलाई पड़े। इसलिये धीरे-धीरे दुर्बल नेत्र और दबता चला जाता है। इससे उसकी ज्योति धीरे-धीरे बहुत कम हो जाती है। इससे बचनेके लिये उचित चश्मा आरम्भसे ही लगाना चाहिये, तथा अच्छे नेत्रको कुछ समय तक नित्य बन्द करके कमज़ोर नेत्रसे काम लेना चाहिये, जिससे उसमें फिर यथासम्भव शक्ति आ जाय। (२) सम्भव है कि एक आँखकी मांस-पेशियाँ चोट या रोगके कारण खराब हो गई हैं। (३) नेत्रोंमें अधिक शॉर्ट साइट (short sight) या लॉङ्ग साइट (long sight) के रहनेसे भी व्यक्ति ऐंचा-ताना जान पड़ता है।

ऐंचाताने बालकको नेत्रविशेषज्ञके पास ले जाकर सलाह लेनी चाहिये। सम्भवतः रोगनिवारण हो सकेगा।

यदि नेत्रकी मांसपेशीमें किसी कारण (जैसे उपदंश से) पक्षाघात हो जायगा तो नेत्र-अक्षकी समानान्तरता सदाके लिये नष्ट हो जायगी ।—उमाशंकर प्रसाद ।

ऐण्टीमनी (antimony)—ऐंटीमनी एक धातु है जो देखनेमें चमकीली और नीलिमा लिये श्वेत रंगकी होती है । इसीका सुरमा बनता है । ऐंटीमनी और इसके क्षारका उपयोग आधुनिक चिकित्सामें बराबर होता है । ब्रोनकाइटिस, आतशक (उपदंश), मलेरिया आदि रोगोंमें ये विशेष उपयोगी होते हैं । ऐंटीमनी और इसके यौगिक विष हैं । यदि कोई भूलसे खा ले तो उसे नमक का गाढ़ा घोल पिला कर वमन कराना चाहिये (देखो आकस्मिक चिकित्सा) । फिर कड़ी चाय पिलानी चाहिये और उसे एक-दो दिन तक केवल दूध (या दूध और अंडा) के अतिरिक्त और कोई आहार न देना चाहिये । हाथ-पैरकी सेंक भी होनी चाहिये ।

ऐण्टीफ़ेबरिन (antifebrin)—ऐंटीफ़ेबरिन एक पेटेंट ओषधिका नाम है जिसका वैज्ञानिक नाम ऐसिटैनिलाइड (acetanilide) है । यह ऐनिलिन और ऐसिटिक ऐसिडसे बनता है और श्वेत रवेके रूपमें रहता है । इस ओषधिसे ज्वर उतरता है, परन्तु इसमें कई-एक दोष हैं । इसलिए अब इसका प्रयोग नहीं किया जाता । अधिक मात्रामें खा जानेसे अवसाद* उत्पन्न होता है और साँस लेनेमें कष्ट होता है । दवाखानोंमें बिकने वाली सर दर्दकी कुछ पेटेंट दवाओंमें ऐसिटैनिलाइड पड़ा रहता है । इसलिए पता लगा लेना चाहिए कि दवामें क्या है । यदि कभी भूलसे ऐसी दवा कोई इतना खा ले कि अवसाद हो आये तो तुरन्त वमन कराना चाहिए और शरीरको सेंक कर या गरम पानीसे भरे रबड़की बोतलें रख कर रोगीको गरम रखना चाहिए । तुरन्त डाक्टर भी बुलाना चाहिए ।

ऐंटिफ़्लॉजिस्टिन (antiphlogistine)—ऐंटिफ्लॉजिस्टिन एक विशेष पेटेंट लेपका नाम है जिसे पुलटिसकी तरह बाँधा जाता है । प्रदाह (सूजन), फोड़ा आदि पर इसे बाँधनेसे लाभ होता है । न्यूमोनिया, ब्रोनकाइटिस आदिमें छाती और पीठ पर भी ऐंटीफ्लॉजिस्टिन की पट्टी लगाते हैं । इसीसे मिलती-जुलती दवा अब भारतवर्ष (बंगाल केमिकल ऐंड फ़ार्मासुटिकल वर्क्स) में ऐंटीफ्लेमिन नामसे बनती है । स्वच्छता और सुविधाके कारण पुलटिसके बदले अब इसका प्रयोग बढ़ता जा रहा है । काममें लानेके पहले डिब्बेको गरम पानीमें रख कर और पानीको आँच पर चढ़ा कर लेपको गरम कर लिया जाता है । फिर उसे मोटे कपड़े (या लिंट) पर फैला दिया जाता है । स्तर कम-से-कम $\frac{1}{8}$ इंच मोटी हो; $\frac{1}{4}$ इंच मोटी रहे तो अच्छा । फिर उसे गरमागरम ही प्रदाहके स्थान पर लगा दिया जाता है । पट्टीको १२ से लेकर २४ घंटेमें बदल देना चाहिए ।

स्वयं घर पर ऐंटिफ्लॉजिस्टिनकी तरह की ओषधि निम्न प्रकार बनायी जा सकती है ।

केओलीन	५२७ भाग
बोरिक ऐसिड	४५ भाग
मेथिल सैलिसिलेट (विंटरग्रीनका तेल)	२ भाग
पिपरमेंटका तेल	०·५ भाग
थाइमोल (पुदीने का सत)	०·५ भाग
ग्लिसरीन	४२५ भाग

केओलीन और बोरिक ऐसिडको ग्लिसरीनके साथ मिलाओ । मिश्रणको १ घंटे तक १२० डिगरी पर गरम करो और बीच-बीचमें टारते रहो । १ घंटे बाद उतार लो और ठंढा होने दो । थाइमोलको मेथिल सैलिसिलेट और पिपरमेंटके तेलमें घोल कर ऊपरके मिश्रणमें ठंढे होने पर डाल कर भली भाँति एकमें मिला लो ।

सभी भाँति की सूजन, न्यूमोनिया, कखौरी, पेटके फोड़े आदिमें यह बहुत लाभदायक है । इस दवाको टीन के डिब्बेमें बन्द करके रखना चाहिये । केओलीन सफ़ेद (चीनी) मिट्टीको कहते हैं । दवाखानोंमें बिकती है । यदि यह न मिले तो स्वच्छ चिकनी मिट्टीसे (जिसमें खाद या वानस्पतिक पदार्थ न रहे) काम चल जायगा ।

ऐंठन—शरीरके नसों या मांसपेशियोंके, पीड़ाके सहित, एकबारगी खिंचनेको अकड़बाई, ऐंठन, या संकोचन

*अत्यन्त दुर्बलता और जीवन-क्रियाओंके मन्द पड़ जानेको अवसाद (collapse) कहते हैं ।

कहते हैं। देखो 'अकड़बाई'। सारे शरीर या शरीरके एक अंगकी मांसपेशियोंके बार-बार अनियमित ढंगसे ऐंठने और ढीला होनेको आक्षेप (convulsion) कहते हैं। आक्षेप और कँपकँपीमें अंतर यह है कि आक्षेप अनियमित और ज़ोरसे होता है; कँपकँपी नियमित ढंग से होती है (देखो कंपन)। आक्षेपको लोग बहुधा दौरा कहते हैं, परन्तु दौरा तो किसी भी रोगका हो सकता है। इसी प्रकार अँग्रेजीमें भी कनवलशनको बहुधा फ़िट (fit) कहते हैं, यद्यपि फ़िट शब्द किसी भी रोग या आवेशके सम्बन्धमें प्रयुक्त हो सकता है; उदाहरणतः क्रोध या रुलाई का फ़िट (a fit of temper or of weeping) भी होता है। आक्षेप स्वयं कोई विशेष रोग नहीं है, यह एक लक्षण मात्र है जो कई रोगोंमें हो सकता है। उदाहरणतः मिरगी (अपस्मार), बालाक्षेप, धनुषटंकार (टिटैनस), हिस्टीरिया, मस्तिष्कमें अर्बुद, विषपान (विशेषतया स्ट्रिक्नीन, संखिया, ऐट्रोपीन और मदिराके खाने या पीने) इत्यादिमें। यूरेमिया नामक रोगमें किसीको भी तथा गर्भवती अवस्थामें स्त्रियोंको आक्षेप हो सकता है। इन सब रोगों का वर्णन यथास्थान मिलेगा।

ऐक्रिफ्लेविन (acriflavin)—ऐक्रिफ्लेविन एक कीटाणुनाशक रासायनिक पदार्थ है। इसे पानीमें घोलने पर चटक पीले रंगका घोल बनता है। साधारणतः १ भाग ऐक्रिफ्लेविन में १००० भाग जल मिलाया जाता है। इसमें विशेषता यह है कि बहुत शक्तिशाली कीटाणुनाशक होते हुए भी यह शरीर-तन्तुओंको नष्ट नहीं करता। इसलिये घाव आदि पर पट्टी बाँधनेके लिये इसका बहुत प्रयोग होता है।

ऐट्रोपिन (atropine)—ऐट्रोपिन एक रासायनिक पदार्थ है जो ऐट्रोपा बेलाडोना नामक पौधेसे निकाला जाता है। यह विष है। ऐलकोहल, ग्लिसरिन या कपूरके साथ मिलाकर इसे त्वचा पर लगानेसे त्वचा सुन्न (ज्ञानरहित) हो जाती है। इसे खानेसे, या इसकी सुई लगानेसे कुकुरखाँसी, दमा, आदि रोगोंमें लाभ होता है। आँखमें डालनेसे पुतलियोंका छेद (चक्षुतारा) बड़ा हो जाता है, इसलिये चश्मा देनेके लिये आँखों की जाँच करते समय डाक्टर लोग इसे आँखमें छोड़ते हैं।

नियत मात्रासे अधिक ऐट्रोपिन खा जानेसे, या ऐट्रोपिनप्रद पौधेकी काफी पत्तियाँ खा जानेसे व्यक्ति मर जा सकता है। पहले गला सूख जाता है। चक्षुतारा बड़ा हो जाता है। नाड़ी पहले सुस्त होकर पीछे तेज हो जाती है। सर चक्कर करता है और व्यक्ति चलते समय लड़खड़ाता है। साँस लेनेमें कष्ट होता है। पीछे सन्निपात (delirium) हो जाता है और मृत्यु हो सकती है। उपचार यह है कि वमन कराया जाय (देखो आकस्मिक चिकित्सा)। आवश्यकता प्रतीत होने पर कृत्रिम श्वासका उपयोग करना चाहिये। रोगीको गरम रखना चाहिये। कुछ समय बाद कड़ी कहवा पीनेको दी जा सकती है।

ऐडिनॉयड (adenoids)—छोटी-छोटी ग्रन्थियों के एक समूहको जो नाकके बिल्कुल भीतर और पिछले हिस्सेमें होता है ऐडिनॉयड ग्रंथियाँ कहते हैं।

ये नाकके बिल्कुल भीतरी हिस्सेमें होती हैं और नर्म तालू (soft palate) में जो कौआ लटका रहता है उसके पीछे ऊपर की ओर होती हैं। अगर गलेके कौएके पीछे उँगली डाली जाय तो इनको उँगलियोंसे छुआ जा

ऐडिनॉयड-ग्रंथियाँ

१—नाक; २—नासिका-छिद्र; ३—मुख; ४—जीभ; ५—कौआ या गलशुंडिका; ६—ऐडिनॉयड-ग्रन्थियाँ।

सकता है। बचपन और लड़कपनमें ये अकसर साधारणसे बड़ी हो जाती हैं। नाकके पिछले हिस्सेमें होनेके कारण ऐडिनायड बाहरसे आने जाने वाले हवाके रास्तेमें पड़ते हैं। इससे यह प्रगट है कि यदि ऐडिनायड अधिक बढ़ जायेंगे तो वे नाक से साँस लेने और साँस फेंकनेमें रुकावट डालेंगे। इस रुकावटका परिणाम बुरा यह होता है कि बच्चा नाकसे साँस न ले सकनेके कारण मुँहसे साँस लेता है। इसलिये उसका मुँह खुला रहता है। नाकसे भरपूर साँस न आने-जानेसे नाकके छेद बहुत छोटे हो जाते हैं, और नाक पतली और दबी-सी मालूम होती है। दाँत सामनेके खुले रहते हैं और देखनेमें बच्चा या लड़का ऊँघता और नींदमें भरा मालूम होता है। उसकी चेष्टा मन्द रहती है और स्मरणशक्ति क्षीण रहती है। पाठ वह जल्द भूल जाता है और स्कूलमें कमजोर होता है। सोते समय लड़केका मुँह बिल्कुल खुल जाता है जिससे गला सूख जाता है और बच्चेको खाँसी हो जाया करती है। बच्चों की बढ़ने की शक्ति कम हो जाती है।

ऐडिनॉयड क्यों बढ़ते हैं? एडिनायडके बढ़नेके कारण कई एक हैं। जैसे (१) माता-पितामें इस रोगका होना। (२) बच्चोंका ठीक पालन-पोषण न होनेसे बच्चों को जल्दी-जल्दी सर्दी-जुकाम होना। (३) जुकाम होने पर नाकके जल्द साफ न करनेसे बलगमका नाकमें रोके रहना (४) भोजनमें फल और दूध या मक्खनका अभाव, अर्थात् विटेमिनों (vitamins) की कमी।

ऐडिनॉयडके साथ ही साथ टॉनसिल (tonsils) भी बढ़े पाये जाते हैं। ये टानसिल कौएके दाहिने-बाएँ तरफ गोलाकार पिंड होते हैं।

ऐडिनायडके बढ़ने पर क्या करना चाहिये—जब बच्चे या लड़केको जल्द-जल्द जुकाम होता हो, उसका मुँह खुला रहता हो और स्मरणशक्ति कमजोर हो और देखनेमें बच्चा नींद-भरा या सुस्त मालूम हो तो उसको अच्छे डाक्टर को जरूर दिखाना चाहिये। ऐसे बच्चे को मार-मार कर पढ़ाना या घर पर मास्टर रख कर उससे ज्यादा परिश्रम नहीं लेना चाहिये। कारणका पता डाक्टरसे लगाना चाहिये। डाक्टर जब बतावे कि ऐडिनायड कारण हैं तो उसकी रायसे काम करना चाहिये। भोजनमें परिवर्तन करना चाहिये। सर्दीसे बच्चेको बचाना चाहिये और ऐडिनायडों को आपरेशन द्वारा निकलवा देना चाहिये। इनके साथ ही टानसिलोंको भी निकलवा देना चाहिये। आपरेशनके बाद बच्चोंको नाकसे साँस लेने की आदत डालनी चाहिये। लड़कोंको मुँह बन्द करके गहरी साँस लेनेकी कसरत सिखानी चाहिये और चलते समय मुँह पर रूमाल रखने की आदत डालनी चाहिये। यदि आपरेशनके बाद ये बातें न की जायँगी तो लड़के की मुँह खुले रखने की आदत न जायगी।

ऑपरेशनका परिणाम अच्छा होता है। लड़कोंकी बुद्धि तेज हो जाती है, ऊँचाई (क़द) बढ़ने लगती है और बदन में फुर्ती पैदा हो जाती है।

— मोहनलाल गुप्त

ऐडिसन रोग (Addison disease)—सबसे पहले डाक्टर ऐडिसन ने १८५४ में इस रोगका वर्णन किया था (पर रोग बहुत कम देखनेमें आता है)। उन्हींके नाम पर यह ऐडिसन रोग कहलता है। इस रोगमें शरीरकी सब त्वचाका रंग गहरा हो जाता है और रोगी निरन्तर दुर्बल होता जाता है। वृक्कके ऊपर उपवृक्क हैं और उपवृक्कोंमें यक्ष्मारोग हो जानेसे यह रोग होता है।

त्वचाका रंग मुख्यतर उन स्थानोंमें गाढ़ा होता है जो खुले रहते हैं, जैसे चेहरा, गर्दन तथा हाथ, और उन स्थानों पर जहाँ स्वभावतः चर्मका रङ्ग कुछ गहरा होता है, जैसे काँख और स्तन। कभी-कभी कंठ, जिह्वा तथा वायुकी श्लैष्मिक कलायें रँग जाती हैं। रंग शुरूमें तो पीला होता है और बादमें गहरा ताँबे के रंग जैसा होता जाता है। कभी-कभी वमन या मचली होती है और पेटमें मड़ोरसे दर्द होता है। दिलमें धड़कन होती है और रक्त-चाप बहुत कम हो जाता है।

रोग दिन-पर-दिन बढ़ता जाता है और अन्तमें मृत्यु हो जाती है। प्रायः अन्त समयमें फुफ्फुसका यक्ष्मा हो जाता है। प्रायः यह रोग अधेड़ अवस्थामें होता है और स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें ही बहुत अधिक पाया जाता है। रोगकी चिकित्सामें शक्तिवर्द्धक भोजन, शुद्ध वायु और

विश्रामके साथ ही उपवृक्कके सतकी बनी टिकियों का भी सेवन करना चाहिये।

— उमाशंकर प्रसाद

ऐड्रिनैलिन (adrenaline)- शरीरके भीतर स्थित ऐड्रिनल ग्रंथिसे जैसा रासायनिक पदार्थ निकलता है वैसा ही रासायनिक पदार्थ अब कारखानोंमें मिल सकता है। एक कम्पनी ऐसे पदार्थ बनाती है और उसने इसका नाम ऐड्रिनैलिन रक्खा है। रक्तस्रावको रोकनेके लिये यह ओषधि बहुत उपयोगी है। उदाहरणतः, दाँत उखाड़ने पर यदि खोड़रोंसे बहुत रक्त निकले तो इस ओषधिको लगाने से रक्त-स्राव बन्द हो जायगा। नाकसे रुधिर बहने लगे, या पेटके भीतर-ही-भीतर आमाशय, अँतड़ी, मूत्राशय या गर्भाशयसे कहीं रक्तस्राव होता हो, तो इस दवा को पिलाकर वह रोका जा सकता है। केवल फेफड़ोंसे रक्तस्राव होनेपर यह ओषधि लाभदायक नहीं होती। जब रक्त-संचार क्षीण रहता है तो इस ओषधिके प्रयोगसे रक्तचाप बढ़ाया जा सकता है। दमा, जलपुत्ती आदि रोगोंमें भी इससे लाभ होता है। मानसिक आघात तथा अवसाद (collapse) में और हृदयगतिके रुकने पर इस ओषधि से काम लिया जाता है। वस्तुतः रुके हुए हृदयमें फिरसे स्पंदन उत्पन्न करनेके लिये ऐड्रिनैलिनसे बढ़ कर कोई दूसरी दवा नहीं है। क्लोरोफार्मके उपद्रव को शांत करनेके के लिये भी ऐड्रिनैलिनका उपयोग किया जाता है।

ऐनथ्रैक्स (anthrax)—ऐनथ्रैक्स एक तीव्र संचारी रोग है। यह बैसिलस ऐनथ्रैसिस (bacillus anthracis) नामक जीवाणुके कारण होता है। यह रोग भेड़, गाय, बैल, घोड़े आदिसे मनुष्यको लगता है। रोगग्रस्त पशुओं की खाल या ऊनको रखने-उठानेसे या रोगग्रस्त पशुके बालोंसे बने हजामतके बुरुशसे यह रोग मनुष्योंको हो जाता है।

साधारणतः रोगके जीवाणु त्वचाके किसी कटे या आघात खाये भागसे घुसते हैं। २४ घंटेमें रोग उभड़ आता है। मुँह, पाँव, या गरदनकी त्वचामें खुजली होने लगती है। छूत लगे स्थान पर लाल दाना निकल आता है। शीघ्र आस-पासकी त्वचा प्रदाहित हो जाती है (प्रदाहके प्रमुख लक्षण हैं लाली, जलन या गरमी, सूजन और पीड़ा)। ऐसा जान पड़ता है कि फोड़ा हो गया है, परन्तु शीघ्र ही प्रदाह-केन्द्रके चारों ओर छाले पड़ जाते हैं, और केन्द्रकी त्वचा दो-तीन दिनमें काली पड़ जाती है और उखड़ आती है। पासकी ग्रंथियाँ बड़ी हो जाती हैं (जिसे बोलचाल की भाषामें कौड़ी उसक आना कहते हैं)। ज्वर आने लगता है और तापक्रम १०५ डिगरी तक हो जा सकता है। यदि आरम्भसे ही ठीक चिकित्सा होने लगे तो रोग दब जाता है और रोगी अच्छा हो जाता है। अन्यथा रोगी कुछ समयमें मर जाता है।

चिकित्सा—डाक्टर लोग दूषित भागको काट कर निकाल देते हैं या उसे जला देते हैं। साथ ही विशेष सिरम (serum) की सूई देते हैं।

ऐनिलीन (aniline)—ऐनिलीन एक तरल पदार्थ है जो पत्थरके कोयलेसे निकाला जाता है। साड़ी आदि रँगनेके लिये जो बुकनीके रंग बिकते हैं वे ऐनिलीनसे बनाये जाते हैं। इनमेंसे एक रंग, ऐक्रिफ्लेविन (उसे देखो), मरहम पट्टीमें बहुत उपयोगी है। ऐनिलीन से बने ऐसिटैनिलाइड आदि पदार्थ चिकित्सा-शास्त्रमें बहुत उपयोगी हैं। ऐनिलीन विष है। यदि भूलसे इसे कोई पी ले तो उसे तुरन्त नमकके गाढ़े घोलसे वमन कराना चाहिये (देखो आकस्मिक चिकित्सा), रोगीको गरम रखना चाहिये और डाक्टर बुलाना चाहिये।

ऐनोफ़िलीज़ (anopheles)—मच्छड़ोंकी कई जातियाँ होती हैं। इनमेंसे एक जातिको ऐनोफ़िलीज़ कहते हैं। यह वही जाति है जिससे मैलेरिया फैलता है। देखो मैलेरिया।

ऐपोमॉरफ़िन (apomorphine)—ऐपोमॉरफ़िन मॉरफ़िन (morphine) से बनता है जो अफीमका सत है। यह अत्यन्त प्रबल वमनकारी ओषधि है और इसलिये विषकी चिकित्सामें काममें आता है। साधारणतः इसका इनजेकशन दिया जाता है और तब

शीघ्र ही वमन होने लगता है। ब्रोनकाइटिसमें कफको बाहर लानेके लिये भी इस औषधिका प्रयोग होता है।

ऐमिल नाइट्राइट (amyl nitrite)—यह स्वच्छ परन्तु कुछ पीले रंगका तरल पदार्थ है। हृदय के रोगोंमें इसका उपयोग होता है। यह उत्तेजक है। हृदयके रोगी इसे छोटी-छोटी शीशियोंमें रक्खे रहते हैं। जब उनको लक्षण दिखलाई पड़ता है कि उन पर रोगका आक्रमण होने वाला है तो एक शीशीको रूमालके बीच रख कर दबा देते हैं जिससे शीशी टूट जाती है और तब वे उसे सूँघते हैं।

ऐम्पूल (ampoule)—ऐम्पूल उन छोटी शीशियोंको कहते हैं जिसमें कोई औषधि या सिरम बन्द रहता है। मुँह काग (कार्क) से नहीं बन्द रहता। शीशे को ही पिघला कर बन्द किया रहता है। इस प्रकार भीतर जीवाणुओंके घुसनेका कोई खटका नहीं रहता। विशेष औषधियोंकी नपी-तुली मात्राओंको अलग-अलग रखनेके लिये भी ऐम्पूलोंका उपयोग होता है।

ऐम्ब्रीन (ambrine) पैराफिन और रेज़िन से बने एक विशेष मरहमको ऐम्ब्रीन कहते हैं। जले पर लगानेके लिये यह काममें आता है।

ऐलकलॉयड (alkaloid)—ऐलकलॉयड वे पदार्थ हैं जो पौधोंसे निकाले जाते हैं, और क्षारमय और साधारणतः कड़ुए होते हैं। हमारी अत्यन्त शक्तिशाली औषधियोंमें ऐलकलॉयडोंका प्रमुख स्थान है। क्विनीन (कुनैन), मॉरफ़ीन (अफ़ीमका सत), ऐकोनाइट, ऐट्रोपिन, कोकेन, डिजिटैलिन, अरगोटिन, हिरोइन निकोटिन (तम्बाकूका सत), स्ट्रिकनीन (कुचिलाका सत), ये सभी ऐलकलॉयड ही हैं।

ऐल्ब्यूमिन (albumin)—ऐल्ब्युमिन एक कार्बनिक (organic) पदार्थ हैं जो हमारे शरीरके तन्तुओंमें रहता है। अंडेकी सफेदी (श्वेत भाग) में प्रायः ऐल्ब्युमिन ही रहता है। एक रोग ऐसा है जिसमें मूत्रमें ऐल्ब्युमिन आता है। नीचे देखो।

ऐल्ब्युमिन्यूरिया (albuminuria)—जब मूत्रमें साधारणसे अधिक ऐल्ब्युमिन उपस्थित रहत है तो कहा जाता है कि उस व्यक्तिको ऐल्ब्युमिन्यूरिय रोग है (ऐल्ब्युमनकी व्याख्याके लिये ऊपर देखो) ज्वरके कारण या अनुचित आहारसे अस्थाई रूपसे ऐल्ब्यु मिन्यूरिया हो सकता है और तब कोई चिन्ताकी बात नहीं है। परन्तु गुर्देकी बीमारीमें भी यही लक्षण रहत है और तब पूरी जाँच करानी चाहिये। गर्भवती स्त्रियोंके मूत्रमें ऐल्ब्युमिन आता हो तो तुरन्त उपचार होना चाहिये अन्यथा आक्षेप (convulsion) उत्पन्न हो सकत है। कुछ भी सन्देह हो तो गर्भवती अवस्थामें मूत्रकी परीक्षा बराबर कराते रहना चाहिये।

बच्चेके मूत्रमें बहुधा ऐल्ब्युमिन रहता है। बड़े होने पर आप-से-आप यह शिकायत दूर हो जाती है। कसरती लोगोंके मूत्रमें भी अधिक परिश्रमके तुरन्त बाद ऐल्ब्युमिन आ जाता है। परन्तु इससे कोई हानि नहीं होती।

बहुतसे लोगोंको तो ऐल्ब्युमिन्यूरिया रहनेका पता तब लगता है जब वे जीवन-बीमा करानेके लिये अपने स्वास्थ्यकी परीक्षा कराते हैं। ऐल्ब्युमिन्यूरिया वालोंका बीमा आसानीसे नहीं हो पाता। क्योंकि साधारणतः यह रोग इस बातका सूचक है कि उस व्यक्तिको गुरदेकी बीमारी है। देखो 'गुरदेकी बीमारियाँ'।

मूत्रमें ऐल्ब्युमिन रहने-न-रहनेकी परीक्षा घर पर भी सुगमतासे की जा सकती है। इसके लिये परीक्षण-नलिका (शीशेकी नलिका) में थोड़ेसे मूत्रको खौलाना चाहिये। यदि इससे मूत्र दुधिया हो जाय तो समझना चाहिये कि मूत्रमें या तो फ़ॉस्फ़ेट हैं या ऐल्ब्युमिन, या दोनों। अब उसी मूत्रमें दो-चार बूँद ऐसेटिक ऐसिड डालना चाहिये। यदि दुधियापन मिट जाय तो समझना चाहिये कि केवल फ़ास्फ़ेट है। यदि दुधियापन न मिटे तो समझना चाहिये कि ऐल्ब्युमिन उपस्थित है। ऐसी दशामें डाक्टरसे चिकित्सा करानी चाहिये।

ऐसपिरिन (asprin)—ऐसिटिल सैलिसिलिक ऐसिडका लोकप्रिय नाम ऐसपिरिन है। यह बहुत उपयोगी औषधि है और बिना डाक्टरसे पूछे जनता भी

इसका बहुत उपयोग करती है। आमवातमें इससे पीड़ा मिटती है और पसीना आता है। एक या दो टिकिया (५ या १० ग्रेन) खाकर सो रहनेसे पीड़ा या बेचैनी रहने पर भी बहुधा नींद आ जाती है। इनफ्लुएंजा, सरदी और स्नायुपीड़ामें ५ से १५ ग्रेन ऐसपिरिन सोनेके पहले खा लेनेसे आराम मिलता है। बच्चोंको ½ ग्रेनसे ५ ग्रेन तक ऐसपिरिन दिया जा सकता है। परन्तु जिनका हृदय दुर्बल हो उन्हें ऐसपिरिन नहीं खाना चाहिये। इससे हृदय में धड़कन उत्पन्न होती है। प्रतिदिन ऐसपिरिनका सेवन बहुत हानिकर सिद्ध हो सकता है। इससे बड़ी शिथिलता भी आ जाती है।

ऐसिटैनिलाइड (acetanilide)—इस ओषधिका वर्णन ऊपर ऐंटिफ़ेबरिनके सम्बन्धमें किया जा चुका है। उसे देखो।

ओष्ठों के रोग—पैदाइशी फटे ओंठ (hare lip) प्रायः देखनेमें आते हैं। फटे ओंठके कारण मुँह बहुत कुरूप लगता है। बच्चा जब गर्भाशयमें बढ़ता है तो अंग बनते रहते हैं। आरम्भमें ओंठ नहीं रहते, उनका बनना दोनों बगलसे शुरू होता है। अंतमें वे बीचमें नाक के नीचे जुट जाते हैं। यदि इनका बढ़ना किसी प्रकार रुक जाता है तो वे बीचमें नहीं जुट पाते। यदि एक ओर यह क्रिया अधूड़ी रही तो उस ओर ओंठ कटा लगता है। यदि दोनों ही ओर यह क्रिया अपूर्ण रही तो दोनों ओर ओंठ कटे दिखाई देते हैं। मुँहके कुरूपताके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसी दशामें बच्चा माँका दूध नहीं पी पाता है, जिससे, यदि बच्चेकी इस त्रुटि पर ध्यान न दिया जाय, तो वह भूखके कारण दुर्बल होकर मर जायगा। शल्य-चिकित्सा द्वारा इस दशाको सुधारा जा सकता है।

कभी-कभी ऊपर और नीचेके ओंठ आपसमें आवश्यकतासे अधिक जुट जाते हैं, जिससे मुख-द्वार बहुत छोटा हो जाता है। इसकी उल्टी दशामें ओठोंके न मिलनेसे मुख-द्वार बहुत खुला रह जाता है। शल्य-चिकित्सासे दोनों प्रकारके दोष सरलतासे दूर किये जा सकते हैं।

बच्चोंके ओठ प्रायः कट भी जाते हैं। गिरने या घूँसा लगनेसे दाँत ओंठमें घुस जाता है, जिससे घावसे रक्त बहुत निकलता है। रक्त रोकनेके लिये ठंढे पानीसे या हाइड्रोजन पेराक्साइडसे कुल्ला करना चाहिये। अधिक रुधिर बहता हो तो ओंठको दो अँगुलियोंके बीच दबाना चाहिये, परन्तु कभी-कभी टाँका लगानेकी आवश्यकता पड़ती है, जिसे डाक्टर ही कर सकता है।

ओठ पर कभी-कभी उपदंश रोग भी हो जाता है (देखो आतशक)। एक विशेष रोग, जो बच्चोंमें ही मिलता है और बहुत कमजोरी या चेचक आदि रोगोंके बाद होता है, यह है कि ओंठ तथा गालमें बड़े-बड़े घाव हो जाते हैं (cancrum oris) और ये पक (पीब-युक्त हो) जाते हैं। ओंठमें दरार पड़ जाते हैं (ओंठ फटते हैं)। इससे बड़ा कष्ट होता है तथा रक्त निकलता है। वेसलीन लगानेसे कुछ आराम होता है। कभी-कभी ओठ पर पानी भरे छाले उठ आते हैं जिन्हें अगियासन कहते हैं (उसे देखो)। ओंठका कैनसर भी बहुधा होता है (देखो कैनसर)।

ओज़ोन (ozone)—हमारी वायुमें प्रधानतः ऑक्सिजन और नाइट्रोजन नामके दो गैसें हैं। इनमें से ऑक्सिजन वह गैस है जिसके कारण ही प्राणी जी सकते हैं। यदि ऑक्सिजन न रहे या कम रहे तो हमारा दम घुट जाय और हम मर जायँ। ओज़ोन भी एक प्रकार का आक्सिजन ही है, परन्तु बहुत तीव्र। इसके प्रत्येक अणुमें आक्सिजनके तीन परमाणु रहते हैं। वायुमें ओज़ोनके लेशमात्र भी रहनेसे बड़ी स्वास्थ्यवर्द्धकता आ जाती है। समुद्रतट पर और पहाड़ों पर वायुमें थोड़ा-सा ओज़ोन भी रहता है। संभवतः वहाँ की हवा इसीलिए अधिक गुणकारी है। अब कृत्रिम रीतियोंसे— वायुमें बिजलीकी चिनगारी उत्पन्न करके – ओज़ोन बनाया जा सकता है और यूरोपके कुछ बड़े होटलों और सिनेमाघरोंमें, जहाँ वायुको स्वच्छ और आवश्यकतानुसार गरम या ठंढा करनेकी मशीन लगी रहती है, उचित मात्रामें ओज़ोन भी मिलानेका प्रबन्ध किया जाता है। ओज़ोनसे दुर्गंधियाँ बहुत शीघ्र मिटती हैं।

औंधा फोड़ा (cellulitis)– जब त्वचाके नीचेके तंतुओं पर हानिकारक जीवाणुओंका आक्रमण होता

है तो वह स्थान प्रदाहित हो जाता है (सूज आता है और उसमें जलन, लाली और पीड़ा रहती है)। सम्भव है कि यह प्रदाह थोड़ेसे स्थानमें हो। ऐसी दशामें वहाँ फोड़ा हो जाता है। परन्तु यह भी संभव है कि प्रदाह विस्तृत क्षेत्रमें हो और उसका मुँह कहीं बनता हुआ न दिखलाई पड़े। ऐसी अवस्थामें कहा जाता है कि औंधा फोड़ा हुआ है। इसमें लाली कुछ दूर तक रहती है और प्रदाहित स्थानकी सीमा-रेखाएँ अस्पष्ट रहती हैं, अर्थात् लाली क्रमशः कम होती हुई दिखलाई पड़ती है।

चिकित्सा - प्रदाहित स्थानको सेंकना चाहिए। सेंक चाहे सूखी हो, चाहे गीली। सूखी सेंकके लिए आँच पर गरम की हुई रुईसे सेंकना चाहिए। गीली सेंकके लिये रुई को खौलते पानीमें डाल देना चाहिए। उसे तौलियेमें रख कर ऐंठना चाहिए और जब पानी प्रायः सब निकल जाय तो रुईको तौलियेसे बाहर निकाल लेना चाहिए। जब इसकी ऊपरी सतह थोड़ी ही गरम रह जाय तो इसे प्रदाहित भाग पर रखना चाहिए। अब रुई पर रबड़का टुकड़ा रख देनेसे रुई अधिक देर तक गरम रहेगी। बार-बार रुईको बदलते रहना चाहिए। सेंकके अतिरिक्त उस अंगको ऊपर उठाये रखनेसे लाभ होगा। रोगग्रस्त अंगको यथासंभव निश्चल रखना चाहिए। सेंक आदिसे औंधा फोड़ा बैठ जायगा, परंतु यदि पक ही जाय तो उसे साधारण फोड़ेकी तरह चिरा डालना चाहिए। देखो फोड़ा।

ओषधि-पेटिका (medicine cabinet) —प्रत्येक गृहस्थको एक ओषधि-पेटिका रखनी चाहिए। इसमें साधारण घरेलू दवायें, जैसे आँखमें डालनेकी दवा, गलेमें लगानेका पेन्ट, पट्टी, रुई, टिंक्चर आयोडीन, मालिशकी दवा आदि रक्खी रहे। ओषधि-पेटिका अलमारीके रूपमें हो तो उत्तम होगा। चाहे यह किसी भी रूपकी हो, इसमें ताला बन्द रहना चाहिये जिससे बच्चे या रोगी स्वयं मन-मानी ओषधियाँ निकाल न सकें। अलमारीकी चाभी ऐसे सुरक्षित स्थान पर रखनी चाहिये जहाँसे वह आवश्यकता पड़ने पर तुरन्त मिल जाय और ढूँढ़नेमें समय नष्ट न हो।

पेटीमें रक्खी सब ओषधियों पर चिप्पी लगी रहनी चाहिये और उस पर बड़े-बड़े अक्षरोंमें ओषधिका नाम लिखा रहना चाहिये। मालिश, लेप आदि तथा विषैली दवाओंकी शीशियोंको दूसरे रंग या दूसरे बनावट की रहनी चाहिये जिससे कभी भूल न हो और इन शीशियोंको उठाते ही ध्यान हो जाय कि इनके लिये कुछ सावधानी रखनी पड़ेगी। दवा पिलानेके लिये मात्रा-मापक गिलास तथा प्याली अलग चाहिए। ओषधिको शीशीसे निकालनेके पहले सर्वदा शीशी को खूब हिला लेनी चाहिये जिससे सब ओषधि भली भाँति मिल जाय और पेंदेमें कुछ जमा न रह जाय, अन्यथा अन्तिम मात्रा पिलानेमें यह जमी हुई ओषधि बहुत अधिक मात्रामें हो जायगी और इससे हानि होगी।

शीशीसे डाट खोलने तथा ओषधि निकालनेकी अशुद्ध और शुद्ध रीतियाँ हैं। शुद्ध रीतिके लिए बायें हाथके चुटकियोंमें तो मात्रा-मापक गिलास और दाहिने हाथमें शीशी पकड़नी चाहिए। डाट खोलनेके लिये बायें हाथकी कनिष्ठा अँगुली तथा हथेलीकी सतहमें डाटको पकड़ कर शीशी खोलनी चाहिए और वहीं डाटको पकड़े हुये ओषधिको गिलासमें उड़ेलना चाहिए। अन्तमें डाटको शीशी में लगानी चाहिये। इस विधिसे डाटको भूमि या मेज़ पर
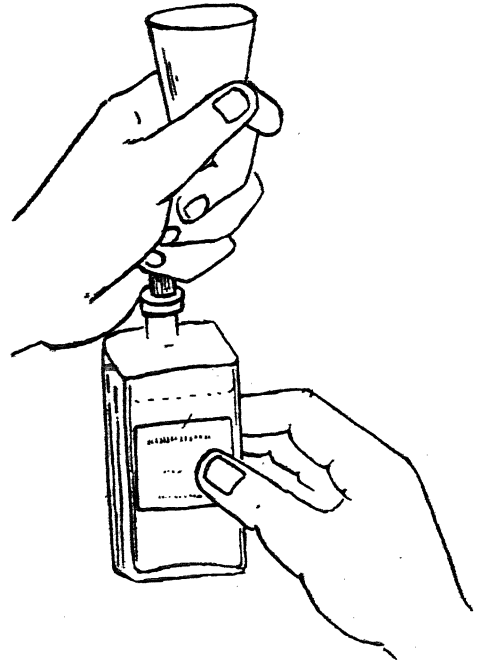
शीशीसे ओषधि निकालनेकी शुद्ध रीति

रखनेकी आवश्यकता नहीं पड़ती और वह गंदी नहीं होने पाती। यह भी ध्यान रक्खो कि शीशीकी चिप्पी गिलास की ओर न रह कर दाहिने हाथ की हथेली की ओर रहे, अन्यथा शीशीके मुँह पर लगी ओषधि की बूँद यदि बहेगी तो चिप्पी खराब हो जायगी या गीली होकर उखड़ जायगी। शीशीसे ओषधि निकालनेके पहले चिप्पी पर लगी सेवन-विधिको पढ़ लेना चाहिये। यदि ओषधि पिलानेका समय भूल या अन्य कारणसे छूट जाय तो दूसरे समय दुगुनी मात्रा कभी न देनी चाहिये। दवा पिलानेके बाद साफ़ पानीसे मुँह धो लेना चाहिये जिससे बुरा स्वाद या गन्ध मुँहमें न रह जाय। टिकिया या गोली निगलनेके लिये गोलीको जीभके पिछले भाग पर रख कर एक घूँट पानीके साथ निगलनेकी चेष्टा करनी चाहिए। तब गोली सरलतासे गलेके नीचे उतर जायगी। बहुत-सी गोलियाँ या टिकियाएँ ऐसी होती हैं कि उन्हें बिना चूर किये ही निगलना अच्छा होता है। इसलिए किसी गोलीको चूर करनेके पहले इस बातको देख लेना चाहिए कि गोलीको चूर करना उचित है या नहीं।

बच्चे दवा पीनेमें बहुत आपत्ति करते हैं और मुँह नहीं खोलते। ऐसी दशामें गाल दबानेसे वे मुँह खोल देते हैं। जरा-सा मुँह खुलने पर मुलायम चिकनी लकड़ी, या चाकू का बेंट, दाँतके बीच डाल देना चाहिये और चुटकीसे बच्चे की नाक दबा कर ओषधिको मुखमें डालनी चाहिये। बच्चा थोड़ा देर तक तो दवा मुँहमें लिये हुये दम रोके रहेगा या रोएगा, परन्तु अन्तमें नाक बन्द रहने से मुँह से स्वास लेगा। तब ओषधि पेटमें चली जायगी।

खुराककी मात्रा—यह रोगीकी आयु पर निर्भर है। इस पुस्तकमें दी गई खुराकको मात्रा सर्वत्र बड़े मनुष्योंके लिये है। १२से १८ वर्षकी अवस्था तक आधेसे पौन मात्रा और १८ से २१ वर्षकी अवस्था तक पौन मात्रा देनी चाहिये। १२ सालसे नीचेकी अवस्थाके बच्चोंकी खुराक इस भाँति निकालोः—बच्चेकी आयु सालमें पूछ कर उसमें १२ जोड़ दो और योगफलसे बच्चेकी आयुको भाग दो। भागफल ही उस आयुके लिये खुराककी मात्रा है। इस प्रकार ४ वर्षके बच्चेकी खुराक यह होगी :—

$$\frac{४}{४+१२} = \frac{४}{१६} = \frac{१}{४}$$

इसलिये पूरी खुराक की मात्रा का $\frac{१}{४}$ भाग इस बच्चे के लिये उचित मात्रा होगा।

आवश्यक सामान—घरमें नीचे लिखी चीज़ें साधारणतः रखनी चाहिये :—

कारबोलिक ऐसिड—१ आउंस। शरीर या कपड़े पर न पड़े। घाव कर देता है। कीटाणु-नाशक है।

क्विनैनकी टिकिया—५ ग्रेनकी २५। मलेरिया बुखार की दवा है।

गॉज़—(बोरिक या सादा) १ आउंस। इसे चौड़े मुँहके ढक्कनदार बरतनमें रक्खो। साफ़ चिमटीसे आवश्यकतानुसार निकालो। पट्टी बाँधनेमें गॉज़को लोशनमें भिगो कर घाव पर रक्खो और इस पर रुई रख कर पट्टी बाँधो।

ग्लिसरिन—४ आउंस।

चम्मच—चायकी चम्मच १ ड्रामकी नाप है। रोगीके खुले मुँहमें चम्मच डाल कर जीभ नीचे दबानेसे गलेकी परीक्षा आसानीसे हो सकती है। दाँत बैठ जाने पर बलपूर्वक मुँह खोलनेमें चम्मचकी हैण्डल उपयोगी होगी।

टिंक्चर आयोडीन—१ आउंस। कट जाने पर और खरोंच, घाव तथा सूजन पर टिंक्चर आयोडीन बहुत उपयोगी है। इसे सूखे चमड़े पर ही लगाना चाहिये। पानी मिलाकर इससे नासूर आदि भी धोना लाभकारी है। मचली आनेमें २ बूँद टिंक्चर आयोडीन १ चम्मच पानीमें आधे-आधे घण्टेपर पिलानेसे लाभ होगा। कुछ स्थानोंमें घेघा रोग बहुत पाया जाता है। वहाँके पानी पीनेसे यह रोग होता है। ऐसे स्थानमें रहने वालोंको चाहिये कि अपने पीनेके पानीमें २-४ बूँद टिंक्चर आयोडीन नित्य मिलाकर पीया करें। तब इस रोगसे वे बच जायँगे।

टिंक्चर बेनज़ोइन कम्पाउण्ड—१ आउंस। इसे फ्रायर्स बालसम भी कहते हैं। न्यूमोनिया आदि स्वास-रोगोंमें उबलते पानीमें इसे डालकर इसकी भाप मुँह और नाक द्वारा अन्दर खींची जाती है। कट जानेपर थोड़ी रुई इसमें

तर करके घावपर चिपका देनेसे घाव पकनेका डर नहीं रहता और खूनका भी बहना रुक जाता है।

टैनिक ऐसिड — १ आउंस। जलनेसे तथा विषके उपचारमें इस दवाकी बहुत आवश्यकता पड़ती है (उ०दे०)।

डस्टिंग पाउडर — ४ आउंस। बनानेका नुसख़ा अलग दिया है। गर्मीमें अँधौरी पर तथा हड्डी टूटने पर खपाची (स्प्लिंट) बाँधनेके पहले त्वचा पर लगाना चाहिये।

डूशकैन, १। डूश कैनके साथ रबरकी नली और मर्दानी तथा जनानी छुच्छी भी मिलती है। काममें लानेके पहले सब भागोंको उबलते पानीमें डालकर कीटाणुरहित करना आवश्यक है। इस यंत्रसे नाक, कान और नासूर भी आवश्यक दवाओंके घोलोंसे धोये जा सकते हैं। एनिमा देनेका काम भी लिया जा सकता है।

थर्मामीटर बढ़िया, १। बुखार नापनेके लिये थर्मामीटर को पहले किसी कीटाणु-नाशक घोलसे धो लो। अधिक गरम या उबलते पानीमें भूलसे भी न डालो। इसे काँखमें लगानेके बदले मुँहमें लगाना अच्छा है। बच्चोंके मुँहमें न लगाओ, अन्यथा दाँतसे दबा कर बच्चे इसे तोड़ देंगे। बच्चोंकी जाँघ या गुदामें इसे लगाओ। काँखके तापसे मुँहका ताप १ डिगरी अधिक होगा और मुँहके तापसे गुदाका ताप १ डिगरी अधिक होगा। थर्मामीटर १ मिनटसे कम न लगाओ, चाहे वह $\frac{1}{2}$ मिनट तकका ही क्यों न हो।

पट्टी—इस कामके लिये धुला हुआ पुराना कपड़ा बहुत बढ़िया है। कुछ पट्टियाँ लपेटी हुई तैयार रक्खो। पट्टीकी चौड़ाई आवश्यकतापर निर्भर है। ३ गज लम्बी और १ इंच, २ इंच, तथा ४ इंच चौड़ी पट्टियाँ साधारणतः उपयोगी होंगी।

पोटैसियम परमैंगनेट १ आउंस। इससे कीटाणुनाशक घोल बड़ी सरलतासे बनता है। १ आउंस पानीमें ४ ग्रेन डालो। इसे कांडी लोशन भी कहते हैं। कूएँमें डालनेसे कूएँके कीटाणु मर जाते हैं। डूशके लिये, घाव धोने, कुल्ला आदि करनेके लिये ऊपरके घोल (कांडी लोशन) के आठ चम्मचको सवा सेर कुनकुने पानीमें मिलाना चाहिये। विषके उपचारमें भी यह बहुत उपयोगी है। पोटैसियम परमैंगनेटमें ग्लिसरिन नहीं मिलाना चाहिये, क्योंकि आग पैदा होनेका डर रहता है। इस दवासे त्वचा तथा कपड़ेपर दाग पड़ जाते हैं।

फ़ीडिंग कप, १। रोगीको बिस्तरपर लेटे-लेटे ही इससे दूध तथा पानी बड़ी आसानीसे पिलाया जाता है। साफ़ रक्खो।

बेड पैन, १। रोगी चारपाईपर लेटे-लेटे ही दस्त और पेशाब इसमें आरामसे कर सकता है।

बोरिक ऐसिड, १ पाउंड। यह बहुत उपयोगी दवा है। डस्टिंग पाउडर, लोशन, मरहम आदिके रूपमें काम आता है।

मैंडल पेंट, १ आउंस। बनानेका तरीक़ा और उपयोग अलग देखो।

मैगनीसियम सलफ़ेट, १ पाउंड। इसे इपसम साल्ट भी कहते हैं। यह जुलाब है। बड़ोंके लिये १ से ४ चम्मच तक दो। सुबह उठकर पानीमें घोलकर पीना चाहिए।

रबड़की बोतल, १। इसमें गरम पानी भर कर आवश्यक स्थानपर सेंका जाता है। शरीर गरम रखनेके लिये भी काम आती है। पानी भरनेपर काग सावधानीसे लगाओ। तौलियेमें इसे लपेट कर काममें लाओ। बच्चों और बेहोश रोगियोंके लिये प्रयोग करते समय अवश्य ध्यान रक्खो कि पानी बहुत गरम न हो। थोड़ी देरपर जगह बदल दो। कभी-कभी खौलते या बहुत गरम पानीसे भरी बोतलसे सेंक करनेपर जल कर रोगीकी मृत्यु तक हो गई हैं।

रबड़की टोपी, १। तेज़ बुख़ारमें बरफ़ भर कर सरपर रक्खी जाती है। कपड़ा नहीं भीगता है।

रुई (डाक्टरी, सादा या बोरिक), १ पाउंड। गॉज़की भाँति इसे भी चौड़े मुँहके ढक्कनदार बरतनमें सफ़ाईसे रक्खो।

रेंड़ीका तेल, १ आउंस। यह हलका और अच्छा जुलाब है। बच्चोंके लिये १ चम्मच और बड़ोंके लिये ३-४ चम्मच ख़ुराक है। मरोड़के दर्द, आँव आदिमें लाभदायक है।

लिकर अमोनिया, १ आउंस। शीशेका अच्छा काग लगा कर रक्खो, नहीं तो अमोनिया जल्द उड़ जायगी और केवल पानी या अमोनियाका फीका घोल बच जायगा।

लिक्विड पैराफ़िन, ४ आउंस। हलका जुलाव है। २ से ८ चम्मच तक खुराक है। गर्भवती स्त्रियोंके लिये तथा पुराने कब्जमें बढ़िया है। बवासीरमें भी उपयुक्त है।

वेसलिन (साफ़, बिना ख़ुशबू वाला) १ आउंस। मरहम बनानेके काममें आता है।

साबुन बढ़िया, १ बट्टी। हाथ धोने तथा एनिमा बनानेके लिये।

सेफ्टी पिन, १ दर्जन। पेटकी पट्टी आदि बाँधनेके लिये।

सोडा बाईकारबोनेट, १ आउंस। यह दवा बहुत कामकी है। बदहज़मी, खट्टी डकार और पेटकी जलनमें १ चम्मच सोडा बाइकारबोनेट थोड़े पानीमें घोलकर पीनेसे शीघ्र आराम होगा।

हाइड्रोजन परऑक्साइड, ४ आउंस। घाव पर यदि पट्टी चपक गयी हो तो इसके लगानेसे बिना कष्टके छूट जायगी।—उमाशंकर प्रसाद

औषध—औषध (या ओषधियाँ) वे पदार्थ हैं जिनसे शरीरको रोग पर विजय पानेमें, या अपनी साधारण कार्य प्रणालीके निभानेमें, सहायता मिलती है। कुछ लोग कहते हैं कि औषधोंका प्रयोग होना ही नहीं चाहिए, प्रकृति स्वयं सब रोगोंका दमन कर सकती है। परन्तु निष्पक्ष रूपसे देखने पर तुरन्त पता चलता है कि कई औषध ऐसे हैं कि उनसे मनुष्य जातिका बड़ा उपकार होता रहा है और हो रहा है। अवश्य ही, स्वस्थ मनुष्यको मनमानी रीतिसे औषधों या मादक पदार्थों आदिका सेवन हानिकर सिद्ध हो सकता है। परन्तु कई अवस्थाएँ ऐसी होती हैं कि उचित समय पर उचित औषधसे अत्यन्त लाभ होता है और मनुष्य बहुत पीड़ा, कष्ट या दुर्बलतासे बच जाता है।

औषधोंकी संख्या बड़ी है। कई औषध तो अत्यन्त प्राचीन समयसे चले आ रहे हैं। आधुनिक विज्ञान ने नवीन रासायनिक विधियों द्वारा अनेक नवीन औषधोंके बनानेमें सफलता प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त प्राचीन औषधोंसे मूलतत्व निकाल कर उनको अधिक शुद्ध रूपमें चिकित्सकोंके हाथमें रख दिया है और अनेक परीक्षणों द्वारा हम अब औषधोंका प्रभाव अधिक सूक्ष्म रीतिसे जानते हैं। अब बहुतसे ऐसे रोगोंकी अचूक चिकित्सा ज्ञात है जो कुछ ही वर्ष पहले अपने वशके बाहर थे। आज भी कई रोग हैं जिनका ठीक उपचार नहीं ज्ञात है—इतना तो इस पुस्तकके कुछ लेखोंसे पता चल ही गया होगा—परन्तु ऐसे रोगों पर अनुसंधान हो रहा है और आशा की जाती है कि उन पर एक दिन विजय मिलेगी।

औषध कई प्रकार हमें मिलते हैं। कुछ खनिज पदार्थों से, कुछ वनस्पतियोंसे और कुछ प्राणियोंसे। कई औषध अब रासायनिक प्रयोगशालाओंमें कृत्रिम रीतिसे बनाये जाते हैं जो पहले वनस्पतियों या प्राणियोंसे ही मिल सकते थे। ये उतने ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं जितने असली औषध और उनसे कहीं अधिक सस्तेमें बन जाते हैं।

डिजिटैलिस, कोलचिकम, बेलाडोना, एट्रोपिन, क्रियोज़ोट, हायोसीन, रेंडीका तेल, जैलप, अफीम, रुबार्ब, क्विनीन (कुनैन), तेल, मोम, आदि ये सभी दवाएँ पौधोंसे ही मिलती हैं। आयोडीन, ऐंटिमनी, कैलसियम, गंधक, चाँदी, जस्ता, ताँबा, पारा, पोटैसियम, फ़ासफ़ोरस, मैगनीसियम, राँगा, रेडियम, लोहा, संखिया, सीसा, सोडियम, सोना आदिके यौगिक सब खनिज पदार्थोंसे मिलते हैं। पत्थरके कोयलेसे कार्बोलिक ऐसिड, ऐनिलीन, और ऐनिलीन से बने सैकड़ों औषध मिलते हैं। पैराफिन भूमिके भीतर से मिट्टीके तेलके साथ प्राप्त होता है। विविध जंतुओंकी ग्रंथियोंसे अब हमें अनेक बहुमूल्य औषध मिलते हैं, उदाहरणतः मस्तिष्ककी जड़के पास स्थित पिटुइटरी नामक ग्रंथिसे पिटुइटरिन नामक औषध निकाला जाता है जो हृदयके रुक जाने पर सुई द्वारा डाल दिया जाता है और एक ही दो मिनटमें अपना कार्य कर दिखाता है। इसी प्रकार थाइरॉयड ग्रंथिसे निकला औषध मूर्ख तथा बौने बच्चोंको बुद्धिमान तथा पूर्ण वृद्धि वाला बना देता है। इनसुलिन भेंड़ और बैलके क्लोमसे निकाला जाता है और उससे डायाबिटीज़ नामक रोगको अब वशमें कर लिया गया है। इससे डायाबिटीज़ अच्छा तो नहीं होता, परन्तु इनसुलिन बराबर देते रहनेसे कोई कष्ट या उपद्रव नहीं होने पाता।

वैकसिन (vaccine) और सिरम (serum)

वे औषध हैं जो रक्तमें मिल कर शरीरको रोगग्रसित होनेसे बचाते हैं।

वैकसिन वे तरल पदार्थ हैं जिनमें मरे हुए जीवाणु रहते हैं। सुई द्वारा किसी व्यक्तिके शरीरमें इनको पहुँचा देनेसे उस व्यक्तिके शरीरमें प्रतिक्रिया स्वरूप ऐसा पदार्थ (प्रतिविष) आप-से-आप उत्पन्न हो जाता है कि शरीर फिर उस प्रकारके जीवाणुओंके आक्रमणसे सफलतापूर्वक अपनी रक्षा कर सकता है। टाइफ़ॉयडका वैकसिन इसी जातिका है।

सिरम रक्तरसको कहते हैं। जब किसी प्राणीके रक्तको स्वच्छ बरतनमें स्थिर स्थानमें रख दिया जाता है तो रक्त जम जाता है। धीरे-धीरे जमा हुआ भाग नीचे बैठ जाता है और ऊपर स्वच्छ तरल पदार्थ रह जाता है जो कुछ-कुछ पीला रहता है। यदि रक्त ऐसे प्राणीसे लिया जाय जिसमें किसी विशेष रोगके उत्पादक जीवाणुओंको, या किसी विष को, दमन करनेकी क्षमता हो तो यह गुण उस रक्त रसमें भी रहेगा और सुई द्वारा इस सिरमको किसी व्यक्तिके शरीरमें प्रविष्ट करानेसे उस व्यक्तिमें भी उस रोग या विषको दमन करनेकी क्षमता आ जायगी। उदाहरणतः, यदि किसी घोड़ेके शरीरमें फनियर सर्पका विष यथेष्ट मात्रामें सुई द्वारा दे दिया जाय तो वह मर जायगा ; परन्तु यदि यही विष उसे बहुत थोड़ी-थोड़ी मात्रामें प्रतिदिन दिया जाय तो घोड़ा इस विषको सहनकर लेगा। यदि अब हम विषकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ा दी जाय तो कुछ समयमें वह इतना विष सह लेगा जितनेसे पहले उसकी मृत्यु तुरन्त हो जाती, ठीक उसी प्रकार जैसे अफीमची अफीमको सह लेता है। अब यदि इस घोड़ेका रक्त लेकर उसका रक्तरस अलग कर लिया जाय और फनियर सर्पसे काटे गये किसी व्यक्तिके शरीरमें तुरन्त सुई द्वारा इस रक्तरसको डाल दिया जाय तो देखा जाता है कि वह व्यक्ति बच जाता है। स्पष्ट है कि सर्पविषको सहन करने वाले घोड़ेके रक्तरसमें कोई विषनाशक पदार्थ रहता है जो मनुष्यके शरीरमें पहुँच कर सर्पके विषको मार डालता है। सिरमसे चिकित्सा करनेका यही सिद्धान्त है। ऊपर सर्पविषका उदाहरण लिया गया है, परन्तु कुछ रोगोंके लिए भी इसी रीतिसे सिरम तैयार किये जाते हैं। दुःखकी बात यही है कि इने-गिने ही रोग ऐसे हैं जिनको सिरमके इनजेक्शनसे अच्छा किया जा सकता है।

सिरमको ऐंटीटॉक्सिन (= विषमारक, anti-toxin) भी कहते हैं।

औषधोंसे विस्फोट—कुछ औषधोंसे कुछ व्यक्तियोंके शरीरमें दाने (विस्फोट) निकल आते हैं। परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि केवल किसी-किसीमें हो ऐसा होता है। डाक्टर लोग कहते हैं कि ये व्यक्ति अतिचैतन्य हैं और इस कारण उनमें दाने निकलते हैं। यदि डाक्टरकी चिकित्सा होती रहेगी तो वह स्वयं इसका ध्यान रक्खेगा, परन्तु कुछ साधारण औषध ऐसे हैं कि उनसे किसी-किसीमें दाने निकल सकते हैं। सम्भवतः कई सौ या कई हज़ार व्यक्तियों में एकके ही ये दाने निकलते हों, परन्तु यह सभीको जानना चाहिए कि ऐसा हो सकता है। कभी-कभी लोग अनजान में ऐसे क्रीम, लोशन, पाचक, या टॉनिक आदिका सेवन करते रहते हैं जिनके कारण ये दाने निकलते हैं और डाक्टरके पूछने पर बता नहीं पाते हैं कि वे किस औषधका सेवन कर रहे हैं, क्योंकि वे इनको औषधोंमें गिनते ही नहीं। ऐंटीफ़ेबरिन, ऐंटीपाइरीन, संखिया और संखियासे बने औषध (जैसे सैलवरसन), बार्बिटोन, बेलाडोना, बोरिक ऐसिड, ब्रोमाइड, क्लोरोफार्म, अरगट, यूकालिप्टस, आयोडाइड, पारा और इसके क्षारोंसे बने औषध, अफीम, फेनाल्फ़थलीन, क्विनीन (कुनैन), रूबार्ब, सैन्टोनिन, सैलिसिलिक ऐसिड, सैलिसिलेट, सलफोनल, वेरोनल, और तारपीन, इन सबसे अतिचैतन्य व्यक्तियोंमें दाने निकल सकते हैं।

यदि दाने निकल आयें तो उत्पादक औषधका सेवन बन्द कर देना चाहिए। जल खूब पीना चाहिए। आवश्यकता प्रतीत हो तो रेचक (जुलाब) भी लेना चाहिए।

देशी औषध—यह पुस्तक ऐलोपैथिक आधार पर लिखी गयी है और इसीसे यहाँ उन औषधोंकी चर्चा नहीं की गयी है जो आयुर्वेदिक पद्धतिमें उपयुक्त होते हैं। परन्तु आयुर्वेदिक पद्धति और ऐलोपैथीमें कोई मौलिक अन्तर नहीं है (उदाहरणतः जैसे होमियोपैथी और ऐलोपैथीमें है)। कई रोगोंमें आयुर्वेदिक और ऐलोपैथिक दवाएँ एक हैं, अंतर यही है कि वैद्य प्राकृतिक जड़ी-बूटियोंका काढ़ा देगा और डाक्टर उन्हीं जड़ी-बूटियोंसे

निकाले सतको देगा। संभव है सतकी शुद्धता और सच्चे नाप-तौलको काढ़ा न पा सके, परन्तु जहाँ सत न मिल सके वहाँ काढ़ा या चूर्ण आदिसे भी काम चलाया जा सकता है। इसीलिए इस पुस्तकमें स्थान-स्थान पर देशी दवाओंकी चर्चा भी कर दी गई है।

कँखौरी—काँखके फोड़ेको कँखौरी या कँखवारी कहते हैं। इनके होनेके कारण भी वे ही हैं जो अन्य फोड़ोंके हैं। इनके अतिरिक्त छुरेसे काँखके बालको मुँड़वाने से भी बहुधा रोगका संचार हो जाता है। बहुत-से लोग काँखके बालको कभी मुँड़वाते ही नहीं, और यही अधिक अच्छा है। कँखौरीका उपचार भी साधारण फोड़ों ही की तरह है। देखो 'फोड़ा'।

कंठ (throat)—आहार-मार्गके उस भागको कंठ कहते हैं जो नाक मुख तथा स्वर-यंत्रके पीछे है। यह मांस तथा श्लैष्मिक-कलासे बनो नलिका है जिसकी लम्बाई प्रायः ५ इंच तथा सबसे चौड़े भाग की चौड़ाई १½ इंच है। कंठको तीन भागोंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) कंठ का वह भाग जो नाकके पीछे है—नासिका भाग।

(२) वह भाग जो मुखके पीछे है—मुख भाग।

(३) वह भाग जो स्वर-यंत्रके पीछे है—स्वर-यंत्र भाग।

नासिका भाग—यह तालुके ऊपर का भाग है जिसका रास्ता नाकके दोनों छेदोंसे मिला है। निवाला (कौर) घोंटते समय तालू ऊपर उठ कर इस छिद्रको बन्द कर देता है जिससे भोजन नाकसे बाहर नहीं निकल पड़ता। इसी भागमें प्रत्येक बगलमें कानसे एक नलिका आकर खुलती है; इसे कण्ठ-कर्ण-नाली कहते हैं। जुकाम हो जाने पर कीटाणुओंके, इन नलिकाओंके भीतरसे कानमें पहुँच कर, कानमें प्रदाह करनेका बहुत डर रहता है। पिछले दीवार पर कुछ लसिका-तन्तु होती है जिसे ऐडिनॉयड कहते हैं। यह बचपनमें कभी-कभी अधिक बढ़ी रहती है और नाक द्वारा श्वास लेनेमें रुकावट डालती है। तब बच्चे मुँहसे साँस लेते हैं। ऐसी दशामें बच्चोंका बढ़ना भी रुक जाता है; प्रायः साथ ही बुद्धि भी प्रखर नहीं होती। इस दशामें शल्यशास्त्रसे इनको काट कर निकालना पड़ता है। (देखो ऐडिनॉयड)

मुख भागको मुँह फैलाने पर देखा जा सकता है। यदि जीभ दबाई जाय तो तालु तथा कौआ बीचमें दिखलाई देंगे। तालुकी दोनों ओर दो मेहराब दिखाई देंगे जिनके बीचमें, दोनों ओर, गिल्टीके आकारकी लसिका-तन्तुओंसे बनी ग्रंथियाँ मिलेंगी। इन्हें टॉनसिल (tonsils) कहते हैं। इनमें यदि बार-बार प्रदाह हो या पीब पड़ जाय तो इन्हें काट कर निकाल दिया जाता है।

कण्ठ का तीसरा भाग (स्वर-यन्त्र भाग) नीचे अन्न-प्रणालीसे मिल जाता है। —उमाशंकर प्रसाद

कंठप्रदाह (pharyngitis)—कंठप्रदाह दो प्रकारके होते हैं। (१) तीव्र, तथा (२) जीर्ण।

तीव्र कंठप्रदाह बहुधा ठंढ लगनेसे या दूषित वायुमें रहनेसे या चेचक, डिफ्थीरिया आदि रोगोंसे होता है। कभी-कभी बच्चे अनजानमें बहुत गरम दूध, पानी आदि, या तेजाब आदि पी लेते हैं। तब भी कंठप्रदाह हो जाता है। इस दशामें कंठकी श्लैष्मिक कला सूज कर लाल हो जाती है और जगह-जगह पीब बन जाता है। कंठमें दर्द होता है और कुछ निगलना कठिन हो जाता है। इस दशाके उपचारमें बुखार उतारने और कब्ज दूर करनेके साथ ही कुनकुने कीटाणुनाशक घोलसे गरारा (gargle) करना चाहिये। कभी-कभी बर्फ चूसनेसे बहुत आराम मिलता है। गरम पानीसे गरारा करनेसे गलेकी सेंक भी हो जाती है। १ पाइण्ट उबलते पानीमें १ चम्मच टिंक्चर बेन्जोइन कम्पाउण्ड डाल कर उसका बफारा मुँहमें लेनेसे भी लाभ होता है।

जीर्ण कण्ठप्रदाह—बार-बार तीव्र प्रदाह होनेके बाद रोग जीर्ण हो जाता है। बहुत अधिक तम्बाकू, सिगरेट, बीड़ी, आदि पीना, गर्द भरी हवामें रहना, बहुत शराब पीना, चरपरा मसाला खाना, बहुत चिल्लाना, आदि कंठ-प्रदाहके मुख्य कारण हैं। गवैयों, लेक्चर देने वालों तथा फेरी लगा कर बेंचने वालोंका गला बहुधा इसी कारण बैठ

जाता है। कुछ विशेष कारण भी हैं जैसे उपदंश रोग; यक्ष्मा आदि।

चिकित्सा करते समय रोगके कारणका पता लगा कर उसे दूर करनेका प्रयत्न करना आवश्यक है। साथ ही आरामके लिये गरम गरारा करना चाहिये तथा नाकमें फुरहरीसे दवा लगानी चाहिये। बराबर भागमें नमक, खानेका सोडा (sodium bicarbonate) तथा सुहागा (borax) मिला कर इस चूर्णको आधे चायके चम्मच भर लेकर ६ औंस कुनकुने पानीमें घोल बना लें। इसे नाकमें सुड़कें तथा मुँहसे गरारा करें। गलेमें मैण्डेल पेंट लगावें। सिल्वर नाइट्रेटके २% से ५% घोल को भी कभी-कभी कंठमें फुरहरीसे लगा लेना हितकर है।

—उमाशंकर प्रसाद

कंठमाला (adenitis)—गरदनकी ग्रंथियों के सूज आने को कंठमाला कहते हैं। बहुधा यह क्षय रोगके कारण उत्पन्न होता है। परन्तु यह अस्वस्थ गल-ग्रंथियों (tonsils) के कारण भी हो सकता है। देखो 'क्षय'।

कंधा (shoulder)—उस भागको जहाँ बाँह और धड़ मिलते हैं कंधा कहते हैं। कंधेकी संधि आसानी से उखड़ जा सकती है। परन्तु उखड़ी हुई संधि आसानी से बैठाई भी जा सकती है। देखो आकस्मिक चिकित्सा। कंधेकी बनावटके लिये देखो 'शरीर-रचना'।

कंप, कंपन या कँपकँपी (tremor)—बार-बार नियमानुसार शरीरके किसी अंगके अपने-आप हिलनेको कंप, कंपन या कँपकँपी कहते हैं। कारण यह है कि मांसपेशियाँ पारी-पारीसे अपने आप संकुचित और शिथिल होने लगती हैं और इसीसे अंग काँपने लगता है। यदि यह संचालन नियमानुसार होनेके बदले अनियमित (अर्थात् रह-रह कर, या झटकेके साथ) हो तो उसको कंप (tremor) के बदले आक्षेप (convulsion) कहते हैं और यदि वह जाड़ाके साथ आये जैसा मैलेरिया (जूड़ी) ज्वरोंके आरम्भमें होता है तो उसको सिहरन (rigor) कहते हैं। सिहरनमें अंग इतने जोरसे हिलते हैं कि चारपाई हिलने लग सकती है। दाँत भी कटकटाने लगते हैं। आक्षेपमें भी अंग बहुत जोरसे चलते हैं। आक्षेप का साधारण अर्थ है फेंकना और आक्षेपमें रोगी हाथ-पैर झटकेसे फेंकता हुआ जान पड़ता है। आक्षेप, सिहरन और कंप तीनोंमें अंगोंकी गति रोगीके वशमें नहीं रहती। छटपटानेमें अंग रोगीके वशमें रहता है। वह चाहे तो अंगको रोक सकता है।

कंपन दो तरहका हो सकता है, सूक्ष्म और स्थूल। सूक्ष्म कंपनमें हाथ-पैर हिलते हुये नहीं दिखलाई पड़ते, परन्तु यदि उस व्यक्तिसे कहा जाय कि हाथोंको अपने सामने तान दो और मुट्ठी खोल कर अँगुलियाँ छितरा दो तो हाथ काँपते हुये दिखलाई पड़ेंगे। सूक्ष्म कंपन चक्षु-प्रलंब (exophthalmic goitre), मदिरापान, विषपान (विशेषतया पाराके पारोंके खा जाने पर), हिस्टीरिया और क्रोध आदि आवेगोंमें होता है। स्थूल कंपन सुगमतासे दिखलाई पड़ता है। आकंपी पक्षाघात या लकवा (paralysis agitans), निद्रालुता रोग (स्लीपिंग सिकनेस) की अंतिम अवस्था, स्नायुओंके कुछ रोगों और वृद्धावस्थामें स्थूल कंपन दिखलाई पड़ता है।

कचक (bruise)—कचक उस चोटको कहते हैं जो अंगके दब जाने या कुचल जानेसे लगे। किसी धारदार वस्तुकी दाबसे त्वचा और मांसके दो भागोंमें अलग हो जानेको कटना कहते हैं। कटने और कचकके उपचारके लिये देखो 'आकस्मिक चिकित्सा'।

कटिप्रदेश (lumber region)—कमर के उस भागको जो पीठकी ओर पड़ता है कटिप्रदेश कहते हैं। इस स्थानमें अन्तिम ५ कशेरुकाएँ होती हैं जो बहुत ही मजबूत और बड़ी होती हैं, क्योंकि शरीरका बोझ इन्हें सबसे अधिक उठाना पड़ता है। कशेरुकाओंके चारों ओर बन्धिनियाँ तथा मांस-पेशियाँ होती हैं। इस भागमें सामने वृक्क (गुरदे) तथा अँतड़ियोंके कुछ भाग होते हैं। कशेरुकाकी सुषुम्ना नलीसे रस परीक्षाके लिए निकालनेके लिये इसी स्थानमें विशेष सूई डाली जाती है। जाँघ, मूत्राशय आदिके आपरेशनमें साधारण व्यक्तिको बेहोश न करके

कुछ ओषधियाँ कशेरुकाकी नलीमें डाल कर उक्त स्थानोंको संज्ञाशून्य किया जाता है। विशेष ओषधियाँ भी इसी प्रकार कशेरुका नलीमें डाली जाती हैं।

— उमाशंकर प्रसाद।

कटिशूल (lumbago)—कटिशूलमें कटि-प्रदेशमें बहुत पीड़ा होती है और अधिक झुकना, या पीठ सीधा करना कठिन हो जाता है। इसलिये रोगकी तीव्र अवस्थामें रोगी कमर झुकाये पड़ा रहता है। एक बार यह रोग जिसे होता है उसे बहुधा बार-बार होता रहता है। ठंढ या शीतसे रोग उभड़ पड़ता है। चोटसे, या अधिक जोर (चटक) पड़ जानेसे यह रोग हो सकता है, परन्तु साधारणतः यह आमवातके कारण होता है (देखो आमवात)।

चिकित्सा—रोगी चारपाई पर पड़ा रहे। उसे गरम रक्खा जाय। पीड़ाके स्थानको सेंका जाय। कड़ुआ तेल और ऑयल ऑफ विंटरग्रीन (oil of winter-green) या कड़ुआ तेल और कपूरकी मालिशसे बहुत लाभ होता है (एक छटाँक तेलमें एक या आधा तोला विंटरग्रीन या कपूर रहे)। फोमेंटेशन (गीला सेंक) लाभ-दायक है। कब्ज़ हो तो रेचक लेना चाहिये। ऐसपिरिनसे बहुत आराम मिलता है परन्तु अपने मनसे बहुत ऐस-पिरिन खाना अच्छा नहीं है।

कठुआना, धमनी का (arterio sclerosis)—धमनियोंके जीर्ण रोगोंमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तथा अधिक व्यक्तियोंको होने वाला रोग धमनियोंका कठु-आना है। इस रोगमें, कुछ तो प्रदाहके कारण और कुछ जीर्ण-शीर्ण हो जानेके कारण, धमनीकी दीवारोंकी बनावटमें अन्तर आ जाता है, जिससे धमनियोंकी लचक चली जाती है तथा धमनियोंका भीतरी व्यास भी छोटा हो जाता है। इस रोगके मुख्य कारणका पता नहीं है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि बहुत कुछ इस बात पर निर्भर है कि अपने माता-पितासे उस व्यक्तिको कैसा शरीर मिला है। किसीकी धमनियाँ जन्मसे ही दुर्बल होती हैं, किसीकी बहुत बलिष्ठ। जिनके पूर्वजोंको यह रोग हो चुका हो उन्हें आरम्भसे ही बहुत संयमसे रहना चाहिये। साधारणतः यह रोग मध्यावस्थामें प्रारम्भ होता है। वृद्धावस्थामें तो प्रायः सभी लोगोंमें यह दशा मिलती है, इसलिये इस दशाको वृद्धावस्थाकी प्राकृतिक दशा भी कह सकते हैं। बहुत अधिक शरीरिक परिश्रम, बहुत काल तक अविरल परिश्रम तथा अनियमित भोजनसे यह दशा बहुधा रोगके रूपमें अधेड़ोंमें दिखलाई पड़ती है। कम अवस्थाके व्यक्तियोंमें भी कभी-कभी यह रोग पाया जाता है। ऐसे लोगोंमें इसका कारण साधारणतः मदिरा-सेवन, उपदंश रोग, गठिया या शरीरमें सीसा धातुका अधिक मात्रामें आ जाना होता है। यह रोग या तो धमनीके कुछ ही भागोंमें हो जाता है (स्थानीय रोग) या धमनीकी दीवारमें दूर तक फैला रहता है।

इस रोगमें हृदयका आवरण भी बहुधा कड़ा हो जाता है और रोगके कई लक्षण इस कारण उत्पन्न होते हैं। रक्त-चाप (ब्लड प्रेशर, blood pressure) बढ़ जाता है और गुर्दे (वृक्क) में रोग हो जाता है। धमनियोंके कठु-आनेमें बहुधा बार-बार मूत्र-त्यागकी इच्छा होती है यद्यपि मूत्रकी मात्रा नहीं बढ़ती। बहुधा अजीर्ण और अतिसार रहता है। सरमें पीड़ा और चक्कर, और कानोंमें शब्दकी शिकायत रहती है। साँस जल्द फूलता है। चलने पर टाँगोंमें शीघ्र पीड़ा होती है। आँखोंकी रोशनी (अर्थात् देखनेकी शक्ति) भी कम हो जाती है।

लक्षण—जब यह रोग धमनीकी दीवारोंमें कुछ दूर तक फैलता है तो धमनियोंका भीतरी व्यास धीरे-धीरे छोटा होता जाता है। कभी-कभी तो धमनी बिल्कुल बन्द हो जाती है। परन्तु ऐसी अवस्था बहुत छोटी धमनियोंमें ही पायी जाती है। कभी-कभी कैलसियमके लवण भी धमनियोंके भीतर जम जाते हैं। धमनियोंके भीतरी व्यासके छोटा हो जानेसे अंगमें रुधिरका पूरा संचार नहीं हो पाता और इससे कुछ काल बाद अंगमें दुर्बलता आने लगती है, अंग ठंढा पड़ जाता है, उसमें सूई चुभने जैसी सनसनाहट होती है, शून्य हो जाता है, फड़कने लगता है तथा मांसपेशियोंमें अकड़न आने लगती है। कभी-कभी हाथ-पैरमें एकाएक दर्द पैदा हो जाता है और व्यक्ति लँगड़ाने लगता है।

स्थानीय रोग प्रायः बृहत धमनीमें पाया जाता है।

यहाँ श्लैष्मिक कलाके वसामय हो जानेके बाद कैल सियमके लवण (calcium salts) जम जाते हैं। इस रोगमें चर्मके पासकी धमनियाँ कड़ी सूतकी डोरियोंकी भाँति जान पड़ती है जो सीधी न होकर त्वचाके नीचे बहुत टेढ़ी-मेढ़ी दिखलाई देती हैं। साधारण धमनियाँ एक्सरश्मियोंसे नहीं दिखाई देती हैं, परन्तु इस रोगमें कैलसियमके जम जानेसे वे भली भांति दिखलाई देती हैं। कैलसियम जमे स्थानों पर धमनियोंके भीतर कड़े-कड़े उभरे भाग उत्पन्न हो जाते हैं। कुछ काल बाद उभरे भाग कट कर अलग हो जाते हैं, और धमनीकी दीवारमें इन स्थानों पर घाव (ulcer) हो जाते हैं। इन्हीं स्थानों पर कुछ काल बाद रक्तके दबावसे और धमनीकी दीवारोंके कमजोर होनेके कारण दीवार बाहर फूलने लगती है और अन्तमें फट भी जाती है। जब मस्तिष्कमें धमनी फटती है तो शरीरमें लकवा मार देता है और रोगी तुरन्त मर भी जा सकता है। धमनियोंके कठुआनेका रोग पुरुषोंमें स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक भयंकर रूपमें तथा अधिक संख्यामें पाया जाता है।

चिकित्सा—इस रोगकी चिकित्सा बहुत कठिन है, इसलिये रोग उत्पन्न होनेके पहले ही उसे रोकनेका प्रयत्न करना उचित है। सादा भोजन, और नियमित जीवन; तम्बाकू, गाँजा, भाँग, मांस आदिसे परहेज, ये बचनेके कुछ साधन हैं। हलका व्यायाम प्रतिदिन नियमित रूपसे करना चाहिये। कब्ज (कोष्ठबद्धता) दूर करना चाहिये। आवश्यकता हो तो प्रतिदिन मृदु रेचक लवणका सेवन करना चाहिये और सप्ताहमें एक बार कोई तीव्र रेचक लेना चाहिए। मूत्रकी जाँच कराते रहनेसे पता चलता रहता है कि रोग कहाँ तक बढ़ चुका है। रक्तचापकी भी परीक्षा होनी चाहिये। रोगके अधिक बढ़ जाने पर व्यक्तिको दुनियाके झंझटोंसे दूर रहना चाहिये। कभी अधिक चिन्ता या क्रोध होनेसे मस्तिष्ककी धमनीके फटने और मृत्यु होनेका विशेष भय रहता है।

—उमाशंकर प्रसाद।

कठुआना, तंतुओंका (fibrosis)—शरीरके सौत्रिक तन्तुओंके जीर्ण प्रदाह रोगको मोटे तौर पर कठुआना कहते हैं। वहाँका मांस चिमड़ा और चमड़ेकी तरह कड़ा हो जाता है। शरीरके भिन्न-भिन्न सौत्रिक तन्तुओं के कठुआनेको विशेष नामोंसे सम्बोधित करते हैं। संधिबंधनियों (ligaments), कंडरों (tendons) अस्थ्यावरण (periosteum) मांस-पेशियोंका आवरण (muscle sheath) तथा गुर्दा (वृक्क) आदि अंगोंके सौत्रिक तंतुओंमें सूजन आनेसे दर्द तथा विशेष लक्षण उत्पन्न होते हैं।

शरीरके किसी भागमें कीटाणुओंके छिपे रहने तथा उनसे उत्पन्न हुये विषोंके शरीरमें प्रविष्ट होने पर, जैसे सड़े दाँत तथा पायरियामें, स्त्रियोंके प्रदर-रोगमें, या सुजाक आदिमें विशेष अंगोंमें प्रदाह होता है। ठंढ लगना, सोड़ या पानीमें भीग जाना, अधिक परिश्रम, कुछ विशेष रोग जिनमें शरीरमें अनुचित मात्रामें विशेष अप्राकृतिक वस्तुएँ पैदा होती हैं जैसे मधु-प्रमेहमें, तथा अनुचित भोजन आदि इस रोगके कारण हो सकते हैं। रोग निवारणके लिये पहले तो रोगके कारणको दूर करना चाहिये तथा साथ ही कष्ट दूर करनेके लिये ओषधियाँ देनी चाहिये। साधारणतः गरम सेंक, बिजलीसे सेंक, मालिश (विशेष कर कडू तेल और ऑयल ऑफ़ विंटरग्रीन लगाकर, ऊपर वाला लेख देखो) तथा ऐसपिरिन और सोडियम सैलिसिलेट खानेसे आराम होगा। बहुत दर्द होने पर अफीमकी विशेष ओषधियाँ भी कुछ समयके लिये देनी पड़ती है। —उमाशंकर प्रसाद

कनडेंस्ड मिल्क (condensed milk)—कनडेंस्ड मिल्क या डिब्बाबन्द दूधके गुण-अवगुण 'आहार' शीर्षक लेखमें दिये जा चुके हैं और वहाँ बतलाया जा चुका है कि ताजा दूधकी तुलनामें इसमें कई एक अवगुण हैं। कनडेंस्ड मिल्क वहींके लिए अच्छा है जहाँ ताजा दूध मिल ही नहीं सकता, या इतना मँहगा मिलता है कि खरीदा नहीं जा सकता।

क़द (height)—किसी व्यक्तिकी क़द (डील या ऊँचाई) पहलेसे ही बहुत-कुछ माता-पिताके शरीर-संगठनसे निश्चित हो जाती है, परन्तु यह अकाट्य नियम नहीं है कि लम्बे माता-पिताकी सन्तान लम्बी ही हो, या नाटे माता-पिताकी सन्तान नाटी हो। जन्मके समय बच्चे की लम्बाई १६-१८ इंचकी होती है और एक साल तक

बच्चा शीघ्र बढ़ता है। उसके बाद प्रति वर्ष बच्चा दो से चार इंच तक बढ़ता है। बारहसे चौदह वर्षकी आयुमें लड़कियाँ, जितना बढ़ना रहता है उतना प्रायः बढ़ जाती हैं। उसके बाद लंबाई केवल दो-तीन इंच ही बढ़ पाती है। बीस वर्षके बाद लड़कियोंकी लम्बाई नहीं बढ़ती। लड़के सोलह वर्षसे अट्ठारह वर्षतक बढ़ते रहते हैं। उसके पश्चात् वृद्धिका वेग बहुत कम हो जाता है और तबसे लेकर बाइस-तेइस वर्षकी आयु तकमें लम्बाई केवल लगभग दो इंच बढ़ पाती है।

जन्मसिद्ध गुणोंके अतिरिक्त कद दो बातों पर विशेष रूपसे निर्भर है, उचित आहार और पिटुइटरी आदि ग्रंथियोंका ठीकसे काम करते रहना। यदि पिटुइटरी ग्रंथि ठीकसे काम न करे तो लड़का या तो बौना हो जायगा या दैत्य (अर्थात् बहुत लम्बा)। अब पता चल गया है कि बेचारे इन बच्चोंके लिये क्या किया जाय कि वे नियमित रूपसे बढ़ें। पिटुइटरी ग्रन्थि यदि स्वस्थ हो तो डील आहार पर निर्भर है। आहार समतुलित हो और उसमें सब विटैमिनोंकी मात्राएँ यथेष्ट हों (देखो 'आहार')। उचित व्यायामसे भी सहायता मिलती है। यदि बच्चे बहुत शीघ्र बढ़ रहे हों तो एक बात पर विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता है, वह यह कि ऐसे बच्चोंको कठिन परिश्रम न करना पड़े, अन्यथा हड्डियाँ सदाके लिये टेढ़ी हो जा सकती हैं। (इस सम्बन्धमें मस्तिष्क, ग्रंथियाँ, और बौना शीर्षक लेखोंको भी देखो।)

कपूर (camphor)—कपूर (संस्कृत कर्पूर) एक श्वेत रवेदार पदार्थ है जो कुछ विशेष वृक्षोंसे प्राप्त होता है। त्वचाके लिये कपूर उत्तेजक है और इसलिये यह मालिशके तेलोंमें पड़ता है। जीर्ण आमवात (रूमैटिज़्म) तथा इसी तरहकी अन्य शारीरिक पीड़ाओंमें उस अंग पर, और बच्चोंके खांसी आदिमें छाती पर, मालिश करनेके लिये कपूर काममें लाया जाता है। कई रोगोंमें कपूर खानेको भी दिया जाता है। कपूरसे दन्त-मंजन भी बनते हैं।

अधिक मात्रामें कपूर भी विषका काम करता है। इससे प्रबल उत्तेजना, चक्कर, लड़खड़ाहट, मादकता आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। यदि बहुत ही अधिक मात्रामें खाया जाय तो नाड़ी मन्द पड़ जा सकती है, पेटमें मरोड़, चित्तभ्रांति (delirium)*, मूर्च्छा, प्रबल आक्षेप और अंतमें अवसाद (collapse) और मृत्यु हो जा सकती है।

चिकित्सा—वमन कराना चाहिए। उसके बाद कड़ी चाय या कहवा पीनेको देना चाहिये। रोगीको गरम रखना चाहिये। हाथ-पैर सेंकना चाहिये, छाती पर खौलते पानीसे निकाल कर निचोड़ी रुई रखनी चाहिये (अर्थात् भीगी रुईसे फ़ोमेंटेशन करना चाहिये।

कफ—कफ संस्कृत शब्द है और इसके दो अर्थ हैं—(१) वह गाढ़ी लसीली वस्तु जो खाँसने और थूकनेसे बाहर आती है तथा नाकसे भी निकलती है। इसे श्लेष्मा (फ़ारसीमें बलग़म, अँग्रेज़ीमें phlegm. sputum या expectoration) भी कहते हैं। (२) वैद्यकके अनुसार शरीरके भीतर की एक धातु जिसके कुपित होनेसे बहुतसे रोग उत्पन्न होते हैं। अँग्रेज़ी शब्द कफ़ (cough) का अर्थ खाँसना है। इस पुस्तकमें कफ शब्द बलगमके लिये ही प्रयुक्त किया जायगा।

कफकी जाँचसे रोगके सम्बन्धमें कई बातों का पता चलता है। यदि कफ दुर्गन्धमय हो तो समझना चाहिये कि फेफड़ेका कोई अंश सड़ रहा है। न्यूमोनियामें कफके साथ नाम मात्र रक्त भी रहता है। क्षय रोगमें कफके साथ अधिक रक्त निकलता है। सूक्ष्मदर्शकसे देखने पर दमाके रोगियोंके कफमें बहुधा एक विशेष बनावट दिखाई देती है।

कबाबचीनी (cubebs)—कबाबचीनी मिर्च की जातिकी एक झाड़ीका सुखाया हुआ फल है। यह खानेमें कड़ुआ और चरपरा होता है। इसके खानेके बाद जीभ बहुत ठंढी जान पड़ती है। ब्रोनकाइटिस, जीर्ण गलक्षतमें यह लाभदायक है। दमामें इसकी बीड़ी बना कर पीनेसे कभी-कभी लाभ होता है। सर्दी-जुकाममें चूसने

* वह अवस्था जब रोगी अर्धमूर्च्छित रहता है और अंड-बंड बकता है।

के लिये जो गोलियाँ दवाखानोंमें बिकती हैं उनमेंसे कईमें कबाबचीनी पड़ी रहती है। कबाबचीनीका तेल सूजाकमें लाभदायक है।

कोष्ठबद्धता (कब्ज़ियत, constipation)—साधारणतया विष्ठात्याग प्रतिदिन एक या दो बार होना चाहिये। यदि यह २४ घण्टेसे देर पर हो तो इस अवस्था को कोष्ठबद्धता कहते हैं। सभ्यताके साथ-साथ कोष्ठबद्धता भी बढ़ती जाती है। इसका कारण खानपान और रहनेकी प्रणाली है। शाकाहारी प्रायः इस व्याधिसे मुक्त रहते हैं। मांसाहारी प्रायः इस रोगसे जकड़े रहते हैं। यह बहुत ही साधारण अनुमानकी बात है कि गाय, घोड़े, जो घास ही खाते हैं, दिनमें कई बार पाखाना करते हैं और पाखाना का परिमाण भी बहुत होता है। कुत्ते-बिल्ली जो मांस खाते हैं बहुत देर पर पाखाना करते हैं और विष्ठाका परिमाण भी बहुत कम होता है। दोनों ही श्रेणीके जानवर कोष्ठ-बद्धतासे पीड़ित नहीं होते। इसका कारण यही है कि जब कभी मल इनके अन्तिम भागमें इकट्ठा हो जाता है तो इन्हें पाखाना की हाजत होती है और ये पाखाना कर देते हैं। मनुष्य-समाजमें सभ्यताकी वृद्धिके साथ-साथ पाखानाकी हाजतको रोकनेकी आदत बढ़ती जाती है। परिणाम यह होता है कि कोष्ठबद्धताका रोग बढ़ता जाता है। स्त्री-समाज इस रोगमें विशेषकर अधिक इसलिये फँसती है कि उन्हें पाखानाकी हाजत रोकनेकी आदत कई कारणोंसे डालनी पड़ती है, कुछ तो स्वाभाविक स्त्री-सुलभ लज्जा और कुछ रिवाज। इनके पाखाने-पेशाबकी आवश्यकता होने की जानकारीकी सूचना पुरुषों तक पहुँचना बहुत ही असभ्यता समझी जाती है। पुरुष इन हाजतोंको दूर करनेमें बहुत ही स्वतन्त्र हैं और यही कारण है कि पुरुषोंमें कोष्ठबद्धता उतनी नहीं होती जितनी स्त्रियोंमें। इन बातोंसे स्पष्ट रूपसे यह पता चलता है कि भोजन और आदतसे कोष्ठबद्धताकी उत्पत्ति होती है।

शिशु, जिसका भोजन माताका दूध है, प्रायः कड़ा पाखाना २४ से ४८ घण्टे पर करता है। परन्तु इस आदतको कोष्ठबद्धता नहीं गिनना चाहिये। यह बिल्कुल स्वाभाविक है। दूधमें शिशुके वृद्धि, पुष्टि और कार्य्य सम्पादन-शक्ति (energy) के सभी पदार्थ हैं और ऐसी चीज़ें जो पच न सकें और जिन्हें शरीरसे बाहर निकलनेकी आवश्यकता हो बहुत कम मात्रामें रहती हैं। यही कारण है कि विष्ठाकी मात्रा बहुत देर पर इतनी बन पाती है कि शिशुको पाखाना करना पड़े। एक बात इस सम्बन्धमें याद रखनेकी यह है कि जब पाखाना बहुत देर पर होता है तब वह बहुत कड़ा और सूखा होता है। इसलिये शिशु में ४८ घंटेसे देर हो जाने पर कंडी पड़ जाती है और वह इतनी बड़ी और सूखी हो जाती है कि उसे गुदा स्थानसे बाहर निकालना शिशुकी शक्तिसे बाहर हो जाता है। ऐसा न होने पावे इसका उपाय यही है कि माता पानके डंठलसे या कपड़ेकी बत्ती और अंडी (रेड़ी) के तेलसे प्रत्येक २४ घंटे पर गुदास्थानमें खाज पैदा कर दे जिससे शिशुमें पाखाना करनेकी चेष्टा उत्पन्न हो जाय और वह शक्ति लगा कर पाखाना कर डाले। ऐसी आदत डालनेसे कुछ दिनोंमें शिशुमें यह बात स्वाभाविक हो जाती है और वह आप-से-आप ठीक समय पर पाखाना करता है।

जब भोजन या पानी आमाशय (stomach) में पहुँचता है तब थोड़ी देर बाद बड़ी आँत (large intestine) में गति पैदा हो जाती है और पाखानेकी हाजत होती है। प्रातःकाल बिछावन छोड़ते ही एक गिलास पानी पीने या चाय पीने पर यही गति पैदा होती है और इच्छा होती है कि पाखाना किया जाय। तम्बाकू या सिगरेट पीनेसे यह गति नहीं होती है, किन्तु मनुष्यमें जब पाखाना जानेके पूर्व तम्बाकूकी आदत रहती है तब वह सोचता है कि ऐसा करनेसे पाखाना होता है। मस्तिष्कका प्रभाव पेट पर बड़ा प्रबल है। यदि मस्तिष्कमें प्रचण्ड भयका संचार हो जाय तब प्रायः देखा जाता है कि मल-मूत्र अकस्मात् त्याग हो जाता है। यदि बिछावन छोड़ते समय एक गिलास पानी पीकर शौच जानेकी आदत डाल ली जाय तो मस्तिष्क इसको स्वीकार कर लेता है कि प्रातःकाल जल पीनेसे पाखाना होता है और यह धारणा ऐसी प्रबल हो जाती है कि समय पाकर नियमित रूपसे इससे शौचकी बान बँध जाती है।

भोजनके जो अंश पाचन क्रियाके बाद बच जाते हैं और जिनका रस बन कर शरीरमें नहीं शोषित हो सकता वे

आँतके अन्तिम भागमें विष्ठाके रूपमें एकत्रित हो जाते हैं। और जब इसका परिमाण विशेष हो जाता है तब शौचकी इच्छा होती है। जिन भोजन सामग्रियोंमें इन अवयवोंका अभाव रहता है उनसे कोष्ठबद्धता होती है, और जिनमें इनका आधिक्य होता है उनसे अधिक दस्तकी बीमारी हो जाती है। दूध, मांस, मछली, अंडा और इनसे बनी हुई चीज़ोंमें विष्ठा पैदा करने वाले अवयवोंकी मात्रा कम होती है। हरे शाक और ताज़े फलोंमें इनकी मात्रा अधिक होती है। अतएव कोष्ठबद्धताको दूर रखनेका एक साधन यह भी है कि मनुष्यके भोजनमें हरे शाक और ताज़े फलोंकी मात्रा यथेष्ट रहे। अनाज-गल्लोंमें पूर्ण गेहूँका आटा (अर्थात् बिना चोकर निकाला गेहूँका आटा), ढेकीका छाँटा चावल और दालोंमें (विशेषकर भूसी सहित खाई जाने वाली मूँग आदिकी दालोंमें) इनकी मात्रा यथोचित रहती है और इनसे कोष्ठबद्धता नहीं होने पाती।

ओषधि—यदि नियमित शौच जानेकी आदत और भोजन-प्रणालीके ठीक होते हुये भी कोष्ठबद्धता हो तो दवाकी जरूरत होती है। अतएव उस पर भी विचार करना आवश्यक है। कोष्ठबद्धताकी चिकित्सा निम्न श्रेणियोंमें विभाजित की जा सकती है :—

(१) हरे शाक, ताज़े फल और चोकरदार आटाकी मात्रा प्रतिदिनके भोजनमें बढ़ा दी जाय। साथ-साथ किसमिस, आबजोश मुनक्का, अंजीर आदि फलोंके सेवनसे भी साधारण कोष्ठबद्धता दूर हो जाती है।

(२) यदि पूर्वोक्त उपायोंसे भी सफलता न हो तो लिक्विड पैराफिन (liquid paraffin) आधी छटाँक प्रतिदिन लेना चाहिये। लिक्विड पैराफ़िनसे बनी हुई अनेक ओषधियाँ बाज़ारमें पाई जाती हैं। उनके सेवन से भी यही लाभ होता है। यदि एक बार आधी छटाँक लिक्विड पैराफ़िन पीनेसे वह गुदा द्वारा अलगसे निकल पड़ता हो तो इतनी मात्राको दो-तीन बारमें लेना चाहिये।

(३) मैगनीसियम सलफेट (magnesium sulphate या Epsom salt) तथा सोडियम सलफेट (sodium sulphate) एक तोला लगभग एक छटाँक पानीमें घोल कर खाली पेट प्रातःकाल पी लेनेसे दो-तीन घंटेके अन्दर दो-तीन दस्त हो जाते हैं।

(४) कुछ ओषधियाँ ऐसी हैं जो पेटमें, विशेष कर बड़ी आंतमें, प्रकोपन (irritation) पैदा करके उनमें विशेष गति पैदा कर देती हैं; जैसे, सनायकी पत्ती या ढेड़ी, अमलताशकी गुद्दी, कैसकरा इत्यादि। यदि सनायकी ६ ढेड़ियाँ १ छटांक गरम पानीमें तीन-चार घंटे तक फुला दी जायँ और छान कर जलको सोते समय पी लिया जाय तो प्रातःकाल, यानी पीनेके छः-सात घण्टे बाद, एक-दो बार शौच हो जाता है। इन पदार्थोंसे बनी दवायें बहुत बिकती हैं, परन्तु उनका सेवन किसी डाक्टरकी अनुमति के बिना नहीं करना चाहिये।—बद्री नारायण प्रसाद।

कोष्ठबद्धताका उपचार न करनेसे स्वास्थ्य गिरता जायगा। कोष्ठबद्धतासे त्वचा गन्दी रहती है, जीभ पर गन्दगी जमी रहती है, मुखसे दुर्गन्धि भी निकल सकती है, अच्छी भूख नहीं लगती; सुस्ती, सरमें मृदु पीड़ा और चक्कर, और अनिद्राकी शिकायत रहती है। कोष्ठबद्धता वालोंको कई रोग आसानीसे हो जाते हैं।

थोड़े-बहुत व्यायामके बिना शरीरकी पाचक शक्तियाँ ठीक काम नहीं कर पातीं, जिससे कोष्ठ बद्ध रहता है। स्त्रियोंको घरके काम-काजसे साधारणतः इतना व्यायाम नहीं हो पाता कि वे स्वस्थ बनी रह सकें। हाँ, यदि वे चक्कीसे स्वयं गेहूँ पीसें तो बात दूसरी है। साधारणतः काम-काजके अतिरिक्त उन्हें दो-तीन मील तेज़ीसे चलनेकी भी आवश्यकता रहती है, या वे बैडमिन्टन आदि खेल खेलें, या नियमित रूपसे प्रति दिन व्यायाम करें। सभी पुरुषोंको व्यायाम करनेका समय निकाल लेना चाहिये। व्यायामसे यकृत (जिगर) आँतोंमें अधिक पाचक रस भेज सकता है।

ऊपर बताया जा चुका है कि जब-जब पाखानेकी हाजत जान पड़े तुरन्त निपट आना चाहिये। परन्तु यदि प्रातः और संध्या बराबर बिना आवश्यकताके भी शौच जाया जाय तो कुछ समयमें ऐसी बान पड़ जाती है कि अन्य समय मल त्यागकी आवश्यकता साधारणतः जान ही नहीं पड़ती। बचपनसे ही ऐसी आदत डाल लेना अच्छा है।

बहुत कम जल पीनेसे भी दस्त साफ नहीं होता। आहार शीर्षक लेखमें जलकी उचित मात्रा पर विचार किया जा चुका है। (गोरख प्रसाद)

——

आकाशके पचास सबसे अधिक चमकीले तारे

[गोरखप्रसाद, डी० एस-सी०]

आकाशके कई चमकीले तारोंके नाम भी रक्खे गये हैं। कुछ नाम तो हमारे प्राचीन साहित्यमें मिलते हैं। कुछ हालहीमें गढ़े गये हैं। शेषमें से प्रमुख तारोंके नाम गढ़ कर मैं यहाँ हिन्दी-संसारके सामाने उपस्थित करता हूँ। ये नाम इस प्रकार रक्खे गये हैं कि उनसे या तो पता चले कि वे किस तारासमूहमें हैं, या उनसे प्रचलित अँग्रेजी नामोंका संकेत हो। आशा है कि वे पाठक जिनको इनसे अच्छे नाम सूझेंगे मुझे सूचना देंगे। सब तारोंके नाम नहीं गढ़े गये हैं क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। अरबी नामोंके लिये मैं अपने मित्र श्री नईमुर रहमानका आभारी हूँ। अँग्रेजीके अधिकांश नाम अरबीके ही अपभ्रंश है। जहाँ अरबी शब्द भिन्न है और उसके अर्थका पता चल गया है वहाँ अर्थ भी दे दिया गया है।

श्रेणी	अँग्रेजी नाम	अँग्रेजी नामका उच्चारण	अर्थ	अरबी नाम	वैज्ञानिक नाम तारासमूहानुसार	हिन्दी नाम
−१·५८	Sirius	सिरियस	चमकता तारा	शेअरा	क श्वान ⁂	लुब्धक †
−०·८६	Canopus	कैनोपस	मिश्रका एक नगर	सुहा, सुहैल	क नौतल	अगस्त्य †
−०·१८	Rigil Kentaurus	रिजिल केंटौरस	सेंटॉरका पैर	रिजलुल कंतार	क नराश्व	नराश्व-पद
०·१४	Vega	वीगा	गिरता हुआ	ज़ाबिह (= जबह करने वाला)	क वीणा	अभिजित †
०·२१	Capella	कैपेला	छोटी बकरी	?	क रथी	ब्रह्महृदय †
०·२४	Arcturus	आर्कट्यूरस	भालूका पालक	सिमाके रामिह (तीर चलानेवाली मछली)	क भूतेश	स्वाती †
०·३४	Rigel	रिजल	दैत्यका पैर	रिज्ल	ख मृग	मृगपद
०·४८	Procyon	प्रोसियन	श्वान के पहले	शेअरा शामिया (= शामियाका तारा	क श्वानिका	प्रभास §
०·६०	Achernar	ऐकरनार	नदी का अंत	अखिरुन्नहर	क वैतरणी	वैतरणिअंत
०·८६	Agena	ऐजीना	?	?	ख नराश्व	अजिन्य
०·८९	Altair	ऐलटेयर	चील	अत्ताइर (= पक्षी)	क गरुड़	श्रवण †
०·९२	Betelgeuse	बेटलजूज़	जौज़ाकी काँख	इब्तुलजौज़ा	क मृग	आर्द्रा †
१·०५	Acrux	ऐक्रुक्स	क्रॉसका प्रथम	?	क स्वस्तिक	त्रिशंकु ‡
१·०६	Aldebarran	ऐलडिबैरन	अनुगामी पीछे चलनेवाला)	दिबरान	क वृष	रोहिणी †
१·२१	Spica	स्पाइका	गेहूँका बाल	सिमाक (मछली)	क कन्या	चित्रा †
१·२१	Pollux	पॉलक्स	कुश्तीबाज़	ज़िराय	ख मिथुन	पुनर्वसु †
१·२२	Antares	ऐंटैरीज़	मंगलका प्रतिद्वंद्वी	कल्ब (= कुत्ता)	क वृश्चिक	ज्येष्ठा †
१·२९	Fomalhaut	फोमलहॉट	मत्स्यका मुख	फ़मुलहूत	क दक्षिण मीन	मत्स्यमुख
१·३३⁂	Deneb	डेनेब	(हंसकी) पूंछ	ज़नब	क हंस	हंसपुच्छ
१·३४	Regulus	रेग्युलस	छोटा राजा	ज़बह (?)	क सिंह	मघा †
१·५०	?	?	?	?	ख स्वस्तिक	×
१·५८	Castor	कैस्टर	घोड़ा साधने वाला	कल्बुलमा (= पानी)	क मिथुन	कस्तूरी
१·६१	?	?	?	?	ग स्वस्तिक	×
१·६३	Adhara ‡	ऐधारा	कुमारी	अज़रा (= कुमारी)	च श्वानिका	×
१·६८	Alioth	ऐलिअथ	भेड़की पूँछ	?	च सप्तर्षि	अंगिरा ‡

१·७०	Bellatrix	बिलेट्रिक्स	लड़नेवाली	मिर्ज़म (= लड़ने वाली)	ग मृग	मृगलोचना
१·७१	Shaula‡	शॉला	डंक	?	ड वृश्चिक	मूल †
१·७४	?	?	?	?	च नौतल	×
१·७५	Alnilam‡	ऐलनीलम	मोतियोंकी माला	अलनीलम	च मृग	इल्वाक †
१·७८	El Nath‡	ऐलनैथ	टक्कर मारने वाला	अलनत्ताह	ख वृष	×
१·८०	Miaplacidus‡	माइआप्लैसिडस	पानी	?	ख नौतल	×
१·८८	?	?	?	?	क दक्षिण त्रिकोण	×
१·९०	Algenib	ऐलजेनिब	पार्श्व (बगल)	अलजानिब	क ययाति	अलजानिब
१·९१	Benetnasch‡ (Alkaid)	बेनेटनैश	मृतककी कन्या	बिनातुन्नाश	ज सप्तर्षि	मरीचि †
१·९३	Alhena‡	ऐलहेना	अँगूठी	?	ग मिथुन	×
१·९५	Dubhe	डुमे	भालू	दुब्ब	क सप्तर्षि	क्रतु †
१·९८	Wezen‡	वेज़न	वज़न (बाट)	वज़न	घ श्वान	×
१·९९	Murzim‡	मुरज़ीम	घोषणा करने वाला	मोअज़्ज़िन	ख श्वान	×
२·०१	Naos‡	नेअस	नौका	?	घ नौवक्ष	×
२·०४	Sargas‡	सारगस	?	?	झ वृश्चिक	×
२·०५	Alnitak‡	ऐलनिटाक	कमर बन्द	अलनिताक़	छ मृग	×
२·०७※	Menkalinan‡	मेनकैलिनान	चालकका कन्धा	मन-कबुल-इनान	ख रथी	×
२·१२	?	?	?	?	क मयूर	×
२·१२※	Polaris	पोलैरिस	ध्रुव तारा	कुत्ब (= धुरी)	क ऋक्षिका	ध्रुव †
२·१४	Rasalhague‡	रैसलहाग्वे	सँपेरेका सर	?	क सर्पधर	×
२·१५	Alpheratz	ऐलफ़ीरैट्ज़	घोड़ा	अलफ़रस	क देवयानी	उत्तरा भाद्रपदा†
२·१६	Al Nair‡	ऐलनायर	चमकने वाला	अलनैयर	क बक	×
२·१६	Alphard‡	ऐलफ़ार्ड	एकाकी	अलफ़र्द	क वासुकी	×
२·२२	Al Suhail al Muhlif‡	ऐलसुहील ऐल मुहलीफ़	सौगन्ध दिलानेवाली सुहावनी वस्तु	अल सुहैलुल मुहलिफ़	ग नौवक्ष	×
२·२२	Al Suhail al Wazn‡	ऐलसुहील ऐल वज़्न	तौलवाली सुहावनी वस्तु	अल सुहैलुल वाज़िन	ड नौवक्ष	×

※ इन तारोंकी चमक घटती-बढ़ती है।

† ये नाम प्राचीन हैं। परन्तु इल्वाक वस्तुतः प्राचीन समयमें उन सब तारोंके समूहोंको कहते थे जो मृग नामक तारासमूहके बीचमें है।

§ ये नाम दूसरोंके गढ़े हैं।

‡ इन नामोंका प्रयोग बहुत कम होता है।

※※ तारासमूहोंके आगे देवनागरी अक्षरों और ग्रीक अक्षरोंका समन्वय यों है :—

क = ऐल्फ़ा; ख = बीटा; ग = गामा; घ = डेल्टा; च = एपसाइलन; छ = ज़ीटा; ज = ईटा; झ = थीटा; ट = आयोटा; ठ = कैपा; ड = लैम्डा; इत्यादि।

× इन तारोंके नाम गढ़नेकी कोई आवश्यकता नहीं जान पड़ती। वैज्ञानिक नामसे ही काम चल जायगा।

टिप्पणी पूर्वोक्त तारोंके अतिरिक्त निम्न नाम भी अँग्रेजी या संस्कृतमें प्रचलित हैं : Algol (ख तिमि), अरबी अलगूल (= पिशाचिनी), हिन्दीमें भी इसे अलगूल कहना ठीक रहेगा। Denebola (ख सिंह) उत्तरा फाल्गुनी †। Mira (द तिमि) = हिन्दीमें मीरा। Pleiades (उच्चारण प्लाईऐडीज़) = कृत्तिका†, किचपिचिया†।

समालोचना

आकाशकी कथा— ले० श्री गिरधारीलाल शर्मा 'गर्ग'— १४६ पृष्ठ, ११३ चित्र; कागज़ और दफ्तीकी जिल्द; जिल्द पर रंगीन डिजाइन, मूल्य लिखा नहीं है। परिचय-लेखक श्री शिवपूजन सहाय; प्रकाशक पुस्तक भण्डार; पटना और लहेरियासराय।

पुस्तककी सज-धज, चित्र, विषय, और परिचय (प्राक्कथन) से जो आनन्द पहले हुआ वह कुछ ही पंक्तियोंके पढ़ने पर विषादमें परिणत हो गया। हिन्दीका दुर्भाग्य है कि कई लेखक बिना विषय समझे ही पुस्तक लिख डालते हैं। २२ पेज पढ़ने पर जी ऊब उठा। इन २२ पृष्ठोंमें ६० आपत्तिजनक वाक्य या शब्द हैं। दो-चार उदाहरण देना पर्याप्त होगा।

पृष्ठ १४ पर है—'सूर्यके प्रकाशमें लाल, हरी, नीली पीली, नारंगी, आसमानी, और कासनी रङ्गकी सप्त रश्मियाँ विद्यमान हैं और सूर्यके साथ ही इन रंगों और तेलोंकी भी हमारे ऊपर वर्षा होती है।' शाबाश। सूर्यसे तेल बरसता है! सम्भवतः यह paint का अनुवाद है।

पृष्ठ १५ पर है—'पृथ्वीकी चारों ओर जैसे एक वायु-मंडल है उसी तरह सूर्यकी चारों तरफ एक आलोक-मंडल है। यह मंडल अधिक उज्वल होने कारण सर्वदा नहीं दीख पड़ता।' लेखकने असली बातको समझा ही नहीं है। सूर्यका केन्द्रीय बिम्ब आलोक मंडलकी अपेक्षा इतना अधिक उज्वल है कि चकाचौंधके कारण आलोक-मंडल हमको नहीं दिखलाई पड़ता।

पृष्ठ १५ पर ही है—'सूर्यकी गैसोंके ढेर पृथ्वीके दोनों मेरुओंकी ओर आकर्षित होते रहते हैं और वे ही ग्यारह वर्षों तक मेरुओंके देशमें आश्चर्यप्रद विद्युत-प्रकाशके समान चमकते रहते हैं। इन्हें "मेरु-प्रभा" (अरोरा-बोरियालिस) कहते हैं।' यह अशुद्ध है। गैसें ग्यारह वर्ष तक चमकती हैं और तब? उसके बाद अँधेरा रहता है क्या? लेखकने सूर्य-कलंकों और मेरु-प्रभाके ग्यारह-वर्षीय चक्रका अर्थ कुछ समझा ही नहीं। मेरु-प्रभा ग्यारह वर्षके चक्रमें न्यूनाधिक होती रहती है। मेरु-प्रभा सूर्यसे खिंच आई गैस नहीं है।

पृष्ठ १६ पर है—'धब्बोंका निरीक्षण करने पर उसने देखा कि वे सूर्यके चौरस और गोलाकार धरातलके आर-पार हैं।' मेरी समझमें ही नहीं आया कि लेखकका क्या अभि-प्राय है। आर-पार क्या? क्या सूर्य पारदर्शक है? क्या धब्बे ऐसे छेद हैं जिनसे उस पार देखा जा सकता है? फिर चौरस और गोलाकार शब्द भी खटकते हैं; वे एक प्रकारसे एक दूसरेके विरोधी हैं। चौरस और वृत्ताकार होता तो इन शब्दोंका अर्थ कुछ समझमें आता; परन्तु सूर्यका पृष्ठ तो चौरस है नहीं; लेखकका अभिप्राय इन शब्दोंसे वस्तुतः क्या है पता नहीं चलता।

पृष्ठ १७ पर है—'धब्बे उसी तरह मालूम पड़ते हैं जैसे भूरे कपड़े पर बिखरे हुये चावलके दाने।' यहाँ लेखकको धब्बे (spot) और फैक्युला (facula = मशाल) में भ्रम हो गया है। धब्बे काले, या प्रायः काले, कलंक की तरह लगते हैं, न कि भूरे कपड़े पर चावलकी तरह।

पृष्ठ १७ पर ही है—'ये भँवर सूर्यके अपनी चारों ओर घूम जानेके कारण ही उसके शरीर पर बन जाते हैं।' यह बात अशुद्ध है। भँवर इस कारण नहीं बनते।

इस प्रकार इन चार पृष्ठोंमें (पृष्ठ १४—१७ में) ६ बड़ी-बड़ी गलतियाँ हैं। इसी तरह अन्यत्र भी है। इनके अतिरिक्त कहीं-कहीं कोई शब्द अँग्रेजी भाषामें ही (और केवल रोमन अक्षरोंमें) दिये गये हैं। वहाँ केवल हिन्दी जानने वालोंको बड़ी कठिनाई होगी। फिर Convex lens के लिये 'खोखला लेंस' और volume के लिये 'घनत्व' लिखना अक्षम्य है। पृष्ठ १२२ पर २०० इंच 'परिधि' का शीशा भारी भूल है। छापेकी भी अधिक भूलें हैं। एक चित्र उल्टा भी छपा है (पृष्ठ ८२ पर)। अँग्रेजी शब्दोंके उच्चारणोंको किसी कोषमें देख लेना चाहिये था। तारों और तारासमूहोंके नामोंके उच्चारण Splendour of the Heavens, Norton's Star Atlas, Stars and Planets आदि पुस्तकोंमें हैं। Betelgeuse को बेटेलग्वीजे लिखना हास्यप्रद है (चाहिये तो यह था कि इसे अपने देशी नामके अनुसार आर्द्रा कहा जाता)। अँग्रेजी शब्दके लिखनेमें अशुद्धि कर देना और फिर उसी अशुद्ध शब्दका उच्चारण लिख देना—जैसा एक-दो स्थानोंमें हो गया है और भी हास्यप्रद है। लेखकको अपना उत्तरदायित्व समझना चाहिये था और अधिक परिश्रम करना चाहिये था। काशी नगिरी प्रचारिणी सभाके कोशसे पारिभाषिक शब्द मिल जाते, सौर-परिवार तथा अन्य ग्रन्थोंसे वैज्ञानिक बातें समझमें आ जातीं। भूमिकामें केवल यह लिख देनेसे कि 'सम्भव है, प्रमादवश कुछ अशुद्धियाँ रह गई हों। आशा है, पाठक क्षमा करेंगे।' काम न चलेगा।—गोरखप्रसाद।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्याजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५७ | वृष, सम्वत् २००० । मई, १९४३ | संख्या २

हमारी नवीन योजना

'विज्ञान' में अनेक प्रकारके लेख छपते रहे हैं, परंतु आजसे पहले कभी क्रमानुसार सभी विषयोंके मूल ज्ञानका परिचय करा देना संभव नहीं हो सका था। अब ऐसा प्रतीत होता है कि 'विज्ञान' द्वारा एक छोटे-से वैज्ञानिक विश्वकोशका धीरे-धीरे निर्माण कर देना असंभव नहीं है।

परंतु विश्वकोश भी कई कोटिके हो सकते हैं। वर्तमान के लिए संपादकको ऐसे विश्वकोषकी अधिक आवश्यकता जान पड़ती है जिसमें सरलतम ज्ञानका अत्यंत विशद वर्णन हो—जिसे पाठशालाके विद्यार्थी भी समझ सकें और विज्ञान एकदम न जानने वाले भी; जो बच्चोंको भी रोचक लगे और बड़ोंको भी।

इसलिए विचार है कि विज्ञानके कोई-कोई अंक विशेष विषयों पर निकलें और वे ऐसे हों कि उनके संग्रहसे छोटा-सा सरल विश्वकोश बन जाय। अभी तो यही चेष्टा की जायगी कि लगभग बारह अंकोंमें विज्ञानके सभी अंगों पर कुछ-न-कुछ प्रकाश पड़ जाय। पीछे ऐसे अंक भी जोड़े जा सकते हैं जिनमें विशेष तथा कुछ कठिन विषयोंके ब्योरेवार विवरण रहें।

प्रथम अंकमें जंगली जंतुओंके अत्यंत मनोरंजक जीवन-वृत्तांत हैं। इसका पूर्वार्द्ध पहले छप चुका है, उत्तरार्द्ध पाठकोंके सामने है। आगामी अंकोंमें पेड़-पौधोंकी दुनिया; ताप, प्रकाश, ध्वनि, विद्युत, रेडियो आदि संबंधी बातें; रसायन, गणित, ज्योतिष और यंत्रशास्त्र; और फिर मनोरंजक और उपयोगी वस्तुओंको अपने हाथ बनानेकी रीतियोंका सचित्र और ब्योरेवार वर्णन भी रहेगा।

आशा है हमारे पाठकोंको यह योजना पसंद आयेगी। पाठकगण इस योजनाका समाचार दूसरों तक पहुँचा कर, और संभव हो तो नवीन ग्राहक बनाकर, हमारी यथेष्ट सहायता कर सकते हैं।

वैज्ञानिक साहित्यमें वर्तमान समय चित्रोंका युग है। जो बात पेजों लिख डालने पर स्पष्ट नहीं हो पाती वह एक फ़ोटोग्राफ़से प्रत्यक्ष हो जाती है। इसलिए प्रस्तावित 'सरल विज्ञान-सागर' में पर्याप्त चित्र भी रहेंगे।

एक तो इस विचारसे कि विज्ञानके ग्राहकों को इस पुस्तकको आवश्यकता न पड़ेगी, दूसरे काग़ज़की मँहगीके कारण, इस ग्रंथकी बहुत थोड़ी-सी ही प्रतियाँ अलगसे छपायी जा रही हैं। विज्ञानके ग्राहकोंसे प्रार्थना है कि वे अपने 'विज्ञान' की प्रतियोंको भली भाँति सुरक्षित रक्खें, जिससे उन्हें पोथीको अलगसे मोल लेनेकी आवश्यकता न पड़े।

—संपादक

मनुष्यकी सेवामें जंतुशास्त्र

[प्रोफ़ेसर दक्षिणारंजन भट्टाचार्य, पी० एच० डी०, डी० एस-सी०, एफ़० ज़ेड० एस०, के एक भाषणका सारांश]

मार्चके विज्ञानमें छपे लेखका उत्तरार्द्ध

सोशिऑलोजी या संवजीवन-शास्त्र पर डारविनके सिद्धान्तोंका बहुत प्रभाव पड़ा है। रूसके मार्क्सका सिद्धांत है कि मनुष्य जातिके विविध समुदाय अपना सर ऊँचा उठानेके प्रयत्नमें बराबर लगे रहते हैं। इस प्रकार उत्पन्न हुए जीवन-संघर्ष और पाशविक जीवन-संघर्षमें बहुत कुछ समता है। सब बातोंके अध्ययनसे पता चलता है कि मनुष्य जातिकी उन्नतिके लिए हमें ऐसा प्रबन्ध करना पड़ेगा कि योग्य व्यक्तियोंको ही बच्चे उत्पन्न हों। अयोग्य व्यक्ति बच्चा उत्पन्न न करने पायें। दुर्बलों और सहजन्म रोग वालोंको तो कदापि संतति उत्पन्न करने न देना चाहिए।

विकास-सिद्धान्तमें यह नहीं अध्ययन किया जाता कि मनुष्य बन्दरोंसे कैसे उत्पन्न हुआ जैसी जनताकी धारणा है। उसका ध्येय यह है कि देखा जाय कि सारे जंतु तथा वनस्पति संसारकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई। अब हम उस अवस्थामें आ पहुँचे हैं जहाँसे यह दिखलाई पड़ रहा है कि सारा विश्व धीरे-धीरे परिवर्तन होनेके कारण आजकी दशामें आया है। यही कोश-सिद्धांत है और जंतुशास्त्रमें आधुनिक कोश-सिद्धांत उतना ही मौलिक तथा महत्वपूर्ण है जितना ज्योतिषमें आकर्षण-सिद्धांत।

भारतवर्षमें जंतुशास्त्रमें यथेष्ट काम हो रहा है। यह बड़े सन्तोषकी बात है। परन्तु १९०६ में सर रे लैंकेस्टर ने अपनी सरकारके बारेमें जो शिकायत की थी वह आज भी हमारे सरकारके प्रति लागू है, वह यह है कि सरकारके वे विभाग जहाँ वस्तुतः वैज्ञानिकोंकी आवश्यकता है ऐसे अफसरों और क्लार्कोंके हाथमें है जिनका विज्ञानसे कोई सरोकार नहीं। सरकारको चाहिए कि वह विज्ञानको अपनाये और प्रचुर धनसे सहायता दे। जनताको भी विज्ञानकी सहायता करनी चाहिए। मैं तो उस दिनका स्वप्न देखा करता हूँ जब बिड़ला इंस्टिट्यूट, सिंघानिया इंस्टिट्यूट और श्रीराम ईस्टिट्यूट खुलेंगे और वैसी ही बीसों अन्य संस्थाएँ भी रहेंगी।

सरल विज्ञान-सागर

[सम्पादक – डाक्टर गोरख प्रसाद, डी० एस-सी०]

प्राणियोंकी जातियाँ — संसारके प्राणियोंकी जातियाँ प्रायः असंख्य हैं और पहली बार तो ऐसा जान पड़ता है कि उनको किसी भी प्रकार क्रमबद्ध नहीं किया जा सकता।

परन्तु बात ऐसी नहीं है। वैज्ञानिकों ने उनको बहुत सुन्दर ढङ्गसे क्रमबद्ध किया है।

पहली बात तो यह है कि कुछ प्राणी ऐसे हैं जिनमें रीढ़ होती है और कुछ ऐसे जिनमें रीढ़ नहीं होती। इसलिये वैज्ञानिकोंने सब प्राणियोंको दो समूहोंमें बाँटा है—

(१) पृष्ठवंशी,

(२) अपृष्ठवंशी।

फिर पृष्ठवंशी प्राणियोंको पाँच श्रेणियोंमें बाँटा गया है—

(१) स्तनपोषी, (२) पक्षी, (३) उरंगम, (४) स्थल-जलचर, और (५) मत्स्य।

मांसभुक वर्ग—पूर्वोक्त श्रेणियोंमेंसे प्रत्येकको कई वर्गोंमें बाँट दिया गया है। उदाहरणतः, स्तनधारियोंमें एक वर्ग मांसभुक (= मांस खाने वाले) पशुओंका है। इस वर्गमें सिंह, बाघ, बिल्ली, कुत्ता, सियार, भेड़िया बिज्जू, स्कंक आदि पशु रक्खे गए हैं, क्योंकि ये सब अन्य जानवरों को मार कर उनका मांस खाते हैं।

हम यहाँ मांसभुक वर्गके कुछ जंतुओंका विवरण देते हैं।

बिज्जू

भारतवर्षका साधारण बिज्जू उत्तरसे दक्षिण तक सर्वत्र मिलता है, विशेषकर पहाड़ी प्रदेशोंमें जहाँ ढाल पर भींटे खोदनेके लिये उसको उपयुक्त स्थान बहुतायतसे मिलते हैं। उत्तरी भारतमें प्रायः नदियों और तालाबोंके ढालू पार्श्वोंमें भी उनके भींटे बहुत देखनेमें आते हैं।

बिज्जूके शरीरके ऊपरी भागका रंग भूरा होता है, किन्तु शरीरके पार्श्वभाग और पेट काले रंगके होते हैं। इस प्रकारका रंग एक विलक्षण-सी बात है क्योंकि बहुधा देखा जाता है कि जन्तुओंके शरीरका ऊपरी भाग निम्न-भागसे अधिक गहरे रंगका होता है। उसके माथे पर एक चौड़ी-सी सफ़ेद धारी पड़ी होती है। पैरोंमें पाँच-पाँच अत्यन्त पुष्ट नख होते हैं। बिज्जूके पञ्जे खुदाईके कामके लिये अत्यन्त उपयुक्त होते हैं। अगले पैरोंसे खोदी हुई मिट्टी वह पिछले पैरोंसे पीछे फेंकता जाता है। कुदाल और फावड़ा दोनों ही उसके पैरोंमें मौजूद होते हैं और उनके द्वारा यह बड़े-बड़े और विस्तृत भींटे खोद लिया करता है। क़बरें खोदनेके निकृष्ट काममें भी वे सहायक होते हैं। बिज्जूके शरीर पर अति मोटे और लम्बे बाल होते हैं जो सूअरके बालोंके सामान सीधे खड़े नहीं रहते, वरन् शरीर पर इस प्रकार पड़े रहते हैं मानों कंघेसे काढ़ दिये गये हों।

बिज्जूके माथेपरकी चौड़ी सफ़ेद धारी निरर्थक नहीं होती। सामनेसे आता हुआ बिज्जू इसी धारीके कारण दूरसे दिखाई नहीं पड़ता। रक्षार्थ और घातार्थ वर्ण-साम्य का कैसा सहज प्रबन्ध प्रकृति ने कर दिया है।

भारी भद्दा बिज्जू मंदगामी जीव है। उसमें दौड़ने-भागनेकी तेज़ी नहीं होती। फिर भी उसको भोजनका अभाव नहीं होता क्योंकि बिज्जू पूरा सर्वभक्षी है। फल, जड़ें, कीड़े-मकोड़े, साँप, गिरगिट, अण्डे इत्यादि जो कुछ मिल जाता है उसी पर निर्वाह कर लेता है। बिज्जूके दाँतोंकी रचनाको देखने ही से प्रमाण मिल जाता है कि वह सर्वभक्षी है। उत्तरी हिन्दमें बिज्जू कभी-कभी क़बरें खोद डालते हैं और विशेषकर बालकोंके मृत शरीरको खोद ले जाते हैं। इसलिये यह घृणित समझा जाने लगा है। यह आश्चर्यकी बात है कि बिज्जू, जो मुर्दे तक उखाड़ कर खा जाता है, स्वभावतः अत्यन्त स्वच्छ रहने वाला जंतु है। अपने शरीर और वासस्थान दोनों ही को साफ़-सुथरा रखता है। अपने भींटेके मुख्य भागमें जिसमें वह रहता है, पत्तियों, घास आदिको बड़ी सफ़ाईसे बिछौनेके समान बिछाये रहता है। स्वच्छ वायुके लिये वह अपने पुष्ट नखोंसे कई सुरङ्ग ऊपर तक खोद लेता है। भीतर ही भीतर भींटेमें कई और सुरङ्ग भी रहते हैं जो कभी-कभी २५ या ३० फ़ुट तक लम्बे होते हैं। इनमें बिज्जू अपनी भोजन-सामग्री एकत्रित करता है। बिज्जूको अशुद्ध वास-स्थानसे इतनी घृणा है कि यदि कभी मैली-कुचैली रहने वाली लोमड़ी उसके भींटेमें ज़बरदस्ती रहने लगती है तो बेचारा अपना भींटा छोड़ देता है।

बिज्जू एक भीरु और डरपोक जन्तु होता है और सारा दिन उसका कभी दर्शन नहीं हो सकता। रात्रिमें बाहर आता है और भोजनकी खोजमें भ्रमण करता है। यदि कभी कुत्ते उसका पीछा करते हैं तो यथासम्भव भागकर भींटेमें घुस जाना चाहता है, किन्तु यदि भींटा दूर होता है तो चित लेट कर अपने पुष्ट पञ्जों और दाँतोंसे कुत्तोंका सामना करता है।

स्कंक

स्कंककी एक जाति नहीं, कई जातियाँ होती हैं, पर हम साधारण स्कंक पर ही विचार करेंगे। एक ही स्कंक हमारे लिये काफ़ी होगा!

पश्चिममें कहावत है कि शैतानके प्रति न्याय होना चाहिये। पर हम कहेंगे कि स्कंकके प्रति भी न्याय होना चाहिये। लोग इससे घृणा करते हैं; परन्तु वस्तुतः लोग इसे समझ नहीं पाते। पाश्चात्य मनुष्य अपने प्रतिद्वन्द्वीको स्कंक कह कर गाली देता है, परन्तु यह स्कंकके प्रति अन्याय है। यह जन्तु बड़ी स्वच्छता से रहता है।

उत्तरी अमरीकामें स्कंक बहुत होता है और यद्यपि यह बहुत सताया जाता है तो भी इसके लुप्त होनेके कोई लक्षण अभी नहीं दिखलाई पड़ते। पूँछ छोड़ कर इसकी लम्बाई हाथ भरसे कम ही होती है। पूँछ लगभग शरीरके बराबर होती है। झबरी पूँछ बड़ी सुन्दर और घने, नरम, बड़े-बड़े बालोंसे ढकी हुई होती है। मोटा-ताजा स्कंक तौलमें पाँच सेर तकका हो सकता है। रंग कहीं चटक काला, कहीं

एकदम सफ़ेद रहता है, जिससे दूरसे ही यह दिखलाई पड़ जाता है। यह दूसरे जानवरोंको सूचना है कि स्कंकसे दूर ही रहो। स्कंकको रक्षा इस प्रकार नहीं होती कि यह आसानीसे दिखलाई नहीं पड़ता और इसलिये शत्रुओंसे बच जाता है। रक्षाके लिये इसके पास अन्य साधन हैं। स्कंककी दुर्गन्धि प्रसिद्ध है। यदि शत्रु इससे दूर नहीं रहेगा तो यह अपनी पूँछ उठा लेता है, घूमकर शरीरका पिछला भाग शत्रुकी ओर कर लेता है और पूँछके नीचे स्थित

स्कंक

सुंदर, नरम रोएँके लालचसे इसे लोग हजारोंकी संख्यामें पालते हैं। यह बहुत स्वच्छ जन्तु होता है, परंतु अपने शत्रुओं पर आक्रमण करनेके लिये पूँछ उठाकर उसकी जड़के पासकी ग्रंथियोंसे अत्यन्त दुर्गन्धमय तरल पदार्थकी पिचकारी छोड़ता है।

ग्रन्थियोंसे अत्यन्त दुर्गन्धमय तरल पदार्थकी पिचकारी छोड़ता है। इस तरलसे मिचली और बेहोशी ही नहीं होती, यदि यह शत्रुकी आँखोंमें पड़ जाय तो वह अंधा भी हो जायगा। स्कंकका निशाना बहुत सच्चा बैठता है और वह ठीक शत्रुकी मुँह पर धार छोड़ता है। जहाँ यह तरल पड़ जाता है वहाँसे दुर्गन्धि मिटाना असम्भव हो जाता है। स्कंकके दुर्गन्धमय तरलकी धार दस फुट तक पहुँच सकती है। इसको दुर्गन्ध एक मीलसे पहचानी जा सकती है।

परन्तु स्कंक स्वयं दूसरोंसे बैर नहीं ठानता। यह धीरे-धीरे चलने वाला अत्यन्त शांत स्वभावका जंतु है। बहुत चतुर भी नहीं होता। अँधेरेमें ही निकलता है और इतना ही चाहता है कि कोई छेड़-छाड़ न करे। परंतु जो छेड़-छाड़ करते हैं उनकी शामत आ जाती है।

स्कंकके शत्रु उल्लू नामक पक्षी या प्यूमा नामक बाघ होते हैं। कभी-कभी भेड़िया भी स्कंकका शिकार करता है। परन्तु साधारणतः यह अपने दुर्गंधप्रद ग्रंथियोंके कारण उनसे बच जाता है। लोग इसे पालते भी हैं। पर तब बचपनमें ही इसकी ग्रंथियोंको नष्ट कर डालते हैं। पालतू अवस्थामें यह बड़ा प्यारा और खिलवाड़ी जंतु होता है।

स्कंक मुर्गीके बच्चे और छोटे चिड़ियोंको खाता है। चूहोंको भी खूब खाता है। लोग स्कंकको देखते ही उसे मार डालते हैं, परन्तु उनको यह विचार करना चाहिये कि खेतके चूहोंको मार कर वह खेतिहरोंका बड़ा उपकार करता है। सिवाय इस बातके कि वह अपनी रक्षाके लिये दुर्गन्धकी पिचाकारी छोड़ता है स्कंक गंदा जंतु नहीं है। वह बड़ी ही स्वच्छतासे रहता है।

वस्त्रादिके लिये स्कंकका फ़र* उतना अच्छा नहीं गिना जाता जितना अरमिन आदिका, परंतु अन्य फ़र वाले जंतुओंकी संख्या मनुष्यकी लालचके कारण बहुत कम हो गई है। इसलिये स्कंकका चर्म भी बहुत बिकता है। इसके लिये अमरीकामें कोई डेढ़ करोड़ स्कंक प्रतिवर्ष मारे जाते हैं। अब स्कंकोंकी खेती भी होने लगी है। परन्तु स्कंकों तथा अन्य फ़रधारियोंकी रक्षाका सुगम मार्ग यही जान पड़ता है कि पाश्चात्य स्त्रियाँ कुछ और सभ्यता सीखें और अपनेको जंतुओंके चर्मोंमें लपेटना ही धनाढ्यता प्रकट करनेका मुख्य साधन न समझें।

---

* फ़र अँग्रेज़ी शब्द है और इसका अर्थ है घने नरम बालों वाला चर्म जिससे पहनने या ओढ़नेका वस्त्र बनता हो।

पैण्डा

हिमालय प्रदेशमें होने वाला पैंडा एक विचित्र जीव है, जो कुछ भालूकी तरह, कुछ बिल्लीकी तरह होता है। पैण्डे दो जातियोंके होते हैं, एक छोटी और एक बड़ी। छोटा पैण्डा बहुत खेलवाड़ी जन्तु है और पालने पर सदा मनोरञ्जन करता है। परंतु यह ठंडे देशोंमें ही पाला जा सकता है। पूर्वी हिमालयके देवदारुके जंगल इसके असली घर हैं। वहाँ यह बाँसके नरम कोपलोंको बहुत खाता है, परन्तु छोटे-छोटे पक्षी तथा अन्य जन्तु भी थोड़ा-बहुत खा लेता है। पेड़ पर बड़ी सुगमतासे चढ़ सकता है और अपनी फुरतीके कारण अपनेसे दुगने बड़े कुत्तोंको मार गिराता है। बालोंकी तह घनी और मोटी होती है और लाली लिये भूरे रंगकी होती है।

बड़ा पैण्डा तिब्बतमें होता है और उसके मुख पर विचित्र ढङ्गसे काले और सफेद चिह्न रहते हैं। यह बहुत कम मिलता है और इसकी रहन-सहनके बारेमें बहुत कम ज्ञान है। कुछ ही वर्ष हुये बड़े पैण्डेके दो बच्चे पकड़ कर यूरोप गये थे।

भालू वंश

काले भालू को सभी ने देखा होगा क्योंकि मदारी उसे जगह-जगह नचाते फिरते हैं। परन्तु भालू वंशमें सफेद और भूरे भालू भी होते हैं जो अधिक ठंडे देशोंमें होते हैं। संसारके कई धर्म-ग्रंथों और पुराणोंमें भालुओं-को ऊँचा स्थान मिला है। भालुओं की कोई बीस जातियाँ हैं, परंतु सभी भालू झबरे, भारी और बलिष्ठ होते हैं। शरीरके हिसाबसे उनका सर बहुत बड़ा होता है। प्रायः सभी जातिके भालू पानीमें खूब तैर सकते हैं और पेड़ पर चढ़ सकते हैं। ध्रुवके सफेद भालूको छोड़ अन्य भालू अधिकतर निरामिष आहार और कीड़े-मकोड़े खाते हैं।

भारतवर्षका काला भालू जंगलोंमें और पहाड़ों पर होता है। यह भालू सर्वत्र काला होता है; केवल छाती पर सफेद या भूरा अर्धचन्द्राकार चिह्न होता है। ऐसा भालू तौलमें तीन, साढ़े तीन, मनका होता है। खाल बहुत मोटी होती है और बाल बड़े-बड़े होते हैं। मधु (शहद) भालुओंको बहुत अच्छा लगता है। छत्ता देखते ही वे पेड़ पर चढ़ जाते हैं और शहद खा जाते हैं। मधुमक्खियाँ उनका कुछ कर नहीं पातीं, क्योंकि झबरे बालोंके कारण डंक त्वचा तक पहुँच नहीं पाता। भालू फल-फूल भी खूब चावसे खाते हैं। महुएके फूलको बीन-बीन कर खाते हुए वे बहुधा दिखलाई पड़ते हैं। कराची ज़िलामें भालू ताड़ पर चढ़ कर बरतनोंमें एकत्रित ताड़ी भी पी जाते हैं। अधिक ताड़ी पी जानेसे मस्त हो गये भालू पकड़ भी लिये गये हैं।

भालूको दीमक खाना भी बहुत अच्छा लगता है। जहाँ कहीं वह दीमकोंका बिल देखता है भूमिको खोद डालता है। जब दीमकोंका छत्ता दिखलाई पड़ता है तो फूँक कर धूल उड़ा देता है। फिर मुँह लगा कर इतनी ज़ोरसे सुड़कता है कि अंडे-बच्चे सहित सब दीमकें उसके मुँहमें आ जाती हैं।

भालू
यह यूरपका भालू है। भारतवर्षके भालू इससे थोड़ा ही भिन्न होते हैं।

भालूके बच्चे पहले बहुत छोटे होते हैं, कुल मूसके बराबर, और आरम्भमें न उन पर बाल रहता है और न उनकी आँखें ही खुली रहती हैं। एक बारमें दो या तीन बच्चे होते हैं।

भालू विचित्र ढंगसे लड़खड़ाता-सा चलता है, परंतु वह कोसों तक बिना रुके चल सकता है। अन्य जंतुओंकी तरह भालू भी मनुष्यसे डरता है, परंतु कभी-कभी अकारण ही वह मनुष्य या अन्य जंतुओं पर आक्रमण कर पड़ता है। कुछ वर्ष हुए मैंने देखा कि पहलगाँव (काश्मीर) के अस्पतालमें एक लकड़हारा आया था जिसकी जाँघकी माँस-को भालू ने नोच लिया था। एक ही बार नोचनेमें बहुत-सा मांस निकल गया था; प्रायः जाँघकी लम्बाई भर और लगभग ८ इंच चौड़ा ४ इंच गहरा घाव हो गया था। लकड़हारेको भालूके आनेकी खबर तक न हो पायी थी। साधारणतः भालू मनुष्यका मुँह नोचता है। तब नाक, आँख, कान नुच जाता है। कभी-कभी खोपड़ी टूट जाती है। भालुओंमें नहीं कुछ तो पाँच मनुष्योंके बराबर शक्ति होती है। इनसे निहत्था मनुष्य जीत नहीं सकता। पेड़ पर चढ़नेसे भी कोई लाभ नहीं हो सकता क्योंकि भालू पेड़ पर सुगमतासे चढ़ जाता है। परंतु भालू अधिकतर रातमें ही बाहर निकलता है।

ध्रुवप्रदेशका सफेद भालू

ध्रुवप्रदेशका भालू भारतीय भालूसे कहीं अधिक भारी और बड़ा होता है। वहाँका जवान भालू लगभग बीस मनका होता है। जब चारों पैरोंके बल रहता है तो साढ़े चार फुट ऊँचा होता है, परन्तु जब वह पिछली टाँगों के बल खड़ा हो जाता है तो नौ से दस फुट तक ऊँचा पड़ता है। यह प्रायः केवल मछली और सील नामक जंतु खाकर रहता है क्योंकि उस देशमें फल-फूल उपजता ही नहीं। यह बहुत तेज़ तैरता है और ऐसा क्रूर और साहसी होता है जैसा अन्य किसी जातिके भालू नहीं होते। जाड़ेमें मादा भालू अलग चली जाती है और दो बच्चे जनती है। इनको वह बरफके नीचे बने माँदमें पालती है।

ध्रुवीय भालुओंका रंग सफेद और चमकदार होता है। बालोंकी तह मोटी और घनी होती है। गरमीकी ऋतुमें वे घास-पातकी खोजमें काफी दूर भी निकल जा सकते हैं।

ध्रुवीय भालू

ध्रुवीय भालू सफेद होता है और बर्फीले देशोंमें रहता है। अन्य भालुओंकी तरह यह भी हाथ-पैरसे चलता है, परन्तु पैरके बल खड़ा भी हो सकता है।

एक बार लंडनकी पशुवाटिकामें भले एक ध्रुवीय भालू ने धूर्तताका अच्छा परिचय दिया। बात यह हुई कि उसके आहारका कुछ अंश संयोगवश कटघरेके बाहर गिर गया। एक दयालु-हृदय दर्शकने उसे अपने छातेसे ढकेल कर कटघरेमें ठेल दिया। भालू ने तुरन्त छातेको पकड़ कर खींच लिया और तोड़ कर उसे चूर-चूर कर दिया। अन्य दर्शक बड़े प्रसन्न हुए और खूब हँसी-ठट्ठा रही। जान पड़ता है भालूको भी इसमें खूब मज़ा मिला, क्योंकि तबसे वह जान-

बूझ कर अपने आहारका एक अंश कटघरेके ज़रा बाहर रख दिया करता और जब कोई छड़ी या छातेसे आहारको छूता तो वह लपक कर उसे खींच लेता और बड़े आनन्दसे टुकड़े-टुकड़े कर डालता।

भूरा भालू

यूरोप, एशिया और उत्तरी अमरीकामें भूरा भालू होता है जो भारतके काले भालूकी ही तरह होता है। अमरीका के अन्य स्थानोंमें काला भालू होता है और ये कहीं-कहीं बहुत पालतू हो गये हैं। एक बड़े वाटिकामें तो ये भालू दर्शकोंको छेंक कर आहार माँगते हैं और बिना अपना दक्षिणा वसूल किये उनको आगे नहीं जाने देते।

उत्तरी अमरीकाके पश्चिम वाले स्थानोंमें एक बड़े नाप का भालू होता है जिसे ग्रिज़ली कहते हैं। इसके बारेमें प्रसिद्ध है कि यह अपने शत्रुको अपनी छातीसे चिपटा कर ऐसी शक्तिसे दबाता है कि उसकी हड्डियाँ चूर हो जाती हैं।

७

जलसिंह, सील और वालरस।

वाजपदी वर्ग

संस्कृतमें वाज मछलियोंके उस अंगको कहते हैं जो उनके शरीरसे पंखकी तरह निकला रहता है और जिसे चला कर वे पानीमें आगे बढ़ती हैं या मुड़ती हैं। इसलिए वाजपदीका अर्थ हुआ ऐसे जंतु जिनके पैरमें वाज रहते हैं।

वाजपदी विचित्र जंतु होते हैं। वे एक प्रकारसे मांसभुक ही होते हैं, परन्तु वे समुद्रमें या समुद्रके पास रहते हैं और केवल मछली खाते हैं। इसीलिए उनको मांसभुकोंके वर्गमें न रख कर अलग स्थान दिया गया है। इनकी पहचान यह है कि हाथ-पैरके चारों पंजोंकी अँगुलियाँ एक दूसरेसे इस प्रकार जुटी रहती हैं कि चौड़ा-सा वाज बन जाता है जिसे चला कर ये जंतु बड़े वेगसे पानीमें तैर सकते हैं। मनुष्यों ने इन जानवरोंको बहुत सताया है, क्योंकि इनकी सब जातियोंका मांस स्वादिष्ट होता है। इसके अतिरिक्त कुछ जातियोंकी खाल घने बाल वाली होती है और वालरसका दाँत हाथीदाँतकी तरह मूल्यवान होता है। इस वर्गके अधिकांश प्राणी बहुत बुद्धिमान् होते हैं और दलोंमें रहना पसन्द करते हैं। बच्चा जननेका काम विशेष ऋतुमें होता है और ऋतु आने पर नर समुद्रके किनारे उचित स्थानों पर इकट्ठे होते हैं। पत्नियोंके पीछे आपसमें विकट युद्ध भी होते हैं। इन जानवरोंकी बोली गला बैठे कुत्तेके भूँकनेकी तरह होती है।

जलसिंह

जलसिंह या समुद्री शेर कई स्थानोंमें पाया जाता है। इसको यूरोपीय सरकस वाले तमाशा दिखानेके काममें लाते हैं। उनके कान बहुत छोटे होते हैं पीछेके पैर लम्बे होते हैं, जिससे जब कभी जंतु भूमि पर चलता है तो विचित्र ढङ्गसे लड़खड़ाता-सा जान पड़ता है। परंतु यह जंतु यथेष्ट वेगसे दौड़ सकता है और चट्टानों पर सुगमता से चढ़ सकता है। एक प्रसवमें केवल एक बच्चा उत्पन्न होता है। जलसिंहोंकी एक जातिमें वस्तुओंको समतुलित करनेकी विचित्र शक्ति रहती है। कारण यह है कि प्राकृतिक जीवनमें ये मछलियोंको उछाल कर अपने मुँहमें इस प्रकार लोक लेते हैं कि मछलीका मुँह इसके मुँहमें सबसे पहले पड़े। इसीसे थोड़ी ही शिक्षा पाकर वे सरकसके खिलाड़ियोंकी तरह नाना प्रकारके खेल दिखा सकते हैं। ये जन्तु पानीमें खूब तैरते हैं परंतु अचरजकी बात यह है कि जन्मसे ही तैरना वे नहीं जानते। उनके माता-पिता बड़े परिश्रमसे इस विद्याको सिखाते हैं और तभी उनको अच्छी तरह तैरने आता है।

जलसिंह बड़े पेटू होते हैं। एक दिनमें एक जलसिंह बीस सेर मछली आसानीसे खा जाता है। जलसिंहों के कारण समुद्री पक्षियोंका भी पेट भरता है, क्योंकि अपना पेट भरनेके लिये कई जलसिंह मिलकर मछलियोंके झुण्डको घेर कर भूमिकी ओर भगाते हैं कि वहाँ उन्हें खानेमें सुविधा रहे। इससे पक्षियोंको भी मछलियाँ मारने की सुविधा हो जाती है।

वालरस

वाजपदी वर्गका सबसे बड़ा जंतु वालरस है। वह दस फुट तक लम्बा होता है और इसकी तौल १५ मन तक होती है। इसके कुकुरदंते इतने बड़े होते हैं कि वे हाथीके दाँतोंकी तरह बाहर निकल आते हैं, परन्तु ऊपर झुके होनेके
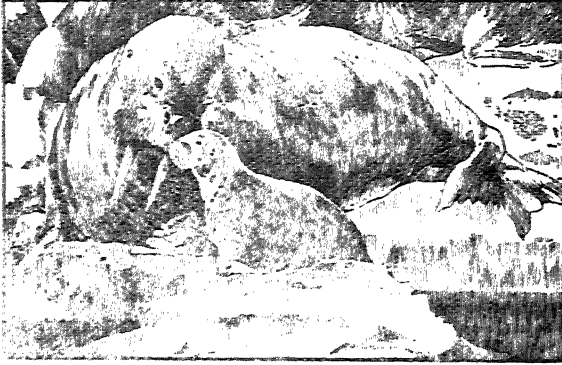
वालरस

वालरस पानीमें खूब तैर सकता है। हाथीकी तरह इसके भी दो दाँत बाहर निकले रहते हैं।

बदले वे भीतर झुके रहते हैं। ये दाँत हाथ, सवा हाथ लम्बे होते हैं। कानके स्थान पर केवल छेद रहता है। वालरस केवल ध्रुवप्रदेशीय समुद्रोंमें होता है। इसके शरीर पर ऐसा बाल तो नहीं होता जिससे इसको सरदी न लगे, परंतु इसकी खाल इतनी मोटी होती है और उसके नीचे इतनी चर्बी रहती है कि ध्रुवप्रदेशकी भयानक सर्दी वह आसानीसे सहन कर सकता है। वह अपने बाहर निकले दाँतोंको धँसा-धँसा कर बरफके टीलों पर आसानीसे चढ़ सकता है और कीचड़को खोद कर बहुत गहरी छिपी हुई मछलियोंको निकाल लेता है। इन दाँतोंसे वह अपनी रक्षा और शत्रुओंका विनाश भी करता है। परन्तु साधारणतः वालरस बहुत शांतिप्रिय होता है। छुटपनसे पाले जाने पर वह बिलकुल पालतू हो जाता है। इसे भी सरकस वाले दिखानेके लिये पाले रहते हैं। परंतु एक वालरसका दाम लगभग तीन हजार रुपया लगता है। जलसिंहका दाम केवल [illegible] रुपया और सीलका तो कुल ७५ रुपया लगता है।

सील

सीलोंकी पहचान यह है कि उनके पिछले पैर पीछेकी ओर मुड़े रहते हैं और इस प्रकार शरीरका पिछला भाग मछलियोंकी पूँछकी तरह होता है। इससे भूमिमें सील लाचार-सा रहता है, परंतु इसी पूँछके कारण वह पानीमें और भी तेज़ तैर सकता है। कानके स्थान पर एक छोटा सा चीर भर रहता है जो सीलके पानीमें घुसने पर आप-से-आप बन्द हो जाता है। सीलकी तीससे अधिक जातियाँ हैं। परंतु सभी सील ऐसे समुद्रोंके पास होते हैं जहाँ बरफ पड़ता है। एक जातिके सील दस फुट लम्बे होते हैं। इस सीलकी खालके अच्छे दाम मिलते हैं। अन्य सीलों और जलसिंहोंकी तरह इस जातिके सीलोंको भी संगीत बहुत प्रिय है। शिकारी लोग इस बातसे लाभ उठाते हैं। वे बाजा बजाना आरम्भ करते हैं और जब सील उनके पास आ जाते हैं तब गोली चलाकर उन्हें मार डालते हैं। सीलोंमें सबसे बड़े शरीर वाली जातिके सील बीस फुट लम्बे होते हैं और उनकी तौल कई टन तक

सील

सीलके शरीरका पिछला भाग मछलियोंकी पूँछके समान होता है, जिससे ये प्रायः मछलीकी भाँति तैर सकते हैं।

पहुँच जाती है। बर्लिनकी पशुवाटिकामें एक सील था जो अट्ठारह फुट लम्बा था और एक दिनमें मन सवा मन मछली खाता था।

सील भी अन्य स्तनपोषियोंकी तरह गरम खूनका जानवर है। एक तो अपने रोएँदार खालसे, फिर खालके नीचे चरबीकी मोटी तहसे, यह बाहरी ठंढसे बचा रहता है। इसके शरीरसे बराबर नाम-मात्र तेल निकलता रहता है, जिससे इसकी खालके रोएँ पानीसे तर नहीं होने पाते। सील पानीमें आधे-आधे घंटे तक डूबा रह सकता है। इसके फेफड़ोंकी बनावट ऐसी रहती है कि इतने समय तक इसका दम नहीं घुटता। सील मछलियोंसे भी तेज़ तैर सकता है और इसलिये उनको आसानीसे पकड़ सकता है। कुछ लोग समझते हैं कि सील भी एक प्रकारकी मछली है, परंतु यह भ्रम है; सील स्तनपोषी जंतु है।

ऐलन महाशय सीलोंके जनन-समयकी रहन-सहन बतलाते हुये लिखते हैं:—

मैंने एक बार एक नरको देखा जिसने सामने ही की ओर एक स्थान घेर रक्खा था और जिसको उस स्थानकी रक्षाके लिये ५०-६० युद्ध करने पड़े थे। सबमें उसकी विजय हुई। उसका सारा शरीर घावोंसे भर गया था जिनमेंसे कोई-कोई हरे थे और कोई सूख चुके थे। उसकी एक आँख निकल पड़ी थी। तो भी उसने अपना स्थान नहीं छोड़ा और १५-२० मादाओंको बराबर घेरे रहता था।

लगभग तीन मास तक कोई नर अपने स्थानको और अपनी मादाओंको छोड़कर नहीं हटता। अतएव उनको निराहार रहना पड़ता है। सीलोंका यह लम्बा उपवास आश्चर्यजनक है। सब जन्तु तो शरद्-ऋतुमें चिरस्थायी विश्राम और उपवास किया करते हैं—वे पड़े सोते रहते हैं और किसी प्रकार श्रम नहीं करते। इसके विरुद्ध सीलोंको अपने उपवासमें प्रतिक्षण चौकन्ना रह कर भीषण युद्ध करने पड़ते हैं।

जैसे-जैसे मादायें आती जाती हैं सब नर उनको अपने-अपने स्थानमें लिवा जानेकी चेष्टा करते हैं। आगे बढ़-बढ़कर सब उनका आदरपूर्वक स्वागत करते हैं किन्तु साथ-ही-साथ बहुत कुछ धींगामुश्ती भी होती है। नर मादाओंको बलात् ढकेलकर भी अपने आधीन करनेमें कोई त्रुटि नहीं करते।

क्षण-मात्रके लिये किसी नरकी आँख चूकी नहीं कि उसके पड़ोसी ने उसके अंतःपुरमें लूट मचाई और एक-न-एक मादाको, दाँतसे पकड़ कर घसीट ले गया! फिर क्या है, तुरन्त भीषण युद्धनाद और कोलाहल मच जाता है। आस-पासके सारे नर इस लड़ाईमें आ जुटते हैं। परन्तु जब तक ये मूर्ख आपसमें लड़ते हैं तब तक कोई चतुर चोर आ कूदता है और उस मादाको जिसके पीछे रुधिरकी नदियाँ बहाई जा रही हैं घसीटकर अपने ज़नानख़ानेमें डाल लेता है।

८

ह्वेल, सूँस, डॉलफ़िन

तिमिंगिल वर्ग

संस्कृतमें तिमि बहुत बड़ी मछलीको कहते हैं और तिमिंगिल ऐसी बड़ी मछलीको कहते हैं जो तिमिको भी निगल जाय। इसीलिये ह्वेल आदिकोंके वर्गको तिमिंगिल वर्ग कहा जाता है। लैटिनमें इस वर्गको सीटेशिया कहते हैं (सीटस = ह्वेल)।

तिमिंगिल वर्गमें ह्वेल, सुईस (सूँस), और डॉलफ़िन हैं। इन सभी स्तनपोषियोंमें विशेषता यह है पिछले पैर बाहरसे दिखलाई नहीं पड़ते। इनकी टाँगोंकी हड्डियाँ शरीरके भीतर ही रहती हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि उत्तरोत्तर विकाससे ही किसी स्थलचर प्राणीसे ह्वेल उत्पन्न हुए हैं और काममें न आनेके कारण पिछली टाँगें छोटी होते-होते अब प्रायः मिट गई हैं। ह्वेलोंकी कुछ जातियाँ पहले ऐसी होती थीं, परन्तु अब लुप्त हो गई हैं, जिनमें पिछली टाँगें कुछ बाहर निकली रहती थीं।

मनुष्यके आधुनिक यंत्रोंके आक्रमणके आगे ह्वेलकी बची-खुची जातियोंके भी लुप्त हो जानेका डर है। यदि कोई उपाय न किया जायगा तो वर्तमान ह्वेलोंकी जातियाँ मिट ही जायँगी। मनुष्य ह्वेलकी चर्बी, हड्डी और खाल अपने काममें लाता है। प्रतिवर्ष कई हज़ार ह्वेलें मारी जाती हैं। ऊपरसे यह भी कठिनाई है कि अभी तक इसका अच्छा ज्ञान किसीको नहीं है कि ह्वेलोंकी वास्तविक रहन-

सहन कैसी है। इसलिये मनुष्य व्हेलके प्रजननमें सहायता भी नहीं पहुँचा सकता। एक बातका अभी हालमें ही पता चला है, वह यह कि सम्भवतः व्हेलोंका जीवन-विस्तार अपने वृहत्काय शरीरके अनुपातमें बड़ा नहीं है, क्योंकि पता चला है कि व्हेलोंमें संतति उत्पन्न करनेकी शक्ति ढाई वर्षमें ही आ जाती है।

व्हेल पानीमें रहने वाला जंतु है। तो भी यह मछली नहीं है. यह स्तनपोषी जंतु है। मादा अपने बच्चोंको दूध पिलाती है। व्हेलोंका रुधिर अन्य स्तनपोषियोंकी तरह गरम होता है, मछलियोंकी तरह ठंढा नहीं। मछलियाँ पानीमें बराबर रह सकती हैं, परंतु अन्य स्तनपोषियोंकी तरह व्हेलको भी खुली वायुमें आकर साँस लेना पड़ता है; हाँ, बराबर जलमें रहनेसे इसे पानीके भीतर डूबे रहनेकी क्षमता प्रायः स्तनपोषियोंसे बहुत अधिक मात्रामें है।

तिमिंगिल वर्गके प्राणियोंका आकार मछलियोंका-सा होता है। सर बड़ा होता है; समूचे शरीरका तिहाई भाग सर ही होता है। गरदन ऐसी पतली नहीं होती कि सर शरीरसे अलग जान पड़े। उनके शरीर पर लोम नहीं होता। शरीर बराबर तैलयुक्त रहता है, क्योंकि भीतरसे ज़रा-ज़रा तेल या चर्बी निकलती रहती है। मछलियोंकी तरह खड़ी पूँछके बदले व्हेलकी पूँछ बेंड़ी होती है। त्वचाके नीचे चर्बीकी मोटी तह होती है। इस प्रकार बाहरकी सरदी व्हेलके शरीरके भीतर नहीं पहुँचने पाती।

व्हेल साधारणतः ध्रुव-प्रदेशी ठंढे समुद्रोंमें रहती है; परंतु घूमते-फिरते वह दूर-दूर तक पहुँच जा सकती है। भारतवर्षके आस-पास भी एक-दो बार व्हेलें देखी गई हैं।

व्हेल अव्वल नंबरकी गोताखोर है। एक-एक घंटे तक वह पानीमें डूबी रह सकती है। परंतु साधारणतः वह प्रति दस-पंद्रह मिनट पर पानीकी सतहके ऊपर आकर साँस लिया करती है। ऊपर आकर पचास-साठ गहरी साँसें लेती है। वह साँस इतनी जोरसे छोड़ती है कि हवा फव्वारेके रूपमें बहुत ऊपर तक उड़ जाती है। बाहर बहुत ठंढक रहनेके कारण व्हेलके भीतरसे निकला जल-वाष्प जम जाता है और बाहर निकली साँस दूरसे जलके समान दिखलाई पड़ती है। इससे कुछ लोग समझते हैं कि व्हेल पानीकी साँस लेती है, हवाकी नहीं, परंतु यह भ्रम है। भीतर साँस खींचनेका शब्द सीटी-सा होता है और दूर तक सुनाई पड़ता है।
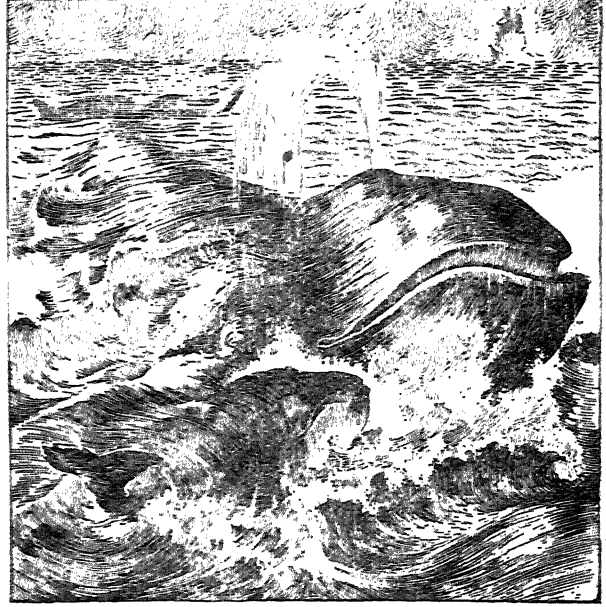
व्हेल

व्हेल वस्तुतः मछली नहीं है, यह स्तनपोषी जंतु है।

व्हेलका नथुना इस प्रकार बना होता है कि गोता लगाते ही वे अपने-आप बन्द हो जाते हैं। व्हेलके कान बाहर नहीं निकले रहते। परन्तु आँखोंके पीछे स्वयं बन्द होने वाले छेद रहते हैं जो वस्तुतः कान हैं। कुछ जातिके व्हेलोंके मुँहोंमें लम्बी-लम्बी लचीली हड्डियाँ रहती हैं, ठीक जैसे किसी भीमकाय दानवकी कंघी हो। इस कंघीके दाँते ग्यारह फुट लम्बे होते हैं। जब व्हेलको भूख लगती है और छोटी-छोटी मछलियाँ, केकड़े, झींगे आदिके झुंड दिखलाई पड़ जाते हैं तो व्हेल मुँह फैला कर उनके बीच बहुत वेगसे दौड़ती है। पानी पूर्वोक्त कंघीसे बाहर निकलता जाता है परन्तु आहार भीतर ही रह जाता है। इस प्रकार उसका मुँह थोड़े ही समयमें छोटे जीव-जंतुओंसे भर जाता है। तब व्हेल उन्हें धीरे-धीरे निगल जाती है। इस

प्रकार मुखके भीतरकी कंघी वस्तुतः चलनीका काम देती है। इन व्हेलोंका भीतरी गला बहुत सँकरा होता है और वे बड़ी मछलियोंको नहीं निगल सकतीं।

परन्तु यह न समझना चाहिए कि सभी जातिकी व्हेलें इसी प्रकार छोटी-छोटी मछलियों, केकड़ों, जेली-फिशों आदि पर जीविका-निर्वाह करती हैं। कुछ जातियोंकी व्हेलोंमें दाँत होते हैं और गला बड़ा होता है। वे दाँतोंसे बड़े-बड़े जल-जन्तुओंको पकड़ कर निगल जाती हैं। रौरकाल नामक व्हेल सबसे बड़ा होता है। यह सौ, सवा सौ, फुट लम्बा होता है। इसकी मोटाई हाथीकी ऊँचाईसे भी अधिक होती है—व्हेल यदि खोखला होता तो हाथी उसमें आरामसे रह सकता। इसमें सन्देह नहीं कि स्तन-पोषियोंमें व्हेल ही का शरीर सबसे बड़ा है। अधिकांश व्हेलें झुंडोंमें रहती हैं। कई बहुत तेज़ तैर सकती हैं। व्हेलोंकी कुबड़ी (हंप बैक) नामकी जातिका नर ५० फुट लम्बा और कई सौ मनका होते हुए भी पानीसे उछल-उछल कर मादा व्हेलको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता है।

एक जातिके व्हेलके पेटमें अंबर नामक सुगन्धिप्रद पदार्थ मिलता है। यह डेढ़ दो सौ रुपया प्रति छटाँकके भावसे बिकता है। एक व्हेलमें बीस-पचीस सेर अंबर निकलता है।

एक व्हेलसे लगभग ३०० मन चर्बी और इतनी ही तौलकी हड्डियाँ निकलती हैं। खाल ऊपरसे मिलती है। प्रत्येक व्हेलसे कोई दस-पन्द्रह हजार रुपयेका माल निकलता है। इसीसे व्हेलका शिकार किया जाता है।

श्रीयुत कालीचरन ने एक लेख विज्ञानमें १९२१ में छपाया था। उसमें व्हेलके शिकारका अच्छा वर्णन है। वह यहाँ उद्धृत किया जाता है।

व्हेलका शिकार

व्हेलका शिकार किया जाता है। लोग जहाज़में बैठकर दूर दूर तक शिकार करने जाते हैं। जहाज़के साथ कुछ छोटी-छोटी डोंगियाँ रहती हैं। लोग अपने साथ खाने पीनेका सब सामान ले जाते हैं। जहाज़में एक ऊँचा स्थान रहता है, जिसको 'कव्वेका घोंसला' कहते हैं। इसी पर एक आदमी हमेशा बैठा व्हेलको देखा करता है। इस ऊँचे स्थानसे मीलोंकी दूरीपरकी व्हेल, जब वह विहार करने और अपने सर परके छिद्रोंसे साँस लेनेके लिए समुद्रके तल पर आती है, दिखाई पड़ जाती है। तब लोग छोटी-छोटी डोंगियों पर बैठकर उसको मारनेके लिए जाते हैं। अगर दिन साफ होता है और समुद्रमें हवा इत्यादिके कारण बड़ी-बड़ी लहरें नहीं उठतीं तो व्हेलके आवाज़ सुनकर भाग जानेका डर रहता है। इसलिए बड़ी सावधानीसे जाना पड़ता है। एक-एक नावपर प्रायः आठ-दस आदमीसे अधिक नहीं रहते, परन्तु कई नाव साथ-साथ रहती हैं। ये लोग नावमें भाले और एक प्रकारका लाँबा तीक्ष्ण हथियार, जिसको हारपून कहते हैं, ले जाते हैं। इनके अतिरिक्त लम्बी-लम्बी डोरियाँ भी ले जाते हैं। प्रत्येक डोरीका टुकड़ा सात-आठ सौ फुटसे कम नहीं होता और इस प्रकारके कई टुकड़े रहते हैं। ये हारपूनसे बँधे रहते हैं। जो लोग हारपून चलाते हैं वे नावके आगे-पीछे किनारों पर खड़े होते हैं और बाकी लोग नावको खेते रहते हैं। समीप जाकर हारपून मारते हैं। इसके लगते ही व्हेल सीधी पानीमें डुबकी लगाती है और हारपूनमें लगी हुई डोरी उसके पीछे खिंचती जाती है। परन्तु वह पानीके भीतर आधे घंटेसे अधिक ठहर नहीं सकती और साँस लेनेके लिए उसे फिर ऊपर आना पड़ता है। जब ऊपर आती है तो फिर लोग इसी प्रकार हारपून मारते हैं। इस प्रकार दो-चार बार ऊपर नीचे आने-जाने और रुधिरके बह जानेके कारण व्हेल थककर पानीपर तैरने लगती है। तब लोग भालों से उसे मार लेते हैं और काट-काटकर जहाज़में भर लेते हैं।

कभी-कभी यह पानीमें न डूबकर सीधी इधर-उधर भागती है और शिकारी इसका पीछा करते चले जाते हैं। यह कोसों तक भागती चली जाती है और लोग डोरियाँ जोड़ते चले जाते हैं, और इन्हीं डोरियोंके सहारे नावपर पीछा करते चले जाते हैं। कभी-कभी सुबह की भगाई हुई व्हेलको शामको मार पाते हैं। इससे पाठकोंको यह न समझना चाहिये कि व्हेलका शिकार सुगम है और वह अपने दुश्मनोंपर आक्रमण नहीं करती। नहीं, यह उतने ही जोरसे आक्रमण करती है जैसा कि इसका शरीर है। मान लिया कि इसके पास कोई अस्त्र नहीं है परन्तु परमात्माने इसकी पूँछ और जबड़ोंमें इतना असीम बल दिया है कि

इससे शिकारियोंका बचना मुश्किल हो जाता है और वे अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठते हैं। यह अपनी पूँछको नाव पर इस बलसे मारती है कि नावके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, या जबड़ोंसे पकड़कर नावको तोड़ डालती है। अगर कोई दूसरी नाव पास न हुई तो शिकारी पानीमें डूबकर मर जाते हैं। यह देखा गया है कि इसने चार-चार नावों को बारी-बारीसे शीघ्र ही डुबा दिया है! ऐसा भी देखा गया है कि यह पूँछको नीचेसे नावमें बड़ी जोरसे मारती है और नाव पानीसे कई गज ऊपर उठ जाती है। शिकारी उसके नीचे आ जाते हैं और नावके साथ ही डूब जाते हैं। इससे व्हेलकी पूँछके बलका अनुमान किया जा सकता है। शिकारियोंको इसके शिकारमें कैसा कष्ट होता है और उनको कितनी कठिनाइयाँ पड़ती हैं, इसका हाल निम्नलिखित दो-तीन घटनाओंसे मालूम हो सकता है।

मई २९ सन् १८०७ ई० को इस प्रकारकी एक घटना हुई थी। रिजोल्यूशन नामी जहाज़के एक अफसरने एक व्हेलको हारपून मारा; वह डुबकी मार गई। जब ऊपर निकली तो उसने अपनी पूँछ और सर इस भयानक रीतिसे दिखाये कि सब लोग देखकर ठिठक गये और पास जानेका किसीको साहस न पड़ा। अन्तमें जहाज़के कपतानने साहस करके एक और हारपून मारा। इतनेमें एक दूसरी नाव पर कुछ लोग व्हेलके पास पहुँच गए। व्हेल ने नाव पर बीचों बीच पूँछका इतने जोरसे प्रहार किया कि उसके सब तख्ते टूटकर टुकड़े-टुकड़े होगये और नाव पानी में धँस गई। इस नावका हारपून मारनेवाला, जो बीचमें बैठा था, पहिले ही पानी में कूद पड़ा था; वह बच गया। इसी प्रकार रोइम जहाज़के कैप्टेन लाइन्स एक समय लैब्राडरके समीप शिकार कर रहे थे। उन्होंने एक बड़ी भारी ह्वेलको पानी उछालते हुए कुछ दूर पर देखा। चार डोंगियोंमें थोड़े-थोड़े आदमी बैठकर उसको मारनेके लिये गये। इसमें दो नावें एक साथ ही पहुँचीं और उन्होंने व्हेलपर आक्रमण किया। व्हेल तुरन्त डुबकी लगा गई और कुछ देरके बाद बाहर निकल नावमें इस ज़ोरसे अपने सरसे टक्कर दी कि वह पन्द्रह फुट पानीसे ऊपर उठ गई और ऊपरसे उलटकर गिरी। सब आदमी पानीमें इधर-उधर गिरे और अन्य नाववालोंने उन्हें बचा लिया, परन्तु एक मनुष्य नावमें फँस गया और डूबकर मर गया। इससे व्हेलकी पूँछ और सरके बलका पता मिल सकता है।

एक और विचित्र घटना इसी प्रकारकी हुई थी, जिसमें एक ही नाव् से तीन आदमी डूबकर मर गये थे। ग्रीनलैन्ड समुद्रमें एनविल जहाज़के सात आदमी नावमें बैठकर गये थे। इन लोगोंने एक व्हेलपर हारपून मारा। वह थोड़ी देर के लिए डूबी और फिर नावके नीचे आकर इतनी ज़ोरसे पूँछसे फटकार दी कि नाव पानीसे बहुत ऊपर उठ गई और उलटकर पानीमें गिरी। उसमें से केवल ४ मनुष्य बचे और बाकी तीन जो डोरियोंमें फँस गये थे डूब गये।

कैप्टेन स्कोर्सबी जो बहुत योग्य व्यक्ति और व्हेलके शौकीन शिकारी थे लिखते हैं कि १८११ ई० में उन्होंने एक व्हेलके बच्चेको यह सोचकर मारा कि इसकी माँ उसको बचानेके लिए आवेगी तो उसे भी मारेंगे। उनका खयाल गलत न निकला। बच्चेकी माँ कहीं निकट ही थी। उसने आकर बच्चेको पकड़ा और खींचकर ले चली थी। इन लोगोंने उसका पीछा किया और बहुत प्रयत्नसे उसे भी मार लिया।

सूँस और डॉलफिन

सूँस (संस्कृत शिंशुमार) कई बातोंमें व्हेलसे बहुत मिलती-जुलती है, परन्तु व्हेलसे वह बहुत छोटी होती है।
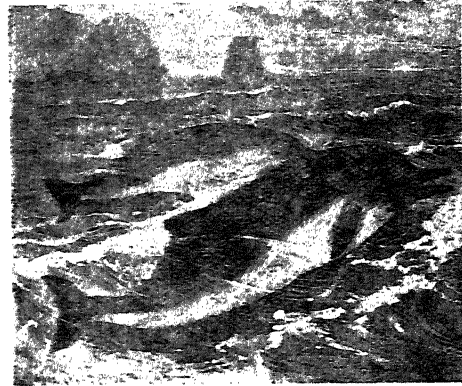
डॉलफ़िन

डॉलफ़िनोंके सिरका अग्रभाग चोंचकी तरह आगे बढ़ा रहता है।

सूँस ठंडे समुद्रोंमें भी होती है और ऊष्णदेशीय समुद्रोंमें भी। वह समुद्रसे नदियोंके मीठे पानीमें भी चली आती है। डॉलफ़िनें सूँसोंसे मिलती-जुलती होती हैं, भेद इतना ही होता है कि वे सूँसोंसे अधिक सुन्दर होती हैं और उनके सिरका अग्र भाग चोंचकी तरह अधिक बढ़ा रहता है।

सूँसें गंगा, जमुना, ब्रह्मपुत्रा, सिन्धु आदि भारतीय बड़ी-बड़ी नदियोंमें अकसर आ जाती हैं। जब ये साँस लेने ऊपर उठती हैं तो ये दिखलाई पड़ जाती हैं। सूँसका शरीर छः-सात फुटका होता है। रंग गहरा सुरमई होता है। आँखें बहुत छोटी होती हैं। भारतमें मिलने वाली सूँसोंको डॉलफ़िनों की तरह चोंच होती है जिससे वे कीचड़में से मछली घोंघे आदि खोद ले सकती हैं।

सूँसको कहीं-कहीं लोग भालेसे मारते हैं अन्यथा उसे जालसे फँसाते हैं। वैद्य लोग सूँसके तेलकी मालिश गठिया आदिमें उपयोगी समझते हैं।

९

मूस, गिलहरी आदि कुतरने वाले जंतु

दंशक वर्ग

संस्कृत शब्द दंशनका अर्थ है कुतरना और दंशकका अर्थ है कुतरने वाले प्राणी। दंशक वर्गमें चूहे, गिलहरी आदि जंतु हैं। दंशकोंकी कई हजार जातियाँ हैं। संसारके प्रत्येक भागमें ये जंतु मनुष्यको परेशान किया करते हैं। कई जातियाँ तो अपने लोमश चर्म (फ़र) के लिए पाली जाती हैं परन्तु अधिकांश जातियोंसे मनुष्यको कोई लाभ नहीं होता। वे मनुष्यके परिश्रमसे उगाये अनाजको खाकर करोड़ों रुपयोंकी हानि करती हैं। कुछ जातियाँ रोग भी
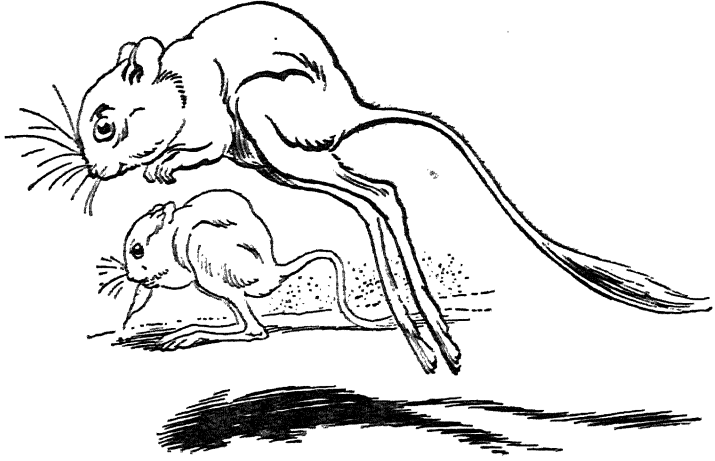
जरबोआ

जरबोआ नामक चूहेकी पिछली टाँगें बड़ी लम्बी होती हैं और यह हरिनोंकी तरह छलांग मार कर चलता है।

फैलाती हैं। आँका गया है कि केवल चूहोंसे भारतवर्षमें प्रतिवर्ष साठ करोड़ रुपयेकी हानि होती है। तीस करोड़ रुपयेका तो वे अनाज या अन्य वस्तु खा जाते हैं या कुतर कर नष्ट कर डालते हैं। चूहोंसे प्लेग फैलता है। प्लेगसे हजारों व्यक्ति मरते हैं या रोग-पीड़ित हो कर काम करनेके अयोग्य हो जाते हैं, और यदि देखा जाय कि ये व्यक्ति अपने जीवनमें साधारणतः कितना धन कमा सकते तो पता चलता है कि इस रीतिसे भी लगभग तीस करोड़ रुपयेका प्रतिवर्ष घाटा रहता है। रोगको वशमें करनेके लिये सरकार को लाखों रुपया प्रतिवर्ष खर्च करना पड़ता है।

दंशकोंकी पहचान यह है कि उनके सामने वाले दाँतों में से दो दाँत ऊपर, दो दाँत नीचे, रुखानी की तरह धारयुक्त होते हैं। ये बड़े पैने होते हैं और बराबर पैने बने रहते हैं। इसका कारण यह है कि ये दाँत बराबर बढ़ते रहते हैं और प्रतिदिन काममें आते रहनेके कारण उतना ही घिसते भी रहते हैं। परन्तु कुतरने वाले दाँत सामनेकी ओर कड़े पदार्थके और पीछेकी ओर नरम पदार्थके बने रहते हैं। इसलिए वे सामने कम और पीछेकी ओर अधिक

घिसते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि दाँतोंमें रुखानी की तरह तीक्ष्ण धार बराबर बनी रहती है। इन दाँतोंसे, केवल कड़ी धातुओंको छोड़, दंशक प्रायः सभी पदार्थ कुतर सकते हैं, चाहे वे कितनी भी कड़ी हों। यदि दाँत किसी चोटके कारण टेढ़े हो जायँ और कुतरने योग्य न रहें तो वे घिसने नहीं पाते, और इसलिए बराबर बढ़ते रह कर वे अन्तमें इतने बड़े हो जाते हैं कि चूहेका खाना-पीना बन्द हो जाता है और वह इसी कारण मर जाता है।

दंशकोंमें सबसे बड़ा जंतु इस समय लगभग बड़े सूअरके बराबर होता है। इसे भी एक प्रकारका चूहा ही समझना चाहिए। यह दक्षिणी अमरीकामें होता है और वहाँके निवासी मांसके लिए इसका शिकार करते हैं।

वेस्ट इंडीज़का चूहा मुँहसे पूँछकी जड़ तक (अर्थात् पूँछ छोड़ कर) २२ इंच लम्बा होता है।

जरबोआ नामक चूहेकी पिछली टाँगें बड़ी लम्बी होती हैं और यह हरिनोंकी तरह छलांग मारते चलता है। यह शिकारी कुत्तोंके समान तेज़ दौड़ सकता है। कहीं बैठना होता है तो कांगरूकी तरह अपनी पिछली टाँगों और पूँछ के बल बैठ जाता है। जरबोआ अफ़रीकामें होता है। उसी की जातिका जंतु भारतवर्षमें भी होता है जिसे हरिना-मूसा कहते हैं।

चूहा

चूहे या मूस प्रायः सभी देशमें होते हैं। चूँ-चूँ बोलनेके कारण उनको चूहा और अनाज चुरानेके कारण उनको मूस कहते हैं (संस्कृत मुष = चोरी करना)। चूहे बड़े होते हैं चुहिया छोटी होती है। बड़ेको अँग्रेज़ोंमें रैट और छोटीको माउस कहते हैं।

चूहे किसी विशेष ऋतुमें बच्चे नहीं देते; बच्चा जनने के लिए उन्हें सभी ऋतुएँ अनुकूल पड़ती हैं। बच्चा पेटमें लगभग तीन सप्ताह रहता है और एक प्रसवके बाद चौबीस घंटेके भीतर ही दूसरा गर्भ रह सकता है। एक प्रसवमें आठ-दस बच्चे होते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे चूहोंकी संतति बहुत शीघ्र बढ़ती है। गणनासे पता चलता है कि एक जोड़ी चूहेसे एक वर्षमें नाती-पोता मिलाकर लगभग एक हज़ार चूहे उत्पन्न हो जा सकते हैं, और यदि उन्हें पर्याप्त भोजन मिलता रहे और शत्रु उनको न मारें तो दो वर्षमें उनकी संख्या दो करोड़ हो जायगी। इसलिए यदि चूहोंको बढ़ने और बच्चे उत्पन्न करनेकी स्वच्छंदता मिले तो शीघ्र ही वे सारे पृथ्वी पर आधिपत्य जमा लें।
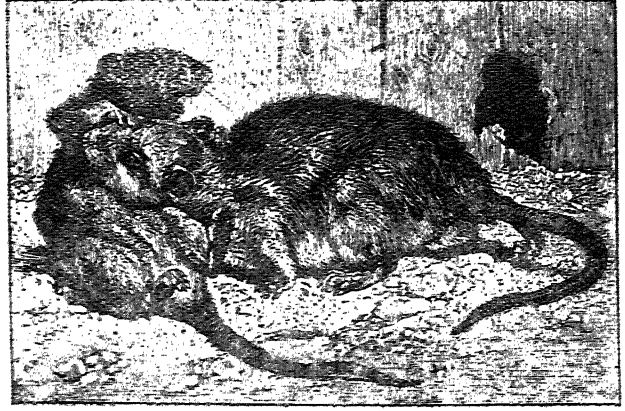
चूहे
भूरा चूहा काले चूहेको मार रहा है। भूरे चूहोंके कारण काले चूहोंकी संख्या बहुत कम हो गयी है।

परन्तु मनुष्य, बिल्ली, चील, उल्लू, तथा अन्य पशु-उसके पीछे पड़े रहते हैं। तो भी विष, चूहेदानी, गैस, बन्दूक, आदि यंत्रों और पालतू बिल्लियों और कुत्तोंकी सहायता लेने पर भी मनुष्य उनको मिटा नहीं पाया है। मुख्य कारण यही है कि वे इतना शीघ्र और इतना अधिक बच्चे उत्पन्न करते हैं, और वे काफ़ी चतुर और चौकन्ने भी होते हैं। अन्य चूहोंको मूसदानियोंमें फँसा देखकर चूहे समझ जाते हैं कि बात क्या है और तब वे कठिनाईसे फँसते हैं। यह आँखों देखी बात है कि एक चूहेने भूमिके भीतर अपना निवास स्थान बना रक्खा था। जब उसके बिलके पास कमानीदार चूहाफाँस लगा दिया गया तो वह दूसरे बिलसे आने-जाने लगा जिसे लोगों ने पहले नहीं देखा था। जब उधर भी वैसा ही चूहाफाँस लगा दिया गया तो उसने उस पर मिट्टीका बड़ा-सा ढेला अपने

पैरोंसे फेंक कर खटका छिटका दिया और निकल भागा।

बेचनेके लिये विशेष जातियोंके चूहे पाले भी जाते हैं। कुछ तो चीनी होटलोंमें खपते हैं क्योंकि चीनियोंको चूहेका मांस बड़ा स्वादिष्ट लगता है; कुछ खदानों और पनडुब्बी जहाज़ोंके कामके लिए उत्पन्न किये जाते हैं क्योंकि चूहोंके स्वास्थ्यसे बराबर पता चलता रहता है कि वहाँका वायु
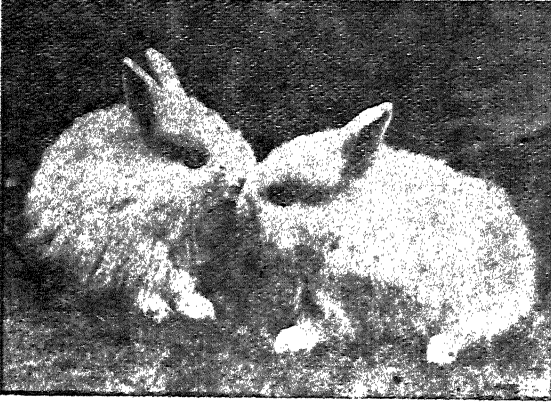
झबरे सफेद चूहे

पालनेके लिए तरह-तरहके सुन्दर चूहे अब उत्पन्न किये गये हैं।

दूषित हो गया है या नहीं; और कुछ जातिके चूहे अपने सुंदर रंग-रूपके कारण घरोंमें पाले जाते हैं।

संसारमें कुछ बिना पूँछके भी चूहे होते हैं। इनमेंसे एक जाति—हैमस्टर—बड़े तगड़े होते हैं। वे बड़े मिहनती और बड़े क्रोधी भी होते हैं; कुत्तेके मुँहमें वे अपना दाँत गड़ा लेते हैं तो मरते दम तक उन्हें नहीं छोड़ते।

भारतवर्षके चूहे

भारतवर्षमें भूरा चूहा बहुत होता है। कुछ लोगोंकी सम्मति है कि घरेलू भूरा चूहा जो अब यूरोपमें भी होता है सम्भवतः भारतवर्षसे ही वहाँ पहुँचा। दो सौ, सवा दो सौ वर्ष पहले वहाँ ऐसे चूहे नहीं होते थे। अब वहाँ भूरे चूहों ने अन्य चूहोंको मार कर और उनकी संख्या कम करके अपना राज्य जमा लिया है। ये चूहे बड़े बुद्धिमान होते हैं। उदाहरणतः; बोतलमें रक्खे तेल को पीनेके लिये एक चूहा बोतल पर चढ़ कर अपनी पूँछ बोतल में डाल देता है और उसे बाहर खींच अपने साथी को इच्छा भर तेल चटा देता है। तब दूसरा इसी प्रकार पहलेकी तृप्ति करता है। इस प्रकार पूरी बोतल थोड़ेसे चूहे मिल कर खाली कर देते हैं।

चुहिया ठीक चूहे जैसी होती है, केवल छोटी होनेके कारण इसे दूसरी जातिका माना जाता है। इस जातिकी एक नस्ल ऐसी है जिसमें सफेद चुहियाएँ होती हैं। उन्हें लोग पालते हैं क्योंकि वे बहुत सुन्दर लगती हैं।

एक जाति के चूहे पेड़ों पर रहते हैं और अपना घोंसला घासके पेड़ों या झाड़ियोंमें बनाते हैं।

घूँस वस्तुतः चूहोंकी ही एक जाति है। ये बहुत बड़े होते हैं—पूँछ छोड़ कर लगभग १० से १५ इंचके, और पूँछ भी दस-बारह इंचकी होती है। इनके बिल बड़े होते हैं और यदि ये दीवारों के नीचे हों तो दीवार अकसर बैठ जाती है। ये अनाजकी खत्तियोंमें नीचे-नीचे बिल बना करके पहुँच जाते हैं और तब बहुत हानि करते हैं। आलूके खेतोंको भी ये बहुत नुकसान पहुँचाते हैं।

हरिना-मूसा भारतवर्षमें भी होता है। उसका शरीर ६-७ इंच का होता है और पूँछ लगभग ८ इंचकी होती है। रंग भूरा, परन्तु कुछ पीलापन लिये होता है।

एक जाति के चूहे केवल खेतोंमें ही रहते हैं। ये ६-७ इंचके होते हैं और पूँछ छोटी होती है। फसलके समयमें सेरों अनाज अपने बिलोंमें भर कर रख लेते हैं।

खरहा

खरहों के कान और पैर बड़े होते हैं। इन्हींके भरोसे खरहा अपनी रक्षा करता है। उसकी श्रवण शक्ति (सुनने की शक्ति) बड़ी तीव्र होती है। ज़रा भी खटका होते ही वह छलांगें मार कर भाग जाता है। तेज़-से-तेज़ शिकारी कुत्ता उसे दौड़ कर नहीं पकड़ सकता। उछल-उछल कर दौड़नेके कारण ही उसे शशक भी कहते हैं (संस्कृत शश = उछलना)। वह झाड़ियोंमें छिपा रहता है, इसलिये उसे खरहा कहते हैं (खर = तृण; हा = वाला)। उसके कान गदहेके कानोंकी तरह लम्बे होते हैं। इसीसे

उसे फारसीमें खरगोश कहते हैं (खर = गदहा; गोश = कान)।

खरहे एक छलांगमें ६-७ फुट कूद सकते हैं, दो घंटे तक बराबर दौड़ सकते हैं और इतने समय में वे ६० मील निकल जा सकते हैं। वे भूमि खोद कर बिलोंमें नहीं रहते, झाड़ियोंमें छिप कर रहते हैं। वे संध्या समय, पूर्ण अंधकार होनेके पहले ही निकलते हैं।

लोग समझते हैं कि खरहा बहुत डरपोक होता है। यह ठीक भी है। परन्तु आपसमें खरहे बड़ी क्रूरतासे लड़ते हैं और यदि कोई शत्रु आ जाय और बच्चोंके भागनेका अवसर न हो तो नारी खरहा निडर हो कर उससे भी लड़ जायगी और अपनी जान तक दे देगी। एक प्रसवमें ४ से ६ तक बच्चे उत्पन्न होते हैं और महीने, सवा महीने, अपने माता-पिताके संग रह कर वे अलग हो जाते हैं। खरहेके बच्चोंकी आँखें जन्म से ही खुली रहती हैं।

विलायतमें शौकके लिये खरहोंका शिकार खेला जाता है। शिकार में कुत्ते खरहेके मार्गको सूँघते हुये उसका पीछा करते हैं। खरहा इसे जानता है और कुत्तोंसे पिंड छुड़ानेके लिये कई चतुर उपायोंसे काम लेता है। बहुधा खूब आगे जाकर वह उसी मार्गसे कुछ दूर वापस आता है और तब एकाएक जोरसे छलांग मार कर एक बगल कूद जाता है। कुत्ते आगे दौड़ जाते हैं और कुछ दूरके बाद उसका पता नहीं पाते। आस-पास कोई नदी होती है तो खरहे अकसर उसमें कूद पड़ते हैं और तैर कर पार हो जाते हैं।

खरहोंकी तरह एक दूसरा जन्तु होता है जो कुछ छोटा होता है और रैबिट कहलाता है। यह यूरोपके दक्षिणमें और अफ्रीकाके उत्तरमें बहुत होता है परन्तु अन्यत्र भी मिलता है। रैबिटोंके बच्चोंकी आँखें आरम्भमें ग्यारह दिन तक बन्द रहती हैं और खाल पर बाल नहीं रहता। रैबिट भूमिमें बिल खोद कर रहता है। रैबिटका परिवार शीघ्र बढ़ता है। इसीके भरोसे बहुतसे शत्रु रहने पर भी उसका नाश नहीं होता। मनुष्य, लोमड़ी, नेवले और नेवला वंशके अन्य जंतु, बिल्ली, चील, उल्लू, कौए आदि सभी उसके शत्रु हैं, तो भी उसका परिवार बढ़ता ही रहता है। छः महीनेकी आयुसे वह बच्चा देने लगता है। गर्भमें बच्चा चार सप्ताह रहता है। एक प्रसवमें पांचसे आठ बच्चे उत्पन्न होते हैं। कुछ बच्चे ठंढसे मर जाते हैं और कुछको चूहे खा जाते हैं, परन्तु रैबिटोंकी अद्‌भुत उत्पादनशक्तिसे संख्या बढ़ती ही जाती है। फिर, रैबिट अनाज, कंद, मूल, फल, साग-पात सभी खाकर रह सकता है। और कुछ नहीं मिलता तो वृक्षोंका छिल्का ही खा लेता है। भूमिके भीतर बिलोंमें रहनेके कारण शत्रु रैबिटको उतना नहीं मार पाते जितना वे उसके खरहोंकी तरह रहने पर मारते। अपने बिलमेंसे भाग निकलनेके लिये रैबिट कई मार्ग बनाये रहते हैं। रैबिट बड़े-बड़े दलोंमें रहते हैं। खटका होनेसे वे पिछला पैर पटक कर सबको सूचना देते हैं। माता अपने बच्चोंको बड़ी सावधानीसे पालती है और उनको अच्छी शिक्षा देती है। इन्हीं कारणोंसे रैबिटोंकी संख्या बहुत शीघ्र बढ़ती है। ऑस्ट्रेलिया में पहले रैबिट नहीं होते थे। कुछ रैबिट वहाँ जंगलोंमें छोड़े गये कि उनके बढ़ जाने पर उन्हें मार कर उनका स्वादिष्ट मांस खाया जायगा। परन्तु अब तो वहाँ इतने रैबिट होते हैं कि लाखों रैबिट प्रतिवर्ष बेकार मार डाले जाते हैं। जो मांसके लिये या फ़रके लिये मारे जाते हैं उनकी गिनती इसमें नहीं है। यदि रैबिटोंको न मारा जाय तो वे सब खेत उजाड़ डालें!

आधुनिक सुप्रजनन-विद्यासे अब रैबिटोंकी विशेष जातियाँ उत्पन्न की गई हैं जिनके फ़र चिंचिला, लोमड़ी, आदि जानवरोंके फ़रोंकी तरह होते हैं। ऐसे रैबिटोंकी खेती की जाती है और उससे अच्छा लाभ होता है।

साही

साही बड़ी ही विचित्र होती है। इसके शरीर पर लम्बे-लम्बे काँटे होते हैं जो बड़े पैने होते हैं और, उन पर पारी-पारीसे काले और सफेद छल्ले होनेके कारण, बहुत सुन्दर लगते हैं। भारतवर्षमें साही प्रायः सभी जगह होती है। इसके अतिरिक्त दक्षिणी यूरोप और उत्तरी अमरीका में भी वह होती है। यह रातको ही बाहर निकलती है। इसीसे इसे बहुत कम लोग देख पाते हैं।

साही भी कुतरने वाला जन्तु है। इसके दाँत बड़े पैने और बलिष्ठ होते हैं और यदि साही काट ले तो गहरे

घाव हो सकते हैं। परन्तु साही काटती नहीं। जब कोई शत्रु इस पर आक्रमण करता है तो पहले तो यह भागती है। परन्तु जब यह देखती है कि अपने शत्रु से पिंड छुड़ाना असम्भव है तो वह एकाएक पीछे दौड़ने लगती है। उसके शरीरके काँटोंकी नोंकें उधर ही रहती हैं। इस प्रकार साही अपने शत्रुको घायल करनेकी चेष्टा करती है। कुत्तोंके शरीर में या मनुष्योंकी टाँगोंमें काँटे गहरे धँस जाते हैं।

पीठके काँटे पन्द्रह-सोलह इंच तक लम्बे होते हैं, परन्तु ये इतने भयानक नहीं होते जितने वे छोटे-छोटे, सीधे और खूब नुकीले काँटे जो बड़े काँटोंके बीचमें रहते हैं। पूँछके अंतमें लगभग बीस खोखले काँटे होते हैं। इनसे साही किसी पर आक्रमण तो नहीं कर सकती, परन्तु पूँछ झटकारने पर वे ज़ोरसे खड़खड़ाते हैं। कई शत्रुओंको तो अपनी पूँछ खड़खड़ा कर ही साही भगा देती है। सिर, कंधे, पैरों और पेट पर छोटे-ही-छोटे काँटे होते हैं। साही जब चाहती है तो अपने काँटोंको खड़ा कर लेती है, जब चाहती है तो उनको समेट लेती है।

अपने तेज़ पंजोंसे साही भूमि खोदकर अपने रहनेके लिए स्थान बना लेती है। यह निरामिष भोजी है और कंद, मूल, फल तथा साग-पात खाकर रहती है।

जब बच्चे उत्पन्न होते हैं तो उनके काँटे बिना रंग के, प्रायः पारदर्शक, होते हैं। माता अपने बच्चोंके लिए बड़े यत्नसे बिलके भीतर घोंसला बनाती है और उसमें घास-पात बिछाकर उसे नरम बना देती है।

साहीके कांटोंसे पहले कलम बनता था। कुछ लोग साहीका मांस खाते भी हैं।

गिलहरी

गिलहरियों को सभीने देखा होगा। वे कैसी सुन्दर और फुरतीली होती हैं? उनकी पूँछ कैसी सुन्दर और झबरी होती है। ज़रा भी खटका होते ही ये हवा से बातें करती पेड़ में भाग जाती हैं। इनके दाँत बहुत मज़बूत और तेज़ होते हैं। चिड़ियों की तरह ये अपना घोंसला पेड़ों में बनाती हैं। परन्तु ये बच्चे जनती हैं; अंडे नहीं देतीं। अपने घोंसलेमें ये सोती भी हैं और जब ठंढ लगती है तो अपनी ही पूँछको ओढ़ लेती हैं।

अन्य दंशक

बीवर नाम का दंशक यूरोप और कैनाडा में होता है। इसका फ़र बहुत उत्तम समझा जाता है। ये जानवर पेड़ों की छाल खाकर रहते हैं। अपने रहनेके लिए ये बहुत-सी टहनियाँ इकट्ठा करके घर बना लेते हैं जिनमेंसे निकलने के लिये कई रास्ते रहते हैं। यह घर साधारणतः नदी आदिके पास रहते हैं और एक-दो रास्ता पानीके नीचे-ही-नीचे नदी में भाग जाने के लिये भी रहता है। बीवर पानी में खूब तैर सकता है। पूँछ चिपटी होती है। कुछ भी खटका होने पर वह अपनी पूँछ को पानी पर ऐसे जोरसे पटकता है कि तेज़ आवाज़ होती है जिससे दूसरे बीवर सावधान हो जाते हैं।

मध्य और दक्षिणी अमरीका में चिंचला नामका दंशक होता है। इसकी पूँछ गिलहरीकी तरह लोमश होती है और उसमें मोती की तरह रंग और झलक होती है। इसी पूँछके लिये वहाँ चिंचिलाओंकी अब खेती होती है। एक समय था जब चिंचिलाएं प्राकृतिक अवस्था में बहुतायत से मिलती थीं। परन्तु लोगोंने उनको मार-मार कर प्रायः मिटा ही दिया है।

अमरीका की गिलहरी—चिपमुंक—बड़ी अच्छी गृहणी होती है। जाड़ेके लिए वह बहुत-सी आहार-सामग्री अपने घरोंमें इकट्ठा कर लेता है। यह अपना घर पेड़ोंके खोखलोंमें, या बिल खोदकर, बनाती है। एक बिल खोदा गया तो पता चला कि उसमें केवल चार चिपमुंकें रहती थीं और उन्होंने सवा सेर मेवे, ढाई सेर अनाज, दस सेर ओक नाम वृक्ष के फल, पाँच सेर छोटे अनाज और थोड़ी-सी मकई इकट्ठा कर रक्खा था। उन्होंने इन अनाजोंको बड़े करीने से अलग-अलग सजा रक्खा था।

एक गिलहरी ऐसी होती है कि उसे चिमगादड़ की तरह पंख होता है। उसी के भरोसे वह एक पेड़ से दूसरे पर कूद जाती है, चाहे दूसरा पेड़ काफ़ी दूर भी क्यों न हो। इनको उड़नगिलहरी कहते हैं।

१०

हाथी

शुंडालवर्ग

शुंडाल वर्गमें वे प्राणी हैं जिनको शुंड (= सूँड़) होता है। इस वर्गमें हाथी हैं। हाथियोंकी दो जातियाँ हैं, जिनमेंसे एक अफ्रीकामें मिलती है, दूसरी भारतवर्ष में। अफ्रीकाका हाथी भारतीय हाथीसे कुछ बड़ा होता है और उसके कान बहुत बड़े होते हैं। उसके बाहरी दाँत भी भारतीय हाथियोंके दाँतोंसे बड़े होते हैं। अफ्रीकाका हाथी भारतीय हाथियोंसे अधिक फुरतीला होता है, धूपसे

हाथी और उसका बच्चा

बचपनमें हाथीके शरीर पर रोएँ रहते हैं।

कम डरता है, और उसको पालतू बनाना अधिक कठिन है। भारतीय हाथियोंमें बुद्धि अधिक होती है।

श्रीयुत मेरियस मैक्सवेल ने एक पुस्तक लिखी है जिसमें उन्होंने वर्णन किया है कि उन्होंने जंगली जानवरोंका फोटो कैसे खींचा। वे लिखते हैं कि एक बार केनया (अफ्रीका) में उनसे हाथियोंके एक झुंडसे मुठभेड़ हो गई। इस दल में अस्सी और सौके बीच हाथी रहे होंगे। इसमें हाथी, हथिनी, बूढ़े, जवान, और छोटे-बड़े बच्चे सभी थे।

वृक्षोंके पीछे छिपते-छिपाते लेखक इन उत्तेजित जंतुओं की भीड़के पास पहुँच गया; उनसे उसकी दूरी कुल सत्तर गज़ रह गई होगी। तरह-तरहके शब्द सुनाई पड़ रहे थे। झुंडका शोर-गुल सैकड़ों नगाड़ोंके बजनेके समान सुनाई पड़ता था और बीच-बीचमें हथिनियोंका चिंघाड़ सुनाई पड़ता था। वे बेचारी अपने बाल-बच्चोंके लिये चिंतित थीं। सूर्य अस्त ही होने वाला था। उस मन्द प्रकाशमें हाथियोंके उठे हुये सूँड़ ठूँठ पेड़ोंका जंगल-सा जान पड़ता था। बीच-बीचमें चमकते हुये सफेद दाँत भी दिखलाई पड़ जाते थे। लेखक महोदय इस भीड़के कशमकशको देखते रहे। बच्चे डरके मारे अपनी माताओं या अन्य तगड़े हाथियोंके पैरोंके बीच घुस कर छिप गये थे। ऐसा जान पड़ता था कि सब-के-सब लेखक पर ही टूट पड़ेंगे, परन्तु ज़रा-सी धमकी देकर झुंड पीछे मुड़ गया और धीरे-धीरे चला गया।

श्री मैक्सवेलका कहना है कि जब हाथी घबड़ा उठते हैं और दौड़ पड़ते हैं तो बचनेका सुगम उपाय यही है कि किसी कँटीले पेड़के पीछे चुपचाप खड़ा हो जाय। हाथी दौड़ते हुए आगे बढ़ जायँगे। परन्तु हिम्मत चाहिए। कान फैलाये, सूँड़ उठाये, तेज़ दौड़ते, इन बड़े शरीर वालों को अपनी ही ओर आता देख दिल दहल जाता है। उनके बड़े-बड़े मुंड भयानक रीतिसे ऊपर-नीचे डूबते-उतराते दिखलाई पड़ते हैं और प्रत्येक पग पर वे बड़े होते जाते हैं।

हाथीकी त्वचाको देखते हुए सम्भवतः यह विचार उपजे कि उसको सुख-दुखका कुछ अनुभव ही न होता होगा, परन्तु बात ऐसी नहीं है। हाथीकी सूँड़में वैसी ही स्पर्श-शक्ति रहती है जैसी हमारे हाथोंमें। हाथीकी सूँड़ उसी स्थानमें होता है जहाँ जंतुओंकी नाक और ऊपरी होंठ।

अपनी सूँड़से हाथी पेड़ उखाड़ सकता है और इसीसे वह सुई उठा सकता है। इसी अंगसे वे एक दूसरेको चूमते भी हैं। इसीसे पानी सुड़क कर हाथी अपने मुँहमें डालता है या शरीर पर छिड़कता है। सूँड़से ही वह सूँघ सकता है। उसकी घ्राण-शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जिधरसे हवा आ रही हो उधर रहने पर जानवरोंकी गंध हाथी को मील दो मीलसे मिल जाती है। उसको सुनाई भी ख़ूब देता है और यद्यपि आँखें छोटी होती हैं, उसे दिखलाई भी अच्छी तरह पड़ता है। ज़रा भी खटका होता है तो जंगली हाथी चौकन्ना हो जाता है। उसकी बुद्धि भी अन्य जंतुओंसे अधिक तीक्ष्ण होती है।

यह अवश्य है कि जंगली हाथियोंकी बुद्धि उतनी तीक्ष्ण नहीं होती जितनी पालतू हाथियों की। कारण यह जान पड़ता है कि जंगलोंमें अपनी बुद्धि लगानेकी उन्हें बहुत आवश्यकता ही नहीं पड़ती। उन्हें आहार सुगमता से मिल जाता है और शत्रु इने गिने ही रहते हैं। केवल घास-पात और वृक्षादि की पल्लव-युक्त टहनियोंसे उदर-पूर्तिका ही प्रश्न रह जाता है। इसलिये जंगलोंमें बुद्धि के विकसित होनेका अवसर ही नहीं मिलता।

हाथियोंके बदला लेने की कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं। उस दरज़ीकी कहानीको सभीने सुना होगा जो अपनी दूकान से जाने वाले हाथीको प्रतिदिन कुछ-न-कुछ खानेको दिया करता था। उसने एक दिन मज़ाकमें हाथीकी सूँड़में सुई चुभा दी। बदलेमें हाथी नदीसे लौटते समय अपनी सूँड़में गंदा पानी भर लाया और उसके ऊपर छिड़क दिया। यह भी कहानी प्रसिद्ध है कि एक महाउत ने एक बार एक नारियल मोल लेकर उसे हाथीके सर पर पटक कर फोड़ना चाहा था। हाथी ने तुरन्त दूकानसे दूसरा नारियल उठा कर महाउतके सर पर दे मारा। पता नहीं कि ये कहानियाँ कहाँ तक सत्य हैं, परन्तु यह देखी हुई बात है कि एक शेखचिल्ली ने हाथीको छोटे फल फेंक-फेंक कर खिलाना आरम्भ किया। हाथी भी ख़ुश होकर उन्हें सीधे अपने मुँहमें लोक लेता था। जानबूझ कर उस व्यक्ति ने एक फलको आगमें भून कर ख़ूब गरम कर रक्खा था। मुँहमें जाने पर हाथी उसे घोंट तो गया, परंतु तुरन्त उसने बहुत-सा पानी पी लिया और जब बाल्टी ख़ाली हो गयी तो उसे अपनी सूँड़से उठा कर और ऐसा सच्चा निशाना साध कर फेंका कि मज़ाक करने वालेका सर फूट गया।

एक समय था जब हाथियोंको उनके दाँतके लिये मारा जाता था। एक-एक दाँत डेढ़-दो मन तकके होते हैं। हाथीदाँतसे आभूषण और बिलियर्ड खेलनेकी गोलियाँ बनती थीं। परन्तु अब रासायनिक रीतियोंसे नकली हाथी-दाँत बहुत अच्छा बनता है और असली हाथीदाँतका मूल्य इतना कम हो गया है कि हाथी मारने और उसके दाँत बेचनेमें लाभ नहीं होता। इससे अफ़्रीकाके कुछ प्रांतोंमें हाथियोंकी संख्या अब इतनी बढ़ गई है और उनसे खेती-बारीको इतनी हानि पहुँचती है कि समय-समय पर सरकारको अपने खरचेसे हाथियोंको पकड़ना या मारना पड़ता है। भारतवर्षकी तरह अफ़्रीकामें भी हाथियोंको पालतू बना कर उनसे काम लिया जाता है। एक दिनमें एक हाथी सवा एकड़ भूमि जोत देगा। डेढ़ सौ मन माल लदी गाड़ीको दो हाथी आसानीसे खींच ले जाते हैं। वे लकड़ी ढोनेका काम भी करते हैं।

भारतवर्षमें मिहनत-मज़दूरी करानेके अतिरिक्त हाथी सवारीके कामके लिये पाले जाते हैं, क्योंकि उनसे लोगों-की शान रहती है। अब बहुमूल्य मोटरकारोंके आगे हाथियोंकी प्रतिष्ठा बहुत कुछ कम हो गई है, परन्तु राजा-महाराजाओं और बड़े ज़मींदारोंमें अब भी उनकी यथेष्ट प्रतिष्ठा है। हाथियों पर चढ़ कर बाघका शिकार भी किया जाता है।

भारतीय हाथी हिमालयकी तराई वाले जंगलोंमें, और मध्य हिंद, आसाम, त्रावङ्कोर, कोयम्बटूर, नीलगिरि, कुर्ग और मैसूरके जंगलोंमें पाये जाते हैं। भारतीय हथिनियोंके गजदंत नहीं होते परन्तु अफ़्रीकामें हथिनीके भी गजदंत होते हैं। भारतवर्षमें एक जातिका हाथी होता है जो कुछ छोटा और गजदंत-रहित होता है। उसे मकुना हाथी कहते हैं।

साधारणतः हाथी लगभग १० फुट ऊँचा होता है। और उसकी तौल लगभग सौ मन होती है। बच्चा पेटमें बीस महीने रहता है और एक प्रसवमें केवल एक बच्चा उत्पन्न होता है। तेरहसे सत्रह वर्षमें हाथी युवा होता है

और उसका जीवन-विस्तार साधारणतः पचास वर्षका होता है। कोई-कोई पालतू हाथी १०० वर्ष तक जीवित रहते देखे गये हैं। हथिनीका स्तन अगली टाँगोंके बीचमें रहता है, जो कुछ असाधारण स्थान है। बच्चा सूँड़से दूध नहीं पीता, मुँहसे पीता है और इसके लिये उसे अपनी सूँड़ उठा लेनी पड़ती है।

हाथी सौ गज़ तक तो मनुष्यसे तेज़ दौड़ सकता है, परन्तु उसका दम शीघ्र फूल जाता है। जंगली हाथी बड़े डरपोक होते हैं। वे कुत्तेके भूकनेसे भी भाग जाते हैं। हाथी झुंडोंमें रहते हैं और उनका एक सरदार होता है। साधारणतः यह कोई बलवान नर हाथी होता है, परन्तु कभी-कभी दल किसी हथिनीको ही अपना नेता बना लेता है। जिधर सरदार जाता है उधर दल भी जाता है।

कभी-कभी कुछ समयके लिये हाथीकी वह दशा हो जाती है जब वह "मस्त" कहलाता है। ऐसी अवस्थामें हाथी अत्यन्त चञ्चल हो उठता है। क्षण भर भी शान्तिसे खड़ा नहीं रह सकता; कभी सिर हिलाता है, कभी झूमता है, कभी पैरोंसे धरती खोदता है। उसकी प्रकृतिमें भी एक विचित्र परिवर्तन हो जाता है। स्वाभाविक सुशीलता और जन्म भर की शिक्षाको वह एकदम भूल जाता है और इतना क्रूर हो जाता है कि मनुष्यके प्राण लेनेमें भी कुछ संकोच नहीं करता। कभी-कभी पालतू मस्त हाथी बन्धनमुक्त हो भाग जाते हैं और बड़ा उपद्रव मचाते हैं, किन्तु साधारणतः कुछ समयके उपरान्त वे फिर शान्त और आज्ञापालक हो जाते हैं।

हाथियोंके पकड़नेका निम्न वर्णन विज्ञानमें छपे पंडित उमाकान्तके एक लेखसे दिया जाता है —

मौरभंजके जंगलोंमें हाथी बहुत पाये जाते हैं। यह प्रायः दो पहाड़ियोंके बीचमें, अर्थात् घाटियोंमें, रहा करते हैं, क्योंकि ऐसे ही स्थानोंमें उन्हें पर्याप्त छाया और चारा मिल सकता है। वर्षा-ऋतुमें, जब जंगलोंमें ऊँची-ऊँची घास तथा धानके खेत लहलहाया करते हैं, हाथी अपने निवास-स्थानोंको छोड़कर बाहर जंगलों और खेतोंमें चरनेके लिए निकल आते हैं। कभी-कभी तो ये घूमते हुए बारीपदा (मौरभंजकी राजधानी) तक पहुँच जाते हैं। घाटियोंको छोड़ मैदानोंमें चले आनेका विशेष कारण यह होता है कि वर्षा-ऋतुमें एक प्रकारकी बड़ी मक्खी वहाँ पैदा हो जाती हैं, जो हाथीको बहुत बेहाल कर देती हैं। जहाँ यह काटती हैं, ख़ून निकल आता है और हाथी विकल हो भाग निकलते हैं। इन मक्खियोंको पतंग कहते हैं।

गुण्डे (बदमाश) हाथियोंको छोड़कर हाथी प्रायः बीस या पचीसकी टोलियोंमें रहा करते हैं। प्रत्येक टोलीमें एक मुखिया होता है, जो बहुत बलवान, बड़े डीलडौलका नर हुआ करता है। जब हाथी खा-पीकर ख़ूब मस्त हो जाता है और ख़ास उम्रका हो जाता है तो उसकी कनपटीके बहुत छोटे-छोटे छेदोंमें से मद झरने लगता है। उस समय उसे लड़नेकी सूझती है, पर उसके शरीरमें से ऐसी गंध निकलने लगती है कि आस-पासके जंगलोंमें विचरने वाले कमज़ोर हाथी जंगल छोड़ कर अन्यत्र चले जाते हैं। गंध इतनी तीव्र होती है कि आध मीलसे भी अधिक फ़ासिलेसे मालूम हो जाती है। जब दो मस्त हाथी मिल जाते हैं तब तो घोर द्वंद्वयुद्ध होने लगता है। दांतोंकी वह टक्करें होती हैं कि वज्राघातका-सा शब्द होता है। इसके अतिरिक्त पेड़ोंके टूटने, धरतीके खूँदे जाने, तथा हाथियोंके चिक्कारनेका शब्द भी बहुत दूर तक सुनाई देता है। जिस जंगलमें हाथियोंका युद्ध होता है वहाँके प्रायः सभी प्राणी डर कर भाग जाते हैं। चीते, बघेरे, तथा शेर तक उस समय उस वन-प्रान्तमें नहीं ठहरते। कई मीलों तक पेड़ोंकी सफ़ाई हो जाती है। कभी-कभी जंगलके रहने वाले आदमी बेशक दूरसे, पर्वतशिखरों या पेड़ों पर चढ़ कर इस अद्भुत द्वन्द्वयुद्धके देखनेका आनन्द उठाते हैं। द्वन्द्वयुद्धमें एक हाथी अवश्य ही मरता है। बिना एकका प्राणान्त हुये युद्धका अन्त नहीं होता। बड़े-बड़े लम्बे दाँत जिस समय गज़-गज़ भर पेटमें घुस जाते हैं तब हारे हुये हाथीका बचना असम्भव ही होता है।

उन्मत्त हाथियोंके द्वन्द्वयुद्धको छोड़ हाथियोंमें वैसे भी कभी-कभी लड़ाई हो जाती है। जब कभी किसी टोलीमें मुखियाके अतिरिक्त कोई अन्य हाथी खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हो जाता है, तो वह मुखिया होनेके लिये मुखियासे लड़ने पर उतारू होता है। यदि मुखिया हार गया तो वह नया मुखिया बन ही जाता है। परन्तु यदि ख़ुद हार गया तो

भाग कर जंगलमें अकेला विचरने लगता है। ऐसे हाथी-को गुंडा हाथी कहते हैं।

मौरभंज राज्यमें हाथियोंका शिकार वर्जित है, पर कभी-कभी मन चले गोरे शिकार खेल ही लेते हैं। जब कभी कोई हाथी मस्त होकर अपने गिरोहको छोड़ देता है और गांवोंमें आकर आदमियोंको सताने लगता है, तब तो उसे मारना ही पड़ता है।

हाथियोंके चरनेका समय रात होता है। सूर्योदयके बाद हाथी सोते हैं। नूना मट्टी चाटनेके लिये यह रात्रिमें बड़ी-बड़ी दूर तक निकल जाते हैं। हाथीकी आँखें बहुत छोटी होती हैं। यह ऊपरको नहीं देख सकता। ऊपरकी चीज़ोंका अन्दाज़ा यह अपनी सूँड़की नोंकसे स्पर्श करके लगाया करता है। इस क्रियाको 'बुखार लेना' कहते हैं।

सूँड़ हाथीका बड़ा उपयोगी अंग है। आदमी जो काम अपने हाथोंसे लेता है, वही काम हाथी अपनी सूँड़से लेता है। सूँड़से ही वह पानी पीता है, सूँड़से ही पेड़ों या पौदोंको उखाड़ कर खाता है, सूँड़से ही स्नान करता है। सूँड़का सिरा इतना उपयोगी होता है कि उसकी सहायता-से हाथी दोअन्नी तक उठा सकता है।

मौरभंज रियासत हाथियोंका व्यापार करती थी। इसी-लिये यहाँ पर समय-समय पर हाथी पकड़े जाया करते थे। परन्तु कुछ समयसे यह काम बन्द है। आशा की जाती है कि उक्त काम फिर कभी अवश्य आरम्भ किया जायगा। हाथी पकड़ने के कामको 'खेदा' कहते हैं।

जब महाराजकी आज्ञा होती है, तो खेदेके लिये तैयारी शुरूकी जाती है। कुल्हाड़ियाँ, बरछे, बड़ी मोटी-मोटी रस्सियाँ, नोकीली पैनी कीलें, फावड़े, कुदाल, बारूद, बन्दूक आदि सब चीज़ें जिनकी आवश्यकता होती है और जो जंगलमें नहीं मिल सकती हैं, पहलेसे जुटा ली जाती हैं। तदनन्तर कुछ आदमी जंगलोंमें यह देखनेके लिए भेजे जाते हैं कि हाथी कहाँ-कहाँ और कितने-कितने हैं। इन आदमियोंको जासूस कहते हैं। कुछ जासूस तो हाथियोंका पीछा करनेके लिये जंगलमें ही रह जाते हैं और कुछ लौट कर सब समाचार शिकारियोंको देते हैं। समाचार पहुँचते ही सब समान लेकर शिकारी चल पड़ते हैं और जहाँ हाथी होते हैं, वहाँके आस-पासके गांवोंमें हज़ार डेढ़ हज़ार आदमी इकट्ठे कर लेते हैं।

जंगलके जिस प्रान्तमें हाथी होते हैं, उसको ये आदमी चारों तरफसे इस प्रकार घेर लेते हैं कि हाथी बीचमें रहते हैं और कुल घेरा तीन या चार कोसका होता है। घेरेके हाथियोंके खाने पीनेका पूरा सामान रहे यह घेरा देनेके पहले ही देख लिया जाता है। घेरा दे देनेके बाद आदमियोंको आज्ञा दी जाती है कि पेड़ काट कर चारों तरफ एक बाड़-सी बना दें। यह काम बड़ी जल्दी किया जाता है और पाँच-छः घण्टेके भीतर बाड़ खड़ी कर दी जाती है। साथ ही पेड़ोंके काटे जानेसे बाड़के बाहर चारों तरफ़ एक १५ या २० फुट चौड़ी सड़क-सी निकल आती है। बाड़की ऊँचाई तीन या चार हाथ होती है। इस बाड़को 'जगतबेड़' कहते हैं और जगतबेड़के भीतरके स्थानको 'कोट' कहते हैं। सब आदमी अब जगतबेड़के चारों तरफ़ फैल जाते हैं। १५ या २० क़दम पर दो-दो आदमी नियुक्त कर दिये जाते हैं। इनमेंसे एकका अपने स्थान पर खड़े होकर पहरा देना आवश्यक होता है। यह बारी-बारीसे पहरा दिया करते हैं। इनके पास प्रायः दो लकड़ीके टुकड़े, कुल्हाड़ी और बरछा रहा करता है। ये अपने पास जलती हुई आग भी रखते हैं। यदि हाथी इनकी तरफ आकर और बाड़को हटा कर निकल जानेका प्रयत्न करते हैं तो पहले तो यह लकड़ीके टुकड़ोंसे खटखट शब्द करते हैं, जिसे 'ठकठकी' कहते हैं। प्रायः इस शब्दसे ही हाथी लौट जाते हैं या इधर-उधर चले जाते हैं। जहाँ जाते हैं, उनका स्वागत इसी शब्द द्वारा किया जाता है। यदि इस शब्दसे हाथी नहीं हटते तो जलती हुई आग दिखा कर उन्हें डराया जाता है, या अंगारे और जलती लकड़ी फेंक कर उन्हें मारते हैं। यदि इससे भी हाथी नहीं मानते तो ख़ाली बन्दूक चला दी जाती है।

हर दो या तीन पहरेवालोंके ऊपर एक शिकारी रहता है। जहाँ आवश्यकता होती है, वहाँ पहुँच कर वह बन्दूक चला दिया करता है और पहरे वालोंकी सहायता किया करता है। पहरे वाले अपने पहरेके स्थानके पास ही कुटी बना लेते हैं। जिस आदमीकी पहरे पर नियुक्ति नहीं होती वह इसी कुटीमें आकर उठता-बैठता है, आराम करता

है और खाना पका कर खाता है। पहरे वाले मज़दूरों तथा शिकारियोंको प्रायः दस-बारह दिनमें बदल दिया करते हैं, क्योंकि जंगलमें मलेरिया ज्वरका बड़ा डर रहता है। यदि ज्यादा दिन तक आदमी रहे तो ज्वरग्रस्त हो जाता है।

उपरोक्त रीतिसे हाथियोंको घेरनेके बाद शिकारी लोग भीतर जाकर यह देखते हैं हाथी अब किस तरफ़ जायँगे। प्रायः हाथी उसी तरफ़ जाना पसन्द करते हैं जिधर खाने की सामग्री ख़ूब रहती है या जिधरसे उस जंगलका रास्ता होता है जहाँसे वे आये थे। यह जान लेनेके बाद, बाड़के उसी तरफ़के भागमें, बीचमें ३० या ४० हाथका मैदान घेरकर खाई खोदते हैं। खाई बाहरकी तरफ़ बिलकुल सीधी और भीतर (मैदान) की तरफ़ ढलवाँ होती है। नीचेका भाग इतना चौड़ा रहता है कि हाथीका पैर उसमें मुश्किलसे आ सकता है। खाईकी चौड़ाई इतनी होती है कि हाथी कूद कर उसको पार न कर सके। यदि घेरे हुए हाथियोंमें नर और गुंडे होते हैं तो खाई ऊपरसे ८ हाथ चौड़ी और कुल ८ हाथ गहरी होती है। यदि हथनियाँ ही हुईं तो केवल छः हाथ चौड़ी और छः हाथ गहरी होती है। खाईमें से जो मट्टी निकलती है, उसका कुछ अंश भीतर की तरफ़ डाल देते हैं और एक गोल मुड़गेरी-सी खाईके बिलकुल किनारे पर बना देते। इस प्रकार घेरे स्थानको ग़ुलामगरदा कहते हैं। खाईके चारों तरफ़ (बाहर) लकड़ियोंकी एक बाड़ खड़ी कर दिया करते हैं। लकड़ियाँ बराबर-बराबर सटाकर खड़ी गाड़ दी जाती हैं। उनके बाहर बीचमें बेड़ी लकड़ियाँ लगा कर, तिरछी लकड़ियोंकी रोक लगा देते हैं, जिनको 'पेला' कहते हैं। ग़ुलाम गरदेमें घुसनेके लिए केवल एक तंग रास्ता रखते हैं, बाक़ी चारों तरफ़ खाई और खाईके बाहर लकड़ीकी बाड़ रहती है। बाड़के बाहरकी तरफ़ चारों तरफ़ एक मचान-सी बांध देते हैं, जिस पर चढ़कर आदमी ग़ुलामगरदेके अन्दरका हाल जान सकता है। ग़ुलामगरदा कोटमें जगतबेड़से लगभग १०० हाथकी दूरी पर रहता है। ग़ुलामगरदेके अन्दर धान या केलेके पौदे लगाकर ऐसा बना देते हैं मानों बहुत हरा-भरा जंगल है, परन्तु उसमेंके बड़े-बड़े पेड़ोंको काट डालते हैं—जड़से नहीं काटते बल्कि पाँच-छः हाथका नीचे का हिस्सा छोड़ देते हैं। यही ठूँठ बादमें हाथियोंके बाँधने के काम आते हैं, अर्थात् यही ठूँठ खूटोंका काम देते हैं।

ग़ुलामगरदेमें जानेका जो रास्ता होता है, उसके दाएँ बाएँ बहुत दूर तक पेड़ काटकर ढेर लगा देते हैं। यह बाड़ पंखा कहलाती है। और इससे ग़ुलामगरदेमें जानेका मार्ग मुँहके पास बहुत चौड़ा परन्तु ग़ुलामगरदेके पास संकीर्ण हो जाता है। कोटमें से ग़ुलामगरदेमें जानेका जो रास्ता रहता है उसकी दोनों तरफ़ ग़ुलामगरदेके पास. दो बडे-बडे पेड पहलेसे ही देखकर रख लिये जाते हैं, जो पास-पास और दो पंक्तियोंमें रहते हैं, जिससे कपाट उनके बीचमें रक्खा जा सके। यदि चार नहीं मिलते तो दो तो अवश्य ही रखने पड़ते हैं और दो पेड़ काट कर उनके आगे गाड़ देते हैं। दरवाज़ेका पट बड़ी बड़ी मोटी लकड़ियोंसे उसी प्रकार बनाया जाता है, जैसे बांसोंकी टट्टियाँ बनती हैं। यह १० या १२ फुट ऊँचा होता है। हर एक जोड़ पर एक लम्बी नुकीली कील जड़ देते हैं। इन कीलोंका रुख़ ग़ुलामगरदेके भीतरकी तरफ़ होता है, जिससे हाथी क़ैद होने पर पटमें टक्कर न लगा सकें। यह पट मोटी-मोटी रस्सियों द्वारा उन पेड़ोंके बीचमें लटका दिया जाता है जिनका ज़िक्र पहले कर चुके हैं। कुछ आदमी इन पेड़ों पर चढ़ कर बैठ जाते हैं।

यदि हाथी स्वयम् चरते हुए ग़ुलामगरदेमें घुस जाते हैं, तो शिकारी फ़ौरन पटकी रस्सियाँ काट देते हैं। पट गिर जाता है। उसके नीचेके भागमें लगी हुई नुकीली लकड़ियाँ धरतीमें धँस जाती हैं और पट जम जाता है। पटको इन नुकीली लकड़ियों और उन चार पेड़ोंका सहारा होता है जिनके बीचमें वह लटकाया गया था।

पट गिरनेके बाद हाथी लौटते हैं और बड़ा 'ज़ुलम' करना शुरू करते हैं। पटके तोड़नेका प्रयत्न करते हैं और उसमें बार-बार टक्कर लगाते हैं। टक्कर लगाने पर उनके मस्तक उन कीलोंसे छिद जाते हैं, जो पटके जोड़ों पर जडे रहते हैं। प्रायः टक्कर मारनेकी तो नौबत ही नहीं आती क्योंकि पेड़ों पर बैठे हुये आदमी आग फेंकने लगते हैं, जिसे देख कर हाथी पीछे लौट जाते हैं। दूसरे, जब हाथी पटके पास आते हैं तो बाहरसे आदमी भाले मारते हैं और बन्दूकका शब्द कर देते हैं। इस प्रकार दिन भर और रात भर हाथी पटको तोड़ कर बाहर निकल जानेका प्रयत्न करते रहते

हैं और शिकारी लोग उन्हें आग बरसा कर, भाले मारकर, बन्दूक (खाली) चला कर, पीछे हटानेकी कोशिश किया करते हैं।

सूर्योदय होने पर हाथियोंके सोनेका समय आ जाता है। फिर, रात भरके परिश्रमके बाद वे स्वभावतः शिथिल हो जाते हैं। जब कभी बड़ा टस्कर (दन्तल) या गुंडा फँस जाता है तो वह निकलनेके लिये बड़ा उपद्रव करता है; हाथी फँसानेको 'खेदा' कहते हैं—एक खेदेमें एक गुंडा दो दफ़े गुलामगरदेमें आ फँसा। प्रत्येक बार उस पर बहुत आग बरसाई, भालोंकी मारसे उसका मस्तक और शरीर लोहू-लोहान हो गया, पर वह फटको ज़रा-सा तिरछा कर बड़ी फ़ुर्तीसे निकल गया। बड़ा आश्चर्य होता था कि इतने बड़े डील-डौलका हाथी इतनी सँकरी जगहमें से कैसे निकल गया।

जब हाथी स्वयम् चरते हुये गुलामगरदेमें नहीं पहुँचते तो शिकारी लोग घेरेमें घुस कर हाथियोंको उसकी तरफ भगाते हैं। मज़दूर लोग भी चारों तरफ़से उनको दबाते हैं। प्रायः ऐसा करना तभी आरम्भ करते हैं, जब हाथी पंखों के बीचमें पहुँच जाते हैं। कभी-कभी हाथी पंखोंकी तरफ न जाकर बाहरकी तरफ ही जाते हैं। परन्तु उसके भीतर प्रवेश करने पर पूर्वोक्त व्यवहार किया जाता है;

दूसरे दिन खाईके एक भागको पाट कर अन्दर जानेका रास्ता बनाते हैं और अपने घरेलू पालतू हाथी लेकर कुछ व्यक्ति अन्दर जाते हैं। यदि पकड़े हुये हाथियोंमें सब नर हुये तो हथिनियाँ ले जाते हैं। यदि हथिनियाँ हुईं तो हाथी ले जाते हैं। यदि हाथियोंके पास हाथी ले जाते हैं तो वे आपसमें लड़ने लगते हैं। इसीलिये ऊपर कही हुई बात-पर ध्यान रखते हैं।

प्रत्येक हाथीके पीछे दो या चार पालतू हाथियोंको ले जाते हैं और उनको उलटा चलाते हैं, यहां तक कि उनके चूतड़ जंगली हाथियोंके चूतड़ोंसे मिल जाते हैं। फिर महावत हाथी परसे उतर कर मोटे रस्सोंसे जंगली हाथीके पिछले पैर लपेट कर बाँध देता है और अन्तमें रस्सेको पासके किसी ठूँठसे बाँध देता है। इसी प्रकार प्रत्येक नये हाथीके साथ व्यवहार किया जाता है। रस्सोंसे जंगली हाथियोंको बाँधते समय महावत अपने हाथियोंके पैरोंके बीचमें रहते हैं, जिसमें यदि जंगली हाथी आक्रमण करे तो वह फौरन अपने हाथी पर चढ़ जाय। जब यह देखते हैं कि नटखट हाथी गुलामगरदेमें पड़े हैं तो गन्नेके टुकड़ोंमें अफ़ीम रख कर बाहरसे फेंकते हैं। अंतमें हाथी नशेमें चूर हो जाते हैं। फिर उनको बाँधनेमें दिक़्क़त नहीं होती।

जब सब हाथी उपरोक्त विधिसे बँध चुकते हैं, तो किसी एक हाथीके गलेमें रस्से बाँधते हैं। और इन रस्सों-को दो हाथियोंके पेटसे बाँध देते हैं। फिर इन पालतू हाथियोंको चलाते हैं। बिचारा जंगली हाथी घिसटता हुआ चला आता है। जब वह अड़ने लगता है तो अपने हाथियोंसे पीछेसे ठोकर लगवाते हैं, जिससे उसे फिर आगे बढ़ना पड़ता है।

इस प्रकार हाथियोंको थान तक ले आते हैं और बाँध देते हैं। वहाँ उसे खानेको देते हैं और घावोंपर जो उसके बराबर पीछे या इधर-उधर जानेकी कोशिश करनेसे हो जाते हैं, मट्टी और नमक गरम करके लगाते हैं। इसी बीचमें पतली-पतली वृक्षोंकी टहनियोंको झाड़ू-सी बना लेते हैं। इसीको हाथीकी पीठ पर, दरख़्त परसे या अपने पुराने हाथियोंकी पीठ परसे फेरा करते हैं। इससे हाथीकी 'चमक' निकल जाती है। ८ या १० दिन बाद नये हाथी पर 'चारजामा' कस देते हैं अर्थात् एक लम्बा मोटा रस्सा उसकी पीठ और पेट पर लपेट कर उसी भाँति कस देते हैं, जैसे कि सवारीके समय हौदा या गद्दी कसनेमें कसते हैं। दो-चार दिनमें उसे इसकी भी आदत पड़ जाती है। तदनन्तर एक पुराने हाथीको लेते हैं, एक आदमी उस पर सवार होता है और दूसरा नये हाथी पर सवार हो जाता है। फिर नये हाथीको पुरानेके साथ-साथ टहलानेके लिये नदीकी तरफ़ ले जाते हैं। वहाँ उसे निहलाते हैं और आने-जानेमें उसे अपनी भाषा सिखलाते हैं। उस भाषाकी शब्दावली अर्थसहित नीचे दी जाती है।

शब्द	अर्थ
(१) मैल धत	हुशियारीसे चलो
(२) धत	खड़ा
(३) मैल या चै	चलो
(४) बैठ	बैठ जाओ
(५) मैल खंदक	निचान है, हुशियारीसे चलो

(६) मैल ठोकर	ठोकर लगेगी, हुशियार हो
(७) सलाम	सलाम करो
(८) तीरे	पानीमें करवटसे लेट जा

इस भाँति हाथीको साधनेमें लगभग एक मास लग जाता है। हाथियोंके साधनेमें बहुत जल्दी नहीं करनी चाहिये, नहीं तो बहुत हाथी मर जाते हैं। धीरे-धीरे साधने और उनके खाने पीनेका प्रबन्ध रखनेसे कम हाथी मरते हैं। प्रायः थान पर गाँवोंके आदमी आकर नये हाथियोंको तंग किया करते हैं। इसका भी पूरा बन्दोबस्त चाहिये।

लकड़ीका कोट

खंदक खोद कर जो ग़ुलामगरदा बनाया जाता है उसमें किसी दिन एक, किसी दिन चार, किसी दिन और भी अधिक हाथी आते रहते हैं। जो हाथी आये उनको पकड़ लेते हैं। शेष हाथी जो घेरेमें रह जाते हैं उन्हें हांकेसे लाकर कोटमें फँसाते हैं। पर कभी-कभी ऐसा होता है कि खंदक खोदना ही बड़ा मुश्किल हो जाता है (जैसा कि पथरीली ज़मीन आ जाने पर होता है), या हाथी बनाये हुये ग़ुलामगरदेकी तरफ न जाकर किसी विशेष दिशामें ही चल पड़ते हैं और हज़ार प्रयत्न करने पर भी ग़ुलामगरदे की तरफ़ नहीं मुड़ते। इन दो सूरतोंमें लकड़ीका ग़ुलामगरदा तय्यार किया जाता है। बड़े-बड़े पेड़ काट कर एक दीवार-सी बना देते हैं जो १० फुट ऊँची और ८ फुट चौड़ी होती है। इस ग़ुलामगरदेके बनानेमें लकड़ी बहुत खराब होती है।

११

घोड़े, गैंडे और टेपिर

विषमखुरी वर्ग

विषमखुरीका अर्थ है वे जंतु जिनमें खुरोंकी संख्या विषम होती है, जैसे एक, या तीन, या पाँच। घोड़ा, गदहा, ज़ेबरा, टेपिर और गैंडा इसी वर्ग में हैं। घोड़ेमें कुल एक ही खुर होता है। वह गाय, बकरी आदिके खुरोंकी तरह बीचमें चिरा नहीं होता। गैंडे और टेपिरके तीन खुर होते हैं।

ये सभी जंतु शाकाहारी हैं।

घोड़ा

घोड़ेके विकासका सम्पूर्ण इतिहास भूमिमें गड़े अवशेषों से मिलता है। अत्यन्त पुरातन कालका घोड़ा कुत्तेसे थोड़ा ही बड़ा होता था और उसके प्रत्येक पैरमें चार खुर होते थे। पहले वह बहुत तेज़ नहीं दौड़ सकता था। धीरे-धीरे बड़े डीलके घोड़े होने लगे। वे अधिक तेज़ दौड़ने लगे। केवल भाग कर ही वे अपना प्राण बचा पाते थे। अधिक खुरोंसे वे तेज़ दौड़ नहीं पाते थे। धीरे-धीरे एक खुर रह गया; अन्य खुर छोटे होते-होते मिट गये। साथ ही घोड़ा बड़ा होते-होते आजके डील-डौलको पहुँच गया।

वैदिक कालमें प्रायः वैसे ही घोड़े होते थे जैसे आजके। पूर्वोक्त इतिहास लाखों वर्षका है।

गाय-बैलको छोड़ मनुष्यके लिए घोड़ेके समान उपयोगी पशु और कोई है नहीं। सिखानेसे घोड़े बहुत सध जाते हैं और तरह-तरहका कठिन काम कर सकते हैं। अरबके घोड़े दौड़नेमें बड़े तेज़ होते हैं। अरबके लोग उन्हें बहुत प्यार करते हैं। इंगलैंडमें लोगोंको घुड़दौड़का बड़ा शौक है। वहाँ बाज़ी जीतने वाले घोड़ेका बड़ी सेवा होती है। प्रजनन-विज्ञानके प्रत्येक नियमका पालन करके तेज़-से-तेज़ घोड़े उत्पन्न किये जाते हैं। अच्छे घोड़े का दस लाख रुपया मूल्य मिलना कोई असाधारण बात नहीं है।

रिसालेके घोड़ोंकी सधाईका काम जन्मसे ही शुरू हो जाता है। वे चुनी हुई नसलसे लिये जाते हैं। वे अभी छोटे-छोटे बच्चे ही होते हैं कि सधाईका काम शुरू हो जाता है। पहले वे आदमीके सम्पर्कके अभ्यासी बनाये जाते हैं। साधने वाले उन्हें थपकी देते हैं और चारापानी देते हैं, परन्तु सधाईका असली काम छावनीमें जाकर शुरू होता है, जहाँ सब से पहले उसे चलना सिखाया जाता है। फिर बादमें सवारीमें लगाया जाता है।

इस मतलबके लिये एक विशेष प्रकारकी काठी बनी होती है। चूँकि घोड़ा अबतक चरागाहमें आरामसे घास चरता रहा था और ऐसे कड़े परिश्रमका अभ्यासी नहीं था, इसलिये पहले वह जल्दी ही थक जाता है। तब उसे पुचकारा जाता है, थपकी दी जाती है और काम पर लगाया जाता है। यदि वह अवज्ञा करे तो उसे फिर मैदानमें दौड़ाया जाता है।

तीसरे चौथे दिन उस पर सवारी की जाती है। पहले सवार उसकी गर्दन पर थपकी देता है, उसकी गर्दनमें अपना बाजू डाल देता है, फिर दोनों हाथोंसे काठीको पकड़ता है। पांव रकाबमें रख कर अपना वजन तोलता है और उस पर जा बैठता है। यह सब एक क्षणमें हो जाता है। ८-१० दिनमें उसे भिन्न-भिन्न प्रकारकी चालें आ जाती हैं। दूसरे सप्ताहमें सामूहिक चालका अभ्यास कराया जाता है। समीप ही फौजी बाजा बजता रहता है। बीच-बीचमें बिगुल भी बजते रहते हैं। शनैः-शनैः वह इन सबका आदी हो जाता है। यदि वह इन आवाज़ोंसे डरता हो तो उसे उन घोड़ोंके समीप रक्खा जाता है जिन पर चढ़ कर यन्त्रोंसे ध्वनि पैदा की जाती है। फिर उसे धीरे-धीरे बन्दूक की आवाज़का अभ्यासी बनाया जाता है। बंदूक काफ़ी समीप रखा जाता है ताकि घोड़ा उसे अच्छी तरह सुने। धीरे-धीरे आवाज़ समीपतर लाई जाती है। वह समझ जाता है कि इससे मेरी कोई हानि नहीं है। आस-पासके घोड़ोंको भी वह उससे उदासीन देखता है। यदि अब भी वह कुछ बेचैनी ज़ाहिर करे तो उसका दाना बन्द कर दिया जाता है, दूसरे घोड़ोंको उस आवाज़से बेपरवाह होकर खाते-पीते देख कर वह भी उसका आदी हो जाता है। फिर उसके समीप खाली पिस्तौल दागी जाती है और फासला धीरे-धीरे कम करते जाते हैं। आख़िर एक दिन भरा पिस्तौल भी दागा जाता है।

इसी तरह उसे ऊँची कुदानके लिये साधा जाता है। पहले मामूली लोहेकी पटरियों परसे गुजारा जाता है। फिर उन पटरियोंको ६ इंच ऊँचा कर देते हैं। इसी तरह शनैः-शनैः इस ऊँचाईको ७-८ फुट तक पहुँचा दिया जाता है। फिर झाड़ियों, बक्सों और तेलके ड्रमों परसे कुदाया जाता है। चौड़ी खाइयोंको पार करानेमें ज़रा कठिनाई पड़ा करती है। इन खाइयोंकी चौड़ाई और गहराई धीरे-धीरे ६-६ इंच बढ़ाई जाती है। आख़िर एक दिन खाईकी चौड़ाई ८ फुट हो जाती है। तैरना सिखानेके लिये सवार नावमें बैठ कर चलता है और सधे हुए घोड़े आस-पास।

इसी तरह ३ मासमें घोड़ा फौजके हरेक कामके लिए तैय्यार हो जाता है, और घुड़सवार उसके कानसे कुछ इंच की दूरी पर रख पिस्तौल चला सकता है, उसे ऊँची-ऊँची दीवारों और तारों परसे कुदा सकता है, चौड़ी खाइयोंको पार कर सकता है, और सिरतोड़ ढलवों पर सवारी कर सकता है, बाजेके साथ आसानीसे कूच कर सकता है और गहरी नदियोंमें तैर कर पार हो सकता है। वह उसे ऐसे स्थान पर चुप-चाप खड़ा रख सकता है जहाँ तोप अग्निवर्षा कर रही हो, यहाँ तक कि वह उसे भगा कर मौतके मुँहमें भी ले जा सकता है; किसी बहुत बड़े इनामके लोभमें नहीं-- मुट्ठी भर घास या दानेके बदले?

गदहा

लोग गदहेको बहुत मूर्ख समझते हैं परन्तु गदहा घोड़ेसे बुद्धिमानीमें कम नहीं होता। तिब्बतका जंगली गदहा डीलमें घोड़ेके बराबर होता है और बहुत तेज़ दौड़ता है। घोड़े और गदहेकी रचनामें विशेष अन्तर नहीं है। यदि पिता गदहा हो और माता घोड़ी तो जो संतान उत्पन्न होती है उसे खच्चर कहते हैं। यह घोड़ेसे अधिक बलवान होता है।

ज़ेबरा

ज़ेबरा छोटे-बड़े कई जातिके होते हैं। बड़ी जातिका ज़ेबरा घोड़ेके बराबर होता है। सभी ज़ेबरों पर धारियाँ पड़ी रहती हैं जिससे वह बहुत सुन्दर लगता है। वह बहुत मज़बूत होता है और तेज़ दौड़ भी सकता है, परंतु अभी तक कोई इस जंतुको पालतू नहीं बना सका है। सब कुछ सेवा करने पर उसका क्रोधी स्वभाव दूर नहीं होता। दाँत काटने या लत्ती मारनेके लिए वह सदा तैयार रहता है। पशुशालामें पाला गया एक ज़ेबरा तो उछल कर घरन को दाँतसे पकड़ लिया और दाँतोंके बल बहुत समय तक लटका रह गया। लेखकको वह दिन आज भी नहीं भूलता
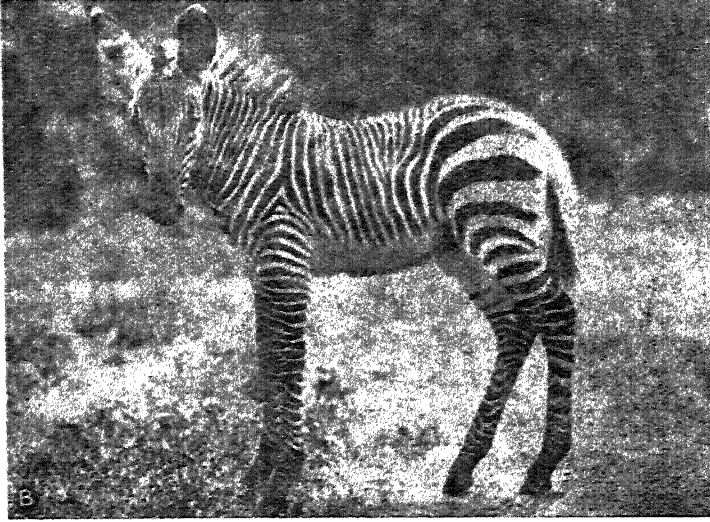
ज़ेबरा
ज़ेबरे पर धारियाँ होती हैं जिससे वह बहुत सुन्दर लगता है।

जब बचपनमें अज्ञानतावश वह कलकत्तेके चिड़ियाखानेमें ज़ेबरेके हातेकी छड़ पकड़ कर खड़ा हो गया था और पासमें खड़े ज़ेबरे ने दाँत काटनेके लिए उसके हाथ पर मुँह मारा था। कुशल यह हुआ कि हाथ झटसे हटा लिया गया अन्यथा कौन जाने इस लेखके लिखनेके लिए हाथ ही न बचा होता!

ज़ेबरा अफ़्रीकामें मिलते हैं। वे जंगलोंमें रहते हैं और अपने शत्रु सिंहसे बचनेके लिए प्रकृतिसे उन्हें पीला या ख़ाकी रंग और काली धारियाँ मिली हैं। अपनी धारियोंके कारण ज़ेबरा दूरसे अच्छी तरह दिखलाई नहीं पड़ता। इसी प्रकार उसका प्राण बच जाता है। परन्तु वे बड़े चौकन्ने भी रहते हैं। तो भी उनकी संख्या दिनों-दिन घटती जा रही है। अफ़्रीकाकी सरकारों ने उनकी जाति-को जीवित रखनेके लिए अब विशेष प्रबन्ध कर रक्खा है।

गैंडा

गैंडाकी थोड़ी-सी ही जातियाँ हैं और वे एशिया और अफ़्रीकामें पायी जाती हैं। गैंडे बहुत भारी, बलिष्ठ और मोटे होते हैं। टाँगें छोटी और खम्भेकी तरह मोटी होती हैं। परन्तु गैंडेके सम्बन्धमें दो बातें जो विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं यह हैं कि गैंडेके सिर पर सामनेकी ओर एक सींग निकली होती है और उसकी खाल ऐसी मोटी और कड़ी होती है कि बन्दूककी गोली उस पर लग कर चिपटी हो जाती है। खाल लगभग डेढ़ इंच मोटी होती है।
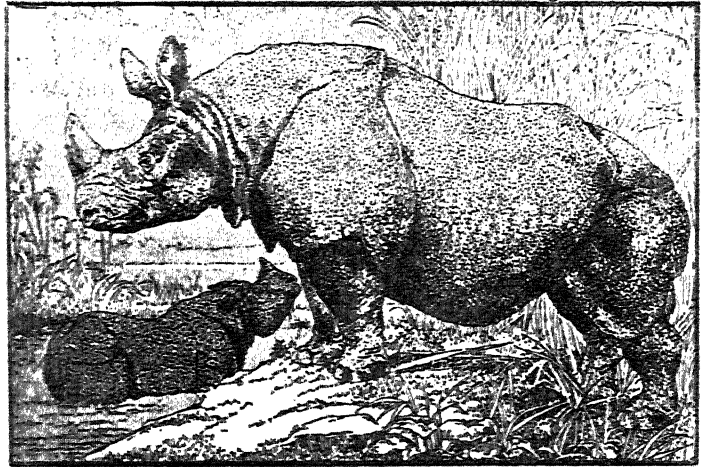
भारतीय गैंडा
गैंडेकी नाक पर एक सींग होती है और गैंडेकी खाल बड़ी मोटी होती है।

भारतीय गैंडा नैपाल-भूटानकी तराई के जंगलोंमें मिलता है। सरकार की ओरसे अब ऐसे नियम बन गये हैं

जिनसे उनकी जातिके बच जानेकी सम्भावना है। धीरे-धीरे गैंडोंकी संख्या घटती चली जा रही थी और ऐसा जान पड़ता था कि उनकी जाति कुछ समयमें लुप्त हो जायगी। नर गैंडा पाँच या छः फुट ऊँचा होता है और तौलमें लगभग ६० मनका होता है। नाक पर केवल एक सींग होता है। एक प्रसवमें एक ही बच्चा उत्पन्न होता है। गैंडोंका जीवन-विस्तार पैंतीस वर्षका होता है।

गैंडेका सींग बनावटमें गाय-बैलके सींगोंकी तरह नहीं होता। वस्तुतः यह गैंडेके बालोंका एक जुट है जो जम कर खूब कड़े हो गये हैं। अन्य जन्तुओंके सींग खोपड़ीकी हड्डीसे जुटे रहते हैं, परन्तु गैंडेका सींग ऊपर ही ऊपर रहता है, खोपड़ीसे नहीं निकला रहता। तो भी गैंडेका सींग भी बहुत कड़ा होता है और उसकी नोक चिकनी और चमकदार होती है। गैंडा अपने सींगसे भूमि खोद कर कंद-मूल निकाल लिया करता है। यह सींग उसका अस्त्र-शस्त्र भी है। इसकी मारसे वह हाथीका भी पेट चीर डालता है। एक शिकारी ने बतलाया है कि एक गैंडेने हाथीको इतनी ज़ोरसे सींग मारा था कि वह समूचा हाथीके शरीरमें घुस गया। हाथी मर कर गिर पड़ा और गैंडा भी, सींग न निकाल सकनेके कारण, उसी शरीरसे दब गया और मर गया। एक दूसरे शिकारी ने बतलाया है कि एक गैंडे ने ऐसा सींग मारा कि घोड़ेका पेट तो फट ही गया, उसके अतिरिक्त सींग घोड़ेकी पीठको छेद कर निकल आया और शिकारीकी जाँघमें भी काफ़ी दूर तक धँस गया।

गैंडेकी खाल शरीर पर ढीली रहती है। उसमें परत पड़े रहते हैं। इन परतोंके भीतर वाली खाल बाहरी खाल से अधिक नरम होती है। कीड़े-मकोड़े वहाँ घुस कर गैंडेकी खाल काट डालते हैं, और उसका मांस खाते हैं और रक्त चूसते हैं। उनसे परेशान होकर गैंडा अकसर कीचड़में लोटता रहता है जिससे किलनियाँ उसे छोड़ दें। गैंडेके ऊपर छोटी चिड़ियाँ भी बहुधा बैठी रहती हैं। ये उन कीड़ों-मकोड़ोंको चुन-चुन कर खा जाती हैं। इसलिये गैंडा इन चिड़ियोंसे प्रसन्न रहता है और उनको नहीं उड़ाता है।

गैंडा इतना भारी और भद्दा होते हुये भी बहुत तेज़ दौड़ सकता है, इतना तेज़ कि तेज़ घोड़ेको छोड़ और कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता। इसलिये चोट खाने पर यह भीषण शत्रु हो जाता है। उसे किसी बातका डर ही नहीं रह जाता। साधारणतः गैंडा बड़े शान्त स्वभावका होता है। मनुष्यको छोड़ उसे कोई अन्य प्राणी मार ही नहीं पाता। शेर और बाघ भी उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाते, केवल वे गैंडेके बच्चों पर ही कभी-कभी धावा करते हैं। गैंडेको मारनेके लिये मनुष्य सीसेकी गोलीके बदले राँगा डालकर कड़ी की गई गोली काममें लाता है। गैंडेका मांस, चमड़ा और सींग सभी मनुष्यके काममें आता है। चमड़ेसे पहले ढाल बनाया करते थे। वे इतने कड़े होते थे कि तीर-तलवारकी कौन कहे, वे गोलीसे भी रक्षा कर सकते थे। प्राचीन लोगोंका विश्वास था कि गैंडेके सींगसे बने प्यालेमें विष पड़ी मदिरा आदिके डालते ही वह फफदने लगती है। इसलिये राजा-महाराजा गैंडेके सींगके प्याले बनवाया करते थे। चीनमें गैंडेका सींग औषधिके काममें आता है और ५००) सेरके भावसे बिकता है।

गैंडेके सरल स्वभावका होते हुये भी उसे कोई पालतू नहीं बना सका है। साल दो साल तक तो वे सीधे रहते हैं। परन्तु उसके बाद उनके स्वभाव पर किसी प्रकारका भरोसा नहीं किया जा सकता। परन्तु कलकत्तेकी पशु-वाटिकामें एक प्रौढ़ गैंडा था जिसकी पीठ पर लड़के चढ़ा करते थे।

आसाम बरमा, सियाम, मलय प्रायःद्वीप, सुमात्रा बोरनियो आदि स्थानोंमें छोटी जातिका गैंडा होता है जिसकी नाक पर दो सींग होते हैं। इसकी खाल भी उतनी कड़ी नहीं होती जितनी बड़े गैंडेकी और यह उतना ज़िद्दी स्वभावका भी नहीं होता।

भारतके गैंडेका रंग धुमैला काला होता है, परन्तु मध्य अफ्रीकामें एक श्वेत गैंडा मिलता है। यह अब प्रायः लुप्त हो गया है। इसकी नाक पर भी केवल एक सींग होता है, परन्तु वह भारतीय गैंडेके सींगका तिगुना, गज़, सवा गज़, का होता है। यह भी बड़े शांत स्वभावका होता है, परन्तु यदि कभी किसी कारण कुपित हो जाता है तो बड़ा भयानक हो जाता है। तब उसे इसकी परवाह नहीं

टेपिर

मलयके टेपिरकी पीठ हलके भूरे रंगकी होती है और शेष भाग धुमैले काले रंगका, जिससे जान पड़ता है मानो उसकी पीठ पर काठी कसी है।

रहती कि शत्रु निःशस्त्र मनुष्य है या तीन टन वाली मोटर लॉरी। वह सम्पूर्ण निर्भीकतासे जा भिड़ता है।

टेपिर

गैंडेका निकट सम्बन्धी, परन्तु बाहरसे देखनेमें कुछ-कुछ सूअर-जैसा, एक जंतु है जिसे टेपिर कहते हैं। ये जंतु मलय प्रायःद्वीप और दक्षिणी अफ्रीकामें मिलते हैं। इनकी नाक थूथनके रूपकी लम्बी-सी होती है। बच्चे पर धारियाँ पड़ी रहती हैं, परन्तु बड़े होने पर ये धारियाँ मिट जाती हैं। अफ्रीकाके टेपिरमें अन्तमें जानवर केवल भूरे रंगका रह जाता है। मलयके टेपिरकी पीठ हलके भूरे रंगकी होती है और शेष भाग धुमैले काले रंगका, जिससे जान पड़ता है मानो उसकी पीठ पर काठी कसी है। बड़ी जातिका टेपिर कंधे तक तीन फुट ऊँचा होता है। टेपिर भी बहुत बली होता है और इसकी भी खाल कड़ी होती है। परन्तु इन बातोंमें गैंडेसे यह बहुत ही पिछड़ा हुआ है। जब कोई शत्रुसे मुठभेड़ हो जाती है तो यह साधारणतः घनी झाड़ियोंमें घुस जाता है। इसकी मोटी खालको इन झाड़ियों से कोई हानि नहीं पहुँचती, परन्तु अन्य जंतु उनमें नहीं घुस पाते। यह बहुत डरपोक होता है, परन्तु यदि भागनेका कोई मार्ग न हो तो जान पर खेल कर निडर होकर लड़ता है और अपने पैने दाँतोंसे शत्रुको काट लेता है।

दक्षिणी अमरीकाके आदिम निवासी टेपिरको रस्सीके फंदेसे पकड़ते हैं, परन्तु कभी-कभी टेपिर ऐसी रस्सी को भी तोड़ देता है जिसे बलवान घोड़े नहीं तोड़ सकते। कुछ जातियाँ टेपिर को विषमें बुझे तीरसे मारती हैं। विष इतना तीव्र होता है कि छोटा-सा घाव भी हो जानेसे कुछ ही घंटोंमें जंतु मर जाता है।

१२

गाय, भेड़, बकरी, हिरन, जिराफ़ ऊँट, सूअर, हिप्पो आदि

समखुरी वर्ग

इस वर्गमें वे जन्तु रक्खे गये हैं जिनके खुरोंकी संख्या सम होती है जैसे दो, या चार। गाय-बैल, भेड़, बकरी, हिरन, जिराफ़, ऊँट, सूअर, और हिप्पो इसी वर्गमें हैं।

गोवंश

गोवंशमें चौआलिस गण और प्रत्येक गणमें कई जातियाँ हैं। इसीसे समझा जा सकता है कि गोवंशमें

कितने अधिक जंतु हैं। गाय-बैलोंकी उपयोगिता सभी जानते हैं। दूध, दही, मक्खन, घी यह सब हमें गायोंसे मिलता है। बैल बोझ ढोते हैं और हल खींच कर हमारा खेत जोतते हैं। यूरोप आदि देशोंमें गोमांसकी खपत बहुत है। वहाँ आधुनिक प्रजनन-विज्ञानके सहारे दो तरह के गाय-बैल उत्पन्न किये जाते हैं। एक जाति दूध, मक्खन खूब देती हैं, दूसरी जाति मांसल होती हैं और केवल मांसके लिये ही पाली जाती हैं। भारतकी सिंधी गाय दिन में पन्द्रह सेर दूध देती है।

आसामका जंगली साँड़ बहुत ही बलवान और भयंकर होता है। इसे वहाँ गौर कहते हैं। कंधों तक इसकी ऊँचाई लगभग ६½ फुट होती है।

तिब्बतका याक प्रसिद्ध है। देखनेमें याक गाय-बैलसे बहुत भिन्न लगता है, परंतु है वह गोवंशका ही। याक झबरा होता है। इसलिये वहाँकी भयानक सर्दीको वह सुगमतासे सह लेता है। टेढ़े-मेढ़े पहाड़ों पर भी वह आसानीसे चढ़ सकता है। घास-पात और जंगली पौधे जो कुछ भी मिल जाता है उसी पर वह अपना निर्वाह कर लेता है। वहाँ वालोंको इससे दूध भी मिलता है। झबरे बालोंसे कंबल, वस्त्र और चँवर बनते हैं; हड्डी, सींग और खुर सभी किसी-न-किसी काममें आते हैं, और कुछ जातियाँ याकका मांस भी खाती हैं। याक बोझा ढोनेके काममें भी आता है।

रूस और उत्तरी अमरीकाका बाइसन (या बिसन) भारतीय साँड़ोंसे बहुत बड़ा और तगड़ा होता है। उसका सिर बहुत भारी होता है, कंधे चौड़े और झबरे होते हैं। और पूँछ छोटी होती है। अमरीकामें गोरों ने तो बाइसनोंका एक प्रकारसे नाश ही कर डाला और बहुधा व्यर्थ ही। यहाँ तक कि केवल खेलके लिये वे हजारों बाइसनोंके झुंडोंको घेर-घार कर किसी कराराकी ओर दौड़ाते थे, जिसमें गिरकर वे मर जाते थे। जहाँ लाखों बाइसन थे वहाँ कुछ सौ ही बच रहे। परन्तु अब उनकी हत्याके विरुद्ध सरकार ने नियम बना दिया है और उनकी संख्या फिर बढ़ रही है। आहार, वस्त्र, आदि सभी इन पशुओंसे लोगोंको प्राप्त होता है। बाइसन केवल घास खा कर रहता है।

भैंस भारतकी ही विशेषता है। यहाँसे लोग इन्हें ऑस्ट्रेलिया, हंगैरी तथा अन्य दूर देशों तक ले गये हैं और पाले हैं। ये तर, पानी वाले, देशोंमें रहना पसन्द करती हैं। भैंसा बहुत बलवान होता है और बोझसे लदी गाड़ी खींचता है।

भेड़

भेड़ और बकरीमें बहुत कुछ समानता है और इसी प्रकार बकरी तथा हिरनमें भी समानता है। कुछ ऐसे भी

मेढ़ा
मेढ़ेकी सींग बड़ी बलिष्ठ और सुन्दर होती है।

जंतु हैं जो भेड़ और बकरीके बीचमें पड़ते हैं और किसी बात मेंभेड़की तरह होते हैं, किसीमें बकरीकी तरह। इसी प्रकार बकरी और हिरनके बीच वाले जंतु भी होते हैं। भेड़-बकरियाँ भी गाय-बैलकी तरह जुगाली करती हैं, अर्थात् जल्दीसे निगले भोजनको थोड़ा-थोड़ा करके वे मुँहमें ले आती हैं और उसे सुचितसे चबा कर फिर खा जाती हैं।

भेड़से हमें ऊन मिलता है। उसका दूध और मांस

भी काममें आता है। कहीं-कहीं भेड़ बोझा भी ढोनेके काममें आती है। भेड़ोंकी कई जातियाँ हैं। प्रायः प्रत्येक देशकी भेड़में कुछ विभिन्नता रहती है। भारतमें भी कई प्रकारकी भेड़ें होती हैं। एक को दुम्बा कहते हैं; और इसकी पूँछ चक्कीकी पाटकी तरह गोल और भारी होती है। कुछकी पूँछें तो इतनी भारी होती हैं कि उनके पीछे एक छोटी-सी गाड़ी जोत दी जाती है और पूँछ उसी पर लाद दी जाती है, अन्यथा जानवर चल नहीं सकता। एक जातिके सींग बहुत बड़े और मज़बूत होते हैं। ये लड़ाये जाते हैं। इनको साधारणतः मेढ़ा करते हैं। यों तो कुछ लोग मेढ़ा भेड़के किसी भी नरको कह देते हैं, परन्तु साधारण नर भेड़को भेड़ा कहना अधिक उचित है। भेड़ोंकी एक जातिमें दोनों सींग मिल कर एक हो जाता है।

संसारकी विचित्र भेड़-जातियोंकी विचित्रताओंकी संक्षिप्त सूची यों है :—

एक जातिमें इतने लम्बे बाल होते हैं कि वहाँ लोग उसे 'झबरा हाथी' कहते हैं। एकके सींग ६ फुट लम्बे होते हैं। एक पहाड़ी जाति समुद्रतलसे १२,००० फुट ऊँचे पहाड़ों पर चढ़ जाती है और वहाँकी भयानक सर्दी सह लेती है। एक जातिके चार सींग होते हैं।

बकरी

बकरियोंसे मनुष्यको दूध और मांस मिलता है। जमुनापारी नामकी बकरियाँ संसार भरमें प्रसिद्ध हैं और भारतवर्षसे बहुत-सी इस जातिकी बकरियाँ अमरीका गयी हैं। गायोंकी अपेक्षा ये अपने आहार के हिसाबसे बहुत अधिक दूध देती हैं। बकरियोंकी भी कई जातियाँ हैं। एकके कान इतने लम्बे होते हैं कि वे उनके घुटनों तक लटकते रहते हैं। एक जातिमें गरदनके नीचे लटकने वाले मांसल अँगुलियाँ इतनी अधिक और इतनी लम्बी होती हैं कि वे बृहतकाय झब्बेका रूप धारण कर लेती हैं। एक जातिका बाल इतना लम्बा होता है कि भूमिको छूता चलता है। शामी जाति की पहाड़ी बकरीका चमड़ा बहुत नरम होता है और मोटरकार तथा अन्य बहुमूल्य वस्तुओं को पोंछनेके काममें आता है। कोई-कोई शामीको हरिन मानते हैं। इबेक्स जातिके बकरोंके सींग गज़ भर लम्बे होते हैं। बहुत-से बकरोंको दाढ़ी होती है। काश्मीरके मारखोर नामक बकरोंके सींग पेंचकी तरह ऐंठे और चार फुट लम्बे होते हैं। कुछ बकरे बड़े लड़ाके होते हैं।

बकरे और बकरियाँ बहुत तेज़ दौड़ सकती हैं। वे पहाड़ों पर आसानीसे चढ़ सकती हैं। उन्हें सरकसका खेल भी सिखलाया जा सकता है। कुछ तो एक बोतल पर चारों पैर रख कर खड़ी भी हो जा सकती हैं।

हरिन

हरिन अफरीका और एशियामें मिलते हैं। ये छोटी बड़ी कई जातियोंके होते हैं। ये अपने सींगोंसे सिंह, चीता आदिसे बहुत कुछ अपनी रक्षा कर सकते हैं, परन्तु ये शान्ति-प्रिय जन्तु हैं। स्वयं दूसरे जन्तुओं पर आक्रमण नहीं करते। केवल सहवास ऋतुमें नर हरिन एक दूसरेसे खूब लड़ते हैं। हरिन साधारणतः झुंड-के-झुंड साथ रहते हैं। अफरीकामें बहुधा कई जातिके हरिन, ज़ेबरा, जिराफ़ और शुतुरमुर्ग एक साथ रहते हैं और इस प्रकार वे हिंस्र जंतुओं से अपनी रक्षा अधिक अच्छी तरह कर सकते हैं। एक प्रसवमें हरिनीको एक बच्चा होता है और वह कुछ ही घंटोंमें चलने लगता है। हरिन दिनमें चरते हैं और सन्ध्या-समय कहीं जा छिपते हैं। इनके बालोंमें बहुधा छोटे-छोटे कीड़े-मकोड़े रहते हैं और इसलिये वे उन छोटी चिड़ियोंका स्वागत करते हैं जो उनके शरीर पर बैठ कर इन कीड़ों-मकोड़ोंको खाते हैं। अफ़रीकामें अब कई स्थान हैं जहाँ कोई हरिन नहीं मारने पाता। इसलिये अब उनकी संख्या फिर पर्याप्त हो गई है, अन्यथा उनका नाश ही हो चला था क्योंकि हरिनका चमड़ा, सींग, मांस सभी हमारे काममें आता है।

हरिनोंमें सबसे बड़ा वह होता है जिसे एलैंड कहते हैं। इसके सींग सीधे या पेंचदार होते हैं और शरीर पर हल्के रंगकी धारियाँ होती हैं। यह जानवर बड़े घोड़ेसे भी कुछ बड़ा होता है और तौलमें १५ मनका होता है। यह बहुत बलवान भी होता है। दक्षिणी भारतवर्षमें एक चौसिंगा हरिन होता है जिसे चार सींग होते हैं। साधारण भारतीय मृग या हरिन इस देशमें प्रायः सर्वत्र मिलता है

और खेतोंमें चरते हुये इनके दल बहुधा दिखलाई पड़ते हैं। इनके सींग डेढ़-दो फुटके होते हैं। हरिनियोंके सींग नहीं

एलैंड
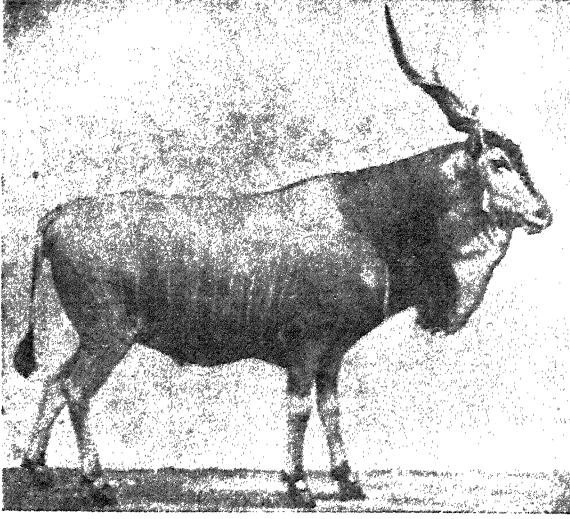
हरिनोंमें कई जातियाँ होती हैं और सबसे बड़ी जाति-को एलैंड कहते हैं।

होते। नर हरिनका रंग गाढ़ा भूरा होता है, परन्तु जैसे-जैसे आयु बढ़ती है उनका रंग काला होता जाता है। केवल, मुँह, गला, और पेट हल्के रङ्गका रह जाता है। मादाका रंग हल्का नीला होता है। ये हरिन छलांग मारकर बहुत तेज दौड़ते हैं। अनुमान किया जाता है कि वे ६० मील प्रति घटेके वेगसे भागते होंगे। अफ़्रीका, अरब और भारतवर्षमें पाया जाने वाला चिकारा नामका हरिन बहुत ही सुन्दर और सुडौल होता है। इसकी आँखें बड़ी-बड़ी होती हैं। दौड़नेमें यह घुड़दौड़ी घोड़ेसे भी तेज और डीलमें बकरीके बराबर होता है। अरबमें इसे गिज़ाला और अँग्रेज़ोंमें गज़ेल्ल कहते हैं। भारतीय हरिनोंमें नील-गाय नामक हरिन सबसे बड़ा होता है। इसका रंग नीलापन लिये भूरा होता है। नीलगाय शब्दसे यह न समझना चाहिये कि ये जंतु गोवंशके हैं। केवल गायके समान बड़ा होनेसे ही इसका नीलगाय नाम पड़ा है। नर नीलगायके सर पर छोटे और सीधे सींग होते हैं। यह बहुत बहादुर और लड़ाका होता है, यहाँ तक कि बाघसे भी नहीं भागता।

जिराफ़

जिराफ़, जिराफा, ज़ुराफ, या ज़ुराफ़ा अफ्रीकाका एक

जिराफ़

जिराफ़ ऊँटकी तरह लम्बी गरदनका परन्तु चित्ती-दार होता है।

बहुत ऊँचा जंगली पशु है जिसकी टाँगें और गरदन ऊँट-की-सी लम्बी होती है और जिस पर चित्ती पड़ी होती है। संस्कृतमें इसे चित्रोष्ट कहते हैं, जिसका अर्थ है चित्ती-दार ऊँट। यह पशु झुंड बाँध कर पारिवारिक रीतिसे रहता है। इसीसे हिन्दी कवियोंने इसके जोड़ेमें अत्यन्त प्रेम मान कर इसका काव्यमें उल्लेख किया है। परन्तु सम-झनेमें कुछ भ्रम हुआ है और इसको पशुकी जगह पक्षी समझा है। उदाहरणतः, लिखा गया है कि (१) मिलि बिहरत बिछुरत मरत दंपति अति रस लीन। नूतन विधि हेमंतकी जगत जुराफा कीन। — बिहारी। (२) जगह जुराफा ह्वै जियत तज्यो तेज निज भानु। रूस रहे तुम पूसमें यह धौं कौन सयानु। — पद्माकर

अँग्रेज़ी शब्द जिराफ़ और हिन्दी ज़ुराफा दोनों अरबी शब्द ज़िराफ़ासे निकले हैं। इस पशुको प्राचीन लोग अच्छी तरह जानते थे। इसमें विशेषता यह है कि ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंकी पत्तियाँ खानेके लिये गरदन तानते रहनेके कारण हज़ारों वर्षोंके विकासमें गरदन धीरे-धीरे लम्बी हो गई है। पैर भी इसी प्रकार बहुत लम्बे होते हैं, यहाँ तक कि बिना टाँग फैलाये या मोड़े, उसकी गरदनके इतने लम्बे होते हुये भी, उसका मुँह पानी पीनेके लिये भूमिकी सितह तक नहीं पहुँच पाती। शरीर हलके नारंगी रंगका होता है और उस पर गाढ़े रंगकी चित्तियाँ पड़ी रहती हैं। इनके कारण यह पेड़की पत्तियोंमें बड़ी सुगमतासे अदृश्य-सा हो जाता है, क्योंकि पत्तियोंके बीचसे छन कर आने वाली धूपसे वैसी ही परछाईं पड़ती रहती है। चित्तियोंकी चित्रकारी कई तरहकी होती है और उनके आधार पर जिराफ़ोंकी कई जातियाँ मानी जाती हैं। नर जिराफके सिरों पर अधिकांश जातियोंमें दो सींग होते हैं जिन पर चर्म होता है और बहुधा मस्तक पर बड़ा-सा उभार रहता है जो नीचेकी हड्डीके उठे रहनेके कारण दिखलाई पड़ता है। जीभ लम्बी होती है और इससे वस्तुएँ पकड़ी भी जा सकती हैं, ठीक उसी तरह जैसे हाथी अपनी सूँड़से पकड़ता है। इसलिये जिराफ अपनी जीभसे पत्ती आदि आसानीसे नोच लेता है। सब स्तन-पोषियोंमें केवल जिराफ़ ही गूँगा होता है। उसके स्वर-यंत्र होते ही नहीं। जब वह बहुत व्यग्र होता है तो फुफकारी मारता है।

जंतुओंमें जिराफ ही सबसे ऊँचा होता है। जवान जिराफ लगभग अट्ठारह फ़ुटका होता है और उसकी तौल तीस मन तक हो सकती है। एक प्रसवमें एक बच्चा उत्पन्न होता है। पाँच वर्षमें यौवनारम्भ होता है और पच्चीस वर्षकी आयुमें जवानी ढल चलती है। जिराफ दिनमें चरते हैं और छोटे झुंडोंमें रहते हैं। ये धीरे-धीरे चलते हैं। बहुत आवश्यकता पड़ने पर ये दौड़ भी सकते हैं, परन्तु वे विचित्र रूपसे लड़खड़ाते-से लगते हैं। तो भी वे दौड़में घोड़ेको पिछाड़ सकते हैं। अपनी रक्षाके लिये जिराफ़ अपने अगले पैरसे लत्ती मारता है। परन्तु दो नर जिराफजब एक दूसरेसे लड़ते हैं तो बकरे, मेढ़े आदिकी तरह सरसे टक्कर मारते हैं। जिराफकी लत्ती बड़े ज़ोरसे लगती है।
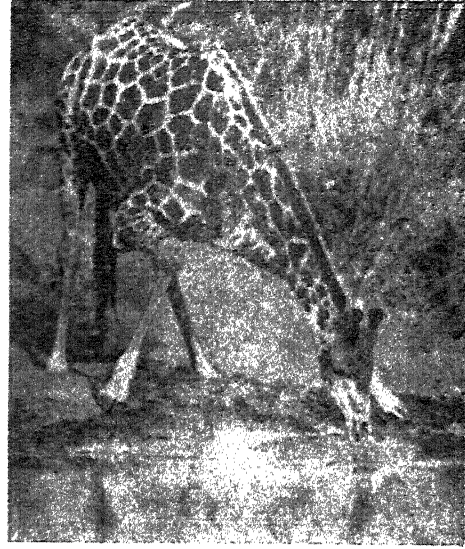
जिराफ़

जिराफ़की गरदन इतनी लम्बी होती है कि पानी पीनेके लिये इसे अपनी अगली टाँगोंको छितरा कर और विचित्र प्रकारसे तोड़ कर झुकना पड़ता है। जिराफ़ घास नहीं चरता। पेड़ोंकी पत्तियाँ खाता है।

जिराफ़का शत्रु सिंह तो है ही, परन्तु मनुष्य भी इसका भयंकर शत्रु है। काले और गोरे दोनों जातिके मनुष्योंको जिराफ़का मांस स्वादिष्ट लगता है। इसलिये जिराफ़ोंकी संख्या बहुत शीघ्र घट चली थी। अब सरकारकी ओरसे प्रबन्ध है, जिससे उनकी जाति लुप्त न होने पायेगी। परन्तु कहीं-कहीं इनसे खेतोंको बड़ी हानि पहुँचती है।

पाले जाने पर जिराफ़ बड़े सीधे हो जाते हैं। कलकत्तेकी पशुवाटिका (चिड़ियाखानेमें) कई जिराफ़ हैं।

बारहसिंगा

बारहसिंगोंके सींगमें शाखाएँ होती हैं, यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि सींगोंकी संख्या ठीक बारह ही हो।
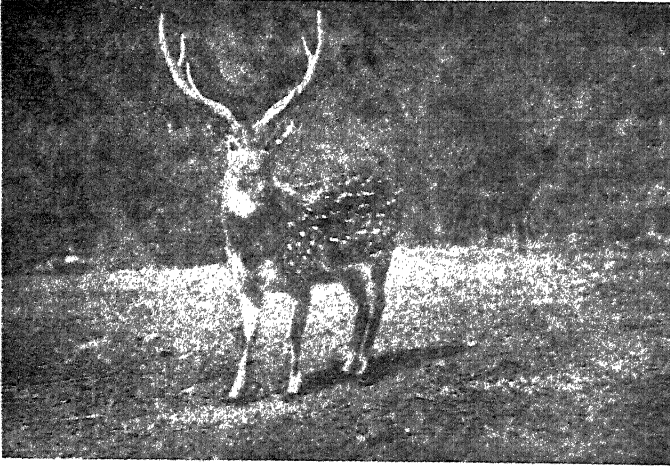
चीतल

चीतल नामक बारहसिंगाकी शरीर पर चित्तियाँ होती हैं।

जवानी ढलने लगती है तो शाखाएँ एक-एक करके झरने लगती हैं।

बारहसिंगे बहु-पत्नी होते हैं। सहवास ऋतुमें एक बारहसिंगेके छः सात पत्नियाँ रहती हैं, परन्तु ऋतु बीत जाने पर परिवारके सदस्य अलग-अलग हो जाते हैं। बारहसिंगे घास-पात खा कर रहते हैं। एक प्रसवमें एक बच्चा उत्पन्न होता है और जीवन-विस्तार लगभग पच्चीस वर्ष होता है। बारहसिंगे साधारणतः जंगलोंमें रहते हैं।

बारहसिंगोंकी कई जातियाँ हैं। सबसे बड़ा बारहसिंगा कैनाडाका होता है जो एल्क या मूस कहलाता है। इसकी गरदनसे दाढ़ीकी तरह बाल लटकता रहता है और सींगोंका विस्तार लगभग चार फुट होता है। नर बड़े घोड़ेके बराबर होता है। नारी एल्क अपने बच्चोंकी रक्षामें अपने जानकी परवाह नहीं करती और भालू आदि

सींग नर बारहसिंगोंमें ही होता है। अधिकांश जातियोंमें वसन्तके कुछ पहले सींग झर जाते हैं और मईमें उनके स्थान पर नवीन सींग उगने लगते हैं। लगभग अगस्त तक उनकी वृद्धि पूरी हो जाती है। जब तक सींग उगते रहते हैं तब तक उन पर नरम बाल रहता है और सींगों में रक्त मोटी-मोटी नसोंसे पहुँचता है। परन्तु वृद्धि पूरी हो जाने पर ये नसें सूख जाता हैं और रोयेंदार त्वचा सूख कर चमड़ेकी तरह हो जाती है। सम्भवतः इससे खाज उत्पन्न होती है, क्योंकि बारहसिंगा अपनी सींगोंको कड़ी वस्तुओं पर रगड़ा करता है। इससे बाल घिस जाते हैं। सींगोंकी उपयोगिता केवल यह जान पड़ती है कि नर बारहसिंगे एक दूसरेको घायल कर सकें। सींगोंमें शाखाओंकी संख्या समय-समय पर बढ़ती रहती है। जवानीमें शाखाओंकी संख्या सबसे अधिक रहती है। जब

काश्मीरका बारहसिंगा

काश्मीरका बारहसिंगा बहुत बड़ा और शानदार होता है और उसके सींगमें बारहसे सोलह शाखाएँ होती हैं।

बलवान पशुओंसे लड़ जाती है। अपने अगले पैरके खुरोंसे मार कर और कुचल कर वह उनकी जान ले लेते हुये भी देखी गई है।

भारतवर्षके बारहसिंगोंमें साँभर सबसे प्रसिद्ध है। यह भारतवर्षके प्रायः सभी जंगलोंमें मिलता है। कंधों तक यह लगभग ५ फुट ऊँचा होता है। रंग गहरा भूरा होता है। सींग लगभग एक गजके होते हैं और उनमें तीन-तीन शाखाएँ होती हैं। साँभर साधारणतः दल बाँध कर रहते हैं। दिनमें वे कहीं छिपे रहते हैं और रातको चरनेको निकलते हैं। लोग साँभरका अकसर शिकार करते हैं।

चीतल नामक बारहसिंगोंके शरीर पर सफेद रंगकी छोटी-छोटी चित्तियाँ होती हैं। रंग भूरा होता है। चीतल छोटा होता है। उसकी ऊँचाई कंधों तक लगभग एक गज होती है। चीतल झुंडोंमें रहते हैं और प्रातःकाल चरते हुये बहुधा दिखलाई पड़ते हैं। मध्य भारतके जंगलों और पहाड़ियों पर ये बहुत होते हैं।

लामा

लामा ऊँटसे मिलते-जुलते पशु होते हैं परन्तु उनसे बहुत छोटे होते हैं।

काश्मीरका बारहसिंगा लगभग साँभरके बराबर होता है परन्तु उसके सींगमें बारहसे सोलह शाखाएँ होती हैं।

ऊँट

ऊँट साढ़े सात फुट ऊँचा और लगभग ३० मन तौल का होता है। पैरके नीचे गद्दियाँ होती हैं जिससे वह बालू पर आसानीसे चल सकता है। पीठ पर जो कूबड़ निकली होती है उसमें चर्बी रहती है। जब ऊँटको कई दिन तक खाना नहीं मिलता तो इसी चर्बीसे उसके शरीरका निर्वाह होता रहता है। पेटमें मधुमक्खीके छत्तेकी तरह जाली होती है जो बहुत-सा पानी सोख लेती है, और इस प्रकार एक बार भरपूर पानी पी लेने पर ऊँट कई दिनों तक बिना पानीके रह सकता है। यही सब कारणोंसे ऊँट मरुभूमिमें कई दिनों तक बिना दाना-पानीके भी रह जाता है। यात्रा करनेमें जलके लिए वह बहुधा कैसा तरस जाता है इसका अनुमान तभी होता है जब कई दिनके उपरान्त वह किसी स्रोतके समीप पहुँचता है। तीव्र घ्राणशक्तिके द्वारा मीलोंसे उसको जलका पता चल जाता है और तब वह उन्मत्त हो स्रोतकी ओर अग्रसर होता है। जलकी खोजके लिए यात्री भी अपने ऊँट ही पर भरोसा रखते हैं।

अच्छा आहार और लगातार चुनाव करते रहनेसे ऊँटोंकी एक उपजाति अलग उत्पन्न कर ली गयी है। इस जातिके ऊँट बहुत तेज़ दौड़ सकते हैं। इनको साँड़िनी कहते हैं। एक दिनमें १०० मील चलना उनके लिए असाधारण नहीं है। वे सप्ताहों तक पचास-साठ मील प्रति दिनके हिसाबसे चलते रहते हैं।

ऊँट बहुत कम और रूखा-सूखा आहार खाकर स्वस्थ रह सकता है।

कदाचित् किसी अन्य देशमें मानव-जातिके लिए ऊँट इतना उपयोगी नहीं होता जितना अरब-निवासियोंके लिए। वे उसका मांस खाते हैं और दूध पीते हैं। चमड़ेके जूते और काठियाँ बनाते हैं। बालोंके कम्बल और डेरे बनाते हैं। यात्रा तथा वाणिज्य-व्यापारके लिए ऊँट ही पर उनका आसरा रहता है। ऊँटके बच्चोंको विशेष साधनों-द्वारा अरब लोग सहनशील तथा परिश्रमी बनाते हैं। कभी वे उनके पैर बाँधकर धूपमें डाल देते हैं जिससे प्रचण्ड
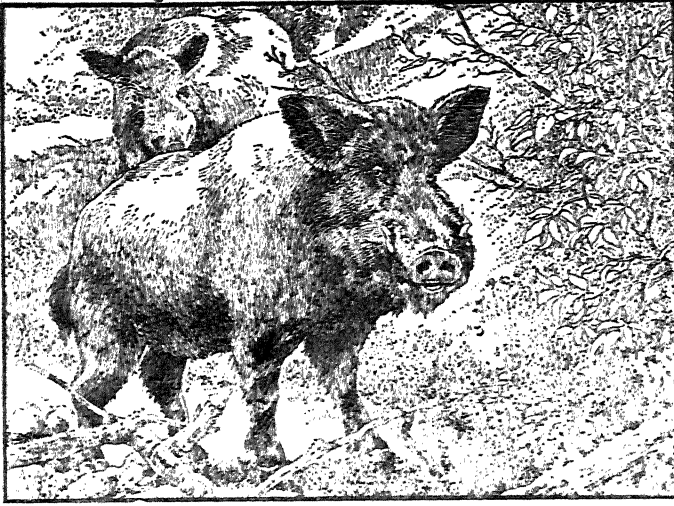
बनैला सूअर

बनैला सूअर बड़ा ही निर्भय और वीर होता है।

सूर्यतापके कष्ट सहन करनेका उनको अभ्यास रहे। कभी घुटनोंके बल बिठाके उनको जकड़ देते हैं और पीठ पर बोझ लाद देते हैं, कई-कई दिन तक भूखा रखते हैं और अल्पाहारी बनाते हैं। आश्चर्यका विषय है कि जलती हुई बालू पर २५-३० मील प्रतिदिन यात्रा करके, ऊँट सप्ताहों तक केवल दो-चार मुट्ठी नाज अथवा छुहारों पर दिन काट लेता है।

साधारण ऊँटोंके एक ही कूबड़ होता है परन्तु मध्य एशियाके ऊँटोंके दो कूबड़ होते हैं। वे साधारण ऊँटोंसे बड़े भी होते हैं।

लामा ऊँटसे मिलते-जुलते पशु होते हैं, परन्तु ये ऊँटसे बहुत छोटे होते हैं। ये दक्षिणी अमरीकामें मिलते हैं और ऊँटोंसे अधिक झबरे होते हैं।

सूअर

जंगली सूअर, जिसे लोग साधारणतः बनैला सूअर कहते हैं, बड़ा ही निर्भय और वीर जंतु होता है। वह बाघसे भी नहीं डरता और मुठभेड़ हो जाने पर बहुधा उसे मार डालता है। एक शिकारीने लिखा है कि एक बार जहाँ सूअरोंका कुटुम्ब जल पी रहा था पाँच हाथी पहुँचे। नर सूअर उन पर टूट पड़ा और उनके पैरोंको चीरने लगा। पाँचों हाथी चिल्लाते हुये भाग गये। सूअरके कुकुर-दंते बड़े होते हैं; वे बहुत दृढ़ और तीक्ष्ण भी होते हैं। इनसे सूअर हाथीकी मोटी खाल तकको फाड़ सकता है। सूअर मांस तथा घास-पात, फल-फूल सभी कुछ खाता है। जलसे उसे अत्यन्त प्रेम होता है। तरीके स्थानोंमें पड़ा रहना या कीचड़-पानीमें लोटना उसे बहुत अच्छा लगता है। एक प्रसवमें चार-पाँच बच्चे उत्पन्न होते हैं।
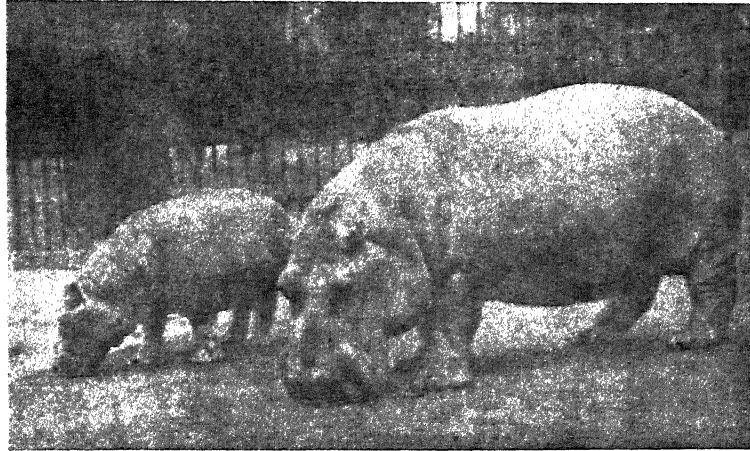
दरियाई घोड़ा या हिप्पो

हिप्पो बड़ा भारी और बलवान जंतु होता है।

यूरोप और अमरीकामें मांसके लिये जो सूअर पाले जाते हैं वे मनुष्यके उद्यमसे उत्पन्न हुये हैं। उनमें मांस-ही-मांस दिखलाई पड़ता है। टाँगें छोटी और शरीर बहुत भारी होता है। पेट प्रायः भूमि तक पहुँच जाता है। एक बारमें ऐसी सूअरी पन्द्रह-सोलह बच्चे जनती है।

दरियाई घोड़ा

स्थलके दीर्घकाय जंतुओंमें हाथीके बाद दरियाई घोड़े का ही नम्बर है। यद्यपि लोग इसे घोड़ा कहते हैं तो भी सिवाय इस बातके कि इसके भी चार टाँगे होती हैं घोड़े और इसमें कोई सम्बन्ध नहीं है। अँग्रेज़ीमें इसे हिपोपोटेमस कहते हैं जिसका भी अर्थ दरियाई अर्थात् नदीका घोड़ा, है। बोल-चालमें बहुधा इस बड़े शब्दके बदले इसके संक्षिप्त रूप 'हिप्पो' का प्रयोग होता है। सुविधाके लिये हम भी इसे हिप्पो ही कहेंगे।

हिप्पो अत्यन्त अविकसित प्राणी हैं। वे अब केवल अफरीकामें मिलते हैं, परन्तु भूमिमें गड़े अवशेषोंसे पता चलता है कि पहले वे अन्यत्र कई स्थानोंमें मिलते थे। हिप्पो बहुत नाटा, मोटा और भारी पशु होता है। त्वचा पर बाल नहीं होते। प्रत्येक पैरमें चार खुर होते हैं। सर लम्बा होता है और आँख, नथुने और कान ऐसी स्थितिमें रहते हैं कि हिप्पो चाहे तो जलमें प्रायः डूबा रह कर केवल इन अंगोंको जलके ऊपर रख सकता है।

हिप्पोके दाँत

हिप्पोके दाँत बहुत बड़े और भयानक होते हैं। एक बारमें हिप्पो मनुष्यके दो टुकड़े कर सकता है।

अत्यन्त प्राचीन समयसे मनुष्य हिप्पोसे परिचित था। प्राचीन मिश्रमें इसकी पूजा होती थी। रोमन लोग इसे सरकसोंमें दिखाते थे। यद्यपि यह लगभग साढ़े चार फुट ही ऊँचा होता है तो भी यह दस फुट लम्बा और तौलमें लगभग ७५ मनका होता है। इसके दाँत बहुत बड़े और भयानक होते हैं। एक बारमें हिप्पो मनुष्यके दो टुकड़े कर देता है। परन्तु यह मांस नहीं खाता। केवल घास-पात और कंद-मूल खाता है। एक प्रसवमें एक बच्चा उत्पन्न होता है। पालतू हिप्पो तीस वर्ष तक जीवित देखे गये हैं। प्राकृतिक अवस्थामें वे चालीस-पैंतालीस वर्ष जीवित रहते होंगे। इसकी त्वचासे विचित्र लाल पसीना निकलता है जो सूखने पर शरीरको लाल रंग देता है। पोंछने पर यह सूक्ष्म चूर्णकी तरह उठ आता है।

इसका मांस, चमड़ा, चर्बी और हड्डी सभी मनुष्यके लिये उपयोगी है। इसलिये लोग इसका शिकार किया करते हैं। फलतः इसकी संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है। दिनमें यह साधारणतः पानीमें पड़ा रहता है। रातको चरने निकलता है और पासमें कहीं खेत हो तो उसे भी चर लेता है। यह बहुत शांत जन्तु है, परन्तु छेड़े जाने पर भीषण रूप धारण कर लेता है। कभी-कभी तो बीस-पच्चीस शिकारियोंके पूरे नावको उलट देता है। साधारणतः इसकी बोली बछड़ेकी बोलीकी तरह होती है। परन्तु कुपित होने पर डरावनी गरजन करता है। मनुष्यको छोड़ अन्य शत्रु से इसे किसी प्रकारका भय नहीं रहता। कलकत्तेके चिड़ियाखानेमें दरियाई घोड़ेके पास सदा ही भीड़ लगी रहती है।

बच्चा आरम्भसे ही तैर सकता है। तो भी यह काफ़ी समय तक अपनी मांकी पीठ पर चढ़ा रहता है। बौने जातिके भी हिप्पो होते हैं।

१३
साल
शल्कधारी वर्ग

इस वर्गके जीवोंके शरीर पर मछलीके समान शल्क

होते हैं—शल्क उन छोटे-छोटे कड़े पत्तरोंको कहते हैं जो मछलियों और कुछ अन्य जंतुओंके शरीर पर होते हैं, और जो एक दूसरे पर चढ़े रहते हैं और उस जन्तुके शरीर की कवचकी तरह रक्षा करते हैं। इस वर्गमें केवल थोड़ी-सी ही जातियाँ हैं। इन सबका शरीर लम्बा होता है और उन पर बड़े और कड़े शल्क रहते हैं। ये शल्क वस्तुतः बालके जुट होते हैं अर्थात् वे बहुतसे बालोंके एक-दूसरेसे चिपकने और कड़े हो जानेसे बनते हैं। इनको ये जानवर जब चाहते हैं खड़ा कर लेते हैं। जीभ चाबुककी तरह होती है और बहुधा जन्तुके सिरसे तिगुनी लम्बी होती है। इससे ये जन्तु कीड़े-मकोड़े चाट जाते हैं, विशेष कर चींटी और दीमकको। कुछ जातियाँ अपने

साल

इस जन्तुके शरीर पर मछलीकी तरह शल्क होते हैं।

बलिष्ठ पंजोंसे बिल खोद कर भूमिके भीतर रहती हैं। अन्य जातियाँ पेड़ों पर रहती हैं। इन जंतुओंके दाँत नहीं होते। ये विचित्र जन्तु चींटी, चींटे, माटा (लाल चींटा) और दीमकको सुगमतासे खा जाते हैं। चींटियाँ इनको काट नहीं पातीं क्योंकि इनका शरीर शल्कोंसे सुरक्षित रहता है। इनका मांस खाया जाता है।

यह जन्तु भारतवर्षमें भी अनेक स्थानोंमें मिलता है। इसे साल या सिल्लू कहते हैं। उसकी पूँछ लम्बी और चौड़ी होती है और वह भी शल्कोंसे ढका रहता है। अपनी रक्षाके लिये साल अपने शरीरको लपेट कर गोल गेंद-सा बना सकता है। उसके शल्क इतने कड़े होते हैं कि पिस्तौलकी गोली भी उसे नहीं पार कर पाती।

१४

स्लॉथ, चींटीखोर, और आर्मा-डिल्लो

अधिसंधी वर्ग

अधिसंधीका अर्थ है कुछ अधिक संधि वाला। इस वर्गके जंतुओंकी रीढ़में कुछ ऐसी विशेषता होती है जिससे उन्हें यह नाम दिया गया है। इस वर्गमें स्लॉथ, चींटीखोर और आर्माडिल्लो हैं।

स्लॉथ

स्लॉथ बिल्लीके बराबर होता है और दक्षिणी अमरीकामें पाया जाता है। इसकी विशेषता यह है कि यह सदा पेड़ोंकी डालियोंको अपने चारों पैरोंसे पकड़े लटकता रहता है। इसकी टाँगे अपेक्षाकृत बहुत लम्बी होती हैं और पंजोंमें अंकुशकी तरह नख होते हैं जिनके सहारे यह जन्तु पेड़ोंकी डालियोंसे बिना किसी विशेष परिश्रमके लटक सकता है। अपनी इच्छासे ये कभी भूमि पर उतरते ही नहीं, क्योंकि भूमि पर, अपनी विचित्र शरीर रचनाके कारण, वे ठीकसे चल नहीं पाते। उनकी टाँगें

स्लॉथ

यह जन्तु वृक्षोंकी शाखाओंसे लटके-लटके ही चलता, खाता-पीता और सोता है।

चींटीखोर

चींटीखोर दीमक खा कर रहता है। उसके दाँत नहीं होते। वह बहुत झबरा होता है। उसके रंगमें सुरमई और कालाका मिश्रण रहता है। पूँछ बहुत बड़ी और लम्बे-लम्बे बाल वाली होती है जिससे वह धूपमें छतरीका काम लेता है। सिर सँकरा और थूथन लम्बी होती है। मुँह छोटा होता है और पैरोंमें टेढ़े नख होते हैं जिनके कारण वह तेज़ नहीं चल पाता। परन्तु इसकी जीभ बहुत लम्बी और चाबुक-सी होती है। जीभ बड़ी लसदार होती है, जिससे वह दीमकोंको सहज ही में चाट लेता है। वह जीभको विद्युत गतिसे बाहर और भीतर चलाता है। दीमकोंको उतनेमें जीभको काटनेका समय ही नहीं मिल पाता।

अपने पञ्जोंसे वह दीमकोंका घर खोदता है। यदि मनुष्य या कोई जन्तु चींटीखोरको छेड़ता है तो वह उसे अपने नखोंसे घायल कर

उनके बोझको सँभाल नहीं पातीं और शरीर भूमि पर घसिटने लगता है। इसलिये वे भूमि पर लाचार-से रहते हैं और इतने कष्टसे धीरे-धीरे वे आगे खिसक पाते हैं कि उनका नाम अँग्रेजीमें स्लॉथ पड गया है, जिसका अर्थ है 'सुस्त'। इसे हिन्दीमें 'तंद्रिल' कहना उचित होगा। भूमि पर खिसकनेके लिये वे अपने नखोंको भूमिमें कहीं गड़ा लेते हैं और तब भर-पूर बल लगा कर अपनेको आगे खींचते हैं। परन्तु पेड़ों पर वे बड़े फुर्तीले होते हैं। वे एक डालसे दूसरी डाल पर होते हुये जंगलोंमें शीघ्र दूर निकल जाते हैं। रातको भी वे पेड़ों पर लटके-ही-लटके सोते हैं। स्लाथका बच्चा जन्मके बाद अपनी माताके शरीरसे चिपका रहता है। कई सप्ताह बाद ही, जब उसमें बल आ जाता है, वह अलग डालियोंसे लटकता है।

चींटीखोर

इसकी जीभ चाबुक-सी लम्बी और पतली होती है। यह दीमक खाकर रहता है।
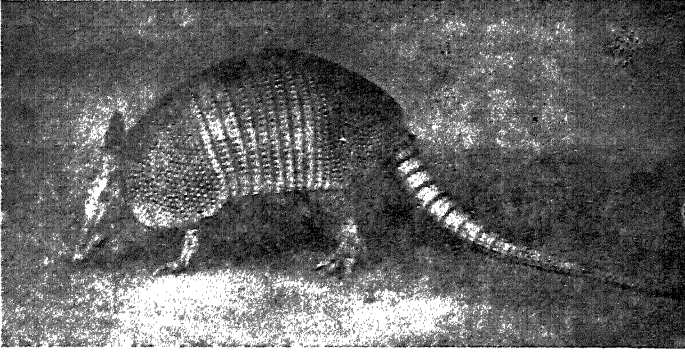
आर्मीडिल्लो
इस जन्तुके शरीर पर कछुएकी तरह हड्डियोंका कवच रहता है।

देता है। चींटीखोर दिनमें सोता है और रातमें चलता है। यह माँद नहीं बनाता, केवल अपनी पूँछ ओढ़ लेता है। इसीसे धूप और पानी दोनोंसे रक्षा हो जाती है। इसकी खाल इतनी मोटी और कड़ी होती है कि इसे दीमक नहीं काट पाते। एक बारमें एक बच्चा उत्पन्न होता है और वह आरम्भमें अपनी माताकी पीठ पर सवारी गाँठे रहता है।

आर्मीडिल्लो

आर्मीडिल्लो छोटा जन्तु है। इसका शरीर एक दूसरे पर चढ़े हुये, हड्डीको तरह कड़े, शल्कों या पत्तरोंसे सुरक्षित रहता है। एक ढाल, या कवच, तो सिर पर रहता है, एक कंधे पर और एक पीछेकी ओर, और इन अन्तिम दो ढालोंके बीच कई एक सँकरे शल्क बेंड़े-बेंड़े रहते हैं। इन मध्यस्थ शल्कोंके अलग-अलग रहनेके कारण जंतु अपना शरीर मोड़ सकता है। जब कोई खटका रहता है तो जन्तु अपने शरीरको मोड़ कर गेंद-सा गोल हो जाता है।

प्राचीन समयमें आर्मीडिल्लोंके शरीर पर अखंडित कवच रहता था, जैसा इन दिनोंके कछुओंकी पीठ पर होता है। ये बहुत बड़े भी होते थे—बैलके बराबर—और इनकी पूँछ पर काँटे होते थे। पूँछकी अन्त पर गदाके समान एक पिंड होता था। परन्तु अब ऐसे आर्मीडिल्लो लुप्त हो गये हैं। वर्तमान जीवित आर्मीडिल्लोंमें संधियुक्त कवच होता है और लम्बे नुकीले सिर होते हैं। कान छोटे होते हैं। दाँतोंकी संख्या बहुत कम होती है और जीभ चाबुककी तरह लम्बी होती है। यह भी कीड़े-मकोड़े ही खाता है। शरीर परके कवचमें बारह पट्टियाँ होतीं हैं जो थोड़ा-बहुत हट-बढ़ सकती हैं। ये जन्तु केवल मध्य और दक्षिणी अमरीकामें होते हैं। ये बहुधा खुले मैदानमें रहते हैं और अपने पैने पञ्जोंसे सुगमतासे गहरे बिल खोद लेते हैं। आर्मीडिल्लोकी कई एक जातियाँ हैं। उनमेंसे सबसे बड़े लगभग एक गज़के होते हैं। अन्य सब बहुत छोटे होते हैं। सबसे छोटा तो कुछ ही इंचोंका होता है। उसका कवच लाल होता है और वह देखनेमें बड़ा सुन्दर लगता है। आर्मीडिल्लो स्पेन वालोंका रक्खा नाम है। इसका अर्थ है छोटा शस्त्रधारी। संस्कृत और हिन्दीमें इसे कवचधर (या ठेठ हिन्दीमें कवचहा) कहना अधिक उत्तम होगा।

१५

थैली वाले जंतु

उपजठरी वर्ग

उपजठरी वर्ग वाले जंतुओंके पेटके आगे एक दूसरा पेट-सरीखा थैला होता है (जठर = पेट), जिसमें माताएँ अपने बच्चोंको रख लेती हैं। ये ऑस्ट्रेलियामें मिलते हैं और कई तरहके होते हैं। कुछ तो घास-पात खाते हैं, परन्तु कुछ मांसाहारी भी होते हैं। कुछ वृक्षों पर रहते हैं और कुछ प्रायः सदा पानीमें ही रहते हैं। इन सब जातियों की बुद्धि मंद होती है। यहाँ केवल एक-दो जातियोंका वर्णन पर्याप्त होगा।

कांगरू

उपजठरियोंमें कांगरू ही सबसे अधिक प्रसिद्ध है।

कांगरू

नारी कांगरूके पेटके सामने एक थैली होती है जिसमें बच्चा घुस सकता है। कांगरू छलांग भर कर बड़े वेगसे भागते हैं।

इनकी कई जातियाँ हैं। सबसे बड़ा कांगरू पाँच फुटसे कुछ ऊँचा ही होता है और सबसे छोटा चूहेके बराबर होता हैं। परन्तु इन सबकी शरीर-रचनाओंमें आश्चर्यजनक समता है।

कांगरू निरामिष भोजी हैं—वे मांस नहीं खाते। अपनी रक्षा के लिए वे केवल एक उपाय जानते हैं, वह यह कि भाग कर जान बचाई जाय, और भागते भी हैं वे किस आश्चर्यजनक वेगसे! एक छलांगमें वे १५ फुट जाते हैं, और तेज़-से-तेज़ कुत्ता उन्हें पकड़ नहीं पाता। आवश्यकता पड़ने पर वह २०-२५ फुट तककी छलाँग भर सकता है और ६ फुट ऊँचा कूद सकता है। उनकी पिछली टाँगें बड़ी मज़बूत होती हैं और पूँछ बड़ी और भारी होती है। छलाँग मारने पर पूँछ उनको समतुलित रखती है—अगली टाँगके आगे और पीछे प्रायः बराबर भार रहता है, जिससे उन्हें अगली टाँगोंसे बल नहीं लगाना पड़ता। जब कांगरू बैठते हैं तो पूँछ और पिछली टाँगोंके बल। वस्तुतः ऐसा जान पड़ता है मानों वे तीन टाँगके जंतु हों और उनके दो हाथ भी हों। यदि कोई शत्रु उन पर आक्रमण कर दे और भागनेका रास्ता न रहे तो वे केवल चूतड़ और पूँछके बल बैठ अपने दोनों पिछले पैरोंसे लत्ती मारते हैं। एक ही लत्तीमें मनुष्यका पेट फट जाता है। अगले पैर छोटे होते हैं। तो भी उनसे कांगरू अच्छी तरह पकड़ सकता है। अगले पंजोंमें पाँच-पाँच अँगुलियाँ रहती हैं और पिछलेमें केवल चार-चार। सामनेके दाँतोंमें भी बड़ी विशेषता रहती है। ऊपरी जबड़े में छः तक दाँत रहते हैं, परन्तु नीचे वाले जबड़े में केवल दो। ये दाँत बड़े पैने होते हैं और उनसे कांगरू घास अच्छी तरह कुतर सकता है। कांगरू अधिकतर घास ही खाकर रहता है।

बहुत समय तक लोग यह नहीं समझ पाते थे कि बच्चा कैसे उत्पन्न होता है। इस बातका रहस्य हालमें ही खुला है। जन्मके समय बच्चा बहुत छोटा, कुल इंच डेढ़ इंचका, होता है। पेट से बच्चा बाहर निकलता है तो वह उस मार्ग पर जिसे माता अपने शरीरके रोओंको चाट कर चिकना बना देती है रेंगता हुआ उपजठरमें पहुँच जाता है। इसीके भीतर माताके दोनों स्तन होते हैं। बच्चा वहाँ पहुँच कर स्तनमें मुँह लगा लेता है। तब कुचाग्र फूल कर गेंदकी तरह हो जाता है जिससे बच्चेके मुँहसे स्तन नहीं छूट सकता। जन्मके समय बच्चेकी आँख बन्द रहती है और शरीर पर बाल भी नहीं रहता। माताके उपजठरमें ही प्रायः ६ महीने तक वह रहता है। इसके बाद भी जब कभी कोई खटका होता है तो वह कूद कर अपनी माताके उपजठरमें घुस जाता है।

इस प्रकार कांगरू इतने निम्न विकासका प्राणी तो नहीं है कि वह अंडेसे उत्पन्न हो, तो भी पेटसे निकलने पर वह अत्यन्त अपूर्ण अवस्थामें रहता है और उपजठरमें पल कर ही वह कांगरूकी तरह हो पाता है।

कांगरू खेत चर कर कृषकोंको बहुत हानि पहुँचाते हैं। इसलिए कृषक इनको मारनेका बराबर अवसर ढूँढ़ते रहते हैं। फलतः इनकी संख्या अब बहुत कम हो गयी है।

कोआला

कोआला झबरा, बिल्लीके बराबर और बहुत सुन्दर होता है। यह वृक्षों पर रहता है।

कांगरू नाम भी संयोग वश पड़ गया है। कैप्टन कुक के साथियों ने ऑस्ट्रेलियाके आदि-वासियोंको कांगरू दिखा कर पूछा कि वह कौन जंतु है। उन्होंने उत्तर दिया 'कान ग रू' अर्थात् 'हम समझे नहीं'। बस अँग्रेज़ों ने समझ लिया कि इस जंतुका नाम कांगरू है।

कांगरू की एक छोटी जातिको 'वल्लभी' कहते हैं। किसी मनुष्यका वल्लभी कहनेका अर्थ ऑस्ट्रेलियामें यह होता है कि वह व्यक्ति आवारा है और कोई काम-काज नहीं करता। एक जातिके कांगरू पेड़ पर उतना ही सुगमतासे चढ़ जाते हैं जैसे बन्दर।

कोआला

कोआला किसी समयमें बहुत अधिक संख्यामें होता था। अब वह बहुत कम मिलता है। यह बहुत सुन्दर जंतु है। बिल्लीके बराबर होता है, नाटा और मोटा होता है, शरीर पर घने और नरम बाल होते हैं, और देखनेमें यह छोटे-से भालूकी तरह लगता है। इसके सुन्दर ऊनी खाल के कारण लोगों ने इसे खोज-खोज कर मारा। इने-गिने ही जंतु बच गये थे। तब दो धनिकों ने इनको पालनेके लिए विशेष वाटिका टेडी पार्क—खोला। अब आशा की जाती है कि समय पाकर इनकी संख्या फिर यथेष्ट हो जायगी।

कोआला केवल यूकालिप्टस वृक्षकी पत्तियाँ खाता है। ये वृक्ष बहुत ऊँचे-ऊँचे होते हैं, परन्तु कोआला उन पर सुगमतासे चढ़ जाता है। यह विधिवत पहले एक फिर दूसरी शाखाकी पत्तियों-को खाता है। एक प्रसवमें एक बच्चा उत्पन्न होता है और जब तक वह प्रायः पूरा बड़ा नहीं हो जाता अपनी माता की पीठ पर चढ़ा रहता है। विशेष भोजनकी आवश्यकताके कारण कोआला कहीं अन्यत्र पाला नहीं जा सका है। पूर्वोक्त वाटिकामें अब लगभग २०० कोआला हैं, परन्तु १६२७ में फ़र बेचने वालों ने ६ लाख जवान और २ लाख बच्चे केवल एक महीनेमें मारे थे!

१६

अंडा देने वाले स्तनपोषी

एकछिद्री वर्ग

एकछिद्रीका यह अर्थ है कि इन जंतुओंमें योनि और गुदाका एक ही उभयनिष्ठ द्वार होता है। स्पष्ट है कि ये जंतु स्तन-पोषियोंमें सबसे कम विकसित हैं। एकछिद्री चिड़ियों की तरह अंडा देती हैं, परन्तु अंडोंमेंसे बच्चोंके निकलने पर उन्हें स्तनपोषियोंकी तरह अपने स्तनका दूध पिलाती हैं। एकछिद्रियोंकी शरीररचनाके अध्ययनसे सिद्ध होता है कि स्तनपोषी और पक्षी दोनों उरंगमोंसे विकसित

हुए हैं। यहाँ केवल एक एकछिद्रीका वर्णन पर्याप्त होगा।

बतचोंचा

बतचोंचाका नाम इसलिए पड़ा है कि उसे बत अर्थात् बतखकी तरह चोंच होती है। अँग्रेज़ीमें इसे डकबिल कहते हैं (डक = बतख ; बिल = चोंच)। यह अब केवल ऑस्ट्रेलियामें मिलता है और वहाँ इस जंतुका शिकार करनेकी अब मनाही है। बिना सरकारी आज्ञाके कोई इसे विदेश भी नहीं भेज सकता। ये जंतु जब विदेश जाते हैं तो केवल बड़ी-बड़ी पशुवाटिकाओंमें ही पाले जानेके लिए जाते हैं। परन्तु अपने देशके बाहर वे अधिक दिन जीवित नहीं रहते।

बतचोंचा

इस जंतुमें बतखकी तरह चोंच होती है, नारी अंडे देती है, परन्तु बच्चोंको अपने स्तनका दूध भी पिलाती है।

बाहरसे देखनेमें बतचोंचा कुछ-कुछ ऊदबिलावकी तरह लगता है, परन्तु शरीर कम लम्बा, पूँछ चिपटी, बतखकी तरह ही चोंच और चर्मयुक्त पंजे होते हैं। बचपनमें दूधके दाँत होते हैं पर वे जब गिर पड़ते हैं तो दूसरे नहीं निकलते। यद्यपि इसके कान नहीं होते, तो भी वह अच्छी तरह सुन लेता है, विशेष कर जब वह पानीमें रहता है। शरीर पर घने बाल होते हैं जिनके कारण त्वचा तक पानी नहीं पहुँच पाता। बतचोंचाके लोमसहित चर्मको यूरोपीय स्त्रियाँ पसन्द करती थीं। इसलिए फ़र बेचने वालों ने प्रायः सभी बतचोंचोंको मार डाला। बतचोंचे छोटी-छोटी नदियोंके किनारे रहते हैं, और घोंघा, झींगा आदि पकड़ कर खाते हैं।

यह जंतु भूमिमें बिल बना कर रहता है। बिल बहुत लम्बे होते हैं और बीचमें घर होता है, जिसमें घोंसला-सा बना रहता है। बिलके कुछ मुँह पानीके नीचे और कुछ पानीके ऊपर रहते हैं। वसन्त ऋतुमें माता दो अंडे देती है और उसे चिड़ियेकी तरह सेती है। उसे कांगरूकी तरह उपजठर भी होता है परन्तु वह इतना छोटा होता है कि उसमें बच्चे नहीं रह सकते। अंडोंसे बच्चोंके निकलने पर वे पहले कुछ समय तक केवल माताका दूध पीकर रहते हैं। कुछ बड़े होने पर उनके लिए माता घोंघा आदि पकड़ लाती है। बतचोंचा रातमें बाहर निकलता है और दिनमें सोता है। सोते समय वह अपने शरीरको लपेट कर गेंद-सा हो जाता है और ऊपरसे अपनी पूँछ लपेट लेता है।

उपसंहार

सरल विज्ञान-सागरके इस अंकमें हमने विविध स्तन-पोषियोंसे परिचय प्राप्त किया है। इनमेंसे उच्चतम प्राणी मनुष्य है और निम्नतम बतचोंचा, जो चिड़ियोंसे मिलता-जुलता है। इसके बाद हमें चिड़ियोंका अध्ययन करना चाहिये। परन्तु ऐसा न करके हम पहले पेड़-पौधोंकी अचरजभरी दुनिया पर एक दृष्टि डालेंगे। पीछे कभी फिर हम चिड़ियों, उरंगमों, जलस्थलियों, मछलियों और कीड़े-मकोड़ों पर ध्यान देंगे।

मुद्रक तथा प्रकाशक—कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५७ | मिथुन, सम्वत् २००० । जून, १९४३ | संख्या ३

वनस्पति-विज्ञानके पारिभाषिक शब्द

(डाक्टर शिवकंठ पांडे, डी० एस-सी०)

[प्रत्येक लेखक, शिक्षक और विद्यार्थीको पारिभाषिक शब्द-कोशोंकी बारम्बर आवश्यकता पड़ती है। गणित, ज्योतिष, भौतिक-विज्ञान और रसायनके कोष तो प्राप्य हैं परन्तु खेद है कि वनस्पति-विज्ञान तथा जंतु-शास्त्र पर कोई कोश हिंन्दीमें बना ही नहीं है। विज्ञान-परिषद्से छपे पारिभाषिक शब्दकोशमें वनस्पति-विज्ञानके कई सौ शब्द आ गये थे, परन्तु उतनेसे काम नहीं चल पाता था। फिर, यह कोश इधर कई वर्षों से अप्राप्य है। इन्हीं सब कारणोंसे मैंने डाक्टर शिवकंठ पांडेसे आग्रह किया कि वे वनस्पति-विज्ञान पर एक विस्तृत शब्दकोश तैयार कर दें। वर्तमान शब्दकोश उन्हीं की कृपाका फल है। यह अन्तिम निर्णय नहीं है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे उन शब्दों पर अपनी सम्मति दें जो उनको ठीक नहीं जँचते। सब सम्मतियों पर विचार करके अन्तमें यह सूची पुस्तकके रूपमें छापी जायगी।

—सम्पादक, विज्ञान]

Abaxial बहिरख, अक्षविन्मुख
Abnormal असामान्य
Abortion अविकसन, अवनति
Abortive अविकसित, अपूर्णोद्भूत
Abrupt, अकांड
ABRUS, अब्रस; A. precatorius रत्ती, घुमची, गुंजा
Absciss layer, विच्छेद-स्तर विभाजक-स्तर; abscission विच्छेद
Absorb, शोषण
Absorbability, शोषणीयता
Absorbent root शोषकमूल
Absorbed solutions, शोषित घोल,
—Course of, का मार्ग
Absorption bands, शोषण-पट्ट
—Selective, चयन शोषण-पट्ट
Abutilon, अब्युटिलन
Acacia, अकेशिया;—arabic बबूल,—catechu, खैर
Acanthaceae, अकैन्थैसी, अड़ूसावर्ग
Accaulescent, प्रकांडहीन निष्प्रकाण्ड, अस्कंध
Accessory, गौण, आगन्तुक, नैमित्तिक, सहायकारी
—whorl, पर्यावरण
Accretion, व्यास-वृद्धि

Accrescent, वर्धमान, सहवर्धिष्णु, असंगी
Acerose, सूच्याकार
Acetabuliform, छत्राकार
Achene, एक बीजक
Achenial fruits, एक बीजक अनस्फोटी फल
Achlamydeous, दलपुट रहित, अकंचुकी, अनावरणी, नग्नपुष्प, अनच्छादित, छादन रहित, निराच्छादन, वेष्टनहीन
Aeicular सूच्याकार, सूचिसम, सूचिसदृश
Acicular leaf, सूच्याकार पत्र, सूचिपत्र
Acid sap, अम्लद्रव
Acinaciform, वक्र-खड्गाकार
Aclinomorphic, बहुसममित
Aconitum, ऐकोनाइटम
Acontae, अकांटी
Acotyledonus, अदली
Acquired characters, अर्जित गुण, संपादित गुण
Acrid, तिक्त, तीव्र
Acropetal अग्रोन्मुख, अधरोत्तर
Actinomorphic, बहुप्रतिसम किरण छेद; करछेद
Active, सचेष्ट
Acuminate, दीर्घतीक्ष्ण
Acute तीक्ष्ण, शिताग्र, लघुकोनाकार न्यूनकोणीय, नोकदार
Acyclic अचक्रीय, अचाक्रिक, अमंडलित
Adansonia, ऐडनसोनिया; A. digitalis वाओबाव

Adaptability कालानुवर्तनशीलता, प्रतियोगक्षमता
Adaptation, अनुरूपन, प्रतियोग, उपाधि, योजना, कार्य योजना
Adaptation to aerial conditions, वायव वातावरण के अनुकूल होना
——environment, परिस्थिति के अनुकूल होना
Adaptive characters, अनुकूलन गुण (लक्षण)
Adaxial, अक्ष संमुख
Adelphous condition, संघी अवस्था, कूर्ची
Adenoid ग्रंथि सदृश
Adenophore, ग्रंथिदंड
Adhatoda, अधाटोडा-अडूसा
Adherent आसक्त
Adhesion, संलग्नत्व, सलग्नता, परासंग संश्लेष, परस्पर वर्तुलसंयोग संसक्ति, विजातीय सम्बन्ध
Adjacent, आसन्न
Adonis, ऐडोनिस
Adnate नाल लग्न, सांयोगिक, आसंगत, पृष्ठ लग्न, सहरोही
Adpressed, बंधन संस्पर्शी (परागकोश)
Adsorption, अधिशोषण, उदशोषण
Adventitious buds, अनियमित कलियाँ, ऊपरी, आगन्तुक, वाह्य, अस्थानोद्भूत, प्रासंगिक, नैमित्तिक
—embryos, अ० भ्रूण
—roots, अ० मूल

Aecidium, पर्यंकलश
A—Short, अ. शाखा
Aegiceras ईजिसियर्स
Aegle, ईगिल; A. Marmelos बेल
Aerenchyma, वायवीतन्तु, सछिद्र मृदुवेशिजाल
Aerial, पवनोपजीवी वायुगत, वायवीय, वातावलम्बी, अंतरिक्ष हवाई
Aerial roots, वायव मूल
Aerob या Aerobic bacteria, वायुग्राही जीवाणु, प्राणवायु प्रिय जीवाणु
—respiration, वायुग्राही, श्वसन, वाह्य श्वासोच्छ्वास
Aerophyte, वायुमूलीय, व्योम रुह
Aerotaxis, वातोत्तेजित चलन, वात चलन
Aerotropism, वातानुवर्तित्व
Aeschynomene, ईशाइनोमेनी,
—aspera, शोला
Aestivation, संपुटी-भवन, वसंतांतीलस्थिति, पुष्पकलिकांतर्गत रचना, पुष्पमुकुल रचना
Affinity, असम्बन्ध, आकर्षण
Afforest वनमय करना
Afforestation वनमयीकरण
Agamogenesis, अपिंडजनन
Agaricus, अगैरिकस
Agave, अगेव
Aggregate fruits, संघमय फल, फल संघ, समुदित फल
Aggregation, जमाव
Agrimonia, अग्रिमोनिया

Agrimony, अग्रिमनी
Air-bladders, वायुआशय, वायुकोश, वाताशय
Air canal, वायुमार्ग, हवामार्ग
Air cavity, वायुकोष्ठ, वातकोष्ठ
Air chamber, वायुस्थान, वात स्थान
—spaces, वायुस्थान
Ajuga, अजुगा
Alae, पार्श्व, पक्ष, पंख
Albizzia अलबिज़िया, A. Lebbek सिरिस
Albinism, वर्णाभाव, रंगहीनत्व
Albino वर्णहीन, पांडु
Albumen, कल्क, अंतर्कल्क, औजसदण्य, मगज, वलक, श्वेत कलनो, बीजसार
Albuminous cells, कल्क युक्त कोश
—seeds, कल्क युक्त बीज
Alburnum, नवीन काष्ठ, कच्ची लकड़ी, रसकाष्ठ, श्वेतकाष्ठ, शुभ्रकाष्ठ
—tree, हीर रहित वृक्ष
Alchemilla, अलकेमिला
Alcoholic fermentation मद्यीय फफदन
Alder, ऐल्डर
Aleurone grains, गोधूमी (दाने) कण, प्रोत कण
—layer गो० स्तर, प्रोतस्तर
Algae शैवालादि निलिकावर्ग
Alhagi, अलहैगी
Alisma, ऐलिस्मा
Alkaloids, अलकलॉयड, क्षारोद
Allantoid, गोलदंडाकृति
Allelomorphic वैकल्पिक, भिन्न, विरुद्ध
Allelomorphs, विशेषक
Allium, ऐलियम; A. cepa प्याज़
Allocorpy, परपिंडफल
Allogamy, संकरगर्भी, परवश गर्भधारण, संकर, संकरपिंड संयोग
Almond, बादाम
Alnus (*see* Alder)
Alocasia, ऐलोकेशिया
Alpine plants, ऐल्पवासी पौधे
Alsinoideae.
Alternate leaves, एकांतर पत्तियाँ, एकांतरित, पर्यायी, एकांतर क्रम, पर्यायक्रम, एकान्तर
Alternation of generations, पीढ़ियोंका एकान्तरपन प्रसवविपर्यय
——parts भागोंका एकान्तरपन परस्परानुवर्तन
Althaea, ऐल्थीया; A. rosea गुलखैरा
Altitudinal zonation, उच्चतानुसार विभाग
Alveda, पृष्ठगतकोटर
Amarantaceae, एमरनटेसी, राजगिरावर्ग, चौलाई वर्ग
Amaryllidaceae, एमरिलीडेसी, नागदमन वर्ग, मूसली वर्ग
Amaryllis, ऐमारलिस
Ambi-sporangiate, पददल युक्त
Amentiferous, कुसकेधारी
Amentaceae. एमंटेसी
Amentum, पुच्छसम फल, विडाललक्ष्मी
American water-weed,
Amides, ऐमाइड
Amitosis, प्रत्यक्ष विभाजन
Amphibious plants, जलस्थली पौधे
Amphicarpic, भिन्नफल युक्त
Amphigastria,
Amphimixis पिंडमिलन
Amphitropous अर्धवक्रनिरमश्चीन (बीजांड) तिर्यक
Amphithecium, उभयपार्श्वी
Amplexicaul, तनासक्त परिवेष्टक, स्कंधालिंगी
Amygdalin, ऐमिगडैलिन
Amyloid, पिष्ठ सदृश्य
Amylopectin, ऐमिलोपेक्टिन
Amyloplast, ऐमिलोप्रद
Anabolism, उत्थानांतर क्रिया, विधायक क्रिया
Anacardiaceae, ऐनाकार्डियेसी (सालादिवर्ग) आमवर्ग
Anacardium, ऐनकार्डियम, A. occidentale काजू
Anaerobic bacteria, अवायुग्राही जीवाणु
—respiration, अंतर श्वासोच्छ्वास, अवायुग्राही श्वसन
Analogous (members.) औपम्य (अंग)
Analogy, उपमा, सदृश, सादृश्य
Anaphalis, ऐनाफैलिस
Anatomy शरीर शास्त्र, शरीररचना, शरीरसंघविद्या

Ancestral characters, पैतृक गुण-धर्म
—heredity पैतृक गुण
Androecium इंद्रियानिक, परागकेशर मंडल के. म. पुत्रसर, केसर संघ, पुष्पेंद्रिय
Andropogon एंड्रोपोगन A. muricatus खस
Androsace
Androsporangia पुंरेणु कोश
Androspores पुंरेणु, नररेणु (नरपिंडप्रसव जनकरेणु)
Aneilema ऐनोलिमा
Anemon ऐनीमोन
Anemophilous वायुगर्भित, वायुप्रियी
Angiosperms गुप्तबीज, अनग्न-बीज, योनिज
—Classification of वर्गीकरण
—Embryo of भ्रूण
—Evolution in विकास
—Gametophyte of लिंगपोत
—Homologies in समरूपता
—Leaf of पत्र
—Life-history of जीवन इतिहास
—Reproduction of प्रत्युत्पत्ति
—Root of मूल
—Seed of बीज
—Sporangia and spores of रेणुकोश, रेणु
—Sporophyte of रेणुपोत
—Stem of तना
Angle of divergence अंश-कोण

Anisostaminous असत्संख्य केसर मण्डल युक्त
Aniline sulphate ऐनिलिन सलफेट
Animal and Plant जीव और वनस्पति
Annual rings वार्षिक वलय
Annuals वार्षिक
Annular thickening वलयाकार मुटाव, वलयाकृति मु॰, वलयांकित मु॰
Annulus वलय, घनपेशी वलय
Anonaceae एनोनेसी, सिता फल वर्ग
Anterior पुरोवर्ती, प्राग्भव, प्राच्य
Anteroposterior अग्रतः पृष्ठतः
Anther परागकोश
Antheridial cell परागसम कोश
Antheridiophore परागसम वाही, नरपिंडकोशधारी
Antheridium परागसम, नर पिंडकोश
—Development of संवर्धन
Anthocephalus, see Nauclea
Antirrhinum एन्टीराइनम्
Antithetic theory (of alternation) विरोधाभास सिद्धांत, विधर्मी वर्ग, अपदली वर्ग
Apetalae अदल
Apex शीर्ष, अग्र, शिखर
Apheliotropism प्रकाश विमुखता, ऋण प्रकाशानुवर्तित्व

Apical bud शिखरस्थ मुकुल, शिखरकलिका
Apical cell शिखर कोश, अग्रदेशी कोश
—meristem शिखरस्थ वर्धमान शिखरस्थ धातु
Aplanogametes
Apocarpous विशक्त योनि, स्वतन्त्र योनि
Apocynaceae एपोसाइनेसी कनेरादि वर्ग, कुटजवर्ग
Apogamy असंभोग, अरति संभव विभक्तयुति
Apophysis उत्वृद्धि
Apospory रेणुशमन, अरेणु-समन
Apostasias अतिविचलन
Apostrophe आलोकविचलन
Appendages (*see* Outgrowths) अवयव, उपांग
Apple सेब
Apposition theory सन्नि-पतनवाद
Apricot आड़ू
Aquilegia
Araceae एरेसी, सूरणवर्ग
Arachis (Ground Nut)-
A. hypogaea मूँगफली
Archegonial chamber रजपिंडकोशविवर, गुप्तांग कोष्ठ
Archegoniatae
Archegoniophore गुप्तांग कोष्ठधर, रजपिंडकोष्ठ धर
Archegonium गुप्तांग
—Development of संवर्धन
Archesporium रेणु प्रसवीतंतु, रेणुजनक तन्तु-पेशीजाल

Archicarp फलनादि
Archichlamydeae
Arctic plants उत्तर ध्रुवी पौधे
Ardisia
Areca...A. catechu सुपारी
Arenaria एरीनेरिया
Aril बीजावरण
Arisaema...A. wallichianum सांपबूटी
Aroids सूरणादि
Arrowheaded शराग्री
"Artillery Plants" शस्त्रधारी पौधे
Artocarpus
Arum
Ascocarp रेणुपुट विवर
Ascomycetes एस्कोमाइसीटस
Ascospore रेणु
Ascending axis उदक्ष
Ascus रेणुपुट
Asexual reproduction अलिंगिकजनन
Ash ऐश
Ash of plants पौधों की राख
Asparagin ऐसपैरागिन
Asparagus शतमूली
Asphodel
Aspidium (*see* Fern) एस्पीडियम
Assimilability एकीकरण क्षमता, सामीकरण क्षमता, पोषणीय क्षमता
Assimilation पाचन, सामीकरण, एकीकरण, परिपाक, पोषण आत्मीभवन, पचन
Atriplex एट्रिप्लेक्स
Atropa
Atropine
Auricled कर्णिक
Autogamy
Autotrophic bacteria स्वावलंबी
Autumn wood
Auxanometer वृद्धिमापक, वर्धन मापक यन्त्र
Averrhoa
Avicennia
Axil अक्षकोण, कक्षा, बगल, सन्धि
Axil of leaf पत्र अक्ष, पत्रकक्ष
Axillary (bud) अक्षकोणीय, अक्षांगत
Axis अक्ष, अंकुर
Azotobacter
Azygospore असंयोगीपिंड
BACCATE fruits मज्जागर्भी फल
Bacillus बैसीलस, सूक्ष्म जन्तु
Bacillus subtilis बै० सब्टीलिस
Bact पुष्पत्र
Bacteria जीवाणु, कीटाणु, सूक्ष्मजन्तु, जन्तु
Bacteroids व्यूकृतजन्तु
Bacteriophage
Bacteriology जीवाणुशास्त्र, कीटाणुशास्त्र, जन्तुशास्त्र, यष्टिकाशास्त्र
Bacterial यष्टिका मूलक
Bacterialogist यष्टिकाशास्त्रज्ञ
Balanophora बेलनोफोरा
Balsam बालसम, गुलमेंहदी
Balsaminaceae बालसैमिनैसी
Balsuta
Bamboo बांस
Banana केला, कदली
Banyan बरगद-वट
Barberry रसवत
Bark वल्कल, छाल, कवच, त्वचा बाह्यत्वचा
Barleria बारलेरिया
Barren
Bartsia बीजक्रम
Basal आधारीय, पादीय तटस्थ
Base आधार, वृन्तपाद, बैठक
Basidiomycetes
Basidiospore
Basidium
Basilar (gynobasic, gynobasilar) (style)
Basifused (innate) अधोलग्न
Basipetal उत्तराधार, अधोगामी, मूलगामी
Bassia
Bast अंतरछाल, रसवाहक तन्तु,
Bast fibres अंतरछाल धागे, (रसवाहक तन्तु) धागे
Bateson
Bauhinia
Beach-jungle
Beaklike process तुंड
Beard कूर्च
Bedstraw
Beech
Beeded
Beet चुकन्दर
Belladonna
Belljar घंटापात्र

Bell-shaped घंटिकाकार
Belt transect
Bennettiteae
Bent (folded) leaf चूणित
Berberis बरबेरिस
Berry गुली
Beta
Betel-leaf पान
Betel-nut Palm *Areca* सुपारी
Betula (see Birch)
Betulaceae
Bicarpellary द्विवीजांडकेशर युक्त
Bicarpellate द्विवी० कोशी
Bicarpelletae
Bicollateral द्विपार्श्वक्रमी, द्विसंलग्न
Bicollateral bundles
Biconcave युगुलनतोदर
Biconvex युगुलोन्नतोदर
Bidens
Bidentate
Biennials द्विवार्षिक, द्विवर्षाङ्क
Bifacial leaf द्विमुखी पत्ती
Bifid द्विधा, द्विधाभूत
Bifoliar spurs
Bifoliate द्विदल
Bignonia
Bignoniaceae
Bilabiate (ringent) ओष्ठकार, जृंभमुखी, द्वयोष्ठक, द्वौष्ठक
Bilabiate (personate) ओष्ठाकार, बद्धमुखी, द्वयोष्ठक

Bilateral (symmetry) पार्श्विक, द्विपा० युतिछेद
Bilobed युग्मपत्र
Bilocular द्विकोष्ठी, द्विपेशी युक्त द्विकोटरयुक्त, द्वाशयी, द्विकौशिक
Biogenesis जीवजवी, जीव-परम्परा
Biological जैव
Biologist जीवशास्त्रज्ञ
Biology प्राणिशास्त्र, जीवशास्त्र, जीवीशास्त्र
Bimerms द्विसंख्याक
Biometry जीवमिति
Biotic जैविक
Biparms द्विभुज परिमित
Bipartite द्विविभाग
Bipinnate द्विगुण विच्छाकार
Bipolar द्विध्रुवी
Birch
Bird's nest
—nest Orchid
Biserrate द्विदंतुर
Bisexual उभयलिंगी, द्विलिंगी, उभयकेशर युक्त
Biternate द्विगुण त्रिदल, द्वित्रिदल
Bittersweet
Bixineae
Black Bryony
—Nightshade
Blackberry
Bladderwort (*see Utricularia*
Blade पत्रदल, पत्र,

Bleeding of Plants
Bloom वदर
Blue-bell
Body गात्र, पिंड
Bluegreen algae नीलहरित शैवाल
Boehmeria
Bog-Asphodel
—moss
—Plants
Bombax Cotton tree
Borassus, Palmyra Palm
Bordered pits
Botany वनस्पति विज्ञान, औद्भिद-विज्ञान
Bottle Gourd
Bracken (*see Pteris*)
Bract वृतपत्र, उपपत्र, उपपुष्पकोश छद, फलक, उपदल, पुट
Bracteate वृतपत्र युक्त, उपपुष्प-कोशयुक्त, फलकित
Bracteole वृतपत्रिका, उपपत्रिका छदक फलकिल, उपपुष्पिक
Bractscale
Bramble
Branch शाखा
Branching, शाखा पद्धति, शाखा प्रबन्ध
Brassica ब्रैसिका
Brazil-nut
Brinjal वैंगन
Bristly रोमश
Bromelliaceae अनन्नासवर्ग
Broom
Brown Algae

Bruguiera
Bryony
Bryophyta ब्रायोफाइटा
—and Pteridophyta टेरीडोफाइटा
Buckwheat
Bud-scales मुकुलोर्ण
Bud आँख, कलिका, पत्रोल्लास, मुकुल
Budding कलिकोत्पति
Bugle
Bulb कंद, कांदा, पर्णकंद
Bulbil पत्रकंद, कंदक, लघुकंद
Bullock's Heart
Bundle-sheath संचवेष्टन, स्तंभवेष्टी, कूर्चत्वचा
Bundle (vascular) कूर्मावरण, वाहक संच, संच, कूर्च संघात
Bupleurum
Bur Marigold
Burseraceae गुग्गुलवर्ग
Burdock
Burs
Bush झाड़ी, क्षुपक, गुल्म, क्षुप
Butcher's Broom
Butea
Buttercup
Butterfly-flowers,
Butterwort (*see Pinguicula*
Buttress root तीरमूल, आधार मूल
Buxus, Box
Byproduct उपोत्पाद

CABBAGE
Cactaceae
Cactus कैक्टस
Caducous पूर्वपाती
Caesalpineae
Caffeine
Calamus
Calceolaria
Calcifrorae
Calcium carbonate
—oxalate
Callitriche
Callus
Calyptra टोपी, अधिपान, ऊर्ध्व छेद
Calyptrogen
Calystegia
Calyx पुटचक्र, पुटकोश, हरितदल पर्तुल वाह्याच्छादन, वृन्त
—tube पुटचक्रनलिका
Cambial cells
Cambium मज्जातन्तु वृद्धिधातु, जीवन घर, वर्धिष्णु घर, आंतर्जालीय वर्धिष्णु,पेशीजाल, काष्ठत्वकजनक, पेशीस्तर, संवर्धकपदर अंतरजालीय चिरंजीव पेशी जाल, वर्धमान पेशीजाल, काष्ठमय
—ring—चक्र
Camellia
Campanula
Campanulaceae
Campanulate तुरमाकार, घंटासदृश, घंटाकार
Camphor
Campion
Campylotropus वक्र

Canal cells अवकोश प्रणाली
Candytuft
Cane sugar
Canna सर्वजया, वैजन्ती
Cannabinaceae विजया वर्ग
Cannaceae सर्वजया वर्ग
Cannabis विजया
Caoutchouc
Cap टोपी, आवरण
Cap-cells
Capilate शीर्षक
Capillarity
Capillary केशाकार, केशतुल्य, केश सदृश
Capillitium
Capitate शिरोधारी
Capitallate शीर्षक
Capitulate शीर्षक
Capitulum पुष्पशेखर, मौली, गेंद, गुच्छ
Capsella
Capsicum
Capsular fruits
Capsule of sporogonium
Capsules ढोंढा, संपुटिका
Caraway
Carbohydrates
Carbon-assimilation
Carbonate of lime
Carcerulus तौलस
Cardamine
Cardiospermum
Carex
Careya
Carica

Caricaceae
Carina नौका
Carissa
Carnivorous Plants मांसा-हारी पौधे
Carotin
Carpel योनिनलिका, बीजांड केसर, स्त्री-केसर-दल, दूल, कर्णिका विवर
Carpinus (see Horn-beam)
Carpophore फल-स्तंभ, फल दंड, फलाधार
Carpospore फलरेणु; फलांतर्गत रेणु
Carposporophyte
Carrot गाजर
Cartgamus
Caruncle
Caryophyllaceae
Caryophyl'aceous
Caryopsis शस्य
Caryota, Toddy Palm
Cashew-nut
Cassia, C. Tora चकवड
Cassytha
Catalytic उत्प्रेरक
Castanea (see Chestnut)
Castor-oil seed रेंडी
Catabolism
Catalyst निदेशक
Catalytic सहायकारी
Cataphyll
Catkin लंबित, पुच्छसम, कर्णक-मंजरी
Caudex शाखाहीन स्कंध
Caudicle
Caulescent सस्कंध
Cauliflower गोभी
Cauline स्कंधज, स्कंधेय, प्रकांड-रोही
Cauline bundles
Caulis स्कंध, निष्कान्ड प्रकांड
—florus स्कंध पुष्पी
Caulisary
Cavity गर्त, आशय
Cedar, *Cedrus*
Cearela
Celandine
Cell कोश, कोष्ठ पेशी, घटक पिंड
—chamlativ ovary गर्भा-शयकोष्ठ
—Contents कोशद्रव्य
—division विभाजन
—formation कोशजनन, पेशी-जनन, वेघटना
—Forms of
—fusion कोश सम्मेलन, पेशी संयोग, पेशीविलयन कोश सङ्गम, मीलन
—plate कोश पट्ट,
—sap रस
—wall कोशभित्तिक
—Young
Cellular plants
—structure
Cellulose काष्ठोज-छिद्रोज
Celsia
Celtis
Censer mechanism
Centaurea
Central मध्यगत
Centric leaf
Centrifugal मध्यतोविकासी, केन्द्रोत्सारी मध्योत्सारिणी, केन्द्रोच्युत, मध्योद्गामी, नियमित, अपमध्य
Centripetal अग्रतोविकासी, केन्द्र-गामी, मध्याभिगामी, केन्द्र पाती, अनियमित, अनुमध्य
Centrosphere केन्द्रविन्दु; तारक विन्दु, केन्द्रगोल
"Century Plants" (see *Agave*)
Ceratophyllum
Ceeral शूकधान्य, ऋणधान्य, शस्य
Chalaza बीजांडतल, कवच संगम नूषवंध
Chalazogamic fertilisation
Chalk-glands
Chelidonium
Characeae
Chemical processes in soil
Chemonartic रसायन प्रेरित
Chemotaxis रासायनिक आकर्षण, रासायनिक प्रवर्तित हाल-चाल
Chemotropie रासायनानुवर्ती
Chemotactic रासायनोत्तेजित
Chenopodiaceae
Chenopodium
Cherry
Chervil
Chestnut
—Horse
Chickweed
Chicory
Chimaera कांडसंकरप्रजा

Chiropterophglly
Chitin श्रृंगद्रव्य
Chlamydomonas
Chlor-zinc-iodine
Chlorophyceae हरित वर्ण शैवाल हरिर्वालिका
Chlorophyll पर्ण हरित, हरित द्रव्य, हरिद् द्रव्य, हरितवर्ण पदार्थ, हरित चर्मरोग, हरित रंजक
—bands
—corpuscles
Chloroplasts हरित वर्णधर हरित जीवन पिंड, हरित वर्ग शरीर
Chlorisis हरित द्रव्याभाव
Chlorotic
Chlorotic condition
Chorisis (दलागम) द्विगुणीभवन
—transverse भिन्नतली ,,
—Collateral एक तली ,,
Christisonia
Chondriosome सूक्ष्म जीवनकण
Chromatinfibre द्रवकण रजो-सूत्र
—gramde रजद्रव्यकण
Chromatin net work रजोजाल
Chromatophores वर्णधर रंगीन जीवन पिंड
Chromomere वर्णाणु
Chromoplast वर्णधर, रंजित शरीर
Chromosome रंग सूत्र, वर्ण-गोल, रंगकाय, रंगाणु, वर्ण कण
—matrix रजांगदेह

Chromosomes Reduction of
Chrysanthemum
Cicatrix नाल चिह्न
Cicer
Cichorium
Cilia झालर; ciliated झालर-दार
Cilium केश, कशाय, कशा, मिशी झँपटी, तन्तु
Ciliate सकेश
—d—केशमय लोमल, लोमवान्, लोमशी लोमश, केशतन्तु, लोम
Ciliated cell सलोमकोश, सलोम, इला
Ciliary movements लोम चलन
Cinchona
Cinnamomum
Circulation of protoplasm जीवन रस अभिसरण
Circumnutation आवर्त-दोलावर्धन, चक्रीवर्धन
Cicumsessile तिर्यक
Cireinate अग्र संवलित, मंडला-कार गुंडेदार अवसंवलित
Cirrhoge apex सूत्राग्र
Citronella
Citrullus
Citrus
Cladode कांडपत्र, पर्णकोष्ट, दंड-पर्ण, पर्ण शाखा, पर्णकांड, पर्ण स्कंध
Class श्रेणी, वर्ग
Classification वर्गीकरण
—of the Plant Kingdom

Clavicep
Claw पंजा, मुकुट नख
Clawed
Cleavers
Cleistogamy निमील युति
Cleistogamous flowers निर्विकासी पुष्प बदफूल, अफुल्ल
Clematis मोरवेल
Climatic factors
Climax अन्त्य, स्थिर, कायम, स्वरूप
Climbing (plants) आरोही
Clinging roots श्लेषी जड़ आरोहण मूल
Closing membrane आच्छा-दन पट
Coating पुट
Clinostat
Closed bundles
Closed forest घन अरण्य दार जंगल
Clostridium
Clover
Club-mosses
—shaped याष्टिक
Coagulation थक्का बनना, घनी-भवन, संकलन
Coccus
Cobalt test for water-vapour
Cocci बिन्दवाकार
Coco.nut
Coefficient of correlation
——heredity
——variation

Coenocyte संयुक्त कोश, अखंड नलिका, बहु केन्द्र पेशी
Coenocytic structure
Coenogamete संयुक्त पिंड, बहु-केन्द्र पिंड
Coffea. Coffee
Cohesion संसक्ति
Cohort गोत्र
Coleoptile आदिपत्रावरण
Coleorhiza आदि मूलावरण
Collateral bundles एकतलस्थ संलग्न वाहकसंच
Collecting cells संग्राहक कोश
Collective fruit संयुक्त फल
Collenchyma
Colloids
Colocasia
Colocynth
Colony संघ, वृन्द, वसहत
Colouring-matters
Colours of flowers
Coloumbine
Columella दांडा खुंट स्तंभक
Columnar स्तंभाकार
Combinations
Combrelaceal
Comma
Commelinaceae
Common bundles
Community संघ
Comose
Companion cell सुहृद कोश, समगामी पेशी, सहचर पेशी, सहायक पे० अनुषंगिक पे०

Compass plants
Complete परिपूर्ण
—flower पूर्ण पुष्प, परिणत पुष्प
Complex संकीर्ण विकट
Compliment परिपूरक पूरक
Compositae शतपत्री वर्ग, गेंद वर्ग
Composite संयुक्त
Composite fruits
Composition संगठन
Compound (leaf) संयोजित, जोड़, सुकीर्ण, मिश्रण, अखंड, मिश्र, समिश्र
Compound fruit
—gynoccium
—inflorescence शाखिव पुष्प बन्ध
—umbell शाखिव छत्र गुच्छ
Concentric bundle
Conceptacle
Condensation संयोग
Conducting tissue प्रवाहक तन्तु
Conduplicate
Cone शंकु, conical गोपुच्छाकार, शंक्वाकार
Congenital
Conidiophore बहिर्जनितरेणुधर
Conidium वहिर्जनितरेणु
Conifer
Coniferin
Conjoint bundles संवाहक संच
Conjugatae
Conjugation
—tube

Conjunctive tissue संधि-तन्तु
Connate सहजात पत्र
Connective जोड़
Consociation प्रमुख समूह
Contact as a stimulus
Continuity of species वंश सातत्य
Continuous variations क्रमिक भेद
Contraction संकोचन
Contractile vacuole
Convergence एक केन्द्राभिगमन
Convergent केन्द्रीभूत
Convex उन्नतोदर
Convolute पार्श्व संवलित, चक्रांगित
Convolution चक्रांग, प्रार्श्व, संवलित
Convolvulaceae
Convolvulus
Copra
Cordaiteae
Cordate तांबुलाकार
Cordia
Coriandrum
Cork काग
—cambium काग मज्जा तन्तु
Corm वज्रकन्द
Cormogens
Cormophytes सावयव वनस्पति
Cormus सावयत्र गात्र
Cornaceae
Corncockle

Corolla दल चक्र C. tube पु० नाल
Corona मुकुट, किरीट
Correns
Cortex वल्क, अन्तर छाल
Corydalis
Corylus (see Hazel)
Corymb समशिख, वृहत्मंजरी, गुच्छ
Crumpled
Cryptostome
Cyclic चाक्रिक
—movement चक्रीय संचलन
Cyclosis भ्रमण
Corrugated
Corypha, Talipot
Costa
Cotoneaster
Cotton
Cotyledons बीजदल
Cover-scale
Cow-wheat
Cowslip
Creeper बेल, लता
Creeping विसर्पी
Cremocarp
Crenate चाप दंतुर
Cress
Crisped कुञ्चित
Crocus केशर
Cross breed संकर करना
Cross-fertilisation परवश गर्भधारण
—pollination परसेचन
Crotalaria
Croton
Cruciform चतुर्भुज
Cruciferae सर्षपवर्ग
Cryptogam पुष्पहीन वनस्पति, गुह्येंद्रिय श्रेणी व०
Cryptostomata गुह्यरंध्र
Crystalloid
Cubical घनाक्षर
Cucumber खीरा
Cucurbitaceae कुष्मांड वर्ग
Culm (=Haulm) दंड स्कंध
Cumium
Cuneate टंकाकार
Cup like प्यालेदार
Cupule छदपुट
Cupuliferae
Currant
Curled
Curved वक्र
Curvature वक्रता
Curve of probability
—-—variability
Cuscuta C. अमर बेल
Cuspidate कंटाग्र
Custard apple
Cut छिन्न
Cuticle
Cuticularisation
Cutin चर्मोज
Cutinised tissue
Cuttings कलम
Cyanophyceae नील हरित शैवाल वर्ग
Cyanotic
Cyathium
Cycadofilices
Cycadophyta
Cycads
—and Ferns
Cycas
Cylindrical बेलनाकार
Cymose branching परिमिति शाखा क्रम
—head परिमित शेखर
—inflorescences परिमित पुष्प व्यूह
—umbel परिमित छत्रक
Cynara Artichoke
Cyperus
Cypress
Cypripedium
Cypsela
Cyst अर्बुद
Cystcerp अर्बुद फल
Cystolith स्फटिक पुंज
Cytase
Cytology
Cytoplasm कोश
DAFFODIL
Dahlia
Daily period of (growth दिन काल
Daisy
Dalbergia, Blackwood
"Damping-off"
Dandelion
Darwinism
Date
Datura
Daucus
Daughter sell प्रतिकोश दुहितृकोश

—axis उपाक्ष
—nucleus उपमिक
Dead-nettle
Deadly Nightshade
Debregeasia
Deciduous पतझड़ी या गलित पत्र
Decomposition विभाजन, विघटन
Decumbent पार्श्वरोहि ।
Declinate अभिनत, तिर्यकनत
Decurrent कांडलग्न अधोधावी, अधोवलम्बी, पत्ररोही
Decussate असमकोणित, स्वस्तिकाकार, स्वस्तिकरोही, सान्तरचतुष्क
Deferred shoot
Difficiency न्यूनता
Differentiation विषमी भवन
—of structure रचना विभेद
Definite नियमित
Definite branching निश्चित शाखाक्रम
Definitive अनुषंगी
Degeneration ह्रास
Dehiscence of capsules स्फोट
—byteeth दंत स्फोट
Dehiscence स्फोटन
Dehiscent स्फुटन शील
Delphinium
Dendrobium
Dentate विदंतुर
Denticulate सूक्ष्मदन्तुर

Dermatogen त्वचा जनक, त्वचा वदर, वाह्य चर्म जनक धर
Descending अवरोही
Descent अवतरण
Desert मरुस्थल ऊसर
Desmidaceae
Desmodium
Desmogen strand
Determinant
Determiner
Deutzia
Development परिणति घटना
—of lateral rootlets
—–tissues
De Vries
Dextral (twiner) दक्षिणावर्ती
Diadelphous द्विकूर्ची
Diageotropic
Diaheliotropic
Diaheliotropism
Diandrae
Diandrous
Dianthus
Diaphragm अंतर पटल
Diarch द्विसाचिक
Diastase
Diaster stage
Diatom—
Diatomaceae
Diachasial नियमित द्विपाद
Dichasium द्विशाखा-id नियमित द्विपाद
Dichlamydous उभयावरणी
Dichogamy
Dichotomous branching द्विभक्त शाखाक्रम

Dichotomy False
Diclinous एक लिंगी
Dicotyledon द्विदल
—Apical meristem of
—Embryo of
—Flowers of
—origin of
—Primary stem-structure of
—Root-system of
—Secondary growth in
—Seed of
—Stelar system in
Didymons द्विभक्त
Dictyostelic (condition) विपुलादिस्तंभी
Didynamous (stamens) द्वयोन्नतकेसरी
Differentiating characters
Differentiating
—of sex
——tissues
——vascular bundles
Diffusion प्रसरण
Digestion पचन
Digestive glands पाचक ग्रंथि
—sac पाचक थैली
—agent पा० पदार्थ
Digitalis
Digitate करतलाकार अंगुल्याकृति
Digitiform अंगुष्ठाकृति
Digynous
Dilatation विस्तरण
Dicoid

Di-hybrid crosses द्विगुण संकर
Dilleniaceae
Dimerous द्विभाग शील
Dimorphic द्विरूपधारी
Dimorphism द्विरूपत्व
Dimorphy द्विगुण प्रकार
Dioecious विभक्तलिंगी
Dionnaea
Diphenylamine test
Diploid द्विसांख्यक
Dip'ostemonous द्विगुण संख्यायुक्त
Dipsacus
Dipterocarpaceae
Direct अनुक्रम
Disc आसन
Disc floret विम्बपुष्प
Disciflorae
Discontinuous variations
Dispersal of seeds and fruits) वितरण, प्रसरण
Displacement स्थानच्युति
Displacement of parts
Dissected
Dissecting microscope
Dissepiment पटल
Dissimilar members
Distribution of (plants) निवसन
Distal
Distichous द्विदैशिक
Distractile दीर्घसंधनिक
Diurnal दैनिक
Divergence अपसरण अरान्तर
Divergent अपसारी विसारी
Divided विभक्त
Division विभाजन भाग
Diurnal sleep दैनिक शयन
Division of labour श्रम विभाजन
—nucleus नाभिक विभाजन
Dock
Dodder
Dodonaea
Dogwood
Dolichos
Dominance प्राबल्य
Dominant characters मुख्य
Dormant buds सुप्तकलिका, अनुद्भूत
Dorsiventral अधरोर्ध्व
Double fertilisation
Dorsifixed पृष्ठलग्न
Double tuber द्विग्रंथिल
Drupaceous
Dry fruit शुष्कफल
Ductlessgland
Dodecanorms अलग्नद्वादश पुंकेसरयुक्त
Duration काल
Ditripolymorphic द्वित्रिबहु रूपी
—polyandrous द्वित्रिबहुकेसरी
Dorsal suture पृष्ठस्थसीवनी
Dwarfishness
Double sarama
Downy तूलरोमश
Dracaena
"Drawn plants
Drip-tips
Drosera
Drupe अस्थिल
Duckweed
Duct प्रणाली
Duplex द्विघटकित
Duplication
Duramen
Dwarf male plants लघु नर पौद
—shoot लघु प्रांकुर
Eared कर्णिक
Ebenaceae
Ebrackate वृंतपत्र हीन
Eccentric विमध्य
ECOLOGY
Ectophytic वाह्याश्रित
Ectoplasm वाह्यफेन
Ectotrophic वाह्यावरणी
Ectoserc
Edaphic (factors) भूगर्भात्मक
Egg-apparatus अंडयन्त्र E. cell
Egg-plant
Eggshaped अंडाकार
Elaborated compounds
Elater
Elaterophore
Elder

Eleocharis
Elephantopus
Elliptical अंडाकार
Elm
Elodea
Elongation phase लंबनावस्था
Emarginate नताग्र
Embelia
Embryo भ्रूण
—Adventitious अनियमित भ्रूण
—Development of
—sac भ्रूणकोश
Embryology
Embryonal mass भ्रू० ढेर
Embryonic axis मूलांग
Embryonic movement
Emergence त्वगुद्भव
Empty
Enchanter's Nightshade
Endarch केन्द्रोत्सारी
Endemic species स्थानिक
Endemism स्थानिकत्व
Endocarp अन्तःकवच
Endodermis अन्तर त्वचा
Endogenous अन्तर जात
Endogenous development अन्तरजनित
Endophyte
Endophytic अन्तराश्रयी
Endortome बीजांतराच्छादनछिद्र
Endosmosis अभिसरण,

Endoplasm अंतःफेन
Endosperm गर्भभोज्य
Endospermic
—Development of
—nucleus
Endospore अन्तरेंणु
Endosporium अंतः कवच
Endotrophic, Endophyte
Endproduct अंत्यपदार्थ
Endothecium
Energid
Energy ओज
Entire पूर्णधर
Ensiform खंगाकार
Entomophilous कीटपरागसिंचित
Envelope cell
Environment (प्रतिवेष, परिवेस्टन)
—Adaptation to परिस्थिति
—Direct action of
Enzymes प्रवर्तक
Ephemerals अल्पायु
Epibasal ब्लतोत्तर
Epiblomas बाह्याच्छन
Epicalyx उपपुट
Epicarp वाह्योकवच
Epicolybdon दलोत्तर
Epidermal cell अधोत्वककोश
—hairs रोम
—outgrowths
—system संस्थान
—tissue अधित्वक तन्तु
Epidermis अधोत्वक

Epigaul अपृष्ठोत्तर
Epigyny
—nous
Epinasty ऊर्ध्वपृष्ठ वर्धन
Epipetalous (stamens) अन्तरपुष्प कोश संलग्न, (अंतर) दल संलग्न. पुष्पमुकुटस्थ, मुकुटलग्न, पुष्पमुकुट स्थित
Epiphyllous पत्रावरणस्थित
Epiphytes उपरिजात पौधे
Epiphytic adaptation
Epiplasm
Epipodium पत्र
Episperm
Epistrophe अभिमुखचलन
Epithelial layer
Epithelium tissue
Equisetales
Equittant अध्यारोही
Equisetum
Emulsoid पायसोद
Erect ऊर्ध्वरोही
Ergot
Ergotin
Ericaceae
Eriocaulons
Eriodendron
Erysiphales
Essential olements
—whorl प्रधान चक्र, प्र० मंडल
Etaerio
Ethereal oils
Etiolated plants हरित द्रव्य रहित पौधे

Etiolation हरिद द्रव्यनाश
Etiolin
Eucalyptus
Eugenia
Eugenics
Eumycelas
Euphorbia
Euphorbiaceae
Eurotium
Eustlele संलग्न सांघिक स्तंभ
Evaporation वाष्पीभवन
Evening Primrose
Evergreen सदापत्री चिरहरित
Evolution (in Angiosperms) विवर्तन, विकाश
——flower
——higher plants
——sporophyte
—theory
Evolvulus
Extraaxillary कक्ष वाह्य
Exstipulate पुंसपत्र रहित
Extrastellar स्तंभ वाह्य
Exudation स्राव
Eyepiece ईक्षण
Eyespot दृष्टि विन्दु
Exacum
Exagenous बहिर्जात
Exalbuminous seed
Exarch
Excretions मलोत्सर्जित
Exerted
Exine
Exodermis
Exogenous (development) वहिरजनिष्णु

Exosmosis निस्सरण
Exosporium
Exostome बीज वाह्याच्छादन छिद्र
Exothecium वाह्याच्छादन
Exotic विदेशी
Exotropic
Expiration वहीस्वसन
Explosive fruits
Explosive mechanism स्फोटक योजना

External morphology वाह्य अंगसंस्थान

Extrafloral nectary
Extrorse वहि स्फोटर
Eyebud
Eyebright
Eyespit दृष्टि विन्दु
Face मुख पृष्ट
FACTORS, कारक Germinal

—Lethal
—Mendelian
Factors, Origin of
Facultative प्रसङ्गोप्तात
Fagaceae
Fagales
Fagopyrum
Falcate द्राक्षाकार
Fallow परती
False axis मिथ्या अक्ष
—dichotomy द्विखंड रचना
—fruits मिथ्याकृतक फल
—septa मिथ्यापटल

—tissue मिथ्या तन्तु
Families कुल
Fascicle गुच्छा, झुपका
Fascicular
—Cambium वाहिनी संघ मज्जातन्तु

Fasciculate झुपकेदार
—leaves
Fats वसा
Fatty acids वसा अम्ल
—oils वसा तेल
"Feeder"
Feeding process पोषण क्रिया

Fehling's test
Femalegamete रजपिंड
" gametargin रजपिंड-कोश
" pothallus रजप्रवाल
" reproductive organ
" gametophyte रजपिंड पोत

Fermentation फफदन
Ferments विपाक प्रवर्तक
Fern पर्णाङ्ग
—Embryo of
—Leaf of
—Life-history of
—Rhizome of
—Root of
—Stem of
—*Feronia*
Fertilisation गर्भाधान

—tube
Fertility
Ferula
Fibre सूत
Fibro-vascular bundle जटामय वाहकसंघ

Fibrous जटामयी
Fibrous layer
—root झखड़ा जड़
Ficus
Fiddleshaped
Fig
Figwort
Filament लिंगसूत्र
Filiform सूत्राकार
Filial regression, Law of

Fimbriate झालरदार
Fimbristylis
Fir (*see Pinus*)
Fission भंग प्रसूति
—fungi
Fissure भंग
Fissured छिन्न
Fistular नलिकाकार
Fixation रोपण
Fixed light position
Fixing organ
Flag
Flagellatae
Flagellum
Fleshy मांसल
Floot
Flora वनस्पति

Floral bud पुष्प कलिका
Floral diagrams पुष्पचित्र
—axis पुष्पाक्ष
—envelopes पुष्पभारण
—formulae पु० सूत्र
Floral leaves पुष्पपर्ण
—mechanisms
—structure, Modification of

—symmetry पु०
Florets
Flower
—stalk पुष्पनाल
Flowerpot
Flowering Plants पुष्प धार वृक्ष, वनस्पति

——and Vascular Cryptogams
—glumes तूस
Flowerless plant
Fluctuations
Fluctuating variations तरतमभेद

Foeniculum
Foliaceous पत्राकृति
Foliage leaf पल्लव
Foliar पर्णरूप
Foliar gaps
Follicle एकस्फोटी
Food-materials अन्नरस
Foot पाद
Forked द्विशिख
Forest vegetation

Formaetion fulls
Formation of plants
Formic aldehyde
Fossil जीवावशेष
" botany—वनस्पति शास्त्र
—plants अवशिष्ट वनस्पति
Fragaria
Fragmentation
Formanice phase समनावस्था

Free मुक्त, स्वतंत्र
Free cell-formation
Frecentral placenteshy स्वतन्त्र मध्यस्थ

Freesia
French Bean
Frequency पुनरावृत्ति
—Normal Curve of
Frond अपुष्प पर्ण
Frutcification उत्पादनेंद्रिय
Fruit फल
Fumanaceae पित्तपापड़वर्ग
Fundamental मूलभूतसंघ
—(tissue system)
Fungous (Fungoid) भूछत्रसम

Fungus भूछत्र, छत्रक
Funicle बीजबंधन
Funnel shaped फनलाकार
Fusiform कुकड़ीसरिस
Fusion सन्धान

[शेष फिर]

व्यावहारिक मनोविज्ञान

अन्तश्चेतना

[राजेन्द्र विहारी लाल एम० एस० सी०]

जीवन में अब तक आप ने बहुत सी बातें सुनीं, दृश्य देखे और विद्यायें पढ़ी होंगी। पर उन सभी चीज़ोंका प्रत्यक्ष ज्ञान इस समय आपको नहीं है या यों कहिये कि वे सब अनुभव इस समय आपके सचेत मनके सामने उपस्थित नहीं हैं। सम्भव है उनमें से कुछ को जानते हुए भी आप प्रगट न कर सकते हों और बहुत सी बातोंको तो सम्भवतः भूल भी गये हों, परन्तु आप चाहें तो उनमेंसे बहुतोंको अपनी चेतनाके सामने इच्छानुसार थोड़ी सी कोशिश करके बुला सकते हैं। इस समय जब आप यह लेख पढ़ रहे हैं आपका गणित, साहित्य, इतिहास इत्यादि का ज्ञान कहाँ दुबका बैठा है? यदि यह सब चीजें प्रत्यक्ष रूपसे आपकी चेतनामें विद्यमान नहीं हैं किन्तु आवश्यकता पड़ने पर चेतनामें बुलाई जा सकती हैं तो स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि ये सब मनके अन्दर कहाँ छिपी बैठी रहती हैं? और समय पड़ने पर कहाँसे निकालकर चेतनामें बुलाई जा सकती हैं?

रातमें सोतेसे जागनेके लिए प्रायः लोग इस युक्तिका प्रयोग करते हैं कि सोते समय मनमें यह धारणा कर लेते हैं कि "हमें रातमें अमुक समय पर उठना है"। ठीक समय पर आपसे आप उनकी आँखें खुल जाती हैं और वे जाग जाते हैं। घोर निद्रामें सोते हुए उनका मन उन्हें कैसे जगा देता है?

इन प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिए हमारे लिए यह जानना अनिवार्य हो जाता है कि हमारे मनके सचेत भागके अतिरिक्त जो कि जागृत अवस्थामें हर समय कुछ न कुछ काममें लगा रहता है एक और भाग है जो प्रत्यक्ष रूपसे कोई काम नहीं करता पर हमारा सीखा हुआ ज्ञान-विज्ञान और पिछले अनुभव आदि अपने पास जमा रखता है। चेतना-प्रवाह की उपमा नदीकी धारासे दी जाती है। धाराके ऊपरी अथवा सतह वाले भागको, जिसमें विचार और भावनाकी तरंगें उठती रहती हैं और जिससे जागृत अवस्थामें हम देखने-सुनने, पढ़ने, ध्यान जमाने, विचारने और सोचने आदि का काम लेते हैं, सचेतन-मन कह सकते है। इसके विपरीत चेतना-प्रवाहके निचले भागको जो दृष्टिसे ओझल रहता है, जहाँ शान्तिका राज्य है और देखनेमें कोई काम-काज होता नहीं जान पड़ता—अन्तश्चेतना, अज्ञात चेतना अथवा उपचेतनाके नामसे पुकार सकते हैं। वेदान्त में सचेत मनके लिए 'बुद्धि' और अचेत मनके लिए 'चित्त' शब्दका प्रयोग किया गया है।

मानसिक क्रियायें वाह्य चेतना-क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहतीं। उनका जो भाग अन्तश्चेतनामें होता रहता है उसका विस्तार और महत्व उस भागसे कहीं अधिक होता है जो चेतन मनके भीतर होता है। यह कहनेमें कोई अतिशयोक्ति न होगी कि हमारे मानसिक जीवनका कमसे कम ९० प्रतिशत भाग अज्ञात चेतनाके अन्दर होता है और चेतन मनमें केवल १० प्रतिशत।

ठण्डे देशोंमें जो बर्फ़-शिलायें समुद्रमें तैरा करती हैं उनका अधिकांश भाग पानीकी सतहके नीचे और केवल थोड़ा सा पानी की सतहके ऊपर रहता है। इसी प्रकार हमारे मनका अधिकांश भाग हमारे चेतना-क्षेत्र की सतहके नीचे रहता है।

अन्तश्चेतनाका एक महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह स्मृतिका निवास स्थान है या यों कहा जाय कि वह एक प्रकारका स्मृति-कोष है जिसमें हमारा इन्द्रिय-गोचर-ज्ञान, अनुभव आदि संग्रहीत होते रहते हैं। निपुणता और दक्षता भी जिसे आवश्यकता पड़ने पर मनुष्य अपनी इच्छानुसार प्रदर्शित कर सकता है साधारणतः अन्तश्चेतना ही में संचित रहती हैं।

तो क्या अज्ञात चेतना केवल मनका भण्डार-घर है जहाँ पुराने अनुभव, संस्कार, विद्या आदि सब जमा होजाते हैं जो आवश्यकता पड़ने पर यहाँ से निकालकर काममें लाये जा सकते हैं? क्या उपचेतना बिलकुल अकर्मण्य है? नहीं बात ऐसी नहीं है। अन्तश्चेतना केवल एक भण्डारगृह ही नहीं बल्कि एक टकसाल भी है। जो मानसिक सामग्री अन्तश्चेतनाके अन्दर जाती है, वह वहाँ पूर्वसंचित सामग्री से मिलकर परिवर्तित हो जाती है और बाहर निकलने पर नये रूप धारण कर सचेत मनमें आती है। अन्तश्चेतनामें कच्चा माल अन्दर जाता है तो तैयार किया हुआ पक्का

नया माल बाहर निकलता है। हाँ इतना ज़रूर है कि जब हमारा सचेत मन काम करता है तो हमें इस बातका पता रहता है कि वह काम कर रहा है, पर अन्तश्चेतनाके काम करनेका पता प्रत्यक्ष रूपसे किसीको नहीं चलता। चित्तके कारख़ानेमें चुप-चाप कार्य होता है, वहाँ न शोरगुल है, न धुआँ-धक्कड़, न थकावट।

जब मनुष्य गहरी नींदमें बिल्कुल अचेत हो सोता है उसका सचेत मन काम करना बन्द करदेता है पर उस समय अचेत मन और भी ज़ोरसे काम करने लगता है जिसमेंसे कुछ भाग तो बिल्कुल ऊटपटाँग ही होता है— जो स्वप्नोंके रूपमें प्रगट होता है। पर बहुतसा लाभदायक भी होता है। प्रायः देखा गया है कि मनुष्योंने निद्रावस्थामें ऐसे-ऐसे प्रश्न हलकर डाले हैं जिन्हें वे जागृत अवस्थामें बड़ी कोशिश करनेपर भी न हल कर पाये थे। ऐसी घटनायें गणितज्ञोंमें अक्सर देखनेमें आती हैं। अंग्रेज़ी कवि 'कोलिरिज' ने अपना प्रसिद्ध काव्य 'कुबलारखाँ' सोने की अवस्था में ही रचा था, जाग उठने पर उसने उसे केवल लिख डाला। सच तो यह है कि कभी कभी निद्रावस्थामें मन नये नये विचारोंको पैदा करने और गुत्थीके सुलझानेमें ऐसी योग्यता का प्रमाण देता है जिसे वह पूरी चेतनाके समयमें भी नहीं दिखा पाता। यद्यपि अन्तश्चेतनासे निद्रावस्थामें काम लेनेका गुर हमें अभी तक मालूम नहीं हो सका है फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि निद्रावस्थामें हर मनुष्यके मनमें उसकी शिक्षा और योग्यताके अनुसार एक ऐसी शक्ति रहती है जिससे वह चेतन मनकी जमा की हुई सामग्रीको अत्यन्त ही सूक्ष्म और रचनात्मक ढंगसे उपयोगमें ला सकता है।

दिमागका मोटा काम तो सचेत मन द्वारा होता है और बारीक काम चित्त द्वारा। सचेत मन बाह्य जगतसे बिचार सामग्री जमा करता है, चित्त उस सामग्री को संचित्त कर लेता है और स्थिति अनुकूल होने पर उसी सामग्रीसे नवीन और सुन्दर वस्तुएं तैयार कर देता है। चित्त यथार्थ बातोंको छाँटता है, उनकी एक दूसरेसे तुलना करता है उनको क्रम से रखता है और उन्हें श्रेणियोंमें विभाजित करता है। हमारे अचेत मनका मुख्य काम विश्लेषण और संश्लेषण है। यह हमारी शक्तियोंको चक्रवृद्धि ब्याजकी तरह बढ़ाता है और भिन्न-भिन्न क्रियाओंको मानों एक स्वरमें मिलाकर काममें लगाता है। चित्तकी मुख्य क्रियायें स्मृति वा स्मरण और कल्पना या अनुसन्धान हैं।

यदि हम मनोविश्लेषण और संमोहन क्रियाके प्रमेयोंका अध्ययन करें तो इस बातके और भी प्रमाण मिलेंगे कि मनका एक निचला, अन्दरूनी अथवा परोक्ष भाग होता है जो चुपचाप सदा काम करता रहता है। पर यहाँ मनोविश्लेषण और संमोहन क्रियाके विषयोंकी और चर्चा करनेका हमारा कोई विचार नहीं और न इसकी यहाँ कोई आवश्यकता ही है। जो कुछ हमने ऊपर बताया है उसीसे पाठकोंको अन्तश्चेतनाके अस्तित्व और महत्त्वके बारेमें भली भाँति विश्वास हो गया होगा।

ऊपर लिखी हुई बातोंसे पाठकोंको यह न समझ लेना चाहिए कि मनके भीतर सचेत और अचेत दो अलग अलग ख़ाने हैं या इनके पृथक पृथक स्थान हैं, जिनका बँटवारा किसी स्थूल पदार्थके द्वारा किया गया है। हमारा मन केवल एक वस्तु है और चेतना तथा अन्तश्चेतना इसके दो प्रधान धर्म हैं जो एक साथ मिलकर काम करते हैं न कि अलग अलग। मनके सचेत और अचेत अंगोंमें घना सम्बन्ध है और वे एक दूसरेपर गहरा प्रभाव डालते रहते हैं।

मनोविज्ञानाचार्य अभी तक अन्तश्चेतनाके कर्म, गुण आदिके सम्बन्धमें बहुत थोड़ा ही ज्ञान प्राप्त कर पाये हैं। अभी यह निश्चित रूपसे पता नहीं कि अचेत मन किन-किन अवस्थाओंमें और किस प्रकार अपना काम करता है अथवा किन-किन उपायोंसे उसकी उपयोगिता बढ़ायी जा जा सकती है। इसलिए अभी तक अन्तश्चेतना अधिकतर तो मनुष्यके वशके बाहर की ही वस्तु समझी जाती है। पर यद्यपि हमें अचेत मनपर प्रत्यक्ष रूपसे (अपरोक्ष रूपसे) अनुशासन करने या उस पर प्रभाव डालनेकी युक्ति अभी तक ठीक-ठीक नहीं मालूम है, फिर भी अन्तश्चेतनाके विषयमें हमें मनोविज्ञानसे कुछ अत्यन्त ही उपयोगी बातोंका परिचय मिलता है जिनका निचोड़ नीचे दिया जाता है:—

(१) अन्तर्मन अपने मूलधनके लिए उस विचार-सामग्री पर निर्भर रहता है जो सचेत मन अपने प्रयाससे संग्रहीत करता है।

(२) अन्तश्चेतनाका अधिकतर क्रियात्मक काम उस समय होता है जब कि सचेत मन या तो आराम करता रहता है या किसी भिन्नप्रकारके हल्के कार्यमें लगा रहता है।

(३) मनुष्य अपने सचेत मनको जैसा बनाता है वैसे ही उसका अचेत मन भी आपसे आप बन जाता है।

(४) निद्रावस्थामें अन्तर्मन पर सीधे भी प्रभाव डाला जा सकता है।

चूँकि अन्तश्चेतना मानसिक सामग्रीके लिए सचेत मन ही पर निर्भर रहती है इसलिये यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि हम अपने मानसिक चेतन जीवनको अच्छा बनाये रक्खें तो अन्तश्चेतना भी साथ ही साथ अच्छी बनी रहेगी। अगर आप अचेत मनको शिक्षित करना चाहते हैं तो इसके लिये सर्वोत्तम उपाय यही है कि आप अपने सचेत मन को शिक्षित करें; क्योंकि मनोविज्ञान का यह नियम है कि अव्यक्त मन वैसा ही हो जाता है जैसा कि सचेत मन। सचेत मनके क्रियाशील रहनेके कुछ फल तो शीघ्र ही प्रत्यक्ष रूपसे प्राप्त हो जाते हैं, पर इस प्रयासके जो परिणाम अदृश्य रूपसे होते हैं वे भी कुछ कम महत्त्व-पूर्ण नहीं होते। चेतन मनका विधिपूर्वक किया हुआ प्रयास अन्तश्चेतनाको सामग्री पहुँचाता है, और उसमें आवेश पैदा करता है; जिसका फल यह होता है कि आपका मन पहलेकी अपेक्षा अच्छे ढंगसे काम करने लगता है। अगर आप जागृत अवस्थामें अपनी योग्यता बढ़ानेका प्रयत्न करते रहें तो आप की अन्तश्चेतना भी वैसा ही करके आपके कार्यमें सहायता देगी। आप सचेत मन द्वारा जो अपरिपक्व विचार सामग्री अन्तश्चेतनाके अन्दर भेजते हैं वह आपको परिपक्व रूपमें वापिस मिल जाती है। अचेत मन सचेत मनका प्रतिबिम्ब स्वरूप है। यदि जागृत अवस्थामें शुभ विचारोंका चिन्तन, अच्छे मनोभावोंका हृदयमें समावेश और अच्छे संकल्प-विकल्प किये जाँय तो वे अन्तश्चेतनामें पहुँचकर बहुत सूक्ष्म रूपसे लाभ पहुँचायेंगे।

जिस समय मनुष्य अपने सचेत मनसे काम लेता है उसका अचेत मन भी चुपचाप अपना काम करता रहता है। मनुष्य जब सो जाता है उसका सचेत मन तो काम करना बन्द कर देता है पर अचेत मन कदाचित् पहलेसे भी अधिक काम करने लगता है। जब हमारा हृदय-पिण्ड सत्तर या सौ वर्ष तक बिना रुके हुए बराबर काम कर सकता है तो इस बातके माननेमें क्या आपत्ति हो सकती है कि हमारे मनका यह भाग भी कभी विश्राम नहीं करता।

जो विचार किसी भी द्वारसे आपकी अन्तश्चेतनाके अन्दर पहुँचते हैं वे वहाँसे नये नये रूप धारण कर बाहर निकलते हैं, या यों कहिये कि बाहरसे आये हुए विचार अन्तश्चेतनाके खेतमें बीजका काम करते हैं। अन्तश्चेतना की उपजाऊ भूमि भाँति-भाँतिकी रंग-बिरंगी पत्ती और डाली, फूल और फलकी फसल पैदा करती है, जो अवसर पाकर सचेत मनमें प्रकट हो जाती है। हाँ यह अवश्य है कि जैसा बीज होगा वैसा ही फल भी होगा।

जागृत अवस्थामें तो अचेत मन पर सचेत मन द्वारा प्रभाव डाला ही जा सकता है पर वैज्ञानिक प्रयोगोंसे यह सिद्ध होता है कि निद्रावस्थामें भी अन्तश्चेतना पर सीधे-सीधे ही प्रभाव डालना सम्भव है। हिप्नटिज़्मका तो सारा काम ही इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि निद्रावस्थामें अचेत मन पर असर डालकर उससे काम लिया जा सकता है। पर आगे चलकर इस बातके और भी उपयोगी उदाहरण दिये जायँगे।

कुछ समय बाद आपके जीवनका उद्देश्य अनविभूत हो जाता है यानी चेतनामें नीचे दब जाता है, पर इससे उसका प्रभाव कम नहीं होता, बल्कि कुछ बढ़ ही जाता है। ऐसी हालतमें आप अपने जीवन-उद्देश्यको दूसरे लोगों पर जताते नहीं फिरते। और कभी कभी तो ऐसा हो जाता है कि आपको इस बातका बिल्कुल ध्यान ही नहीं रह जाता कि आपके जीवनका कोई विशेष उद्देश्य भी है। परन्तु वास्तवमें आपका उद्देश्य आप की आत्मा में ही सन्निहित हो जाता है और अन्तश्चेतना उसे कभी नहीं भूलती। आपके जीवन-उद्देश्यकी पूर्तिके लिए अन्तश्चेतना एक चुम्बकका काम करती है। वह पिछले दिनोंकी घटनाओंमेंसे अपने

काम की बातोंको खींचकर निकाल लेती है। आपकी निद्रावस्थामें अन्तश्चेतना इन पदार्थोंको सुव्यवस्थित करनेमें लगी रहती है, और जब सवेरे सोकर उठने पर आपको एक नया विचार मिल जाता है तो आपको आश्चर्य होता है कि यह वही विचार है जिसकी खोजमें आप इतनी मुद्दत से थे और आपको यह पहले क्यों नहीं सूझी। नये विचार पानेके बाद फिर सचेत मनका काम ज़ोरोंके साथ आरम्भ हो जाता है। निरीक्षण, ध्यान, चिन्तन और कल्पना सब मिलकर नये प्रयासको सफल बनानेमें लग जाते हैं और तब तक लगे रहते हैं जब तक सफलता प्राप्त नहीं हो जाती।

अब हमने यह देख लिया कि मनका एक भाग अचेत रहता है पर सदा काममें लगा रहता है। जिस समय सचेत मन काम करता है अचेत मन अधिकतर नयी-विचार सामग्रीको चेतन मनसे ग्रहण करता है और जब चेतन मन काम करना बन्द कर देता है उस समय अचेत मन चेतन मन द्वारा संग्रह किये हुए विचारों, मनोविकारों, भावनाओं और अनुभवोंका संश्लेषण एवम् विश्लेषण करता है; कभी-कभी उनके मेलसे और कभी उनमें कुछ उलट फेर करके नये विचारोंका निर्माण करता है। हमने यह भी देख लिया कि अचेत मनमें बड़ी शक्ति है और कभी-कभी तो वह ऐसे काम कर दिखाता है जिन्हें करनेमें चेतन मन सर्वथा असमर्थ रहा है। जैसा ऊपर लिखा जा चुका है यह अभी ठीकसे मालूम नहीं कि अन्तश्चेतनाके काम करनेके नियम क्या हैं और उनको किस तरह उपयोगमें लाया जा सकता है। हाँ इतना अवश्य मालूम होता है कि चेतन मनके ज़रियेसे अचेत मन पर प्रभाव डाला जा सकता है।

अब हमें यह देखना चाहिये कि अन्तश्चेतनाके सम्बन्धमें हमें जो कुछ मालूम है उससे अपने दैनिक जीवनमें हम किस प्रकार फ़ायदा उठा सकते हैं।

अगर हम अचेत मनकी शक्तियोंसे लाभ उठाना चाहते हैं तो पहली बात यह है कि इसको पूरी तरह काम करनेका अवसर दें। यह तभी हो सकता है जब सचेत मन स्वयम् काम करना बन्द कर दे और उसकी ओरसे अन्तश्चेतनाको कुछ समयके लिए अवकाश मिल जाय। उदाहरणके लिए मानलीजिये कि आपको किसी गूढ़ विषय पर सोच विचार करना है या किसी नयी विद्याका अध्ययन करना है और इस काममें आठ घंटे लगानेका आपका इरादा है। क्या आपको ये आठों घण्टे एक साथ ही अथवा एक ही बैठकमें या एक ही दिनमें उस प्रश्न पर विचार करनेमें लगा देने चाहिये या थोड़ा-थोड़ा करके तीन चार दिनमें ? मनोविज्ञान वेत्ताओंका कहना है कि उस मामले पर एक दिनमें अधिक समय देनेकी अपेक्षा उतने ही समयको थोड़ा थोड़ा करके तीन-चार दिनोंमें लगाना कहीं अधिक लाभदायक होगा। क्योंकि एक तो लगातार देर तक एक ही काममें लगे रहनेसे उस विषयकी ओर अभिरुचि कम हो जाती है जिससे उस विषय पर पूर्ण रूपसे ध्यान देना कठिन हो जाता है। दूसरे देर तक मानसिक परिश्रम करनेसे दिमाग़ थक जाता है जिससे उसकी शक्तियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। पर तीसरी और बड़े महत्त्व की बात यह है कि लगातार चिन्तनमें तल्लीन रहनेसे अन्तश्चेतनाको चेतन मनकी सहायता करनेका बिल्कुल अवसर नहीं मिलता। इसके विपरीत जब सोचनेकी अवधि कई दिनोंमें बाँट दी जाती है तो अचेत मनकी शक्तियोंको विचारोंमें उलट फेर, संश्लेषण-विश्लेषण करने और उन पर एक नवीन प्रकाश डालनेका अवसर मिल जाता है।

कभी-कभी ऐसा होता है कि हम किसी प्रश्नके हल करनेमें बहुत देर तक प्रयत्न करनेपर भी उसे हल नहीं कर पाते। या किसी समस्यामें क्या करें यह निर्णय करनेका लाख प्रयास करनेपर भी समझमें नहीं आता कि क्या करें। ऐसी अवस्थामें सिर धुननेकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा होगा कि उस समय हम उस प्रश्न या प्रसंगको मनके सामनेसे बिल्कुल हटा दें और एक दो दिन बीत जानेपर पुनः उसपर विचार करें। ऐसा करनेपर हम बहुधा देखेंगे कि दूसरे ही दिन सवेरे उठनेपर हमारे प्रश्नका उत्तर स्पष्ट हो जायगा और हमारी समस्याको सुलझानेके लिए आप ही आप हमारे मनमें बिजलीके समान प्रकाशकी एक रेखा चमक उठेगी।

किसी भी दिमाग़ी कामके करनेमें यह बड़ा उपयोगी नियम है कि उसे यथेष्ठ समय दीजिये चाहे उस समयमें

आप उस विषय पर क्रियात्मक मनन या चिन्तन न भी करते हों। केवल समय बीतनेसे ही बहुत सी कठिनाइयां स्वतः दूर हो जायँगी, बहुतसे प्रश्नोंका उत्तर आपसे आप समझमें आजायगा, और बहुतसे नवीन विचार उत्पन्न हो जायँगे जो समस्या पर प्रकाश डालेंगे। किसी विद्याके सीखने अथवा किसी बातको याद करनेकी क्रियाका भी बहुत बड़ा अंश चेतना मनकी अचेत अवस्थामें अन्तश्चेतना द्वारा होता है।

बाहरसे आने वाली और अपने ही मनमें पैदा होने वाली सूचनाओंका जो प्रबल प्रभाव जीवन पर पड़ता है उसमें हमारी अन्तश्चेतनाका बड़ा महत्त्वपूर्ण हाथ रहता है। हमारे मस्तिष्कमें उत्पन्न होनेवाला प्रत्येक विचार एक बीज का काम करता है जो हमारी अन्तश्चेतना की उपजाऊ भूमि में पहुँच कर अपने ही सदृश फूलों फलोंकी फसल पैदा कर देता है। प्रकृतिका नियम है कि जो चीज़ जैसी होती है उससे ठीक वैसी ही चीज़ उत्पन्न होती है। मानसिक क्षेत्रमें भी ठीक ऐसा ही होता है। जैसे विचारोंको हम अपने मनमें स्थान देंगे वैसा ही हमारा जीवन निर्मित होगा। इस सरल सत्यका उपयोग हम चरित्र-गठन, स्वास्थ्य-रक्षा और अन्य कार्य क्षेत्रों में भी कर सकते हैं।

आधुनिक विज्ञान हमें निश्चित रूपसे बतलाता है कि हमारी बहुत सी नैतिक शिक्षा और चरित्र गठन निद्रावस्थामें आपसे आप अज्ञात रूपसे हुआ करता है। बात यह है कि सोनेके समय हमारे मनकी जो अवस्था रहती है वह बराबर प्रातःकाल तक बनी रहती है। उस समय जो भाव हमारे मनमें रहते हैं वही रातके समय अपने आप हमारे अचेत मनमें परिपुष्ट होते रहते हैं। इसलिये यदि हम सोनेके समय अपने विचार पवित्र, शान्त और उच्च करलें तो हमारे शरीर तथा आचरण पर उसका जो असर होगा उसका अनुमान विज्ञजन सहज ही कर सकते हैं। सोनेके पहले लगातार कुछ दिनों तक जिन लोगोंने किसी आदर्शका चित्र अपनी मानसिक दृष्टिके समक्ष रक्खा हैवे स्वयम् भी उस आदर्श तक पहुँच गये हैं। पाश्चात्य देशोंमें ऐसे अनेक सज्जन मिलेंगे जिन्होंने उसी प्रकारका अभ्यास करके अपने स्वास्थ्य तथा आचरण आदिमें आश्चर्यजनक उन्नति प्राप्त कर ली है।

'डाक्टर ओरिसन स्वेट मार्डेन' का कहना है कि रात्रिको सोनेके समय प्रत्येक व्यक्तिको अपना मन शुभ तथा उन्नत प्रसन्नतापूर्ण विचारोंसे भर लेना चाहिए और अच्छी-अच्छी तथा शुभ बातोंकी आकांक्षा करनी चाहिए। मनमें यह भाव रखना चाहिए कि हम शीघ्र बहुत सम्पन्न, सुखी एवम् शक्तिशाली बन जायँगे। अपने मनके सामने अपना आदर्श रखना चाहिए। जिस महात्मा या महानुभावका चरित्र हमें बहुत अच्छा लगता हो उसके आचरणोंका स्मरण और मनन करना चाहिए। बड़े-बड़े लोगोंके हृदयकी विशालता, उदारता, सहनशीलता, विद्वत्ता, बहुज्ञता इत्यादिका स्मरण करना चाहिए और इस बात की आकांक्षा करनी चाहिए कि हम भी वैसे ही बनें। थोड़े ही दिनोंके अभ्यासके उपरान्त हम देखेंगे कि हमारी मानसिक अवस्थामें बहुत बड़ा और बहुत ही शुभ परिवर्तन हो गया है। जब रातको सोनेके समय जीवनका वास्तविक स्वरूप और उच्च आदर्श हमारी दृष्टिके सामने होगा, तो दूसरे दिन उस आदर्शकी ओर हम अवश्य ही कुछ न कुछ अग्रसर होंगे। इस प्रकारकी क्रियाका नाम आत्म-सूचना है और यह तो स्पष्ट ही है कि आत्म-सूचनाको सफल बनानेमें अन्तश्चेतनाका बड़ा हाथ है।

'बोस्टनके डाक्टर वोरसेस्टर' का दृढ़ विश्वास है कि सूचनाओं द्वारा सहज ही दुष्ट बालकोंका चरित्र सुधारा जा सकता है। उनका मत है कि जब बालक सोया हो, उस समय उसे बहुत धीरे-धीरे अच्छे-अच्छे उपदेश देने चाहिये। उससे कहना चाहिए कि तुम अमुक-अमुक दोष छोड़ दो और अपना आचरण अमुक प्रकारसे सुधार लो। डाक्टर वोरसेस्टर कहते हैं कि सोये हुए बालकोंसे यदि धीरे-धीरे बात कही जाती है तो उससे उनकी निद्रा तो भंग नहीं होती परन्तु जो कुछ उनसे कहा जाता है उसे वे अचेत मनकी सहायतासे बहुत अच्छी तरह सुन लेते हैं, और केवल सुन ही नहीं लेते बल्कि समझ लेते और ग्रहण भी कर लेते हैं तथा बादमें उसके अनुसार आचरण करते हैं। जो बात बच्चोंसे निद्रावस्थामें कहनी हो बहुत धीरे-धीरे कई तरहसे और खूब समझा बुझाकर कहनी चाहिए। डाक्टर साहबने अपने अनुभवोंका वर्णन करते हुए लिखा है कि उन्होंने बहुतसे बालकोंकी आदतें छुड़ाई हैं और उन्हें अच्छे

मार्ग पर लगाया है। इससे डरनेवाले बच्चोंने डरना छोड़ दिया, झूठ बोलनेवाले लड़कोंने झूठ बोलना और क्रोध करनेवाले बालकोंने क्रोध करना छोड़ दिया, यहाँ तक कि हकलाकर बोलने वाले बच्चोंने हकलाना भी छोड़ दिया।

प्रायः सभी देशों और जातियोंमें यह रिवाज है कि बच्चोंको सुलानेके पहले हर प्रकारसे प्रसन्न करते हैं। हमारे यहाँ भी बालकोंको सोनेसे पहले अनेक प्रकारकी अच्छी-अच्छी शिक्षाप्रद कहानियां और लोरियाँ आदि सुनानेकी प्रथा है। पढ़ी-लिखी या समझदार मातायें सोने से पहले अपने बच्चोंको नाना प्रकारके अच्छे-अच्छे उपदेश देती हैं, महापुरुषोंकी कथायें सुनाती हैं और उनमें शुभ कामनायें तथा श्रेष्ठ भावनायें भरनेका प्रयत्न करती हैं। कोमल हृदय वाले बालकों पर इन सब बातोंका बहुत अच्छा और गहरा प्रभाव पड़ता है। सोनेसे पहले जो बातें सुन लेते हैं वे निद्रावस्थामें उनकी अन्तश्चेतना पर दृढ़तापूर्वक अंकित होने लगती हैं और बालकोंके भावी जीवन तथा आचरण आदि पर बहुत शुभ प्रभाव डालती हैं।

जो मातायें अज्ञान अथवा किसी कारणसे अब तक ऐसा न करती हों उन्हें उचित है कि अबसे सोनेके समय अपने बालकोंको प्रसन्न करने और उन्हें अच्छी-अच्छी बातें बतानेका प्रण करें। इस प्रकार वह उन्हें जागृत अवस्थाकी अपेक्षा निद्रावस्थामें और भी अधिक तथा उत्तम शिक्षा दे सकेंगी। जागृत अवस्थाओंमें दी हुई शिक्षाओं और उपदेशों आदिका बालकों पर पूरा प्रभाव पड़े या न पड़े, पर सोने से पहले दी हुई शिक्षाओं तथा उपदेशोंका अच्छा प्रभाव पड़ता हुआ प्रायः देखा गया है। जागते हुए तो बच्चा किसी प्रकार की प्रतिक्रिया भी कर सकता है परन्तु निद्रावस्थामें उसके लिए किसी प्रकारकी प्रतिक्रिया करना असम्भव हो जाता है और उपदेश तथा शिक्षायें उसके हृदय पर प्रत्यक्ष रूपसे और दृढ़तापूर्वक अपना कार्य करती हैं। आज कल पाश्चात्य देशोंमें तो इन बातोंने एक प्रकारसे एक शास्त्रका रूप धारण कर लिया है। वहाँ केवल दुष्ट बालकोंके आचरण-सुधारके लिए ही नहीं बल्कि उनके अनेक शारीरिक रोगोंको दूर करनेके लिए भी इन तत्त्वोंका व्यवहार किया जाता है। यह कहना शायद अनावश्यक होगा कि जो माता पिता अपने बच्चोंको मार पीट कर या डरा धमकाकर सुलाते हैं वह भारी भूल करते हैं।

दाँतोंकी रक्षा

[लेखक—ठाकुर शिरोमणि सिंह चौहान एम० एस० सी०, विशारद]

दाँत परमात्माकी एक अनमोल देन है। इनके अभावमें न तो हम भोजनका वास्तविक स्वाद ही पाते हैं और न हम उसे भली भाँति हज़म हो कर सकते हैं। सच पूछो तो जीवनकी सबसे महत्वकी क्रिया भोजन करना और उसे यथेष्ट रूपसे हज़म करना है। भोजन क्रिया और दाँतोंका अत्यन्त घनिष्ट संबंध है। भोजन क्रियामें सबसे प्रथम और सबसे महत्वपूर्ण काम उसको अच्छी तरह चबाना या पीसना है। क्योंकि अच्छी तरहसे पिसे हुए भोजनपर पाचक रसोंका शीघ्र प्रभाव पड़ता है जिसके फल स्वरुप वह शीघ्र पच जाता है।

परमात्माने दाँतोंका निर्माण ऐसी कुशलतासे किया है कि जो प्राणी जिस प्रकारका भोजन करता है उसके दाँत उसीके काटने, फाड़ने, चबाने अथवा पीसनेके योग्य होते हैं। तात्पर्य यह कि प्राणीके दाँतोंका आकार प्रकार एवं बनावट उसके खाद्य-पदार्थके अनुकूल होता है। यदि शेरके दाँत बकरी अथवा भेड़के दाँतोंके समान होते तो वह बड़े सङ्कटमें पड़ जाता, और न बेचारी भेड़ ही शेरके समान लम्बे और नोकीले दाँतोंको पाकर अपनी उदरपूर्ति सुगमतासे कर पाती। शाकाहारी और माँसाहारी प्राणियोंके दाँतोंकी बनावटमें उनके भोजनके कारण बड़ा अन्तर होता है। दूध पीने वाले बच्चोंमें दाँतोंका अभाव होता है क्योंकि दूध पीनेमें उनकी आवश्यकता नहीं होती! प्राणियोंके भोजन और उनके दाँतोंकी इतनी घनी अनुकूलता होती है कि एक को देखकर दूसरीका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। लुप्त हुए (Fxtinct) प्राणियोंके दाँतोंको निरीक्षण करके हम निश्चय पूर्वक बता सकते हैं कि वे किस भाँतिका भोजन करते थे। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि दाँत हमें निर्देश करते हैं कि हमारा भोजन किस प्रकारका होना चाहिये।

दाँतोंके निर्माणकर्त्ताने तो उन्हें ऐसी सावधानीसे बनाकर हमें प्रदान किये हैं किन्तु क्या हम उनकी आरोग्यता एवं रक्षा की ओर उचित ध्यान देते हैं। जाँच करनेसे पता चला है कि अमेरिकन स्कूलोंमें ९० प्रतिशत विद्यार्थियोंके दाँत ख़राब होते हैं। उनकी ख़राबीका हमारे स्वास्थ्य अथवा रोगोत्पादन पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। पचहत्तर प्रतिशत् रोगोंका आरंभ हमारे मुँहसे होता है। आपको यह सुनकर अचंभा होगा कि पायोरिया (गोश्त-खोरा) ग्रसित रोगीके मुँहसे लगभग एक औंस पूय (पीब) लारके साथ मिलकर उनकी उदर दरीमें नित्य पहुँचता है और वहाँ से लसिका-वाहिनियों द्वारा समस्त शरीरमें व्याप्त होकर अनेक संस्थानिक एवं शारीरिक भयंकर रोगों, आमाशय-कला-प्रदाह (Gastritis), उपांत्र प्रदाह (Appendicitis), गठिया आदि का निमित्त कारण बनता है। यह पीब भोजनके समय ही उदर दरीमें जाता हो, सो बात नहीं। वह तो प्रत्येक क्षण थूकके साथ न्यूनाधिक मात्रामें पेटके भीतर जाता रहता है। रोगोत्पादनके अतिरिक्त इससे मुँह सदैव दुर्गंधमय रहता है।

ऊपरके विवेचनसे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि स्वास्थ-बर्द्धन एवं रोगनिवारणके अर्थ हमारे दाँतोंका निरोग और दृढ़ होना अत्यावश्यक है। भोजनको भली भांति पीसनेकी क्षमता रखने वाले दाँतों ही की अधिक महत्ता है। वे हमारी जीवन-शक्तिके विधायक हैं। कुछ दिन हुए क्लीवलैंडकी जाँचसे मालूम हुआ था कि स्कूल में अच्छे दाँत वाले विद्यार्थी दूषित दांत वाले विद्यार्थियोंकी अपेक्षा पढ़ने-लिखनेमें श्रेष्ठ एवं प्रतिभावान् होते हैं किन्तु आज कल तो अधिकांश व्यक्ति दाँतोंकी एक-न-एक बीमारीसे पीड़ित रहा करते हैं। ऐसे बहुत कम हैं जिनके दांत आदर्श रुपसे स्वस्थ, श्वेत और चमकदार होते हों।

साधारण नीरोग अवस्थामें दाँतों और मसूढ़ोंकी संधि के बीच कोई रिक्त स्थान नहीं होता। रोगी होने पर मसूढ़ोंके किनारे सिकुड़ जाते हैं और उनके तथा दाँतोंके बीच दराज होजाती है। भोजनोपरांत दांतों और मसूढ़ोंकी इन्हीं दराजोंमें खाद्य पदार्थके अति सूक्ष्म अंश फंस जाते हैं और वहाँ कुछ घंटे फंसे रहने पर उनमें विकार उत्पन्न होने लगता है। वे सड़ते गलते हैं। उनके विकृत होनेपर वहाँ जीवाणुओंमें बहुत वृद्धि होजाती है। यह जीवाणु दाँतोंके आवेष्ठक किनारोंको गलाकर उसे खाने लगते हैं। मसूढ़ोंके

गलने से सन्धियोंकी दराजें उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। साथ ही उनमें फंसने और सड़ने वाले खाद्य द्रव्योंकी मात्रामें भी वृद्धि होती जाती है। परिणाम यह होता है कि वहाँ जीवाणुओंके बढ़ने और मसूढ़ोंके गलनेके कारण मवाद पड़ने लगता है। धीरे-धीरे इसका प्रभाव दाँतोंकी जड़ोंतक पहुँच जाता है; उनमें वेदना होने लगती है और हिलने लगते हैं। दाँतों और मसूढ़ोंकी इन समस्त तकलीफ़ोंके मुख्य कारण उनमें व्यायाम की कमी, उनकी यथेष्ट सफाईमें असावधानी और खाद्य-पदार्थोंमें खाद्योजों (विटामिन) की न्यूनता हैं।

आप कहेंगे कि दाँतोंका व्यायाम किस भांति होना चाहिए। यह सभी जानते हैं कि यदि शरीरके किसी अंग विशेषसे कम काम लिया जाय अथवा बिलकुल न लिया जाय तो वह अंग शनैः शनैः क्षीण होने लगता है और अंतमें बिल्कुल निकम्मा होजाता है। इसके विपरीत जिस अंगसे अधिक काम लिया जाता है वह अधिक पुष्ट और बलिष्ट होता है। कुछ जमातके साधू अपना एक हाथ सदैव ऊपरको उठाए रहते हैं वह हाथ कुछ समयके उपरांत अत्यंत जीर्ण-शीर्ण होकर निकम्मा होजाता है। और बढ़ईका वह हाथ जिससे वह नित्य बसूला चलाया करता है अत्यंत मज़बूत और शक्ति शाली हो जाता है। उपयोग करनेका ही अर्थ स्वास्थ्य है और उसके अभावका अर्थ उसकी शक्तिमें ह्रास है। इस तथ्यको दृष्टि-बिन्दुमें रखकर दाँतोंके ख़राब होनेका कारण सहज ही समझ में आ जावेगा।

बात यह है कि हम अपने दाँतोंसे पूरा काम नहीं लेते हैं। आधुनिक सभ्यताके पुजारी ऐसा भोजन करते हैं जिसके काटने और चबाने की बहुत कम ज़रुरत पड़ती हैं। अतएव उनपर बहुत कम काम पड़नेके कारण वे शीघ्र ही कमज़ोर पड़ जाते हैं और समयसे पहले ही उखड़ जाते हैं। असलमें, ईश्वरने दाँतोंको मरण पर्य्यंत काम करनेके लिये बनाया है किन्तु हमारी सभ्यताका महारोग ऐसा नहीं होने देता। कुछ वैज्ञानिकोंके मतसे तो बहुत काल पीछे बिना दाँतके मनुष्य हुआ करेंगे।

जंगली आदमी कच्चा भोजन करते हैं, विविध भाँति-के कंद, मूल, फल और तरकारियाँ खाते हैं। फल यह होता है कि उन्हें अपने भोजनको बहुत चभुलाकर खाना पड़ता है। देहातके मनुष्य भी प्रायः सादा और कड़ा भोजन करते हैं। खूब चबैना चबाते हैं, मोटा अन्न खाते हैं, गन्ना चूसते हैं। गन्ना चूसनेकी क्रियामें वे उसके कड़े तन्तुओं को दाँतोंसे चीड़-फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर देते हैं और फिर उसे खूब चूसकर उसका सारा रस निकाल लेते हैं और खोईको थूक देते हैं। इस प्रकारके भोज्य-पदार्थोंके सेवन करनेमें दाँतोंको कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। यही कारण है कि उनके दाँत वृद्धावस्था तक दृढ़, बलिष्ट और निरोग बने रहते हैं। बन्दर भी इस भाँति का भोजन करते हैं। उन्हें पायोरिया आदि दाँतके रोग कभीं नहीं होता। पशुओंके दाँत हमारे दाँतोंसे कहीं अधिक पुष्ट और टिकाऊ होते हैं क्योंकि भोजन कड़ा और सादा होता है और कुछ चारा खानेके बाद फिरसे पागुर करते हैं।

किन्तु इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि पशुओं और जंगली जानवरों की भांति हम भी कच्चा भोजन किया करें। आशय तो केवल यह है कि दाँतोंसे उनके अनुकूल खूब श्रम लिया जाय। हम देखते हैं कि हमारे दाँत इनैमेल (Enamel) जैसे कड़े पदार्थसे आवेष्टित होते हैं और उनके नीचेका जबड़ा शरीरकी समस्त हड्डियोंसे मज़बूत होता है और वह माँस-पेशी जो भोजनको चबाते समय इस जबड़ेको हिलाती हैं सारे शरीरकी मांस पेशियोंसे मज़बूत होती हैं। अतः दाँतोंकी मज़बूतीको देखकर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि हमारा भोजन कड़ा होना चाहिये। ऐसा मुलायम नहीं कि उसे ग्रहण करने में कुचलने और चबानेकी आवश्यकता ही न पड़े। अतएव दाँतोंसे कड़ा भोजन खाइये कौर खूब चबाइये। तभी उनपर काफ़ी परिश्रम पड़ेगा और यही उनका व्यायाम है।

कड़ा भोजन करनेके साथ ही हमें उनकी सफ़ाई पर भी काफ़ी ध्यान रखना चाहिये। 'सफ़ाई साधुता है'। पर हम देखते है कि मुँह और दाँत जिन्हें सब से स्वच्छ रहनेकी आवश्यकता है, सब से गंदे रहते हैं। कुछ लोगों पर आजकल फैशनका भूत सवार है। वे भोजन, चाय, फल आदि ग्रहण करनेके अनन्तर मुँह और दाँतोंकी अधिक सफ़ाई तो दरकिनार कुल्ला करना तक फैशनके विरुद्ध समझते हैं। वे यूरोपनिवासियोंकी देखादेखी अपने दाँतोंके

स्वयं शत्रु बन रहे हैं। बिना मुँह साफ़ किये हुए प्रातः चाय अथवा जलपान करलेना अतीव हानिकर है।

प्रातः सायं और भोजनोपरान्त मुँह, दाँत और जिह्वाको अच्छी तरह साफ़ करना चाहिये। नित्य प्रातःकाल कड़े ब्रुश अथवा नीमकी ताज़ी दातौनकी कूंचीसे मुँह और दाँतोंको खूब साफ़ करना चाहिये। दातौन करते समय यह ध्यान रहे कि दातौनकी कूँचो दाँतों पर आगे-पीछे न रगड़कर ऊपर-नीचे रगड़ी जाय। ऊपर वाले जबड़ेके दाँतों और मसूढ़ों पर ऊपरकी ओरसे नीचेको और नीचे वाली पंक्तिके दाँत और मसूढ़ोंपर नीचेसे ऊपरको फेरना चाहिये। दातौनकी कूँचीको आगे-पीछे फेरनेसे मसूढ़ोंको क्षति पहुँचती है। जीभी या दातौनके चिरे हुए टुकड़ेसे जिह्वापर जमे हुए मैलको खूब साफ़ करना चाहिये। यदि दाँतों पर धब्बे पड़ गये हों तो थोड़ा सा साबुन और पिसी हुई खरिया रगड़ना चाहिये। कड़ुआ तेल और नमक मिलाकर दाँतों पर रगड़नेसे भी लाभ और सफ़ाई होती है।

प्रत्येक भोजनके उपरान्त खूब कुल्ला करना चाहिये फिर अँगूठे और मध्यमासे दाँतों और मसूढ़ोंको रगड़ना चाहिये। इससे दाँतों और मसूढ़ोंपर लगा हुआ भोजनका अंश छूट जाता है। कुल्ला करने अथवा दाँत और मसूढ़ोंको अंगुलीसे साफ़ करनेसे उनकी ऊपरी सफ़ाई तो हो जाती है किन्तु दाँतों और मसूढ़ोंकी संधियोंके भीतर की सफ़ाई नहीं होती। इस प्रकारकी सफ़ाई पायोरिया जैसे रोगोंसे दाँतोंकी रक्षा नहीं करती क्योंकि दाँतोंकी संधियोंमें खाद्यद्रव्यके कुछ न कुछ अंश फंसे रह जाते हैं। इन्हें तो जलपान और भोजनके उपरान्त नीमकी सींकको दाँतोंको संधियोंके बीच फेरकर निकालना चाहिये। तत्पश्चात् जीभको घुमा फिराकर देख लेना चाहिये कि खाद्य पदार्थके कोई अंश फंसे तो नहीं रह गये हैं। यूरोप निवासी भोजनोपरांत कुल्ला आदि नहीं करते। यह बड़ी मलिन आदत है। इसका परिणाम यह होता है कि उनके दाँत बहुत ख़राब होते हैं और शीघ्र ही गिर जाते हैं।

दाँतों और मसूढ़ोंको रेत आदि बहुत कड़े पदार्थसे मलकर न साफ़ करना चाहिये। अच्छी तरह पिसे हुए कोयलेसे दाँत मलनेमें कोई हानि नहीं है।

दाँतोंको बुरी तरह काममें न लाना चाहिये जैसे कड़ी सुपारीको तोड़ने अथवा किसी ऐसी चीज़के काटनेमें जिससे उन्हें हानि पहुँचे।

अधिक गरम और अधिक ठंडे पदार्थोंके खानेसे भी दाँत ख़राब हो जाते हैं। अधिक गरम पदार्थके खानेके बाद ही बहुत ठंडी चीज़का सेवन करलेना भी दाँतोंको हानि पहुँचाता है। दाँतों और मसूढ़ोंको पुष्ट और स्वस्थ बनानेमें खाद्योजों (विटामिन) का सेवन करना बड़ा लाभकारी होता है। उनकी वृद्धि और रक्षामें खाद्योज ३ और ४ बड़े उपयोगी होते हैं। खाद्य पदार्थोंमें इनकी न्यूनतासे दाँतोंकी शक्ति क्षीण होती है। खटिक लवण (calcium salts) भी दाँत और मसूढ़ोंको लाभप्रद होते हैं किन्तु ये लवण दूधमें पर्य्याप्त मात्रामें मौजूद होते हैं अतः दूध पीनेवालों को इन्हें अलगसे खानेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

स्वास्थ्यके लिये खाद्योज २, ३ और ४ का ग्रहण करना परमावश्यक है। ये शरीरकी वृद्धिमें तो सहायता करते ही हैं उसे अनेक रोगोंके आक्रमणसे भी बचाते हैं। इन खाद्योजोंके उपयोगसे दंतकृमि (caries) से दूषित मसूढ़ोंको अवश्य लाभ होता है। ये खाद्योज नारंगी (संतरा), नीबू और टमाटरमें पर्य्याप्त मात्रामें मौजूद होते हैं।

हमारी भोजन सामग्रीमें दूध, नीबू, संतरा, टमाटर आदिका उपयोग दाँतों और मसूढ़ोंकी तकलीफ़को दूर करता है और हमारे शरीरको आरोग्यता प्रदान करता है जिससे हमारी जीवन शक्ति बढ़ती है और जीवन आनंदमय बनता है।

अन्य वस्तु

कलकत्ता और दिल्लीकी एक फर्म ने लगभग एक लाख टन झाग पैदा करने वाला घोल तैयार किया है जिसे सरकार और जनता ने खरीद लिया है। तेलकी कई अन्य कम्पनियाँ भी शीघ्र ही यह घोल तैयार करेंगी।

२०० गैलन प्रतिदिन के हिसाबसे एक कम्पनी भिलांवा से तैयार होने वाला रोगन तथा तत्सम्बन्धी वस्तुएँ तैयार कर रही है। एक फर्म ने २,८०,००० वर्ग फीट शीशेका बदल बनाया है जिसमेंसे अधिकांश जनता को बेच दिया गया है। १६,००,००० वर्गफीट शीशेका बदल बनानेके लिए इस फर्मके पास एक मांग आयी है।

रेलगाड़ी नियंत्रण कार्यालय

[लेखक—श्रीयुत आनन्द मोहन बी० एस० सी०, कमरशियल सुपरिंटेंडेंट, ई० आई० आर०]

अधिकतर मनुष्योंको रेलवेके विषयमें बहुत ही कम जानकारी होती है। इसके सिवा कि स्टेशनसे टिकट लेकर गाड़ी पर चढ़ना होता है और फिर दूसरे स्टेशनपर उतर कर टिकट-बाबूको टिकट थमाकर बाहर चला जाना होता है, यात्रियोंको रेल सम्बन्धी कोई विशेष ज्ञान नहीं होता। यही कारण है कि बहुधा लोग रेलवेकी कठिनाइयोंको नहीं समझते और कोई असुविधा होनेपर उसके विषयमें कभी-कभी ऐसी कठोर बातें कहते हैं जो जानकारी होने पर वे न कहते।

कभी-कभी रेल यात्री देखते हैं कि उनकी गाड़ी स्टेशन पर काफी देरसे खड़ी है, एक दूसरी ट्रेन पीछेसे आती है आगे निकली चली जाती है और उसके भी काफी देर के पश्चात् उनकी गाड़ी आगे बढ़ती है। ऐसे अवसर पर यात्रियोंको स्वभाविक ही क्रोध आ जाता है और वे आवेशमें कहने लगते हैं, 'यह अच्छा रहा कि हम पहलेसे यहाँ पड़े हैं और दूसरे निकल गए' और स्टेशन मास्टरोंपर जाकर बिगड़ते हैं। उनका यह रोष उनके अज्ञानकी स्थितिमें कोई आश्चर्यजनक नहीं है। उन्हें क्या मालूम कि सब रेलगाड़ियोंका यह प्रबन्ध कि कौन कहाँ रुकेगी, कौन कहाँसे चलेगी, एक रेलवेके केन्द्रीय-कार्यालयमें बड़ी सावधानीसे ऐसे विशेषज्ञों द्वारा हो रहा है जो प्रति मिनट इस बातसे परिचित रहते हैं कि कौन गाड़ी कहाँ है। ये कार्यालयमें बैठे-बैठे टेलीफोन द्वारा प्रत्येक स्टेशनकी आवश्यकतानुसार आज्ञा देकर रेलगाड़ियोंके क्रमको इस प्रकार सुचारूरूपसे चला रहे हैं कि जिससे सब गाड़ियाँ अधिकसे अधिक नियमानुसार तथा अल्पसे अल्प अटकावके साथ अपने निर्दिष्ट स्थानोंको पहुँच जावें। इस कार्यालयको 'रेलगाड़ी नियन्त्रण कार्यालय' (control office) कहते हैं और इसके विषयमें पाठकोंको जानकारी प्राप्त कराना प्रस्तुत लेख का प्रयोजन है।

रेलगाड़ी नियंत्रण कार्यालय (control) के आयोजनके पहले रेलगाड़ियोंके क्रमके संचालनमें बहुत कठिनाई होती थी। सबसे आरंभिक प्रबन्ध-विधियोंमें सारी रेलवे लाइनको कई भागोंमें विभाजित किया जाता था। प्रत्येक भागमें कई स्टेशन होते थे। प्रत्येक स्टेशन पर सीधी लाइनके अतिरिक्त एक दूसरी लाइन भी होती थी जिसमें एक गाड़ीको रखकर दूसरी गाड़ी सीधी लाइनसे निकल सकती थी। इन स्टेशनोंको क्रासिंग स्टेशन (Crossing-Stations) कहते थे। यह नियम होता था कि दो क्रासिंग स्टेशन (Crossing Stations) के बीच कुछ देर गाड़ियाँ एक ओरको ही चलें और उसके बाद फिर दूसरी ओर को। तत्पश्चात् फिर पहली ओरको। अर्थात् इसी तरह हेर फेर करके कभी एक एक ओरको सब गाड़ियां चला दी जाती थी और कभी दूसरी ओर को। गार्डको यह कह दिया जाता था कि अगले क्रासिंग स्टेशन पहुँचकर और इस बातकी प्रतीक्षा करके कि उससे अगले क्रासिंग स्टेशन की ओर से आने वाली सब ट्रेनें आ चुकी हैं, तब वह अगले क्रासिंग स्टेशनके लिए बढ़े, और वहां पहुँचकर जो आज्ञा मिले उसके अनुसार काम करे। अधिकतर ट्रेनें एक समय-सूची (Time table) के अनुसार चलती थीं। उस समय-सूचीमें यह भी लिखा रहता था कि दोनों ओरकी गाड़ियां कहां एक दूसरेको क्रास (Cross) करेंगी और अधिक शीघ्रगामी ट्रेन मन्द गतिसे चलने वाली ट्रेनोंसे कहां निकलेगी। लेकिन समय-समय पर सूचीमें लिखे क्रमका बदला जाना ट्रेनोंके बिलम्ब होकर चलनेके कारण आवश्यक हो जाता था। जब ऐसा होता था तो इधर उधर के स्टेशनों या गार्डके ठीक-ठीक बात न समझनेके कारण कभी-कभी बड़ी दुर्घटनायें हो जाया करती थीं। बादमें इन दुर्घटनाओंको रोकनेके लिये ऐसे स्टेशन मास्टर नियत किये जाने लगे जो इंजिन चलाने वाले (drivers) को आज्ञा-पत्र (pass) लिखकर देते थे जिसके बिना हस्तगत हुए इंजिन चलाने वाले (drivers) एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन नहीं जा सकते थे। प्रत्येक ट्रेनको दिये हुए आज्ञा-पत्रमें यह भी लिखा जाता था कि उस ट्रेनको कहाँ और किस ट्रेनके लिए रुकना होगा।

इन आज्ञा-पत्रोंके फल स्वरूप जहां एक ओर

ट्रेनोंकी दुर्घटनायें कम हो गईं, दूसरी ओर रेल गाड़ियोंका अनावश्यक इधर-उधर रुक जाना भी बन्द होगया। क्योंकि ज्योंही रेलगाड़ियोंको कहीं विलम्ब होजानेके कारण पहलेसे नियत किया हुआ क्रम बदलना पड़ता, त्योंही स्टेशन मास्टर अपने मनमाना तय करते कि किस गाड़ीको चलने दें और किसको नहीं। अब प्रत्येक स्टेशन-मास्टरको तो यह पूरा पता होता नहीं था कि कौन रेलगाड़ियां किस समय पर कहां-कहां होगी और गाड़ीको रोकनेका फल दूसरी गाड़ियों पर क्या पड़ेगा। इस लिए उपरोक्त संचालन विधिमें भी प्रायः कुछका कुछ हो जाया करता था। उदाहरणार्थ, किसी स्टेशन-मास्टरने अपने स्टेशनसे दूसरे स्टेशनकी एक मालगाड़ी चला दी जिसकी मन्द-गतिके कारण एक द्रुतगामी डाक गाड़ीको दो स्टेशन पर रुकना पड़ा। इस तरहसे रेलोंके निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचनेमें बहुत बाधा पड़ती थी और किसी गाड़ीको कहीं निश्चित समयपर पहुँचना असंभव हो जाता था।

इसलिए सुधार स्वरूप इसकी आवश्यकता पड़ी कि एक ऐसा कार्यालय बनवाया जाय जहाँसे बैठे-बैठे एक केन्द्रीय कर्मचारी अपनी नियत सीमाके अन्दर चलने वाली गाड़ियोंके क्रमसे पूर्ण रूपसे हर समय परिचित हो और जिसकी आज्ञाके विरुद्ध कोई स्टेशन-मास्टर किसी गाड़ीको न चला सके। इस प्रकार 'रेल नियंत्रण-कार्यालयकी नीव पड़ी।

आरंभमें इस कार्यालयका काम तार द्वारा किया जाता था, परन्तु तारोंके पहुँचनेमें देरी होजानेके कारण यह काम तार द्वारा सुचारु-रूपसे न चल सका। इस कार्यालयका काम ठीक-ठीक तभी हुआ, जबकि यहाँका काम टेलीफ़ोन द्वारा होने लगा और जिसके द्वारा यह सम्भव हो सका कि नियंत्रण-कार्यालयका कर्मचारी एक ही स्थान पर बैठे-बैठे जिससे चाहे उस स्टेशन-मास्टरसे वार्तालाप कर सके, खबरें ले, आज्ञायें दे तथा जो स्टेशन मास्टर चाहे वह नियंत्रण कार्यालयके कर्मचारीसे वार्तालाप कर सके।

इस नियंत्रण कार्यालय में एक 'नियंत्रण-कर्मचारी (controller) होता है जिसको टेलीफोन द्वारा उसके नियंत्रणकी नियत सीमाके अन्दर जितने स्टेशन हैं उन सब की पूरी ख़बर मिलती रहती है। उसके कानोंपर सर्वदा टेलीफ़ोनका चोंगा और मुँहके सामने 'भोंपू' लगा रहता है। यह टेलीफोन (चोंगा और भोंपू) उन मुख्य तारोंसे जुड़ा रहता है जिनसे नियत स्टेशनोंके टेलीफ़ोनके तार समानान्तर लड़ियों (In Parallel) में जुड़े रहते हैं। इस कर्मचारीके पास एक बड़ा बक्स रक्खा रहता है जिस पर हर स्टेशनका नाम लिखा रहता है और प्रत्येक नामके नीचे एक-एक चाबी रहती है। इस चाबीको घुमाकर छोड़ देनेसे जिस स्टेशनके नामकी यह चाबी होती है उस स्टेशन पर एक घंटी बोलती है। इस घंटीको सुनकर वहांका स्टेशन-मास्टर टेलीफ़ोनके चोंगेको कानपर लगा लेता है और भोंपू उठाकर उसमें बोलता है और नियंत्रण कर्मचारीसे इनके द्वारा वार्तालाप करता है। लेकिन जब कोई स्टेशन-मास्टर अपने आप ही नियंत्रण कर्मचारीसे बात करना चाहता है तब उसे सिर्फ़ टेलीफ़ोनके भोंपूमें बोलने भरकी देरी होती है क्योंकि नियंत्रण-कर्मचारीके कान पर तो हर समय ही चोंगा लगा रहता है। जो भी उससे बोले वह उसकी बात सुन सकता है।

'रेल-नियंत्रण-कार्यालय' का उपयोग बढ़ता ही जाता है और धीरे-धीरे उसके द्वारा रेलवेके अधिकसे अधिक काम किए जाने लगे हैं। आजकल उसके द्वारा कार्यालयमें अधिकतर निम्न लिखित काम किए जाते हैं:—

(१) नियंत्रण कर्मचारीका काम है कि उसके विभागमें जितनी ट्रेनें चल रही हों, उनपर पूरा ध्यान रक्खे। यह काम एक ग्राफ़ पेपर पर खींचे हुए एक चार्ट द्वारा वह करता है। इस ग्राफ़ में स्टेशन ऊपर नीचे (vertically) और समय दायें बायें (horizontally) दिखाया जाता है। जब गाड़ी किसी स्टेशन पर पहुँचती है तो उस ग्राफ़ पर ऐसे स्थान पर एक बिन्दु लगा दिया जाता है जिससे यह ज्ञात होता है कि अमुक स्थान पर अमुक समय पर वह गाड़ी पहुँचेगी। इसी तरह गाड़ीके उस स्थानसे चल देनेके लिए दूसरा बिन्दु लगाया जाता है। इसीसे ज्यों ज्यों गाड़ी आगे बढ़ती है त्यों त्यों बिन्दु लगते जाते हैं। और इन बिन्दुओंको रेखा द्वारा मिला दिया जाता है जिससे उस गाड़ीकी गति काग़ज़पर साफ़-साफ़ दिखाई पड़ती है। इसी तरहसे अन्य गाड़ियोंके क्रमोंको भी इसी ग्राफ़में

रेखा द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। नीचे बने चित्रसे इस ग्राफका आशय दिखाई पड़ेगा।

उपरोक्त ग्राफ़से नियंत्रण-कर्मचारीको रेल गाड़ियोंके
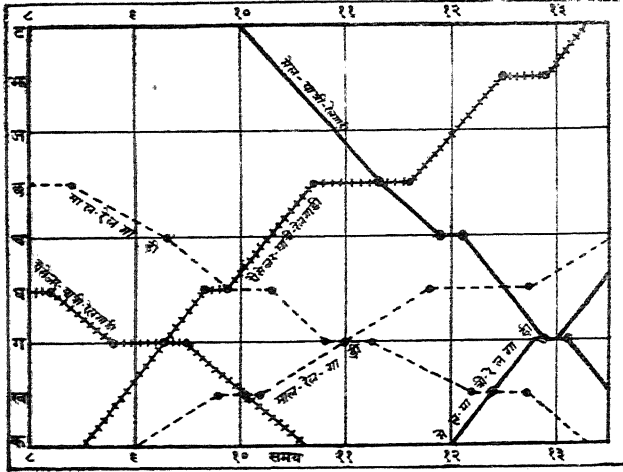
विषयमें आज्ञा देनेमें बड़ी सहायता मिलती है। क्योंकि रेखाओं द्वारा उसे साफ़-साफ़ दिखाई देता है कि गाड़ियोंका गति-क्रम किस प्रकार हो रहा है—कौन-कौन गाड़ियाँ अमुक समय पर कहाँ होगी और किन गाड़ियोंको कहां क्रास (cross) करना उचित होगा जिससे कि अधिकसे अधिक लाभ प्राप्त हो सके। हरेक स्टेशन जो-जो गाड़ी वहांसे गुज़रती है उसके पहुँचने और चल देनेका समय नियंत्रण कर्मचारीको तत्काल सूचित करता रहता है जिससे कि ग्राफ हर समय सब गाड़ियोंकी स्थिति ठीक-ठीक दिखा सकें। नियंत्रण-कर्मचारी अपनी आज्ञायें इस प्रकारसे देता है जिससे सब गाड़ियाँ जहां तक हो सके अपने निर्धारित क्रमसे चल सकें। नियंत्रण-कर्मचारी इसपर विशेष ध्यान रखता है कि मुख्य-मुख्य गाड़ियोंको तो कमसे कम अपने क्रमसे न हटना पड़े लेकिन कभी-कभी किसी मुख्य गाड़ीको यदि थोड़ा सा रोकनेसे एक साधारण रेलगाड़ीको बहुत अधिक देरी होनेसे बचाया जा सके तो वही करेगा! संक्षेप में नियंत्रण कर्मचारी किसी ख़ास बँधे हुए नियम पर चलनेको बाध्य नहीं है वरन् जैसे-जैसे स्थिति बदलती जावे उसके अनुसार वह आज्ञायें देता है।

(२) नियंत्रण-कर्मचारीका यह भी कार्य है कि अपने नियत सीमामें सब मालके डिब्बों (goodsstock) के ऊपर पूर्ण-रूपसे ध्यान रक्खे जिससे ये डिब्बे 'यार्ड' में अधिक देर तक बेकार पड़े न रह जावें। उसका यह काम है कि 'यार्ड' मास्टरोंसे कहता रहे कि वे अपने यहां आये हुए मालके डिब्बोंको शीघ्रसे शीघ्र अपने निर्दिष्ट स्थानोंकी ओर बढ़ायें। कई ओरसे मालके डिब्बोंकी रेलगाड़ियां बड़े-बड़े 'यार्डों'में आती है, जहां उनको अलग करके एक तरफ़ के जाने वाले डिब्बोंको एक जगह जमा किया जाता है और दूसरी तरफ़के डिब्बों-को दूसरी जगह। तब एक ही तरफ़ जानेवाले साठ साठ या सत्तर-सत्तर डिब्बों को मिलाकर रेलगाड़ी बनाकर आगे चला दी जाती है। नियंत्रण-कर्मचारियोंको देखते रहना चाहिए कि यह काम 'यार्ड मास्टर' शीघ्रतासे कर रहे हैं या नहीं और यार्डों में मालके डिब्बोंका जमघट तो नहीं हो रहा है। चूँकि यात्री-रेलगाड़ियों' को रास्ता देनेके लिए मालकी रेलगाड़ियों को तो रुकना पड़ता ही है इसलिए यात्री-रेलगाड़ियां जिस समय अधिक होती हैं उस समय मालकी रेलगाड़ियोंको शीघ्रतासे चलनेका मौका नहीं मिलता। इसलिए नियंत्रण कर्मचारी यार्ड-मास्टरोंको मालकी रेलगाड़ियोंको चलानेके लिए ऐसे समय नियत कर देता है जिनपर चलकर उन्हें यात्री-रेलगाड़ियोंके कारण कम से कम रुकना पड़े और वे अधिकसे अधिक तीव्र गतिसे और बिना अधिक रुकावटके आगे बढ़ती चली जावें।

(३) नियंत्रण-कर्मचारीको इंजिनोंके ठीक-ठीक उपयोगका भी ध्यान रखना पड़ता है। एक इंजिनको किसी ख़ास समयके लिए तैयार होनेके लिए कमसे कम चार-पांच घंटेकी सूचना देनी पड़ती है। इसलिए नियन्त्रण कर्मचारी को अपनी मालगाड़ियोंके चलानेके समय पहलेसे नियत करने पड़ते हैं जिससे कि इंजिन ठीक समयपर तैयार रहें और तैयार होनेके बाद उनको बेकार भी न खड़ा रहना पड़े। प्रति घण्टे एक तैयार इंजिनपर बड़ा ख़र्च होता है। इसके अलावा इंजिन चलानेवाले यदि काम पर बुला लिये गये पर ख़ाली रहे या बुलानेके बाद रेलगाड़ियोंके न चलनेके कारण फिर वापिस कर दिये गये, तो फिर बिना नियम-बद्ध घंटे

आराम किये हुये वे लोग दुबारा कार्यके लिए नहीं बुलाये जा सकते।

(४) नियंत्रण-कर्मचारीका यह भी काम है कि गार्डके डिब्बे (ब्रेक) एक स्थानसे दूसरे स्थान को जैसी आवश्यकता हो पहुंचा दिये जायं। मालगाड़ियोंके गार्डके डिब्बे अकसर कम रहते हैं। दूसरे कभी एक ओर जानेवाली रेलगाड़ियोंकी अधिक... और कभी न्यूनताके कारण कहीं ... हैं। इस कारण यह ब्रेक अधिक और कहीं पर कम हो ... अलग-आवश्यकता होती है कि उनको आवश्यकतानुसार ... अलग स्थानों पर फैला दिया जाय। यह काम नियन्त्रण-कर्मचारी द्वारा भली-भांति हो सकता है क्योंकि उसको सब स्थानोंकी स्थितिका हाल एक साथ ज्ञात रहता है कि कहां कितने ब्रेक हैं और कितने होने चाहिये। यदि यह काम जगह-जगहके स्टेशन-मास्टरों पर छोड़ दिया जाय, तो प्रत्येक स्टेशन-मास्टर अपनी ही सोचता है और जहां एक जगह ...गार्डके डिब्बे (Brakes) बेकार पड़े रहते हैं उसी समय दूसरी जगह ... डिब्बों की कमीके कारण रेलगाड़ियों का नियत समय पर चल सकना ... तक कठिन हो जाता है।

(५) चूँकि नियन्त्रण-कर्मचारीको हर... ट्रेनकी गति हर समय मालूम होती रहती है इसलिये यदि कहीं किसी कारणसे कोई गाड़ी अधिक देरतक खड़ी हो जाती है तो तत्काल वह अपने चार्टपर उस देरीका कारण मालूम करके लेखबद्ध कर लेता है। जिससे आगे जब गाड़ीके देर होनेके कारणको ठीकसे मालूम किया जाता है और जिनका अपराध होता है उनसे सफ़ाई मांगी जाती है, तब चार्टमें लिखी हुई टिप्पणीसे अपराधके लिये उत्तरदायित्वको निर्णय करनेमें बहुत सहायता मिलती है। नियन्त्रण कर्मचारी की तात्कालिक दी हुई सफाई प्रायः ठीक होती है क्योंकि उस समय हड़बड़ीमें अपराधी अपने बचावका कारण नहीं सोच सकता और दूसरा कोई ऐसा झूठ नहीं बोल सकता जो कि सरलतासे पकड़ा न जा सके। इसके विपरीत अवकाश मिलने पर प्रायः अधिकारी तरह-तरहके बचाव के लिये बात बनाते हैं। ऐसी स्थितिमें यदि आरंभकी दी हुई सफ़ाई मौजूद हो तो बादकी बनाई हुई नकली बातको पकड़नेमें अधिक देर न लगेगी।

(६) नियन्त्रण कर्मचारी ...को रेलगाड़ियोंका एक दूसरे से क्रास (Cross) करते समय इस बातका ध्यान भी रखना पड़ता है कि कहीं किसी स्टेशनको सब लाइनें एक साथ न घिर जावें क्योंकि ऐसा हो जायगा तो आगे या पीछेसे किसी रेलगाड़ीको चाहे वह कितनी ही मुख्य क्यों न हो, आगे निकलनेका रास्ता नहीं मिल सकेगा। इसलिये नियन्त्रण-कर्मचारीको सदा यह ध्यानमें रखना चाहिये कि किसी स्टेशनकी सब लाइनें एक साथ न घिर जावें और कमसे कम एक लाइन खाली रहे। यह काम नियन्त्रण-कर्मचारी द्वारा ही ठीक-ठीक हो सकता है। पहले जब ...त्रण-कार्यालय का उपयोग नहीं ... था तब इस कार्यमें बड़ी कठिनाई होती थी। स्टेशनोंको पता नहीं होता था कि कौनसी गाड़ी कहां पर है। विशेष कर उस समय जबकि मुख्य यात्रीगाड़ियां (Passenger trains) विलम्ब करके चल रही हों। ऐसे समयमें प्रायः ऐसा होता था कि कोई-कोई स्टेशन अपनी सब लाइनें भर लेते थे जिसके बाद कभी-कभी मुख्य गाड़ियों तकको कहीं-कहीं बहुत ठहरना पड़ जाता था। क्योंकि जबतक कमसे कम एक गाड़ी वहांसे चलकर दूसरे स्टेशन तक न पहुंच जावे तबतक कोई भी गाड़ी उस स्टेशनमें या उस स्टेशनसे आगे नहीं बढ़ सकती।

(७) इंजीनियरिंग महकमे (Engineering Depts) को लाइन ठीक करनेके लिये समय निश्चित करनेका काम भी नियन्त्रण कर्मचारी द्वारा किया जाता है। लाइन ठीक करनेके लिये जब कई घंटेकी आवश्यकता होती है तब यदि बीचबीचमें रेलगाड़ियां उसी स्थान पर आती रहें तो काम करने वालोंको रेलगाड़ियोंके आनेके बीच-बीचमें बहुत कम समय लाइनको ठीक करनेके लिये मिलता है। ऐसा भी नहीं किया जा सकता कि जब लाइन ठीक करनेका काम चल रहा हो तो उस स्थानके इधर-उधर सब रेलगाड़ियाँ रोक ली जावें। ऐसा होनेसे उस स्थानके आस-पासके स्टेशनोंकी सब लाइनोंके घिर जानेका डर होता है और यदि ऐसा न भी हो तो जगह-जगह गाड़ियोंके खड़ी हो जानेसे इंजिनोंमें कोयला व्यर्थ जलता रहता है और इंजिन चलाने वाले और गार्ड थकते रहते हैं। इसके अतिरिक्त जब लाइन ठीक करनेका काम समाप्त

हो जाता है तब रुकी हुई गाड़ियोंके एकके पीछे एक चलाने से बहुत समयके पश्चात् कहीं सब रुकी गाड़ियोंका चलना आरंभ होगा और तब साधारण स्थिति होगी। परन्तु नियन्त्रण-कर्मचारी द्वारा यह काम बहुत सहूलियत से हो सकता है। जब कभी यह काफ़ी समयके लिये आवश्यक हो जाता है कि उस स्थानपर कमसे कम रेलगाड़ियां गुज़रें, तब नियन्त्रण-कर्मचारी उस स्थानके चारों ओर जो बड़े-बड़े यार्ड होते हैं जहाँसे कि रेलगाड़ियां बना-बना कर चलाई जाती हैं वहाँसे गाड़ियोंको ऐसे समय पर चलानेका प्रबन्ध करता है जिसपर चलकर वे गाड़ियां लाइन ठीक होनेके स्थानसे या तो पहले ही निकल जाती हैं या बादमें निकलती है परन्तु उनको कहीं घंटों खड़ा नहीं रहना पड़ता। यह मान लिया कि यार्डोंसे देर करके चलानेके फलस्वरुप मालके डिब्बोंको यार्ड में ही घंटों खड़ा रहना पड़े परन्तु यह अधिक उपयोगी है बनिस्बत इसके कि यार्ड से तो रेलगाड़ियाँ चल पड़े पर आगे स्टेशनों पर जाकर घंटों खड़ी रहें। यार्डोंमें प्रायः इतनी जगह होती है कि दो-चार घंटे उनमें रेल-गाड़ियाँ आती रहें पर वहांसे गाड़ियों का निकास न हो। इसलिये दो-चार घंटे रेलगाड़ियोंको वहांसे चलनेमें विलम्ब होनेका असर उनपर विशेष नहीं पड़ता। साथ ही इंजिनों में बेकार कोयला ख़र्च नहीं होता न इंजिन ड्राइवरों और गार्डोंको ही रास्तेमें पड़ा रहना पड़ता है।

(८) नियन्त्रण-कर्मचारी लाइनके नीचे बिछानेके लिये पत्थर ढोकर ले जानेवाली गाड़ी (Ballast train) के चलनेमें भी बहुत उपकारी होता है। ये गाड़ियाँ इंजीनियरिंग महकमेकी ओरसे चलती है और इनको स्थान-स्थान पर दो स्टेशनोंके बीच लाइन पर जहां आवश्य-कता हो खड़े होकर लाइनके नीचे बिछानेका पत्थर उतारना पड़ता है जिससे कि ये पत्थर के नीचे बिछानेके काममें लाया जा सके। इस कामको करनेके लिये इन गाड़ियोंको स्टेशनोंके बीच काफ़ी देर तक खड़ा रहना पड़ता है और जबतक वे वहां रहती हैं तबतक उस लाइन परसे कोई दूसरी गाड़ी निकल नहीं सकती। इसलिये नियन्त्रण-कर्मचारी सब ट्रेनोंके समय देखकरके उनके बीचमें कितना समय मिल सकेगा इसका उचित ध्यान करके पत्थर ढोनेवाली गाड़ी के गार्डको एक कार्य-क्रम बनाकर देता है कि अमुक अमुक समय पर अमुक-अमुक स्टेशनोंके बीचमें वह गाड़ी काम कर सकती है। इसी कार्य-क्रमके अनुसार पत्थर ढोनेवाली गाड़ी का गार्ड अपना काम कर सकता है। यदि नियन्त्रण-कर्मचारीकी विधि न हो और रेलगाड़ियां जैसे चाहे वैसे चलती रहें तो पत्थर ढोनेवाली गाड़ी को अपना काम निपटानेमें बहुत कठिनता होगी और यदि पत्थर ढोनेवाली गाड़ी के गार्ड के ऊपर ही यह कार्य छोड़ दिया जाय कि वह अपना काम समाप्त करके मार्ग साफ़ करनेके लिये शीघ्र किसी स्टेशन पर चला जावे तो प्रायः यही होगा कि कई ज़रूरी गाड़ियोंको पत्थर-गाड़ी के अपना काम समाप्त करके हट जाने तकके लिये बाट देखनी होगी।

(६) जगह-जगहके स्टेशनोंसे माल लादकर निर्दिष्ट स्थानपर पहुँचानेमें कमसे कम मालके डिब्बोका उपयोग हो इसका प्रबन्ध भी नियन्त्रण-कर्मचारी द्वारा भली-भांति हो सकता है। सब स्टेशन टेलीफोन द्वारा नियन्त्रण-कर्मचारीको बतला देते हैं कि वहांसे कितना-कितना मन माल कहाँ-कहाँके लिये लादना है। जहां काफ़ी माल लादना होता है वहां नियन्त्रण-कर्मचारी आज्ञा देता है कि वह स्टेशन मालको अपनी अलग पूरी गाड़ीमें भरकर और बन्द करके रखले जिससे कि वह गाड़ी सीधी मालकी गाड़ी (worktrain) में जुड़ सके। जहां कम लादना होता है वहां यह कह दिया जाता है कि जब-जब इस कामके लिये नियत रेलगाड़ियां (Van goods train) आवें, तो ऐसा माल उन डिब्बोंमें लाद दिया जावे जिसमें कई जगहका माल लदा होता है और गार्ड द्वारा उतरता चढ़ता रहता है। इस तरहसे थोड़ेसे ही डिब्बोंमें बहुतसे स्टेशनोंका माल चला जाता है। यदि ऐसा प्रबन्ध न होता और प्रत्येक स्टेशनको अपने थोड़े बहुत माल भेजनेके लिये मन चाहे और जिधरको चाहे गाड़ी लादकर बन्द करके भेजनेकी छूट होती, तो बहुतसे डिब्बोंकी आवश्यकता होती।

(१०) नियन्त्रण-कार्यालयका उपयोग कर्मचारियोंके बीमार होने या छुट्टीपर जानेमें और उनकी जगह दूसरे मनुष्योंको काम करनेके लिये ठीक समय भिजवानेके काममें

भी बहुत होता है । जो कर्मचारी बीमार हो जाते हैं उनकी ख़बर टेलीफोन द्वारा कार्यालयमें आजाती है । सब स्थानोंकी आवश्यकताओंके ज्ञात होने पर छुट्टी और बीमारीके समय काम आनेवाले ख़ाली कर्मचारियों (Relieving staff) का ठीक प्रकार आवश्यकतानुसार व्यवहार किया जाता है । इसके साथ ही जिस कर्मचारीको छुट्टी पर जानेके लिये आज्ञा-पत्र (pass) इत्यादिकी आवश्यकता होती है, टेलीफोन द्वारा ज्ञात होने पर उसका आज्ञा-पत्र भी जल्दी भिजवा दिया जाता हैं ।

(८) अब हम यह वर्णन करेंगे कि टेलीफोन द्वारा नियन्त्रण किस प्रकार किया जाता है, किस प्रकार नियन्त्रण-कर्मचारी की ध्वनि स्टेशन पहुंचती है, किस प्रकार स्टेशन-मास्टरको टेलीफोन पर बात करनेके लिये बुलाया जाता है. इस काममें जो यंत्र काम आता है उसको दो भागोंमें बांट सकते हैं (१) ध्वनि-यन्त्र (Speaking apparatus) (२) और घंटी यन्त्र (Ringing apparatus) । चित्रके लिये प्रकरण १३ देखिये ।

(९) ध्वनि-यन्त्र के द्वारा एक तरफ़से बोली हुई बात चीत विद्युत शक्ति द्वारा दूसरे स्थानपर पहुंचकर फिर पहली ही ध्वनिकी तरह बन जाती है और वहां वालोंको ऐसी सुनाई देती है मानों आमने-सामने बैठे हुए मनुष्यकी बात सुन रहे हों। यह ध्वनि-यन्त्र अपने हुक परसे उठा लिया जाता है तो इस उठानेके कार्य द्वारा ही विद्युत् शक्ति प्रेरक कुंडली (Induction coil) के एकतारमें से बहने लगती है जो तार और ध्वनि-यन्त्र एक ही बिजलीकी लड़ (in series) में है । जब ध्वनि-यन्त्रमें बोलते हैं तो मुंहसे निकली हुई ध्वनि उसके अन्दर लगे हुए पर्दे (diaphragm) पर टकराकर उसमें लहरें उत्पन्न कर देती है । उन लहरोंके फल-स्वरूप पर्दा स्पन्दन करने लगता है और पर्देके अन्दर वाले कोयलेका बुरादा दबने और ढीला होने लगता है । इसके फल-स्वरुप उस ध्वनि-यन्त्रकी विद्युत-रुकावट-शक्ति (Resistance) घटती बढ़ती है । इस कारण प्रेरक कुंडली के प्रथम तारमें जो विद्युत बह रही है उसकी शक्ति भी घटती बढ़ती है । इस विद्युत्‌के घटने-बढ़नेके कारण इसके तारमें बहुत ही सूक्ष्म विद्युत्‌की लहरें (Short-waves) उत्पन्न होने लगती हैं । यह लहरें तार द्वारा दूर-दूर तक चली जाती हैं । इन दूर-दूर जानेवाली तारकी लाइनमें दो तार होते हैं । एक विद्युत्‌को ले जानेके लिये और दूसरा उसको वापिस लानेके लिये । इन तारोंसे जगह-जगह स्टेशन-के टेलीफोनोंके दोनों तार (एक-एकमें और दूसरे-दूसरेमें) समानान्तर लड़ियों (In parallel) में जुड़े होते हैं जिसके फल-स्वरूप मुख्य तारोंमें बहता हुआ विद्युत् किसी भी टेलीफोनमें लाया जा सकता है यदि चोंगे (Receiver) को उठाकर कानमें लगा लिया जाय । यह स्पष्ट है कि जो लहरें उन तारोंमें बहती हुई विद्युत्‌में होंगी वे भी साथ ही साथ उस स्टेशनके टेलीफोनमें आ जायेंगी और उसके चोंगेकी विद्युत्-रुकावट-शक्ति (Resistance) में कमी-बेशी करेंगी जिसके फल-स्वरुप चोंगे (Receiver) का पर्दा भी हिलता है और भेजी हुई ध्वनिके समान यहां भी ध्वनि पैदा हो जायेगी अर्थात् बातचीत ठीक-ठीक सुनाई देने लगेगी । इसी तरह सब टेलीफोन जो उन्हीं दो मुख्य तारोंसे जुड़े होते हैं उन मुख्य तारोंमें बहते हुए विद्युत् लहरोंसे प्रभावित हो सकते हैं, और इस प्रकार मुख्य तारोंमें जो ध्वनि विद्युत्‌के लहरों द्वारा जारही है उसको वे सब स्टेशन सुन सकते हैं यदि वहांके स्टेशन-मास्टर अपने-अपने चोंगे उठाकर कानोंपर लगालें । इस यंत्र द्वारा एक दफ़ेमें केवल दो ही मनुष्य बात कर सकते हैं क्योंकि मुख्य तार सिर्फ़ दो ही हैं । लेकिन कोई भी और कितने ही स्टेशन-कर्मचारी अपने अपने चोंगे उठाकर सुन सकते हैं कि कौन और क्या बातें कर रहे हैं । नियन्त्रण-कर्मचारी तो हर समय ही चोंगे (Receiver) को अपने कानोंपर रखता है इसलिये वह हर समय सुन सकता है । कोई स्टेशन अपना टेलीफोन उठाकर नियन्त्रण-कर्मचारीसे बातें कर सकता है । लेकिन सवाल अब यह रह गया कि अगर नियन्त्रण-कर्मचारी किसी स्टेशनसे बात करना चाहता है तो वह उस स्टेशनसे किस प्रकार कहे कि उसकी बात टेलीफोन उठाकर सुनी जाय । क्योंकि मुख्य तार सिर्फ दो ही होनेके कारण मामूली टेलीफोनकी घंटी बजानेसे काम नहीं चलेगा क्योंकि वह सब स्टेशनों पर एक साथ बज पड़ेगी

और सब स्टेशन बोलने लगेंगे। आवश्यकता यह है कि ऐसा प्रबन्ध होना चाहिये कि नियन्त्रण-कर्मचारी जिस स्टेशनसे बात करना चाहे उसे ही बुला सके, उसी स्टेशन पर घंटी बजे, और दूसरे स्टेशनोंको इसकी खबर न हो। इस कामके लिये एक अलग यंत्र (apparatus) जिसको घंटी-यन्त्र (Ringing apparatus) कहते हैं काममें लाया जाता है।

(१०) घंटी-यंत्र—नियंत्रण-कार्यालयमें प्रत्येक नियन्त्रण कर्मचारीके पास एक बक्स (जिसका कुछ विवरण छटे प्रकरणमें दे चुके हैं) होता है जिसमें उसके मुख्य तारोंसे सम्बन्धित प्रत्येक स्टेशनके लिये एक चाबी लगी रहती है। प्रत्येक चाबीका प्रयोजन यह है कि उसके द्वारा जिस स्टेशन के लिये वह नियुक्त है उसपर जब नियन्त्रण-कर्मचारी चाहे तब घंटी बज जाय। चाबीको घुमाकर छोड़ देना पड़ता है। छोड़ देनेसे चाबी अपनी प्रथम अवस्थामें लौट आती है और लौटते समय विशेष निर्धारित लहरें पैदा कर देती हैं। ये लहरें मुख्य तारों पर दौड़ जाती हैं परन्तु उनसे केवल विशेष स्टेशनका घंटी-यंत्र प्रभावित होगा जो इन लहरोंकी गतिसे सम्बन्धित है और वही घंटी बजेगी।

(११) प्रत्येक स्टेशनके घंटी-यंत्रमें दो भाग होते हैं:—(Selector) जिसके द्वारा नियंत्रण-कर्मचारीकी घुमाई हुई चाबीसे पैदा होनेवाली लहरें इच्छानुसार स्टेशनको प्रभावित कर सकें, (२) घंटी (Bell) जिससे उन लहरोंके कारण घंटी बजे।

(१२) प्रथम भाग में विशेष तौर पर दो विजली-चुंबक (Electromagnets) होते हैं। प्रत्येक विजली-चुम्बकसे एक तारका घेरा (armature) घूमता है। इस तारके घेरेके द्वारा एक टेकन (Lever and pawl) चलता है जिसके चलाने से एक दांतदार पहिया जिसमें एक स्पर्श (contact) लगा होता है, घूमता है। इस पहियेमें एक हल्की कमानी (Spring) होती है जिसके ज़ोरसे वह पहिया अपनी एक विशेष नियत स्थिति तक घूमकर फौरन लौट जाता है ज्योंही उस पहियेको आगे चलानेवाला टेकन (Lever) और (pawl) उससे हट जाय और पहिया उससे स्वतन्त्र हो जाय।

[illegible]क्त दो विजली-चुंबकोंमें से एक विजली-चुम्बक उपर[illegible] (Slow-acting) होता है। यह प्रत्येक मन्द गतिवाला [illegible] लहरोंसे प्रभावित नहीं होता, बल्कि अलग-अलग विजलीको [illegible] रहती हैं तबतक उठा हुआ जबतक विजलीकी लहरें आत[illegible] इस तरहसे जकड़ा रहता है। इसके द्वारा दांतदार पहिय[illegible] [illegible]प सकता है रहता है कि वह एक तरफको [illegible] घू[illegible] [illegible]रको घूमकर परन्तु हल्के स्प्रिंगके होते हुये भी दूसरी [illegible] [illegible] सकता अपनी विशेष नियत स्थितिको लौटकर नहीं [illegible] [illegible]ंबक जबतक कि मन्द-गति (Slow acting) विजली [illegible] अपनी उठी हुई स्थितिसे वापिस नहीं चला जाता, [illegible] जबतक कि बिजलीकी लहरोंका आना बन्द नहीं हो जाता।

दूसरा चुम्बक तीक्ष्ण गतिवाला (Quick acting) होता है। यह प्रत्येक लहरसे प्रभावित होता है और इसके तारके घेरे (Armature) में लगा हुआ टेकन दांतदार पहियेको प्रत्येक लहरके आनेपर एक दांत आगेको बढ़ा देता है। दांतदार पहियेमें जो (Contact) लगा होता है वह ऐसी स्थितिमें लगा दिया जाता है कि उसमें निर्धारित लहरोंके बाद एक विजलीकी घंटीका चक्कर पूरा हो जाता है और विजलीकी घंटी बजने लग जाती है। हर स्टेशनके घंटी-यन्त्रके (Contact) को ऐसी थितिमें लगा दिया जाता है कि वह विजलीकी घंटीके चक्करको उतने ही लहरों द्वारा पूरा कर सके जितनीकी उस स्टेशनको बुलानेके लिये नियन्त्रण कार्यालयमें नियत चाबी (Key) से भेजी जानेका प्रबन्ध हो। उदाहरणार्थ, यदि पांचवे स्टेशनके लिये नियत चाबीमें पांच लहरें भेजनेका प्रबन्ध हो तो उस स्टेशनके घंटी-यन्त्रके के पहियेके (Contact) को ऐसी स्थितिमें रखेंगे कि वह पांच लहरोंके बाद घंटीका चक्कर पूरा करदे और घंटी बजने लगे।

जब नियन्त्रण-कार्यालयकी चाबीका घूमना बन्द हो जाता है तब विजलीकी लहरोंका जाना बंद हो जाता है और मंद-गतिवाला विजली-चुम्बकके तारका घेरा उठी हुई स्थितिसे वापिस चला जाता है और दांतदार पहिया भी अपनी पूर्व नियत स्थितिको घूमकर वापिस चला जाता है। तब घंटीका बजना भी बन्द हो जाता है।

यह तो अब सरलतासे ज्ञात हो जायगा कि जब किसी स्टेशनको बुलानेके लिये उसकी नियत चाबी घुमाई जायगी तो केवल उसी स्टेशनकी घंटी बजेगी क्योंकि और स्टेशनोंके घंटी-यंत्रोंमें चाबी घुमानेसे उनकी घंटी बजानेके लिये आवश्यक लहरोंसे या तो अधिक या कम लहरें पहुँचेगी और उनकी घंटीका चक्कर पूरा न हो सकेगा। यदि कम लहरें पहुँचती हैं तब तो दांतदार पहियोंका स्पर्श (Contact) चक्कर पूरा करनेकी स्थिति को पहुँच ही नहीं पाता और यदि आवश्यकतासे अधिक लहरें पहुँचती हैं तो स्पर्श चक्कर पूरा करनेकी स्थिति पर रुक नहीं पाता और आगे बढ़ जाता है जिससे घण्टी बजनेका समय नहीं मिलता।

स्टेशनोंके घन्टी-यन्त्रमें एक दूसरा स्पर्श भी रहता है जो घन्टीका चक्कर पूरा कर देता है यदि दांतदार पहियेको इतनी लहरें पहुँचे कि वह एक बार घूम जाय और नियन्त्रण-कार्यालयमें एक विशेष चाबी (Special key) ऐसी रहती है जिसके घुमानेमें इतनी लहरें पहुँचती है जो हर स्टेशनके दांतदार पहियों (जिनमें बराबर ही दांते होते हैं) को एक बार एक पूरा घुमा दे। इस प्रबन्ध द्वारा नियन्त्रण-कर्मचारी जब चाहता है तब विशेष चाबी को एक दफे घुमाकर अपने अधीन सब स्टेशनोंको एक साथ बुला सकता है।

(१३) उपर्युक्त वर्णन को चित्र द्वारा दिखलानेके लिये एक सरल चित्र दिया जाता है। इसमें बोलने और सुननेके कार्यके लिये (Direct Current) से ही काम लिया जाता है पर आजकल थोड़ासा अन्तर करके (Alternating Current) ही अधिकतर काममें लाई जाती है जिससे मुख्यतर निम्नलिखित लाभ होते हैं: —

(१) स्टेशनको बुलानेमें शीघ्रता।

(२) मुख्य तारोंपर अधिक स्टेशनोंसे कामका हो सकना।

(३) स्टेशनोंके घन्टी-यन्त्रोंमें प्रेरित लहरों (Induced Currents) द्वारा ख़राबियोंका कम हो जाना।

(१४) उपरोक्त चित्रमें चाबी 'आ' के घुमानेसे एक स्थानीय बिजली चक्कर द्वारा 'इ' बिजली-चुम्बक (Electromagnet) प्रभावित होता है और जैसे-जैसे चाबीके दांतों द्वारा इस चक्करका स्पर्श जुड़ता या छूटता है 'इ' बिजली चुम्बकमें लहरें पैदा होती हैं। इसके द्वारा मुख्य बिजलीकी बैटरी 'अ' द्वारा मुख्य तारोंमें बिजली बहने लगती है और उसमें लहरें पैदा होने लगती हैं। ये लहरें जब किसी स्टेशन-यंत्र पर पहुँचती है तो वहां "ई" दांतदार पहिये और "उ" "ऊ" बिजली चुम्बकोंके द्वारा एक 'ओ' घन्टीका चक्कर पूरा होता है और घन्टी बजने लगती है। और उस स्टेशनका कर्मचारी अर्थात् स्टेशन-मास्टर तब "औ" कानके चोंगेको कानपर लगा लेता है और "क" भोंपूमें बोलता है। इस तरहके कानके चोंगे

और मुँहके भोंपू "ख" और "ग" नियन्त्रण-कार्यालयमें भी होते हैं। किस तरहसे 'ग' में बोली गई ध्वनि मुख्य तारों द्वारा लम्बा पथ तय करके बुलाये गये स्टेशनके 'औ' कानके चोंगेको प्रेरक कुण्डली "घ" और "च" की सहायतासे प्रभावित करता है या भोंपू 'क' में बोली गई ध्वनि कानके चोंगे "ख" को प्रभावित करती है यह पहले ही समझा चुके हैं।

(१५) ऊपर हम नियन्त्रण-कार्यालयके मुख्य-मुख्य उपयोग, काम, कार्यक्रम, और उसमें काम आनेवाले यंत्रों का दिग्दर्शन संक्षेप मेंकरा चुके हैं। अब लेख समाप्त करते समय प्रसंगानुसार कुछ G.I.P. रेलवेसे लिये हुए उदाहरण देते हैं जो प्रकट करते हैं कि नियन्त्रण कार्यालय के निर्माणसे रेलगाड़ियोंके समयमें कितनी बचत होती है।

नासिक-मनमद और कल्याण-कुर्ला-रेल-सेक्शन

शेगांव से बदनेरा

डाउनमाल रेलगाड़ियाँ	औसत समय घं०	मि०
नियंत्रण-कार्यालयके निर्माणके पहिले	१३	५
... ... बाद	९	३
अप माल-रेल-गाड़ियां		
नियंत्रण कार्यालयके निर्माणके पहिले	१२	२५
... ...बाद	१०	२५
बदनेरासे नागपुर		
डाऊन माल रेल-गाड़ियां		
नियन्त्रण-कार्यालयके निर्माणके पहिले	१४	३७
... ...बाद	१३	२६
अप माल-रेल-गाड़ियाँ		
नियन्त्रण-कार्यालयके निर्माणके पहिले	१७	९
.. .. बाद	१४	१२

घर्षण (abrasion)

किसी ठोस वस्तुके उपरी पृष्ठको किसी खुरदरे पदार्थसे रगड़कर घिस डालनेको घर्षण कहते हैं। जिस पदार्थसे घिसा जाता है उसे घर्षक (abrasive) कहते हैं। साधारणतः घर्षक ही चलता रहता है और जिस वस्तुको घिसता रहता है उसे घर्षकसे छुला दिया जाता है। साधारणतः घर्षकको बड़े वेगसे चलाया जाता है। ५००० फुट प्रति मिनट साधारण वेग है। घर्षकके आवश्यक गुण हैं। १) खुरदरापन जिसकी मात्रा आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक होनी चाहिये, (२) कड़ापन, जिससे घर्षक स्वयं न घिसे, (३) चिमड़ापन जिससे यह टूट या फट न जाय। जब कभी किसी वस्तुको इस प्रकार तैयार करना रहता है कि उसकी धार बिल्कुल सच्ची हो और जब कभी केवल अत्यन्त सूक्ष्म मोटाई ही दूर करनी रहती है तो घर्षण ही सर्वोत्तम रीति होती है। फिर जब ऐसी कड़ी वस्तुओं को प्रस्तुत करना रहता हैं जिसे साधारण रीतियोंसे छिलना, गढ़ना, काटना या खरादना असम्भव होता है तो घर्षण ही से काम चलाना पड़ता है। उदाहरणतः जब कड़े इस्पातके किसी वस्तुको चिकनी करनी होती है तो घर्षकोंसे ही काम लिया जाता है।

घर्षकके खुरदरापनमें बहुत-कुछ कमी-बेशी हो सकती है। बहुत दरदरे पत्थरोंसे लेकर उस्तरे पर सान धरने वाले बारीक कणोंके पत्थरों तक यह घट-बढ़ सकता है। कुछ घर्षक प्राकृतिक होते हैं। जैसे बालू, गार्नेट या एमरी, बहुधा इन्हें किसी सरेस आदि जैसे पदार्थसे कागज़ या कपड़े पर चिपका दिया जाता है। या इनके चक्के (पहिये) बना लिये जाते हैं। कोरंडम (कुरन पत्थर) भी बहुत उपयोगी घर्षक है और यह भी प्राकृतिक अवस्थामें पाया जाता है, परन्तु इसीसे मिलते-जुलते जो कृत्रिम पदार्थ अब बनाये जाते है, उदाहरणतः कारबोरंडम, ऐलुंडन, क्रिस्टोलन, इत्यादि (ये पेटेंट नाम हैं) बहुधा इससे अधिक अच्छे होते हैं। और इसलिए कोरंडम का उपयोग अब बहुत कम होता है। ये कृत्रिम घर्षक बिजलीकी भट्ठीसे दानेदार रूपमें प्राप्त होते हैं और वे ऐल्युमिना या सिलिकन कारबाइड होते हैं। अधिकांश घर्षण कार्योंके लिए इन दानोंको पिघले शीशेकी तरह किसी पदार्थसे एकमें बाँध कर चक्के बनाये जाते हैं जो बने-बनाये मोल लिये जा सकते हैं।

फनियर

[श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

कुत्ते, ख़रगोश और मनुष्यों पर सुगमतासे असर होता है। शिरान्तः सूचिवेध (internemous injection) देने से विष का प्रभाव तुरन्त होता है। काफ़ी बड़ी मात्रा देनेसे प्राणी कुछ ही मिनिटमें श्वास-प्रश्वासके बन्द होनेसे मर जाते हैं। आत्वक् (Subcutaneous) और अन्तर्मांसपेशी (intramuscular) मार्गों द्वारा विष दिया गया है। इन मार्गोंसे यह धीरे-धीरे ग्रहण किया जाता है और मृत्युभारसे चौबीस घण्टेमें होती देखी गई है। आमाशय या आंतोंके रास्ते या दूसरे श्लैस्मिक झिल्लियों (mucous membranes) से विष सर्वथा ग्रहण नहीं किया जाता। परीक्षणात्मक मनुष्यके लाला, आमाशय और क्लोम। (pancreatic) खालोंकी क्रियाशीलता पर इस विषका कोई प्रभाव नहीं देखा गया। बिल्लियों और खरगोशके मेदे और आँतोंके मार्गकी मांस-पेशियोंके बलको यह ज़रा-सा बढ़ा देता है।

कर्नल चोपड़ा और उनके सहायक अन्वेषकोंके परीक्षण बताते हैं कि दर्वीकर विष आमाशय या अन्य मार्ग द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता। इसलिये कर्नल चोपड़ा लिखते हैं, 'यह समझना कठिन है कि मुख द्वारा दिया गया विष कैसे उन प्रभावों को उत्पन्न करता है जिन प्रभावोंके लिए देशीय चिकित्सक दावा करते हैं। आंत पर क्षोभक कार्यके अतिरिक्त यह कोई विशेष कार्य नहीं उत्पन्न करता।'

दर्वीकर विषकी घातक मात्रासे थोड़ी मात्राएं रक्त दवाबको थोड़ा बढ़ा देती है और यह प्रभाव स्थायी होता है। हृदयके या हृदय-माँसपेशी (myocardium) के कार्यके बढ़नेसे यह प्रभाव नहीं होता। उच्च या कम घनता वाले किसी भी विष ने हृदयको निश्चित रूपसे उत्तेजना नहीं दी और ख़ास कर तब जब हृदय फेल हो रहा हो। बहुत बड़ी मात्राएं सीधा हृदय पर कार्य करती प्रतीत होती है। हृदय बैठने लगता है और फिर बन्द हो जाता है। शिरान्तः दिया जाय तो रक्त दवाबमें निस्सन्देह वृद्धि करता है जो मेडुला (Medulla.) के वासोमोटर (vasomotor) केन्द्र की उत्तेजनासे सम्बन्धित प्रतीत होता है। मुख द्वारा देने पर यह प्रभाव उत्पन्न नहीं होता। बड़ी मात्राओंसे जो रक्त भार फिर गया था वह वासोमोटर केन्द्रके पक्षाघातके कारण था मेडुलरी (medullary) केन्द्रों पर विषकी उत्तेजनो और पक्षाघात करने वाली मात्रामें इतना कम अन्तर है कि इसके सूचिवेधमें बहुत अधिक सावधानी रखनी चाहिये। घातक मात्राओंसे कम या घातक मात्राओंमें विष डाला जाता है तो इसका मुख्य कार्य श्वास केन्द्र पर होता है, जिससे पहले उत्तेजना और अन्तमें पक्षाघात हो जाता है। वक्षोदरो पेशी (diaphragm) या श्वास संस्थान की मांसपेशियोंमें (motor end-plates) पर विषका कोई प्रभाव प्रकट नहीं होता। प्राणियों पर किये गये परीक्षण बताते हैं कि मस्तिष्कके अधिक उच्च भागों पर विषका प्रभाव प्रारम्भिक उत्तेजना है, जिसका अनुगमन पक्षाघात करता है। परीक्षणोंके प्राप्त विवरणोंसे यह स्पष्ट है कि फनियरके विषका हृदयकी माँसपेशी (myocardium) या हृदयके कार्यको तीव्रकर देनेवाली वातनाडियों पर कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ता।

फनियरके विषका स्वाद अरुचिकर कटु होता है। ताज़ा हो तो प्रतिक्रिया क्षारीय देता है। और बादमें अम्लीय हो जाता है। इसमें उपयोगी गुण बहुत समय तक बना रह सकता है। कई सालों तक पूर्णतया शुष्क पड़ा रहने पर भी इसकी शक्ति नष्ट नहीं होती। बहुतसे फनियर सांपोंका इकट्ठा किया हुआ विष जब सूख जाता है तो गिलासमेंसे खुरचनेके समय उसकी सूक्ष्म पपड़ियां ऊपर की तरफ हवामें उड़ती हैं और आंखोंके सम्पर्कमें आती है। इससे बचनेके लिए ऐनक अवश्य पहन लेनी चाहिए। बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें जब बहुत अधिक ज़हर खुरचना होता है तो और अधिक सुरक्षित होनेके लिए शीशेकी छोटी-सी पारदर्शक मेज़ बना ली जाती है जिसके अन्दर कार्यकर्त्ताके हाथ काम करते हैं। कमरेमें आते हुए सूर्यके प्रकाशमें रखकर दर्वीकर विषको खुरचा जाता है तो कमरेके शान्त वायुमण्डलमें भी विषके बहुत सूक्ष्मकणोंका धुआं ऊपर उठता हुआ साफ़ दीखता है। सांसके रास्ते

यह धूलि अन्दर जानेसे खुरचने वालेमें बुरे लक्षण उत्पन्न कर सकती हैं।' फनियरका विष श्लैष्मिक झिल्लियोंसे चूस लिया जाता है और आंखों का झिल्ली (conjunctiva) के सम्पर्कमें आने पर गम्भीर कष्ट पैदा कर सकता है। इसलिए डाक्टर डिटमाट सलाह देते हैं कि खुरचनेका कार्य बहुत सम्हल कर करना चाहिए।

मिचेल—(Mitchel) और रीशेर्ट -(Reichert) (१८८४) ने दिखलाया है कि दर्वीकर विषमें अठानवे प्रतिशत एल्बुमिन और केवल दो प्रतिशत ग्लौबुलीन (globulin) होती है। मार्टिन और स्मिथ (१८९२) के अनुसार दर्वीकर विषकी एल्बुमोज़ (albumoses) के तीन विभाग किये जा सकते है—१ हेटरो-एल्ब्युमोज़ (hetero-albumoses) २—प्रोटो-एल्ब्युमोज़ (proto-albumoses) ३—ड्यूट्रो एल्ब्युमोज (deutro-albumoses) परन्तु इसमें जो एल्ब्युमिन्स (albumins) होते हैं वे सब विष शक्ति रहित होते हैं। बहुतसे रासायनिक पदार्थ, जैसे पोटाशियम परमैंग्नेटका एक प्रतिशतक घोल, स्वर्ण हरिद्, चूनेका हरिद् और कैल्शियमका हाइपोक्लोराइड (बारहमें एक) भी, क्रोमिक अम्ल (chromic acid), ब्रोमीन जल, एक प्रतिशतक आयोडीनका त्रिहरिद् (trichloride of iodine) विषके कार्यमें परिवर्त्तन कर देते हैं या उसे मन्द कर देते हैं।

विभिन्न विषोंमें विद्यमान विषैले तत्वकी प्रकृतिके सम्बन्धमें बहुत वाद-विवाद रहा है। फ्रौस्ट (Faust) (१९१०-११) अनुसार फनियर और कर्कर सांप (rattle snake) के विषों में मुख्य विषैले पदार्थ नत्रजन रहित तत्व होते हैं। ये ग्लूकोसाइड् (glucosides) नहीं हैं परन्तु इनके भौतिक, रासायनिक और फार्माकोलौजिकल गुण सैपोनिन्स (saponins) से मिलते हैं। केन्द्रीय बात संस्थान पर इनका प्रभाव होता है। फनियरका विष सौ अंश शतांश तापमानको थोड़ी देरके लिए सहन कर सकता है और इसकी क्रियाशीलता नष्ट नहीं होती।

(porcelain candle) में छाननेसे दर्वीकर विषके विषैलेपनमें परिवर्त्तन नहीं आता। इस तरह ८२° शतांशपर जमने वाले अविभाज्य एल्ब्युमिनोएड (albuminoid) और न जमने वाले विभाज्य एल्ब्युमोस (albumose) पृथक् किये जा सकते हैं। पहला तत्व रक्तस्राव पैदा करता है इसलिये इसे हिमोरेजीन (haermorehagi) कहते हैं और दूसरा श्वास केन्द्रोंके वातकोष्ठों (nerve cells) पर कार्य करता है, इसे न्यूरोटोक्सीन (neurotoxin) कहते हैं।

कैंसरमें दर्वीकर विष बहुत उपयोगी पाया गया है। इस रोगमें होने वाली बहुत कष्टदायक वेदना सर्प विषके प्रयोगोंसे दूर हो जाती है। कहा जाता है कि किसी भी फार्माकोपिया (द्रव्यगुणके ग्रन्थ) में एक भी औषध नहीं है जो इस गुणमें इसके साथ रखी जा सकती हो। इसमें विद्यमान न्यूरोटौक्सीन; जो एक वात-नाड़ी-विष है, संज्ञा वाही वातनाड़ियों (sensory nerves) तथा वातनाड़ियोंके अंशों (nerve platos) को निस्संस (paralyse) कर देता है और इसके द्वारा उस अंशको नियन्त्रित करता है जो वेदनाकी अनुभूति मस्तिष्कको पहुँचाया होता है। फनियरके विषमें जस्तेकी प्रचुरता होनेसे यह कैंसर सम्बन्धी अर्बुदोंकी वृद्धिको रोकता है। दर्वीकर विष कैंसरकी निश्चयात्मक परीक्षा (Formachidis test) के लिए प्रयुक्त होता है। ०·००१ मिलीग्राम दर्वीकर विष कार्सिनोमा (corsinoma) की चिकित्सामें इस्तेमाल किया गया है। इससे वेदना शान्त हो जाती है। अपस्मार और दमेमें ०·०१५ मिलीग्रामकी मात्रामें कुछ सफलताके साथ अन्तस्त्वक् सूचिवेध दिये गये हैं। तीव्र नाड़ीशोथ, गृध्रसी, हृदयशूल (angina pectonic) और कुछ आंखके रोगोंमें फनियरका विष बहुत सफलतापूर्वक इस्तेमाल हो रहा है।

शोसक रूई absorbent cotton

साधारण रुईसे ही शोषक रुई (ऐबसॉर्बेण्ट कॉटन) बनती है। साधारण रुईको इस प्रकार धोया जाता है कि प्राकृतिक रीतिसे उस पर लगे मोमकी जातिके पदार्थ दूर हो जाते हैं; खनिज पदार्थ भी, जो सूक्ष्म मात्रामें उपस्थित रहता है दूर हो जाता है। फिर उसे अच्छी तरह धो डालने और सुखानेके बाद वह वस्तु तैयार होती है।

शेषनाग

[लेखक – श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

कहते हैं, देहलीकी प्रसिद्ध लोहेकी किल्ली, शेषनाग के सिरपर गड़ी हुई थी। राज्यपण्डितोंके इस कथनकी सचाईको जांचनेके लिये पृथ्वीराजने किल्लीको उखाड़नेकी आज्ञादी। खुदाईसे निकाले गये सिरेपर खून लगा देखकर उसने विस्मयसे स्वीकार किया कि इसका आधार वास्तवमें शेषनागके सिरमें था। दिल्ली अधिपति द्वारा इस तरह व्यर्थ ही सताये जानेपर नागराजने गुस्सेमें शाप दिया जिससे पृथ्विराजका राज्य जाता रहा।

पौराणिक गाथाओंके अनुसार हज़ार फनोंवाले शेषनाग ने ज़मीनको अपने सिरपर थाम रक्खा है। भूमिकी आंतों-पाताल देशमें पड़े इस महान् नागके फणोंकी छत्रछायामें पालक विष्णुदेव शयन करते हैं–मृत्यु जीवनको रक्षा करती है। जब यह जंभाई या अंगड़ाई लेता है अथवा करवट बदलता है तो भूमि डोलती है जिसे भूडोल या भूकम्प कहा जाता है।

विज्ञान और तर्कके इस युगमें ऐसे विचारोंकी सचाई के सम्बन्धमें हम कुछ नहीं कहना चाहते।

भारतीय गाथाओंका शेषनाग अवश्य एक विशाल और तीव्र विषधर सांप होना चाहिये। सर्प-विद्याको अध्ययन करनेवाले आधुनिक आचार्योंको ज्ञात ऐसा सांप किंग कोबरा (King-cobra) है। निजाम राज्यके उत्तरमें किंग कोबरेको शेषनाग और महानाग इन दो नामोंसे जानते हैं। वहां ग्रामीण लोग इसकी पूजा करते हैं। इसके निवास पर दूध भरे प्याले रखते हैं। बंगालमें इसका नाम शंखचूड़ है। वैज्ञानिक भाषामें इसका नाम है, नाय्या बंगेरस (Naia bungarus) है।

कहा जाता है, भारतमें सबसे बड़ा शेषनाग, केनराके जंगलमें मारा गया था, जिसकी लम्बाई पन्द्रह फीट पांच इञ्च थी। प्रकृतिका अध्ययन करनेवाली बम्बईकी नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटीके संग्रहालयमें इसकी खाल रखी हुई है। एक जवान शेषनागकी लम्बाई लगभग बारह फीट देखी जाती है। इस सांपकी अधिकसे अधिक लम्बाई ग्यारह फीट हो सकती है। इस लम्बाईका एक नाग लण्डन चिड़ियाघरके जंगलोंमें पकड़ा गया था। सांपोंमें सबसे लम्बा शेषनाग नहीं होता। यह प्रतिष्ठा ब्राजीलके एनाकोण्डा (Anaconda) और मलायाके अजगरके बीचमें विभक्त हो गई है क्योंकि दोनों तीस फीट तक बढ़ जाते हैं। बोआ कन्स्ट्रिक्टर (Boa constrictor) यद्यपि काफी लम्बा होता है, पर बहुतसे लोगोंकी धारणा है कि यह तुलनामें छोटा होता है और मुश्किलसे तेरह फीट तक पहुँचता है।

भारतमें पाये जानेवाले सांपोंमें शेषनाग सबसे अधिक खतरनाक और ज़हरीला है। विषैला करनेकी इसकी शक्ति, इसका शारीरिक बल और आकार इसको सब सांपोंसे बढ़ कर राजत्व प्रदान करते हैं। इसलिये, इसके राजसांप और नागराज नाम सार्थक नाम है। संसारके सब ज़हरीले सांपों में शेषनाग सबसे बड़ा विषैला सांप है। आस्ट्रेलियाका भूरादैत्य सांप (Giant Brown Snake) जो लम्बाई में दस फीट तक बढ़ जाता है, दूसरे नम्बर पर आता है। इसका वैज्ञानिक नाम औक्सिरेनस मैक्लिनेनि (oxyranus maclennani) है।

मनुष्यमें शेषनागके विषके कुछ उदाहरणोंसे मालूम होता है कि यह कितनी जल्दी मृत्यु लादेता है। नौ फीट सात इंच लम्बे एक नागसे काटा गया आदमी पन्द्रह मिनटमें मर गया था और एक कुली स्त्री बीस मिनटमें समाप्त हो गई थी। कौड़िये और फनियर सांपसे डसे आदमी तो बच जाते हैं परन्तु इस नागराजसे डसे जिस आदमीमें विषको पूरी घातक मात्रा इसके जहरीले दांतोंसे घावके अन्दर पहुँचा दी जाती है उसके बचनेके वास्तवमें बहुत कम उदाहरण मिल सकेंगे। रोजर्स (Rogers) का कथन है कि एक मनुष्यको मारनेके लिये जितने विषकी आवश्यकता होती है उसकी अपेक्षा दसगुना अधिक विष शेषनाग अपने एक दंशमें स्रवित करता है। सामान्यतया यह सुनकर विश्वास नहीं होता कि शेषनागके काटनेसे हाथी जैसे भारी भरकम जानवर भी यमलोक सिधार जाते हैं। हाथीकी सूँडके सिरे या नाखूनोंके सिरेपर यह अक्सर काटता है। इन स्थानोंपर खाल इतनी नरम होती है कि जहरीले दांत अन्दर गड़ सकते हैं। काटनेके तीन घन्टेके

अन्दर-अन्दर हाथी मरता देखा गया है। शरीरकी मोटी खालपर सांपके दांत नहीं अड़ते।

फनियरके विषकी तरह शेषनागका विष सारे शरीरका पक्षाघात कर देता है और श्वास प्रक्रियाके अवरोधसे मृत्यु हो जाती है। दोनों सांपोंके विषसे उत्पन्न होनेवाले परिणाम एक जैसे ही होते हैं। पहले बेहोशी होती है और तब धीरे-धीरे रेंगता हुआ सा पक्षाघात हो जाता है। टांगोंसे यह आरम्भ होता है और धड़की ओर ऊपर चढ़ता है तथा अन्तमें सिरपर पहुँचता है। श्वास-प्रश्वास बहुत अधिक कठिन और अन्तमें असम्भव हो जाता है। श्वासोच्छ्वास सर्वथा बन्द होनेसे पूर्व प्रायः जोरके आक्षेप (convulsions) देखनेमें आते हैं, परन्तु हृदय एक या दो मिनट अधिक देरतक धड़कता रहता है। अकेले फनियरके विषसे तय्यार किये गये रक्तपस्तु (antiserum) से चिकित्सा करने पर प्राप्त परिणाम संकेत करते हैं कि फनियर और शेषनागके विषमें कुछ आधारीय भिन्नताएं हैं। फनियरके काटने पर यह सीरम प्रभावकारी है, शेषनागसे डसे जाने की हालतमें यह मौतके समयको काफी लम्बा खींच देता है, परन्तु होनेवाले घातक परिणामको बहुत बड़ी मात्राओं में सुई द्वारा शरीरमें डाले जानेपर भी नहीं रोकता। इसलिये शेषनागके दंशके लिये कोई एण्टिसीरम उपलब्ध नहीं है। यदि हो भी तो मौत इतनी जल्दी होती है कि उसके प्रयोग किये जानेके लिये अवसर तक नहीं देती। ऐसी हालतमें सर्वोत्तम उपाय यही किया जा सकता है कि डसे हुए व्यक्तिको गरम रखें और यदि इतनी जल्दी मिल सकता हो तो गरम शोर्वा, कौफी या तुलसीकी चाय पिलाएं, इस आशासे कि अन्दर गई हुई विषकी मात्रा मृत्यु लानेके लिये अपर्याप्त है।

भाग्यवश शेषनाग सुलभ सांप नहीं है। बहुत कम मिलनेके कारण ही पिछले युद्धसे पहिले एक नागका मूल्य सौ डालर होता था। यह घने और नमीवाले जंगलोंका जीव है। झुरमुटोंमें रहता है और अपने शिकारकी गौर करनेके लिये अक्सर पेड़ों पर चढ़ जाता है। यह पानीका शौकीन है और कई दूसरे सांपोंकी तरह अच्छा तैराक है।

भारतमें यह मुख्यतया हिमालय, आसाम और दक्षिणीय भारतके सदा-हरे घने पहाड़ी जंगलोंके एकान्त स्थानोंमें पाया जाता है। पर्वतीय प्रदेशों में यह समुद्र तलसे सात हज़ार फीटकी ऊँचाई पर भी पाया जाता है। बंगालमें सुन्दरवन, जेसोर और खुलना जिलोंमें, उड़ीसा, नागपुर और नेपालमें भी यह मिलता है। इन स्थानोंके नमीवाले जंगल इसकी प्रिय आवासस्थली है। जहां तक मालूम है, यह घाट और मध्य भारतके सूखे और छितरे जंगलोंमें नहीं मिलता। एक बार लाहौरके आसपास एक मारा गया था और दूसरा देस्साके समीप पालनपुरमें और तीसरा कोल्हापुरमें किसी जंगलमें बीस मील दूर। परन्तु इस तरह इनका मिलना अपवाद ही समझना चाहिये। पहाड़ी जंगलोंमें यह आम तौरपर नीची सतहोंमें रहता है और बर्मा तथा आसाममें तो यह मैदानों में भी समान रूपसे पाया जाता है। बर्मासे आगे इस नागकी शृंखला दक्षिणीय चीन, मलाया और फिलिपाइन्स तक विस्तृत हो गई है।

बर्मा और बंगालके सपेरे शेषनागका एक खेल दिखाया करते हैं 'मृत्युचुम्बन'। कुछ देर बीन बजती रहने पर दर्शकोंको प्रतीत होता है कि संगीतकी मधुर हिलोरोंके साथ ही नाग भी रीझकर हिलोरें ले रहा है। नागकी आँखें, जो आरम्भसे ही चौकन्नी होकर बीनकी प्रत्येक काल देखा करती हैं, अब बीनको रोक देनेसे उसीपर स्थित हो जाती है। सपेरा इस मौकेको हाथसे नहीं जाने देता। बीन को वैसे ही रखकर वह सावधानीसे अपने मुँहको नागके पास ले जाकर उसके ओठको अपनी जीभसे चूम लेता है। सांप सतर्क होकर चोटकरे इससे पहले ही सपेरा वहांसे हट गया होता है।

बीन बजाते समय जब उंगलियां नलीके नीचेके छिद्रों पर रहती हैं और तीव्र स्वर निकलता रहता है उस समय बीनको सांपके मुँहकी ऊँचाई पर रखा जाता है, जिससे यदि सांप चोट भी करे तो वार खाली जाय, उंगली घायल होनेसे बच जाय। जब उँगलियां ऊपरके छिद्रों पर रहती है जैसा मन्द स्वरोंके लिए आवश्यक है, तब बीन कुछ नीचे रखी जा सकती है। जब सपेरा नागको पकड़ना चाहता है तब वह मन्द स्वरमें बीन बजाता है। इससे उसकी अंगुलियाँ ऊपर रहती है और बीनका नीचेका

हिस्सा खुला रहता है। सपेरा इसी निचले भागको नागके मुखके नीचे लाता है। फल यह होता है कि सांप बीनके इस नीचेके हिस्सेको ही देखनेमें लगा रहता है और उसे पकड़नेके लिए जो हाथ बढ़ाया जाता है उस पर उसका ध्यान जाता ही नहीं। यदि वह चोट करनेका प्रयत्न करता भी है तो बीन ही को उसके मुखकी ओर कर दिया जाता है। दर्शक-समूह तो सपेरेके हाथोंको ही देखने में व्यस्त रहता है, इससे वह बीनके इस प्रयोगको नहीं समझ पाता। जब तक इधर नाग बीनमें केन्द्रित रहता है, सपेरेका दाहिना हाथ धीरे-धीरे बीनके नीचेसे अथवा पीछेसे ही बढ़ता है और साँपको उसके फनसे तीन इंच नीचे कस कर पकड़ लेता है। नाग तब ज़मीनपरसे उठा लिया जाता है। इसका खड़ा फन सपेरेके हाथके ऊपर फैला रहता है। ऐसी अवस्थामें साँप सपेरेके हाथों पर चोट नहीं कर सकता है। इस खेलमें और 'मृत्यु चुम्बन' में अपना हाथ और मुँह साँप तक बिना उसका ध्यान आकर्षित किये पहुँचा देनेमें ही सबसे अधिक तारीफ़ है। यदि साँप हाथ और मुँहको देख लेगा तो निश्चय ही वह उस पर वार करेगा। साँपके ध्यान बटानेमें ही सब कौशल है। यही इस खेलका गुरुमन्त्र है।

पकड़कर रखनेसे यह साँप बहुत हद तक पालतू भी बन जाता है परन्तु इसका विश्वास कभी नहीं करना चाहिए। पता नहीं कब किसी ज़रा-सी उत्तेजनाके कारणके होने पर यह क्रुद्ध हो जाय और काट ले।

शेषनाग एक रौब वाला, हट्टा कट्टा और बहादुर साँप है। इसकी मुड़ी हुई थूथनी चपटे सिरके रूपमें होती है। सुनहरी भूरी आँखोंके पीछे, सिरके पार्श्वमें तन्तुओंके नीचे विषकी बड़ी थैलियाँ गहरी पड़ी होती है और ऊपरसे माँसपेशियों द्वारा ढकी होती है। इन माँसपेशियोंके संकोचसे ग्रन्थियोंपर दबाव पड़ता है और इस प्रकार थैलियोंमेंसे गहरे अन्दर गये हुए खोखले दाँतों द्वारा विषकी तीव्र धार फेंक दी जाती है। सिरके पीछे गरदनकी खाल फैल कर फन बनाती है। इस फैलावका कारण पसलियोंका चपटा होना है जिससे खाल तन जाती है, परन्तु शेषनागमें फन इतना फैला हुआ नहीं बनता जितना फनियर साँपमें। शेषनागकी आँखोंमें अनोखी झलक होती है। आँखें बहुत सचेत मालूम होती है। आँखोंका रङ्ग प्रायः इसके गले और सिरके रङ्गसे मिलता है जो नारङ्गीके छिलकेकी तरह ज़रा-सी लाली लिए हुए गूढ़ा पीला होता है।

सारा शरीर चिकने चमकीले छिलकों (scabs) से ढका होता है। केंचुली छोड़नेके बाद शेषनाग एक सुन्दर और शानदार जीव मालूम होता है। इसके गहरे रङ्गके चमकते हुए शरीर पर शोभायमान हलके रङ्गकी चौड़ी पट्टियाँ इसे कुटिल सौन्दर्य प्रदान करती है। इसका रङ्ग जैतूनी या गहरे भूरेसे लेकर सर्वथा काले तक विभिन्न प्रकारका होता है। चौड़ाईके रुख़ पट्टियाँ किन्हीं नागोंमें दूसरोंकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट होती है। पट्टियाँ पीलेसे काले रङ्गकी होती हैं और कभी-कभी छोटी-छोटी चित्तियोंके साथ-साथ बने होनेसे पट्टियाँ (spotted lines) बनी होती है। पूछ भी कभी-कभी बहुरङ्गी चित्तियों या पट्टियोंसे सजी होती है। एक युवा शेषनागसे नवजात शेषनागका रङ्ग और ढाचा बहुत विचित्र और बिलकुल भिन्न होता है। गूढ़े काले रङ्गमें चमकते हुए शरीर पर विशुद्ध सफेद रङ्गकी चौड़ी पट्टियाँ होती हैं। सिर तक गई हुई ये पट्टियाँ नागके बच्चे को आँखका रूप प्रदान करती है।

फनियरकी तरह शेषनाग भी जोश या गुस्सेमें आनेपर अपना शरीर उठा लेता है और फन फैला लेता है। इस स्थितिमें इसका बड़ा आकार इसकी वास्तविक भयावह आकृति बनाता है। एक पन्द्रह फ़ीटका दैत्य आदमीके चेहरे जितनी आश्चर्यजनक ऊँचाई तक अपना सिर उठा सकता है। जंगलातकी एक सड़क पर गुजरती हुई फोर्ड-कारसे विक्षुब्ध हुए एक बड़े नागने अपना सिर कारके दरवाजेके सिरे तक उठा लिया था। यह ऊँचाई तीन फीट और साढ़े नौ इँच थी।

मुख्यतया दूसरे सांपोंपर गुजर करनेसे इसका संस्कृत में एक नाम 'भुजंगभुक्' भी है। इसका शाब्दिक अर्थ है—सांपों (भुजँग) को खानेवाला (भुक्)। बम्बईकी नेचुरल हिस्ट्री सोसाइटीये संग्रहालयमें बारह फीटका एक नाग दूसरे फनियर सांपोंको ऐसे ही खा जाता था जैसे निर्दोष धामन और जलीय सांपोंको खारहा हो। यह अपनी जाति के सांपोंको भी हड़प कर जाता है।

[शेष फिर]

समालोचना

मानो-न-मानो - अथवा विश्व की विचित्रताओंका मनोरंजक संग्रह; संकलनकर्त्ताने अपना नाम प्रकट नहीं किया है; १५२ पृष्ठ; लगभग २५० चित्र, जिनमें दो रंगीन हैं; कपड़े की जिल्द; मूल्य ३।) सवा तीन रुपया। प्रकाशक हिन्दी विश्वभारती कार्यालय, लखनऊ।

यह ग्रन्थ प्रत्येक पुस्तक प्रेमी के संग्रह करने योग्य है। बहुत अच्छे काग़ज़ पर छपा है। चित्रों का संकलन भी बहुत अच्छा हुआ है। अधिकांश चित्र नये हैं। पुस्तक से मनोरंजन भी होगा और ज्ञान भी बढ़ेगा। नमूने के लिये दो बातें इस पुस्तकसे यहाँ उद्धृतकी जाती हैं। खेद है कि चित्रोंके उद्धृत करनेका कोई प्रबन्ध नहीं हो सका। इसलिये हमारे पाठकोंको सच्चा नमूना न मिल सकेगा।

(१) मुछंदरनाथ – आपका शुभ नाम है श्रीयुत अर्जुन डाँगर। आपका शुभ स्थान है काठियावाड़। आपकी मूंछें १०४ इंच लम्बी हैं। आप अमरीकाकी सुप्रसिद्ध प्रदर्शिनी 'सेंचुरी ऑफ प्रोग्रेस' में अपनी मूंछोंका प्रदर्शन करने पधारे थे। आपकी मूंछे संसार भरमें सबसे लम्बी थीं। [इन महोदयका चित्र भी पुस्तकमें हैं।]

(२) बया भी अपने घोंसलेमें दीप जलाती है—बया (पक्षी विशेष) अपने घोंसलेको, जिनके द्वार मिट्टीके होते हैं, जुगनुओं द्वारा प्रकाशमान रखती है।

कुछ लम्बे लेख भी हैं।

समालोचकको एक ही उलहना देना है, वह यह कि बहुधा वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दोंका चुनाव बेढङ्गा हुआ है और भाषामें अंग्रेज़ी ढङ्गकी वाक्य रचनाएँ आ गयी हैं सम्भवतः एक-दो उदाहरण देना आवश्यक है। पृष्ट ११८ पर लिखा है—

आध सेर शहद बनानेके लिये ३७,००० नैक्टर (अमृत बिन्दुओं) की अपेक्षा होती है। मधुमक्खियाँ नैक्टर फूल पोलिन एकत्रित करनेके लिये एक फूलसे दूसरे और पर यों ही नहीं उड़ जातीं। ※※※ क्लोवर पुष्प, क्लोवर पुष्पसे ही पॉलिन चाहता है, पॉपी से नहीं।"

'नैक्टर' के बदले मकरंद शब्द अधिक उपयुक्त होता है और 'पोलिन' तथा 'पॉलिन' के बदले पराग। जब हमारे साहित्यमें उचित शब्द पहलेसे वर्तमान हैं तो हम अंग्रेजी शब्दोंको क्यों लें। पता नहीं एक हीअँग्रेज़ी शब्दको एक पंक्तिमें 'पोलिन' और दो पंक्तियों बाद 'पॉलिन' क्यों लिखा गया है। अँग्रेज़ी न जानने वालोंको इससे बड़ी कठिनाई पड़ सकती है।

फिर 'नैक्टर' की जो परिभाषा दी गई है वह एकदम अनुपयुक्त है। कोई 'अमृत बिन्दुओ' से क्या समझेगा ? पुष्परस या इस प्रकारकी कोई व्याख्या होती तो सहायता भी मिलती। स्पष्ट बात तो यह है कि संकलनकर्त्ताने समझा ही नहीं कि 'नैक्टर' क्या वस्तु है। नैक्टरका एक अर्थ अमृत अवश्य है, परन्तु वह अर्थ यहाँ नहीं लागू है। केवल कोषके भरोसे उलथा करना वैसा ही असङ्गत हो सकता है जैसा गोरखपुर म्युनिसिपैलिटीका गवर्नरके आनेके कुछ दिन पहले सड़कों पर साइनबोर्ड लगवा देना "Keep to the left, बायीं तरफ रक्खो।"※

फिर यह भी आपत्तिजनक बात है कि 'नैक्टर' को इस तरह प्रयोग किया गया है जैसे उसे कोई गिन सके। होना चाहिये था '३७,००० फूलों के मकरंद की।'

पृष्ठ १०६ पर यह वाक्य है रोमके सम्राटोंकी दावतें जिनमें बुलबुलोंकी जिह्वाएँ एक विशेष स्थान रखती थीं। ब्रैंडी के भोजोंके सम्मुख फीकी प्रतीत होती थीं।' 'विशेष स्थान रखती थीं।' खटकता है। हिन्दी वाले इस प्रकार कभी नहीं बोलते। लिखना चाहिये था 'जिनमें बुलबुलोंकी जिह्वाओंको विशेष स्थान मिलता था' या बिना स्थान शब्दके प्रयोग किये 'जहाँ बुलबुलोंकी जिह्वायें भी विशेष चाव से खायी जाती थी।'

—गोरखप्रसाद।

※ घटना सच्ची है। यह १९११ के लगभग की बात है।

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—कला प्रेस, प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५७ | कर्क, सम्वत् २००० । जूलाई, १६४३ | संख्या ४

भौतिक विज्ञानमें अनिर्णयवाद

(द्वारिका प्रसाद गुप्त एम. एस.-सी. विशारद)

अबतक जितने भी प्रयत्न इसलिये किये गये हैं कि ऋणाणुको एक ही समयमें लहर और अणु दोनों हैसियतों में बरतते हुए देख सकें वे सब निष्फल ही रहे हैं। सन् १९२७ ई० में हाइसनबर्गने इस सिद्धान्तका प्रतिपादन किया कि हमको न केवल इसकी कोशिश ही न करनी चाहिये बल्कि दोनो हैसियतोंके एक समयमें देख सकनेकी आशा करना ही निरर्थक है। किसी परमाणुके विषयमें हम यह निश्चित रूपसे नहीं कह सकते कि वह कहाँ स्थित है और उसकी गतिविधि क्या है। सत्य तो यह है कि किसी भी वस्तुको बिना उसमें परिवर्तन किये हुए देख लेना असम्भव है। तत्त्व-दर्शन शास्त्रमें इस मतकी पुष्टि अतिरेक-वादियोंने आंशिक रुपमें की है।

साधारण भाषामें इस सिद्धान्तका स्पष्टीकरण करने के बाद इसके वैज्ञानिक निष्कर्ष पर विचार करना ही ठीक होगा। कल्पना कीजिये कि हमें एक गतिमान ऋणाणुकी चालका अध्ययन करना है। इसके लिये हम एक बहुत ही प्रखरशक्ति वाले अनुवीक्षण यंत्रका प्रयोग करते हैं। यह तो स्पष्ट ही है कि ऐसे यन्त्रके साथ साधारण प्रकाश काम नहीं देगा। विद्युतचुम्बकीय लहरें किसी भी वस्तुके किनारे से स्पर्श करते ही आवर्जित हो जाती हैं। इस अवर्जनकी मात्रा प्रकाशकी झूलन संख्यासे व्युत्क्रम नियम द्वारा सम्बन्धित है। साधारण रोशनीकी झूलन संख्या अपेक्षाकृत न्यून होती है इसलिये साधारण प्रकाशके सम्पर्कमें ऋणाणु के आनेसे उसके चारों ओर काफी वर्त्तन हो जायगा और परावर्त्तित प्रकाश धुँधला हो जायगा। अतः ऋणाणुको देख सकनेके लिये हमें एक्स किरण जैसी उच्च झूलन संख्याके प्रकाशका सहारा लेना चाहिये। परन्तु इतनी ऊँची झूलन संख्याका प्रकाश ज्योंही ऋणाणु पर पड़ेगा वह भाग उठेगा क्योंकि इतनी ऊँची झूलन संख्याका विकिरण बहुत शक्तिशाली होता है और ऋणाणु उसके संघातको सहन न कर सकेगा। नतीजा यह निकला कि लघु झूलन संख्याके प्रकाशमें तो अवर्जनके कारण धुँधले होनेका डर है और

उच्चतम संख्याके आघातसे ऋणाणु ही भाग उठता है। इसलिये ऋणाणुका वेग समक्षावलोकन (Direct ovservation) द्वारा नापनेका प्रयास ही अवैज्ञानिक है।

अनिश्चितताके सिद्धान्तकी पुष्टि चन्द्रमाको देखते समय भी होती है। हम जानते हैं कि चन्द्रमा जहाँ हमको दिखाई देता है उस स्थानपर वह स्थित नहीं है क्योंकि सूर्य-प्रकाश चन्द्रमासे परावर्तित होकर हमारी आँखों तक आनेमें काफी समय लगा लेता है और मार्गमें आवर्जित भी हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस सिद्धान्तका स्पष्टीकरण इस तरह भी होता है कि चन्द्रमा अपने वास्तविक स्थानपर दिखाई नहीं दे सकता क्योंकि – जो प्रकाश परावर्तित होकर हमारे नेत्रोंमें आता है वह आनेसे पहले ही चन्द्रमा पर अपना दबाव डाल चुका होता है। यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो चुका है कि प्रकाशका भी भार होता है। और इस दबावसे चन्द्रमा थोड़ासा पीछेको अवश्य हट जाता होगा। चन्द्रमा अपने वास्तविक स्थानोंमें तब ही रह सकता है जब उसपर कुछ भी प्रकाश पड़े परन्तु उस हालत में (जबकि उसपर प्रकाश न पड़े) हम उसे देख नहीं सकते क्योंकि चन्द्रमा स्वयं निजके प्रकाशसे आलोकित नहीं होता।

आइए, इस सिद्धान्तका वैज्ञानिक दृष्टिसे अध्ययन करें। भौतिक विज्ञानके जितने भी नियम हैं वे सबके साथ ही लागू होते हैं। परन्तु प्राकृतिक जगतके असली तत्त्वों और ऋणाणु और धनाणुके व्यक्तिगत व्यवहार उन नियमों से शासित नहीं होते जो नियमकी इन तत्त्वोंके समूह पर लागू होते हैं। इन तत्त्वोंमें कार्यकारणका सम्बंध ढूढ़ने पर बड़े भेदकी बातें दृष्टिगोचर होती हैं।

अतीत कालसे प्राकृतिक विज्ञानकी यह मान्यता रही है कि प्रकृति एक पूर्ण रूपसे निश्चित योजना है। उदाहरणार्थ, यदि हमें सौर-परिवारकी वर्तमान अवस्थासे बंधी आवश्यकीय समस्त बातें मालुम हों तो इस परिवारकी किसी भी भविष्यकी अवस्थाके विषयमें भविष्य वाणीकी जा सकती है। (वर्तमान और भविष्यकी अवस्थाओंमें कारण और कार्यका सम्बंध है) यदि हम इसमें असमर्थ हैं तो इसका कारण या तो हमारा उसके नियमोंका अपूर्ण ज्ञान है अथवा हमारे माप-नापमें अपूर्णता है। सौर-परिवार स्वयं पूर्णतः निश्चयात्मक है। जिन जिन घटनाओंसे विज्ञानका वास्ता पड़ा यह सिद्धान्त सत्य उतरता रहा। ग्रहणकी भविष्यवाणी ठीक होती ही है। इस सिद्धान्तमें कुछ जल्दबाजोंने मन और जीवनको भी शामिल कर लिया। लाप्लासने यहाँ तक कह डाला कि आरंभ कालके नेबूलामें परमाणुओंके वितरण विधिके ज्ञानसे यह संभव है कि कोई धुरन्धर गणितज्ञ जगतके समस्त भविष्यकी कथा कह डाले।

कार्यकारण संबन्धके सिद्धान्तका परित्याग आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोणकी विशेषता है। ऋणाणुमें ही नहीं, सामर्थ्यके अणु क्वान्टममें भी निश्चितताका अभाव है। प्रकाशका कोई क्वान्टम दो पथोंमेंसे किस पथपर चलेगा इसका निर्णय सम्भावनाओं पर ही अवलंबित है। एक प्रयोगमें यह क्वान्टम यदि एक पथपर चलता है तो बिल्कुल समान अवस्थामें दुहराये गए दूसरे प्रयोगमें वह क्वान्टम पहिले पथसे भिन्न पथ ग्रहण कर सकता है। हाँ इतना निश्चित रूपसे अवश्य कहा जा सकता है कि यदि यह प्रयोग अनेक बार किया जाय तो कितने प्रतिशत अवसरों पर वह क्वान्टम किसी पथ-विशेष पर चलेगा। यह क्वान्टम किसी विशेष अवसर पर किसी पथ-विशेषका अनुसरण करेगा इस बातकी प्रतिशत सम्भावना गणित द्वारा निर्धारित करनेका नियम भी है।

एक ऋणाणुके गतिविधिके सम्बन्धमें भी यही बात लागू होती है। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर पहुँचनेकी प्रतिशत सम्भावना कितनी है यह मालूम किया जा सकता है। परन्तु इसकी वर्तमान स्थितिके ज्ञानसे इसकी भविष्यकी स्थितिका अभिन्न ज्ञान नहीं हो सकता। हाँ यदि बहुत से ऋणाणु लिये जायँ, जैसाकि विज्ञानमें पदार्थकी छोटीसे छोटी मात्राके साथ प्रयोग करते समय होता है (एक सुईकी नोकमें भी लाखों ऋणाणु होते हैं), तब इन ऋणाणुओंका वैयक्तिक अटपटापन लुप्त हो जाता है और उनका सामुहिक व्यवहार निश्चित हो जाता है।

शायद यह ख़्याल हो कि वर्तमान स्थितिका यदि अधिक सूक्ष्मता और बारीकीसे अध्ययन किया जाय तो अकेले एक ऋणाणुकी भी भविष्यकी स्थिति निश्चतकी जा

सकती है। परन्तु जैसा कि लेखके आरम्भमें स्पष्ट है एक ऋणाणुकी, बिना उसमें परिवर्तन किए परीक्षा कर सकना असम्भव है। यह परीक्षा (अकेले ऋणाणुकी) तभी हो सकती है जब वह ऋणाणु शेष जगतके साथ क्रियाशील हो। निष्क्रिय ऋणाणुकी स्थिति अपरीक्षणनीय है।

हाइसनवर्गके अनिर्णयवाद सिद्धान्तकी यह मान्यता है कि एक ऋणाणुका वेग तथा स्थान दोनों ही निश्चित नहीं किये जा सकते। इनमेंसे एक मात्राका निर्णय जितना ही अधिक निश्चित होगा उतनी ही कम निश्चित दूसरी मात्रा हो जायगी। नीलबोहर द्वारा कल्पित परमाणुके चित्रमें ऋणाणु एक केन्द्रीय ऋणाणु-धनाणु समूहकी परिक्रमा करते हैं। और अवसर पाकर एक परिधि (परिक्रमाचक्र) से दूसरी परिधिमें कूदते हैं। कूदनेके क्षणमें ही यह ऋणाणु बाह्य जगतके साथ क्रियाशील होता है और तभी इसकी परीक्षाकी जा सकती है। अन्यथा, एक ही परिक्रमा कक्षामें चक्कर लगाते रहते हुये इसकी स्थितिकी समीक्षा करलेना असंभव है।

इस सिद्धान्तकी विवेचना किस प्रकारकी जाय। क्या यह इस बातका द्योतक है कि माप करने के हमारे साधन दोषपूर्ण-शायद मूलतः-दोषपूर्ण हैं और ऋणाणु स्वयं पूर्णतः निश्चित है? अथवा इस सिद्धान्त का अर्थ यह करें कि प्रकृतिकी अन्तरतम आधारभूत क्रियाओं में कार्य-कारण नियम लागू नहीं होता। क्या प्रकृतिके मूलमें इस प्रकारकी अनिश्चितताकी कल्पना करलेना संभव है? इस प्रश्नका उत्तर इस बातपर आश्रित है कि स्वेच्छा जैसी कोई शक्ति है या नहीं। निर्जीव पदार्थ जगत भी स्वेच्छाचारी हो, ऐसा संभव है। 'कार्यकारण' और स्वेच्छा शक्ति' इस प्रकार हो मान्यताएँ समान रूपसे शक्य हैं। इस प्रश्नका हल भौतिक विज्ञानके क्षेत्रसे बाहर पदार्पण करने पर ही हो सकता है। तब हमें वेदान्त और दर्शनकी शरण लेनी होगी।

टिड्डियोंको नष्ट करनेका अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न

छः भारतीय कीट विज्ञान वेत्ताओंका एक दल बिलोचिस्तानके कीट विज्ञान वेत्ता श्री एन० ए० जांजुआके नेतृत्व में रेगिस्तानके टिड्डी दलोंका नाश करनेके उस अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्नका सूत्रपात करनेके लिये भेजा जा रहा है जिसका उद्देश्य टिड्डियोंके आगमनके वर्तमान काल-चक्रको घटाना तथा भारत, फारस अरब तथा मध्यपूर्व के अन्य देशोंसे टिड्डियोंके संकटका समूल नाश करना है।

टिड्डियोंके आगमनका पिछला कालचक्र १९२६ से १९३१ तक रहा था और उससे केवल भारतमें ही ५ करोड़ रुपयेकी हानि हुई थी। इसके अतिरिक्त, मालगुजारीमें छूट, दुर्भिक्ष सम्बन्धी सहायता, पशुधनका ह्रास आदिकी हानि अलग हुई थी।

उपायोंकी सफलता

१९४२ से टिड्डियोंका एक और कालचक्र आरम्भ हुआ है और कहा जा सकता है कि अब वह पूरे जोरों पर है। यह भी कहा जा सकता है कि यदि टिड्डियोंके इस संकटसे बचावके उपाय न किये गये होते तो भारतीय फसलोंकी विशेषकर पंजाब, संयुक्त प्रान्त और राजपूताने में बहुत बड़ी हानि हुई होती। इन उपायोंके ही कारण अब फसलोंकी हानि २ करोड़ रुपयेसे कम रही है। मध्यपूर्वमें टिड्डियोंके संकटका अन्त करनेके उद्देश्यसे गत अक्टूबर में तेहरानमें एक सम्मेलन हुआ था, जिसमें ईरान, रूस, वृटेन और भारतके प्रतिनिधियोंने इस सम्बन्धमें एक अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न आरम्भ करनेका निश्चय किया था। सम्मेलन में राजकीय कृमिशास्त्री डा० हेमसिंह प्रुथीने टिड्डियोंको नष्ट करनेके सम्बन्धमें भारतमें किये गये कार्य पर प्रकाश डाला था और कहा था कि उसके कारण दक्षिण-पश्चिमी एशिया के समस्त देशोंमें बहुत कम हानि हुई थी।

टिड्डियां गर्मीके दिनोंमें सिंध तथा राजपूतानेमें अंडे देती हैं और बिलोचिस्तान, फारस तथा अरबमें जाड़े और वसन्त ऋतुओंका काल बिता कर फिर भारत वापस आ जाती हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि यदि अरब, फ़ारस और बिलोचिस्तानमें टिड्डियोंको बढ़नेसे रोक दिया जाय तो अगले वर्ष भारत पर टिड्डियोंका वैसा भारी आक्रमण नहीं होगा जिसकी साधारणतः आशाकी जाती है।

श्री जांजुआ अपने अन्य सहयोगियोंकी सहायतासे तथा स्थानीय मजदूरोंको लेकर फारसकी खाड़ीके अरब

किनारेकी ओर छोटे परहीन टिड्डों तथा टिड्डियोंके अंडोको नष्ट करेंगे। कुछ दिन बाद भारतसे ऐसा ही एक और भी दल फारसकी खाड़ीके किनारे कार्य करनेको भेजा जायगा। यदि आवश्यकता पड़ी तो उन दोनों दलोंकी सहायताके लिये और भी आदमी भेजे जायंगे। साथ ही बिलोचिस्तान में भी कार्य आरम्भ हो जायगा। भारतसे भेजे जानेवाले ये सभी दल डा० पृथीकी अधीनतामें रहेंगे किन्तु साथ ही वे वृटिश विशेषज्ञों तथा अन्य देशोंके टिड्डी नाशक दलोंसे सहयोग करेंगे।

उत्पन्न होना कैसे रोका जाय

अब प्रश्न यह है कि टिड्डियोंका उत्पन्न होना कैसे रोका जाय? भारतीय दल दो मुख्य उपायोंसे काम लेंगे परहीन टिड्डोंको भगाकर उन खाइयोंमें ले जाना, जहां उन्हें नष्ट किया जा सकता है तथा टिड्डी उत्पन्न होनेके स्थानोंमें विषैली भूसी फैला देना।

इसके अतिरिक्त, अन्य उपाय भी हैं। एक उपाय यह है कि टिड्डियोंके अंडे देनेके स्थानमें हल चलवा दिया जाय। इसके बाद वे धूपमें सूखकर नष्ट हो जाते हैं। परहीन तथा बड़े टिड्डियोंको आग लगाकर नष्ट कर दिया जाता है या उन पर कच्चा तेल छिड़क दिया जाता है। रूसमें वायुयानों द्वारा टिड्डी दलोंका पीछा करनेका भी एक उपाय निकाला गया है। परन्तु सर्वोत्तम उपाय टिड्डियोंको उसी समय नष्ट कर देना है, जब वे छोटी और परहीन होती हैं।

टैंकों को नष्ट करने के लिये नया हथियार

उत्तरी अफ्रीका में "बाजूका" का प्रयोग

वशिंगटन (तार द्वारा) अमरीको युद्ध विभागने एक ऐसे क्रान्तिकारी अस्त्रके अविष्कारकी बात बतायी है, जो सादा होनेके साथ ही इतना शक्तिशाली है कि उसके द्वारा एक पैदल सैनिक किसी भी आक्रमणकारी टैंकको नष्ट कर सकता है।

इस नये अस्त्रको सैनिक "बाजूका" कहते हैं और युद्ध क्षेत्रमें अनेकों प्रकारसे इसका भयानक रूप से प्रयोग किया जा सकता है। इसे छोटी सफरी मोटरगाड़ीमें ले जाया जा सकता है अथवा दो पैदल सैनिक भी दौड़ते हुये इसे ले जा सकते हैं। यह अस्त्र कोई विस्फोटक पदार्थ बड़े वेगसे फेंकता है, जो इसपातके बख़्तर, ईंट अथवा पत्थर की दीवारको धड़ाकेके साथ फोड़ कर भीतर घुस जाता है। यह रेल की पटरियों अथवा पुलके गर्डरोंको छिन्न-भिन्न कर देता है।

"बाजूका" का अविष्कार निकटसे लड़े जाने वाले आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक संघर्षोंके लिये किया गया है। इसे ले जाने वाले दो सैनिकोंमें से एक तो उसे उठाये रहता है और दूसरा निशाना लगा कर गोला चलाता है। धावा करने वाले टैंक नाशक तथा देखभालके लिये आगे जाने वाले दलों तथा समुद्रतट पर उतरने वाले सैनिकोंके लिये "बाजूका" विशेष रूपसे उपयोगी होगा।

कहा जाता है कि "बाजूका" युद्धक्षेत्र पर शत्रु की ओरसे भेजे जाने वाले किसी भी टैंकको नष्ट कर सकता है। उत्तरी अफ्रीकामें इसका प्रयोग सफलतापूर्वक हो चुका है। अब वह विशाल परिमाण पर तैयार करके अमरीकी तथा मित्रराष्ट्रीय सेनाओंके लिये उपलब्ध किया जा रहा है।

रेडियो की विचित्र शक्ति

लकड़ी के वायुयान बनाने में प्रयोग

अमेरिकाकी एक वायुयान बनाने वाली कम्पनी लकड़ी के वायुयान बनानेमें रेडियोका प्रयोग कर रही है। लड़कीसे वायुयानोंके भाग बनाते समय भट्ठीकी गरमी और दबावसे ठीक काम नहीं चलता था। साधारण वाष्प भट्ठीमें लकड़ीके ६ इंच मोटे परतदार तख़्तेके बाहरके किनारे तो बहुत गरम हो जाते थे परन्तु अन्दरका भाग पर्याप्त गरम नहीं होता था। भाफकी गरमीके स्थान पर रेडियो किरणोंका प्रयोग करनेसे यह कठिनाई दूर हो गयी और वायुयान बनानेमें भट्ठीकी गरमीके स्थान पर रेडियो ट्रान्समिटर यन्त्रका प्रयोग किया जाने लगा।

नाविक पंचांग

अर्थात् अँग्रेज़ी नॉटिकल ऐलमनक कैसे बनता है

अध्याय १

प्रारंभिक गणित

आवश्यक सूचना— सम्भव है इस पुस्तकका अध्ययन ऐसे लोग भी करना चाहें जो साधारण और मिश्र जोड़, बाकी, गुणा, भाग और भिन्नके अतिरिक्त अन्य कोई आधुनिक गणित नहीं जानते। उनकी सुविधाके लिये ही यह प्रथम अध्याय लिखा गया है। संपूर्ण पुस्तकके अध्ययन से वे भी यह अच्छी तरह समझ जायँगे कि अँग्रेजी नॉटी-कल ऐलमनक या नाविक पंचांग कैसे बनता है। पर्याप्त समय लगानेसे वे स्वयं भी नाविक पंचांग बना सकेंगे और इसके लिये उन्हें किसी अन्य पुस्तकका अवलम्ब नहीं लेना पड़ेगा। तो भी, यदि पाठक दशमलवोंसे परिचित नहीं है तो हम उसे यही परामर्श देंगे कि इस पुस्तकमें दिये गये विवेचनके अध्ययनके अतिरिक्त वह किसी अंकगणितकी पुस्तकसे दशमलवोंके प्रश्नोंको बारंबार लगाकर उनसे इतना अच्छा परिचय प्राप्त करले कि उनके प्रयोगमें उसे तनिक भी हिचक न हो। संभव हो तो वह किसी व्यक्ति से दशमलवोंका ज्ञान प्राप्त करे, क्योंकि इस प्रकार उसे इस विषयका ज्ञान अधिक शीघ्र हो सकेगा। हाई स्कूल और वर्नाक्यूलर फाइनल, दोनों परीक्षाओंके लिये दशमलवों का ज्ञान अनिवार्य है। इसलिये उसे ऐसे व्यक्ति बहुत सुगमतासे मिल जायँगे जो दशमलव जानते हों।

पंचांग बना सकनेके लिये लघुगणक (लागरिथ्म) का ज्ञान आवश्यक नहीं है, परन्तु लघुगणकोंके प्रयोगसे गुणा प्रायः उतना ही शीघ्र हो सकता है जितना जोड़। इसलिये प्रत्येक भावी ज्योतिषीको हम सलाह देंगे कि वह लघुगणकों की सहायतासे गुणा करना सीखले। यह भी कह देना उचित होगा कि पत्रा बनानेके लिये अधिकांश सारिणियाँ इस प्रकार बनी रहती हैं कि गुणा करनेकी आवश्यकता बहुत कम पड़ती है।

संभव है कि आधुनिक गणित न जानने वालेको प्रथम अध्याय बहुत कठिन जान पड़े। ऐसे पाठकसे हम कहेंगे कि यदि प्रथम अध्याय पहली बार ही समझमें न आ जाय तो हताश न होना चाहिये। प्रथम अध्याय विशेष रूपसे कठिन इसी कारण हो गया है कि स्थानाभावके कारण उसे बहुत संक्षिप्त रूपसे लिखना पड़ा है। यदि पहली बार सब कुछ न समझमें आये तो भी आगे बढ़ना चाहिए और फिर जब अन्य अध्यायोंमें पहले अध्यायमें दी गई किसी बातकी आवश्यकता पड़े, तब उसे फिरसे पढ़ना और मनन करना चाहिये। कुछ समयमें, अन्य अध्यायोंमें दिये गए उदाह-रणोंकी सहायतासे प्रथम अध्याय पूर्णतया स्पष्ट हो जायगा।

ऋणात्मक संख्याएँ— यदि किसी दूकानदारकी पूँजी ५०० रुपयेसे बढ़कर ५५० रुपया हो जाय तो हम कहते हैं कि पूँजीमें ५० रुपयेकी 'वृद्धि' हुई। परन्तु यदि पूँजी ५०० रुपयेके बदले ४७५ रुपये हो जाती तो कितने रुपये की 'वृद्धि' होती? लोग कहेंगे कि वृद्धि तो हुई ही नहीं, घाटा हुआ है। तो भी, गणितज्ञको इसीके कहनेमें सुविधा होती है कि अबकी बार २५ रुपयेकी वृद्धि हुई। यदि ५०७ मेंसे २५ घटाना है तो गणितज्ञ बहुधा यह कहता है कि ५०० में -२५ जोड़ो। आगे कई-एक उदाहरणोंसे स्पष्ट हो जायगा कि इस प्रणालीमें विशेष सुविधा है। -२५ को ऋणात्मक (संक्षेपमें ऋण) संख्या कहते हैं। ऋण संख्याओंके प्रयोगसे घटानेकी क्रियाका नाम नहीं लेना पड़ता। जब कोई सारिणी बनाई जाती है और एक ही स्तंभमें कुछ ऐसी संख्याएँ पड़ती हैं जिनको जोड़ना हो और कुछ ऐसी संख्याएँ हों जिनको घटाना हो तो किसे जोड़ो, किसे घटाओ बतलानेमें असुविधा होती है। स्तंभके मस्तक पर केवल यह लिख देना कि जोड़ो, और स्तंभके भीतर घटायी जाने वाली संख्याओंके सामने ऋण चिन्ह (–) लगा देना अधिक सुविधाजनक होता है।

उदाहरण—१२३ और –५ का योग है ११८, –५ और –२५ का योग है –३०; इत्यादि।

ऋण संख्याओंके घटानेके बारेमें नियम यह है कि जिस ऋण संख्याको घटाना हो उसके ऋण चिन्हको हटा कर जोड़ देना चाहिये।

उदाहरण - १२३ मेंसे --५ को घटाओ। उत्तर = १२८।

ऋण संख्याओंके गुणा और भागके लिए नियम यह है कि दो ऋण संख्याओंका गुणनफल धनात्मक माना जाता है, परन्तु यदि गुण्य और गुणकमें से एक धनात्मक और दूसरा ऋणात्मक हो तो गुणनफल ऋण होगा। क्यों इस नियमको सत्य माना जाता है इसका प्रमाण अंकगणितकी अच्छी पुस्तकोंमें मिलेगा।

उदाहरण २ × ३ = ६; २ × (--३) = --६; (--२) × (--३) = ६।

भाग देनेमें भी ऊपरका-सा नियम लागू होता है। जब भाजक और भाज्यमें से केवल एक संख्या ऋण हो तो उत्तर ऋण होता है, अन्यथा धन।

उदाहरण—६ ÷ ३ = २; (--६) ÷ ३ = --२; ६ ÷ (--३) = --२; (--६) ÷ (--३) = २।

सूक्ष्मता—प्रत्येक भांतिकी मापमें, अधिकाधिक सूक्ष्मताकी ओर अग्रसर होने पर, एक अवस्था ऐसी आ आजाती है जब हमारी समूची एकाइयोंसे काम नहीं चलता और उनके भिन्नों (भागों) की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरणतः, यदि हम समय पर विचार करें तो देखेंगे कि बहुत सी घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनके घटित होनेके कालको हम पूरे-पूरे सेकंडोंमें नहीं नाप सकते। जैसे, यदि कोई बाइसिकिल पर १५ मील प्रति घंटेके हिसाबसे चल रहा हो और हम जानना चाहें कि पहिये के एक बार चक्कर खाने में कितना समय लगता है (जब व्यास = २८ इंच) तो गणनासे पता चलेगा कि एक चक्करमें एक सेकंडसे कम समय लगता है; या, यदि हम जानना चाहें कि दस चक्करमें कितना समय लगेगा तो पता चलेगा कि यह काल तीन सेकंड से अधिक और चार सेकंडसे कम है। परन्तु सेकंडोंकी संख्या पूर्ण संख्या नहीं। ऐसे अवसरोंपर हम साधारण भिन्नोंसे काम चला सकते हैं—उदाहरणतः हम कह सकते हैं कि समय लगभग ३॥ सेकंड लगेगा, परन्तु इन भिन्नोंमें कई एक असुविधाएँ होती हैं—न तो उनका जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग आदि सरल है और न हम दो भिन्नोंको देखकर तुरन्त यही बतला सकते हैं कि उनमेंसे कौनसा बड़ा है।

भारतवर्षके प्राचीन ज्योतिषियोंने इन भिन्नोंसे बचनेके लिए एक विशेष युक्तिका उपयोग किया था। उस युक्ति का सार यह है कि बताया जाय कि किसी दीर्घ कालमें कोई घटना कितनी बार होती है। जैसे, ऊपरके उदाहरण-में हम यह बतलानेके बदले कि एक चक्करमें कितना समय लगता है यह बता सकते हैं कि एक सेकंडमें तीन चक्कर लगाता है, या यदि हम अधिक सूक्ष्म चाहें, तो हम कह सकते है, कि १०० सेकंडमें २९९ चक्कर लगते हैं। यह रीति साधारण प्रतिदिनके काम-काजमें भी बरती जाती है। उदाहरणतः, लोग यह न कहेंगे कि आमका भाव है एक पैसेमें ढाई आम; लोग कहेंगे कि भाव है दो पैसे में पांच आम। यदि हम अपना ध्यान पहियेके चक्कर लगाने वाले प्रश्न पर ही केंद्रित रक्खें तो विचार करनेपर पता चलेगा कि अधिक सूक्ष्मता लानेके लिए हमें बहुत बड़े कालको चुनना पड़ेगा और तब उसमें चक्करोंकी संख्या बतानी पड़ेगी। उदाहरणतः, यदि दो व्यक्ति बाइसिकिल पर जा रहे हों और एक का वेग दूसरेसे नाम मात्र ही अधिक हो तो संभव है कि १०० सेकंड में एक बाइसिकिलमें पहियेके दो सौ सवा निन्नानवे चक्कर लगते हों और दूसरेमें इससे तनिकसा अधिक। ऐसी अवस्थामें यदि हम केवल १०० सेकंडोंमें हो चक्करोंकी संख्या बतलाना चाहें और केवल पूर्ण संख्याओंका व्यवहार करें—भिन्नोंका प्रयोग न करें—तो हमें दोनों बाइसिकिलोंके पहियोंके चक्करोंकी संख्या केवल २९९ ही बतलाकर संतोष करना पड़ेगा और यह संतोषजनक न होगा। वस्तुतः, अधिक सूक्ष्मताके लिए हमें १०० सेकंडके बदले एक हज़ार या १ लाख सेकंड, या दो-चार सौ वर्षका काल चुनकर उसमें चक्करोंकी संख्या बतलानी होगी। प्राचीन आचार्यों ने सूर्य, आदिके चक्करोंकी संख्या बतलानेके लिए अत्यंत दीर्घ काल चुना था। उदाहरणः, सूर्य सिद्धांतमें बतलाया गया है कि ४३,२०,००० वर्षमें चंद्रमा ५,७७ ५३ ३३६ चक्कर लगाता है।

इस प्रथामें यह सुविधा तो, अवश्य है कि भिन्नोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती, परन्तु गणनामें उतनी सुविधा नहीं होती जितना दशमलवोंके उपयोगसे होता है, जिसका विवरण हम नीचे देते हैं।

दशमलव—समयकी सूक्ष्म माप बतानेकी एक रीति ऊपर प्रदर्शितकी गयी है और संक्षेपमें वह यह है कि कोई दीर्घ काल लिया जाय—इस काल को युग कहते हैं—और उसमें घटना कितनी बार होती है यह बतलाई जाय। दूसरी रीति यह है कि समयकी एकाईके अधिकाधिक छोटे भाग किये जायँ और उनकी सहायतासे समय बताया जाय। उदाहरणतः चन्द्रमाके एक बार चक्कर लगानेके समयको हम स्थूल रूपसे २७ दिन ७ घंटा ४३ मिनट बता सकते हैं। यहां एक दिनको २४ भागोंमें बांटा गया है और प्रत्येक भागका नाम घंटा रक्खा है, फिर प्रत्येक घँटेको ६० भागोंमें बाँटा जाता है जिसमेंसे प्रत्येक भागको मिनट कहते हैं। परन्तु यदि दिनको २४ के बदले १० भागोंमें बाँटा जाय (इनमेंसे प्रत्येक भागके लिये हम यहाँ दशम नाम रख ले रहे हैं) और इनमेंसे प्रत्येक भाग अर्थात् एक दशम) को फिर दस भागोंमें बाँटा जाय; जिनका नाम हम शततम रखले रहे हैं) और इनमेंसे एक भाग (एक शततम) को फिर दस भागोंमें बाँटा जाय, इत्यादि, और आवश्यकतानुसार दूर तक यही क्रम जारी रक्खा जाय तो विशेष सुविधा होगी—सुविधा केवल लिखने ही में नहीं होगी, जोड़ने, घटाने, गुणा, भाग, इत्यादि सभी गणितीय क्रियाओंमें होगी। लिखनेकी सुविधा तो यह है कि एकाईके बाद केवल एक विंदु (दशमलव विंदु लगाने की आवश्यकता पड़ती है। इस विंदुके बाद (दाहिनी ओर दशम, शततम, सहस्रतम, दशसहस्रतम आदि क्रमानुसार एक दूसरेसे सटकर साधारण रीतिसे लिखे जाते हैं। उदाहरणतः, २९.४०३५ दिनका अर्थ हुआ २९ दिन और ४ दशम ३ सहस्रतम ५ दशसहस्रतम दिन। जोड़में भी विशेष सुविधा है जैसा निम्न उदाहरणसे पता चलेगा।

उदाहरण—२९·४०३५ दिन, ४·३२ दिन, और ७·६०७८ दिनका योग बताओ।

२९·४०३५
४·३२
७·६०७८
योग= ४१·३३१३ दिन

क्रिया—संख्याओंको एकके नीचे एक रक्खा, इस प्रकारकि प्रत्येकका दशमलव विंदु पहले वाली संख्याके दशमलव विंदुके नीचे पड़े। अब पता चलता है कि पहली संख्याके ५ दश सहस्रतमको तीसरी संख्याके ८ दशसहस्रतमोंमें जोड़ना है। प्रत्यक्ष है कि उत्तर होगा १३ दश सहस्रतम, जो बराबर है १ सहस्रतम और ३ दश सहस्रतम। इस प्रकार योगफलमें सहस्रतमोंके नीचे ३ लिख दिया और हाथ लगा १। इसी प्रकार आगेकी भी क्रियाकी जाती है। विचार करने पर पता चलेगा कि साधारण जोड़ और दशमलवोंके जोड़में कोई अन्तर नहीं है। यह सुविधा दिन घंटा, मिनट, सेकंड; या दिन, घटी, पल, विपल आदिमें नहीं है। उसमें विपलोंके योगको ६० से भाग देना पड़ता है, फिर पलोंके योगको ६० से भाग देना पड़ता है, इत्यादि।

अन्य मिश्र राशियाँ—यह न समझना चाहिये कि केवल समय नापने ही में दशमलवोंका प्रयोग हो सकता है। सभी मिश्र राशियोंकी नापमें दशमलवोंका प्रयोग हो सकता है। कई देशोंमें तो दशमलव प्रथाके अतिरिक्त कोई अन्य प्रथा चलती ही नहीं। उदाहरणतः, फ्रांसमें लम्बाई को एकाई एक मीटर है। यह हमारे गज़से थोड़ा-सा ही बड़ा होता है। इसे वहां लोग दस भागोंमें बाँटते हैं और प्रत्येक भागको डेसीमीटर कहते हैं; प्रत्येक डेसीमीटरको दस भागोंमें बाँटते हैं जिसको सेंटी मीटर कहते हैं; प्रत्येक सेंटीमीटरको दस भागोंमें बाँटते हैं जिनको मिलीमीटर कहते हैं। फ्रांसकी यह प्रथा अब सारे वैज्ञानिक संसारमें प्रचलित हो गयी है क्योंकि इसमें विशेष सुविधा है। परन्तु यदि गज़में ही नाप बतलानी हो तो हम अपनी सुविधाके लिए एक गज़को दस भागोंमें बाँट सकते हैं और प्रत्येकको दशम गज़ कह सकते हैं; प्रत्येक दशम गज़को फिर दस भागोंमें बाँटकर प्रत्येकको हम शततम गज़ कह सकते हैं, इत्यादि।

अब कल्पना कीजिए कि हमें निम्न प्रश्नका उत्तर निकालना है :—

यदि कोई रेल गाड़ी एक घंटेमें २१·४३ मील जाती है तो वह ५·६७ घंटेमें कितने मील जायगी ?

यहाँ हमें २१·४३ को ५·६७ से गुणा करना है, परन्तु हम प्रश्नको यों कर सकते हैं :—

१ टेघंमें गाड़ी जाती है २१·४३ मील

× ५ घंटेमें गाड़ी जाती है १०७.१५ मील यहाँ हम सोचते हैं कि २१.४३ मीलको ५ से गुणा करना है। परन्तु २१.४३ मीलका अर्थ है २१ मील ४ दशम मील और ३ शततम मील। ३ शततम मीलको ५ से गुणा किया तो मिला १५ शततम मील। परन्तु १५ शततम मील = १ दशम मील + ५ शततम मील। इसलिए शततमोंके स्थानमें ५ लिखा और हाथ लगा १; इत्यादि। थोड़ा सा विचार करनेपर पता चलेगा कि यह क्रिया वस्तुतः साधारण गुणाकी क्रिया ही जैसी है।

इसके पश्चात् पता चलाना है कि .६ घंटेमें गाड़ी कितनी दूर जायगी। प्रत्यक्ष है कि यदि हम यह निकालें कि ६ घंटेमें गाड़ी कितनी दूर जायगी और उसे १० से भाग देदें तो शुद्ध उत्तर प्राप्त हो जायगा। इसलिये क्रिया यों होगी:—

१ घंटेमें गाड़ी जाती है २१.४३ मील इसलिये ६ घंटेमें गाड़ी जाती है १२८.५८ मील इसलिये ०.६ घंटेमें गाड़ी जाती है १२.८५८ मील।

अंतिम संख्या १२.८५८ मीलको दससे भाग देनेसे प्राप्त हुई है और १० से भाग देनेकी क्रिया यों समझाई जा सकती है कि १२८ मीलको १० से भाग दिया तो मिला १२ मील और ८ दशम मील। फिर ५ दशम मील को १० से भाग दिया तो मिला ५ शततम मील। अन्तमें ८ शततम मीलको १० से भाग दिया तो मिला ८ सहस्रतम मील। इस प्रकार हमको मिला १२ मील ८ दशम ५ शततम ८ सहस्रतम मील, अर्थात १२.८५८ मील। तनिक-सा विचार करनेसे पता चलेगा कि यह क्रिया भी साधारण गुणा-जैसी ही है, केवल दशमलव विंदुके स्थानमें अन्तर है।

इसी प्रकार हम पता चला सकते हैं कि ०.०१ घंटेमें गाड़ी कितनी दूर जायगी। उत्तर मिलेगा १.५००१ मील।

तीनों संख्याओंको जोड़नेसे अन्तिम उत्तर मिलेगा। इसके लिये तीनों संख्याओंको एकके नीचे एक लिखना पड़ेगा। हम अलग-अलग गुणा करके अन्तमें संख्याओंको एकके नीचे एक लिखनेके बदले आरम्भसे ही इस प्रकार लिख सकते थे कि संख्याएँ एकके नीचे एक पड़ें। तब क्रिया यों लिखी जाती:—

```
   २१.४३    मील
    ५.६७
 ----------
  १०७.१५
   १२.८५८
    १.५००१
 ----------
  १२१.५०८१  मील
```

हम चाहें तो बीच वाली पंक्तियोंमें दशमलव विंदु छोड़ भी सकते हैं और इच्छा हो तो हम बीचकी तीन पंक्तियोंको उलटे क्रमसे भी लिख सकते हैं। तब क्रिया यों लिखी जायगी:—

```
    २१.४३   मील
     ५.६७
  ---------
    १५००१
   १२८५८
  १०७१५
 -----------
  १२१.५०८१  मील
```

यदि इस क्रियाकी तुलना २१४३ को ५६७ से गुणा करनेकी क्रियासे की जाय तो पता चलेगा कि दशमलवोंका गुणा ठीक साधारण गुणा जैसा है। अन्तमें गुणनफलमें एक स्थान पर दशमलव विंदु लगाना पड़ता है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि गुणनफलमें दशमलव अंकोंकी संख्या (अर्थात् दशमलव विंदुकी दाहिनी ओर पड़ने वाले अंकोंकी संख्या) गुण्य और गुणकके दशमलव अङ्कोंकी संख्याओंके योगके बराबर होगा। इसी नियमसे अन्तमें दशमलव विन्दु उचित स्थान पर लगाया जा सकता है।

ऊपरके विवेचनको समझनेमें सम्भवतः समय लगेगा, परन्तु कुछ अभ्यासके पश्चात् नौसिखिया भी दशमलव संख्याओंको उतनी ही सुगमतासे गुणा कर सकेगा जितनी सुगमतासे वह साधारण गुणा करता है।

दशमलवोंकी उपयोगिता समझनेके लिये अब इस पर विचार करें कि निम्न प्रश्नके हल करनेमें कितना समय लगेगा:—

'यदि गाड़ी एक घंटेमें २१ मील ८ फरलांग ५३ गज जाती है तो ५ घण्टे ४० मिनट १२ सेकंडमें कितनी दूर जायगी'।

इससे स्पष्ट हो जायगा कि समय, दूरी आदि राशियों को दशमलवोंमें नापनेसे बहुत अधिक सुविधा होती है।

सन्निकटीकरण—व्यवहारमें यथार्थ मान जाननेकी आवश्यकता बहुत ही कम पड़ती है। उदाहरणतः, यदि थानमें तीस गज़ कपड़ा हो और थानका मूल्य १० रुपया हो, तो १ गज़का मूल्य होगा ५ आना १⅓ पैसा, परन्तु यदि वस्तुतः कोई १ गज़ कपड़ा मोल ले तो न तो दूकानदार और न खरीदार ⅓ पैसेकी परवा करेगा। ज्योतिषीको बराबर ऐसा ही करना पड़ता है। उदाहरणतः, यदि सूर्योदयका समय ६ बजकर ५ मिनट ३·२८४ सेकंड गणना से निकले तो इसे ६ बजकर ५ मिनट लिख देना यथेष्ट होगा, क्योंकि सूर्योदय कोई ऐसी घटना नहीं है जिसके समयको सेकंड और सेकंडके दशमलवोंमें नापा जा सके।

परन्तु यदि यह बतलाना हो कि रोहिणी नामक तारा चन्द्रमाके पीछे पड़कर कब छिप जायगा और उत्तर निकले १०बज कर ५ मिनट ३.२८४ सेकंड तो इसे १० बजकर ५ मिनट ३·२८ सेकंड लिखना उचित होगा, क्योंकि ज्योतिषी ऐसी घटनाको दूरदर्शक (दूरबीन) से देखेगा और समयको ०·०१ सेकंड तक नापनेकी चेष्टा करेगा। परन्तु यदि कोई इसी समयको १० बजकर ५ मिनट ३·२८३९७६ सेकंड लिखे तो व्यर्थ होगा ; इतनी सूक्ष्मतासे समय नापा नहीं जा सकता और न वे अंक ही जिनपरसे यह गणना की गई है इतने सच्चे होंगे कि सेकंडोंके ६ दशमलव अंकों तक शुद्ध उत्तर निकल सके। इस बातको बहुतसे लोग अच्छी तरह नहीं समझ पाते। इसीलिये इस विषय पर दो शब्द और लिखना अनुचित न होगा।

भ्रमात्मक शुद्धता—यह अनुभवसिद्ध बात है कि मनुष्यकी इन्द्रियोंकी तीक्ष्णता सीमित है। एक सीमा तक तो हम सूक्ष्मता ला सकते हैं परन्तु उसके आगे बढ़ना असम्भव हो जाता है। उदाहरणतः, यदि हम पृथ्वी पर स्थित दो विंदुओंके बीचकी दूरी नापें और यह दूरी लगभग १५ मील हो, तो दूरीको इस प्रकार नापना कि त्रुटि ०·१ इंचसे अधिक न हो प्रायः असम्भव है। केवल इतनी शुद्धताके लिये भी हमें विशेष सावधानी रखनी पड़ेगी। पहले तो दोनों स्थानों पर पीतल या अन्य धातुकी खूँटियाँ गाड़नी पड़ेंगी और उन खूँटियों पर बारीक विंदुओंको अंकित करके (या एक दूसरीको काटती हुई दो रेखाएँ खींचकर) पहले यह ठीक-ठीक निर्धारित कर देना होगा कि हम वस्तुतः किस विंदुसे किस विंदु तककी दूरी नापना चाहते हैं। फिर दोनों विन्दुओंके बीच सच्ची सीधी रेखा खींचनी होगी। बहुत सच्चा मापक लेना होगा। प्रत्येक नापमें सावधानी रखनी होगी कि कहीं भी त्रुटि ०·०१ इंच से अधिक न पड़े। इसका भी ध्यान रखना पड़ेगा कि मापक का तापक्रम (गरमी-सरदी) बढ़ने या घटने न पाये, क्योंकि तापक्रमके घटने-बढ़नेसे मापक नाममात्र छोटा या बड़ा हो जाता है। परन्तु सब कुछ करने पर भी हम देखेंगे कि हम जितनी बार इस दूरीको नापेंगे उतनी बार कुछ भिन्न ही उत्तर आयेगा। अन्तर कुछ इंचों तकका हो सकता है। ऐसी दशामें हम सौ, सवा सौ, बार नापकर सब मानों का मध्यम मान लेंगे। परन्तु संभव है मध्यम मानकी गणना करनेमें उत्तर निकले १५ मील २·३०४८७ इंच। तो क्या इसी मानको पूर्वोक्त दो विन्दुओंकी दूरीका मान लिखना उचित होगा? कदापि नहीं। दूरीको वैज्ञानिक लोग १५ मील २·३०४८७ इंच तभी लिखेंगे जब नाप इतनी सूक्ष्म हो कि अंतिम दशमलव अंक पर कुछ भरोसा किया जा सके। अन्यथा ऐसा उत्तर देना वस्तुतः वैसी ही बात होगी जैसे किसीके पूछनेपर कि आपकी गाय कितना दूध देती है मैं उत्तर दूँ कि मेरी गाय ५ सेर ३ छटांक २ तोला १ माशा पौने चार रत्ती दूध देती है!

वस्तुतः सन्निकट मान देना ही उचित होगा। ऊपरके उदाहरणमें दूरी १५ मील २ इंच या १५ मील २·३ इंच बतायी जा सकती है।

दशमलव अंकोंकी संख्या बढ़नेसे सूक्ष्मता बहुत शीघ्र बढ़ती है। उदाहरणतः ०·१ इंच एक इंचका दसवां भाग है जो सुगमतासे नापा जा सकता है, परन्तु ०·०१ इंच एक इंचका सौवाँ भाग है जो कोरी आँखसे (अर्थात् बिना सूक्ष्मदर्शक यंत्रकी सहायताके) कठिनाईसे ही देखी जा सकती है। ०·००१ इंच एक इंचका हज़ारवां भाग है और सूक्ष्मदर्शकसे ही देखा जा सकता है। ०·०००१ इंचको सूक्ष्मदर्शकसे भी देखना कठिन है। इसी प्रकार १ सेकंड में हम प्रायः आठ तककी गिनती गिन सकते हैं; ०·१ सेकंड

तक समय केवल विशेष घड़ियोंसे ही ज्ञात हो सकता है; संसारमें कोई भी ऐसी घड़ी नहीं है जो ०·०१ सेकंड तक समय बताया करे ; ०·००१ सेकंड तकका समय घड़ियोंसे नहीं, विशेष रीतियोंसे वैज्ञानिक नाप सकते हैं; ०·०००१ सेकंड या इससे कम समयकी कल्पना भी कठिन हो जाती है। ऐसी अवस्थामें समय बतानेमें सेकंडोंमें चार दशमलव अंक दिखलाना निरर्थक है।

गुणा और भाग करनेमें फलमें बहुधा आवश्यकतासे अधिक अंक मिलते हैं। अंतमें अनावश्यक अंकोंका परित्याग कर देना चाहिए। उदाहरणतः, पहलेके गुणावाले प्रश्नमें यदि गाड़ीके वेगमें (अर्थात् २१·४३ मील प्रति घंटामें) अंतिम अंक संदिग्ध हो; और इसी प्रकार समय (५·६७ घंटे) में भी अंतिम अंक संदिग्ध हो और हम संदिग्ध अंकोंको तिरछी रेखासे काटकर सूचित करें तो परिणाम यह होगा :—

```
    २१·४३ मील
      ५·६७
   ─────────
     १५००१
    १२८५८
   १०७१५
   ─────────
   १२१·५०८१ मील
```

हम देखते हैं कि उत्तरमें अंतिम अंकको कौन कहे, यह भी संदिग्ध है कि दूरी निकटतम मील तक शुद्ध है या नहीं, इसलिए गुणनफलमें सब दशमलव अंकोंका रखना भ्रमोत्पादक है। उत्तर १२२ मील, या १२१·५ मील देना पर्याप्त है।

[यह दिखलाया जा सकता है कि जब कभी कुछ दशमलव अंकोंको छोड़ना हो तो रक्खे गये अंतिम अंक में एक की वृद्धि तब अवश्य कर देनी चाहिए जब छोड़े गये अंकोंमें से प्रथम अंक ५ या ५ से अधिक हो।]

भाग— दशमलवोंके व्यवहारमें जो सुविधा गुणामें है वही भागमें भी है। किसी दशमलव वाली संख्याको अन्य वैसी ही संख्यासे भाग देनेकी क्रिया साधारण भाग देनेके समान ही होती है; केवल भजनफलमें उचित स्थानमें दशमलव विन्दु लगाना पड़ता है। किसी प्रश्न में दशमलव बिन्दुका उचित स्थान क्या होगा यह जाननेके लिए एक रीति यह भी है कि दी हुई संख्याओंका सन्निकट (स्थूल) मान लेकर, अनुमान लगा लिया जाय कि उत्तर संभवतः कितना आयेगा और उसीके अनुसार दशमलव विन्दु लगाया जाय।

उदाहरण—१२१·५ को ५·६७ से भाग दो।

१२१५ पर आवश्यकतानुसार शून्य बढ़ाते हुए ५६७ से भाग दिया। इस प्रकार हमें २१४२८... मिला। क्रिया अभी समाप्त नहीं हुई है। इसके बाद भी अंक आते जायँगे, परन्तु हमारे लिए इतना ही पर्याप्त होगा।

```
५६७)१२१५००००...(२१४२..
    ११३४
    ────
      ८१०
      ५६७
     ────
     २४३०
     २२६८
     ────
      १६२०
      ११३४
      ────
       ४८६
```

अब प्रश्न यह है कि दशमलव कहाँ लगावें। वास्तविक भाजक ५ से कुछ अधिक है और भाज्य लगभग १२० है। इसलिए उत्तर २४ से कुछ कम होगा। इसलिए २१ के बाद दशमलव बिन्दु लगाना चाहिए और इस प्रकार उत्तर मिलेगा २१·४२८..., या, यदि दो दशमलव अंक रक्खे जायँ तो उत्तर होगा २१·४३, अधिक अंकोंका रखना बेकार है।

दशमलव लगानेके विशेष नियम भी हैं जो किसी भी अंकगणितकी पुस्तकसे मिल सकेंगे (उदाहरणतः, देखो मेरी वर्नाक्युलर फ़ाइनल अरिथमेटिक; प्रकाशक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद)।

गुणा आदिके लिये सरल रीतियाँ– गुणा, भाग आदिके लिए मशीनें भी बिकती हैं। उदाहरणतः एक मशीन ऐसी है कि यदि किसी भी दो बड़ी-बड़ी (सात-सात अंकोंकी) संख्याओंको गुणा करना हो,जैसे ४३७०१८५ को ५६०७५०२ से तो उत्तर १० सेकंडमें निकल आयेगा। यह मशीनें मँहगी होती हैं। इसलिए हमारे पाठक संभवतः उनका उपयोग न कर सकेंगे।

एक अत्यंत सरल मशीन में केवल दो अंकित पटरियाँ रहती हैं जिनमेंसे एक दूसरेके भीतर खिसक सकती है। इस यंत्रको स्लाइड रूल कहते हैं। इससे किसी भी चार अंकोंकी संख्याको चार अंकोंको संख्यासे गुणा करके गुणनफल सन्निकट रूपसे तीन या चार अंकों तक निकाल सकते हैं, परन्तु चौथे अंक पर भरोसा नहीं किया जा सकता है। उदाहरणतः २१·४३ को ५·६७१ से गुणा करनेपर इस यंत्रसे पता चलेगा कि उत्तर लगभग १२१·७ है, परन्तु अंतिम अंक ७ के बदले ६ या ८ हो तो कोई अचरज नहीं। जब कभी केवल सन्निकट मान जानना रहता है तो इस यंत्रसे बिशेष सहायता मिल सकती है।

मशीनोंके अतिरिक्त गुणनफलकी सारिणियाँ भी अँग्रेज़ी अक्षरोंमें छपी हैं और बिकती हैं. जिनमें किसी भी तीन अंककी संख्याको किसी भी तीन अंककी संख्यासे गुणा करनेपर इष्ट गुणनफल तुरन्त मिल जाता है। ऐसी सारिणियोंसे किसी भी छः अंकों की संख्याको किसी भी ६ अंककी संख्यासे गुणा करके आधे या एक मिनटमें (अभ्यासके अनुसार) उत्तर निकाला जा सकता है। उदाहरणतः, यदि ४३७०१८ को ५६१७९२ से गुणा करना हो तो हम सारिणीमें ७९२ का पहाड़ा निकालेंगे। यह पुस्तकके पृष्ट ७९२ पर मिलेगा। वहां हम देखेंगे कि छपा है ७९२ × १ = ७९२ ; ७९२ × २ = १५८४ ; इत्यादि। इस सारिणीसे हमें तुरन्त पता चल जायगा कि ७९२ × १८ = १४,२५६ और ७९२ × ४३७ = ३४६, १०४। इसी प्रकार हम ५६१ वाले पृष्टसे ५६१ × १८ और ५६१ × ४३७ का मान जान सकते हैं। इन संख्याओंको यथास्थान लिखनेसे और जोड़नेसे हमको गुणनफल मिल जायगा, जैसे बग़लमें करके दिखलाया गया है।

```
       ४३७०१८
       ५६१७९२
      -------
        १४२५६
     ३४६१०४
       ९९९८
   २४४६५७
   ------------
   २४५०१३११६२५६
```

इस प्रकार सारिणीसे गुणामें बड़ी सुविधा होती है। भागमें भी सुविधा होती है। तो भी सन्निकट क्रियाओंके लिए इस सारिणी में उतनी सुविधा नहीं है जितना लघुगणक लॉगरिथ्म) की सारिणियों से।

अनाजको कीड़ोंसे कैसे बचाया जाय

बोनेके लिये अच्छे आलू तैयार करनेकी विधि —

इंडियन 'फार्मिंग' पत्रिकाके सबसे बादके अंकमें कीड़ोंसे एकत्रित अनाजकी रक्षा करने तथा बोनेके लिये अच्छे किस्मके आलू पैदा करनेके सम्बन्धमें लेख प्रकाशित हुए हैं।

पत्रिकामें बताया गया है कि एकत्रित अनाजको कीड़ोंसे बचानेके लिये अनाजकी पतली तह धूपमें फैला देनी चाहिये और उसको १३० से १४० डिग्री तककी गर्मी आध घंटे तक पहुँचानी चाहिये। इससे खपरा, सुसरी और सुन्दवाली सुसरी आदि कीड़े नष्ट हो जायंगे। अनाज भरनेके गोदामोंको हवा-रोक बना कर तथा उनमें १५० फ० डिग्रीसे अधिक गर्मी पहुँचाकर उन्हें कीड़ोंसे मुक्त किया जा सकता है। खत्तियों, मिट्टीके बरतनों और लकड़ीके सन्दूकोंमें भरे अनाजकी रक्षाके लिये कपड़ेके छोटे-छोटे थैलोंमें एक-एक तोला पारा भर कर ३ या ४ तोले प्रतिमनके हिसाबसे इन थैलोंको अनाजमें रख देना चाहिये। अनाजके खुले ढेरसे कीड़ोंको पकड़नेके लिये अनाज पर टाटकी बोरियां डाल देनी चाहिये। खपरा कीड़े, जो खुरदरी तहपर चिपट जाते हैं, इन बोरियों पर इकट्ठे हो जांयगे। दूसरे दिन इन बोरियोंको हटा कर कीड़ोंको नष्ट किया जा सकता है।

बोनेके लिए आलू

एक दूसरे लेखमें बताया गया है कि बोनेके लिये अच्छे किस्मके आलू प्राप्त करनेके लिये आलूके खेतसे ऐसे समस्त पौधोंकोभी उखाड़ फेंकना चाहिये जिनका आकार-प्रकार साधारण दिखायी देता हो। ऐसे पौधोंको भी उखाड़ फेंकना चाहिए जिनमें रोगोंके चिन्ह दिखाई देते हों, जैसे कि जिनके पत्ते मुड़े हुए हों या जिन पर धारियाँ या गाँठें सी मालूम पड़ती हों। ऐसे खेतोंमें पैदा हुये आलुओंके

[शेष १३५ पर]

पंचाग-शोधन

[ले० – महावीरप्रसाद श्रीवास्तव]

हमारे पंचागोंमें पिछले बहुत दिनोंसे जो भूलें चली आ रही हैं उनका सुधार करनेके लिये काशी नागरी प्रचारिणी सभाने एक समिति बनाई है। उसके सामने मैंने अपने कतिपय विचार रखे थे। नीचे उन्हींका सारांश विज्ञानके पाठकोंकी जानकारीके लिये दे रहा हूँ।

मूलविन्दु, अयनांश और वर्षमान—यह तीनों एक दूसरेसे इतने सम्बद्ध हैं कि तीनोंका विचार एक साथ करना चाहिए। राशिचक्रका स्वाभाविक मूलविन्दु तो वसन्त-सम्पात विन्दु है। परन्तु दुर्भाग्यसे यह चल है, और प्राचीनकालसे अब तक ज्योतिषियोंको स्थिर नहीं रहने देता। यही कारण है कि नक्षत्रोंका क्रम भी बदलना पड़ा है। वसन्त-सम्पात विन्दुकी गति लगभग ७२ वर्षमें एक अंश होनेके कारण इसके चलनेका पता जल्दी नहीं लगता इसीलिये विक्रमकी छठीं और सातवीं शताब्दीके ज्योतिषाचार्योंने इनकी चर्चा तक नहीं की है। सूर्यसिद्धांत के गणितमें ऐसी कोई रीति नहीं पायी जाती जिससे पता चलता हो कि इसके रचयिताको इसका ज्ञान था। अयनांश सम्बन्धी श्लोक पीछेसे मिलाये हुए मालूम होते हैं जिनका रूप भास्कराचार्यके समयमें (१२०७ वि०) कुछ और ही था। परन्तु इस समय अश्विनीका आदि विन्दु इतना रुढ़ हो गया है कि इसके विरुद्ध वसन्त-सम्पात विन्दुका प्रस्ताव क्रान्तिकारी समझा जायगा इसलिये अश्विनीका 'आदि विन्दु' ही मूलविन्दु मानना पड़ेगा। परन्तु इसका तो आकाशमें कोई अस्तित्व ही नहीं है। भिन्न-भिन्न आचार्योंने वर्षका मान भिन्न-भिन्न स्थिर करके गणना द्वारा मेष संक्रान्ति काल निश्चय करनेका नियम बनाया है, इसीलिये सन्क्रान्तियोंमें बड़ा भेद पड़ गया है। सूर्य सिद्धान्तका वर्षमान ३६५ दिन १५ घड़ी ३१ पल ३१.४ विपल है, ब्रह्मगुप्त, भास्कराचार्य आदिका वर्षमान घड़ी तक तो मिलता है, परन्तु पल विपलमें कुछ कम है अर्थात् ३० पल और २२.५ विपल है। परन्तु यह दोनों वर्षमान अब अशुद्ध सिद्ध हुए हैं। आजकलके वेधोंसे यह सिद्ध हो गया है कि शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष (sidereal year) ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५६.८७ विपलका होता है जिसको ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल और ५७ विपलका मान लेनेमें १०० वर्षमें १३ विपल अथवा ५ सेकंडका अंतर पड़ेगा। सूर्य-सिद्धान्तका वर्षमान ८ पल ३४.५ विपल बड़ा है इसलिये इससे मेष संक्रान्ति काल निश्चय करनेमें मेषका आदि विन्दु ८॥ विकलाके लगभग वार्षिक गतिसे आगे खिसक रहा है जो प्रायः ४०० वर्षमें एक अंशका भेद डाल देगा। इसलिये आवश्यक है कि इस समय मूलविंदु स्थिर करके वर्षमान भी शुद्ध ग्रहण किया जाय।

सूर्यसिद्धान्तमें अयनांशकी शुद्धता परखनेके लिये एक श्लोक है (त्रिप्रश्नाधिकार श्लोक ११) जिसके आधारपर सूर्यसिद्धान्तके विज्ञानभाष्य पृष्ठ ३७१ में सिद्ध किया गया है कि १९७९ वि० की मेषसंक्रान्ति-कालमें स्पष्ट अयनांश २२°३७′३८″.१ था अर्थात् सूर्यसिद्धान्तके नियमके अनुसार मेषका आदि-विन्दु वसंत-संपातसे इतने अंतर पर था। उस समयसे गत मेष-संक्रान्ति-काल तक २१ वर्ष हुए जिसमें अयनांश की गति विज्ञानभाष्य पृष्ठ ३६८ में दिये हुए सूत्र १० के अनुसार २०′३२″ के लगभग होती है। इतना बढ़ा देनेसे सूर्य सिद्धान्तके अनुसार अयनांश है २२°५८′१०″। यदि अक्ष विचलन (nutation) का संस्कार भी किया जाय तो स्पष्ट अयनांश होता है २२° ५७′ ५७″। इसलिये यदि मूलविन्दु वह स्थिर कर दिया जाय जो वसन्त-सम्पात-विन्दुसे २२° ५७′ ५७″ या २२° ५८′ आगे है तो भविष्यके इतिहासमें यह लिखा जाय कि २००० सम्वत् विक्रमीयकी मेष-संक्रान्ति-कालमें सूर्य जिस विन्दु पर था वही मूल-विन्दु या मेषका आदि-विन्दु या अश्विनीका आदि-विन्दु है। परन्तु यह स्वाभाविक नहीं है और न किसी आकाशीय घटनासे सम्बन्ध रखता है।

इस सम्बन्धमें यह भी देख लेना चाहिए कि अन्य ज्योतिषाचार्यों ने इसपर क्या सोचा है। महाराष्ट्र प्रान्तमें श्री वेंकटेश बापूकेतकर जी बड़े ही प्रसिद्ध ज्योतिषी हो गये हैं जिनका स्वर्गवास अभी हाल ही में हुआ है। इन्होंने ज्योतिषके संशोधनमें बहुत काम किया है और कई ग्रन्थ लिखे हैं जिनमेंसे केतकी ग्रहगणित एक

है। इसमें इन्होंने कई प्राचीन प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि अश्विनीका आदि-विन्दु वह है जिससे चित्रा तारा ठीक ६ राशि या १८० अंश दूर पड़ता है। चित्रा तारेका सायन भोग १८०० शककी मेष संक्रान्तिकाल में २०२°८'३३" विकला था यदि इससे १८०° घटा दिया जाय तो २२°८' ३३" अयनांश होता है। यही केतकी ग्रहगणितमें अयनांश-का क्षेपक माना गया है। गत मेष संक्रान्ति कालमें १८६५ शक हो गया इसलिये ६५ वर्षमें शुद्ध वार्षिक अयनगति ५०'२६ विकलाके हिसाबसे अयनांशकी वृद्धि होगी ६५×५०"·२६=५४'२७", इसलिये अयनांश होगा २३°३' जो ऊपर दिये हुये अयनांशसे केवल ५ कला अधिक है। परन्तु इसका सम्बन्ध चित्रा तारेसे होनेके कारण यह स्वाभाविक हो जाता है। यह याद रहे कि सूर्य-सिद्धान्त भी चित्रा तारेका भोग १८० अंश ही बतलाता है। इसलिये यह अयनांश चित्रा तारा और सूर्य-सिद्धान्त दोनोंसे मिल जाता है। इसलिये मेरी तुच्छ बुद्धिमें तो यह आता है कि गत मेष-संक्रान्ति कालका अयनांश २३°३' स्थिर किया जाय जिसका सम्बन्ध चित्रा तारा, सूर्य-सिद्धान्त, विक्रमका २००० सम्वत् और काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्वर्ण जयन्ती सबसे हो जाता है। बंगला की विशुद्ध सिद्धान्त पंजिकाका अयनांश २३°३'१०" है जो बहुत भिन्न नहीं है।

इस प्रकार मूलविन्दु स्थिर हो जाता है। वर्षमान शुद्ध नाक्षत्र सौर वर्ष होना चाहिये जो पहले बतला दिया गया है, अर्थात् ३६५ दिन १५ घड़ी २२ पल ५७ विपल। अन्य वर्ष अब अशुद्ध और काल्पनिक हो गये हैं।

तिथिमें लम्बन संस्कार अव्यवहार्य है। चन्द्रमाका लंबन क्षण क्षण बदलता रहता है क्योंकि लंबन नतांश पर अवलम्बित होता है। जिसका सूत्र यह है—

$$\frac{\text{पृथ्वी की त्रिज्या}}{\text{चन्द्रमाकी दूरी}} \times \text{स्पष्ट नतांशकी ज्या}$$

। चन्द्रमाका नतांश प्रति क्षण बदलता रहता है इसलिये लम्बन भी। जिस समय चन्द्रमा क्षितिज पर रहता है उस समय लंबन परम होता है, जैसे जैसे यह ऊपर उठता है वैसे लंबन घटता जाता है इसलिये तिथि, नक्षत्र, योगमें यह संस्कार नहीं दिया जाता। ऋषियों ने शायद इसीलिये यह संस्कार नहीं माना है।

बेधोपलब्ध और सिद्धान्तोपलब्ध दोनों या एक—मेरी समझमें जिसे सिद्धान्तोपलब्ध कहा जाता है वह काल्पनिक हो गई है। सिद्धान्तके जितने आचार्य हो गये हैं सबकी गणनामें भिन्नता हो गई है इसलिये किसी एक सिद्धान्तको ठीक मानना जब कि वह भी बेधोपलब्ध गणना से भिन्न है उचित नहीं। हमारे आचार्योंने कभी यह नहीं माना है कि ज्योतिषमें वेधसे संशोधन न किया जाय। इस सम्बन्धमें विज्ञानभाष्यके पृष्ट १५७-१७० तक पर्याप्त चर्चा की गयी है। प्राचीन प्रथाके मानने वाले बहुतसे विचार शील ज्योतिषियोंने इसको स्वीकार भी कर लिया है। जबलपुरके प्रसिद्ध ज्योतिषी पं० लक्ष्मीप्रसाद जी पाठक जिनका गोलोकवास अभी हाल ही में हुआ है अपने ज्योतिर्विवेकरत्नाकर में लिखते हैं, "ग्रह साधन गणित दृक् प्रत्ययावह होना चाहिये'(पृ० ३६२)। भास्कराचार्यजी ने भी लिखा है, "तर्हि साम्प्रतोपलब्ध्यनुसारिणी... यदा पुनर्महता कालेन महदंतरं भविष्यति तदा महामतिमन्तो ब्रह्मगुप्तादीनां समानधर्मिण एवोत्पत्स्यन्ते। ते तदुपलब्ध्यनुसारिणी गतिमुररीकृत्य शास्त्राणि करिष्यन्ति (गोलबन्धाधिकार १६-१८ श्लोकोंकी वासना)। केशव, गणेश आदि ज्योतिषाचार्योंके विचार विज्ञान-भाष्यमें प्रचुरतासे दिये गये हैं। इसलिये मेरे विचारसे तो पंचांगोमें वेधोपलब्ध बातोंका रखना ही उपयुक्त है। परन्तु यदि कुछ सज्जनोंके विचारसे यह उचित न जान पड़े तो साथ-साथ दोनों ही रखे जांय जिससे यह लाभ होगा कि जिसको जो उचित समझ पड़ेगा उसे वह काममें लावेगा। इससे एक बातका और लाभ होगा। प्रत्येक ज्योतिषीको यह जाननेका अवसर मिलेगा कि वेधोपलब्धसे सिद्धान्तोपलब्धमें कहाँ-कहाँ कैसा अन्तर है और कौन उपयुक्त है। मुझे तो कुछ ज्योतिषियोंसे इस विषयमें बातचीत करनेका मौका मिला है। वे मान रहे हैं कि बेधोपलब्ध ही ठीक है। यहां तक कि वे ऐसी सारणी तैयार करनेके पक्षमें हैं जिससे वेधोपलब्ध अंकोंसे पंचाग बनानेमें सुभीता हो जाय!

सूर्य, चन्द्र तथा ताराग्रहोंका आनयन वेधोपलब्ध अंकोंसे ही होना ठीक है सिद्धान्तोंकी गणना स्थूल हो

गयी हैं। इसका प्रमाण पहले ही दिया जा चुका है और ज्योतिषियोंकी परम्परासे भी यही सिद्ध होता है। जब वेधोपलब्ध मूलाङ्कोंसे ग्रहगणित होने लगेगा तब ग्रहोंके दैनिक उदयास्तकी गणना भी सुगम हो जायगी। हाँ, गुरु-शुक्रके लोप और दर्शन सम्बन्धी उदयास्तका विचार (Heliacal rising) सबको मिलकर निश्चय करना चाहिये। सूर्यसिद्धान्त, भास्कराचार्य आदिने कालांशके-अनुसार उदयास्तको गणना करनेकी रीति बतलायी है है परन्तु यह तभी ठीक-ठीक जाना जा सकता है जब वेधोपलब्ध अंकोंसे गणनाकी जाय। परमकालांशोंकी सीमा भी फिरसे निश्चय करनी चाहिये क्योंकि सिद्धान्त ग्रन्थोंकीदी हुई सीमा स्थूल गणनाके आधार पर निश्चित की गई थी इसलिये अब वह बहुत स्थूल हो गई है। वेधोपलब्ध गणनाके आधार पर परमकालांश निकाल कर भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें ग्रहोंका लोप और दर्शन देखा जाय और सीमा निश्चितकी जाय तभी काम चल सकता है। उदाहरणके लिए शुक्रके परमकालांश सू० सि० में ८ और १० बतलाये गये हैं। परन्तु आचार्य बेंकटेश बापूकेतकर ज्योतिर्गणितमें लिखते हैं "वातावरणे निर्मलेसति हेमन्ततौं षण्मिते कालांशान्तरे शुक्रो दृश्यते। प्रयत्ने कृते सार्धपञ्चमिते कालांशान्तरेपि द्रष्टुं शक्यते। परमस्मिन-प्रसंगे तत्तेजोहानिरियती जायते यत्केवला स्तीक्ष्णोक्षणा-ज्योतिर्विद एव तं द्रक्ष्यन्ति।" फिर यह भी विचारने की बात है कि ग्रहोंका लोप और दर्शन केवल कालांशों पर अवलम्बित नहीं है, उन्नतांशका भी प्रभाव पड़ता है। इसलिये इसका निश्चय करनेके लिये कुछ दिन तक अनुभव करके तब सीमा निश्चित को जाय।

सौरग्रहणका साधन वेधोलपब्ध गणनासे ही उचित है। इसके लिये केतकरकी ज्योतिर्गणित बहुत उपयुक्त पुस्तक है।

अन्य विचार

यह सब तो उन विषयोंके सम्बन्धमें है जिनकी सूची सूचनामें दी गई है। इसके सिवा कुछ और बातों पर भी इस समितिको विचार करना चाहिये। यह मानी हुई बात है कि लौकिक व्यवहारमें चान्द्र तिथियाँ बहुत कम काममें आती हैं और अधिक तथा क्षय तिथियोंके कारण इनके व्यवहारमें बहुत असुविधा भी होती है इसलिये इनकी जगह लोग ईस्वी तारीखें काममें लाने लगे हैं। बंगाल और पंजाबमें धर्म सम्बन्धी क्रियाओंका निश्चय चान्द्र तिथियोंसे होता है परन्तु व्यवहारमें सौर तिथियाँ चलती हैं जो संक्रान्तिसे आरम्भ होती है। इस प्रान्तमें भी विशेष कर काशीके 'आज' कार्यालयोंमें भी सौर तिथियोंका व्यवहार होने लगा है। शायद काशी नागरी प्रचारिणी सभा और प्रयागका हिन्दी साहित्य सम्मेलन भी अब इसको निश्चय रूपसे व्यवहार में लाने लगा है। उचित यह है कि इसका प्रसार सर्वसाधारणमें होने लगे। 'आज' कार्यालयमें सौर-पंचांग और डायरीमें सौर तिथियोंका निश्चय स्वर्गीय रामदास गौड़ जीके बनाये हुए नियमके अनुसार शायद अब भी होता है। बंगाल और पंजाबमें जिस नियमसे सौर तिथियोंका निश्चय किया जाता है वह कुछ भिन्न है इसलिये यदि इन प्रान्तोंके प्रचलित नियमोंको लेकर ऐसा नियम बनाया जाय जिससे तीनों प्रान्तोंमें तिथियोंकी एक-रूपता हो जाय तो अच्छा है। यही सौर तिथि पंचाँगोंमें भी अन्य तिथियोंके साथ दी जाया करे जैसा कि अभी बंगला तारीख़ोंके नामसे किया जाता है तो सब इससे लाभ उठा सकते हैं। ऐसा करनेसे क्षय तिथि, अधिक तिथि, क्षयमास और मलमासके पचड़ेसे छुटकारा मिल जायगा।

एक बात और। भास्कराचार्य जी के समय से क्षयमास का भी चलन हो गया है। पहले इसका व्यवहार नहीं था। भास्कराचार्य जी ने जब यह निश्चय किया कि असंक्रान्ति मास अधिमास है तब उनको यह भी निश्चय करना पड़ा कि द्विसंक्रान्ति मास क्षयमास है। परन्तु जब द्विसंक्रान्तिमास क्षयमास होता है तब उसी वर्षमें दो बार अधिमास पड़ता है। इस प्रकार एक ही वर्षमें एक क्षयमास और दो अधिमास रखने पड़ते हैं। मेरी समझमें यह अनावश्यक है और इसका धर्मसे कोई सम्बन्ध भी नहीं हैं। इसलिये इस पर भी विचार किया जाय तो अच्छा है। वर्षमें एक ही मास अधिक मास माना जाय। नियमसे जिसे क्षयमास मानना चाहिये उसको साधारण मास माना जाय और क्षयमासके बाद वाला अधिमास लुप्त कर

दिया जाय तो अच्छा हो। यदि ऐसा न किया जायगा तो २०२० विक्रमी में २ आश्विन और २ चैत्र माने जायंगे और पौषका नाम हो नहीं रहेगा। इसके १९ वर्ष बाद संवत् २०३९में फिर इसी प्रकारकी कठिनाई उपस्थिति होगी।

२००० विक्रमीय सम्वत् की मेष संक्रान्ति कालके ग्रहोंका क्षेपक मान कर तिथियों और ग्रहों की वेधोपलब्ध गणना करनेके लिये एक प्रामाणिक सारिणी ज्योतिंगणित की तरह तैयारकी जाय जिससे पंचांग बनानेवाले ज्योतिषी एक ही मूलांकोंसे पंचांग बनानेका काम लेने लगें तो बहुत-सी असुविधायें और भिन्नतायें दूर हो सकती हैं। यदि यह समिति कुछ विद्वानोंको ऐसी सारणी बनानेके लिये नियुक्त कर दे तो उस समय तक यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह सारणी १०० वर्षसे अधिक के लिये न हो और ज्योतिंगणितकी तरह दशमलव भिन्नमें न रख कर अंश कला विकलामें ध्रुवक लिखे जायं तोअधिक सुविधा हो सकती है। यदि समिति चाहे तो यह लेखक भी इस काममें यथाशक्ति सहायता कर सकता है।

बस इतना ही कहना है। आशा है कि समिति इस पर खुले दिल से विचार करेगी और संशोधनके कामको पुण्य काम समझेगी। इसमें किसी आचार्य की हीनता नहीं समझी जा सकती। हमारे ही पुरखों ने तो कहा है, तातस्य कूपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं कापुरुषाः पिबंति।

[शेष ३२ का]

बोनेके लिए आलू

पौधोंको आलू बोनेके काममें कभी नहीं लाना चाहिये जिसमें कोई रोग फैला हुआ हो। पौधोंके ऐसे छोटे और बड़े तनों-को भी बोनेके काममें नहीं लेना चाहिये जिनमें किसी रोगके लक्षण दिखायी देते हों। तनोंको पूरा ही या टुकड़े-टुकड़े करके बोया जा सकता है, लेकिन उनमें कम से कम दो अंखुये अवश्य होने चाहिये। उगानेसे पहले यदि कटे हुए टुकड़ोंको एक सप्ताह तक एकत्रित करके रख लिया जाय तो पौधा लगानेके बाद अंकुर अच्छे निकलेंगे। तनोंके उगानेसे पहले उन्हें अंखुआँ लेनेसे यह लाभ होगा कि अंकुर जल्द फूटेंगे और पौधे अच्छे होंगे। आलू जल्दी और अधिक मात्रामें पैदा करनेके लिये यूरोपमें उगानेसे पहले तनोंको प्रकाश और गर्मीमें डाल कर अंकुरित कर लिया जाता है।

दीमक और कीड़ों से लकड़ी की किस प्रकार रक्षा की जाय

कठफूला, दीमक, कठकीड़ा और जल कीटाणुओंसे लकड़ीकी किस प्रकार रक्षाकी जा सकता है? इस प्रश्नका उत्तर देहरादून की वन्य अनुसन्धानशालासे प्रकाशित हुई एक पुस्तिकामें दिया गया है। यह पुस्तिका हालमें ही प्रकाशित हुई है और लकड़ीकी रक्षा करनेके विषय में है।

पुस्तिकामें बताया गया है कि उपर्युक्त कीटाणुओं आदि से पर्याप्त हानि होती है इसलिये लकड़ीके संरक्षणका आर्थिक महत्व बहुत अधिक है। आधुनिक अनुसन्धानसे प्रकट हो चुका है कि उचित अवस्थामें प्रयोग किये जाने पर लकड़ी प्रायः इसपात तथा अन्य वस्तुओंसे भी अधिक मजबूत रहती हैं। इसकी मजबूतीके गुणके अतिरिक्त इसमें तापका कम संचरण होता है, बिजलीका बहुत अधिक रोधन होता है, ध्वनि रुकती है। इसे सरलतासे ही काममें लाया जा सकता है, सरलतासे उपलब्ध हो जाती है तथा कम खर्च पड़ता है। यही कारण है कि अन्य वस्तुओंकी अपेक्षा इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

यदि प्रयोगसे पूर्व लकड़ीको सुरक्षित रखनेके लिये उसे रासायनिक विधिसे पका लिया जाय तो वह और भी अधिक दिनों तक चलती है और काम भी अधिक अच्छे ढङ्गसे देती है। पुस्तिकामें बताया गया है कि सुरक्षित रखने वाले तेलों, पानीमें घुल जाने वाले मसालों और वाष्पशील विलायकोंमें घोले हुये विषैले रासायनिक पदार्थोंको लकड़ी पर लगा देनेसे वह सुरक्षित हो जाती है। पुस्तिकामें लकड़ीको सुरक्षित रखनेके लिये तैयार करनेके विषयमें विचार करनेके बाद सुरक्षित रखनेके विभिन्न उपायोंका वर्णन किया गया है तथा यह बताया गया है कि सुरक्षित रखनेके लिये मसाले लगानेके बाद उसका किस प्रकार प्रयोग करना चाहिये। इसके अतिरिक्त सुरक्षित रखनेके विविध उपायोंका खर्च भी एक सारिणीके रूपमें दे दिया गया है।

—भारतीय समाचार

विद्युत और चुम्बकका सम्बन्ध

(श्री आर० जी० सक्सेना, एम० एस-सी०)

विद्युत धाराके कारण वह तार ठीक चुम्बक जैसा कार्य्य करता है। शीशे या एनेमल की एक चौड़ी तश्तरीमें हल्का गन्धकका तेज़ाब भरा हुआ है। एक चपटे कार्कमें दो चीर करके एक वृत्ताकार झुके हुये तारके सिरों पर जुड़े जस्त और तांबे के पत्र उसमें अंदर डाल दिया। अब इन पत्रोंको नीचेकी ओर करके कार्कको तेज़ाब के ऊपर तैरा दिया। तेज़ाबमें तार द्वारा जुड़े हुए जस्त और ताम्र पत्रोंके पड़नेसे रासायनिक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है और तारमें विद्युत धारा प्रवाहित होने लगती है। इस धारा प्रवाहसे तारके बीचमें चुम्बक क्षेत्र उत्पन्न होता है, जिसके कारण वृत्तके दोनों पार्श्व उत्तर और दक्षिणकी ओर हो जाते हैं। अब एक चुम्बकका उत्तरी ध्रुव वृत्तके उत्तरी पार्श्वके समीप लाने पर उनमें विकर्षण (repulsion) होता है। यदि धाराका प्रवाह तीरकी बताई हुई दिशामें हो रहा है तो द्रष्टाके सामने पार्श्व दक्षिणी ध्रुव बन जाता है और दूसरा उत्तरी ध्रुव। चुम्बकका दक्षिणी ध्रुव तारके उत्तरी ध्रुवके समीप लाने पर उनमें आकर्षण होता दिखाई देता है। ऊपर तार के एक फेरे की कल्पना की गयी है, परंतु अधिक फेरों के रहने से (चित्र १६), तार की चुम्बकीय शक्ति बढ़ जाती है और ऊपर बतलाया गया परिणाम अधिक स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इस प्रयोगसे तारमें प्रवाहित होने वाली धाराकी दिशा और उत्पन्न हुए चुम्बकीय क्षेत्रके ध्रुवोंमें क्या सम्बन्ध है यह भली प्रकार विदित हो जाता है। यदि घड़ीकी सुइयों की दिशा में धाराका प्रवाह तारमें से हो रहा है तो सामनेका पार्श्व दक्षिण और दूसरा उत्तरी ध्रुव बनता है, और यदि धाराका प्रवाह इसकी विपरीत दिशामें हो रहा है तो सामनेका पार्श्व उत्तरी और दूसरा दक्षिणी ध्रुव बनता है।

इस प्रकार एक चालकमें धारा प्रवाह करनेसे चुंबकीय क्षेत्रकी उत्पत्ति प्रमाणित हुई। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या एक चुम्बक क्षेत्र भी विद्युत धारा उत्पन्न कर सकता है। इसका उत्तर है अवश्य, परन्तु इसके पूर्व कि हम इस विषय पर विचार करें कि यह किस प्रकार होता है, चुम्बककी उत्पत्ति और उसके गुणोंका अध्ययन करना आवश्यक प्रतीत होता है।

चुम्बक का अन्वेषण और उसके प्रभाव

चुंबक सबसे पहिले मैग्नेशिया नामक स्थानमें, जो एशिया माइनरमें है, लोडस्टोनके रूपमें पाया गया था। यह खनिज लोहे के छोटे-छोटे टुकड़ोंको अपनी ओर आकर्षित कर लेता था (चित्र १७ देखें)। जब यह एक डोरेसे बांध कर लटका दिया जाता था तो इसके ध्रुव, यानी सिरे, उत्तर और दक्षिणकी दिशामें सदैव रहते हुये पाये गये। इस हेतु इसको दिशासूचक पत्थर (loadstone) कहा जाता है। मैग्नेशिया में सर्वप्रथम प्राप्त होनेके कारण इसे मैग्नेट भी कहा जाता है। इसका उपयोग सुदूर पूर्वकालसे नाविक लोग करते आये हैं। प्राकृतिक चुम्बक लोड स्टोनके ही रूपमें पाया जाता है। परन्तु यह अधिक शक्तिशाली नहीं होता। जब लोहे पर चुंबकीय प्रभावका अन्वेषण हुआ तो इस्पातकी लम्बी छड़ों और अश्वनाल आकृतिके टुकड़ोंमें स्थाई रूपमें यह प्रभाव उत्पन्न किया गया और इस प्रकार बनावटी चुम्बककी उत्पत्ति हुई। एक बनावटी चुंबकको डोरेसे लटकाने पर उसके दोनों सिरे सदा उत्तर और दक्षिणकी ओर ही रहते हैं (चित्र १८)। अतएव उत्तर की ओर रहने वाला सिरा उत्तरी ध्रुव और दक्षिणकी ओर रहने वाला सिरा दक्षिणी ध्रुव कहलाता है।

यदि दो चुंबकोंको पृथक्-पृथक् डोरेसे लटकाया जावे और उन दोनोंके उत्तरी ध्रुव एक दूसरेके पास लाये जावें तो दोनों ध्रुवोंमें विकर्षण होता है। इसी प्रकार दोनोंके दक्षिणी ध्रुवोंको पास लाने में उनमें भी विकर्षण होता है, परंतु एकका उत्तरी और दूसरेका दक्षिणी ध्रुव पास लाने पर उनमें आकर्षण होता है; इससे यह सिद्धान्त निश्चित हुआ कि समान ध्रुवोंमें विकर्षण और विपरीत ध्रुवोंमें आकर्षण होता है।

किसी लोहेके सरियेमें चुम्बकका प्रभाव है या नहीं, यह जाननेके लिये चुंबकीय सुइयाँ (Magnetic needles) जो एक अक्ष पर स्थिर रहती हैं काममें लाई जाती हैं (चित्र १९)। इन्हें दिशासूचक यंत्र अथवा

कुतुबनुमा कहते हैं। यदि ऐसी किसी दिशासूचक सुईके पास एक लोहेकी सरिया लाई जावे तो लोहे की सरिया सुईके दोनों ध्रुवोंको अपनी ओर आकर्षित करेगी। अब यदि सरियेके स्थान पर एक चुम्बकका उत्तरी ध्रुव सुईके दोनों ध्रुवोंके पास पारी-पारी से लाया जावे तो दोनोंके उत्तरी ध्रुवोंमें विकर्षण होगा परन्तु दूसरी बार चुम्बकके उत्तरी, ध्रुव और सुईके दक्षिणी ध्रुवमें आकर्षण होगा। इस प्रकार चुम्बकको लोहेकी सरियेसे पृथक् पहिचाना जा सकता है।

चुम्बकीय आवेश (Magnetic Induction)

लोहचूर्णको लोहेकी सरिया आकर्षण नहीं करती, परन्तु यदि सरियेको इस प्रकार जकड़ दिया जावे कि उसका एक सिरा लोह चूर्णके पास रहे और दूसरे सिरेके पास चुम्बकका एक सिरा लाया जावे तो ऐसी दशामें भी जब चुम्बक सरियेको स्पर्श नहीं करता सरिया लोह-चूर्णको आकर्षित कर लेगा। चुम्बकको सरियेसे दूर ले जाने पर चूर्ण सरियेसे पृथक् गिर पड़ता है। इससे ज्ञात होता है कि जितनी देर तक चुंबक सरियाके पास रहता है सरियेमें चुंबक शक्ति आवेशित हो जाती है। यह आवेश अधिक स्पस्ट रूपसे निम्न प्रकार समझा जा सकता है। एक दिशासूचक यन्त्रको सुईको उसके अक्ष पर स्थिर किया, फिर लोहेके सरिये को आड़ा स्थिर किया जिससे उसका एक सिरा सुईके एक ध्रुवके पास रहे। सरिएके सिरे और ध्रुवमें आकर्षण होगा। अब सरियेके दूसरे सिरेके पास यदि चुम्बकका वह ध्रुव लावें जैसा कि सरियेके दूसरे सिरेके पास वाला सुईका ध्रुव है तो सरियेका सिरा सुईके ध्रुवको विकर्षित करेगा। इस प्रयोगसे स्पष्ट है कि सरियेमें चुंबक का आवेश हुआ है अर्थात् एक लोहेका टुकड़ा चुम्बकके पास रह कर चुम्बक जैसा कार्य करने लगता है, और चुंबकके उत्तरी ध्रुवके पास वाला सिरा दक्षिणी ध्रुव और उससे दूर वाला सिरा उत्तरी ध्रुव बन जाता है इसी प्रभावको आवेश कहा जाता है।

शक्ति रेखाएँ

एक चुंबकके ऊपर कांचकी तख्ती रख कर उसके ऊपर लोह चूर्ण फैला दिया, अब तख्तीको धीरेसे थपथपाया, तो देखा जाता है कि चूर्णके कण अर्धवृत्ताकार रेखाओंके रूपमें अपनेको जमा लेते हैं जो एक ध्रुव से दूसरे ध्रुवकी ओर जाती हुई प्रतीत होती हैं (चित्र २०)। यह प्रभाव ध्रुवोंके समीप अधिक मात्रामें दिखाई देता है, और ध्रुवोंसे दूर चुंबकके मध्य भागकी ओर क्रमशः कम होता जाता है।
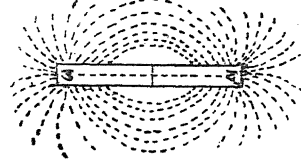
चित्र २०

चुंबकके मध्य भागमें उसकी आकर्षण शक्ति भी लुप्तप्राय हो जाती है। चित्रमें चुम्बकके चारों ओर शक्ति रेखायें दिखाई गई हैं। पहले वैज्ञानिकोंकी यह धारणा थी कि इन धातुओंके अणु स्वभावतः चुम्बक होते हैं, जो किसी साधारण टेढ़ो-मेढ़ी अनियमित दिशाओं में रहते हैं (चित्र २१)। जब उनपर किसी वाह्य चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव पड़ता है तो वे अपने अक्ष को एक दिशागामी बना

चित्र २१

लेते हैं, अर्थात् उन अणुओं के उत्तरी ध्रुव एक ओर और दक्षिणी ध्रुव दूसरी ओर हो जाते हैं। इस प्रकार वह वस्तु चुम्बकका गुण धारण करलेती है। चुम्बक क्षेत्रमें रखे जाने पर किसी वस्तु में चुम्बकीय आवेश होने के गुण को उस वस्तु की चुम्बकीय आसक्ति (Magnetic Susceptibility) कहते हैं। यह गुण दो बातों पर निर्भर है; (१) क्षेत्र की चुम्बकोत्पादन शक्ति, (२) लोह अथवा इसपात का स्वाभाविक गुण। किसी सीमा तक ज्यों-ज्यों चुम्बकोत्पादन शक्ति बढ़ाई जाती है, लोहे अथवा इसपात का चुम्बकत्व बढ़ता जाता है, क्योंकि अधिकाधिक अणु अक्ष को एक दिशावर्ती बनाते जाते है। जब सारे अणुओं के अक्ष एक दिशावर्ती हो जाते हैं, तो लोहेमें चुम्बकीय संतृप्ति आ जाती है। लोहेमें चुम्बकीय संतृप्ति का प्रकट

होना वैबरके सिद्धान्तकी सत्यता प्रमाणित करता है। इसकी सत्यताका दूसरा प्रमाण यह मिलता है कि एक चुम्बकको जिसमें केवल दो ध्रुव होते हैं तोड़नेपर उस स्थानपर दो अन्य ध्रुव प्रकट हो जाते हैं, और दोनों टुकड़े दो पूर्ण चुंबक बन जाते हैं। इसी प्रकार इन दो टुकड़ोंके और विभाजन करने पर जितने टुकड़े बनते हैं सब पूर्ण चुंबक होते हैं। अन्य ध्रुवोंके प्रकट होनेका एकमात्र कारण यही होता है कि सिरेके अणुओंकी एकओर वाले विपरीत ध्रुवोंके न होनेके कारण वहाँ स्वतन्त्र ध्रुवत्व प्रकट हो जाता है, यह भी वैबरके सिद्धान्तकी सत्यताका अकाट्य प्रमाण है।

चुम्बकी प्रवेश-क्षमता

चुंबकीय प्रवेशक्षमता (Permeability) वस्तुका वह गुण है जिसके कारण वह चुंबकीय शक्ति रेखाओंको अपने मेंसे जाने देता है। कच्चे लोहेमें यह गुण अन्य किसी भी धातु की अपेक्षा अधिक है। इस लोहेकी प्रवेशक्षमता वायुकी अपेक्षा २००० गुना अधिक है, अर्थात् यदि शक्ति-रेखाऐं वायुमें १ सें. मी. दूर तक जावें तो पहिलेकी अपेक्षा उनकी शक्ति २००० वां हिस्सा रह जाती है, इसको दूसरी परिभाषा यह भी होती है कि किसी चुंबकीय पदार्थ पर चुम्बकोत्पादक शक्ति लगाने पर उसमें चुम्बकीय घनत्व किस अनुपातसे उत्पन्न होता है।

चुंबक निर्माण

चुम्बक बनानेकी साधारण विधि यह है कि इसपातके छोटे टुकड़ेको एक चुम्बकके एक ध्रुव अथवा दो चुम्बकोंके दो विपरीत ध्रुवोंसे रगड़ा जावे। विद्युत द्वारा चुम्बक बनानेके लिये एक इसपातके टुकड़ेके चारों ओर उसकी पूरी लम्बाईमें सूत या रेशम ढके हुए तारका बेठन coil लगाकर उसमें से शक्तिशाली धाराका क्षणिक प्रवाह भेजा जावे। इन विधियोंसे इसपातका टुकड़ा चुम्बक बन जाता है :—

एक-स्पर्श-विधि - इसपातके एक छड़को चित्रमें दिखलाई हुई क ख की स्थितिमें रख लिया और उसके सिरे क पर चुम्बकके द सिरेको चित्रमें दिखलाई हुई विधिसे रखा, इसी झुकाव पर द सिरेको छड़के क से ख सिरे तक रगड़ा, ख स्थान पर चुम्बकको उठाकर फिर क सिरे पर रख लिया और वही क्रिया कई बार दोहराई। इस प्रकार छड़ चुम्बक बन जायेगा और उसका सिरा क उत्तरी और सिरा ख दक्षिणी ध्रुव बनेगा।

विभाजित-स्पर्श-विधि – इस विधिके अनुसार दो चुंबकोंके विपरीत ध्रुवोंको छड़के बीचमें रखते हैं, अब यदि क सिरे को उत्तरी ध्रुव बनाना है तो क की ओर आने वाले चुम्बकका दक्षिणी ध्रुव इसपातको छूता रहेगा और दूसरे चुम्बकका उत्तरी ध्रुव। छड़के क और ख सिरोंके नीचे दो चुम्बकोंके क्रमशः दक्षिणी और उत्तरी ध्रुव रख दिये जाते हैं। ऊपर रखे हुये चुंबकोंके सिरोंको क और ख की ओर खींचेंगे। जब यह ध्रुव क और ख पर आ जावेंगे तो उनको उठाकर फिर पूर्ववत् बीचमें रख देंगे और वही क्रिया कई बार दोहराई जावेगी। विद्युत विधिसे अधिक शक्तिशाली चुम्बक बननेके कारण इन उपायोंको कदाचित ही काममें लाया जाता है।

विद्युत विधि—यह बतलाया जा चुका है कि एक वृत्ताकार झुके हुए तारमें विद्युत धारा प्रवाहित करने पर उसके बीच शक्ति रेखाओंका क्या स्वरूप होता है। इसी सिद्धान्त पर इसपातके छड़को जिसे चुंबक बनाना है एक गिर्रीके बीचमें रखते हैं। गिर्री पर ढके हुये तारका बेठन चढ़ा होता है। इस बेठनमें शक्तिशाली सीधी धाराका क्षणिक प्रवाह करते हैं। धारा-प्रवाहकी दिशा और वांछित चुम्बकीय ध्रुवोंमें क्या सम्बन्ध होता है यह बताया जा चुका है। इसे ध्यानमें रख कर छड़के चाहे जिस सिरेको उत्तरी अथवा दक्षिणी ध्रुव बनाया जा सकता है।

अवशिष्ट चुंबकत्व Residual Magnetism

यह बताया जा चुका है कि किसी कड़े लोहे अथवा इसपातके छड़को बेठनके बीचमें रखकर बेठनमें विद्युत प्रवाहित कर उसे चुम्बक बनाया जा सकता है। यदि इस बेठनमें विद्युत धारा क्रमशः बढ़ाई जावे तो उसी क्रम से चुम्बक शक्ति भी छड़में बढ़ती जावेगी। पहले तो विद्युत शक्तिके बढ़ावके साथ चुंबक शक्ति शीघ्रतासे बढ़ती है फिर बढ़नेका क्रम कम होने लगता है, इसके बाद एक ऐसी अवस्था आती है कि विद्युत शक्ति और बढ़ानेपर छड़में

चुंबक शक्ति नहीं बढ़ती। छड़की इस अवस्थाको चुम्बकीय संतृप्ति (Magnetic Sfic aturaton) कहते हैं। अब यदि विद्युत धारा पहिले क्रमसे घटाई जावे तो चुम्बक पहिले क्रम से नहीं घटता वरन् कुछ शेष रहता जाता है; इस प्रकार घटाते हुए यदि धारा बिलकुल बन्द करदी जावे तो भी छड़में चुंबक शक्ति बच रहती है; इसे ही अवशिष्ठ चुंबकत्व कहते हैं। इस चुम्बक शक्तिको नष्ट करनेके लिये वेठनमें विद्युत धारा पहिलेसे विपरीत दिशामें प्रवाहित करनी पड़ती है। जब यह विपरीत धारा एक परिमित मात्रा तक पहुँचती है जोकि प्रयोगसे ज्ञात होती है तो चुम्बक शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है। इसे चुम्बकीय निग्रह शक्ति Coersive force कहते हैं लोहेमें चुम्बक उत्पन्न करनेवाली विद्युत शक्तिके हटालेने पर भी उसमें चुम्बक शक्ति बच रहती है। इसी कारण लोहेको ऊँची स्पन्दन संख्या वाला विद्युत (अर्थात् ऐसी विद्युत जो शीघ्र बार-बार घटती-बढ़ती रहती है) के यंत्रोंमें काममें नहीं लाया जाता।

परतोंवाला अंतर लोह फोकाल्ट धारा

यह बताया जा चुका है कि किसी चालकमें चुम्बकीय शक्ति रेखाओंके घटने-बढ़नेसे उसके सिरोंमें स्थित्यन्तर (potential difference) प्रकट हो जाता है और इस चालक के सिरोंको जोड़ने पर धारा प्रवाहित होने लगती हैं। डायनामोके आरमेचर और परावर्तकोंमें जो लोहेके बने होते हैं चुम्बकीय शक्ति रेखाऐं हमेशा घटती बढ़ती रहती हैं, इसलिए इस लोहेमें विद्युत-धारा प्रवाहित होने लगती है। लोहेमें बाधा होनेके कारण विद्युत तापका रूप धारण कर लेती है, इस कारण लोहा गर्म हो जाता है; धाराकी मात्रा और समय अधिक होनेके कारण वह इतना गर्म हो सकता है कि उनके ऊपरके ढके हुए तारका पृथकन्यासक (सूत या रेशम) जल जाय। इस अनिष्टको रोकनेके लिये डायनामो और परावर्तकों (Transformers) के भीतरी हिस्से का लोहा पत्तरों अथवा स्तरोंका बनाया जाता है; इस लोहेके गर्म होनेका कारण फूकाल्टने सबसे पहले मालूम किया था इसलिये उसमें बहनेवाली धारा फूकाल्ट-धारा कहलाती है। इन स्तरोंके बीचमें काग़ज़ या एनेमल का पृथकन्यासक रहता है, इसलिये धारा एक स्तरसे दूसरे स्तरमें नहीं जा सकती। स्तर बहुत पतले होनेसे एक ही स्तर में बहनेवाली धारा बहुत क्षीण होती है जो लोहे-को अधिक गर्म नही कर सकती।

भारतमें अखबारी कागज का उत्पादन

युद्धके बाद मिल खोला जा सकेगा

देहरादूनकी वन्य अनुसन्धानशालामें अखबारी कागज, सस्ते कागज तथा दफ्तीके निर्माणके लिये लुगदी तैयार करनेके लिये जो परीक्षण किये जा रहे हैं उनके सम्बन्धमें प्रारम्भिक विवरण एक पुस्तिकामें प्रकाशित किया गया है।

पुस्तिकामें बताया गया है कि इस समय मशीनोंका मूल्य अत्यधिक होने तथा उनके आयातकी कठिनाइयोंके कारण भारतमें अखबारी कागजकी मिल स्थापित नहीं की जा सकती लेकिन शान्ति स्थापनाके बाद वर्तमान अनु-सन्धानोंके फलस्वरूप इस प्रकारकी मिल भारतमें खोली जा सकेगी।

१९३७-३८ में भारतमें ६२,५७,९५४ रुपयोंका ३७,४३८ टन अखबारी कागज बाहरसे मंगाया गया। अगले वर्ष इसका परिमाण घट कर ३२,१४५ टन रह गया जिसका मूल्य ५०,८३,८१८ रुपये था। १ अप्रैल १९३९ से ३१ जनवरी, १९४० तक ४८,२६,९९४ रुपयेका २८१४५ टन अखबारी कागज भारतमें आया।

अखबारी कागजके लिए लुगदी तैयार करनेके लिये वन्य अनुसन्धानशालाकी कागजकी लुगदी शाखा ने कई प्रकारके चौड़े पत्तेके वृक्षों तथा कई प्रकारके बाँस आदि पर परीक्षण किये।

सरो, स्प्रूस तथा चौड़े पत्ते वाले कई वृक्ष अखबारी कागजकी लुगदी तैयार करनेके योग्य सिद्ध हुए हैं। इनसे वर्तमान आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये छपाईके कामका सस्ता कागज भी तैयार किया जा सकता है।

परीक्षण किये गये अन्य वृक्षों तथा बाँसोंको अखबारी कागजकी लुगदी तैयार करनेके लिये उपयुक्त नहीं पाया गया। पर इनके द्वारा छापने और लपेटनेका सस्ता कागज तथा सस्ती दफ्ती तैयारकी जा सकती है।

विज्ञान और मनुष्य

[श्री रामचन्द्र तिवारी]

उस दिन रामदेव जी मिले। संसार की घटनाओं के प्रति वे जागते रहते हैं। युद्ध से वे अत्यंत क्रुद्ध हैं। बोले—

"आखिर वही हुवा न जो मैं कह रहा था।"

"क्या ?" रामेश्वर ने पूछा।

"यही कि ये वैज्ञानिक, साइन्स वाले, दुनिया को मिटा कर ही चैन लेंगे। मैं फिर कहता हूँ कि साइन्स मनुष्य को शैतान की देन है।"

बात सभी को ठीक सी जँची। साइन्स और शैतान, विज्ञान और शैतान।

बोम्बर, पनडुब्बियां, टैंक, तोपें ये सभी शैतानी करामात है न ! और इनके पीछे कौन है ? विज्ञान।

विज्ञान के विरुद्ध यह अभियोग नया नहीं है। रामदेव जी विज्ञान को जड़ से उखाड़ फेंकने के लिये अपना सर्वस्व देने को तैयार हैं। उनके लिये वैज्ञानिक मानव समाज के पागल कुत्ते हैं।

रामदेव जी समझते हैं कि सब स्कूलों और कालिजों के विज्ञान पढ़ाने वाले वैज्ञानिक हैं। रुपये लेकर पदार्थों का विश्लेषण करने वाला वैज्ञानिक है। खराद के ऊपर टेढ़ा मेढ़ा दांतोंदार पहिया बनाने वाला वैज्ञानिक है। इन सभी को वे मानव समाज के स्पर्श योग्य नहीं समझते। वे समझते हैं कि ये लोग यदि मनुष्य समाज में से निकल जायेंगे तो संसार स्वर्ग हो जायगा।

वैज्ञानिक, वास्तविक वैज्ञानिक कौन है, इस विषय में वे सोचना नहीं चाहते। उधर जाते ही वे झुंझला उठते हैं।

वैज्ञानिक वह है जो प्राकृतिक घटनाओं का निरीक्षण कर, अध्ययन और मननकर, उनको तह तक पहुँचने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार ज्ञान की बून्द बून्द एकत्रित कर अन्तिम सत्य को समझने में प्रयत्नशील है। इस खोज के मार्ग में जो ज्ञान उन्हें प्राप्त हो गया है, उससे व्यापारी धन कमा रहे हैं और दूसरे प्रकार के साधारण लोग बाल बच्चों के लिये भोजन जुटा रहे हैं। जो लोग वास्तव में वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने विज्ञान को आगे बढ़ाया है संख्या में अधिक नहीं है। उनका जीवन ध्येय से शासित है। वह ज्ञान की वेदी पर बलिदान हैं। उन लोगों की ऋषियों के समान साधनाका विज्ञान परिणाम है।

न्यूटन ने पदार्थ की आकर्षण शक्ति का पता लगाया और उसके साथ साथ आकाशस्थित ग्रह नक्षत्रों के विषय में विशेष अध्ययन प्रारम्भ किया। वह अत्यंत महान वैज्ञानिक था। परन्तु उसने कहा है कि वह इस अपार ज्ञान-सागर के तट पर एक बालक के समान है जिसके हाथ कभी घोंघा, कभी कोई सीपी आजाती है। वह विनम्र है। वह प्रकृति की गहनता के प्रति अपनी पराजय स्वीकार करता है।

न्यूटन के पीछे बहुत सी गणित की समस्यायें हल करने को रह गयी थीं। लोगों ने उन्हें हल करना प्रारम्भ किया। वे हल करते गये और अपने में एकदम बटोरते गये। वे समझते गये कि गणित के कुछ प्रश्न हल कर के ही हमने प्रकृति की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली। इसका कारण यही था कि उनका प्रकृति से सीधा सम्पर्क न था। कितना अज्ञात है इसका उन्हें पता न था। मकान के इंजीनियर और ईंट गढ़ने वाले के जो स्थान हैं, वही वैज्ञानिक और इस प्रकार के कार्यकर्त्ताओं के हैं। विज्ञान के विकास में वे सहायक अवश्य होते हैं।

वैज्ञानिक का सम्बन्ध प्रकृति से सीधा होता है, इसलिये उसे अपनी सीमायें ज्ञात होती हैं। वह प्रकृति के प्रति नम्र और विनीत होता है. उसका जीवन साधना का जीवन है। आर्कमेडीज, न्यूटन, फैराडे, जगदीश बोस के नाम इस श्रेणी में लिये जा सकते हैं।

रामदेव जी समझते हैं कि ये लोग मानव के संहार करने के लिये उत्पन्न होते हैं।

मित्र ने उनसे पूछा "तो आप मनुष्य से क्या कराना चाहते हैं।

"वह व्यापार करे, खेती करे, धर्म-शास्त्रों का अध्ययन करे।"

"व्यापार करके क्या करे ?"

"पैसा कमाये।"

"और कुछ ?"

"जब पैसा होगा तो सभी कुछ प्राप्त हो सकता है।" बोलना पड़ा।

"मान लीजिये आपका पड़ोसी भी उसी माल को व्यापार करता है और वह आपसे सस्ता बेचने लगता है। तो आप क्या कीजियेगा ? दूकान तो नहीं बन्द कर दीजियेगा ?"

"नहीं, हम भी भाव घटा देंगे।"

"हानि उठा कर ?"

"नहीं।"

"फिर ?"

"उस वस्तु के बनाने में जो मूल्य लगा है उसे कम करके।"

"कैसे कम कीजियेगा ?"

वे चुप रहे।

"या तो आप मजदूरी कम कीजिये, अथवा मजदूरों को निकालिये। परन्तु फिर माल कम बनेगा।"

मित्र बोले "मैं बताऊँ। स्टेट्समैन में निकलेगा अमुक माल बनाने के लिये एक मशीन के आविष्कारक की आवश्यकता है काम अधिक से अधिक मजदूरी कम से कम। पंडित रामदेव पोस्ट बक्स नम्बर ..।"

"बस अब पंडित रामदेव की मिल खड़ी होगी। व्यापार बढ़ेगा। विज्ञान के माथे एक अपराध और मँढ़ा जायेगा और धन तथा धर्म कमावेंगे पण्डित रामदेव।"

रामदेव जी कुछ सोच रहे थे। कदाचित् यह कि कहीं ऐसा हो जाता तो क्या कहने थे। परन्तु नक्षत्र ही कुछ दूसरे प्रकार के पड़े हैं।

मित्र चुप नहीं हुए। उनकी कल्पना और तेज़ होगई।

उन्होंने देखा कि रामदेव मिल्स दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति कर रही हैं। माल निकल निकल कर नगर में भर गया है। रेलगाड़ियां बन्दरगाह को चली जा रही हैं। रामदेव मिल्स विदेशों में बड़ी प्रसिद्ध हैं और उनका माल धड़ाधड़ बिकता है।

परन्तु भाग्य की गति टेढ़ी है। कोई विदेशी प्रतिद्वंदी उत्पन्न हो जाता है। विदेशी बाज़ार धीरे धीरे सरकने लगता है। रामदेव जी के चार समाचार पत्र अपने हैं। चालीस उनके विज्ञापन छापते हैं। और फिर अचानक चवालीस सम्पादक "देश के व्यापार को भयानक खतरा" चिल्ला उठते हैं। विदेश मंत्री को भोज दिया जाता है। युद्ध मंत्री को एक वायुयान भेंट किया जायगा। इस नीचतम अन्याय का बदला लेने के लिये देश के जंगी पोत सीटी देकर समुद्र की छाती चीरते चल पड़ेंगे। देश पर युद्धकर लगेगा। मनुष्य बढ़े चलेंगे। युद्ध-संगीत से दिशायें गूंज उठेंगी। और रामदेव जी के सेक्रेटरी गवर्नमेंट से नई युद्ध सामग्री देने का ठेका ले लेंगे। एक नई फैक्टरी पुरानी के बग़ल में खड़ी हो जायगी, बायलर धुंवा उगलेंगे। रेलें दौड़ेंगी। और मातायें, विधवायें रोयेंगी।

धर्मशास्त्री कहेंगे कि युद्ध में मरने वाला सीधा स्वर्ग जाता है। इसलिये हे धार्मिक पुरुषो; यदि स्वर्ग चाहते हो तो जाओ और मरो।

पंखे की ठण्डी हवा में बैठ कर दार्शनिक युद्ध की कल्पित मूर्ति देख कर मोहित हो उठेंगे वे उसमें सौन्दर्य, अच्छाई देखने का प्रयत्न करेंगे। तोपों की गरज में वे मानव भाग्य की पूर्ति देखेंगे और लम्बे लम्बे विद्वता पूर्ण लेख छापेंगे जो साहित्य की स्थायी सम्पत्ति होंगे।

और रामदेव जी उन दिनों ऊँची पहाड़ी पर बिजली की पंटी पास रक्खे सोच रहे होंगे कि यदि वाट ने भाप की शक्ति न जानी होती अथवा जानते ही मर जाता तो क्यों इंजिन बनते और क्यों यह युद्ध होता।"

रामदेव जी चुप रहे। वे ऐसे समृद्धिशाली हो सके यह कल्पना बहुत दूर की थी। परन्तु फिर भी एक आनन्द उन्हें आ रहा था।

युद्ध का कारण तोपें और मशीनगनें नहीं है, मनुष्य स्वयं है। युद्ध का कारण विज्ञान नहीं वरन् अविज्ञान है। युद्धके लिये उत्तरदायी वैज्ञानिक नहीं अवैज्ञानिक हैं। विज्ञानकी सहायता ने संसारमें धन, काममें आनेवाली वस्तुओंकी बहुतायत कर दी। अन्नकी, वस्त्रकी संसारमें कमी नहीं, फिर भी लोग भूखे हैं, नंगे हैं और गेहूँ तथा वस्त्र बाज़ार भाव बनाये रखनेके लिये जलाये जाते हैं। वैज्ञानिकोंके हाथ में सांसारिक व्यवस्था नहीं है। जो लोग

[शेष १४४ पृष्ट पर]

विभिन्न पंचागोंमें विभिन्नता

चार-चार घण्टे तकका अन्तर

अगले वैक्रम सम्वत्के पंचांग छप गये हैं। आश्चर्य है कि पंचांगोंमें तिथियोंका निर्धारण प्रायः शुद्ध नहीं होता। जिन पुरानी सारिणियोंसे पत्रे बनते हैं वे इतनी शुद्ध और प्रमाणित नहीं हैं कि आज इतना दीर्घकाल व्यतीत हो जाने पर भी, उनके द्वारा सूर्य, चन्द्रके स्थानोंका ठीक-ठीक पता लगाया जा सके। उदाहरणार्थ, यदि दो पत्रोंको लिया जाय – एक हिन्दू विश्वविद्यालयका 'विश्व-पञ्चाग', जो सूर्यसिद्धान्तके आधार पर बनाया जाता है, और दूसरा श्री बापूदेव शास्त्रीका पंचांग—और दोनोंको मिला कर देखा जाय तो उनमें तिथियोंके मान भिन्न-भिन्न मिलेंगे। कभी-कभी तो दस-बारह घड़ी तकका अन्तर दिखाई देता है; कभी एक पत्रेमें मान अधिक होता है, कभी दूसरेमें! अमावस्या-पूर्णिमामें कम अन्तर रहता है क्योंकि अमावस्या-पूर्णिमामें चन्द्रमाकी स्थिति ज्ञात कर लेना सरल है। बहुत दिनोंसे देखते-देखते उनमें अब कम त्रुटियाँ रहा करती हैं। नीचे एक तुलनात्मक सारिणी दी जा रही है जिससे जनताको पता चल जाय कि कितना अन्तर है।

जिस प्रकार हमें मालूम हो जाता है कि इस क्षण दिन है या रात इसी तरह वेधशालामें वेध-क्रियासे तिथियों का मान भी जान लेना सरल है और तब पता चलता है कि प्राचीन सारिणयाँ अब काम नहीं दे सकतीं।

बगलकी तालिकामें चैतसे पूस तककी अमावस्या-पूर्णिमा लिखी गई है। उन्हें देखनेसे मालूम होगा कि शास्त्रीजीके और विदेशी पंचांगमें अमावस्याके मानमें अधिक-से-अधिक दस मिनटका अन्तर है, पर विश्वपंचांगमें डेढ़ घण्टेसे भी अधिकका है! पक्षके बीचकी तिथियोंमें तो और भी अधिक है। उदाहरणार्थ, बसन्त पञ्चमी या उसके पहले वाली एकादशीमें चार घण्टे अथवा दस घड़ीका अन्तर है! उसके पहलेकी पञ्चमीमें भी चार घंटेका अन्तर है।

नीचे जो घड़ी पल दिये जा रहे हैं उनमेंसे पहले विश्वपंचांगके हैं, दूसरे श्री बापूदेव शास्त्रीके पंचागके और तीसरे नॉटिकल अलमनक' के। काशी विश्वविद्यालयके पंडितोंको चाहिये कि वे अधिक शुद्ध गणना किया करें।

	घ	प	घ	प	घ	प
चैत्र शु. १५	२७	३३	२७	५	२७	४७
वैशाख कृ. ३०	२२	४५	२४	३६	२४	३०
वैशाख शु १५	५४	२०	५३	०	५३	४०
ज्येष्ठ कृ. ३०	५५	४२	५७	३१	५७	८
ज्येष्ठ शु. १५	१५	१६	१३	३५	१३	५०
आषाढ़ कृ. ३०	२९	११	३२	३०	३२	२७
आषाढ़ शु. १५	३२	४४	३१	३१	३१	१५
श्रावण कृ. ३०	६	१८	९	५६	१०	२०
श्रावण शु. १५	४९	२८	४६	८	४८	४२
भाद्र कृ. ३०	४५	५६	४६	१	४८	४०
भाद्र शु. १५	८	३३	९	०	८	२८
आश्विन कृ. ३०	२५	४	२७	१८	२७	४५
,, शु. १५	३१	३५	३२	४१	३२	१५
कार्तिक कृ. ३०	२	१५	३	१५	३	२५
,, शु. १५	५८	३६	१	४९	१	४०
मार्गशीर्ष कृ. ३०	३६	५६	३६	१८	३६	५
,, शु. १५	३६	२६	३८	७	३८	१२
पौष कृ. ३०	८	८	६	४५	६	२५

चण्डी प्रसाद (एम० ए०)

ईस्टर लिली

[श्री रत्नकुमारी, एम० ए०]

सामग्री = पँखुड़ियोंके लिये सफेद, गुलाबी या लाल क्रेप कागज़। केसरों पर लपेटनेके लिये थोड़ा-सा हलका हरा और थोड़ा-सा पीला क्रेप कागज़। पत्तियोंके लिये गहरा हरा कागज़। पँखुड़ियोंके बीचमें लगानेके लिये पतला तार। डंठलके लिये मोटा तार। बाँधनेके लिये तागा या बहुत पतला तार, लेई।

रीति — पहले फूलके केन्द्रमें स्थित केसरोंको बनाना चाहिये। एक गर्भकेसर और पाँच पुंकेसरोंकी आवश्यकता पड़ेगी। * इन ६ तारोंसे पाँच तो ६-६ इंच लंबे रहें। एक कुछ और लम्बा रहे (लगभग ७।। इञ्च)। पहले सब तारोंपर हरा क्रेप लपेट देना चाहिये, जिसमें तार सर्वत्र हरा हो जाय (इसकी रीति पहले बतलायी जा चुकी है)। अब इनमेंसे लम्बे तारको लेकर गर्भकेसर बनाओ। गर्भकेसरका मुँह बनानेके लिये हलका हरा क्रेप कागज़ लो जो नापमें ३½ इंच × २½ इंचका हो। इसके एक कोनेको काटकर अलग कर लो, जैसा चित्र १ में दिखलाया गया है। शेष कागज़को लपेट कर गोली बना लो और उस पर लम्बे तारको लपेट कर बाँध दो। लपेटनेके बाद गोलीमें डंठलकी तरह लगा हुआ तार ६ इंच लम्बा रहे (चित्र २)। जो कागज़ कोनेसे काट कर अलग लिया गया था उसे इस गोली पर इस प्रकार मढ़ दो कि गोली चिकनी हो जाय। यदि कागज़के कोने बढ़े हों तो फालतू कागज़को कैंचीसे काट दो सिरोंपर लेई अच्छी तरह लगा कर दबा दो जिसमें कागज़के उखड़ आनेका डर न रहे।

* केसर = बालकी तरह पतले-पतले सींकें या सूत जो फूलके बीचमें रहते हैं। इनमेंसे गर्भकेसर वह है जिसकी जड़में बीज लगता है और पुंकेसर वे हैं जिनके सिरों पर पराग (धूलि) रहता है।

चित्र १-६ ईस्टर लिलीके अवयव

गर्भकेसरके बनानेकी दूसरी रीति यह है कि तारके सिरेको मोड़ कर अंकुश-सा बना लो। फिर उस अंकुशमें थोड़ी-सी रुई रखकर तारको ऐंठ दो जिसमें रुईके तारके सिरे परसे निकल आनेका डर न रहे। फिर रुई पर हरे क्रेप कागज़का एक टुकड़ा रख कर और उसको रुईपर झुका कर किनारोंको तागेसे बाँध दो। इस प्रकार बनी गोली यदि सुडौल न हो तो अंगुलियोंसे दबा-दबा कर उसका आकार ठीक किया जा सकता है। तागेको छिपानेके लिये उस पर हरा क्रेप चिपकाया जा सकता है. या सारी गोली पर एक तह हरा क्रेप लगा दिया जा सकता है।

अब पुंकेसरोंको बनाओ। इसके लिये प्रत्येक तारके एक सिरे पर पीले क्रेप कागज़ का १" × १" का टुकड़ा लपेट दो। अब इन पुंकेसरोंको गर्भकेसरके चारों ओर इस प्रकार रक्खो कि पुंकेसर गर्भकेसरकी अपेक्षा ४¼ इंच ऊपर उठे रहें। इस स्थितिमें
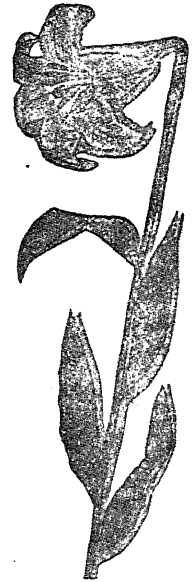
चित्र ७ — पँखुड़ी पूरे नाप की

लाकर केसरोंको हलके हरे क्रेपकी आधी इञ्च चौड़ी पट्टीसे बाँध दो (चित्र ३)।

अब फूलकी पँखुड़ियोंकी पारी है। ये सफेद, हलका गुलाबी या लालमेंसे किसी भी रङ्गके बनाये जा सकते हैं। मान लो हम सफेद फूल बनाना चाहते हैं। तो सफेद क्रेपसे चित्र ४ के आकारका एक ६-मुहाँ टुकड़ा काटो। लम्बाई ४ इंच हो; महत्तम चौड़ाई (सिरेके पास) लगभग ३ इञ्च हो और जड़के पास चौड़ाई केवल २$\frac{1}{4}$ इञ्च हो। यह वस्तुतः एक पँखुड़ी नहीं है, ६ पँखुड़ियों का समूह है। प्रत्येक पँखुड़ी पर बीचमें (लम्बाई की दिशामें) पतला तार चिपकाना चाहिये, परन्तु तारपर पहले सफेद क्रेप लपेट लिया जाय। अब इन पँखुड़ियोंके समूहके अगल-बगलवाले किनारोंको एक दूसरेसे चिपकाना चाहिये। लम्बाईके तीन चौथाई भाग तक ही किनारोंको चिपकाया जाय। पँखुड़ियोंके बीचमें लगा तार बाहर रहे। पँखुड़ियाँ भोंपू या चोंगेके आकारमें आ जायँगी। अब इस चोंगेके भीतर केसरोंके गुच्छेको इस प्रकार रखना चाहिये कि पुंकेसरोंका सिरा लगभग वहाँ तक पहुँचे जहाँ तक पँखुड़ियाँ जुड़ी हैं।

अब फूलकी जड़के पास तागा या तार लपेट कर पँखुड़ियाँ और केसरोंको एकमें बाँध देना चाहिये, परन्तु इनके बाँधनेके पहले गाढ़े हरे क्रेपसे मढ़े मोटे तारको फूलमें कुछ दूर तक (लगभग $\frac{1}{2}$ इंच तक) घुसा देना चाहिये। यह तार फूलका डंठल रहेगा। (चित्र ५)। प्रत्येक फूलके लिये चार पत्तियाँ चाहिये। इनका आकार पँखुड़ियोंकी ही तरह होता है (चित्र ६), परन्तु लम्बाई ४$\frac{1}{2}$ इंच और चौड़ाई $\frac{3}{4}$ इंच होती है। इनको गहरे हरे क्रेपसे काटना चाहिये। पत्तियों को बाँधनेके लिये फूलके डंठलको हरे क्रेपकी डेढ़ इंच चौड़ी चिटसे लपेटना चाहिये और यथास्थान पत्तियोंको लगाते जाना चाहिये। पत्तियाँ बराबर दूरी पर पड़ें और पारी-पारीसे आमने-सामनेकी ओर पड़ती चलें (समूचे फूलका चित्र देखो)। अब फूल की पंखुड़ियोंको बाहरकी ओर झुका दो जैसा वे प्रकृतिमें रहती हैं और फूलकी जड़के पास डंठलको भी जोड़ दो (चित्र देखो)।

एक दर्जन तीलियोंको चौड़े गुलदस्तेमें सजा देने पर वे बहुत सुन्दर लगती हैं।

[पृष्ठ १३१ का शेष]

विज्ञान और मनुष्य

संसारकी गवर्नमेंटोंके मन्त्री और सभापति हैं, क्या वे युद्धके कारणों पर विचार कर वैज्ञानिक ढंगसे उनका निवारण करनेका साहस रखते हैं।

विज्ञान सत्यके लिये खड़ा है। युद्ध ईर्षा, प्रतिहिंसाके कारण होते हैं। क्या वे देश-देश और मानव मानवके बीचसे उन्हें मिटानेको कदम बढ़ावेंगे। परन्तु ऐसा साहस इतिहासमें उनमें नहीं दिखाई देता। वे भयभीत हैं और इसीसे जिन रूढ़ियोंसे वे बँधे हैं उन्हें छोड़ते डरते हैं। वे डरते हैं कि इन्हें छोड़ देने पर पता नहीं हम कहाँ होंगे।

विज्ञानका मार्ग साहसका मार्ग है। परन्तु मानवकी सीमाओंके भीतर यही एक सच्चा मार्ग है। मनुष्य अपनी समस्याओंमें जब तक वैज्ञानिक रीतिकी सहायता नहीं लेता तब तक वह भटकता रहेगा, परन्तु जब उसके द्वारा दिखाये मार्ग पर दृढ़तासे बढ़ेगा तो अपनी समस्याएं हल कर लेगा।

चिकनाई लाने वाले तेल

युद्धजन्य परिस्थितियोंके कारण भारतमें तेलहनका निर्यात-व्यापार प्रायः बन्द-सा हो गया था और समस्या यह थी कि इतने बचे हुये मालको क्या किया जाय? इसके अतिरिक्त, युद्धकी प्रगति और आवश्यकताओंके कारण, गैर-फौजी कामोंके लिये कल-पुर्जोंमें चिकनाई लाने वाले खनिज तेलोंका मिलना कठिन हो गया था। समितिने अनुसन्धान करके वह तरीका बता दिया है जिससे खनिज तेलके स्थानमें बनस्पति तेलका उपयोग किया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि जो तेलहन भारतमें बेकार पड़ा रहता था वह काममें आ गया। कितने ही प्रकारके ऐसे तेल बनाये गये हैं जिनमें वनस्पति तथा खनिज दोनों तेलोंका सम्मिश्रण है। एक कम्पनी तो प्रति वर्ष ८,००० टनसे अधिक ऐसा तेल तैयार कर रही है।

कीट-भक्षक पौधे

[लेखक—श्री गिरिजा दयाल]

पौधों का साधारण भोजन है कार्बनडाइऑक्साइड और पानी तथा अन्य बहुत से खनिज पदार्थ जैसे सोडियम, फ़ासफ़ोरस, पोटेसियम, और मैगनेसियम। ये खनिज पदार्थ मिट्टी में घोल के रूप में रहते हैं। नाइट्रोजन पौधे को नाइट्राइट और नाइट्रेट के रूप में प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त बहुत से पौधे ऐसे भी हैं जो निर्भर तो इन्हीं खनिज पदार्थों पर होते हैं किन्तु भोजन प्राप्ति के लिये एक दूसरी विधि से काम लेते हैं। मिट्टी और वायु से भोजन न लेकर वे दूसरी वस्तुओं से भोजन प्राप्त करते हैं। प्रायः इस जाति के पौधे उस स्थान पर होते हैं जहाँ मिट्टी पौधों के पोषण के योग्य पर्याप्त भोजन नहीं दे सकती। इसलिये वहाँ के पौधों को अपने भोजन की पूर्ति के लिए एक प्रकार की विचित्र आदत डालनी पड़ती है। ऐसे पौधे कीड़े खींच कर पकड़ लेते हैं। जब वे कीड़े वहाँ पर सड़ते हैं तो सड़ने के कारण उत्पन्न पदार्थों को पौधा अपने काम में ले आता है। इन पौधों को कीट-भक्षक पौधे कहते हैं। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है:—

वर्ग १— पौधे जिनमें सुराही की तरह एक अंग रहता है। इस सुराही में पौधा कीड़े पकड़ लेता है और हज़म कर जाता है।

वर्ग २— वे पौधे जो कीड़े के संसर्ग के कारण एक विचित्र रूप से अंग संचालन करते हैं और कीड़े को पाचक-रसों से ढक देते हैं।

वर्ग ३—वे पौधे जिनमें न तो सुराही होती है और न किसी प्रकार का अंग संचालन ही होता है किन्तु वे चेपदार शाखों में परिणत हो जाते हैं। जानवर इन शाखों से चिपक जाते हैं और पेड़ उन्हें हज़म कर जाता है।

उट्रीकुलेरिया स्टैलरिस (Utriculoria stellris) नाम का पौधा प्रथम वर्ग का एक अच्छा उदाहरण है। यह एक छोटा जल का पौधा है। यह इलाहाबाद के पास शंकरगढ़ और सिवायत में तथा हिन्दुस्तान में और संसार के कई स्थानोंमें (मलाया, वेस्ट इंडीज़, साउथ अमरीका में) मिलता है। यह पौधा बहते पानी, तालाब, गड्ढों इत्यादि में उत्पन्न होता है। इस पौधे में जड़ नहीं होती। यह पानी में तैरता रहता है। पत्तियाँ बहुत छोटे-छोटे भागों में कटी सी होती हैं यहाँ तक कि ये कटे हुए भाग बाल जैसे पतले हो जाते हैं। पत्तियों के कुछ भाग हरे फूले हुए अंडाकार थैले के रूप के होते हैं।
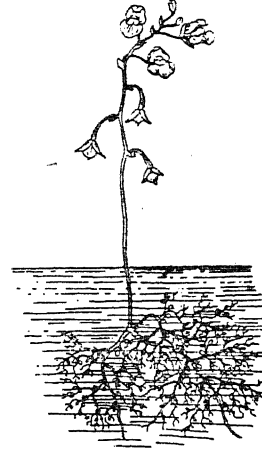
उट्रीकुलेरिया

छोटे भाग की ओर मुख अथवा द्वार भीतर जाने के लिये होता है। मार्ग बहुत से पतले-पतले कटीले रोएं तथा अन्दर की ओर खुलने वाले कपाटों (valves) से सुरक्षित रहता है। यह थैली वस्तुतः पानी के छोटे-छोटे कीट फांसने के लिए होती है जिससे वे फिसलकर भीतर चले जायँ और फिर बाहर न निकल सकें। इस थैले की भीतरी सतह पर एक विशेष प्रकार के बाल होते हैं। छोटे-छोटे पानी के कीड़े जो इन पौधों के पास घूमते रहते हैं अकसर उनमें चले जाते हैं। किन्तु थैले में घुसते ही कपाट बंद हो जाता है और उनके निकलने का रास्ता नहीं रह जाता। कीड़ा निकलने के लिए बहुत प्रयत्न करता है किन्तु वह बेबस रहता है और इसी प्रयत्न में अपनी जान खो देता है। थैले के अंदर ही उसका शरीर सड़ने लगता है और पौधा उसके रस को पचा लेता है।

ये छोटे-छोटे कीड़े थैले में बंद होकर निकलने के लिये कितना प्रयत्न करते हैं यह बाहर से दिखाई पड़ता रहता

है क्योंकि इन थैलों की दीवारें पारदर्शी होती हैं और बाहर से अंदर की सारी वस्तुएं अच्छी तरह से दिखाई पड़ती रहती हैं। इन थैलों से एक प्रकार का विशेष रस निकलता है जिसके कारण बंद कीड़े के अंग शिथिल होते जाते हैं। देखने से मालूम होता है कि बंद होने पर पहले तो कीड़ा छुटकारे के लिए बहुत प्रयत्न करता है किन्तु

नेपेन्थीज़

बहुत जल्द वह सुस्त-सा होता जाता है और थोड़ी देर बाद वह बिलकुल शान्त हो जाता है। इस शान्त अवस्था में कीड़ा मरता नहीं किन्तु बेसुध पड़ा रहता है और इस बेहोशी की हालत में कभी-कभी दो दिन तक जीवित रहता है। इसके पश्चात् वह मर जाता है।

वर्ग १ का एक दूसरा उदाहरण नेपेन्थीज़ (Nepenthes) है, ये प्रायः उष्ण देशोंमें पाये जाते हैं जैसे आस्ट्रेलिया, मैडेगास्कर, फिलीपाइन, बंगाल, लंका और चीन। ये जलके पौधे हैं और दलदलमें अधिक होते हैं। इन पौधोंके पत्तोंसे एक विशेष प्रकारका बर्तन-सा बन जाता है। यह बर्तन पत्तोंके सामान ही डंठलसे लटका रहता है। इसकी अनेक जातियाँ होती हैं और प्रत्येक जातिमें यह पात्र भी भिन्न रूप का होता है। नेपेन्थीज़ राजा (N. raja) में इस पात्र की लम्बाई अठारह इंच होती है और सीधा रखने पर इसमें सेर डेढ़ सेर पानी आ सकता है। सिरे पर एक द्वार होता है। यह द्वार एक मोटे घेरे से जो इसके चारों ओर रहता है और मज़बूत हो जाता है। इस घेरे का सिरा रीढ़ की हड्डियों के समान कांटों वाला होता है। पात्र के घेरे तथा ढक्कन की निचली सतह पर स्थित
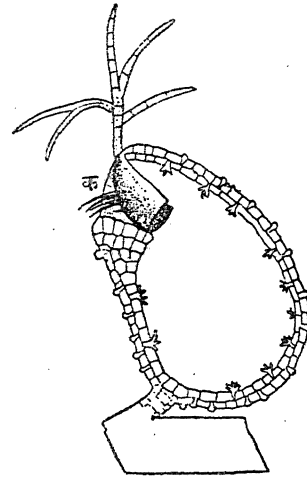
नेपेन्थीज़की सुराही

विशेष ग्रंथियों से मीठा शहद-जैसा रस निकलता है। पात्र की भीतरी दीवारें बहुत सुन्दर तथा चित्रित होती हैं जिसके कारण शहद के लिये लालायित जानवर और भी अधिक आकर्षित होते हैं। घेरे के चारों ओर नीचे का भाग बहुत चिकना होता है और यह भाग पात्र में नीचे की ओर जाता है। इसके अतिरिक्त पात्र की बाक़ी सतह एक विशेष प्रकार के रस उत्पन्न करने वाली ग्रंथियों से ढकी रहती है और जो रस निकलता है वह नली में जमा हो जाता है। यह कुछ खट्टा होता है। कीड़े, घेरे और ढक्कन की नीचे की सतह से निकले रसके कारण आकर्षित होते हैं और इस रस के चाटने के लिये पात्र के गले के अन्दर घूमते रहते हैं। गले का एक अंश अत्यन्त फिसलहर

होता है। वहाँ पहुँचने पर कीड़े नीचे गिर जाते हैं और तली में इकट्ठे रस में डूबकर मर जाते हैं, फिर शीघ्र ही पौधा इसे हज़म कर जाता है।

ड्रोसिरा रोटंडी फ़ोलिया (Drosera rotundi folia) वर्ग २ का एक उदाहरण है। यह संसार में बहुत जगह पाया जाता है। यह पौधा दलदलों के पास अधिक होता है। पौधा आठ-दस इंच ऊँचा होता है। इसके गुलाब की शक्ल के पत्ते ज़मीन से चिपके रहते हैं। इसकी जड़ें पतली होती हैं और उखाड़ने पर पौधा आसानी से उखड़ आता है। पत्ते गोल होते हैं और डंठल लम्बा। पत्तों का रंग कुछ लाल होता है और इसकी ऊपरी सतह पर दो तरह के कांटे होते हैं। इनमें से बड़े कांटे पत्ते के किनारे पर होते हैं। ये लम्बे, पतले और सिरे पर घुन्डीदार होते हैं। छोटे कांटे सारे पत्ते की सतह पर फैले रहते हैं। किन्तु हर एक कांटे के सिरे पर एक गोली सी होती है जिसमें तरल पदार्थ भरा रहता है। ये गोलियाँ धूप में ओसबिन्दु के समान चमकती हैं, ऋतु आने पर पत्तियों में से ४-५ इंच ऊँचा एक डंठल निकलता है। इस डंठल पर सफेद छोटे-छोटे फूल लगते हैं।

कांटों के सिरे पर की चमकदार बूँदें लसदार, गाढ़ी और मीठी होती हैं। इस कारण उनके पासमें घूमनेवाले जानवर उनकी ओर आकर्षित होते हैं। जिस प्रकार अन्य पुष्पों के मकरंद से उड़ने वाले कीड़े-मकोड़े आकर्षित होते हैं, उसी प्रकार इस पौधे की मीठी बूँदों से कीड़े आकर्षित होते, परंतु परिणाम एक दम दूसरा ही होता है। फूलों का पुष्परस मक्खियों के लाभ की वस्तु है किन्तु यह मीठा रस उनके जीवन लेने के लिये होता है। जैसे ही कोई जानवर इस स्वादिष्ट भोजन पर बैठता है वह तुरन्त ही चिपकदार वस्तु से चिपक जाता है और जितना ही वह छूटने का प्रयत्न करता है उतना ही वह और अधिक फंसता जाता है। अब कांटे अन्दर की ओर को मुड़ जाते हैं। सबसे पहले जानवर के पास वाले कांटे मुड़ते हैं और अपने अन्दर उसको फांसने का प्रयत्न करते हैं। इसके बाद दूर के किनारे की ओर के कांटे अन्दर को मुड़ते हैं। जब तक सब के सब कांटे नहीं मुड़ जाते तब तक यह क्रिया लगातार होती रहती है। अन्त में वह जानवर मानो सैकड़ों अँगुलियों के बीच में जकड़ जाता है। जैसे मक्खी मकड़ी के जाले में फंस जाती है ठीक उसी प्रकार इन कांटों में कीड़ा फंस जाता है और उसके निकलने का कोई रास्ता नहीं रहता।

जानवर की स्थिति के कारण पौधे में केवल कांटों के चलने की ही क्रिया नहीं होती किन्तु इसके साथ-साथ गोल बिन्दुओं के रस में भी परिवर्तन हो जाता है। पहले रस चिपकदार, मीठा निकलता था किन्तु अब एक विशेष प्रकार का रस निकलने लगता है, जिससे जानवर का शरीर गल जाता है। यह रस ठीक उसी प्रकार का होता है। जैसा कि आमाशयिक रस, जिसके कारण आहार पच जाता है। कुछ समयके पश्चात् कीड़ेके प्रायः सारे अंशको पौधा हज़म कर लेता है, केवल कड़े भाग बच जाते हैं, जैसे पंख टांग, इत्यादि। इस प्रकार पौधेके पत्ते भोजन हज़म करने के अंगों का कार्य करते हैं इसलिए इनको पौधेका पेट कहा जा सकता है।

डायोनिया

इस पौधेके विषयमें एक विचित्रता और है; वह इन कांटोंकी निर्णय शक्ति है। चार्लस डार्विन ने यह प्रदर्शित

किया कि जब एक मक्खी पत्ते पर रखी जाती है तो सारे कांटे कुछ ही घंटेमें उसे चारों ओरसे फाँस लेते हैं। किन्तु जब एक कागज़की गोली बना कर पत्ते पर डाली गई तो चौबीस घण्टेमें भी दो चार कांटे ही मुड़े। इसके अतिरिक्त अच्छा भोज्य पदार्थ मिलने पर भोज्य पदार्थको, कांटे तब तक पकड़े रहते हैं जब तक उसका हजम होने वाला सारा भाग हज़म नहीं हो जाता। किन्तु यदि अभोज्य पदार्थको पौधे ने पकड़ भी लिया तो शीघ्र ही उसे छोड़ दिया और हज़म करने वाला रस भी अधिक नहीं मिलता।

कीटभक्षक पौधोंके वर्ग १ का एक दूसरा उदाहरण वीनस फ्लाई-ट्रैप (Dionoea muscipula डायोनिया म्यूसीपुला)। यह उत्तरी अमेरिका (फ्लौरिडाके द्वीपमें) दलदली मार्गके पास जंगली अवस्थामें मिलता है। पत्ते फूलके डंठलके चारों ओर गुच्छेके समान रहते हैं। पत्तीका डंठल चौड़ा और चिपटा और पत्ती स्वयं गोल होती है और एक नस द्वारा दो समान भागोंमें विभाजित रहती है। ये दोनों भाग एक धरातलमें रह कर एक दूसरे की ओर कुछ झुके रहते हैं। पत्तीके किनारों पर तेज़ कांटे होते हैं। इन कांटोंमें न तो किसी विशेष प्रकारकी ग्रंथि होती है और न सिरोंकी बनावटमें ही कोई विशेषता होती है।

पत्तेके प्रत्येक आधे भागके बीचमें तीन कड़े और नुकीले कांटे होते हैं। ये कांटे किनारोंके कांटोंसे छोटे होते हैं और बिलकुल सीधे न होकर कुछ झुके रहते हैं। इसके अतिरिक्त पत्तेका अवशेष भाग छोटी छोटी ग्रंथियोंसे पूर्ण होता है।

यदि कोई मक्खी इन पत्तोंके किनारेके काँटों पर घूमती रहे तो उसे कोई हानि नहीं होगी। इतना ही नहीं यदि वह ग्रंथियों पर भी घूम आये तो भी कोई आशंका नहीं। किन्तु यदि तनिक भी यह बीचके कांटोंसे—जो देखनेमें बड़े कोमलसे लगते हैं—छू गई तो समझो कि उसकी मौत आ गयी। ज्यों ही यह मार्मिक अंगोंका स्पर्श करती है एकदम पत्तेके दोनों भाग बन्द हो जाते हैं और कभी-कभी इन दोनों भागोंके बीचमें मक्खी कुचल जाती है। जब पत्ता इस प्रकार बन्द हो जाता है तो किनारेके दांते भी चूहेदानीके दांतोंके समान एक दूसरेमें फँस जाते हैं। इस प्रकार यदि शिकार बन्द होते ही फँस गया हो तो बादमें इन दांतोंके कारण वह बाहर न निकल सकेगा। भोज्यकी उपस्थितिके कारण ग्रंथियाँ भी कार्य प्रारम्भ कर देती हैं। इनसे बहुतसा रस निकलता है जिसके कारण यह जानवर पेड़के हजम करने योग्य बन जाता है। इस प्रकार पेड़ अपना भोजन प्राप्त करता है। यह पौधा पूर्व वर्णित कीटभक्षक पौधोंके समान शिकार नहीं करता क्योंकि इस पौधेमें पहले पौधोंके समान कांटोंसे किसी प्रकारका रस नहीं निकलता जिसके कारण शिकार फँस जाय। इस पौधेका कोई भी भाग चिपचिपा नहीं होता। पौधा शीघ्रता से अपने पत्तेके आधे भागोंको बन्द करके शिकार पकड़ता है। यह क्रिया मार्मिक कांटोंके कारण होती है। इस प्रकार कीड़े-मकोड़े अनजानमें फँस कर अपने शरीरसे इस पौधेका पालन करते हैं।

वर्ग ३ में कीट भक्षक पौधों की वह जाति है जिसमें न तो सुराही-सा अंग है और न किसी प्रकार का अंग संचालन, किन्तु पत्ते ही चिपचिपी टहनियों का कार्य करते हैं। इन पत्तों की ग्रंथियों से चिपकदार रस निकलता है जिसके कारण शिकार उसमें चिपक कर फंस जाता है, तथा इनसे हज़म करने वाला रस भी निकलता है जिसके कारण अलबुमिन जाति के रासायनिक पदार्थ भी घुलनशील हो जाते हैं। इस विभाग का सबसे अच्छा उदाहरण फ्लाई-कैचर (Drosophyllum) है जो पुर्तगाल और मोरक्को में मिलता है। इसके पत्ते बड़ी शीघ्रता से मक्खियों को आकर्षित करने और उन्हें हज़म करने के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। जहाँ पर वह बहुतायत से होता है वहाँ पर गाँव के लोग इसके पत्ते अपनी झोपड़ियों में टांग देते हैं। यह आजकल के फ्लाई-पेपर का काम करता है। इस पौधे में ड्रोसेरा (Drosera) के समान कांटे कार्य नहीं करते हैं। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि यह शिकार फंसाने में किसी से कम होगा। इसके कांटों का पत्ते की सतह पर सर्वत्र रहना तथा विशेष प्रकार का रस निकालना इसकी गति हीनता की पूर्ति कर देता है। पत्ते की ऊपरी तथा निचली दोनों सतहें इन ग्रंथियों से ढकी रहती हैं। ये ग्रंथियाँ लम्बी कतारों में पत्ते

[शेष पृष्ठ १५४ पर]

रेल, रोड और हवाई ट्रांसपोर्टका संयुक्त संचालन

[Co-ordination of Road Rail--Air Transport]

[लेखक—श्री आनन्द मोहन बी० एस० सी० कमरशियल सुपरिंटेंडेंट ई० आई० आर०]

भारतमें रोड ट्रांसपोर्ट का विस्तार

रोड ट्रांसपोर्ट भारतमें अभी उतना नहीं फैला है जितना कि संसारके और देशोंमें फैल चुका है। इस देशके विस्तार और जन-संख्याको देखते हुये, इस देशमें जो बसें (Busses) और लारियाँ चल रहीं हैं वे बहुत कम हैं और इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि जैसे-जैसे देशमें पक्की सड़कें बढ़ेंगी वैसे २ बस यानी लारी और लारियाँ माल लादनेकी गाड़ीकी संख्यामें भी वृद्धि होगी। बस और लारियाँ गांव और शहरके मनुष्योंको लाभ पहुँचाती हैं, इसलिये इनके उचित फैलावसे हमें सन्तोष होता है और यद्यपि हम देशकी उन्नतिके लिये रेलकी उन्नति नितान्त आवश्यक समझते हैं, तो भी हम यह नहीं चाहते कि बस और लारीकी उन्नतिको किसी अप्राकृतिक संधानसे रोका जाय। हमारा विश्वास है कि यदि देशकी आवश्यकताओंके अनुसार रेल और बस लारियोंका उपयोग किया जाय तो दोनोंको लाभ होगा और देशका अधिक-से-अधिक लाभ होगा।

बस लारीका क्षेत्र

(क) बस और लारीके अधिकतर लाभ सर्व-विदित हैं। थोड़ी-थोड़ी दूर पर बसे हुये बड़े-बड़े नगरों या स्थानोंके बीचमें या ऐसी दूसरी जगहोंमें जहां थोड़ी-थोड़ी देरके बाद सवारियोंकी आवश्यकता होती है लारी और बसें रेलसे अधिक उपयुक्त सवारी हो सकती हैं, परन्तु रोड-सर्विसेज का मुख्य लाभ निम्नलिखित तरीकेसे मिलेगा। देशके बहुतसे ऐसे बड़े-बड़े भाग हैं जहां एक गांवसे दूसरेको जानेके लिये कोई सवारी ही नहीं होती। ऐसे स्थानोंमें अगर रोड-ट्रांसपोर्ट बढ़े तो देशको अवश्य ही अधिक लाभ होगा। जैसे और देशोंमें वैसी ही भारतमें भी, बस और लारियां गांवोंकी दशामें बहुत परिवर्तन कर सकती हैं। जो गांव रेलवेसे और बड़े-बडे नगरोंसे दूर बसे हुये हैं, और जहाँसे बैल या घोड़े-गाड़ियोंके द्वारा जनता और माल-को आने-जानेमें बड़ा समय लगता है और असुविधा होती है; वे बस और लारियोंकी सहायतासे दूर-दूर नगरों और मण्डियोंसे सुविधाके साथ सम्पर्क रख सकते हैं और व्यापार सम्बन्धी पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं। सरकारी प्रबन्धका उद्देश यही होना चाहिये कि पिछड़े हुये और दूर-दूरके गाँवोंको विशाल नगरों और रेलवेसे मिलानेके लिये नई और अच्छी सड़कें बनवावें और बसों और लारियोंको प्रोत्साहन दें कि इन्हीं सड़कों पर चलें जिससे ग्रामीण जनताको अधिक-से-अधिक लाभ पहुँचे। यह उद्देश्य रोड ट्रांसपोर्टके समुचित प्रबन्धसे ही पूरा हो सकता है। सरकारी प्रबन्धकी अनुपस्थितिमें इन पिछड़े हुये स्थानों पर चलनेकी जगह बस और लारियाँ अधिकतर ऐसे ही स्थानोंमें चलती हैं जहाँ उन्हें सबसे अधिक लाभकी आशा है पर जहाँ रेलके होनेके कारण वास्तवमें उनकी कोई आवश्यकता नहीं है। इनसे रेलोंको तो हानि पहुँचती ही है पर इनकी बहुतायतसे अधिक होड़के कारण उन्हें स्वयं भी अधिक लाभ नहीं पहुँचता तथा देशके पिछड़े स्थानोंको जिन्हें बसोंकी असली आवश्यकता है बिना उनके काम चलाना पड़ता है। जिससे इनका वाणिज्य व्यापार भी उन्नति नहीं कर पाता।

(ख) कहीं-कहीं बस और लारीके क्षेत्र पर विचार प्रगट करते हुये यह कहा जाता है कि रेल और रोडका झगड़ा मिट जाय; यदि यह नियत कर दिया जाय कि जहाँ तक थोड़ी दूर जानेका काम हो, वहाँ तो केवल बस और लारियाँ और जहाँ अधिक दूर जानेका काम हो वहाँ रेल ही काममें लाई जाय। रेल बड़े-बड़े मुख्य रास्तों पर ही चले और उन पर बड़े दूर-दूर पर ऐसे स्थान हों जहाँ रेलसे आया हुआ माल मोटर लारियाँ द्वारा देशके दूर-दूर के शहरों और गाँवोंको ले जाया जाय। ऐसे ही रेलसे जानेके लिये माल लारियाँ इकट्ठा कर सकती हैं। ऐसा करनेसे रेलवेको भी बड़ा लाभ पहुँचेगा। आजकल थोड़ी-थोड़ी दूर पर छोटे-छोटे स्टेशन होनेसे एक स्टेशन पर काफ़ी

माल नहीं होता। अकसर एक गाड़ी जिसमें २० टन माल आ सकता है केवल ४-५ टन माल लादनेके लिये काममें लाना पड़ता है। किसी-किसी स्टेशन पर इससे भी कम माल होता है और नियत समयके अन्दर अधिक माल न मिलनेकी आशासे गाड़ीको फिर भेजना पड़ता है। ऐसा न करें तो मालको स्टेशन पर तब तक पड़ा रहना पड़ेगा जब तक स्टेशनके लिये काफ़ी माल न हो। अगर दो-तीन स्टेशनोंका माल मिला कर भेजा जाय तो जगह-जगह मालको रुकना पड़ता है। इसमें देरी होती है और बार २ उतारने चढ़ानेमें माल टूटता फूटता है। इसी कारणसे जो इञ्जन १००० टन खींच सकता है वह अक्सर ३०० टन माल खींचनेके काममें लाया जाता है। इसके अतिरिक्त जगह २ स्टेशनों पर गाड़ियाँ जोड़ने और काटनेके कारण मालगाड़ी की गति भी बड़ी कम रहती है। यदि छोटे २ स्टेशन और छोटी २ मामूली ब्रौंच लाइनोंको बन्द कर दिया जाय तो बहुतसा खर्च बच जाय, रेलका जितना स्टाक है, उसका पूरा उपयोग हो, माल शीघ्र गतिसे चले, और जनताको अधिक से अधिक लाभ हो। यह बात कुछ अंशमें ठीक हो सकती है पर इसकी पूरी सचाईमें शंका है। प्रथम तो रेलवेमें दूर और पास जाने वाले ट्रैफिकको इतना अलग २ नहीं किया जा सकता। यदि पास जाने वाले माल रेलसे न चलें, तो रेलका ख़र्च कोई विशेष कम न होगा। रेल की पटरियाँ उतनी ही लगेंगी। ट्रेनों को उतनाही दूर दौड़ना पड़ेगा। जो बचत होगी वह उस ख़र्चेसे कहीं कम होगी जो कि सारे पास जाने वाले ट्रैफिककी लारियोंसे ले जानेमें होगा। फिर पास जाने वाले ट्रैफिकके रेलसे न ले जानेमें जो हानि रेलको होगी उसकी पूर्तिके लिये दूर जाने वाला माल जो अब लारियोंसे चलता है रेलको वापिस देना पड़ेगा। इससे लारी वालोंको काफ़ी हानि होगी। फिर यह भी संभव नहीं है कि सारा पास जाने वाला ट्रैफिक रोड लारियोंके बिना किराया बढ़ाया जा सकेगा क्योंकि उसके ले जानेमें फ़ायदा बहुत कम है। रेलसे तो इसलिये चला जाता है कि थोड़ा २ सा लाभ भी बहुत अधिक मालके चलनेके कारण सब मिलकर काफ़ी लाभ हो जाता है! पर लारीको जो कि कुल तीन टन ही ले जा सकती है, वर्त्तमान रेलके किराये पर अपना पेट्रोलका ख़र्चा निकालना कठिन होगा। रही रेलके स्टाकके पूरे उपयोगकी बात तो यह बात कहनेकी ही है कि यदि और अधिक माल एक साथ मिलता, तो गाड़ियोंमें अवश्य ही अधिक बोझा लादा जाता क्योंकि यद्यपि एक गाड़ीमें ३० टन लादने के उपयुक्त है पर उसके अन्दर कपासकी तरह बहुतसी चीज़ोंके २ टन भी लादना कठिन होगा। इसलिए हमारे विचारमें लारी और रेलका क्षेत्र दूर जाने वाले और पास जाने वाले मालके ऊपर निश्चित न कर, जैसा पहिले बतला आये हैं, इसपर होना चाहिये कि जनताका हित किसमें अधिक होता है। थोड़ी दूर जानेवाले मालका कभी रेलसे ले जाया जाना ज्यादा सस्ता और लाभप्रद हो सकता है, और कभी लारी से। इसी तरह दूर जाने वाले माल पर भी यह बात लागू है। जैसा मौका हो वैसाही प्रबन्ध करना चाहिये।

३—रोड ट्रांसपोर्ट में प्रबन्ध की कमी के कारण गड़बड़—१६४० के मोटर वेहिकिल्स ऐक्ट (Motor Vehicles act) के पहले कोई उल्लेखनीय समुचित प्रबन्ध नहीं था। कितनी जगह कितनी बसें और लारियाँ हैं क्या काम करती हैं इसका कोई विश्वास योग्य वर्णन नहीं मिलता था। वे प्रायः बहुत बुरी दशामें होती थीं और बुरी तरहसे चलायी जाती थीं। कहीं कुछ बसें और लारियाँ अच्छी तरहसे चलायी जाती थी पर ऐसी बहुत अल्प संख्यामें ही मिलती थीं। १९४० के बाद इस मामलेमें बहुत कुछ उन्नति हो गई पर अभी बहुत कुछ करनेको बाक़ी है।

४ वर्तमान प्रबन्ध रोड ट्रांसपोर्टका नियन्त्रण प्रांतीय सरकारके ही द्वारा अधिकतर होता है। नई सड़कें बनाना भी उन्हींका काम हैं। परन्तु चूँकि उनके पास धन बहुत कम होता है, यहाँ तक कि जो सड़कें अब हैं उनको भी अच्छी तरह बनाये रखनेके लिये वह धन पर्याप्त नहीं होता इसलिये उन्हें भारतीय केन्द्रीय संस्थाका सहारा लेना पड़ता है। यह सहायता केन्द्रीय संस्था पेट्रोल द्वारा जमा किये हुये धनसे देती है। इसलिये केंद्रीय संस्था सड़कोंको बनानेके मामलोंमें हस्तक्षेप करती है। यह प्रान्तीय सरकारोंको अधिकांश खलता रहता है, क्योंकि वह कहते हैं कि केन्द्रीय संस्था रेलोंके लिये अधिकतर पक्षपात करनेके कारण ऐसी सड़कें नहीं बनाने देती जो

कि पब्लिकके लिये बड़ी लाभदायक हैं पर जिनका होना रेलवेके लिये हानिकारक है।

५ – जन साधारणके लिये रोड ट्रांसपोर्टके समुचित प्रबन्धकी आवश्यकता फलतः प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकारोंमें खींचातानी होती रहती है। एक ओर प्रान्तीय सरकारें बिना किसी नियंत्रणके बसों और लारियोंको निरकुंश रूपसे बढ़ने दे रही हैं, जिसके परिणाम स्वरूप अनियमित और खराब प्रबन्ध वाली बसोंकी वृद्धि होती है। दूसरी ओर केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारोंकी नियन्त्रणकी कमी देख कर और रेलवेको अनुचित हानि पहुँचते देख कर बेबसीमें यह सोचती हैं कि ऐसी सड़कों-की वृद्धि ही न हो जिन पर चल कर बस और लारी रेलवेको हानि पहुँचा सकें, चाहे यह सड़कें देशके लिये लाभदायक ही क्यों न हों। इस दो तरफा सरकारी प्रयत्न का फल अत्यन्त हानिकारक है—अवनतिशील रेलवे और अल्प सड़कें। ऐसी दशामें रेल और बस-लारीके संयुक्त-संचालनकी चेष्टाका सफल होना असम्भव है। संयुक्त-संचालनके पहले यह आवश्यक है कि रेल और बस-लारी समुचित प्रबन्धसे शाशित हों। जब यह हो जायगा, तो रेल और रोड ट्रांसपोर्टके संयुक्त-संचालनमें फिर कुछ रुकावट न रहेगी। जहाँ तक रेलवे प्रबन्धका सम्बन्ध है, यह गवर्नमेंटके हाथमें है ही और उनके संचालनके लिये आव-श्यक नियम बड़े ध्यानसे बनाये हुये हैं। यदि गवर्नमेंट अपने हाथमें हो तो रेलवे पर पूरा-पूरा नियंत्रण जनता कर सकती है और जो नियम बुरे लगते हैं, जब चाहे बदले जा सकते हैं। इसलिये उसके सम्बन्धमें यहाँ विशेष ध्यान देनेकी कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

६ – बस लारी-प्रबन्ध :—अब बस-लारियों के उचित प्रबन्ध का ही सवाल रहा। बस-लारियोंके प्रबन्धमें बहुत कुछ कमी है और यह परम आवश्यक है कि इसके लिये शीघ्र उचित प्रबन्ध हो। बस और लारीके प्रबन्धके प्रश्न से अकसर कुछ लोग घबराकर कह बैठते हैं, कि इस प्रबन्ध का उद्देश्य यह है कि बस और लारियोंके आक्रमण से रेलवे को बचाया जाय और इस तरह रेलवे को जो इस कालमें अनुपयुक्त है और अपने पैरों पर नहीं खड़ी हो सकती प्रोत्साहन दिया जाए। परन्तु न तो रेलवे वर्तमान कालके अनुपयुक्त ही हैं और न वे इतनी असहाय ही हैं कि बस और लारीके आक्रमणसे अपना बचाव न कर सकें। दूर दूर तक सस्ते किराये पर भारी भारी माल जैसे कोयला इत्यादि लादकर लेजानेवाली सवारी रेलके अतिरिक्त जनताके लाभके लिए दूसरी कौन है? क्या बस और लारियों द्वारा रेत, कोयला, ईंटें इत्यादि को हज़ारों मील लेजाने का आशा है? यह तो मानना ही पड़ेगा कि बसों और लारियोंकी वृद्धिसे रेलोंको भारी हानि उठानी पड़ी है। गणना करके मालूम हुआ है कि भारतीय रेलोंको प्रतिवर्ष काफी हानि होती रही है और ५ करोड़ रुपये तक पहुँच गई थी। आगे और भी अधिक हानि होनेकी सम्भावना है। परन्तु ऐसा कुछ नहीं है कि बस और लारी के आक्र-मण का सामना करनेमें रेलवे बिलकुल असहाय है। समयानुसार अब भी रेलवे ने काफ़ी सफल प्रयत्न इस आक्रमण को रोकनेके लिए किए हैं जो निम्न प्रकार हैं:—

१. पैसेंजर और मालगाड़ियों के वेग की वृद्धि।

२. विशेष स्थानोंपर गाड़ियों की संख्या में वृद्धि।

३. अच्छी बनावट के कोचों का उपयोग।

४. यात्रियों के लिए सीटों का रिज़र्व करना।

५. स्टेशन पर आराम, पाखाने, विश्रामगृह, नहानेके स्थान, शुद्ध और स्वच्छ भोजन और जल।

६. सस्ते किराये और स्पेशल टिकट।

७. माल ले जानेकी दरमें कमी।

८. बाज़ारों के बीच में पैसेंजर और माल के बुकिंग आफिस।

९. व्यापारियों का बाहर जानेवाला माल दूकान दूकान से लेजाना और बाहर से आया हुआ माल दूकान पर छोड़ जाना जैसे बस लारियाँ करती हैं।

१०. मालगाड़ी में जितना सामान जा सकता है उससे बहुत कम मालके होने पर भी गाड़ीको भेज देना। इसलिए यह भ्रम निर्मूल है कि बस और लारी के उचित प्रबन्ध के बिना रेलवे अपना काम चला ही नहीं सकती। सच बात तो यह है कि बस और लारी का प्रबन्ध रेलवे की बात छोड़ भी दी जाय तो जनताके लिए परम आवश्यक है और स्वयं बस और लारियों को भी सुविधाजनक होगा। क्योंकि इसीके द्वारा बस और लारियां ऐसे काम कर

सकतीं हैं। जिसमें यात्रियोंको न तो कुछ खटका हो और न बस- वालों को ही आर्थिक हानि उठानी पड़े।

७—रोड ट्रान्सपोर्ट के लिए प्रबन्ध-संस्था—बस और लारियोंके प्रबन्धमें केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों सरकारोंका दखल है और इसलिए कोई आश्चर्य नहीं, यदि कहीं-कहीं इस बात पर मतभेद है कि किस सरकारका कितना हाथ हो। एक तरफ से तो यह कहा जाता है कि भारत का ८० करोड़ रुपया रेलोंमें लगा हुआ है इसलिए केन्द्रीय संस्था को चाहिए कि वह यह चेष्टा करे को भारत की इतनी पूंजीका ह्रास न हो और देशकी ऐसी मुख्य पब्लिक-सर्विसकी अनुचित और हानिप्रद होड़ (uneconomic competition) से क्षति न उठानी पड़े। इसलिए यह आवश्यक है कि जिस तरह रेलों का प्रबन्ध केन्द्रीय संस्थाके हाथमें है उसी तरह बस-लारियों का प्रबन्ध भी उसीके हाथ में हो। दूसरी तरफ यह कहा जाता है कि नई सड़कोंके बनाने, मरम्मत करने और ठीक रखनेका काम प्रान्तीय सरकारके हाथमें होना चाहिए क्योंकि मोटर लारी चलानेका ठीक प्रबन्ध पुलिसके द्वारा ही हो सकता है और प्रान्तीय सरकारके हाथमें होती है। इन कारणोंसे इसमें कोई सन्देह नहीं कि सड़कों के ट्रान्सपोर्ट का प्रबन्ध आज-कलकी तरह प्रान्तीय सरकार द्वारा ही अधिक सुविधासे हो सकेगा। लेकिन साथ ही साथ यह आवश्यक है कि यह प्रबन्ध जिन सिद्धान्तोंपर चले वे केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चित रहे और बार बार उन पर प्रान्तीय सरकारोंका ध्यान दिलाया जाय जिससे सब प्रान्त एकसे ही नियमोंपर चलें।

८—रोड ट्रान्सपोर्ट प्रबन्ध का सिद्धान्त : -

निरापदता के लिए निम्नलिखित प्रबन्ध आवश्यक हैं:-

१ (क) सवारी की दशा—सवारी का समय २ पर निरीक्षण होना चहिए जिससे यदि किसी सवारी में कुछ ख़राबी आजाय तो उस सवारीका चलाना बन्द कर दिया जाय।

(ख) बसमें जगहसे ज़्यादा मनुष्योंका बैठाने और लारी की शक्तिसे अधिक बोझा लादने का निषेध होना चाहिए।

(ग) गति बस और लारियां नियत गतिके अन्दर चलें। नियंत्रण करनेके लिए किसी ऐसे यंत्रको लगाना ठीक रहेगा जिसमें बस लारी की गति रास्ते भर अंकित होती रहे।

(घ) कार्य्यके घन्टे—जनताकी रक्षाके लिये यह भी आवश्यक है कि चाहे ड्राइवर चला रहा हो चाहे बसका मालिक ख़ुद चला रहा हो, दोनोंके लिये कार्य्यके घन्टे नियत हों।

(च) ड्राइवरकी उपयुक्तता—यह आवश्यक है कि ड्राइवर शरीर और कुशलतामें गाड़ीके चलानेके उपयुक्त हो।

(२) इनके अतिरिक्त किसी बस और लारीको लाइसेंस देते समय यह देखना भी आवश्यक है कि जिस जगह पर लारी या बस चलानेके लिये लाइसेंस मांगा जा रहा है वहाँ वर्तमान सवारियोंकी अवस्था क्या है और जनताके हितमें उसको लाइसेंस देना आवश्यक है या नहीं। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो एक ओर तो अनावश्यक जगहोंमें सवारियोंमें वृद्धि होती जायगी जो देशके धनका अपव्यय होगा, और दूसरी ओर जहाँ सवारियोंकी आवश्यकता है वहाँ आवश्यकतासे कम सवारी रहेंगी।

(२) बसोंको किसी संस्थामें कहीं भी चला सकनेका लाइसेंस देनेकी जगह खास रास्तोंका लाइसेंस ही मिलना चाहिये। नहीं तो फल वही रहेगा कि कहीं अधिक लाभ-की आकांक्षासे आवश्यकतासे अधिक सवारी होगी और कहीं बहुत ही कम।

(४) बसोंके पहुँचने और छूटनेके समय नियत होने चाहिये और किराए भी निश्चित रहने चाहिये नहीं तो अनुचित होड़में किराये कम और ज़्यादा हो जाते हैं। जिससे बहुतसे बस वालोंको बड़ी हानि पहुँचती है, और सवारियाँ जल्दी ख़राब हो जाती हैं और जनताको अन्तमें क्लेश ही मिलता है।

(५) लारियोंके लिये यही ठीक होगा कि वह एक पूरे जिलेमें आ जा सकें क्योंकि किसी खास सड़क या रास्ते पर जानेके लिये बाध्य करनेसे उन्हें यथेष्ट लाभ न होगा, और लारियाँ इसलिये जनताको पूरा लाभ न पहुँचा सकेंगी। जब तक लारी-सिस्टम अच्छी तरह उन्नति करके संगठित न हो जाय तब तक किरायेके मामलेमें हस्तक्षेप

करनेकी आवश्यकता नहीं, यद्यपि कानूनसे प्रबन्ध-संस्था के हाथमें यह शक्ति रहनी चाहिये कि चाहे जिस रास्ते पर और चाहे जिस मालको लारियों द्वारा जाने दें।

(६) पब्लिक और प्राइवेट लारियोंमें भेद करना ठीक नहीं। क्योंकि समुचित प्रबन्धका अर्थ यहीं है कि देशकी जितनी सवारियाँ हैं चाहे वे सारी पब्लिकके लिये हो चाहे व्यक्ति-विशेषके लिये उनका उचित उपयोग जनताके लिये हो। इसलिये प्राइवेट लारियोंमें भी वही नियम लागू होने चाहिये जो पब्लिक लारियोंके लिये होते हैं।

९— सड़कोंका बनाना—जब मोटर सवारियों पर नियंत्रणका समुचित प्रबन्ध हो जायगा तो सड़कोंके बनाने में केन्द्रीय संस्थाको हस्तक्षेप करनेकी आवश्यकता न होगी। जब केन्द्रीय संस्था देखेगी कि समुचित प्रबन्धसे रेलवेको अधा-धुन्ध हानि नहीं पहुँच रही है बल्कि सब काम जनताके हितको सामने रखते हुये नियम-पूर्वक हो रहा है, तो यह डर निकल जायगा कि किसी सड़कके बननेसे रेलवेको कोई बड़ी हानि न पहुँच जाय। दूसरी ओर प्रान्तीय सरकार जब देखेगी कि उनको सबसे अधिक जनताके हितको सामने रखना है, तो वे अपनी शक्ति ऐसे स्थानोंमें ही सड़कोंको बनानेमें न खर्च करेंगी जहाँ आनेजाने के लिये पहलेसे ही इन्तज़ाम है, बल्कि देशके पिछड़े हुये हिस्सोंको शहरोंसे मिलाने वाली सड़कोंको बनानें पर ध्यान देंगी।

१० रोड टांसपोर्ट में रेलवे का हिस्सा लेना :—जब नियंत्रणकी समुचित व्यवस्था हो जायगी तब रेलोंके लिए भी यह सहल हो सकेगा कि वह भी रोड-ट्रांसपोर्ट में हिस्सा लें। यदि रेलें रोड-ट्रांसपोर्टमें हिस्सा लेने लगें, तो रेल और रोड ट्रांसपोर्टके मेलसे बड़ी सरलता हो जाए क्योंकि रेलोंका दोनों तरफ स्वार्थ होनेसे केवल उनकी दृष्टि अपने ही लाभ पर केन्द्रित न होकर उन कामों पर होगी जिनसे जनता का हित हो। आज कल की हालत में जब कि बसें बिना किसी नियंत्रणके चल रही हैं, कोई अच्छी संस्था यदि उपयुक्त दशा की बसें कायदे के अनुसार चलाना चाहे तो लाभ उठाना तो दूर रहा उलटे हानि होने की सम्भावना है। वर्त्तमान बसों के किराए इतने कम हैं कि उनसे बसोंके ऊपर होने वाला ऊपरी ख़र्च भी कठिनतासे चलेगा। वर्त्तमान बसोंकी दशा बड़ी शोचनीय है—प्रायः यह टूटी-फूटी रहती है, कम स्थानमें बहुतसे मनुष्य घुसे रहते हैं, इन बसोंको अधिकतर बस-मालिक ही चलाते हैं या उनके घर वाले जिससे उनका चलाना बहुत सस्ता पड़ता है। जिन सड़कों पर बस चलानेमें लाभ होता है उन पर अवश्यकतासे अधिक बसें चलती हैं। यदि ऐसी दशामें कोई रेलवे अपनी बसें चलाना चाहे तो इसमें कोई शंका नहीं, कि वर्त्तमान बस-वालोंकी ओरसे बड़ी स्पर्धा होगी, और यह लोग बसोंके किराए और भी कम करके रेलवे-बसोंको हरानेका प्रयत्न करेंगे। रेलवे की बसें तो अवश्य ही बहुत अच्छी दशामें होंगी। उनके चलाने के ड्राइवर और दूसरे कर्मचारियोंको उचित वेतन मिलेगा जिसका परिणाम यह होगा कि रेलवेको बसोंकी (दूसरे बस चलाने वालों की घोर स्पर्धा के होते हुए) चलाने में अवश्य ही हानि उठानी पड़ेगी। पर फिर भी रेलवेको रोड ट्रांसपोर्टमें हिस्सा लेना ही चाहिए। क्योंकि जैसे ऊपर बतलाया गया इससे एक तो रेल-रोड-ट्रांसपोर्ट के संयुक्त संचालनमें सहायता मिलेगी और दूसरे रेलवे को निम्नलिखित लाभ होंगे :—

(क) यदि रेलवे एक अच्छी बस-सर्विस चलाएगी, तो उसको जनता की सहानुभूति मिल सकेगी, जो कि उसको आज कल नहीं मिल रही है।

(ख) रेलवेकी अच्छी चलाई हुई बस-सर्विस से जनता को पता चलेगा कि वर्त्तमान बसें किस बुरी अवस्थामें हैं और तब जनता उनकी हालत सुधारने और उनको नियम-युक्त चलानेके लिये आन्दोलन करेगी।

(ग) रेलवेको बस चलानेसे जो सीधी हानि (Direct Loss) होगी, उससे कहीं अधिक काम उनका इससे होगा कि उनकी चलाई हुई बसोंके कारण दूसरोंकी बसों की वृद्धि कठिनतासे हो सकेगी।

इसलिए यद्यपि रेलवे ने पहिले रोड ट्रांसपोर्टमें कोई हिस्सा नहीं लिया तो भी अभी उन्हें मौका है। ख़ास करके वर्त्तमान युद्धके कारण बाहर की बस और लारी सर्विस प्रायः थोड़े समयके लिए बिलकुल बन्द सी हो गई है और लड़ाईके बन्द होनेके बहुत कुछ समय बाद तक उनके फिरसे आरम्भ होनेकी सम्भावना कम है। इस

लिए रेलवेके लिए यह बहुत अच्छा होगा कि लड़ाई खतम होनेके पहिले ही, वे अपना पैर रोड-ट्रॅंसपोर्टमें जमानेके लिए पूरा इन्तजाम कर लें और युद्ध समाप्त होते ही शीघ्रसे शीघ्र अपनी रोड-सर्विस ठीक स्थान पर आरम्भ कर लें।

११—हवाई-ट्रांसपोर्ट (Air Transport):—वर्त्तमान लड़ाईके समाप्त होनेके बाद रेल और रोड ट्रांसपोर्टके अतिरिक्त हवाई ट्रॅंसपोर्ट भी भारतमें फैलेगा। बाहरी देशोंसे आनेके लिए तो पहिले ही यात्रियोंके लिए हवाई-ट्रांसपोर्ट काफी प्रचलित हो चुका था। इसमें सन्देह नहीं कि लड़ाईके बाद बहुतसे हवाई जहाज़—जो अब लड़ाईमें लगे हुए हैं—खाली हो जाएँगे और यात्रियोंके लिये बड़े २ शहरोंके बीचमें हवाई-ट्रांसपोर्ट-सर्विस नियमित-रूपसे चलने लगेगी। इसका फल यह होगा कि रेलवेके फस्ट्-क्लासमें जाने वाले बहुतसे यात्रियोंका अधिकांश हवाई-ट्रांसपोर्टको ही काममें लाने लगेगा। इसके लिए रेलवेको तैयार हो जाना चाहिए। जैसे रोड-ट्रॅंसपोर्टमें भाग लेनेके विषयमें ऊपर कह आये हैं, रेलवे को हवाई-ट्रांसपोर्ट सर्विसमें पहिले ही से अग्रिम स्थान लेना चाहिए। और उन्हें न केवल हवाई-ट्रांसपोर्ट कम्पनियोंमें हिस्सा लेने चाहिये, बल्कि जहां उपयुक्त हो वहां हवाई-ट्रांसपोर्टको खुद ही चलाना चाहिये।

१२-रोड-रेल हवाई-ट्रांसपोर्टका संयुक्त संचालन (Road Rail Air Coordination) हमारा ख्याल है कि देशके हितके लिए लड़ाईके बाद रोड-रेल-हवाई ट्रांसपोर्ट का संयुक्त संचालन होना चाहिए। यह संचालन केन्द्रीय सरकारकी अखिल-भारतवर्षीय-संस्थाके हाथमें होना चाहिए। उसके मेम्बरोंमें हवाई जहाज कम्पनियों (Air Companies) रेलवे प्रान्तीय सरकारों (Provincial Govt) और एक या दो चुने हुए रोड-ट्रॅंसपोर्ट एसोसिएशन (Road Transport Association) के प्रतिनिधि होने चाहिए। इस संस्था द्वारा सारे भारतवर्ष के रोड-रेल-हवाई-ट्रांसपोर्ट के संयुक्त संचालन के सिद्धान्त निर्माण होना चाहिये।

नये उत्पादन

इस्पात व्यवसाय जो अन्य चीज़ें तैयार करने लगा है उनमें टेलीग्राफके तार तथा कांटेदार तार बनानेके लिये छड़ें और जहाज बनानेके काम आने वाला विशेष प्रकार का इस्पात जिसकी व्यख्या बृटिश जलसेना विभागसे प्राप्त हुई थी, भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त तोपको नलियोंके लिये विशेष प्रकारका इसपात, तोपगाड़ियोंके धुरे, रेलगाड़ियोंके पहिये, टायर इत्यादि भी तैयार किये गये हैं। युद्धसामग्रीके एक कारखानेमें तोप गाड़ियोंके लिये मोटी चादरें बन रही हैं। एक दूसरे कारखानेमें एक बहुत ही मज़बूत प्रकारका इसपात तैयार किया गया है।

यद्यपि भारतमें इसपातके उत्पादनकी तुलना विविधता और परिमाणकी दृष्टिसे अन्य कितने ही देशोंसे नहीं हो सकती फिर भी इस बातसे इंकार नहीं किया जा सकता कि कार्य काफी बड़े पैमाने पर प्रारम्भ हुआ है। यदि भारतको मशीनों और विशेष कारीगरोंकी सहायता प्राप्त हो सके तो बहुत कुछ करके दिखाया जा सकता है। भारतमें कच्चा लोहा, कच्चा मैंगेनीज और कच्चा क्रोम काफी परिमाणमें वर्तमान हैं और इनसे इसपातके उत्पादनको लगभग असीम मात्रा तक बढ़ाया जा सकता है। किन्तु यह उसी अवस्थामें हो सकता है जब कि शक्ति तैयार करने, धातुओंका सोधन करने, लोहा गलाने तथा अन्य क्रियाओंके लिये आवश्यक मशीने बाहरसे मंगायी जा सकें और इन मशीनोंको लगाने और चलानेके लिये आवश्यक टेक्नीकल कर्मचारी (इंजीनियर, कारीगर इत्यादि) उपलब्ध हो सकें। —भारतीय समाचारसे

[शेष पृष्ठ १४८ का]

कीट-भक्षक पौधे

की सतह पर रहती हैं। रस अत्यन्त चिपचिपा होता है और बहुत निकलता है। इसके कारण जब कोई जानवर इन पत्तों पर बैठता है, और छूटने का प्रयत्न करता है तो चिपचिपे रस के और निकल आने से वह और भी फंस जाता है। यह रस उसके परों और टांगों पर चिपक जाता है। वह कीड़ा पत्ते पर तो चलता रहता है किन्तु वह उड़ नहीं सकता। इस प्रकार उसका शरीर और कांटों को छूता है जिसके कारण और रस निकलता है और उस कीड़े का शरीर उस रस में डूब सा जाता है। तत्पश्चात् बेचारा शान्त हो जाता है और अंत में मर जाता है।

बया और उसका घोसला

भारतवर्षमें शायद ही कोई ऐसा मनुष्य हो जिसने बयाका घोंसला न देखा हो। इस चिड़ियेको लोग इसके घोंसले की वजहसे ही अधिक जानते हैं। इसका घोंसला चतुर कारीगरी का एक नमूना होता है। उत्तरमें हिमालय-से लेकर दक्षिणमें लंका द्वीप तक भारत के प्रत्येक भाग में यह चिड़िया मिलती है। नैपाल में इसकी एक दूसरी जाति मिलती है। यह ज़रा बड़ी होती है तथा इसकी छाती का रंग कुछ पीला होता है।

रूप रंग इस चिड़िया का रंग कुछ मटियाले, कत्थई और पीले रंग के मिश्रण का होता है। पीठ का रंग और अधिक कत्थई होता है। इसके ऊपर कत्थई रंग की तथा सुनहरी किनारे की पतली पतली धारी सी होती है। इसकी आंखें कत्थई रंग की; चोंच गहरे किशमिशी रंग की और पंजे लाल या गहरे नारंगी रंग के होते हैं। यह लगभग ६ इंच लम्बी होती है।

स्वभाव—बया खुले मैदानों में रहना पसंद करती है। इसके घोंसले बागों में तथा घने जंगलों में भी मिलते हैं। आदमियों की उपस्थिति से यह चिड़िया बहुत घबराती है इसलिये मकानों के बरामदे या ऊँचे दरवाजों में यह घोंसला नहीं बनाती। मकानों के पास के बागों में या पेड़ों पर यह अपना घोंसला बना लेती है। काम करते समय इस चिड़िया से चुपचाप नहीं बैठा जाता। यह लगातार चूँ चूँ करती रहती है। इसकी चहचाहट मीठी तो होती है किन्तु कोयल के समान उसे मधुर कूक नहीं कह सकते। इसका भोजन अनाज के दाने या फलों का गूदा है। भुजंगे की तरह यह कीड़ों पर जीवन निर्वाह नहीं करती है। यदि इसे पाला जाय तो ज्ञात होगा कि यह बहुत बुद्धिमान है। अपने पींजड़े में यह लगातार इधर उधर फुदकती रहती है।

घोंसला—वर्षा ऋतुके प्रारम्भ होते ही बया बच्चे देनेके लिये घोंसला बनाने की तैयारी करने लगती है। इस समय हरी कांस की कोमल पत्तियों को चीर चीर कर यह अपने घोंसलों को बुना करती है। भारतवर्ष के उन प्रांतों में जहां वर्षा प्रायः साल भर होती है और जहां हरी पत्तियां और कांस लगभग साल भर मिल सकता है, वहां यह मार्च और अप्रैल में ही अंडे देने लगती है। किन्तु अन्य प्रान्तों में यह जुलाई और अगस्त के महीने में ही अंडे देती है।

बहुत-सी चिड़ियाँ एक साथ एक ही पेड़ पर घोंसले बनाती हैं। ये पेड़ या तो काँटोंदार बेरके होते हैं, जिससे अन्य जानवर इनके घोंसले न तोड़ सकें, या बाँस और ताड़के।

इसका घोंसला रिटोर्ट (retort) के रूपका होता है। ऊपरसे गोल तथा चौड़ा और नीचेसे पतला और लम्बा। यह घोंसला बहुधा काँसकी पतली पत्तियोंका बना होता है। किन्तु कभी-कभी यह कांसकी पत्तियों, केलेके पत्तों तथा अन्य प्रकारके रेशोंका भी बना होता है।

घोंसला बनानेका कार्य नर-मादा दोनों मिलकर करते हैं। बहुत करीब-करीब और होशियारीसे वे अपना घोंसला बुनते हैं। घोंसलेको पेड़की डाली पर ऐसी मज़बूतीसे लगाते हैं कि ज़ोरकी आंधी और मेहमें भी वह नहीं टूटता। नीचेके लम्बे पतले भागमें घोंसलेमें आने जानेका मार्ग रहता है। यह पतला सुरङ्गका-सा भाग २-३ फुट तक लम्बा होता है।

घोसलेके अन्दर बया चार-पाँच मिट्टीकी गोलियां रख देता है। सम्भवतः यह घोसलेको ठीक लटकनेके लिये वह रख देता है। किन्तु बहुधा कहते सुना गया है कि बया पटबीजनोंको पकड़ कर ले जाता है और इन गोलियोंके बीचमें ऐसे रखता है कि उसके घोंसलेमें प्रकाश हो जाय। प्रायः यह नदीके किनारे पानी पर झुकी हुई डालों पर अपना घोंसला बनाता है। पेड़की डालसे लटकते हुये इसके घोंसले बड़े सुन्दर लगते हैं। इसके साथ साथ पानीके कारण ये और अधिक सुरक्षित हो जाते हैं।

अंडे—दक्षिणी प्रदेशमें यह प्रायः दो अंडे देती है। किन्तु उत्तरी भारतमें कभी-कभी चार अंडे तक भी दिये हैं। इसके अंडे बिल्कुल सफेद रङ्गके होते हैं तथा इनके ऊपरका छिलका बहुत कड़ा होता है।

शेषनाग

[लेखक—श्री रामेशवेदी आयुर्वेदालङ्कार]

अजगर या किसी दूसरी जातिके सांपसे, यदि वह घातक है या निरापद, भिड़नेमें यह हिचकता नहीं। उड़ीसामें चायके बागोंमें एक शेषनाग मारा गया था जिसने एक चितकौड़िये (Banded krait) को निगल लिया था और चितकौड़िया घासके एक सांप (grass snake) को निगल रहा था और वह उसके गलेसे कुल आधाही नीचे उतर पाया था। श्रीयुत रेमाण्ड एल डिटमार्सके परीक्षण बताते हैं कि यह उन ज़हरीले सांपोंको बहुत कम खाता है जिनके विषैले दाँत लम्बे होते हैं, मानो ऐसे सांपोंसे घायल होनेकी सम्भावनाका सहज भय उसे ऐसा करनेसे रोकता हो। पिंजरेमें जब लम्बे ज़हरीले दाँतोंवाला मण्डली (viper) छोड़ा जाता है तो यह उसको मारनेसे हिचकता है।

मोटा ताज़ा शरीर और शक्ति होते हुये भी अजगर बहुधा शेषनागके ज़हरका शिकार बन जाता है। बारह फीट एक इञ्च लम्बा शेषनाग नौ फीट दो इञ्च लम्बे अजगरको निगलता हुआ देखा गया है। अपने दुश्मनको मजबूत जबड़ोंमें पकड़ कर और गहरा काटता हुआ यह उसके शरीरके चारों ओर अपनी बड़ी कुण्डलियां (coils) को डाल देता है और तबतक शिकारको मज़बूतीसे थामे रखता है जबतक कि ज़हर सारी गतियां और चेष्टाओंको शान्त न करदे। तब यह उसे सिरकी ओरसे निगलना आरम्भ करता है।

बन्दी नाग आमतौर पर सांपोंके अतिरिक्त, खानेके लिये दी गई, किसी भी चीज़को ग्रहण नहीं करते। जब इन्हें खिलाया जाता है तो ये काफी चुस्ती और चालाकी दिखाते हैं। भोजनको जब पिंजरेमें डालना होता है तो सांपके शरीरके बीचका कुछ हिस्सा अन्दर डालते ही बिजलीकी चमककी फुर्तीसे विषैले दाँत अपना काम कर लेते हैं। ताजे मारे गये सांपोंको खानेमें नागको कोई विरोध नहीं होता। इससे ज़िन्दा, सांपको पिंजरेमें डालनेकी कठिनाईसे बच जाते हैं। मरे हुये सांपको प्रत्येक नागके सामने सीधा फेंक दिया जाता है। शेषनागकी इस आदतसे एक और लाभ है। चिड़ियाघरमें रखे हुये शेषनागोंकेलिये सरदियोंमें काफ़ी सांप नहीं मिलते। इसलिये सरदियोंके महीनोंमें जो सांप मारा जाता है उसके शरीरकी अधिकतम लचकके अनुसार उसमें मेंढक और छोटे छोटे चूहे भर दिये जाते हैं। इस तरहसे बनाये गये एक साँपमें एक दर्जन सांपोंके बराबर पोषक उपयोगिता होती है। इस प्रकारका एक भोजन नागोंको दो सप्ताहके लिये पूर्ण तृप्तिकर होता है।

शेषनाग सब सांपोंसे अधिक बुद्धिमान् है। इस साँपके पिंजरेके दरवाज़ेको ज़रासा खटखटायें तो पैदा होने वाले प्रकम्पनोंको यह झट ग्रहण कर लेगा और दौड़कर दरवाज़ेके पास आ जायगा और भोजनकी खोजमें खिड़की में जीभ डालने लगेगा। जब भोजनका समय होता है तो यह पिंजरेकी शीशे वाली खिड़कीके पास गरदन और सिर उठा कर खड़ा हो जायगा। भोजन देने वाला जब आयगा तब यह उसकी क्रियाओंको बहुत समझदारीसे देखेगा। उसके चलने पर यह उसी दिशाको चलने लगेगा। यह बात इस सांपकी समझको बताती है। दूसरे सांपोंमें यह बात प्रायः नहीं देखी गई।

बहुत थोड़े ही ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने शेषनागको सम्भोग करते देखा हो। मैसूरमें सम्भोग करता हुआ एक ज़ोड़ा मारा गया था। यह किस्सा मार्चका है। जनवरीमें इसी प्रकारकी एक घटना बर्मामें हुई थी। जब गोली चलाई गई तो सांप और सांपिन एक दूसरेके साथ लिपटे हुये थे। सम्भवतः यह सांप सालके आरम्भमें मिलते हैं और अण्डे आमतौर पर मई और जूनमें देते हैं। नाग और नागिन कितने समय तक इकट्ठे रहते हैं, यह ज्ञात नहीं। मादा अपने अण्डे सड़े हुये पत्तोंको बुहार कर देती है या कहीं इकट्ठे पड़े हुये पत्तोंके ढेरका उपयोग कर लेती है, यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु अण्डे सेती हुई मादा अण्डोंके चारों ओर कुण्डली मारे हुये पत्तोंके घोंसलेमें आमतौर पर पाई जाती है। यह सम्भव है कि वानस्पतिक पदार्थोंके सड़ने और फ़र्मेण्ट होनेसे निकलने वाली गरमी अण्डोंके पोसे जानेमें सहायक होती हो। बर्मियोंका

विश्वास है कि शेषनाग जोड़े में रहते हैं और अण्डों की रक्षा करनेमें नर मादा की सहायता करता है। इन सांपोंके लैङ्गिक जीवन (sex life) के सम्बन्धमें कुछ निश्चित मालूम नहीं है। नर कई बार अण्डे सेती हुई मादाओंके पास पड़ोसमें देखे गये हैं।

शक्ति और आक्रमण करनेमें शेषनागने बेजोड़ ख्याति स्थापित कर ली है। इस सांपके लिये यह कहा जाता है कि अपने दृष्टि क्षेत्रके अन्दर किसी जीवित या हिलती हुई चीज़ को देखना इसे सह्य नहीं होता। चलते हुए प्राणी पर, चाहे वह आदमी हो या घोड़ा, छोटे जीवोंका तो कहना ही क्या यह तुरन्त हमला करेगा और उसका ख़ात्मा कर देगा। केवल काटने से इसका क्रोध शान्त नहीं होता यह शिकार के टुकड़े टुकड़े करके छोड़ता है। यह सांप यदि किसीका पीछा करे तो इससे बचनेका एक ही तरीक़ा है कि पीछे छतरी, कपड़ा या कोई और चीज़ फेंक दी जाय। सांप की नज़र उस पर पड़ती है, तो वह उसे काटने लगता है और उसके टुकड़े-टुकड़े करके दम लेता है, इतनेमें भाग निकलनेका समय मिल जाता है। एक बार, शेषनागसे पीछा किया जाता हुआ एक आदमी बेतहाशा दौड़ा और जब एक छोटी-सी नदीके पास पहुँचा तो सांपसे छुटकारा पानेकी आशासे वह उसमें कूद पड़ा। दूसरे पार पहुँच कर भयत्रस्त वह क्या देखता है कि फुंकारता हुआ और उस पर हमला करनेके लिये एकदम तैयार शेषनाग फन उठाये खड़ा है। उसने अपनी पगड़ी साँप पर फेंक दी। नाग उसे बार बार काटता हुआ वहीं रुका रहा और वह अपनी जान बचा कर भाग खड़ा हुआ।

निस्सन्देह कई बार बिना किसी स्पष्ट उत्तेजक कारण के शेषनाग आदमी पर हमला कर बैठता है। अण्डोंको पोसती हुई मादा यदि छेड़ी जाय तो वह विशेषकर बहुत तेज़ मिज़ाज़की होती है और दख़ल देने वाले पर हमला कर सकती है। कई बार ऐसी घटनाएँ होती हैं कि जंगल-के रास्ते अंडे सेती हुई मादा और उसके साथी नरसे बन्द कर दिये गये हैं और पाससे गुज़रने वाले पर वे हमलेकी फ़िराकमें रहते हैं। खेतमें काम करते हुए किसान पर या वहाँसे जाते हुये राहगीर पर ये अकाट्य हमला करते हुए देखे गये हैं। ऐसे उदाहरणोंमें मालूम होता है कि इनके अंडे कहीं पड़ोसमें होते हैं या नर और मादा के मिलनेका स्थान होता है।

जब शेषनागको वास्तवमें छेड़ा जाता है तो यह चैलैंज को स्वीकार करता हुआ बड़े निश्चयके साथ हमला करनेके लिये आता है। ठीक इसी तरह बहुत सताये जाने पर भी कई बार यह साँप प्रत्युत्तर तक नहीं देता और अपनी जान बचा कर भाग निकलनेकी कोशिश करनेके सिवाय और कुछ नहीं करता। इसके अनिश्चित स्वभाव को समझना कठिन है। कई बार लोगोंको लाठीसे इसे मारते देखा गया है और यह केवल अपनी जान बचाने के लिये बार बार कोशिश करता हुआ नज़र आया। बुरी तरहसे घायल होते हुए भी आक्रमण करता हुआ नहीं दीखा। जो लोग इस सांप को जानते हैं, जिनके पड़ौसी जंगलों में यह होता है, उन लोगोंका अनुभव यह है कि शेषनाग अपने भाग निकलनेका सुरक्षित रास्ता न पानेपर ही प्रायः आक्रमण करता है और इसकी आक्रमण करनेकी तीव्र इच्छा यों ही अतिशयोक्ति पूर्ण है। इसका महान् आकार, शक्ति और चुस्ती, दूसरेकी जान लेनेमें तेज़ी, इसकी खतरनाक उपस्थिति और ऐसे उदाहरण जिनमें कि स्पष्ट रूपसे उत्तेजक कारणके बिना इसने हमला किया है ये सब सम्मिलित होकर शेषनाग को इसकी भयावह ख्याति प्रदान करते हैं।

नये उत्पादन

इन योजनाओंके अन्तर्गत गैस निरोधक कपड़ा, कल पुर्जोंमें चिकनाई लाने वाले वनस्पति तेल, कागज़के पतले गत्ते, घोल, भिलांवासे तैयार होने वाला रोगन, चमकदार रङ्ग, शीशेका बदल, चिकना कागज, पनरोक रंग, जूटके तख्ते, कपड़े और जूटके डिब्बे, कार्कके बदल, गंधक आदि पदार्थोंका उत्पादन किया जा रहा है। इनके अतिरिक्त दांत साफ करनेका पेस्ट, नरम ट्यूब, डींटल जैसी कीटाणु नाशक औषधि आदिके उत्पादनमें भी सुधार होने वाला है।

१४ ऐसी पुस्तिकायें अभी ही प्रकाशितकी जा चुकी हैं जिनमें इन वस्तुओंके उत्पादनकी व्यवस्थाका विवरण दिया गया है। कपड़ों तथा खाद्यपदार्थोंमें रङ्ग देनेके सम्बन्धमें भी नुसखे तैयार कर लिये गये हैं।

मण्डली

[श्री रामेश वेदी आयुर्वेदालङ्कार]

संस्कृतमें मंडली उन सांपों का नाम है जिन पर गोल-गोल चकत्ते होते हैं और फन नहीं होता॥। गोल चकत्तोंको संस्कृतमें मंडल कहते हैं इस लिये इन सांपोंका नाम मण्डली पड़ गया। अंग्रेजीमें इस जातिके सांपों को वाइपर (vipers) कहते हैं और वैज्ञानिक वर्गीकरणमें से जिस वंशमें रखे गये हैं उसे मंडली वंश (Viperidae) कहते हैं। वाइपर शब्द फ्रेंचके vivus (जीवित) और parere (जन्मदेना) शब्दोंसे मिलकर बना है। यह वंश अंडे नहीं देता। अपवाद रूपमें कुछ किस्मोंको छोड़कर मादा जीवित बच्चोंको जन्म देती है।

सांपोंके नौ वंशों (families) में से एक मंडली-वंश है। इस वंशमें सांपोंकी लगभग एक सौ दस किस्में होती हैं। जिनमें से सब जहरीली हैं। इनमें से कुछका विष मनुष्यके लिये घातक है और बहुत सारे मंडलियों का विष शक्तिशाली नहीं होता कि आदमीकी जान ले सकें। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है मंडली सांपों का विष तीव्र होता जाता है। आयुके पिछले हिस्सेमें ये अपेक्षाकृत अधिक विषैले होते हैं।†

मंडली का सिर आमतौर पर चौड़ा, चपटा और छोटे छोटे नहकलोंसे ढका होता। गरदन तंग और पूछ छोटी होती है। सिर कुछ-कुछ त्रिभुजाकृति होता है। जिसमें कोण बहुत स्पष्ट मालूम देते हैं। शरीर मोटा तथा भरा हुआ दीखता है।

॥ .... मंडली मंडलाऽफणः।

—च०; चि०; अ० २३; १२४।

सुश्रुत कहते हैं कि विविध प्रकारके मंडलोंसे चित्रित मन्दगति वाले सांप मंडली होते हैं और जलते हुए सूर्यके समान ये तेजवान होते हैं—

मंडलैर्विविधैश्चित्राः पृथवो मन्दगामिनः।
लेमामंडलिनः सर्पा ज्वलनार्क सम प्रभाः॥

—सु०; क०; अ० ४

† .... वृद्धामण्डलिनस्तथा।
.... जायन्ते मृत्युहेतकः॥

—अ०; क०; अ० ४

मंडली यद्यपि सांपोंके उस समूह (ओपिस्थोग्लाइफस, opisthoglyphous) में है जिसमें विषैले दांत मुखके पिछले हिस्से (back fanged) में होते हैं परन्तु विष डालनेके लिये इनमें विषयन्त्र बहुत पूर्ण होता है। जहां तक विषयन्त्रकी पूर्णताका सम्बन्ध है सबसे पहले मंडलियोंका नाम लिया जा सकता है। इनमें दाँतों का कार्य यान्त्रिक और शीघ्र होता है। इनके विषदन्त सब सांपोंकी अपेक्षा अधिक विकसित होते हैं। इनके मुँहमें दोनों पार्श्वोंमें विषैले दांतोंके तीन जोड़े और होते हैं जो सदा क्रिया-शील नहीं रहते। ऊपरके जबड़ेके किनारे त्वचा की बनी एक जेबनुमा थैलीके अन्दर ये आधे छिपे रहते हैं। जब आगेके बड़े ज़हरीले दांत टूट जाते हैं या तोड़ दिये जाते हैं तो ये शीघ्र ही बढ़ कर उसका स्थान ले लेते हैं और क्रियाशील होकर विष पहुँचाने का काम करने लगते हैं। इस प्रकार मंडलियोंके विषैले दांत सब आठ होते हैं। दूसरे साँपों की तुलना में इनके विषैले दांतोंमें तीन महत्वपूर्ण विशेषताएँ होती हैं। (१) तुलनामें अधिक बड़े होते हैं और इसलिये शिकारमें अधिक गहर-गड़ सकते हैं। (२) इनके अन्दर खोखली नली होती है, जिससे विष ज़ाया नहीं होता, सारा विष घावके अन्दर पहुँच जाता है, जब कि गढ़े वाले दांतोंमें कुछ न कुछ परिमाण अवश्य खराब जाता है। (३) पहला जोड़ा जब उपयोग में नहीं आ रहा होता तो मुख गुहामें पीछे इकट्ठा होकर छोटे जहरीले दांतोंके तीनों जोड़ोंके ऊपर मुड़ा पड़ा रहता है। जब मुख घातक दंशके लिये खोला जाता है तो ये हड्डियों, बन्धनों और पांसपेशियोंकी एक पेचीदो अवस्थासे खड़े कर दिये जाते हैं।

इस वंशमें दो मुख्य श्रेणियाँ (classes) हैं। सबके पेटपर चौड़ी प्लेटें (plates) होती हैं। कुछके सिरके पार्श्वमें नथुने और आँखके बीचमें दोनों ओर—(lore) प्रदेशमें—एक गड्ढा होता है। गढ़े (संस्कृत, गर्त) के कारण इन्हें गर्त मंडली (pitvipers) कहा जाता है। सर्प विशेषज्ञ इस समूहको क्रोटेलिनी (crotalinae) नाम देते हैं। ये साँप पहाड़ों और पहाड़ी मार्गोंमें पाये जाते

हैं ! इनमें से कुछ वृक्षों पर लटके होते हैं। इन्हें गलतीसे वृक्ष-सर्प समझ लिया है। मनुष्यके लिये तो ये इतने ज़हरीले नहीं होते परन्तु अपने शिकार को विषसे मार लेते हैं।

सारे संसारमें गर्त मंडलियोंकी पैंसठ किस्में मिलती हैं। सारे दक्षिणीय एशिया और अमेरिकामें पाये जाते हैं। एशियामें इनकी करीब बाइस (क) क़िस्में अन्वेषकों को मिली हैं जिनमें से ग्यारह भारतमें मिल जाती हैं। अमेरिकामें तैंतालीस प्रकारके गर्तमंडली मिलते हैं।

गर्तमंडलियों की जातियाँ ये हैं —

क. एन्सिस्ट्रोडोन (ancistrodon) की दस जातियाँ है ये उत्तर और मध्य अमेरिका तथा एशियामें मिलती हैं।

ख. ट्रिमेरेसरस (trimeresus) -की चालीस जातियां हैं। ये ईस्ट इंडीज़, दक्षिण चीन, दक्षिणी अमेरिका, भारत, लङ्का और बर्मामें मिलती हैं।

ग. क्रोटेलस (crotalus)–इनमेंसे कर्कर सांप अमेरिका और एशिया में मिलते हैं।

मंडलियोंकी दूसरी श्रेणी अगर्त मंडलियों (pitless vipers) के नामसे ज्ञात है क्योंकि इनकी आँख और नाकके बीचमें गढ़ा नहीं होता। वैज्ञानिक इस श्रेणीको वाइपरीनी (viperinae) नाम देते हैं। इनके पेट पर चौड़ी प्लेटें होते हैं। और सिर पर भी वैसे छोटे-छोटे छिलके ऊगे होते हैं जैसे सारे शरीर पर होते हैं। इनकी करीब बयालीस किस्में है जिनमें से सात भारत में और दस अफ्रीका में पाई जाती हैं। अफ्रीका में मिलने वाली किस्मों में हैं—निशामण्डली (night adder) या दैत्य मण्डली (demon adder) पफ़ मण्डली (puff adder) सींग वाला मंडली (horned adder) और वर्ग मंडली (berg adder) । इन सांपोंकी पीठ प्रायः अंग्रेज़ीके उलटे V अक्षर (Λ) जैसे निशानों से चिह्नित होती है। ऐडर (adder) का अर्थ भी मंडली (viper) है।

(क) आचार्य सुश्रुत ने अपने ग्रन्थमें मंडली सांपोंकी बाईस जातियाँ लिखी हैं —

द्वाविंशतिमंडलिनो ····· ।

–अ०; क०; अ० ४

सांपोंका विस्तार पृथिवी पर सीमित और एक विशेष प्रकारका है। कुछ किस्में एक देशमें पाई जाती हैं तो दूसरे देशमें नहीं मिलती। जो यूरोप में पाई जाती हैं उनमें से बहुत सी अफ्रीका और भारतमें नहीं मिलतीं। आस्ट्रेलिया में अब तक गड्डे वाला या बिना गड्ढों वाला कोई मंडली नही पाया गया है। बिना गड्ढे वाला कोई मंडली अमेरिका में नहीं मिलता। अफ्रीका में कोई गर्तमंडली नहीं होता।

अगर्त मंडलियों की भारत में पाई जाने वाली किस्मों में सब से महत्वपूर्ण ये दो हैं रसल मंडली और फ़ुर्सा। इनका वर्णन हम विस्तार से दे रहे हैं।

रसल मण्डली

पूर्व के भयावह सांपोंमें मनुष्य जीवन के साथ फनियर के बाद रसल मंडली का घनिष्ठ सम्बन्ध है। बड़े विषदन्तों के कारण और एक दंश में बहुत अधिक विष डालनेके कारण विषविद्याके कुछ विशारद इसे सामान्य फनियरसे अधिक भयङ्कर समझते हैं।

बहुत सुन्दर रंगों वाला यह सरीसृप लम्बाई में पाँच फीट तक पहुच जाता है। एशिया के मंडलियों में यह सबसे बड़ा सांप है। यद्यपि यह एक मज़बूत और सुस्त दीखने वाला प्राणी है परन्तु चेहरेसे यह एक तेज़ मिज़ाज़का जीव मालूम देता है। इसका रंग और चिन्ह पर्याप्त विशिष्ट होते हैं जिससे इसका भ्रम दूसरे सांप से नहीं हो सकता।

भविष्य पुराण में मंडली के सात भेद लिखे हैं –

.... सप्त मंडलिनस्तथा ।

भविष्य पुराण, पञ्चमी कल्प

समालोचना

सूर्यसारणी —— लेखक और प्रकाशक श्री हरिहर भट्ट, २२ सरस्वती सोसायटी, डाक आनंद नगर, अहमदाबाद। पृष्ठ संख्या ४८, 'विज्ञानका' आकार मूल्य २)।

इस पुस्तकमें विद्वान् और उत्साही लेखकने किसी समयके सूर्यका स्पष्ट स्थान जाननेकी बहुत ही सरल रीति बतलाई है। पुस्तकके उत्तरार्धमें ११ कोष्ठक दिये गये हैं। कोष्ठक १ में ईस्वीकी प्रत्येक तारीखके दैनिक सायन सूर्यके स्थूल भोगांश छः छः घन्टेके अंतर पर दिये गये हैं। कोष्ठक २ और ३ में ६ घंटेके बीच किसी समयकी गति जाननेकी सारणी है। कोष्ठक ४ से किसी दिनका साम्पातिक काल और उसकी दैनिक गति जानी जा सकती है। कोष्ठक ५ में सायन स्पष्ट सूर्यके विषुवांश और क्रांति जाननेकी सारणी है। को० ६ में सूर्यके बिम्ब मंद कर्ण की सारणी और कोष्ठक ७ में ग्रहोंका आकर्षण संस्कार करनेके लिये मध्यम ग्रहोंके क्षेपक और वार्षिक गति दी गई है। कोष्ठक ८ से १० तक ग्रहाकर्षण संस्कारके उपकरण तथा उनके ६ संस्कारोंकी सारणी है। कोष्ठक ११ में कालान्तर संस्कार करनेकी सरल रीति बतलाई गई है।

पुस्तकके पूर्वार्धमें इन कोष्ठकोंसे सूर्यका स्पष्ट स्थान जाननेकी रीति उदाहरण देकर बतलाई गई है। इस पुस्तकसे सूर्य गणित विकला पर्यन्त सूक्ष्म किया जा सकता है।

लेखक महोदय गुजराती होते हुये भी इस सारिणीको हिन्दी भाषा तथा हिन्दी-लिपि-सुधार-समितिसे अनुमोदित लिपिमें छपाया है जिसमें हिन्दी जानने वाले ज्योतिषी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। यदि आरम्भमें यह बतला दिया जाता कि लिपि-सुधार-समितिके अनुसार इ, उ, ऋ, ए और च अक्षरोंको अि, अु, अृ अे, क्ष से प्रकट किया जाता है तो उन लोगोंको जो इस नवीन लिपि पद्धतिसे परिचित नहीं हैं अधिक सुविधा होती क्योंकि ऐसे लोगों को अपने आप शब्दोंके समझनेमें कुछ अटपट जान पड़ेगा। भाषामें कहीं-कहीं सुधारकी आवश्यकता है।

आशा है कि भूमंडल-सूर्य-ग्रहण-गणित जो लिखा जा चुका है और चन्द्रसारणी जो लिखी जा रही है शीघ्र ही प्रकाशित की जायगी।

प्रस्तुत पुस्तकका मूल्य पृष्ठ संख्याके विचारसे कुछ अधिक जान पड़ता है। परन्तु कागजकी मँहगाई तथा छपाईका खर्च देखते यह अधिक नहीं है।

महाबीर प्रसाद श्रीवास्तव

विषय-सूची

मुद्रक तथा प्रकाशक—कला प्रेस प्रयाग।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ॥ तै० उ० ।३।५।

भाग ५७ | सिंह, सम्वत् २००० । अगस्त, १९४३ | संख्या ५

पारिभाषिक शब्दावली

[गोरख प्रसाद, डी० एस-सी०]

विज्ञान विषय पर पुस्तक आदि लिखने वालों को पारिभाषिक शब्दोंके बारेमें बड़ी कठिनाई पड़ती है। नये शब्दों का गढ़ना सबके लिए सुगम नहीं है, अँग्रेज़ी शब्दों को ज्यों का-त्यों रखना साधारणतः असंभव होता है. और जिन शब्दोंका हिन्दी रूपांतर बन भी चुका है वे किसी सुलभ सूचीमें नहीं छप पाये हैं।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान समयमें काशी नागरी प्रचारिणी सभाका वैज्ञानिक कोश ही सबसे सुलभ और उत्तम ग्रंथ है, परन्तु केवल चार विषयों पर ही इस कोश का द्वितीय संस्करण अभी तक निकल पाया है – गणित, ज्योतिष, रसायन और भौतिक विज्ञान। कुछ अन्य विषयों पर इस कोशके प्रथम संस्करणसे सहायता मिल सकती है, परन्तु वह संस्करण अब अप्राप्य है, केवल अच्छे पुस्तकालयोंमें ही वह दिखलाई पड़ता है।

विज्ञान परिषद्से छपी पुस्तक 'वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्द' में शरीर-विज्ञान, वनस्पति-शास्त्र, रसायन और भौतिक विज्ञान पर कुल मिलाकर प्रायः ५००० शब्द हैं, परन्तु यह कोश बहुत अपूर्ण है और इधर प्रायः दो वर्षोंसे अप्राप्य है। नवीन संस्करण धीरे-धीरे छप रहा है, परन्तु सम्पूर्ण पुस्तकके तैयार होने में अभी बहुत समय लगेगा।

सुखसम्पत्तिराय भंडारीकी 'ट्वेंटियथ सेंचुरी इङ्गलिश-हिन्दी डिक्शनरी' का मूल्य इतना अधिक है (पचास रुपया) कि साधारण लेखकोंके लिए इसका मोल लेना असम्भव ही है। अभी तक दो भाग छपे हैं। तीसरे (अंतिम) भाग का छपना अभी बाकी है। पुस्तकके बड़े होनेके कई कारणोंमें मुख्य कारण यह है कि उसमें अनेक शब्दोंके लिए केवल रूपांतर देकर ही सन्तोष किया गया है; कई पर विश्वकोश (एनसाइक्लोपीडिया) की तरह वर्णन भी है।

कुछ योजनाएँ

मराठी लेक्सिकन ऑफ़िस पूना, ने 'शास्त्रीय परिभाषा कोश' की योजना की है। इस योजनामें वर्तमान भारतीय भाषाओंके वैज्ञानिक ग्रंथों और कोशोंसे अंग्रेजी शब्दों और उनके देशी रूपांतरों का संग्रह किया जायगा। इसमें ५०, ००० (पचास हज़ार) शब्द होंगे। योजना सराहनीय है,

परन्तु इसके तैयार हो जाने पर भी लेखकों की आवश्यकताएँ पूरी न हो सकेंगी; कारण यह है कि वर्तमान देशी कोशों और पुस्तकों में केवल प्रारंभिक विज्ञान पर ही शब्द हैं। इसलिए कोश तैयार हो जाने पर भी उच्च विज्ञान की नवीन पुस्तकोंके लेखकों को वही कठिनाई पड़ेगी जो आज पड़ती है। उनको अनेक पारिभाषिक शब्दोंके लिए हिन्दी शब्द मिल ही न सकेंगे।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन ने कुछ वर्ष पूर्व वैज्ञानिक कोश निकालने की योजना की थी। प्रारंभिक कार्य-संचालन के लिए कुछ गश्ती चिट्ठियां लोगोंको भेजी भी गयीं, परन्तु कदाचित् अभी काम बहुत आगे नहीं बढ़ सका है।❋

नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, शीघ्र ही अपनी अर्ध-शताब्दी मनावेगी, और उस अवसर पर अन्य कई योजनाओं में एक योजना वैज्ञानिक कोश छापने की भी है। सभाके ही शब्दोंमें यह योजना इस प्रकार है—

हिन्दी तथा भारतकी अन्य प्रांतीय भाषाओंमें, जिनमें उर्दू भी सम्मिलित है, व्यक्तियों तथा संस्थाओंके द्वारा जो विभिन्न पारिभाषिक शब्दावलियाँ बनी हैं, उनका एक संग्रह तैयार करने का प्रयत्न किया जायगा; संगृहीत शब्दोंमें से जिनको सभा सर्वोत्तम समझेगी, उन्हें अन्य शब्दोंकी अपेक्षा कुछ मोटे टाइपमें दिया जायगा; और यह वैज्ञानिक शब्द-कोश विभिन्न प्रांतोंसे आमंत्रित विद्वानों की परिषद्में निर्णयार्थ उपस्थित किया जायगा।

इस प्रकार नागरी प्रचारिणी सभा का कार्य भी वही होगा जो मराठी लेक्सिकन आफ़िस इस समय कर रहा है। अंतर केवल यही रहेगा कि नागरी प्रचारिणी सभा के प्रस्तावित कोशमें उर्दू के भी शब्द रहेंगे।

भारतीय हिन्दी परिषद् तथा हिन्दुस्तानी एकेडेमी भी इस प्रकार की आयोजना को आगे बढ़ाने के लिए उत्सुक है।

लेखक की सम्मति

कोश निर्माणके सम्बन्ध में मेरी निजी राय यह है कि किसी-न-किसी संस्था को ऐसे शब्दोंका रूपांतर भी गढ़ना चाहिए जो हिन्दी आदिके वर्तमान कोशों और पुस्तकोंमें नहीं हैं। इन शब्दों की गिनती पहले असंख्य जान पड़ सकती है क्योंकि अंग्रेज़ी में अब भी प्रति वर्ष सैकड़ों नवीन शब्द गढ़े जाते हैं। परन्तु यदि इस समय केवल वे शब्द लेलिये जायँ जो यहाँके विद्यालयोंमें एम० एस-सी० तककी पढ़ाई में काम आते हैं तो एक बड़ी कमी पूरी हो जायगी। इनके अतिरिक्त उद्योग और व्यवसाय सम्बन्धी वे शब्द भी अवश्य आ जायँ जो विज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं।

अपने देशके विश्वविद्यालयों में विज्ञान की फ़ैकल्टी में गणित, भौतिक विज्ञान, रसायन, वनस्पति-शास्त्र और जंतु शास्त्र ही साधारणतः पढ़ाये जाते हैं। इनमें से दो विषयों पर, वनस्पति-शास्त्र और जंतु-शास्त्र पर, तो आज एक भी ऐसा कोश नहीं है जिसकी सहायता से इंटरमीडियेट के योग्य पाठ्य-पुस्तकें हिन्दीमें लिखी जा सकें! इन दो विषयों के ऐसे लेखकोंसे मेरा परिचय है जिन्होंने महीनों तक परिश्रम करने के पश्चात् पुस्तक लिखने का विचार केवल इसीलिए छोड़ दिया कि आवश्यक शब्दों का हिन्दी रूपांतर उनसे न बन सका। हिन्दी रूपांतरके बनाने वाले व्यक्तिको अपने विषय के अतिरिक्त संस्कृत और हिन्दी का भी अच्छा ज्ञान चाहिए। परन्तु खेद है कि ऐसे विद्वानों का अभाव है जिनमें वनस्पति-शास्त्र, जंतु-शास्त्र, संस्कृत और हिन्दी सभी का पर्याप्त ज्ञान हो। विज्ञान विषयके विस्तार पर विचार करने से जान पड़ता है कि भविष्य में भी ऐसे व्यक्तियों के मिलने की आशा कम है। केवल यही सम्भव जान पड़ता है कि कोई संस्था इस कार्य को अपने हाथमें ले और वैज्ञानिकों तथा भाषा-विशेषज्ञों का सहयोग लेकर इस काम को कर डाले।

[शेष फिर]

❋ सुनते हैं भाषा विज्ञान तथा अर्थशास्त्रके शब्दकोश तैयार किये जा रहे हैं॥ (सम्पादक)

सरल विज्ञान-सागर

अपनी योजना के अनुसार हम अब अपने पाठकों के सम्मुख सरल विज्ञान-सागर का दूसरा खंड उपस्थित करते हैं। संपादकके पास आये पत्रोंसे पता चलता है कि पाठकों को प्रथम खंड बहुत पसंद आया। सम्पादक को आशा है कि द्वितीय खंड भी उनको रोचक और शिक्षाप्रद जँचेगा।

सरल

विज्ञान-सागर

संपादक

डाक्टर गोरखप्रसाद, डी० एस-सी० (एडिन०)

रीडर, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

बारह अंकोंमें

अंक २

पेड़-पौधों की अचरजभरी दुनिया

इलाहाबाद

विज्ञान-परिषद्

पेड़-पौधों की अचरजभरी दुनिया

१

पौधों की सुन्दरता और महत्ता

वनस्पति-संसारके सौंदर्यसे सभी मुग्ध हो जाते हैं। काश्मीरका नैसर्गिक सौंदर्य वस्तुतः वहांकी हरी-भरी भूमि और सुंदर वृक्ष, लता, आदि, के ही कारण है। परन्तु काश्मीरमें ही नहीं, सर्वत्र पेड़-पौधे हमारी पृथ्वीको सुन्दर बनाते हैं। यदि इस भूमि पर वृक्षादि न रहें तो हमारा पास-पड़ोस कितना उजाड़ लगेगा। यदि हमारे बाग-बगीचे न रहें तो संसार कितना सूना लगेगा।

परन्तु वनस्पति-संसारमें केवल सौंदर्य ही नहीं है। उसकी उपयोगिता भी अपरिमित है। उदाहरणतः काठसे मकान बनते हैं, काठके ही आसनों पर हम बैठते और सोते हैं। मेज़, कुरसी और अलमारियां काठकी ही होती हैं। यदि हम रेलगाड़ीसे यात्रा करते हैं तो काठ की लुग्दीसे बनी दफ्तीका टिकट खरीदते हैं। उसके लिए दाम देते हैं नोटों में, जो लकड़ीकी ही स्वच्छकी हुई लुग्दीके बने रहते हैं। फिर हम काठकी ही बनी गाड़ियों में बैठते हैं। प्रतिदिन हम काठकी लुग्दीसे बने समाचार पत्र पढ़ते हैं, उसीसे बने कागज़की पुस्तकें पढ़ते हैं और वैसे ही कागज़ पर लिखते हैं।

परन्तु इससे कहीं अधिक महत्वपूर्ण हमारा आहार है और वह हमें पेड़-पौधों से ही मिलता है। यदि हम मांस खायें तो भी हम पौधोंके ऋणी बने रहते हैं। मांस वस्तुतः पेड़-पौधोंकी ही देन है, क्योंकि जंतुओंका शरीर वनस्पतिसे ही पोषित होता है। पानी छोड़ अन्य सभी पेय जैसे कहवा, चाय, कोकोआ, आदि यहां तक कि मद्य भी, वनस्पतिसे ही निकलते हैं। किसी-किसी देशमें तो मनुष्यको जल भी केवल पेड़-पौधोंसे मिलता है।

यह अवश्य सत्य है कि कुछ पौधे हमारे लिये हानिकारक होते हैं। कुछ तो तीव्र विष हैं। वनस्पति संसारके कुछ अति सूक्ष्म सदस्य—जो कोरी आँखोंके लिए अदृश्य रहते हैं और केवल सूक्ष्म दर्शकमें ही दिखलायी पड़ते हैं और जिन्हें लोग भूलसे कीटाणु कहते हैं—हममें रोग उत्पन्न करते हैं और हमारी जान तक ले लेते हैं। एक प्रकार की अति सूक्ष्म वनस्पति जब हमारे पेटों में पहुँच जाती हैं तो आहार पचनेके बदले फफदने लगता है। एक दूसरे प्रकारकी वनस्पति जब हमारी त्वचा पर उगने लगती है तो दाद नामक त्वचा रोग उत्पन्न होता है।

दहीका जमना, पटसनका सड़ना, जलेबी या पाव रोटी के लिए आटे में खमीर उठना, ये सब क्रियाएँ अति सूक्ष्म निम्न श्रेणीके पौधों *से होती हैं। जब हम अपनी वाटिकाओं में फल-फूल उत्पन्न करते हैं या खेतोंमें अनाज उगाते हैं तो कभी-कभी वनस्पति संसारके कुछ निम्न श्रेणी वाले अति सूक्ष्म सदस्य हमारे पेड़-पौधों पर पराश्रयीकी तरह आ बसते हैं और हमारे पौधोंका रस चूस कर उन्हें बेकार कर डालते हैं। इनसे हमें बराबर सतर्क रहना पड़ता है और उनका उपचार करना पड़ता है। ये ही हमारे फसलके रोग हैं। लोगों ने आँका है कि सब कुछ उपाय करने पर भी इन अति सूक्ष्म, प्रायः अदृश्य पौधोंके कारण हमारे फसलका छठां अंश नष्ट हो जाता है।

इसलिए वनस्पतियों का गहरा अध्ययन केवल रोचक ही नहीं, अत्यन्त उपयोगी भी है।

---

* इस पुस्तकमें हम पौधा शब्दको पेड़-पौधा, अर्थात् वनस्पति मात्र, के अर्थमें प्रयोग करेंगे। इस प्रकार पीपलका वृक्ष भी पौधा है, घास भी और फफूँदी भी।

२

पौधा क्या है ?

साधारण मनुष्य पौधों के सौंदर्य पर मुग्ध होता है, परन्तु वैज्ञानिक उनके जीवन-रहस्य में उलझा रहता है। पौधेमें जान होती है। परन्तु जान किसे कहते हैं; जीवित रहने का क्या अर्थ है ?

सब काम नहीं कर सकता। यदि बढ़ता भी है तो केवल इस प्रकार कि उसके ऊपरसे बाहरी पदार्थ आ जमता है। निर्जीव वस्तु इस बाहरी पदार्थको अपना सरीखा नहीं बना सकता और न वह संतति उत्पन्न कर सकता है।

पौधों और प्राणियोंमें अंतर

वनस्पति और प्राणी दोनों इस बात में समान हैं कि वे जन्म लेते हैं, खाते हैं, बढ़ते हैं, सांस लेते हैं, सन्तति उत्पन्न करते हैं और चलते हैं (चलनेमें गति और स्थान
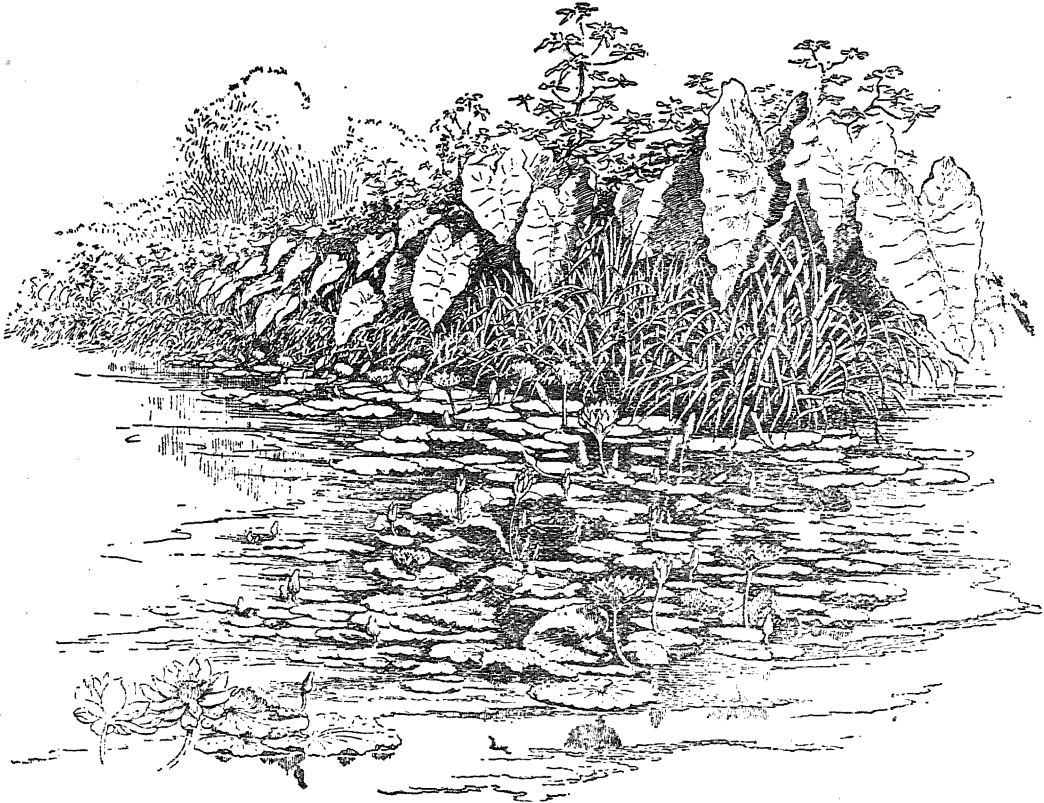
कुमुदिनियों से भरा सरोवर।
वनस्पति संसारके सौंदर्यसे किसका मन नहीं लुभा जाता।

संक्षेपमें हम कह सकते हैं कि जीवित वस्तु (चाहे वह प्राणी हो या पौधा) बाहरी पदार्थ को लेकर उसे अपने जैसे पदार्थमें बदल लेता है और इसीसे वह पोषित होता है और जीवित रहता है, बढ़ता है और अपने ही-जैसी सन्तति उत्पन्न करता है। निर्जीव पदार्थ, जैसे पत्थर, यह

परिवर्तन दोनों सम्मिलित है)। पौधे साधारणतः अचर कहलाते हैं, परन्तु यदि सच पूछा जाय तो अधिकांश पौधे हिल-डोल सकते हैं और कुछ तो स्थान-परिवर्तन भी कर सकते हैं। दूसरी ओर, कुछ प्राणी ऐसे हैं, उदाहरणतः स्पंज, कि वे केवल तभी चल सकते हैं जब वे नवजात

शिशु रहते हैं। पीछे तो वे उसी प्रकार अचर रहते हैं जैसे वृक्ष।

वनस्पति और प्राणियोंमें मौलिक अन्तर यह है कि वनस्पति अनैंद्रिक* पदार्थोंसे जीवित पदार्थ बना सकता है। प्राणी ऐसा नहीं कर सकते। पौधोंमें वह 'हरा' पदार्थ होता है जिसे पर्णहरित कहते हैं और जो अधिकतर पत्तियोंमें रहता है। इसीमें ऐसी शक्ति है कि वह अनैंद्रिक पदार्थसे जीवित पदार्थ बना दे। किसी भी प्राणीमें पर्णहरित नहीं होता।

कोश और कलल रस

वनस्पति और प्राणी इस बातमें भी समान होते हैं कि वे कोशोंसे बने रहते हैं। कोश बहुत छोटे होते हैं। साधारणतः वे केवल सूक्ष्म-दर्शक यन्त्रसे ही देखे जा सकते हैं। इस बातका आविष्कार कि पौधों और प्राणियोंके सभी अवयव कोशोंसे निर्मित रहते हैं आजसे लगभग तीन सौ वर्ष पहले हुआ। परन्तु आविष्कारके लगभग दो सौ वर्ष बाद ही कोश-सिद्धांत पूर्ण रूपसे विकसित हो सका। अब यह माना जाता है कि बनस्पति-कोश सजीव पदार्थकी वह एकाई है जिससे ही सारा पौधा बना रहता है। इसमें कलल रस रहता है। इसकी चारों ओर वाली भीत काष्ठोज की बनी रहती है। अधिकांश प्राणियों के कोश में भीत नहीं होती।

कलल रस (जिसे अँगरेज़ी में प्रोटोप्लाज़्म कहते हैं) संसारकी सबसे अधिक विचित्र वस्तु है। इसके पता लगे अभी सौ ही वर्ष हुए हैं। यह कोई एक रासायनिक पदार्थ नहीं है, वरन् कई ठोस पदार्थों का मिश्रण है जिसके कण अति सूक्ष्म होते हैं और जो एक तरल पदार्थमें छितरे रहते हैं (घुले नहीं रहते)। इस तरल पदार्थमें कुछ अन्य पदार्थ घुले भी रहते हैं और कुछ गैसें भी शोषित रहती हैं जिनमें ऑक्सिजन और कारबन डाइआक्साइड मुख्य हैं। रसायनज्ञ कहता है कि यह मिश्रण कलॉयड है। यदि पानी में थोड़ा-सा नमक डाल दिया जाय तो वह 'घुल' जाता है और हमें 'घोल' प्राप्त होता है। परन्तु यदि पानीमें थोड़ासा गोंद डाला जाय तो हमें असली घोल नहीं प्राप्त होता। हमको वह मिश्रण प्राप्त होता है, जिसमें गोंद कलॉयडकी अवस्थामें रहता है। विश्वास किया जाता है कि गोंदके कण अतिसूक्ष्म अवस्थामें हो कर सारे जलमें बिखर जाते हैं परन्तु वे कण घुले नहीं रहते। यदि खड़िया मिट्टीका बहुत महीन चूर्ण पानीमें डाल कर झकझोर दिया जाय तो हमें मिश्रण मिलता है। यदि यथेष्ट समय तक किसी मिश्रणको स्थिर रख छोड़ा जाय तो ठोस पदार्थ तलछटको तरह बैठ जायगा, परन्तु कलॉयडके कण बैठते नहीं। यदि छनना कागज़ (सोख़्ते) से छाना जाय तो मिश्रणमेंसे ठोस अलग किया जा सकता है जल छनकर पार हो जायगा, ठोस कागज़ पर ही रह जायगा। परन्तु कलॉयडके कण इतने सूक्ष्म रहते हैं कि वे सोख़्तेके पार चले जाते हैं।

क्या जीवन कोई विद्युत् प्रक्रिया है ?

कलल रसके कलॉयड-कणोंमें बिजली रहती है। इसके अतिरिक्त घुले पदार्थ ऐसे खंडोंमें बँट जाते हैं जिनमें भी बिजली रहती है।

इससे प्रत्यक्ष है कि कलल रस बड़ा ही अद्भुत पदार्थ है। यह विद्युत भरा यंत्र सा है। इसकी रचना बहुत ही जटिल और सुकुमार है। रासायनिक दृष्टिसे भी यह बहुत ही अस्थिर अवस्था में है। सूक्ष्म कारणोंसे भी यह परिवर्तित होता रहता है। यदि कलल रस स्थिर अवस्था ग्रहण करले तो वह मृतके ही बराबर है। इसी अद्भुत पदार्थसे पौधे बने रहते हैं। इसमें कार्बोहाइड्रेड, प्रोटीन, वसा, एनज़ाइम आदि रहते हैं।

प्रत्येक जातिके पौधेका कललरस दूसरी जातियोंके पौधों के कलल रसोंसे विभिन्न होता है। उदाहरणतः, आमका कलल रस, जामुनके कलल रससे विभिन्न होगा।

पौधोंके कोश

पौधोंका चित्र हम अपनी कल्पनामें यों बना सकते हैं

---

* ऐसे पदार्थों को ऐंद्रिक पदार्थ कहते हैं जो केवल जीवधारियों (प्राणियों और पौधों) से उत्पन्न होते हैं, जैसे पत्ता, फल, फूल, कन्द, दूध, मांसा आदि। ऐसे पदार्थोंको अनैंद्रिक या खनिज पदार्थ कहते हैं जो निर्जीव पदार्थोंमें मिलते हैं, जैसे नमक, आक्सिजन, जल आदि। कारबन और कारबन डाइ ऑक्साइड को अनैंद्रिक पदार्थ माना जाता है।

कि पौधोंमें असंख्य नन्हें-नन्हें कोश रहते हैं। प्रत्येक कोश की भीत काष्ठोज (काठ की तरह कड़े रेशों) की बनी रहती है। इन कोशोंमें कलल रस रहता है। प्रत्येक कोशमें एक स्थान रहता है जो पड़ोसके कलल रससे कुछ

गुलाब

गुलाब फूलोंका राजा है। इसका सुडौल रूप, सुन्दर रंग और मधुर गंध चित्तको बरबस खींच लेता है।

अधिक गाढ़ा रहता है। इसको नाभि कहते हैं। नाभिमें कुछ ऐसे अवयव भी रहते हैं जो प्रयोग शालामें पौधेको रंगीन घोलमें छोड़ने पर रंग ग्रहण करते हैं। इनको रंगाणु कहते हैं।

अंतमें हमें इसे भी ध्यानमें रखना चाहिए कि कलल रस बराबर चलता रहता है। वह कोश भित्तिकाओं पर चलता रहता है और उनके आर-पार भी आता जाता है वह नाभिसे भीत तक, भीतसे नाभि तक भी चलता रहता है। नाभि स्वयं अपनी स्थिति बराबर बदलती रहती है। इस विचारको ध्यानमें रखते हुए किसी फल या फूल या वृक्ष या पौधे या घासकी पत्ती को देखा जाय तो हम उसे किस विभिन्न दृष्टिसे देखेंगे ?

३
जीवन क्या है ?

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि कोशमें प्राण कहां बसता है ? जीवन है क्या ? कोई भी वैज्ञानिक आज तक इन प्रश्नोंका उत्तर नहीं दे सका है। केवल इतना ही कहा जा सकता है कि कोशके सब क्रियाओंका योगफल ही जीवन है। हम यह बतला सकते हैं कि कोई पदार्थ निर्जीव है या सजीव परन्तु यह ठीक नहीं बतला सकते कि जीवन क्या है। हम इतना भर जानते हैं कि कोश की रचना ऐसी जटिल है कि हम उसे समझ नहीं पा रहे हैं। होक्रमाइस्टर ने आँका है कि यकृत (कलेजी) के एक कोशमें २×१०^{१७} अणु होते हैं ! लिखनेमें २×१०^{१७} तो बहुत छोटा है, परन्तु यह इतनी बड़ी संख्या है कि हमारी कल्पना शक्तिके परे है। साधारण रीतिसे लिखने पर यह है

२,०० ००,००,००, ००, ००,००, ००० और यदि हम कल्पना करें कि कोई व्यक्ति मिनट में २०० के हिसाब से लगातार गिनता रहता है, न खानेके लिए रुकता है, न सोनेके लिए, तो वह १०० वर्ष में कोशके एक कोनेके अणुओं को भी न गिन पायेगा। दो करोड़ बार जन्म लेने पर, और प्रत्येक जन्ममें सौ वर्ष तक निरंतर परिश्रम करने पर ही, वह कामको पूर्ण कर सकेगा !

और फिर प्रत्येक अणुमें कई परमाणु होते हैं और प्रत्येक परमाणुमें कई इलेक्ट्रन ! यहाँ तक तो विज्ञान अनुमान कर सका है। जीवन वस्तुतः क्या है यह समझना अभी बहुत दूर है।

पौधोंकी उत्पत्ति

पौधे कहां से आये ? यह प्रश्न उठे बिना रह नहीं सकता। 'जीवन कहांसे आया ?' इस प्रश्नका ही यह एक दूसरा रूप है। विविध धर्मोंने इसका एक ही उत्तर दिया है। परमेश्वर ने सब पेड़-पौधों और प्राणियोंको बनाया। परन्तु वैज्ञानिकोंको इससे संतोष नहीं होता। वैज्ञानिक देखता है कि प्रत्यक्ष रूपसे हमारे वर्तमान प्रायः असंख्य पौधे और प्राणी विकास-द्वारा थोड़े से संभवतः एक ही-

मौलिक रूपसे उत्पन्न हुए हैं। इससे वह कभी-कभी सोचने लगता है कि क्या संयोगवश कभी वे सब रासायनिक पदार्थ एकत्रित हो गये जो कलल रसमें हैं और जीवन आप-से-आप ही आरंभ हो गया; फिर उसीसे अन्य कोश बने और धीरे-धीरे सारी पृथ्वी पर जीवित वनस्पति और प्राणी फैल गये।

पहले प्राणी हुए या पौधे?

लोग पूछ बैठते हैं कि पहले प्राणी उत्पन्न हुए या पौधे। इसका उत्तर स्पष्ट है। जितने प्राणियोंको हम जानते हैं वे या तो पौधे खाते हैं या पौधोंसे पले अन्य प्राणियों को खाते हैं। इससे यही परिणाम निकलता है कि पौधेके पहले प्राणी न रह सके होंगे। इसलिए पहले पौधे हुए होंगे, तब प्राणी। और यदि कोई प्राणी पौधोंके पहले ही रहा होगा तो आहार के बारेमें आजकल-के प्राणियोंसे पूर्णतया भिन्न रहा होगा।

४

पौधोंकी जनसंख्या

अनुमान किया गया है कि वर्तमान कालमें पौधोंकी जातियोंकी गिनती सवा दो लाखसे कम नहीं होगी। इसमें से आधेसे कुछ अधिक तो ऐसे हैं कि उनमें फूल लगता है। यदि हम उन पौधोंकी भी गिनती करें जो किसी समयमें होते थे, परन्तु अब लुप्त हो गये हैं तो पौधोंकी जातियों की संख्या सवा दो लाखसे कहीं अधिक ठहरेगी।

वर्गीकरण

वस्तुतः, पौधों की संख्या इतनी अधिक है कि वनस्पति संसारको विभिन्न वर्गों और कक्षाओंमें बाँटे बिना दिग्दर्शन कर लेना भी असंभव-सा है। इसलिए पौधोंके गुणों और शरीर रचनाओं पर विचार करके पहले उनको विभिन्न समूहोंमें बाँटा जाता है। फिर इन समूहोंको और छोटे श्रेणियों, वर्गों, वंशों, गणों और जातियोंमें बाँटा जाता है, ठीक उसी प्रकार जैसे प्राणियोंको (देखो पृष्ठ ३)

पौधोंके नाम

कोई भी पौधा किसीको दिखलाया जाय तो प्रायः पहला प्रश्न यही होता है कि इसका नाम क्या है। लोग समझते हैं कि प्रत्येक पौधेका कुछ-न-कुछ नाम होगा ही। पहले सब पौधोंके नाम नहीं पड़े थे, परन्तु अब सबके नाम हैं। अब जब कभी कोई नवीन पौधा मिलता है तो वैज्ञानिक उसका सूक्ष्म वर्णन देते हैं, फिर उसके श्रेणी, वर्ग, वंश आदिका पता लगाते हैं और तब नाम रख देते हैं।

नामकरण बहुत ही महत्वपूर्ण है। पहली बात तो यह है कि यदि किसी पौधेका नाम न पड़ा रहे तो उसके बारेमें कुछ कहना या लिखना कठिन हो जायगा। परन्तु
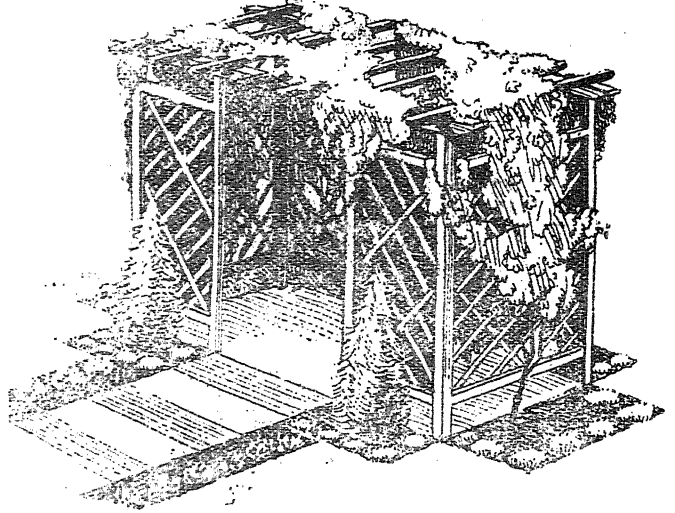
लता-भवन

दो-चार पौधे किसी भी द्वार या मार्गको सुन्दर बनानेके लिये पर्याप्त हैं। यदि पौधे न होते तो संसार कितना सूना लगता।

नाम ऐसा होना चाहिए कि दो पौधोंमें गड़बड़ी न होने पाये। फिर नामसे पौधे की कुछ प्रकृति भी प्रकट होनी चाहिए। वर्तमान वैज्ञानिक प्रणालीमें ये सब गुण हैं। पौधोंके लिए वैज्ञानिक नाम लैटिन भाषाके शब्दोंसे बनाये जाते हैं क्योंकि यूरोपीय देशोंमें प्रायः सर्वत्र आज भी लैटिनका आदर है और बहुतसे लोग उसका
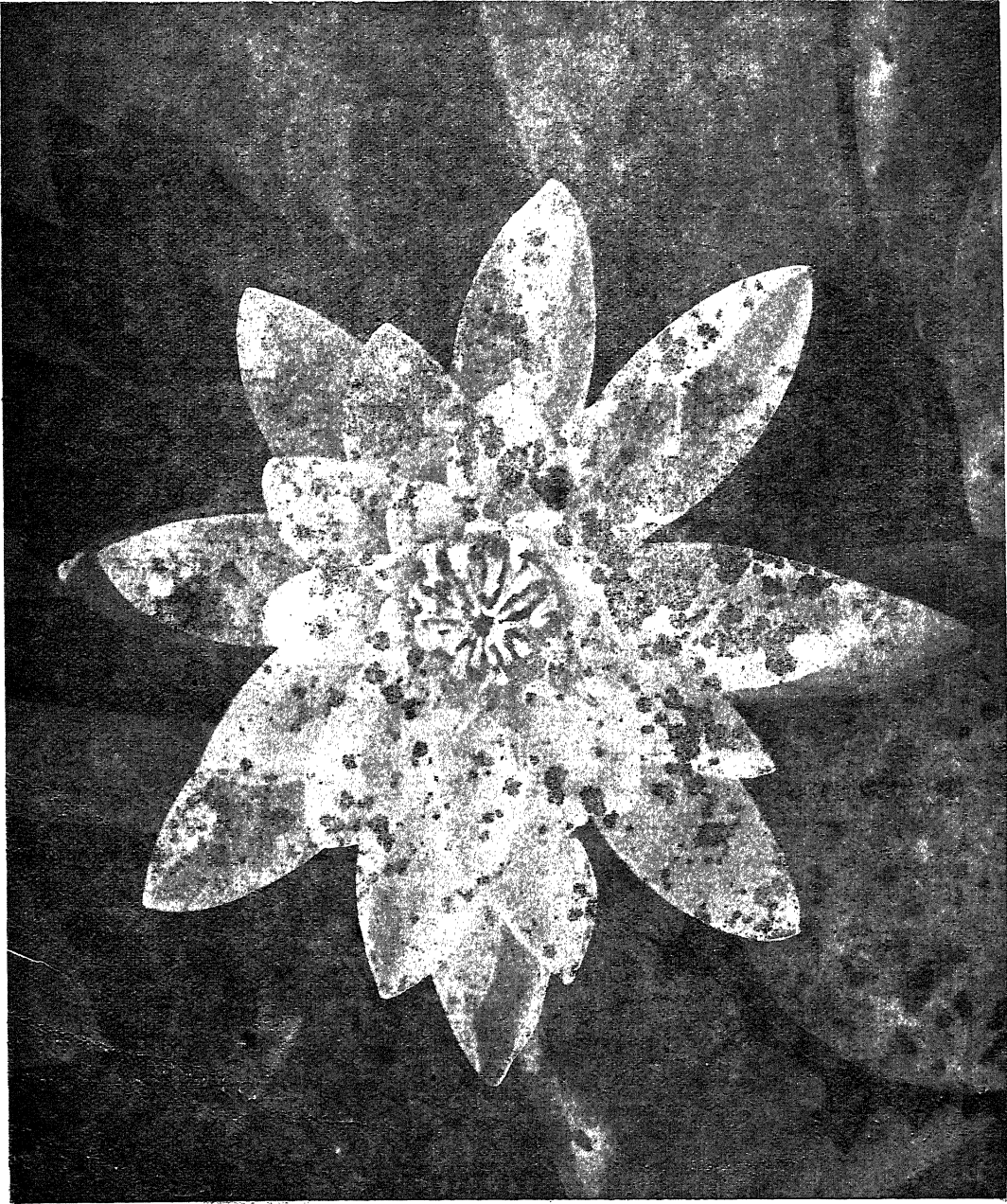
कमल

अनेक सरोवर और झील कमलोंसे सुशोभित रहते हैं। बड़ी-बड़ी पत्तियाँ पानी पर थाल की तरह तैरती रहती हैं और बड़े-बड़े सुन्दर और मनमोहक फूल उनके रहस्यको और भी बढ़ा देते हैं। क्या कोई आश्चर्य है कि लोग उनको पवित्र मानते हैं और कवि सुकुमारियोंकी कोमलता और सुन्दरता की उपमा उनसे देते हैं।

अध्ययन करते हैं। वहाँ लैटिनका वही स्थान है जो भारत वर्षमें संस्कृतका है। हम भी आवश्यकतानुसार लैटिन नाम दिया करेंगे।

जंतुओंके लैटिन नामोंकी तरह पौधोंके लैटिन नामों में दो शब्द रहते हैं। पहला शब्द पौधेका गण बतलाता है। दूसरा शब्द प्रत्येक जातिके लिए भिन्न होता है। उदाहरणतः, आमका लैटिन नाम मैंगीफ़ेरा इन्डिका है। मैंगीफ़ेरा गणमें वे सब वृक्ष हैं जिनमें आम-जैसा फल लगता है। मैंगीफेरा इंडिका भारतीय आमके पेड़ोंकी जाति है। लंगड़ा, बंबई, आदिमें आमकी जातिके केवल भेद है।

वनस्पति-विज्ञानका एक बड़ा विभाग यही है कि पौधोंका उचित रीतिसे वर्णन, वर्गीकरण और नामकरण किया जाय।

५
पौधोंकी जातियाँ

पौधोंको विविध समूहों, श्रेणियों, वर्गों, आदिमें बाँटने की वर्तमान प्रथा बहुत खोज और अनुभवके बाद ही निकल पायी है। आधुनिक विज्ञानमें पौधोंको निम्न समूहोंमें बाँटा गया है—

१—शैवाल (सेवार)
२—फफूँदी या शिलींध्र
३—लिवरवर्ट
४—कावार (काई)
५—फ़र्न
६—नग्नबीजी
७—पुष्पद
  (१) एकदली
  (२) द्विदली

इस पुस्तकमें हम प्रत्येक समूहके इने-गिने पौधों पर ही दृष्टि डाल सकेंगे।

१—शैवाल

हरे वनस्पतिमें शैवाल समूहके पौधे ही सबसे सरल होते हैं। वे या तो जलमें रहते हैं या सीड़के स्थानोंमें। इनके चार उपसमूह हैं—हरा, भूरा, लाल, और नील हरित। इन सबमें पर्णहरित रहता है। परन्तु भूरे, लाल और नील हरित शैवालोंमें इसका रंग दूसरे पदार्थों से छिप जाता है।

हरे शैवाल—सीड़के स्थान वाली दीवारों, लकड़ियों या वृक्षोंके तनोंपर जो हरी-हरी परत जम जाती है वस्तुतः वह हरे शैवालोंसे बनती है। इसमें पृथक-पृथक एकहरे कोश होते हैं जो अतिसूक्ष्म※ होते हैं। इनके प्रजननकी रीति यही है कि कोश बढ़ता है तो एक कोशके दो कोश होजाते हैं और यह क्रिया बराबर होती रहती है।

झील, पोखरी आदि और गंगा-जमुना आदि-जैसी नदियों के पानीमें जो सूतकी तरह हरे-हरे सेवार (शैवाल) तैरते रहते हैं वे कोशोंके एक दूसरेमें जुड़े रहनेसे बनता है। जब एक कोशसे दो कोश उत्पन्न होता है - इसीको कोश-विभाजन कहते हैं—तो वे पृथक-पृथक न होकर एक-दूसरे में जुड़े ही रह जाते हैं। इस प्रकार लंबे-लंबे सूत बन जाते हैं। प्रजनन दो प्रकारसे होता है। एक तो कोश-विभाजनसे, दूसरे कोषविलयन अर्थात् दो कोषोंके एकमें मिल जानेसे। कोषविलयनके बाद कुछ समय तक कोश विश्राम करते हैं और तब फिर कोशविभाजनका कार्य आरम्भ होता है। प्रायः सभी पौधोंमें एक विश्राम काल होता है।

अब अच्छी तरह देख लिया गया है कि कोषविलयन कैसे होता है। इसका सिनेमाचित्र भी खींचा गया है। संयोगवश शैवालके दो सूत या रेशे अगल-बगल आ पड़ते हैं। तब दोनों सूतोंके एक या अधिक कोशोंको बगलमें से छोटी-छोटी शाखाएँ निकल पड़ती हैं और इनके सिरे एक दूसरेको छू देते हैं। सिरेकी भीत हट जाती है (अभी पता नहीं कि कैसे)। तब एक सूतके कोषमें हलचल मचती है और गैसके नन्हे-नन्हे बुलबुले उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उस कोशका रस दूसरे सूतके कोशमें घुस जाता है। इसके बाद दोनों कोशोंके कललरस मिलकर एक हो जाते हैं।

※ इस पुस्तकमें अतिसूक्ष्मका अर्थ है "इतना सूक्ष्म कि आँखोंसे न दिखलाई पड़े।"

फिर, कुछ समय बाद, इस कोशसे कोशविभाजन क्रिया द्वारा नवीन कोश उत्पन्न होने लगते हैं।

अन्य शैवाल —भूरे शैवाल समुद्रतलमें होते है। कुछ तो सौ-सौ फुट लम्बे होते हैं। इनमें पोटैसियमके लवणों की मात्रा अधिक रहती है और इसलिए यह शैवाल अन्य पेड़-पौधोंके लिए उत्तम खाद होता है। लाल शैवाल भी समुद्रोंमें होता है।

पौधोंमें लिंग

ऊपर बतलाया गया है कि शैवालोंमें कोशविलयन से भी प्रजनन होता है। ऐसे प्रजननको लैंगिक (अर्थात् लिङ्गसे सम्बन्ध रखने वाला) प्रजनन कहते हैं। उस कोश को जिसका रस दूसरेमें जाता है नर माना जा सकता है। रस ग्रहण करने वाले कोशको नारी माना जासकता है। जब

चाय।

चाय, जिसकी इतनी धूम है, वस्तुतः एक पौधेकी सुखायी गयी पत्ती है।

केवल कोश-विभाजनसे प्रजनन होता है तो उसको अलैंगिक प्रजनन कहते हैं। अधिकांश पौधोंमें दोनों तरहसे प्रजनन हो सकता है। उदाहरणतः आमके वृक्षमें बीजका बनना और उससे आमका नवीन-वृक्ष उत्पन्न होना लैंगिक प्रजनन है, परन्तु क़लम लगाकर आमका वृक्ष उत्पन्न करना अलैंगिक प्रजनन है। इस आश्चर्यजनक बातको कि पौधोंमें लिङ्ग होता है पहले-पहले एक जरमन वैज्ञानिकने सन् १६९४ में सिद्ध किया।

पौधोंसे पत्थर

हरे और भूरे शैवालोंकी कुछ जातियाँ समुद्र-जल से कैलसियम कारबोनेट खींच लेती हैं और उनके ऊपर इस पदार्थकी तह जम जाती है। जब ये पौधे मरते हैं तो उनके एकत्रित किये कारबोनेट की तह पर तह जमती चली जाती है। इस प्रकार बड़े बड़े टापू बन जाते हैं। भारत महासागरके कुछ टापू इसी प्रकार बने हैं। अमरीकाके एक छोटे झीलमें देखा गया है कि शैवाल एक वर्षमें लगभग तीस लाख मन कार्बोनेट एकत्रित करते हैं। उन शैवालोंमें चालीस प्रतिशत कैलसियम कारबोनेट रहता है।

२ फफूँदी

फफूँदी समूहके पौधे अतिसूक्ष्म—केवल सूक्ष्मदर्शकसे दिखलायी पड़ने वाले—रूप से लेकर एक हाथ व्यासवाले दैत्य कुकुरमुत्ते तक होते हैं। फफूँदी समूहके पौधे बड़े महत्वके होते हैं। इनमेंसे कुछ, जैसे गुच्छी आदि, तो खाये जाते हैं, और कुछ, जैसे विषाक्त कुकुरमुत्ते, तीव्र विष होते हैं। आटेमें खमीर इसी समूहके अतिसूक्ष्म पौधोंके उगनेसे उठता है।

गुच्छी और छत्रक

कुकुरमुत्ता, धरतीफूल, खुमी, भूफोड़, ढिंगरी, गगनधूल, आकाशधूल, छत्र, छत्रक, छत्रा, मधुरिका, गुच्छी ये सब एक ही वर्गके पौधे हैं। इनमें से कुछ खाने योग्य होते हैं, कुछ अत्यन्त विषैले होते हैं और कुछ विषैले न होते हुए भी खाने के योग्य नहीं होते। इनमेंसे गुच्छी वह जाति है जो तरकारी की तरह राँध कर खाई जाती है। अँग्रेज़ीमें मशरूम शब्द साधारणतः सभी प्रकारके छत्रकोंके लिये प्रयुक्त होता है। परन्तु कुछ लोग अखाद्य छत्रकको टोडस्टूल कहते हैं। खाने योग्य छत्रकों को अँग्रेज़ीमें विशेष नाम न देकर बहुधा एडिब्ल मशरूम ही कहते हैं।

फफूँदी समूहके पौधोंमें छत्रक सबसे बड़े हैं और लोग इन्हींसे अधिक परिचित रहते हैं। ये सीड़ वाले अँधेरे

स्थानोंमें बहुत होते हैं। इनमेंसे अधिकांश गलितजीवी हैं और सड़ती हुई लकड़ी, पत्तियों और खाद से अपना आहार प्राप्त करते हैं, परन्तु कुछ छत्रक पौधोंकी जड़ों या अन्य अंगों पर परोपजीवीकी तरह रहते हैं।

जिसको हम छत्रक कहते हैं वह वस्तुतः पौधोंका बीजाणु उत्पन्न करने वाला भाग है। पौधेका शेष भाग भूमिके भीतर रहता है। यह भाग सूतकी जालकी तरह होता है और चारों ओर फैला रहता है। देखनेमें यह मूल (जड़) की तरह लगता है परन्तु वस्तुतः यह सच्चा मूल नहीं है। इसको छत्रजाल या संक्षिप्त रूपसे केवल जाल कहते हैं। जालमें कहीं कहीं गाँठ-सी रहती है और वहाँसे नवीन छत्रक उग आता है।

भारतवर्षके अन्य प्रदेशोंमें गुच्छी साधारणतः काश्मीरसे आती हैं परन्तु कई स्थानों में यह उगाई भी जाती है। बीज बेचने वाली बड़ी दूकानोंसे गुच्छीका जाल खरीदा जा सकता है। यूरोपमें गुच्छी उपजाने का व्यवसाय खूब प्रचलित है।

स्वयं गुच्छीकी कई उपजातियाँ हैं, परंतु साधारणतः जो गुच्छी मिलती है वह छातेके आकार की होती है (इसका चित्र यहाँ नहीं दिया गया है)। बीचमें दण्ड होता है जो एक इंच तक मोटा और दोसे पाँच इँच तक लंबा होता है। टोपी मोटी होती है। तने पर एक छल्ला-सा रहता है। टोपीकी नीचे वाली सतह पर पतले-पतले पत्र होते हैं जो प्रायः केन्द्रसे छोर तक जाते हैं। जब गुच्छी छोटी रहती है तब टोपी बन्द रहती है और इसका छोर तनेसे जुड़ा रहता है। जब गुच्छी बढ़ती है तो टोपी भी बढ़ती है और एक समय ऐसा आता है जब टोपी तने से छूट जाती है। उस समय टोपीके छोरका एक अंश टूट कर तने पर लगा रह जाता है और इस प्रकार ही तने पर वह छल्ला बनता है जिसकी चर्चा ऊपरकी गयी है।

टोपीका नीचे वाला भाग कुछ समयमें काला हो चलता है। इसका कारण यह है कि उससे बीजाणु बन चलते हैं। बीजाणुओंकी बनावट सच्चे बीजसे भिन्न होती है और ये बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। एक छत्रकसे जितने बीजाणु निकलते हैं वे गिनतीमें प्रायः असंख्य होते हैं। ये बीजाणु हवा में उड़ते रहते हैं (संभवतः इसी कारण उनका नाम गगनधूल भी है) और कहीं जा गिरने पर अनुकूल जल-वायु पाकर उनमेंसे नये छत्रक उगते हैं। खाने योग्य छत्रक (गुच्छी) के बीजाणुमें बादाम-सी सुगंधि रहती है।

फफूँदी और पौधोंके रोग

पौधेके तीन विकट शत्रु होते हैं: जलका अभाव, कीड़े-मकोड़े और रोग। पौधोंके अधिकांश रोग 'जीवाणुओं' से उत्पन्न होते हैं; हमारी वाटिकाओं और खेतोंके पेड़-पौधों पर फफूँदी समूहके अतिसूक्ष्म पौधे-जीवाणु—उगने लगते हैं और हमारे इष्ट पौधे मरने लगते हैं। इन अतिसूक्ष्म पौधोंके अतिरिक्त फफूँदी समूहमें बड़े पौधे भी हैं जो वृक्षादि का सत्यानाश कर सकते हैं। सभी जानते हैं कि यदि पुस्तक बरसातमें सीड़की जगह रह जाय तो उसपर भुकड़ी लग जाती है जिससे पुस्तककी दफ्ती और पन्ने बेदम हो जाते हैं। वैसी ही भुकड़ी जीवित वृक्षोंकी छाल पर भी लग जा सकती है। वृक्षों पर या काठपर छत्रककी तरह चिपटे कुकुरमुत्ते भी लग सकते हैं। इनके कारण वृक्ष कुछ दिनोंमें नष्ट होजाता है। ऊपरसे दिखलाई पड़ने वाले कुकुरमुत्ते वस्तुतः बीजाणु उत्पादक अंश हैं। उनकी जड़ें * पेड़में घुसी रहती हैं और काठ को गला-घुलाकर चूसती रहती हैं। इन कुकुरमुत्तोंके उत्पन्न होनेकी रीति यह है कि जब पेड़के किसी कटे-छिले स्थान पर हवामेंसे उड़ते हुए बीजाणु आ गिरते हैं तो वे उगने लगते हैं। इन उगते हुए पौधोंसे एक पाचक रस निकलता है जो लकड़ीके तंतुओं को नरम करके घुला डालता है। तब कुकुरमुत्तेकी जड़ें उसमें घुस सकती हैं और उसमेंसे पौष्टिक अंश चूस सकती हैं। ये जड़ें वृक्षके भीतर-ही-भीतर फैलती रहती है और जहाँ कहीं वृक्षकी सतह को फोड़कर बाहर निकलती हैं वहाँ नवीन कुकुरमुत्ता उगने लगता है।

इससे स्पष्ट हो गया होगा कि वृक्षकी शाखा काटने पर क्यों नवीन क्षत (घाव) पर दवा या तैल-रंग या मोम पोत दिया जाता है। इससे फफूँदियोंके बीजाणु वहाँ पनपने नहीं पाते। हमारे कृषक और माली घाव पर राख छिड़क

* अन्य पौधोंकी जड़ोंसे ये भिन्न होती हैं। इसीसे फफूंदियोंकी जड़ोंका विशेष नाम 'छत्रजाल' रख दिया गया है।

देते हैं। राखमें पोटैसियम कारबोनेट होता है। उससे भी फफूँदी नहीं उगने पाती।

बैक्टीरिया

बैक्टीरिया※ या दंडाणु सबसे छोटे पौधे हैं और केवल अधिक शक्तिके सूक्ष्मदर्शक यंत्रोंमें ही देखे जा सकते हैं।

कहवा।

कहवा या कॉफ़ी, जिसका सेवन कुछ लोग बड़ी चाव से करते हैं, वस्तुतः एक पौधेका बीज है।

कुछ गोल आकार वाले दंदाणु तो इतने छोटे होते हैं कि ५०,००० दंडाणुओंको एक पंक्तिमें रखनेसे एक इंच लंबी सिकड़ी बनेगी। संभव है कि इतने भी सूक्ष्म दंडाणु होते हों कि वे हमको अधिक-से-अधिक शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शकमें भी न दिखलाई पड़ते हों। दंडाणु सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। हवामें, मिट्टीमें, जलमें, और वस्तुतः सभी पदार्थों पर।

※अंग्रेजी शब्द बैक्टीरिया वस्तुतः बैक्टीरियम का बहुवचन है, जिसका अर्थ है छोटा डंडा अर्थात दंडाणु।

एक दंडाणुमें केवल एक कोष रहता है। वह उसी प्रकार आहार ग्रहण करता है जैसे अन्य फफूँदियां, क्योंकि दंडाणुओं में भी पर्णहरित नहीं होता। अपने पाचक रससे दंडाणु अन्य ऐंद्रिक रासायनिक पदार्थों का गुण बदल देता है। सड़ने और फफदने (खमीर उठने) की क्रियायें दंडाणुओंके ही कारण होती हैं परंतु सड़ाने वाला दंडाणु खमीर वाले दंडाणुसे भिन्न होता है।

दंडाणुमें संतति-उत्पादन कोश-विभाजनसे होता है, अर्थात एक कोशसे दो, दो से चार होता रहता है। उनकी संख्या इतनी शीघ्र बढ़ती है कि एक दिन में एक दंडाणुसे कई खरब दंडाणु बन जाते हैं।

दंडाणु वस्तुतः कई जातियों के होते हैं। उनमें से कुछ तो मनुष्यके लिए उपयोगी हैं, शेष हानिकारक। उदाहरणतः वे दंडाणु हमारे लिए उपयोगी हैं जो अमोनियासे नाइट्रेट बनाते हैं, क्योंकि नाइट्रेट पौधों के लिए अति उत्तम खाद है और इस लिए दंडाणुओंसे हमारे खेतों की उपज बढ़ती है। फिर, ऐसे दंडाणु भी होते हैं जो वायु के नाइट्रोजन को लेकर नाइट्रोजनके यौगिक बनाते हैं जो अंत में हमारे पौधों के लिए उपयोगी होते हैं। जिन दंडाणुओं के कारण मटर की जड़ोंमें ग्रंथियाँ बन जाती हैं वे भी उपयोगी दंडाणुओंके ही उदाहरण हैं। इनसे मटरको नाइट्रोजन वाली खाद मिलती है।

हानिकारक दंडाणुओंमें हम उनको गिना सकते हैं जिनके कारण हैजा, क्षय, हनुस्तंभ (टिटेनस) और प्लेग नामक रोग होते हैं। कुछ दंडाणुओंसे पौधोंमें भी रोग उत्पन्न होते हैं।

दंडाणुओंके आकारके अनुसार उनके तीन भेद माने जाते हैं—गोल, लंबे और पेंचदार। गोल दंडाणुओं को अँग्रेज़ीमें कॉकस कहते हैं, जिनके कई भेद हैं। स्टैफिलोकाकस के कारण मनुष्यको फोड़ा–फुनसी होती है, न्यूमोकॉकससे न्यूमोनिया, स्ट्रेप्टोकॉकससे गलग्रंथिप्रदाह (टॉनसिलाइटिज़), सुर्खबादा (एरिसिपलस) आदि रोग। लंबे दंडाणुओंको हिंदी में शलाकाणु और अँग्रेज़ीमें बैसिलस (बहुवचन बैसिलाई) कहते हैं। आँव नामक पेट के रोग का कारण बहुधा एक

प्रकार का शलाकाणु होता है। क्षय और आंत्रिक ज्वर (टाइफायड), आँख उठना आदि रोग भी भिन्न-भिन्न प्रकार के शलाकाणुओं से होते हैं। उपदंश (आतशक या सिफ़-लिस) का रोग पेंचदार दंडाणुओंसे होता है।

फफदन

यदि आटा पानी में फेंटकर रख दिया जाय तो वह फफदने लगता है। कारण यह है कि उसमें हवासे एक विशेष प्रकार के दंडाणु पड़ जाते हैं जो शीघ्र बढ़ते हैं और आटे में गैसके बुलबुले बना देते हैं। परन्तु इस प्रकार आप-से-आप फफदने के आसरे रहने में हानि यह होती है कि उपयोगी दंडाणुओंके साथ आटे में हानिकारक दंडाणु भी घुस आते हैं, जिनके कारण आटा सड़ने भी लगता है। इसी लिए नानबाई और हलुआई पावरोटी और जलेबी बनाने वाले आटेमें जान-बूझकर थोड़ा-सा पहले दिन का खमीर उठा आटा मिला देते हैं। इस आटेमें लाभकारी दंडाणु ही अधिक रहते हैं। इन दंडाणुओं को खमीराणु कहते हैं। जब पहले का खमीर उठा आटा नये आटेमें पड़ता है तो नये आटेमें खमीराणु बढ़ने लगते हैं और इस प्रकार नये आटेमें भी खमीर उठ जाता है। खमीर में विटैमिन बी प्रचुर मात्रामें होती है और इसलिए स्वास्थ्यके लिए लाभदायक है।

अवश्य ही आरंभमें मनुष्यने खमीराणुओं को हवासे 'पकड़ा' होगा—उसने उस आटे को पसंद किया होगा जिसमें स्वादिष्ट खमीर उठा होगा। फिर उसी का एक अंश दूसरे आटे में डाल कर और इसी क्रम को प्रचलित रख कर, तथा ऐसे आटे को बराबर फेकते रहकर जिसका स्वाद खमीर वाले आटेसे भिन्न रहा होगा अन्तमें खमीराणुओं को विशुद्ध रूपमें पृथक कर लिया गया होगा। यूरोप आदिमें तो सूखा खमीर (यीस्ट) दूकानों पर बिकता है। थोड़ा-सा ऐसा खमीर गीले आटे में छोड़ देने से ही दो-तीन घंटे में उसमें खमीर उठ आता है। (खमीर 'उठना' मुहावरा है। इसका अर्थ है कि सारा आटा खमीराणुओंसे फफद आता है)

पौधों के रोग

बैक्टीरिया (अर्थात दंडाणुओं) से होने वाले पौधोंके रोग कई एक हैं। एकके कारण ककड़ी-खीरेके पौधे मुरझा जाते हैं, दूसरेके कारण आलू भीतर-भीतर सड़ जाता है। ये रोग तो दंडाणुओंके कारण होते हैं जो आँखसे दिखलाई नहीं पड़ते। परन्तु फफूँदी समूहके अन्य, दंडाणुओंसे बड़े, सदस्योंसे भी पौधोंमें रोग होते हैं। इन रोगोंमें गेरुई और काँसी भी है।

गेरुई

गेरुई* नामक रोग कई अनाजोंकी पत्तियोंमें होता है। इसका नाम गेरुई इस लिये पड़ा है कि इससे पत्ते पर गेरू की तरह लाल रंग के धब्बे पड़ जाते हैं। इस फफूँदीका छत्रजाल पौधेकी पत्तियों और तनेके भीतर रहता है। यदि हम किसी एक लाल धब्बे का निरीक्षण करें तो पता चले-गा कि वहाँ दाना-सा उभड़ आया है जिसके ऊपर पत्तीकी त्वचा वाली परत है। रोगके आरँभमें यह त्वचा कहींसे टूटी नहीं रहती। परन्तु समय बीतने पर त्वचा फट जाती है और उसके नीचेसे फफूंदीके बीजाणु निकलते हैं जो लाल होते हैं। ये बीजाणु जहाँ कहीं गिरते हैं वहीं दूसरे धब्बे बनने लगते हैं और इस प्रकार रोग शीघ्र सारे पौधेमें फैल जाता है। बीजाणुसे निकले सूत (जाल-सूत्र) पत्तियोंके रंध्रोंमेंसे भीतर घुस जाते हैं। जब पौधा लगभग मरने को रहता है तब जो बीजाणु निकलते हैं उन पर मोटी, चिकनी त्वचा चढ़ी रहती है। ये कुछ अधिक साँवले रंग के होते हैं और अगली फसल तक जीवित रहते हैं।

काँसी

काँसी† नामक रोग कई पौधोंमें लगता है और उससे बहुत अनाज नष्ट होता है। काँसी एक फफूँदीके कारण

---

*हिंदी शब्दसागरमें इस शब्दका निम्न अर्थ है:—
गेरुई—संज्ञा स्त्री० [हिंदी गेरूसे] चैतकी फसलका एक रोग जिससे अनाजके पौधोंके पत्तों पर लाली छा जाती है। इससे दाने मर जाते हैं।

†हिन्दी शब्दसागरमें काँसीका निम्न अर्थ है:—
काँसी—संज्ञा स्त्री० [संस्कृत काशसे] धानके पौधेका एक रोग।

होता है जो अनाजके बीजसे पौधोंके निकलते ही पौधोंमें लग जाता है। जैसे-जैसे पौधा बढ़ता है वैसे-वैसे फफूँदी भी बढ़ती है। जब प्रतिपालक पौधोंमें फूल लगनेका समय आता है तो फफूँदीके जाल-सूत्र प्रतिपालकके गर्भाशयोंमें घुस जाते हैं। इसलिए गर्भाशय फूल जाते हैं और विकृत हो जाते हैं। अनाजके बदले वहाँ फफूँदीके बीजाणु रह जाते हैं। ये बीजाणु काले होते हैं और इन पर मोटी त्वचा होती है। अंतमें बीजाणु बिखर जाते हैं। कुछ भूमि में पड़े रहते हैं। जब अगली फसलमें फिर बोआई होती है तो वे नवीन कोमल पौधोंमें उगने लगते हैं।

भुकड़ी

हमने इस पुस्तकमें फफूँदी शब्द को छत्रकसे लेकर दंडाणुओं तक सभी पौधोंके लिए प्रयुक्त किया है परंतु साधारण बोलचालमें लोग फफूँदी या भुकड़ी रुई की तरह नरम और पोली उस वस्तु को कहते हैं जो सीड़में रक्खी वस्तुओं पर उग आती है। सुविधाके लिए जब केवल इसी वस्तुकी चर्चा करनी रहेगी तो हम भुकड़ी शब्द का प्रयोग करेंगे।

यदि रोटी सीड़के स्थानमें रख दी जाय तो इस पर रुई की तरह नरम और पोली सफेद तह जम जाती है। यह वस्तुतः भुकड़ी का शरीर है। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो पता चलेगा कि इसमें बहुतसे सूत चारों ओर बिखरे हुए हैं। कुछ सूत खड़ी दिशामें भी होते हैं। वे रोटीमें घुसे रहते हैं। वे रोटी को घुलाकर रस को चूसा करते हैं, जिसके ही सहारे भुकड़ी बढ़ती रहती है। कुछ समय बाद अन्य खड़े सूत भी उत्पन्न होते हैं जिन पर बीजाणु-पात्र लगते हैं। ये पात्र गाढ़े रंगके होते हैं। इनके कारण कुछ दिनोंमें भुकड़ी काली दिखलाई पड़ने लगती है। जब बीजाणु परिपक्व हो जाते हैं तो बीजाणुपात्र फट जाते हैं और बीजाणु हवामें बिखर जाते हैं। ये बीजाणु प्रायः सदा ही वायुमें प्रचुर संख्यामें विद्यमान रहते हैं। उनके साथ खमीराणु भी रहते हैं, और अन्य फफूँदियोंके भी बीजाणु। इस लिए रोटी को केवल रख छोड़नेसे ही उस पर भुकड़ी उगने लगती है और अर्ध-तरल आटे को रख छोड़ने पर उसमें खमीराणु बढ़ने लगते हैं। रोटी भुकड़ीके लिए अधिक अनुकूल पड़ती है, अर्धतरल आटा खमीरके लिए।

भुकड़ी कोशविभाजनसे भी बढ़ती है और लैंगिक जनन से भी। सन् १९०४ में पता चला कि दो विभिन्न बीजाणुओंसे उगे पौधोंमेंसे एक नर हो सकता है, एक नारी। तब एकसे निकला सूत दूसरेसे निकले सूतमें जा जुड़ेगा, जैसा शैवालों में होता है। फिर, दोनोंके एक-एक कोशका कललरस मिलकर एक हो जायेगा और तब उससे भी भुकड़ी के पौधे उग सकेंगे।
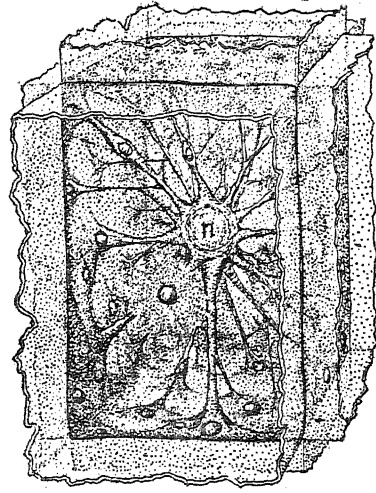
एक कोष।

पौधेका प्रत्येक अंग वस्तुतः नन्हे-नन्हे कोषोंका संग्रह होता है। यहाँ एक कोष बहुत बड़े पैमाने पर दिखाया गया है। परन्तु सब कोष चौकोर नहीं होते। अगला चित्र देखें।

फफूँदी-समूहके पौधोंमें प्रजनन कोशविभाजन और कोशविलयन दोनों प्रकारसे होता है। फफूँदियों और शैवालों में अन्य कई बातोंमें भी समानता है। इसीसे वैज्ञानिकोंका अनुमान है कि फफूँदियोंका विकास शैवालोंसे ही हुआ है और इस विकासमें फफूंदियोंमें पर्णहरितका नाश होगया। इसीसे फफूँदी मृत और जीवित काठ आदि पर पनप सकती हैं।

३—लिवरवर्ट

लिवरवर्टका नाम इसलिए पड़ा है कि कुछ लोग उनको लिवर (कलेजी) के समान होने की कल्पना करते हैं। पौधेमें न तो तना होता है और न सच्ची पत्तियाँ या जड़ें। पौधेका शरीर चपटा, हरा और पत्ती की तरह होता है। ऊपरी सितह पर नन्हीं-नन्हीं कटोरियाँ होती हैं और उनके भीतर रहने वाले पदार्थसे दूसरा पौधा उत्पन्न होता है। इस प्रकार अलैंगिक रीतिसे पौधे उत्पन्न होते हैं। परन्तु पौधे लैंगिक रीतिसे भी उत्पन्न होते हैं, क्योंकि इनमें पतली-पतली खड़ी शाखाएँ भी निकलती हैं। इनमें से कुछ के सिरे पर बोतलनुमा अंग होते हैं जिनमें 'गर्भाशय' रहता है। शेष शाखाओंके सिरों पर मुग्दरके आकारके 'रेत-पात्र, रहते हैं। इनमें 'रेताणु' उत्पन्न होते हैं। ये ओस या जल कणके सहारे बहते हुए गर्भाशयमें पहुँचते हैं। वहाँ वे गर्भाशयकी नलीमें घुस जाते हैं और जाकर गर्भाशयके भीतर रहने वाले 'रजोविन्दु' से जा मिलते हैं। वहाँ रेताणु और रजोविंदु मिलकर एक होजाते हैं। इसीको गर्भाधान कहते हैं। गर्भित रजोविन्दु अब बड़ा होकर डंठलका रूप धारण कर लेता है और उसके सिरे पर बीजाणुओंसे भरा दाना रहता है। जब बीजाणु परिपक्व हो जाते हैं तो ये दाने फूट जाते हैं और बीजाणु हवासे बिखर जाते हैं। यदि वे किसी अनुकूल स्थान पर जा गिरते हैं तो वहाँ अंकुरित होते हैं और नवीन पौधे उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार ये पौधे नये-नये स्थानोंमें उगते रहते है।

४—कावार

कावार या काई समूहके पौधोंका संगठन लिवरवर्टोंसे अधिक उच्च होता है। जब काईका बीजाणु अंकुरित होता है तो उसमेंसे शाखामय हरा तंतु निकलता है जो देखने में हरे शैवालके सूतसे मिलता-जुलता है। कुछ समयमें इस हरे सूत पर एक या अधिक पत्तियों की कलियाँ उग आती हैं जो बढ़कर पत्तियोंके डंठलकी तरह हो जाती हैं। तंतुओंके नीचे वाले सिरोंसे जड़की तरहके अवयव निकलते है (परन्तु ये अंग सच्ची जड़ें नहीं हैं)। कुछ पौधोंके दूसरे सिरों पर गर्भाशय और रजोविन्दु बन जाते हैं, कुछके सिरों पर रेतपात्र और रेताणु। फिर, जैसा लिवर-वर्टोंमें होता है, रेताणु रजोविन्दुओंको गर्भित करते हैं और बीजाणु बनते हैं, जो दूर-दूर तक उड़ जाते हैं। अनुकूल स्थान पर गिरने पर बीजाणु नवीन पौधा उत्पन्न करता है और इस प्रकार नवीन जीवन चक्र फिर चलता है।

५—फर्न

फर्न अपनी सुन्दरताके कारण सभी बागोंमें उगाये जाते हैं। इसलिए सबने उनको देखा होगा। इन पौधोंके जीवन-इतिहास का भेद सन १८४१ के पहले किसी को ज्ञात न था। उस वर्ष जरमन वनस्पति-विज्ञान-वेत्ता होफ़माइस्टरने इस रहस्यका पता लगाया। इन पौधोंमें पत्तियों कीं नीचे वाली सतहमें बीजाणुके दाने लगते हैं, परन्तु सभी पत्तियोंमें बीजाणुके दानोंका लगना आवश्यक नहीं है। दानोंके फूटने पर जब ये बीजाणु उड़कर कहीं अन्यत्र जाते हैं और वहां अंकुरित होते हैं तो उनसे तुरंत फर्नके दूसरे पौधे नहीं उगते। पहले लिवरवर्ट की तरह नन्हे-नन्हे पौधे उत्पन्न होते हैं। उन पौधोंमें गर्भाशय, रजोकण, रेत-पात्र और रेताणु रहते हैं। उनसे अंतमें बीजाणु उत्पन्न होते हैं। इन बीजाणुओंसे फ़र्न की तरह पौधे उत्पन्न होते हैं जो पहले अपनी माता-पौधेका रस चूसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं, परन्तु अंतमें भूमिसे आहार ग्रहण करते हैं। इनकी पत्तियोंके नीचे फिर बीजाणु के दाने लगते हैं। इत्यादि। इस प्रकार एक जीवन-चक्र पूर्ण होता है।

बागोंमें साधारणतः अलैंगिक रीतिसे फर्नके नवीन पौधे उत्पन्न किये जाते हैं। फ़र्न की जड़ोंमें से 'धावक' निकलते हैं जिनके अन्तमें नवीन पौधे उत्पन्न होते हैं। इन नवीन पौधोंको माली लोग 'सोरौधा' कहते हैं जिसका अर्थ है सोर (जड़) से उत्पन्न हुआ पौधा। सोरौधों को कहीं अलग लगा देनेसे या धावक को काटकर मिट्टी में गाड़ देनेसे फर्नके नवीन पौधे उत्पन्न होते हैं।

६—नग्नबीजी

नग्नबीजी समूहमें चीड़, आदि वृक्ष हैं। चीड़के वृक्ष के नर फूलोंसे पराग हवाके झकोरोंमें उड़ता है और नारी फूलोंके ऊपर गिरता है। नारी फूलोंकी रचना विचित्र होती हैं। उनमें शल्क होते हैं अर्थात् छिलका समूचा न होकर

कई टुकड़ोंमें होता है जो एक दूसरे पर चढ़े रहते हैं। इन शल्कोंके बीचसे होता हुआ पराग गर्भाशयोंकी सतह पर जा गिरता है। इस प्रकार बीज बनता है। ये पौधे नग्न बीजी इसलिए कहलाते हैं कि बीज किसी परत आदिसे ढका नहीं रहता।

७ फूलवाले पौधे

जैसा पहले बतलाया जा चुका है आधेसे अधिक पौधे फूल वाले पौधे होते हैं। इन सब पौधोंका वर्णन करना पड़े तो कई जिल्दोंकी आवश्यकता पड़ेगी।

सभी फूलवाले पौधे बीजसे उत्पन्न हो सकते हैं। परन्तु यदि बीजकी जांचकी जाय तो पता लगेगा कि उस के भीतर नन्हा-सा पौधा रहता है। अनुकूल वातावरणमें (जल आदि उचित मात्रामें पाने पर) यही पौधा बढ़ने लगता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुछ बीजोंके भीतर वाले नन्हे पौधेमें केवल एक पत्ता (बीजपत्र) रहता है, कुछमें दो। ऐसे पौधेको जिसके बीजमें एक बीजपत्र रहता है एकदली कहते हैं, दो बीजपत्र वालोंको द्विदली कहते हैं।

उदाहरणतः, सेम द्विदली है और भुट्टा एकदली। कुछ पौधोंमें दुविधा भी पड़ जाती है क्योंकि दो पत्तियोंके रहने पर भी एक बहुत छोटी हो सकती है, या ऐसा भी हो सकता है कि किसी विशेष पौधेसे कभी-ही-कभी दो पत्तियाँ निकलें। ऐसी अवस्थामें सारे पौधेके अध्ययनसे पता चल जाता है कि पौधेको किस उपसमूहमें रक्खा जाय, क्योंकि एक दली और द्विदली पौधोंकी जड़, तने, पत्तियों और फूलकी रचनामें अंतर होता है।

एक दली पौधोंमें हमारे अधिकांश महत्वपूर्ण आहार-प्रद पौधे हैं, जैसे गेहूँ, धान, मकई (भुट्टा), जौ आदि, गरी, खजूर, केला, और घास। लिली और ऑरकिडके पौधे, जो अपने सुन्दर फूलके लिए प्रसिद्ध हैं, इसी उप-समूहमें है।
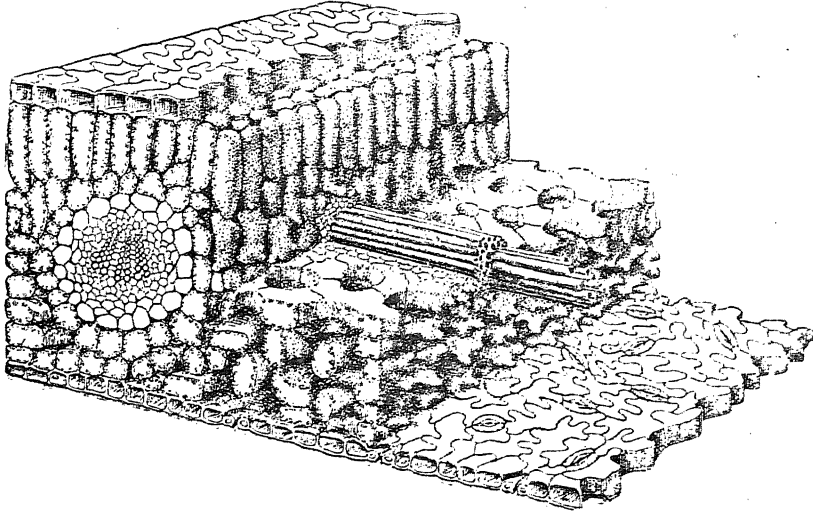
पत्तीकी बनावट।
यहाँ पत्तीका एक अंश बहुत बड़े पैमाने पर दिखाया गया है। देखें कि पत्ती वस्तुतः कोषोंका संग्रह है, परन्तु ऊपर और नीचेकी तह वाले कोष चिपटे हैं। इनके बीच मूँगफलो की तरह लम्बे और गोल कोष हैं। बीचमें लम्बे-लम्बे कोषोंसे पत्ती की नस बनी है। इत्यादि।

द्विदली पौधोंमें अधिकांश तरकारियाँ हैं, जैसे करम-कल्ला, गाजर, मटर, सेम इत्यादि; और फल, जैसे सेब,

नारंगी, नीबू, बैर, नाशपाती, आदि। गुलाब, स्वीट पी, गुलदाउदी, डाहलिया आदि फूल भी इसी उपसमूह में हैं।

६

पौधों का कार्यक्रम

अब इसपर विचार किया जायगा कि पौधे कैसे खाते-पीते हैं और कैसे रहते हैं।

पौधे कैसे खाते हैं ?

जंतु पौधे खाते हैं और कुछ पौधे भी अन्य पौधों से अपना आहार ग्रहण करते हैं, परन्तु एक प्रकार से देखा जाय तो सब आहार ऐंद्रिक होता है अर्थात् वह सजीव पदार्थों से प्राप्त होता है। न तो पौधे और न जीव-जन्तु उन खनिज पदार्थों पर जीवित रह सकते है जो उनको भूमि और वायु में मिलते हैं। खनिज पदार्थ को पहले ऐंद्रिक पदार्थ में परिवर्तित करना पड़ता है और तब वह आहार के योग्य हो जाता है। पत्तियों का मुख्य कार्य यही है कि वे खनिज पदार्थों को ऐंद्रिक पदार्थों में परिवर्तित कर दें जिसमें वे पौधे के काम में आ सकें। वस्तुतः पत्तियों के रूप, रङ्ग, रचना, पौधे में स्थिति—सभी बातें—तभी पूर्णतया समझ में आती हैं जब हम इसपर ध्यान रखते हैं कि पत्तियोंका काम अपने पौधे के लिये भोजन तैयार करना है।

पत्तियाँ हरी क्यों होती हैं ?

केवल एक वस्तु हमें ज्ञात है जो खनिज पदार्थों को ऐंद्रिक पदार्थों में परिवर्तित कर सकती है और वह है पर्णहरित, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। इसकी रासायनिक बनावट बड़ी जटिल है और इसमें विद्युत शक्ति भरी रहती है। यह पौधों की पत्तियों तथा कुछ अन्य अङ्गों में छोटे-छोटे कणों के रूप में मिलती है। पर्णहरित के साथ दो अन्य पदार्थ भी होते हैं जो पीले होते हैं। फिर, पर्णहरित स्वयं वस्तुतः दो प्रकार की होती है जिन्हें पर्णहरित क और पर्णहरित ख कहते हैं। पर्णहरित क की रासायनिक बनावट की जटिलता का अनुभव हम इस बात से कर सकते हैं कि नमक के एक अणु में केवल दो परमाणु होते हैं, एक सोडियम का, दूसरा क्लोरीन का। पर्णहरित क में १३३ परमाणु होते हैं। एक परमाणुओं अणुमें का ब्यौरा इस प्रकार है :—

कारबन	५५	परमाणु
हाइड्रोजन	७०	परमाणु
आक्सीजन	६	परमाणु
नाइट्रोजन	१	परमाणु
मैगनीसियम	१	परमाणु

वे कोश जिनमें पर्णहरित रहता है प्रत्येक पत्ती के भीतर विशेष क्रम से सजे रहते हैं। पत्ती की ऊपरी तथा निचली सतहों पर उनकी रक्षा के लिए विशेष कोशों से बनी त्वचा रहती है। ऊपरी सतह के पास पर्णहरित वाले कोष खूब सट-सट कर भरे रहते हैं। नीचे वाली सतह के पास वे अधिक दूर-दूर पर रहते हैं।

पत्ती के भीतर कोषों के बीच कहीं-कहीं रिक्त स्थान रहता है जिसमें हवा रहती है। स्वयं त्वचा में बहुत से नन्हे-नन्हे छिद्र रहते हैं जिन्हे रंध्र कहते हैं। प्रत्येक रंध्र दो विशेष कोशों से घिरा रहता है जिनमें पर्णहरित रहता है और जिसे संरक्षक कोष कहते हैं। त्वचा के केवल इन्हीं कोशों में पर्णहरित रहता है। इन रंध्रों द्वारा पत्ती के भीतर की हवा बाहर और बाहर की हवा भीतर आती रहती है।

हवा और पानी से चीनी

पत्तीके डंठलसे पतला, प्रायः पानीकी तरह, घोल पत्ती में जाता है जो जड़ोंमें भूमिमें से घुसता है और पौधेके तनेसे होता हुआ पत्ती तक पहुँचता है। इस घोलमें कई रासायनिक पदार्थ रहते हैं (कैलसियम, पोटैसियम, मैगनीसियम, फ़ॉसफ़ोरस, गंधक, लोहा, नाइट्रोजनके योगिक, आदि)। पौधा इन सबसे लाभ उठाता है।

पत्तीमें वायु से आया कारबन डाइऑक्साइड अपने दो अवयवों—कारबन और ऑक्सिजन—में विभक्त हो जाता है। ऑक्सिजन तो बाहर निकल जाता है, परंतु कारबन जलसे मिलकर एक प्रकारकी चीनीमें परिवर्तित हो जाता है (इस चीनीका सूत्र है $क_६ ह_{१२} ओ_६$ और इस प्रकार इसमें कारबन और जल ही रहता है)। यह

चीनी ऐंद्रिक पदार्थ है और पौधा इसे आहारके रूपमें ग्रहण कर सकता है। यही पौधों का मुख्य आहार है। इसके अतिरिक्त कारबन जड़ों द्वारा आये नाइट्रोजन आदिसे मिलकर प्रोटीन तथा कई एक अन्य पदार्थ बनाता है।
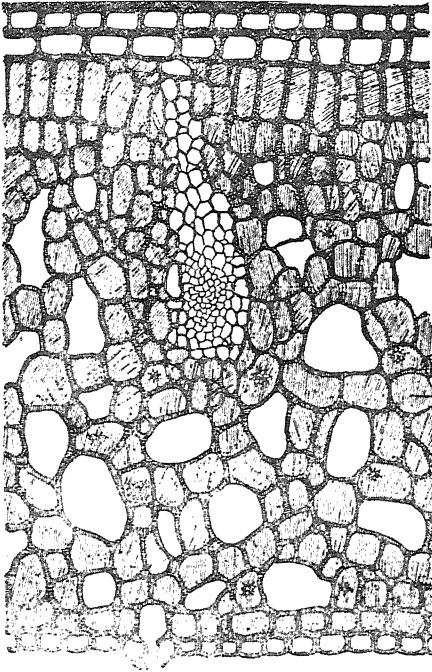
पत्ती की बनावट।

पत्तियाँ तथा पौधोंके अन्य अंग कोषोंसे बने रहते हैं। इस चित्रमें पत्तीकी काट दिखलाई गई है। ऊपर चिपटे कोषोंको दो परतें हैं। ये ही पत्तीकी त्वचा हैं। बीचमें मूँगफलीके आकारके कोष हैं। कहीं-कहीं रिक्त स्थान भी हैं। नीचेकी ओर चिपटे कोषोंकी दो परतें हैं। इनमें कहीं-कहीं ऐसे कोष भी हैं जो द्वारकी तरह खुल और बन्द हो सकते हैं। इनसे पत्ती साँस लेती है। चित्र में ऐसा एक द्वार दिखलाया गया है। × ३०० अर्थात् ३ सौ गुने पैमाने पर चित्र बना है।

कारबनका चीनी आदिमें रूपांतर पर्णहरित द्वारा होता है, परन्तु पर्णहरित अपना काम केवल धूप या प्रकाशमें कर सकता है। लोगोंने उपमा दी है कि पत्ती कारखाना है जिसमें पर्णहरितका इंजन प्रकाशकी शक्तिसे चलता है। अभी तक विज्ञानकी कोई अन्य रीति नहीं ज्ञात है जिससे खनिज पदार्थोंसे चीनी बन सके। जॉन फ़िस्केने कहा है पर्णहरित शक्तिशाली बाजीगर है जो सूर्य-रश्मियोंसे खेल किया करता है। यदि यह न होता तो प्राण और चेतना-शक्ति असंभव होती। तब जीवन का कोई रहस्य ही नहीं रहता, और न कोई दार्शनिक रहता कि उस पर विचार करे।"

एक पत्तामें करोड़ों कोश

यदि हम पूर्वोक्त बातोंको ध्यानमें रक्खें तो हम पत्ती को देखकर क्या आश्चर्यान्वित न होंगे, विशेष कर यदि हम सोचें कि एक-एक पत्तीमें कितने कोश होते हैं। यदि दस वर्षकी आयुसे कोई व्यक्ति एक आमकी पत्तीके कोशोंको एक-एक करके नोचना आरंभ करे और प्रत्येक मिनट एक कोश अलग करता जाय तो १०० वर्षकी आयु हो जानेके
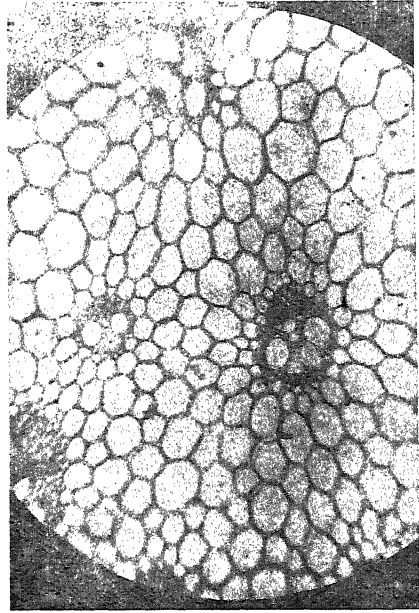
तने की बनावट।

इस चित्रमें एक पौधेके तनेकी काट दिखलाई गई है। × १०० अर्थात् सौ गुने पैमाने पर चित्र है।

पहले वह इस कार्य को समाप्त न कर पायेगा, क्योंकि एक पत्तीमें करोड़ों कोश होते हैं।

चीनीके अद्भुत कारखाने

हरी पत्तियाँ कितनी चीनी बनाती हैं यह कई बातों पर निर्भर है। बहुत कुछ तो यह पौधे की जाति पर निर्भर है और फिर पौधेके स्वास्थ्य और तगड़ेपनका भी प्रभाव पड़ता है। गन्ना खनिज पदार्थोंसे चीनी बनानेमें सिद्धहस्त है। एक प्रकारका चुकन्दर भी बहुत चीनी बना सकता है और एक समय था जब जरमनोंकी चुकन्दरसे बनी चीनी भारतवर्ष आया करती थी। मेपल नामक वृक्ष-की पत्तियाँ भी बहुत चीनी बनाती हैं। इस पेड़के रससे भी मनुष्यके खाने योग्य चीनी बन सकती है। फूलोंके मीठे रसमें भी चीनी रहती है उसको मधुमक्खियाँ बटोर कर इकट्ठा करती हैं और गाढ़ा करके उससे मधु बनाती हैं।
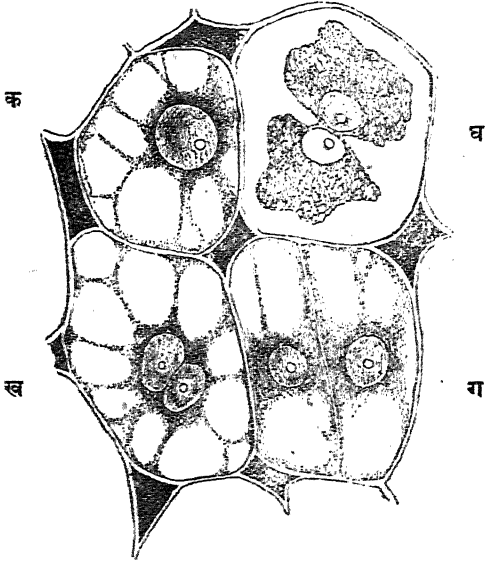
कोश-विभाजन।

क—अभी कोष एक है और बीचकी नाभि भी एक है; ख—अब नाभि दो भागों में बँट रही है, ग—नाभि बँट गई और कोषके बीचमें परदा बन रहा है; घ—जब नाभि विभाजित हो रही थी तो विशेष रासायनिक पदार्थ डाल कर कोष को निर्जीव कर दिया गया और एक कोषसे दो कोषोंका बनना सदाके लिये बन्द हो गया।
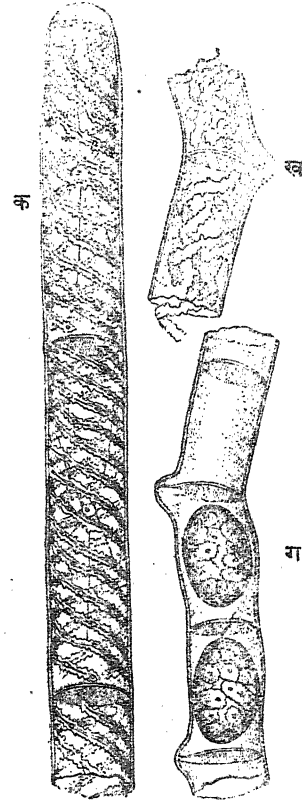
सूत की तरह हरे-हरे शैवालों की रचना।

क—सूत का छोर; ख सूत का एक स्थान अन्य किसी सूतसे मिलनेके लिए फूल रहा है; ग दो सूतोंके कोषोंके रसोंसे मिलकर बना हुआ बीज के समान पिंड। अगला चित्र देखें।

पत्तियोंमें प्रोटीन

कुछ लोग निरामिष भोजी होते हैं—वे मांस नहीं खाते। परन्तु मांसमें प्रोटीन होता है और प्रोटीन हमारे लिये अत्यंत आवश्यक है। कुशल यह है कि प्रोटीन दूधसे प्राप्त हो सकता है। परन्तु जो न मांस खाते हैं और न दूध-दही, उनको प्रोटीन दालोंसे प्राप्त होता है। चना, मटर, अरहर आदि दालोंमें काफ़ी प्रोटीन होता है। गेहूँके चोकरमें भी प्रोटीन रहता है। यह सब प्रोटीन पौधोंकी पत्तियोमें बनता है। वहाँसे वह उस स्थानमें पहुँचता है जहाँ बीज बनता रहता है। वहाँ प्रोटीन संचित होता है,

जिसका मुख्य अभिप्राय यही है कि जब बीज भूमिमें पड़े और नवीन पौधा निकले तो उसके पोषणके लिए यह प्रोटीन काममें आवे। जब मनुष्य पौधों का प्रोटीनमय भाग खाता है तो उसके पेटके पाचक रस इसे बदल कर जांतव
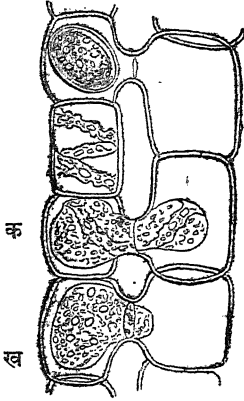
कोषविलयन

"तब दोनों सूतोंके एक या अधिक कोशोंकी बगलमें से छोटी-छोटी शाखाएँ निकल पड़ती हैं और इनके सिरे एक दूसरेको छू देते हैं। सिरेकी भीत हट जाती है। तब एक सूत के कोषमें हलचल मचती है और गैसके नन्हे नन्हे बुलबुले उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार उस कोषका रस दूसरे सूतके कोश में घुस जाता है। (क) इसके बाद दोनों कोशोंके कललरस मिलकर एक होजाते हैं (ख)।"

मांस आदि बनाने योग्य पदार्थों में परिवर्तित कर देते हैं। मांस स्वयं प्रोटीनोंसे निर्मित है।

सूर्यकी उपासना

पौधोंके लिए यह आवश्यक है कि पत्तियाँ ऐसी स्थितियोंमें रहें कि उनको उचित मात्रामें प्रकाश मिलता रहे। यह कई प्रकारसे संभव होता है। पहली बात तो यह है कि पत्तियाँ चिपटी और पतली होती हैं और इस प्रकार उनकी बहुत-सी सतह प्रकाशमें पड़ती है। फिर वे शाखाओं-के अंतके पास रहती हैं जहाँ वे प्रकाशकी आवश्यकताके अनुसार बहुत कुछ मुड़ सकती हैं। जब बसंत ऋतुमें कलियोंसे नवीन पत्तियाँ निकलती हैं तो डंठल और टहनी इस प्रकार ऐंठती और बढ़ती है कि नवीन पत्तियोंको काफ़ी प्रकाश मिले और प्रत्येक पत्ती अपना कार्य कर सके। यदि ऊपरसे देखा जाय तो पता चलेगा कि पत्तियाँ इस प्रकार छितरी रहती हैं कि प्रायः सब पत्तियोंको प्रकाश मिलता है। पत्तियोंकी ऊपरी पंक्तिमें जहाँ-जहाँ रिक्त स्थान रहता है उसीके नीचे ही दूसरी पंक्तिकी पत्तियाँ रहती हैं। कुछ पौधोंमें एक बार जब पत्तियाँ उग आती हैं तो वे अपना स्थान नहीं बदल सकतीं, परंतु कुछमें (जैसे नैसटर्शियममें) पत्तियाँ जब चाहें तब अपना स्थान बदल सकती हैं। यदि नैसटर्शियमके गमलेको घुमा कर नवीन स्थितिमें कर दिया जाय तो पत्तियाँ फिरसे ऐसी नवीन स्थितियोंमें आ जायेंगी कि उनमें से सबको अच्छी तरह प्रकाश मिल सकेगा।

पत्तियोंका स्नायुमंडल

पत्तियाँ कैसे प्रकाशकी दिशा और तेज़ीका अनुमान करती हैं और उसीके अनुसार मुड़ती हैं, इसका रहस्य
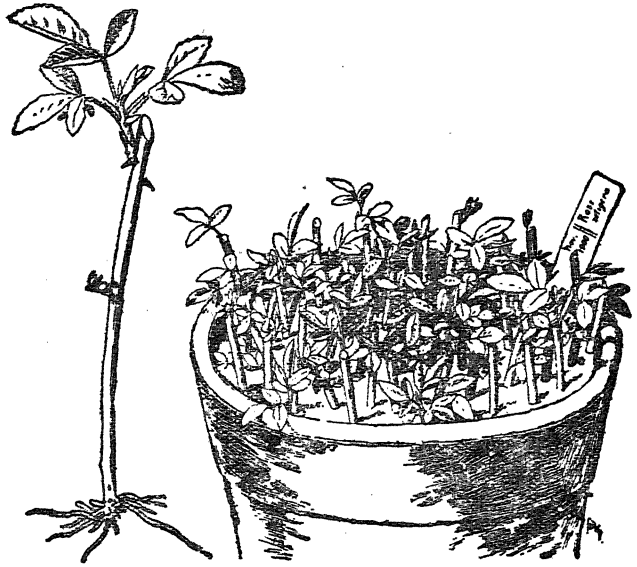
कलमसे गुलाब।
कलमसे गुलाबके पौधेका उत्पन्न होना अलैंगिक प्रजननका उदाहरण है

बहुत दिनों तक खुल ही न सका। परन्तु अब पता चला है कि पत्तीकी त्वचाके कोश फोटोके लेंज़की तरह काम करते हैं। वस्तुतः उनको फोटोके कैमरेमें लगा कर फोटो खींचा जा सकता है। ये लेंज़ कोशोंकी सामने वाली भीतों पर प्रकाश
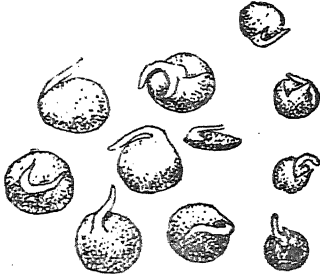
चने, मटर और मसूर में अंकुर।

चने, मटर, मसूर तथा अन्य बीजों का बनना और उनको बोने पर पौधों का उत्पन्न होना लैंगिक प्रजनन का उदाहरण है।

रश्मियोंको एकत्रित कर देती हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि कोई सूचना पत्तीसे डंठल तक आपसे-आप पहुँचती है जिसके कारण डंठल इस प्रकार घूम जाता है कि पत्तीको महत्तम प्रकाश मिले। परन्तु संभव है कि इस सम्बन्धमें हमें भविष्यमें और भी बातें ज्ञात होंगी।

पत्तियां गरम क्यों नहीं हो जातीं

सूर्यकी जितनी शक्ति पत्तियाँ एक दिनमें सोखती हैं यदि वह सब तापमें एकाएक परिणत हो जाय तो पत्ती जलकर भस्म हो जायगी। परन्तु गरमीके दिनोंमें भी धूपमें पत्तियाँ गरम नहीं होतीं। इसके मुख्य कारण तीन हैं। एक तो सूर्यकी कुछ रश्मियाँ यातो पत्तीको ऊपरी सतह से बिखर जाती हैं या पत्तीके पार चली जाती हैं। शेष रश्मियोंमें से आधी पत्तीके पानीको भापमें परिवर्तित करनेमें खर्च हो जाती हैं। एक या दो प्रतिशत चीनी बनानेमें खर्च होती हैं। इस प्रकार लगभग १८—१९ प्रतिशत रश्मियाँ बच जाती हैं और इससे पत्ती थोड़ीसी गरम हो जाती है। यह गरमी तभी काफी होती है जब उमस रहती है, अर्थात् वायुमें इतनी आर्द्रता रहती है कि पत्तीसे जलवाष्प बहुत कम निकलता है।

पीली पत्तियाँ

जब पत्तियाँ बूढ़ी हो जाती हैं और मरने पर आ जाती हैं तो पहले उनका पर्णहरित विवर्ण हो जाता है। पहले बतलाया जा चुका है कि पर्णहरितके साथ कुछ अन्य पदार्थ भी रहते हैं जिनका रंग पीला होता है। पर्णहरितके विवर्ण हो जानेके बाद इन्हीं पदार्थोंका पीला रंग पत्तियोंमें दिखलाई पड़ता है। इन्हीं कारणोंसे हमारे फसलके पौधोंका हरा डंठल भी बदलकर पीला पुआल हो जाता है।

जब पत्तियोंके झरनेका समय आता है तो पत्तीकी जड़के पास एक विशेष प्रकारके कोशों का स्तर बन जाता है। इससे वहां पर पत्ती कमज़ोर पड़ जाती है और वहांसे पत्तीमें वृक्षरस का आना बन्द या प्रायः बन्द हो जाता है। इससे पत्ती और शीघ्र मर जाती है। तब वह या तो अपने ही बोझ या हवा लगने पर या चिड़ियों या गिलहरियोंके धक्केसे गिर पड़ती है। इन विशेष कोशोंके स्तरका एक भाग उस स्थान पर रह जाता है जहां पत्ती जुड़ी थी। उसकी उपस्थितिसे क्षत (घाव) में से वृक्षरस बहकर बाहर नहीं निकलने पाता। पके फल भी इसी तरह वृक्षसे गिरते हैं। कुछ पौधों में पत्तियोंके बदले डाल-की-डाल
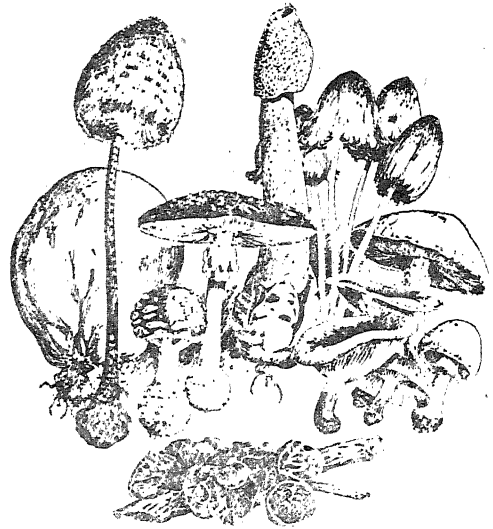
छत्रक।

छत्रक अनेक रूपके होते हैं। छत्रकको कुकुरमुत्ता, धरती फूल, भूफोड़, छत्र आदि भी कहते हैं।

इसी प्रकार वृक्षसे पृथक होकर गिर पड़ती है । इसके अतिरिक्त प्रायः सभी पौधोंमें कुछ शाखाएँ पर्याप्त प्रकाश न पानेसे मर जाती है और गिर पड़ती हैं ; परन्तु यह गिरना दूसरी प्रकार का है ।

पत्तियों की आकृतियां

हमने अब पत्तियोंके बारेमें अनेक आवश्यक बातें सीख ली हैं—वे हरी होती हैं, पतली और चिपटी होती हैं शाखाओंके बाहरी छोरके पास स्थित होती हैं और इस

भक्ष्य धरतीफूल ।

प्रकार लगी रहती हैं कि सबको प्रकाश मिलता रहे । परन्तु पत्तियां विविध आकारों की होती हैं । उनके किनारे चिकने, दाँतीदार, लहरदार, यहाँ तक की शाखायुक्त भी होते हैं। परन्तु पत्तियों की तरह दिखलाई पड़ने वाले सब अंग असली पत्तियाँ नहीं होते । फिर, कुछ पौधोंमें जहाँ साधारणतः पत्तियों को रहना चाहिए कभी प्रतान रहते हैं (प्रतान सूत की तरह वे अवयव हैं जो पास-पड़ोस की वस्तुओं पर लिपटकर पौधों को गिरनेसे बचाये रहते हैं, जैसे मटरमें), कभी काँटा, कभी आँख और कभी फूलके दल रहते हैं या कभी-कभी वहाँके अंग कोई दूसरा ही भेष धारण करते हैं ।

कुछ पौधोंकी पत्तियां ऐसी होती है कि वे किसी-न-किसी तरह कीड़े-मकोड़े पकड़ती हैं । कुछमें तो सुराही रहती है जिसमें इतनी फिसलन रहती है कि कीड़ा बैठने पर फिसल कर अंदर चला जाता है । कुछमें कांटेदार पत्तियां रहती हैं जो कीड़ेके बैठते ही इस प्रकार संकुचित हो जाती हैं कि कीड़ा उसीमें फँस जाता है । कीड़ोंके पकड़ने का चाहे कोई भी प्रबन्ध हो, इन पत्तियोंमें ऐसी ग्रंथियाँ होती हैं जिनसे कीड़े को पचाने वाले रस निकलते हैं । कीड़ेके घुल जाने पर पचे हुए माल को पौधा सोख लेता है ।

असाधारण पौधे

एक पौधेमें शाखाएँ बहुत चिपटी होती हैं और वे ही पत्तियों का काम देती है; पत्तियां स्वयं अत्यंत छोटी और निकम्मी होती है । एक दूसरे पौधेमें ऐसा जान पड़ता है मानों पत्तियोंके सिरों पर फूल लगे हों, परन्तु ये अंग वस्तुतः पत्तियां नहीं हैं, केवल शाखाएँ हैं । एक वृक्षमें पत्ती का डंठल पतला और चिपटा होता है । वही पत्ती का काम करता है, और डंठलके सिरे पर लगी पत्तियां अविकसित ही रह जाती है ।

नागफनीमें पत्तियां होती ही नहीं । इस पौधेके डंठल मोटे और रसभरे होते हैं और उन्हींमेंके पर्णहरितसे इस पौधे का काम चलता है । यह पौधा सूखे स्थानोंमें होता है। संभवतः इसीसे पत्तियां नहीं होतीं क्योंकि पत्तियोंके लिए बहुत पानी की आवश्यकता होती है ।

एक पौधेमें केवल पत्ती-ही-पत्ती दिखलाई पड़ती है । अन्य अंग इतने छोटे होते हैं कि वे नगण्य होते हैं । इसमें पत्तोंके ही किनारे पर फूल लगते हैं ।
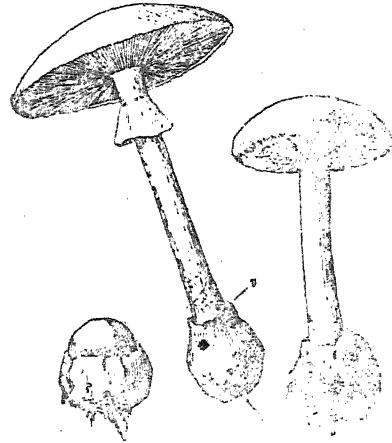
विषाक्त धरतीफूल ।

एक ऑरकिड की जड़ें ही पत्तियों का काम करती हैं । पत्तियाँ होती ही नहीं, या होती हैं तो अत्यंत सूक्ष्म ।

प्यास कैसे बुझती है

कोई भी जीवधारी, चाहे प्राणी हो चाहे पौधा, ऐसा नहीं है जो बिना पानीके अधिक समय तक जीवित रह सके ।

मनुष्य बिना पानीके कुछ ही दिन तक जी सकेगा। रेशमी और ऊनी कपड़ोंमें लगने वाली कीड़ियां बिना पानीके रहती हुई जान पड़ती हैं, परन्तु प्रोफेसर बैवकाकने प्रत्यक्ष रूपसे सिद्ध कर दिया है कि इन जन्तुओंके भीतर रासायनिक रीति-

तहखानेमें गुच्छी बोआई।
बेचनेके लिये धरतीफूलकी खेती भी होती है।
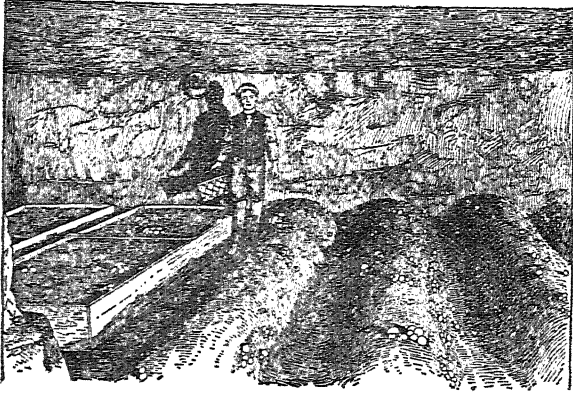
योंसे पानी बनता रहता है और उसी को वे सोख लेती हैं। कुछ बैक्टीरिया (फफूँदी की जातिके अतिसूक्ष्म पौधे) पूर्णतया सुखाये जाने पर भी कुछ समय तक जीवित रहते हैं, परन्तु वे बहुत कम ही समय तक इस प्रकार जीवित रह सकते हैं। प्राय: सभी पौधोंके बीज बहुत दिनों तक बिना बाहरसे पानी लिये जीवित रहते हैं। कमलका बीज (कमलगट्टा) दो-तीन सौ वर्ष तक साधारण सूखी अवस्थामें रह कर बोये जाने पर अंकुरित हो सकता है। इसका प्रमाण जापानी वैज्ञानिक ओहगाने हालमें ही दिया है। परन्तु सब बीजोंमें पानी का कुछ-न-कुछ अंश रहता है और उसीसे बीज जीवित रह जाता है।

पौधों को सुखानेके पहले और फिर सुखानेके बाद तौल कर सुगमतासे पता लगाया जा सकता है कि उनमें कितना पानी है। ऐसे प्रयोगोंसे पता चलता है कि पौधों का अधिकांश जल ही होता है। उदाहरणतः आलूमें तीन-चौथाई और घासमें ८० प्रतिशत जल रहता है। जल में उत्पन्न होने वाले पौधोंमें तो ९५ प्रतिशत जल रहता है। उदाहरणत: सेमके बीजमें १५ प्रतिशत जल रहता है।

जड़ोंका कार्य

सभी जानते हैं कि यदि किसी पौधेकी जड़ काट ली जाय तो पौधा सूख जायगा। इससे प्रत्यक्ष है कि जड़से ही पौधा पानी पाता है। जड़ें दो काम करती हैं। एक तो वे पौधेको पानी पहुँचाती है। दूसरे वे पौधेको भूमिसे बाँधे रहती हैं। जिस पानीको खींच कर जड़ें पत्तियोंमें पहुँचाती हैं उसीमें कुछ वे पदार्थ भी रहते हैं जिनसे पत्तियाँ पौधेका आहार बनाती हैं।

जड़ोंमें लोम होते हैं और वस्तुतः वे ही जल खींचते हैं। ये लोम नवीन जड़ों के सिरोंके पास होते हैं। इन लोमोंकी सतह छिद्रमय होती है और बाहरके पदार्थ छन कर इन लोमोंमें प्रवृष्ट हो जाते हैं। बिना घुला पदार्थ इन लोमोंमें नहीं पैठ सकता क्योंकि इन लोमोंके छिद्र अत्यंत सूक्ष्म—सोखता काग़ज़के छिद्रोंसे भी सूक्ष्म—होते हैं। इन छिद्रोंसे पौधेका पानी बाहर जा सकता है और बाहरका पानी भीतर आ सकता है। परन्तु होता यही है कि बाहरका पानी भीतर आता रहता है और बाहरके खनिज पदार्थ भीतर आते रहते हैं। इसका कारण यह है कि बाहरके पानीमें अधिक रासायनिक पदार्थ घुले रहते हैं। इस प्रकार बाहरी घोल गाढ़ा और भीतरी घोल फीका होता है। परंतु जब कभी गाढ़े और फीके घोलोंके बीच कोई झिल्ली आदिकी तरह अतिसूक्ष्म रंध्रमय परत रहती है तो गाढ़े और फीके घोल एक दूसरेमें मिलने लगते हैं। पानी आकर गाढ़े घोलमें मिल जाता है, जिसके कारण वह पहलेसे कम गाढ़ा रह जाता है। इसी प्रकार गाढ़े घोलसे
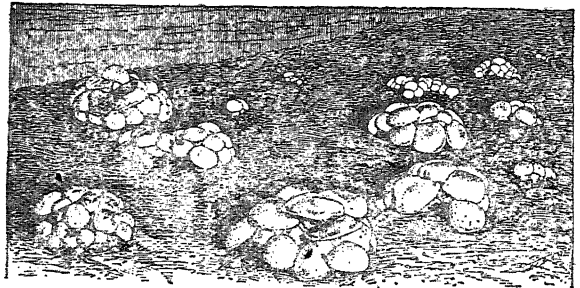
बोने पर गुच्छियों की प्रथम वृद्धि।
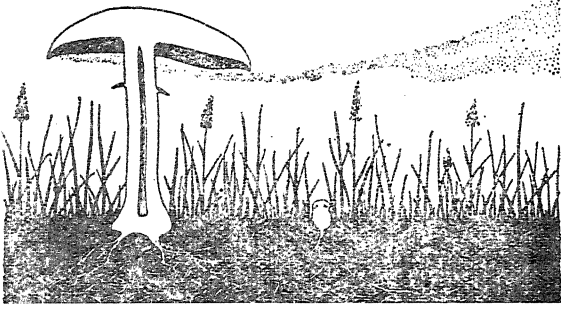
कुकुरमुत्ते के बीजाणु

छतरीके नीचे लगा सूक्ष्म काला चूर्ण वस्तुतः बीजाणु है। हवाके झोंकेमें यह दूर तक उड़ जाता है और नये-नये स्थानोंमें पहुँच कर नवीन पौधे उत्पन्न करता है। भूमिके भीतर जड़की तरह फैला हुआ अंग 'जाल' है। यह असली जड़ नहीं है; इस पौधेमें जड़ होती ही नहीं।

घुले पदार्थ फीके घोलमें घुस जाते हैं और पहलेसे वह अधिक गाढ़ा हो जाता है। इस क्रियाको निस्सरण कहते हैं। अधिक गाढ़े घोलका चाप या दबाव कुछ अधिक होता है। इस अतिरिक्त चापको निस्सरण चाप कहते हैं इसी के कारण बाहरका जल भीतर चला आता है, या यों समझा जाय कि जब बाहर वाले गाढ़े घोलके घुले पदार्थ भीतर घुसने लगते हैं तो उनके साथ कुछ जल भी भीतर घुस आता है। कुल मिलाकर जितना जल बाहर जाता है उससे अधिक ही जल भीतर घुसता है।

यह तो प्रत्यक्ष है कि पौधेसे किसी प्रकार पानी बाहर भी निकलता होगा। अन्यथा जब जड़ोंसे पानी बराबर भीतर आता रहता है तो पौधा पानीसे फूल जायगा और संभवतः फट जायगा। पत्तियोंसे बराबर पानी वाष्पके रूपमें निकलता रहता है। एक पौधासे कितना पानी इस प्रकार निकलता है यह आश्चर्य जनक है। उदाहरणतः सूरजमुखी का एक पौधा, जिसकी पत्तियोंका क्षेत्रफल (दोनों सतहों को जोड़कर) बत्तीस वर्ग फुट था प्रतिदिन लगभग सेर भर पानीका परित्याग करता था। करमकल्ला (बन्द गोभी) के खेतसे प्रति एकड़ प्रतिदिन सवासौ मन पानी पत्तियों द्वारा निकल जाता है। एक बड़े नीमके पेड़से स्वच्छ सूखे दिनमें ढाई सौ मन पानी निकल जाता होगा। इस जलका अधिकांश पत्तियोंके रंध्रोंसे बाहर आता है और उड़कर भाप हो जाता है।

जाड़े के दिनोंमें प्रातःकाल जो ओस घासपर दिखाई देती है वह ऊपरसे घास पर नहीं गिरती। वस्तुतः उसका अधिक भाग वही जल है जो पत्तियों द्वारा वाष्पके रूपमें निकला परन्तु हवाके अधिक ठंढी और आर्द्र होनेके कारण ठंढी रातमें जमकर फिर पानी होगया।

पानी ऊपर कैसे चढ़ता है

भूमिका जल जिसमें कई एक खनिज रासायनिक पदार्थ थोड़ी-थोड़ी मात्रामें घुले रहते हैं, मूल लोमोंमें निस्सरणके
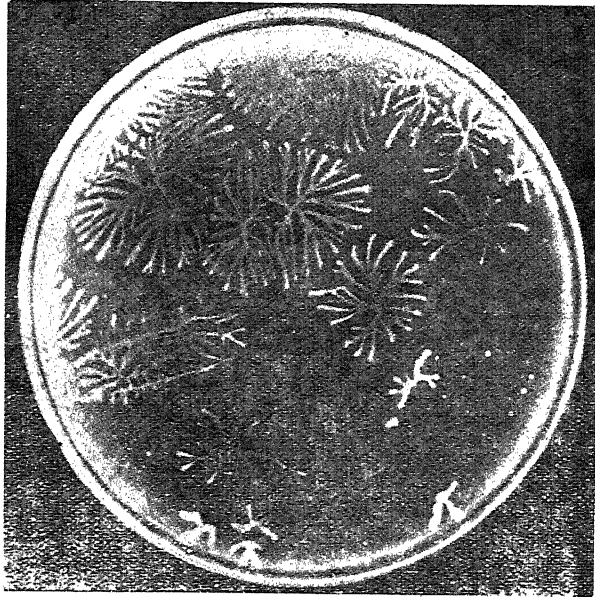
टमाटर सड़ाने वाला जीवाणु।

लोग जर्म्स और जीवाणुओंका नाम सुन कर समझते हैं कि रोग उत्पादक कीटाणु आँख, नाक, हाथ, पांव संयुक्त कीड़े होते होंगे परन्तु यह भ्रम है। वे अत्यन्त सरल जीव होते हैं और अधिकांश तो सरलतम वनस्पति होते हैं। टमाटर सड़ाने वाले दंडाणुओंको जिलेटिन पर उगा कर फोटो खींचनेसे यह चित्र प्राप्त हुआ है।

कारण घुसता है और निस्सरणके कारण ही कुछ दूरतक ऊपर जाता है। फिर यह पारी-पारीसे सब कोशोंसे होता हुआ ऊपर चढ़ता है। यह क्रिया ठीक वैसी है जैसे सोखता काग़ज़ या कपड़े के एक सिरेको पानीमें डुबाने पर पानी

एक प्रकार की खाज।

दाद तथा कई अन्य त्वचा-रोग वनस्पति-जगतके अतिसूक्ष्म सदस्योंके उगनेसे होते हैं। इस चित्र में दिखलाया गया रोग (लूपस) क्षय उत्पादक जीवाणुओंसे उत्पन्न हुआ है। ये जीवाणु वानस्पतिक हैं।

ऊपर चढ़ जाता है (सोखता और कपड़ा दोनों किसी पौधे की कोशभित्तियोंसे ही तो बने रहते है)। पौधोंके काष्ठमय भागोंमें (तनों, शाखाओं और डंठलोंमें) विशेष नलिकाएँ और नलियाँ रहती है जो पानीसे भर उठती हैं। एक सिरेसे जल वाष्प होकर उड़ता रहता है। इसलिए जल बराबर दूसरी ओरसे आता रहता है। नीचेकी ओर निस्सरण चाप की सहायता रहती है। ऊपरकी ओरसे सूखती हुई पत्तियाँ जल चूसती रहती हैं। इस प्रकार पौधोंमें जल या वृक्षरस बराबर चढ़ता रहता है। सम्भव है इसमें अन्य बलोंसे सहायता मिलती हो जिसका हमें ज्ञान नहीं है, परन्तु कुछ वैज्ञानिकों का अनुमान है कि जलके वाष्प बन जानेसे सूखती हुई पत्तियोंका चूषकबल ही इसका मुख्य कारण है।

पत्तियों द्वारा बना आहार क्या होता है

भूमि से मूल लोमों द्वारा आया घोल काष्ठ द्वारा ऊपर जाता है परन्तु पत्तियों से बना आहार (जिसमें चीनी आदि रहता है) तने के छिलके की भीतरी परतों द्वारा नीचे उतरती है। यह आहार क्रियाशील कोशों का पोषण करती हैं। क्रियाशील कोशों में से विशेष उल्लेखनीय वे आँखें या कलिकाएँ हैं जो पत्तियों की जड़ के पास पत्ती और शाखा के कोण में बनती रहती हैं। पोषण में भी बिजली का कुछ हाथ रहता है क्योंकि भूमि से सोखे गये जल, चीनी वाले रस और कोशों में वर्तमान रस के कणों में धन और ऋण बिजलियाँ रहती हैं। पता नहीं कि यह
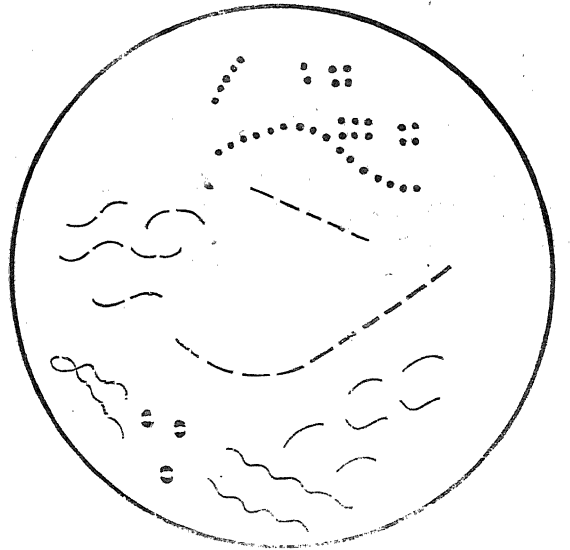
दंडाणुओं के विविध रूप।

दंडाणु गोल, लंबे और सर्पिलाकार, तीन प्रकारके होते हैं, उपदंशके दंडाणु सर्पिलाकार होते हैं, (अगला चित्र देखें)।

पोषण कार्य ठीक-ठीक किस प्रकार संपादित होता है, परन्तु आधुनिक वैज्ञानिक यही मानते हैं कि इसमें बिजली से अवश्य सहायता मिलती है।

जलन्यूनता से संघर्ष

पौधों से बराबर पानी वाष्प के रूप में निकलता रहता है। इसलिए यदि उनको यथेष्ट पानी न मिले तो बड़ी कठिनाई पड़ती है। जब पौधे को काफी पानी नहीं मिलता है तो कहा जाता है कि पौधा जलन्यूनता अनुभव कर रहा है। कुछ पौधे जलन्यूनता अधिक सुगमता से सहन कर सकते हैं। जलन्यूनता सहन करने के लिए पौधों में कई उपाय रहते हैं।

पत्तियों में अंतर। कुछ पत्तियों के ऊपर मोम-सा कुछ लगा रहता है (जैसे करमकल्ला में, जिसे पातगोभी या बंदगोभी भी कहते हैं)। कुछ पौधों की पत्तियों में ऊपरी त्वचा चमड़े की तरह कड़ी होती है जैसे ताड़ में, या नीचे की ओर (जहां ही अधिकांश रंध्र रहते हैं) रोएँ या लोम रहते हैं (जैसे कनेर में) या दोनों ओर लोम रहते हैं (जैसे सूरजमुखी में), या पत्तियाँ मुड़ कर लिपट जाती हैं और उनकी खुली सतह कम हो जाती है, जैसे कुछ घासों में, या पत्ती बहुत मोटी और गाढ़े रस से भरी रहती है, जैसे घीकुआर में, या पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं और उनमें केवल नस ही रह जाता है (जैसे चीड़ में), या पत्ती की एक ओर रंध्र होते ही नहीं (जैसे शहतूत में)।
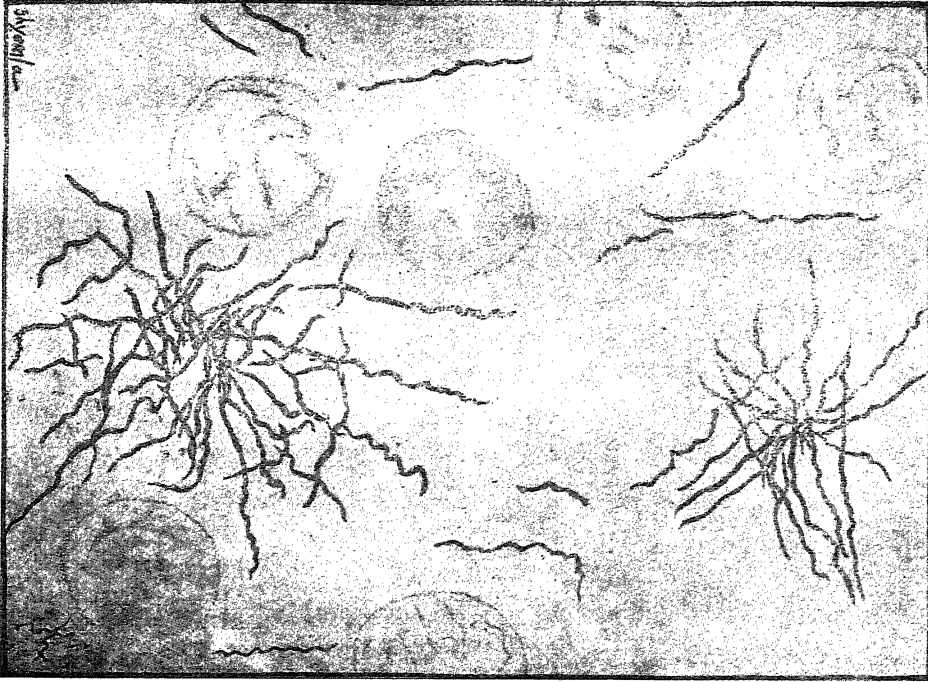
उपदंश (आतशक) के 'कीटाणु'।

आतशक या उपदंश नामक घृणित रोग वस्तुतः अतिसूक्ष्म सर्पिलाकार वानस्पतिक दंडाणुओंके कारण, अर्थात् अतिसूक्ष्म पौधोंके कारण होता है। छूत लगनेके स्थान पर ये बढ़ते जाते हैं और धीरे धीरे सारे शरीर पर अपना अधिकार जमा लेते हैं। कोई ऐसी औषधि अभी ज्ञात ही नहीं है जिससे ये पौधे मर जायँ परन्तु मनुष्य न मरे।

कॉर्क की परत। जल-वाष्प की मात्रा कम करने का दूसरा उपाय जिसका सहारा पौधे लेते हैं यह है कि उनके तनों पर कॉर्क की एक परत चढ़ी रहती है। इस प्रकार पत्तियों तक पहुँचने में वृक्ष-रस के जल का कोई अंश नष्ट नहीं होने पाता और फिर जब चीनी सहित रस पत्तियों से नीचे आता है तो उसके भी जल का कोई अंश उड़ने नहीं
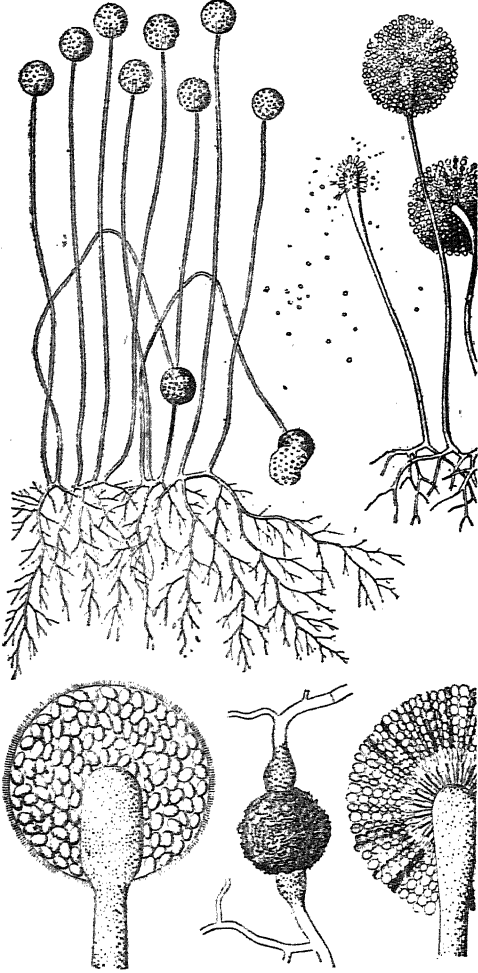
रोटी पर लगने वाली फफूँदी।

बाईं ओर ऊपरके कोनेमें रोटीपर लगनेवाली फफूँदी ४० गुने बड़े पैमानेपर; इसीका मुंड नीचे बाईं ओर, २६० गुने बड़े पैमानेपर; दाहिनी ओर एक अन्य प्रकार की फफूँदी है।

पाता। वह वृक्ष जिससे हमें कॉर्क मिलता है इस सिद्धान्त का सर्वोत्तम उदाहरण है, परन्तु सभी वृक्षों में इसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध रहता है। वृक्षों के तनों पर चढ़ी साधारण छाल एक प्रकार का कॉर्क ही है।

बिना पत्तियों के ही काम चलाना। जो पौधे बहुत सूखे स्थानों में होते हैं वे बहुधा बिना पत्तियों के रहते हैं। उदाहरणतः नागफनी, जिसकी चर्चा पहले की जा चुकी है। इसमें पत्तियां एकदम नहीं होतीं। तना नरम और रस से भरा रहता है। परन्तु तने से भी अधिक जल न निकलने पाये इस अभिप्राय से त्वचा मोटी और मोम की तरह पदार्थ से ढकी रहती है। इसके अतिरिक्त तने पर कांटे भी खूब होते हैं जिसमें कोई प्यासा जंतु आ कर उसे खा न जाय।

विस्तृत मूल संगठन। जो पौधे जलन्यूनता सहन कर
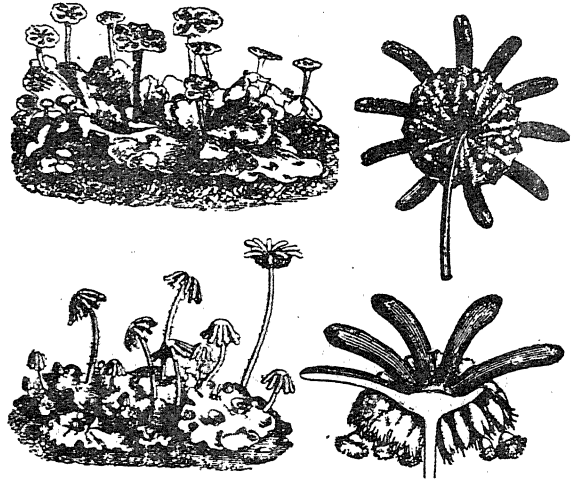
एक लिवरवर्ट

ऊपर, बाईं ओर, नर पौधा; नीचे, बाईं ओर, नारी; दाहिनी ओर, ऊपर और नीचे, नारी पौधे की जननेंद्रियाँ (गर्भाशय)। लिवरवर्ट की पत्तियाँ तथा अन्य अंग बहुत छोटे होते हैं और लोग इसे काई ही समझते हैं।

सकते हैं उनके मूल बहुधा बहुत दूर तक फैले रहते हैं। उदाहरणतः गुलाब की जड़ें बीस फुट तक नीचे चली जाती हैं। कुछ पौधों की जड़ें बहुत दूर तक अगल-बगल छितरी

फ़र्न।

फ़र्नोंकी सुन्दरताके कारण लोग इन्हें बागोंमें उगाते हैं।

रहती हैं (उदाहरणतः नीम की)। इस प्रकार ये पौधें बहुत दूर तक की भूमि से जल ग्रहण कर सकते हैं। जरमनी के डाक्टर नौबे ने गेहूँ के कई एक पौधों के मूलों की प्रत्येक शाखा को अलग-अलग नापा और जब उनका योगफल निकाला तो पता चला कि एक पौधे के मूलों की सम्मिलित लंबाई १५०० से १८०० फुट होती है। प्रोफेसर सैक्स ने कोंहड़े के मूलों की सम्मिलित लंबाई नापी तो पता चला कि वह १५ मील है! बड़े-बड़े वृक्षों के मूल तो न जाने कितनी दूर तक फैले रहते होंगे। यही कारण है कि जब ऊपर से भूमि बिलकुल सूखी जान पड़ती है तब भी ये वृक्ष हरे-भरे बने रहते हैं।

साधारणतः समझा जाता है कि जितनी दूर तक वृक्ष की शाखाएँ पहुँचती हैं उतनी दूर तक जड़ें भी जाती हैं। परन्तु कोई-कोई वृक्षों में जड़ें इससे कहीं अधिक दूर तक फैली रहती हैं। उदाहरणतः, एक प्रकार के ओक वृक्ष में जांच करने से पता चला कि केन्द्र से डालियां जितनी दूर तक पहुँची थी उसकी लगभग तिगुनी दूरी तक जड़ें पहुँची थी।

पानी भर रखना

पौधा प्रायः अपने सभी अंगों में पानी भर रखता है। जब जलन्यूनता होती है तब वह इस पानी का उपयोग करता है। उदाहरणतः, नागफनी में तने में पानी रहता है, घीकुआर में पत्तियों में; यूकालिप्टस में मूल में। कुछ प्रकार के यूकालिप्टस की जड़ों में तो इतना पानी भरा रहता है कि अनावृष्टि में वहां की जंगली जातियां इस वृक्ष की जड़ों से पानी निचोड़ कर पीती हैं। उत्तरी अमरीका के रेगिस्तानों में नागफनी का पानी भी इसी प्रकार कभी-कभी लोगों का प्राण बचा देता है। रेगिस्तान के कुछ पौधे ऐसे होते हैं जिनके तंतुओं में कई साल के लिए पानी एक-

फ़र्नके बीजाणु।
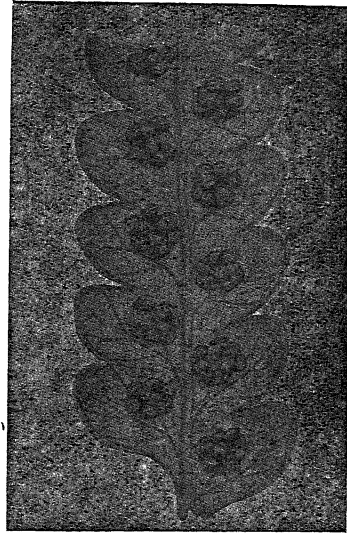
अधिकांश फ़र्नोंमें पत्तीके पीछे दाने उभड़ आते हैं जिनके फूटने पर बीजाणु हवामें उड़ने लगते हैं।

त्रित रहता है। उदाहरणतः मेक्सिकोमें होने वाले ईबर-विलियाँ एक बार पानी पा जानेके बाद छः वर्ष तक बिना पानीके अपना काम चला सकता है।

अपनी ही पत्तियों से पानी पीने वाले पौधे

एक पौधे का नाम डिशिडिया है जो अन्य पौधों पर लता की तरह चढ़ा रहता है। इसकी जड़ भूमिमें

धावक।
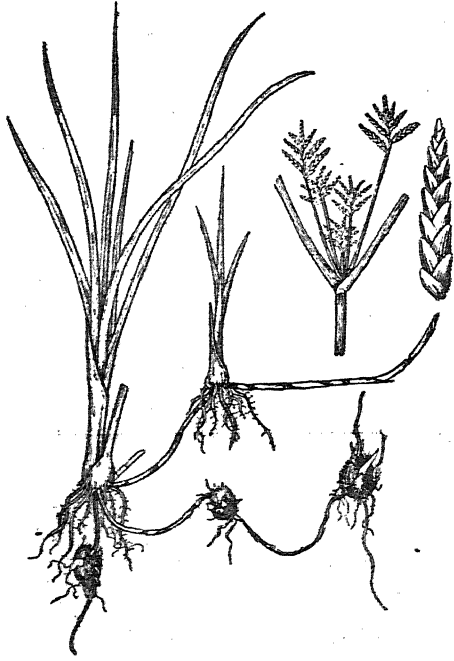
बहुतसे पौधोंमें जड़के पाससे विशेष तना निकलता है जो भूमिके भीतर-ही-भीतर रहता है। इसके छोर पर नवीन पौधे उग आते हैं। इन्हीं तनोंको धावक कहते हैं। चित्रमें मोथा नामक घासका धावक दिखलाया गया है। दाहिनी ओर ऊपर इस घासके फूलको साधारण और बड़े पैमानों पर दिखलाया गया है।

नहीं रहती। इसकी पत्तियाँ लंबे घड़ोंके आकार की होती हैं जो लगभग चार इञ्च लंबे होते हैं। इन्हींमें हवासे धूलि आदि एकत्रित हो जाती है। जब पानी बरसता है तो इन घड़ोंमें जल भर जाता है। तनोंमें से जड़ें निकल कर इन घड़ोंमें घुस जाती हैं। इस प्रकार अपनी ही पत्तियोंमें रक्खी मिट्टी और जलसे यह पौधा खाता-पीता रहता है।

बिना जड़के पौधे

कुछ ऐसे पौधे भी होते हैं जिनमें जड़ होती ही नहीं। उदाहरणतः अमरीकामें एक पौधा होता है जो देखने में काई-सा होता है. परन्तु वस्तुतः काई नहीं, अनन्नास-वंशका पौधा है। यह अन्य वृक्षोंसे लटकता रहता है। यह टेलीफोनके तार आदिसे भी लटकता रहता है। इसमें फूल भी लगते हैं परन्तु यह पौधा ऐसे ही कभी बीजसे उगता है। इसके तने टूटकर हवासे अन्यत्र जा पहुँचते हैं या उनको चिड़ियाँ उठाकर दूसरे जगह रख देती हैं और इस प्रकार पौधा नयी-नयी जगहोंमें होता रहता है। इस पौधेकी सतह पर विशेष आकारके घने चिपटे लोम होते हैं। और पौधे पर जब कभी जल या ओस गिरता है तो ये लोम उस जल की बूँदोंको रोके रहते हैं। तब जलको पौधेके कोश सोख लेते हैं।

खेतीको खर-पतवारसे हानि

जैसे जीव जंतुओंमें जीवन संघर्ष लगा रहता है ठीक उसी प्रकार वनस्पति-संसारमें भी विविध पौधोंमें संघर्ष चलता रहता है। एक ही भूमिमें उगने वाले पौधोंमें जलके लिए काफी लड़ाई झगड़ा होता रहता है और अंतमें तगड़ा पौधा दुर्बल पौधेको दबा देता है। जीवित-संसार का अकाट्य नियम है कि दुर्बल मारा जाता है। यही कारण है कि कृषक और मालियों को बराबर अपने खेतोंको निराते रहना पड़ता है अर्थात् अपने आपसे उगे व्यर्थके पौधोंको उखाड़ कर फेंकते रहना पड़ता है।
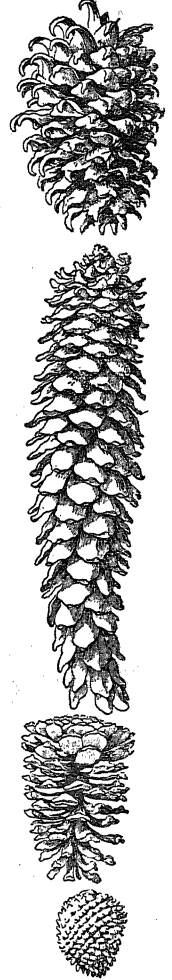
चीड़ वृक्षके नारी फूल। इन फूलोंमें शल्क होते हैं।
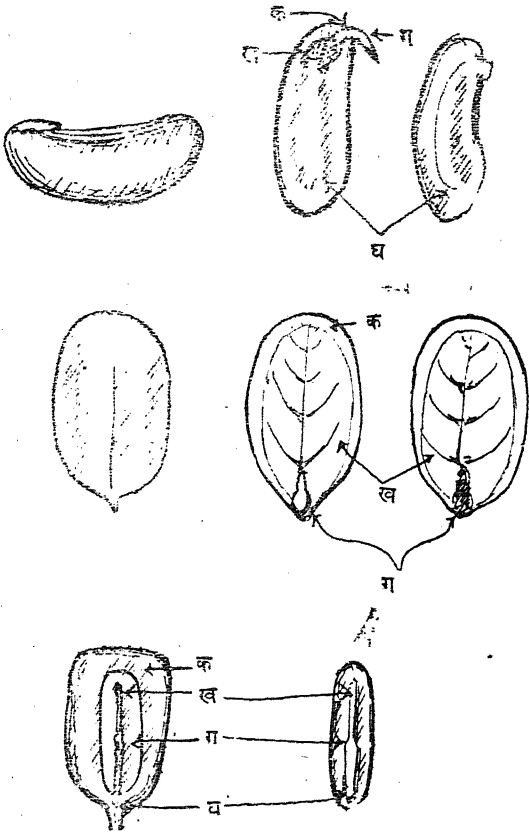
द्वदली और एकदली पौधे।

ऊपरकी पंक्तिमें अंकुरित होता हुआ सेमका बीज दिखलाया गया है; देखें कि उगते हुए पौधेमें दो पत्तियां हैं। बीचकी पंक्तिमें अरंड (रेंड़) का बीज है। इसमें दो पत्तियां हैं। नीचे मका (भुट्टा) का बीज है। इसमें केवल एक ही पत्ती है।

जैसा तुलसीदास ने कहा है "कृषी निरावहि चतुर किसाना।"

कुछ पौधों की जड़ें ऊपर ही ऊपर रहती हैं, और कुछ की जड़ें नीचे बहुत दूर तक जाती हैं। ऐसे पौधोंके साथ रहने पर इतना संघर्ष नहीं होता जितना एक चोत्रसे जल सोखने वाले पौधोंमें। यही कारण है कि किसान अकसर एक ही खेतमें दो तरहके पौधे बो सकता है। उदाहरणतः ऐक ही खेतमें कद्दू और भुट्टा बोया जाय तो विशेष हानि न होगी। भुट्टेकी जड़ें बहुत गहरी नहीं जाती। कद्दूकी जड़े बहुत गहरी जाती हैं।

खुरपियाना

पानी पौधोंके लिये इतनी आवश्यक वस्तु है कि मालियों का बहुत-सा समय पानीकी रक्षामें बीत जाता है। क्यारियों को सींचनेके बाद उनको खुरपियाते रहने से, अर्थात खुरपी से मिट्टी की ऊपरी सतह को पोली करते रहने से, दो लाभ होता है। एक तो खरपतवार (जंगली घास-पात) उगने नहीं पाता। दूसरे ऊपरकी मिट्टी पोली हो जाती है। इस लिए उसका सम्बन्ध नीचे की मिट्टीसे टूट जाता है और वह नीचेकी मिट्टीसे अधिक जल नहीं खींच सकती। फलत. इस मिट्टी द्वारा पानी वाष्प बनकर बहुत कम मात्रामें नष्ट होता है। यदि मिट्टी खुरपिआई न जाय तो जैसे-जैसे ऊपरकी मिट्टी सूखती जायगी, वह नीचे की मिट्टीसे पानी चूसती जायगी और इस प्रकार बहुत सा पानी नष्ट हो जायगा। जहां पानीकी कमी रहती है वहाँ साधारण खेतीमें भी यही काम करना पड़ता है। यूरोप आदिमें कहीं-कहीं मिट्टीको खुरपियानेके बदले उस पर पुआल या रद्दी काग़ज़की कतरन बिछा देते हैं। इससे भी भूमि सूखने नहीं पाती और पानी व्यर्थ नष्ट नहीं होने पाता।

वायव मूल

कई आरकिडोंमें पानी हवामें लटकी हुई जड़ोंसे आता है। इन जड़ोंकी ऊपरी सतह पर स्पंजकी तरहसे एक शोषक परत रहती है। यदि इस परत पर कभी भी पानी गिरता है तो जड़ उसे सोख लेती हैं और उसीसे पौधेका काम कुछ समय तक चलता रहता है।

पानीके पौधे और नमक खाकर रहने वाले पौधे

सभी जानते हैं कि कुछ पौधे पानीमें उगते हैं। वे पानीमें तैरते रहते हैं और उनकी जड़ें पानीमें लटकती रहती हैं। कुछ पौधे आर्द्र नमक पर उग सकते हैं। ये शैबाल जातिके होते हैं। समुद्रमें होने वाले शैवाल स्वयं आश्चर्यकी वस्तुएँ हैं। अन्य पौधोंकी तरह वे खारे पानीसे मर क्यों नहीं जाते? उत्तर यह है कि उनके कोशोंमें ऐसा

गाढ़ा कलायड भरा है कि वह कोशोंमें से अधिक जलको बाहर नहीं जाने देता। अन्य पौधे, जिनमें यह प्रबन्ध नहीं रहता, ऐसे खारे पानीमें शीघ्र मर जायँगे। शैवाल तो खारे पानी ही में रहता है। कुछ पौधे गरम पानीके सोतोंमें रहते हैं; कुछ बर्फ पर उगते हैं! उन सबके अंगोंमें शीत-ताप सहन करनेका प्रबन्ध रहता है।

७

एक साथ रहना

एकाकी और संघी पौधे

कुछ पौधे (जैसे नीम) सदा एकाकी होते हैं। वे एक वहाँ, एक वहाँ, मिलते हैं और बहुत ही कम अवसरों पर इकट्ठा उगते दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु अधिकांश मेलके पौधे छोटे या बड़े झुंडोंमें उगते हैं। उदाहरणतः चीड़के पेड़, घास, फर्न और कई दूसरे पौधे भी साधारणतः झुंडके-झुंड उगते हैं।

संभव है कि इस प्रकार झुंडमें उगनेसे पौधेको कोई लाभ न होता हो और इस प्रकार उगना केवल उस पौधेकी आदत हो। उदाहरणतः, एक फर्न में बहुतसे पौधे साथ ही उगे दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु वस्तुतः ये एकही जड़से निकले रहते हैं और इसलिए उन सबको एक पौधा मान लिया जा सकता है। इस पौधेके धावक* बहुत दूर तक फैलते रहते हैं और जगह-जगह पर उसमेंसे पौधे उगते रहते हैं। कहीं-कहीं तो अनेक पौधोंका साथ रहना उनके भविष्यके लिए आवश्यक है। उदाहरणतः, कुछ पौधोंमें नर पौधे अलग और नारी पौधे अलग रहते हैं। नर पौधोंका पराग नारी पौधोंके गर्भाशय तक हवा या कीड़े-मकोड़ों द्वारा पहुँचता है (उदाहरणतः खजूरमें) यदि ऐसे पौधे अलग-अलग रहें तो उसमें बीज न लग सकेगा और उनकी जाति ही लुप्त हो जायगी।

दूसरोंके आसरे रहने वाले पौधे

बहुतसे पौधोंने अपने खाने-पीनेका प्रश्न इस प्रकार हल किया है कि वे दूसरोंके साझीदार बन जाते हैं। प्रत्येक पौधा दूसरेकी सहायता करता है। उदाहरणतः लाइकेन नामके पौधोंमें वस्तुतः दो पौधे होते हैं। एक तो हरा शैवाल होता है और दूसरा एक फफूँदी। ये दोनों एक दूसरेसे खूब हिलमिलकर रहते हैं। शैवाल को फफूँदीसे जल मिलता है और शैवाल अपने पर्णहरितसे फफूँदीके लिए भी भोजन बनाताहै। कइ तरहके लाइकेन पत्थरों पर चिपके रहते हैं और केवल पत्थर पर विवर्ण धब्बेसे जान पड़ते हैं। ये लाइकेन पत्थरसे मिट्टी बनाते हैं। वे पत्थर को घुला डालते हैं और फिर, आर्द्रताके कारण वहाँ धूल आदि भी एकत्रित होती रहती है। अंतमें वहाँ इतनी मिट्टी

द्विदली और एकदली पौधोंके सुकुमार तने।

द्विदली और एकदली पौधोंकी जड़ों, तनों पत्तियों और फूलोंकी रचनाओंमें भी अन्तर होता है। चित्रमें बांई ओर एक द्विदली दाहिनी ओर एक एकदली पौधेके सुकुमार तनोंकी काटें दिखलाई गई है।

* भूमिमें या भूमिपर रहने वाले तने जिसकी छोर पर जड़ें निकल आती हैं और इस प्रकार वहाँ नवीन पौधा उत्पन्न होजाता है।

जौ।

जौ (संस्कृत में यव) एक एकदली पौधा है। ऊपर बांई ओर कच्चा और दाहिनी ओर पकने पर पुष्प समूह दिखलाया गया है। कच्चे फूल की बांई ओर बड़े पैमाने पर दो फूल अलगसे दिखलाये गये हैं। उनके नीचे जौका एक दाना है। इस दानेकी दाहिनी ओर एक ही फूलके नर और नारी अवयव बड़े पैमाने पर दिखाये गये हैं। बीच में दिखलाया गया है कि जौ का दाना कैसे अंकुरित होता है।

और खाद एकत्रित हो जाती है कि वहाँ फर्न और अन्य अधिक उच्च कोटिके पौधे उग सकते हैं।

इस साझेका एक दूसरा बहुत अच्छा उदाहरण मटर और बैक्टीरिया का है। हम देख चुके हैं कि बैक्टीरिया वस्तुतः अतिसूक्ष्म पौधे हैं। मटर को अन्य पौधों की तरह नाइट्रोजन वाले खादकी आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि हवाका बहुत-सा भाग (लगभग ८० प्रतिशत) नाइट्रोजन ही है तो भी हरे पौधे (और उन्हींमें मटर भी है) उसे अपने काममें नहीं ला सकते। परन्तु कुछ प्रकार के बैक्टीरिया वायुके नाइट्रोजनका उपयोग कर सकते हैं। जान पड़ता है कि इनमें से कुछ बैक्टीरिया अलग नहीं रह सकते, परन्तु वे मटर या मटर वंशके अन्य पौधों की जड़ों में रह सकते हैं और इसलिए मटरके साझीदार हो जाते हैं। मटर को वे नाइट्रोजन पचनशील रूपमें देते हैं और बदलेमें उनको रहनेके लिए स्थान और खानेके लिए चीनी आदि मिलती है। इन बैक्टीरियाके कारण मटरकी जड़ोंमें गाँठकी तरह दाने पड़ जाते हैं और बैक्टीरिया उन्हींमें रहते हैं।

कुछ पौधोंमें मूल-लोम नहीं होते या बहुत कम होते हैं। भूमिसे पानी खींचनेके लिए उनको फफूँदी समूहके कुछ पौधोंके आसरे रहना पड़ता है।
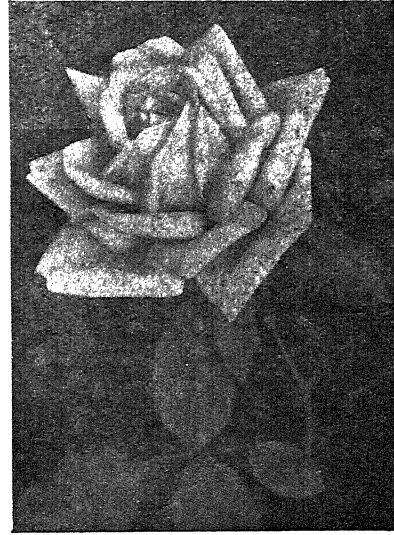
गुलाब।

गुलाब द्विदली पौधा है। बाग में बढ़िया गुलाब (जैसा इस चित्रमें है) कलमसे उगाया जाता है, परन्तु प्राकृतिक अवस्थामें जङ्गली गुलाब बीजसे उगते हैं यद्यपि बराबर कलमसे उगाये जानेके कारण बागके गुलाबोंमें बीज नहीं लग पाता, तो भी पौधेके अन्य अंगोंकी रचनासे उसका द्विदली होना सिद्ध किया जा सकता है।

पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
मटर की पत्तियाँ।
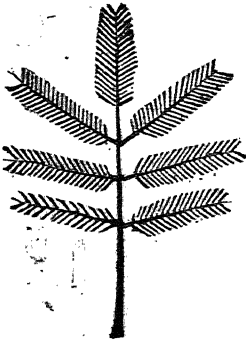
पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
बबूल की पत्तियाँ।

परोपजीवी

कभी-कभी दो पौधोंकी साझीदारीमें केवल एकको लाभ होता है। तब उस पौधेको जो लाभ उठाता है परोप जीवी कहते हैं, जिसका अर्थ है दूसरेके मत्थे रहने वाला। परोपजीविता संपूर्ण हो सकती है, जैसे अमरबेलमें, या अपूर्ण, जैसे बाँदामें। अमरबेल में बीज लगता है। जब यह बीज भूमिमें पड़ता है तो नवीन पौधे उगते हैं और ये अन्य पौधोंकी तरह बढ़ते हैं। शीघ्र उन्हें कोई दूसरा पौधा मिल जाता है। उसपर यह पौधा चढ़ जाता है, क्योंकि लता है। फिर इस में से नवीन अंग निकलते हैं जिन्हें चूषक कहते हैं। ये पालकके शरीरमें घुस जाते हैं इसके बाद यह अपने चूषकों द्वारा ही सब आहार प्राप्त करता है। अंतमें उसकी जड़ें सूख जाती हैं और तब वह पूर्णतया अपने पालकपर ही निर्भर रहता है। उसीके भरोसे वह फूलता-फलता है। उसमें पर्णहरित नहीं होता, संभव है इस लिए कि वह परोपजीवी है। उसकी पत्तियों को काम करने की क्या आवश्यकता? परन्तु यह भी सम्भव है कि उसको परोपजीबी इसलिए बनना पड़ता है कि उसमें पर्णहरित नहीं होता। कौन कह सकता है कि इन दोनोंमें कौन-सा सिद्धान्त ठीक है।

बाँदामें पर्णहरित होता है। परन्तु इतना नहीं कि वह स्वयं अपना काम चला ले।

पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
कार्न पापी की पत्तियाँ और कली।
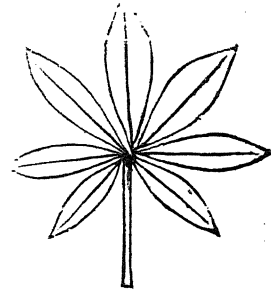
पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
सेमर की पत्ती।

रोगउत्पादक सभी फफूँदियाँ परोपजीवी होती हैं और वे अन्य पौधों या जंतुओं पर रहती हैं। उदाहरणतः, क्षय रोग एक विशेष प्रकारके बैक्टीरियाके कारण होता है। मनुष्यके रक्तमें ऐसे अंश हैं जो इन बैक्टीरियाको घेरकर मार डालनेकी चेष्टा करते हैं। इस युद्धमें या तो मनुष्यकी शारीरिक शक्तियां विजय पाती हैं और रोगी अच्छा होजाता है, या बैक्टीरिया को विजय मिलती है और मनुष्य क्षीण होते-होते एक दिन मर जाता है।

गलितजीवी

कुछ पौधे ऐसे हैं जो पौधों या जंतुओंके मरे हुए अवशेषों पर पनपते हैं। इनको गलितजीवी कहते हैं। यों तो सभी पौधे एक प्रकारसे गलितजीवी हैं क्योंकि सभी पौधों को सड़ी-गली खाद चाहिए और वह है क्या? वह अन्य पौधोंका सड़ा-गला अवशेष ही तो है। परन्तु गलितजीवी नाम उन पौधों को (विशेष कर फफूँदी समूहके पौधोंको) दिया गया है जो मरे पौधों या जंतुओंके अवशेषों को स्वयं गला-घुला डालते हैं। रोटी पर जो फफूँदी लगती है वह गलितजीवी है। कुछ गलितजीवी पौधोंमें फूल भी लगते हैं, उदाहरणतः गँठवा (इण्डियन पाइप) जो बहुधा गोबर आदिके ढेरों पर उगता हुआ दिखलाई पड़ता है।
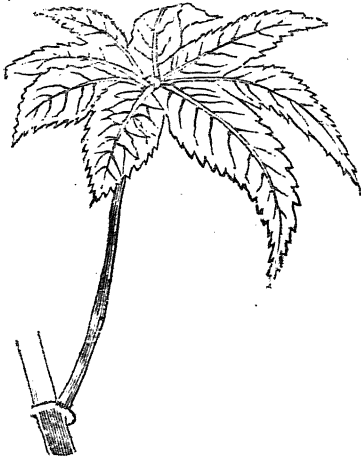
पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
एरंड (रेंड़) की पत्ती।
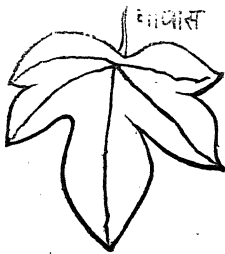
पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
कपास की पत्ती।

पत्तियाँ भाँति-भाँति की होती हैं।
अंगूर की पत्ती।

८

साँस लेना

अन्य जीवित वस्तुओंकी तरह पौधे भी साँस लेते हैं। हम देख चुके हैं कि वे खाते, पीते, बढ़ते और जनते हैं;

एक पौधा।
देखें कि पत्तियाँ इस प्रकार छितरी रहती हैं कि प्रत्येक कुछ-न-कुछ प्रकाश पा सकती हैं।

अब हम देखेंगे कि वे साँस भी लेते हैं और यदि वे साँस न ले पावें तो मर जायँगे। सांस लेनेका अर्थ है कि वे वायुका आक्सिजन लेते हैं और यह गैस उनके तंतुओंसे रासायनिक संयोग उत्पन्न करती है। इस क्रियाको तुलना रेलवे इंजनमें कोयलेके जलनेसे दी जा सकती है। जैसे इंजन को कोयलेके जलनेसे शक्ति प्राप्त होती है इसी प्रकार पौधे को इस आक्सिजन संयोगसे। कोयलेका जलना भी तो आक्सिजन-संयोग ही है। अंतर यही है कि कोयले के साथ आक्सिजन इस तीव्र गतिसे मिलता है कि बड़ी गरमी उत्पन्न होती है। पौधों और जंतुओंमें भी यही क्रिया अवश्य होती है, परन्तु इतना धीरे-धीरे कि केवल थोड़ी-सी गरमी उत्पन्न होती है। हमारे शरीरमें प्रत्येक कोशमें यह क्रिया बराबर होती रहती है; न हो तो मनुष्य मर जायगा – वह 'ठंढा' हो जायगा। इसी प्रकार पौधोंमें भी यह क्रिया बराबर होती रहती है। कुछ लोग कहते है कि पत्तियाँ पौधोंके फेफड़े हैं, परन्तु यह अनुचित है। आक्सिजन-ग्रहणका कार्य पौधेमें सर्वत्र होता रहता है। पत्तियोंको पौधोंका आमाशय (पेट) कहना अधिक उचित होगा, क्योंकि वहीं बाहरसे आया आहार पचनशील आहार में परिवर्तित होता है।

पौधेके आक्सिजन सोखने और कारबन डाइ आक्स-इड छोड़ने की क्रिया को श्वासोच्छ्वास कहते हैं। क्योंकि साँस लेनेका अर्थ होता है हवाको ज़ोरसे खींचना और छोड़ना।

बिना हवाके श्वासोच्छ्वास

कुछ पौधे, श्वासोच्छ्वासके लिए आक्सिजन हवा से नहीं लेते। उनके भीतर कुछ रासायनिक क्रियाएँ होती हैं जिनसे उनके तंतुओंको आक्सिजन मिल जाता है। उदाहर-

उट्रीकुलेरिया।
उटरीकुलेरिया स्टैलरिस नाम का पौधा जल का पौधा है। यह इलाहाबाद के पास शंकरगढ़ और सिवायतमें तथा हिन्दुस्तानमें और संसारके कई स्थानोंमें मिलता है। यह पौधा बहते पानी, तालाब, गड्ढों इत्यादिमें उत्पन्न होता है। कुछ भाग हरे फूले हुए अंडाकार थैलेके रूपके होते हैं। यह थैली वस्तुतः पानीके छोटे-छोटे कीट फांसनेके लिए होती है।
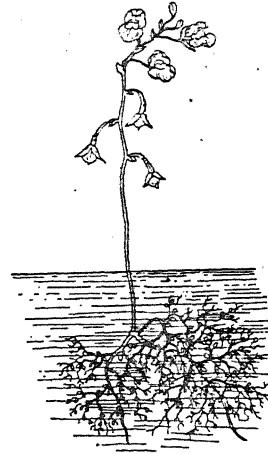
नेपेन्थीज़।

इन पौधोंके पत्तोंसे एक विशेष प्रकारका बर्तन-सा बन जाता है। उसमें कीड़े गिर जाते हैं फिर शीघ्र ही पौधा उसे हज़म कर जाता है।

णतः, मटरके बीज इस प्रकार रह सकते हैं, यद्यपि इस प्रकार वे रहते नहीं हैं। कुछ अतिसूक्ष्म पौधे बराबर इसी प्रकार श्वासोच्छ्वास क्रिया का निर्वाह करते हैं (उदाहरणतः वे जो मनुष्यके हृदयमें नासूर उत्पन्न करते हैं।

साँस लेने वाले अंग

जंतुओंके फेफड़ोंकी तरह पौधोंमें साँस लेनेके लिए कोई विशेष अंग नहीं होता। उनके तंतुओंमें वायु यों भी घुस जाता है जैसे झरोखेदार कोठरीमें वायु प्रवेश करता है। परन्तु कुछ दलदल में होने वाले पौधे ऐसे भी हैं जिन की जड़ोंको दलदल भूमिमें पर्याप्त आक्सिजन नहीं मिल पाता और वे हवामें विचित्र आकारके अंग भेजते हैं जिनसे उनकी जड़ों को यथेष्ट आक्सिजन मिल जाता है। गन्ने में भी एक अंग ऐसा होता है जिसका मुख्य काम यही जान पड़ता है कि वह पौधे को यथेष्ट आक्सिजन पहुँचा सके।

श्वासोच्छ्वास और आहार-निर्माण

बहुतसे लोग, जो वनस्पति विज्ञान अच्छी तरह नहीं जानते यही समझते हैं कि प्राणी श्वासोच्छ्वासमें आक्सिजन खींचते हैं और कारबन, डाइ आक्साइड छोड़ते हैं, और पौधोंमें इसका उल्टा होता है, अर्थात वे कारबन डाइ-आक्साइड खींचते और आक्सिजन छोड़ते हैं। परन्तु यह भ्रम है। खनिज पदार्थोंसे ऐंद्रिक आहार बनानेमें पत्तियोंसे अवश्य आक्सिजन निकलता है परन्तु यह क्रिया केवल प्रकाशमें हो सकती है। श्वासोच्छ्वासमें पौधे आक्सिजन ग्रहण करते हैं और कारबन डाइआक्साइड छोड़ते हैं चाहे प्रकाश रहे, चाहे अँधेरा। प्रकाशमें दोनों काम साथ-साथ चलता रहता है और इसमें संदेह नहीं कि आहार निर्माणमें निकले आक्सिजनका कुछ अंश तुरंत श्वासोच्छ्-वासमें खर्च होजाता है। यह भी संभव है कि प्रकाशमें श्वासोच्छ्वासमें निकले और कारबन डाइआक्साइडका कुछ अंश तुरन्त आहार बनानेके काममें खिंच जाता है।
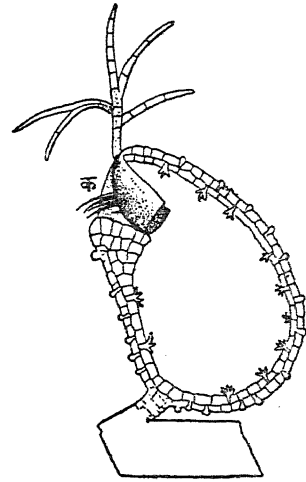
नेपेन्थीज़ की सुराही

इसमें कीड़े घुस तो जाते हैं, परन्तु निकल नहीं सकते।
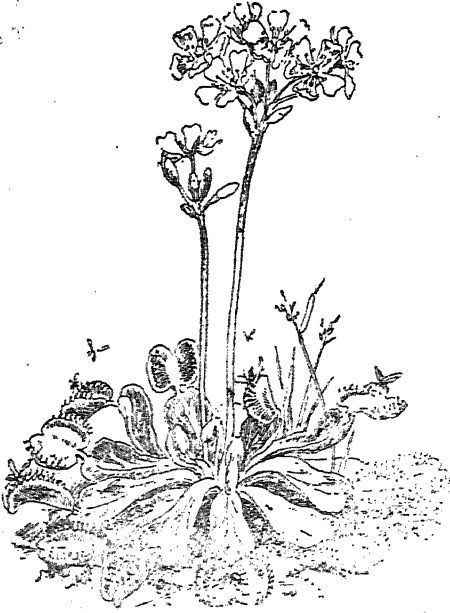
डायोनिया।

यदि कोई मक्खी इसकी पत्तीके बीचके कांटोंसे छू गई तो एकदम पत्तीके दोनों भाग बन्द हो हो जाते हैं।

तो भी, कुल मिलाकर, प्रकाशमें आक्सिजन की अधिक निकलता है।

यदि किसी अलौकिक शक्तिसे हम अति सूक्ष्म होकर पत्तीके रंध्रमें घुस सकें और हममें आक्सिजन, कारबन डाइ आक्साइड और जल-वाष्पके अणुओं को पहचाननेकी शक्ति आजाय तो हम देखेंगे कि प्रकाशमें तो आक्सिजन और कारबन डाइ-आक्साइडके अणु बराबर आते भी रहते हैं और जाते भी रहते हैं और जल वाष्पके अणु बराबर बाहर जाते रहते हैं, परन्तु रातमें कारबन डाइआक्साइड केवल बाहर जाता है। यदि हम वस्तुतः अति सूक्ष्म होजायँ तो हमें उस पत्तीके भीतर रहना अच्छा न लगेगा, क्योंकि एक तो पैर तले ऐसी फिसलन रहेगी कि हम गिरते-भहराते रहेंगे और फिर जल वाष्पके कारण ऐसी उमस रहेगी के हम बेचैन हो जायँगे!

९

फूल क्या है

पिछले अध्यायमें पौधोंके जिन कार्यों पर विचार किया गया है उनसे स्वयं पौधोंका लाभ होता है, वह बढ़ता है और मोटा होता है। परन्तु अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि पौधा अपनी संततिके लिए क्या करता है।

फूलोंमें जैसा सभी जानते हैं पँखुड़ियाँ होती हैं। ये साधारणतः चटक रंगोंकी होती हैं। पँखुड़ियों को 'दल' भी कहते हैं। सब पँखुड़ियोंके बारेमें कुछ कहना होता है तो उनको 'दलचक्र' कहते हैं। दलचक्रके बाहर छोटी-छोटी पत्तियोंकी तरह अवयव रहते हैं। जिनको 'पुट-पत्र' कहते हैं। वस्तुतः जब फूल कलीके रूपमें रहता है तो पँखुड़ियाँ इन्हीं पुटपत्रोंमें छिपी रहती हैं। सब पुटपत्रोंको एक साथ 'पुटचक्र' कहते हैं। फूलके बीचमें एक या अधिक 'गर्भकेसर' होते हैं जो साधारणतः नीचे मोटे और ऊपर पतले होते हैं। नीचेका फूला हुआ भाग 'गर्भाशय' कहलाता है। इनके भीतर एक या अधिक 'रजोविन्दु' होते
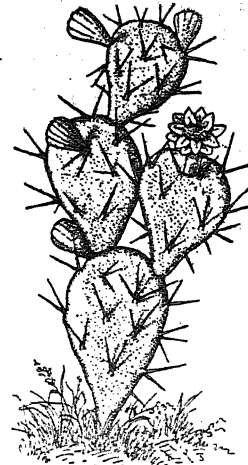
नागफनी।

नागफनीमें पत्तियाँ होती ही नहीं। चिपटे डंठलों से ही पत्तियों का काम निकलता है।

हैं। ये रजोविन्दु नन्हीं-नन्हीं गोलियों की तरह होते हैं। गर्भकेसरके ऊपरी सिरेका एक अंश चिपचिपा होता है या

आलू।

आलू अपने पौधे की जड़में कंदकी तरह लगता है। आलूमें लगभग ७५ प्रतिशत जल रहता है।

उस पर लोम होता है या वह ग्रंथिल (गांठ जैसा) होता है। इसको 'योनिछत्र' कहते हैं। पौधोंमें प्रायः सर्वत्र त्वचा रहती है। परन्तु योनिछत्र पर त्वचा नहीं रहती। अकसर गर्भाशयसे योनिछत्र कुछ दूर पर रहता है और ये दोनों पतले लंबे अंगसे सम्बन्धित रहते हैं जिसे 'योनिसूत्र' कहते हैं।

'दलचक्र' और गर्भकेसर (या गर्भकेसरों) के बीच, गर्भकेसरके चारों ओर 'पुंकेसर' होते हैं। पुंकेसरके ऊपरी भागमें डिबिया-सी होती है। उसे 'रेत-पात्र' कहते हैं। उसमें 'पराग' रहता है जो महीन धूलकी तरह होता है। प्रत्येक पराग कणमें दो 'रेताणु' हो सकते हैं।

फूलका प्रयोजन

फूलोंका काम बीज बनाना है। बीज निम्नरीतिसे बनता है —

किसी रेत-पात्रसे पराग किसी प्रकार योनिछत्र तक पहुँचता है। योनिछत्र पर पराग पड़नेको पराग-सेचन कहते हैं। योनिछत्र पर पराग अंकुरित होता है। उसमेंसे एक नलिका निकलती है जो योनिसूत्रमें से होती हुई गर्भाशयमें चली जाती है और रजोविंदुओंमें से एकके छिद्रमें घुस जाती है। इस नलिका का वह मुँह जो योनिसूत्रमें घुसता है बन्द रहता है। जब पराग-नलिका रजोविन्दुके छिद्रमें जाती है तो उसका मुँह खुल जाता है (सम्भवतः किसी पाचक रसमें घुल जाता है) और तब रेताणु परागसे निकल कर पराग नलिकासे होता हुआ रजोविन्दुके पास पहुँच जाता है। अंतमें रेताणु की नाभि रजोविन्दुके कोषमें चली जाती है और रजोविन्दुके कोषसे मिलकर दोनों एक

ताड़।

ताड़ तरह-तरहके होते हैं, जिनमें कुछ तो बहुत सुंदर होते हैं। ताड़के पत्ते चमड़े की तरह चिमड़े होते हैं, और इस प्रकार उनके भीतर का जल शीघ्र सूखने नहीं पाता।

होजाते हैं। इसी एक होनेको गर्भाधान कहते हैं। कहा जाता है कि रजोविन्दु गर्भित होगया है। अब गर्भित रजोविन्दु जिसमें पहले एक कोश था, बड़ा होकर दो कोशों में विभाजित हो जाता है। ये दो कोश चारमें विभाजित हो जाते हैं और यही क्रम जारी रहता है। अंतमें नन्हा-सा पौधा तैयार होजाता है। इसीको भ्रूण कहते हैं जब तक भ्रूण तैयार होता रहता है तब तक गर्भित रजोविन्दुके बाहरके भाग भी बढ़ते और परिपक्व होते रहते हैं। जबतक भ्रूण अपनी पूर्ण अवस्थामें पहुँचताहै तब तक रजोविन्दु बढ़कर बीज बन जाता है। इसलिये कहा जा सकता है कि बीज परिपक्व रजोविन्दु है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि गर्भाधान आदिकी क्रिया अङ्गोंके सूक्ष्म रहनेके कारण बिना सूक्ष्म दर्शकके नहीं देखी जा सकती।

फल क्या है।

ऊपर बतलाया गया है कि रजोविन्दु बढ़कर बीज बन जाता है। जब तक यह काम होता रहता है तब तक गर्भाशय भी बढ़ता रहता है। परिपक्व अवस्थामें गर्भाशय फल कहलाता है; यही बनस्पति-शास्त्र की परिभाषा है। परन्तु कुछ पौधोंमें फूलके अन्य अङ्ग बढ़कर खाने योग्य हो जाते हैं। उन्हें भी साधारण भाषामें फल कहते हैं। जैसे फूलका डंठल बढ़कर नाशपाती बनता है, इत्यादि।

कनेर।

कनेर की पत्तियाँ ऊपर चिकनी, नीचे रूखी, होती हैं।

१०

क्यों कुछ पौधे जाड़ेमें फूलते हैं, कुछ गरमी में

कुछ पौधे केवल जाड़ेमें फूलते हैं जैसे गुलदाउदी। कुछ गरमी-बरसातमें फूलते हैं जैसे गुलहजारा। क्यों? पहले समझा जाता था कि इन पौधों पर ऋतुका प्रभाव पड़ता है। परन्तु वैज्ञानिकोंने सिद्धकर दिया है कि ऋतुके अतिरिक्त प्रकाशका भी बहुत प्रभाव पड़ता है। उदाहरणतः गुलदाउदी अमरीकामें भी जाड़ोंमें फूलती है। परन्तु देखा गया कि यदि गुलदाउदीके पौधोंको प्रतिदिन केवल ७ घंटे तक प्रकाशमें रक्खा जाय, और शेष १५ घंटे तक उनको अँधेरेमें रक्खा जाय तो पौधे बीच में गरमीमें फूल सकते हैं। इसी प्रकार पाइनसेटिया, जो साधारणतः अमरीकामें अगस्तमें फूलती है बिजलीके दिन-जैसे प्रकाशमें प्रतिदिन दस घंटा रखने से जाड़ेमें भी फूल सकती है। इसी प्रकार देखा गया कि गुड़हलकी जातिका पौधा
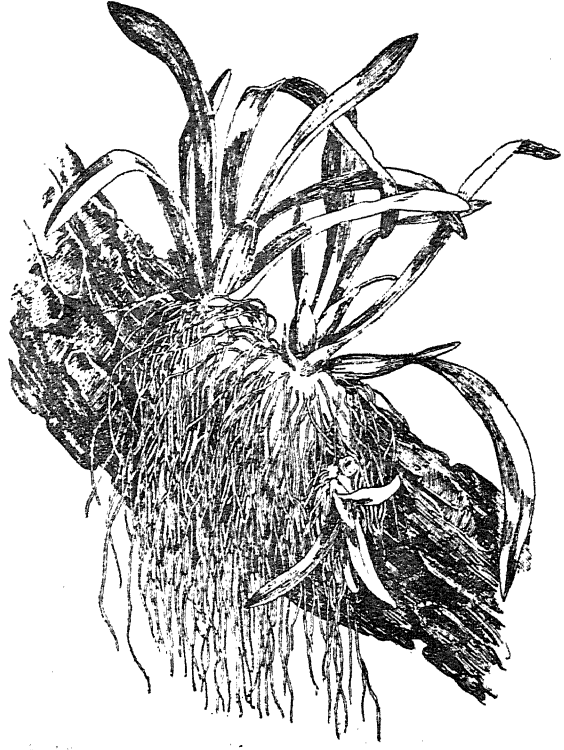
पत्तियों के भीतर जड़।

डिशिडिया नामक पौधे की पत्तियाँ घड़ेकी आकृति की होती है और उनमें पानी इकट्ठा हो जाता है। पौधे की जड़ें इन्हींमें घुसकर अपना काम चलाती हैं।

एक ऑरकिड।

बहुतसे ऑरकिडोंमें जड़ें हवामें ही लटकती रहती हैं।

जिस किसी भी ऋतुमें काफी समय तक प्रकाश पाता है फूल देने लगता है।

कुछ पौधों पर दिनके छोटे बड़े होनेका प्रभाव नहीं भी पड़ता। वे प्रायः बराबर ही फूलते रहते हैं।

यूरोप और अमरीकाके फूल बेचने वालोंने इस ज्ञानसे लाभ भी उठाया है। वहाँ धनी लोग फूलोंके बड़े शौकीन होते हैं और बेफसलके फूलोंके लिए काफी दाम देनेको तैयार रहते हैं। उनके लिए फूल बेचने वाले कृत्रिम प्रकाशसे सहायता लेकर, या पौधोंको आवश्यकतानुसार अँधेरेमें रख कर जब चाहते हैं फूल तैयार कर लेते हैं, चाहे फसल हो चाहे न हो। सब फूलोंके लिए यह बात लागू नहीं है। परन्तु कुछ फूल अवश्य इस प्रकार ऋतुके प्रतिकूल रहने पर भी तैयार किये जासकते हैं। फिर ऋतुको वशमें किया

जाता है। वहाँ फूलोंको बहुधा कोठरियोंके भीतर उगाते हैं और कोठरी को इच्छानुसार ठंढा और गरम कर लेते हैं। दिनका प्रकाश फूलोंको लग सके इस अभिप्रायसे इन घरोंकी दीवारों और छतोंमें सर्वत्र शीशा लगा रहता है। ऋतु और प्रकाश-मान दोनोंको इच्छानुसार रखकर बेफसल फूल फल उत्पन्न करने में आश्चर्यजनक सफलता मिली है।

११

फूलों के रंग

फूलोंमें रंग कहाँसे आता है, क्यों कोई फूल कई रंगों के होते हैं, कोई एक ही रंगके, और ऐसेही अन्य प्रश्नोंके उत्तर अभी ठीक-ठीक तो नहीं दिया जासकता। परन्तु इतना ज्ञात हो सका है कि जिन पौधोंमें फूल पहले भूमि के भीतर बनते हैं (जैसे कनकौआमें) उनमें फूल पहले विना किसी रंगके रहते हैं। जब फूल बाहर निकल आते हैं और उनपर प्रकाश लगता है तो उनमें रंग उत्पन्न होजाता है। रंगीन फूलोंमें नीला और लाल रंग कोशोंमें वर्तमान रस में घुला रहता है। पीला हरा और सफेद रंग घुले नहीं रहते हैं। ये छोटे-छोटे कणके रूपमें रहते हैं जो कोश -रसमें तैरते रहते हैं, ठीक उसी तरह जैसे पर्णहरित।

कुछ फूलोंमें रंग दलकी ऊपरी सतहमें ही रहता है, जैसे सेमरके फूलमें। यह बात दलकी ऊपरी सतह को छील कर प्रदर्शित की जा सकती है। बहुतसे फूलोंमें दल भीतर से बाहर तक एक रंगका रहता है।

पीला, हरा, सफेद, आदि रंगोंके मिश्रणसे एक से एक सुन्दर रंग बनते हैं और रंग बड़ी सुन्दरतासे एक दूसरेमें मिलजाते हैं। अभी तक कोई काला फूल नहीं देखा गया है परन्तु कुछ फूलोंमें रंग इतना गाढ़ा रहता है कि फूल काला ही जान पड़ता है।

कुछ फूल कई रंगके होते हैं। जैसे गुलहजारा। यह फूल सफेद, लाल, गुलाबी आदि कई रंगोंका होता है। कुछ फूल सदा एक रंगके होते हैं, जैसे सरसों। कुछ फूलोंमें एक दो विशेष रंग कभी नहीं दिखलाई पड़ता। उदाहरणत: गुलाब लाल, सफेद, पीले और इन रंगोंके मिश्रणसे बने अनेक विभिन्न रंग और रंगभेदके दिखलाई पड़ते हैं, परन्तु गुलाब नीले रंगका कभी नहीं होता और न कभी गुलाबके रंगोंमें नीले रंगका मिश्रण रहता है। कई बार वैज्ञानिकोंने चेष्टा की है कि नीले रंगका गुलाब उत्पन्न किया जाय परंतु इसमें सफलता नहीं मिल सकी है। अभी तक कोई ऐसा नील फूल वाला पौधा नहीं मिला है जिसका पराग गुलाबके गर्भाशय पर डालने से संतति उत्पन्न हो सके। कुछ गुलाब हरे होते हैं। इसका कारण यह है कि प्रकृति की किसी भूलके कारण फूलके दलोंमें पर्णहरित चला आता है और साथ ही दलोंमें रंगप्रद अवयव बढ़ नहीं पाते।

कुछ फूल पहले एक रंगके रहते हैं, पीछे दूसरे रंगके होजाते हैं। उदाहरणतः एक जातिका गुलाब पहले चटक लाल रहता है, पीछे फीका गुलाबी होजाता है। इसी तरह मालतीके फूल पहले हलका गुलाबी रहते हैं, परन्तु पराग-सेचनके बाद इनका रंग बदलकर पहले गाढ़ा गुलाबी और फिर भूरा होजाता है।

फलोंका रंग बदलता तो सबने देखा होगा। टमाटर (टोमैटो) पहले हरा रहता है, पीछे लाल होजाता है। आम पहले हरा रहता है, पकने पर पीला या लाली लिए पीला होजाता है। सेब पहले हरा रहता है, पीछे लाल हो जाता है। यदि कहीं किसी भागमें उस पर धूप न लगने पाये तो वहाँ वह हरा ही रह जाता है।

फिर, कुछ पौधोंका पत्ता हरा होता है। परन्तु यदि कहीं उसमें कोई कीड़ा अन्डा दे देता है तो वहाँ पत्ती लाल होजाती है। संभवतः वहाँ कोई रासायनिक परिवर्तन होने लगता है और वहां विशेष पाचक रस बनने लगता है।

हाइड्रैंगियाके फूल खट्टी भूमिमें गुलाबी रंगके उगते हैं, परन्तु खारी भूमिमें वे नीले रंगके रहते हैं। मिश्रित भूमिमें फूल भी लाल और नीलेके बीचके रंगके होते हैं।

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्, विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते,
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति, विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति ।। तै० उ० ।३।५।

भाग ५७ | कन्या सम्वत् २००० । सितम्बर, १६४३ | संख्या ६

पारिभाषिक शब्दावली

[गोरख प्रसाद, डी० एस-सी०]

गतांकसे आगे

सम्भव है प्रथम प्रयास पूर्णतया सन्तोषजनक न हो। परन्तु इससे डरना नहीं चाहिए। सब काम इसी प्रकार होता है; प्रथम प्रयासमें कुछ त्रुटियां रह ही जाती हैं। आगामी संस्करणोंमें ये त्रुटियां धीरे-धीरे दूर हो जाती हैं। अंग्रेज़ी, जर्मन आदि भाषाओंके वैज्ञानिक कोशोंमें भी कुछ न-कुछ इस प्रकारका परिवर्तन बराबर होता जा रहा है।

ऊपर गिनाये पाँच विषयोंके अतिरिक्त भूगर्भविद्या (geology), चिकित्सा-शास्त्र (medicine), वास्तुविद्या (engineering), उद्योग (industry), आदि विषयों के शब्दोंको भी सम्मिलित कर लेना चाहिए। काशी विश्व-विद्यालयमें इनमेंसे अधिकांश विषय पढ़ाये जाते हैं। यदि (Chambers' Technical Dictonary) (१६४०) के सब शब्द आजायँ तो अच्छी बात होगी। इसमें लगभग ४५,००० शब्द हैं।

कोश का रूप

ऊपर बतलाया जा चुका है कि पारिभाषिक कोश में क्या रहना चाहिए। अब कोशके रूपके सम्बन्धमें भी मुझे दो शब्द कहना है। कोशको विषयानुसार अलग-अलग खंडोंमें न छाप कर एक साथ ही अकारादि क्रममें छापना चाहिए। अलग-अलग छपे खंडोंमें शब्द ढूँढने में बड़ी ही असुविधा होती है। फिर, बहुत से शब्द ऐसे हैं कि वे अनेक विषयोंमें प्रयुक्त होते हैं। अलग अलग बने कोशोंमें एक ही शब्दके लिए बहुधा किसी खंडमें कोई, किसीमें कोई रूपान्तर रहता है जिससे बड़ी गड़बड़ी होती है। खंडोंमें विभाजन करनेकी पराकाष्ठा तो विज्ञान-परिषद्से छपे कोशमें दिखलायी पड़ती है, जहाँ रसायन के भी तीन खंड कर दिये गये हैं, भौतिक, कार्बनिक, और अकार्बनिक ! 'डेन्सिटी' (density) अकार्बनिक रसायनमें दिया गया है यद्यपि इसकी आवश्यकता रसायनके सभी विभागोंमें, और रसायन ही क्यों भौतिक विज्ञान, गणित आदिमें भी बराबर पड़ती रहती है।

पूर्वोक्त सभी विषयोंके शब्दोंको सम्मिलित करनेपर इस वैज्ञानिक कोशमें लगभग ७५,००० शब्द होंगे। जिस ढंगसे काफ़ी जगह छोड़कर वर्तमान वैज्ञानिक कोश छपे

हैं, उस ढंगसे ऐसे कोशमें हज़ार, डेढ हज़ार, पृष्ठ हो जायँगे परन्तु यदि कोशको खूब ठोस ढङ्गसे छापा जाय, जैसा आप्टेके इङ्गलिश-संस्कृत कोशमें किया गया है और आवश्यकतानुसार सँकरे स्तम्भ रक्खे जायँ तो सम्भवतः डेमाई अठपेजी आकारके ५००-७०० पृष्ठोंमें ही कोश समाप्त हो सकता है। अब तो आठ प्वाइन्ट का देवनागरी टाइप बराबर मिलता है। इसलिए कोश और कम पृष्ठोंमें आ सकता है। मैं समझता हूँ कि ५०० पृष्ठोंमें कोशको समाप्त करनेमें कोई कठिनाई न होगी। कोशका काग़ज़ इतना पतला भी न हो कि पन्नोंके उलटनेमें कठिनाई पड़े ('सक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर' के कुछ सस्करणोंमें यह असुविधा विशेष रूपसे खटकती है), और इतना मोटा भी न हो कि कोश बहुत मोटा हो जाय।

दूसरी बात यह है कि कोशको बहुत सस्ता होना चाहिए। कोशपर जो घाटा हो उसे प्रचारार्थ-व्यय समझा जाय। छपाई और काग़ज़ की लागतका सवाई या ड्योढ़ा मूल्य रक्खा जाय, और चुने हुए पुस्तकालयों और कालिजों में एक-एक प्रति बिना मूल्य भेज दी जाय। शिक्षकों को पुस्तक आधे मूल्यमें मिले। इन सब उपायों से यह होगा कि लोग अच्छी तरह जान जायँगे कि पारिभाषिक शब्दोंके रूपान्तर उनको कहाँ मिलेंगे। सुलभ होनेका परिणाम यह होगा कि उस कोशमें दिये गये शब्दोंका प्रचार हो जायगा। अधिक मूल्यके दुष्प्राप्य या अपूर्ण कोशोंके शब्दों का प्रचार न हो पायेगा।

यह भी आवश्यक है कि एक ही हिन्दी शब्दको दो विभिन्न पारिभाषिक अर्थों में प्रयुक्त न किया जाय। इस लिए कोश बनाते समय हिन्दी रूपान्तरोंका एक कार्ड-इंडेक्स रखना चाहिए, जिससे पता चलता रहे कि कौन-सा हिन्दी शब्द किस अंग्रेजी शब्दके लिए निर्धारित किया गया है। इस समय converse, inverse, reciprocal के लिए कोशोंमें 'व्युत्क्रम' शब्द लिखा है; फिर invariant, constant, stationary के लिए एक शब्द 'स्थिर' लिखा हैं; इससे बड़ी गड़बड़ी होती है, क्योंकि गणित में इन शब्दोंके विभाजित अर्थ हैं।

कुछ अंग्रेज़ी शब्दोंको ज्यों-का-त्यों लेना ही पड़ेगा। ऐसे शब्दोंके लिए लिंग भी सूचित कर देना चाहिए। एक ही शब्दको कोई लेखक स्त्रीलिंग मानता है, कोई पुलिंग। इससे इस समय भी असुविधा हो रही है, भविष्यमें तो और भी होगी। परन्तु लिंग-संकेतसे कहीं अधिक अच्छा होगा कि विदेशी शब्दोंके लिंग-निर्धारणके लिए ऐसे पक्के नियम बना दिये जायँ जिनके कोई अपवाद ही न हों।

'हिन्दी शब्दसागर' के वैज्ञानिक शब्दोंको चुनकर अलग कर लेना चाहिए और उनको प्रस्तावित कोशमें स्थान देना चाहिए। जिन वस्तुओं, भावों या क्रियाओंके लिए हिन्दी में पहलेसे ही नाम हैं उनके लिए नवीन शब्द गढ़ना बुद्धिमानी नहीं होगी।

—'हिन्दी-अनुशीलन" से

सूखे क्षेत्रोंके लिये बाढ़ का पानी

यदि वर्षाके कारण कुछ क्षेत्रोंमें बाढ़ आजाती है तो दूसरी ओर कुछ क्षेत्रोंमें पानी ही नहीं बरसता। इण्डियन फार्मिङ्गके नवीनतम अंकके एक लेखमें कुछ ऐसी सम्भावनाओंका पर्यवेक्षण करनेकी सिफारिश की गयी है जिससे अतिवृष्टि वाले क्षेत्रों का फालतू पानी उन सूखे क्षेत्रों में भेजा जा सके जहाँ खरीफ़की सिंचाई करने और रबी उगानेके लिए उसकी आवश्यकता है। इससे केवल कृषि सुधारमें ही सहायता नहीं मिलेगी वरन् पानीके निर्विरोध समुद्रकी ओर बहनेसे मिट्टीका कटना भी रुक जायगा जिसके कारण देशको बहुत सी प्राकृतिक सम्पत्ति बड़ी तेजीके साथ नष्ट होती जा रही है।

—भारतीय समाचार

सरल विज्ञान-सागर

अपनी योजनाके अनुसार पाठकोंके सम्मुख सरल विज्ञान-सागरके दूसरे खंडका शेष अंश उपस्थित किया जा रहा है।

पेड़-पौधोंकी अचरजभरी दुनिया गेजर महोदय की लिखी दि प्लैंट वर्ल्ड के आधार पर लिखी गयी है। डाक्टर रामकुमार सक्सेनाने इसे पढ़कर संशोधित कर दिया है और उन्हींकी कृपासे देशी पौधोंके उदाहरण दिये जा सके हैं।

१२

पराग-सेचन

पराग-सेचनकी विविध रीतियाँ

हम देख चुके हैं कि फूलोंका काम है बीज बनाना। और यह काम तभी हो सकता है जब रेत-पात्रसे पराग योनिछत्र पर पहुँचे। इस पहुँचनेकी कई रीतियाँ हैं :—

१—परसेचन अथवा परपरागसेचन, अर्थात दूसरे फूलसे पराग आना। इसके दो भेद हैं—

(क) बीजसे उत्पन्न हुए उसी जातिके किसी दूसरे पौधेसे पराग आना, जैसे नैसटर्शियममें।

(ख) दूसरी जाति या उपजातिके किसी पौधेसे पराग आना। इससे जो पौधे उगते हैं उनको संकर या संकरजात (संकर उत्पन्न हुआ) पौधा कहते हैं, और इस क्रिया को संकरता कहते हैं। संकरतासे नये तरहके पौधे आपसे आप भी उगते हैं और जान-बूझकर उगाये भी जाते हैं। गुल-दाउदी, टमाटर, ईख, गेहूँ आदि की कई नवीन उपजातियां इस प्रकार उत्पन्न की गयी हैं।

२—पिहितसेचन, अर्थात् एक ही पौधेके दो फूलोंके बीच परागसेचन (पिहित-बन्द)। एक ही पौधेके दो फूलों में से एकका पराग दूसरेके योनिछत्र पर लगे तो यह पिहित-सेचन हुआ। एक ही पौधेसे कलम आदि द्वारा उत्पन्न पौधों के बीचके पराग-सेचन को भी पिहित-सेचन कहते हैं।

३ स्वयं-सेचन, अर्थात् एक ही फूलके पराग और योनिछत्रका सम्बन्ध। कुछ फूलोंमें जैसे स्वोट-पीमें, फूल अपने ही परागसे गर्भित होते हैं। कुछ पौधोंमें दो प्रकारके फूल होते हैं, एक बड़ा और देखने योग्य, दूसरा छोटा और एक प्रकारसे छिपा हुआ, परन्तु बीज उन छोटे फूलोंमें ही लगते हैं और उनमें स्वयं-सेचन होता है। कुछ स्वयंसेची पौधोंके फूल भूमिके भीतर उगते हैं (जैसे वायलेट और कनकौआमें) और इनमें भी फूल स्वयंसेची होते हैं। कुछ पौधोंमें मंदप्रकाश या जाड़ेमें उगे फूल स्वयं-सेची होते हैं परन्तु तीव्र प्रकाश या अधिक तापक्रममें उगे फूल परसेची होते हैं। स्वयं-सेची पौधोंमें परागकी मात्रा कम होती है। उदाहरणतः, यदि मटरमें सौ पराग-कण होंगे तो गेहूँमें दस लाख। बीज बन जानेके बाद वायलेटके फूल वाले डंठल, जो पहले नीचेकी ओर झुके रहते हैं ऊपर उठ जाते हैं और पका गर्भाशय भूमिसे काफी ऊँचा उठ जाता है। तब गर्भाशय एकाएक फट जाता है और बीज दूर तक छिटक जाते हैं।

भूमिके नीचे फल

मूँगफलीका पौधा ध्यान देने योग्य है। इसके फूल
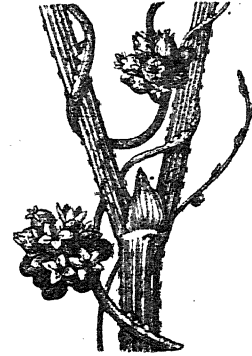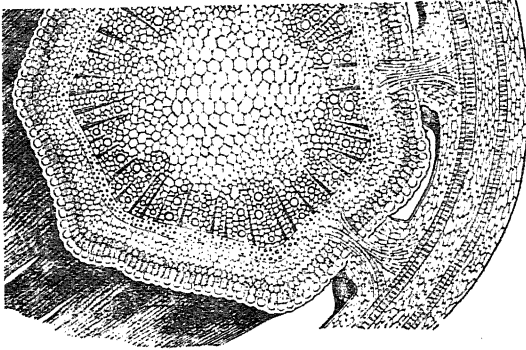
अमरबेल।

दाहिनी ओर अमरबेल का बाह्य रूप दिखलाया गया है। बायीं ओर उसे काट कर सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखने का परिणाम है। देखें किस प्रकार प्रतिपालक पौधे के भीतर अमरबेलके चूषक घुस गये हैं।

भूमिके पास ही उगते हैं। पराग सेचनके बाद गर्भाशयके पासका डंठल बढ़ने लगता है और इस प्रकार गर्भाशय जो अभी परिपक्व नहीं हुआ रहता भूमिमें चला जाता है। भूमिमें ही वह परिपक्व होता है और बाजारमें मूँगफलीके नामसे बिकता है। इस विचित्र व्यवहारके कारण इस फल का लैटिन नाम है हाइपोजिआ जिसका अर्थ है "भूमि तले वाली।"

परागो की वेगशील यात्रा

परामको शीघ्र अपने ठिकाने पहुँच जाना चाहिए अन्यथा वह मर जाता है। साधारणतः, इस काममें दो चार

गुड़हुल का फूल।
१—डंठल; २ – गर्भाशयके भीतर रजोविंदु; ३— पुटपत्र; ४ पँखुड़ी; ५ योनिसूत्र; ६—पुंकेसरके सिरे पर रेतपात्र; ७—योनिछत्र।

घंटोंसे अधिक समय नहीं लगना चाहिए। यों तो खजूर के परागमें संतति उत्पन्न करनेकी शक्ति दो से अठारह वर्ष तक रहती है, परन्तु यह असाधारण है। फिर यह भी एक बात है कि योनिछत्र कुछ ही घण्टों तक पराग ग्रहण करनेके योग्य रहता है। परागके योनिछत्र तक जानेको निम्न विधियाँ हैं:—

(१)—वायु। चीड़की तरहके सब पौधे और घास और मकई आदिके पौधे वायुसे परागसेचित होते हैं। पराग वायुसे उड़ता है और संयोगवश ही योनिछत्र पर जा गिरता है। परन्तु इस रीतिमें अवश्य ही बहुत-सा पराग इधर-उधर जा गिरता है। यही कारण है कि ऐसे पौधोंमें बहुत-सा पराग बनता है। उदाहरणतः भुट्टे (मकई) के मझोले आकारके एक पौधेमें लगभग ५,००,००,००० (पांच करोड़) पराग कण होते हैं। चीड़के एक वृक्षमें से चौबीस घंटेमें कई बालटी पराग झरता है। पराग कभी-कभी तो आश्चर्यजनक दूर तक उड़ जाता है। यह देखी हुई बात है कि चीड़का पौधा ऐसे परागसे सेचित हुआ जो कमसे कम ४०० मील दूरसे उड़ता हुआ आया था। हवाई जहाजोंसे चिपचिपी सतह वाले विशेष पत्रोंको लटका कर जांच करने से पता चला है कि पराग बहुत ऊँचे आकाश में भी उड़ा करता है।

(२) चिड़ियाँ। कुछ चिड़ियाँ (जैसे फुलसुँघी) फूलोंमें अपनी चोंच डाल-डाल कर मकरंद (फूलोंका मीठा रस) चूसा करती हैं और उनके सिरके परमें पराग लगकर एक फूलसे दूसरे फूलमें पहुँचता रहता है। उदाहरणतः, सेमरमें परागसेचन चिड़ियों द्वारा संपादित होता है।

(३) जल। जलमें होने वाले कुछ पौधोंमें पराग जल पर गिरता है और बहता हुआ अन्य पौधों तक पहुँच जाता है।

(४) मनुष्य। कभी-कभी तो सेचनका काम मनुष्यको अपने हाथ करना पड़ता है। उदाहरणतः, वैनिला एक आरकिड है। इसके फलसे एक सुगंधि निकलती है जो बहुत कामोंमें आती है और आइसक्रीममें भी डाली जाती है। यह पौधा मध्य अमरीकामें होता था। वहांसे लोग इसे जावा में ले गये। पौधे तो लग सके। परन्तु उनमें बीज नहीं बनता था। बेलजियमके प्रोफेसर मौरन ने बताया

कि कारण यह है कि मध्य अमरीकामें एक पक्षी होता है; उसीसे इन पौधोंका परागसेचन होता है। इसके अतिरिक्त वहाँकी विशेष जाति वाली मधु-मक्खियोंसे भी इनका पराग सेचन होता है। जावामें ये दोनों साधन उपलब्ध नहीं थे। उक्त प्रोफेसरने सुझाया कि यदि सेचन हाथसे किया जाय तो काम चल सकता है। पहले इस काममें अवश्य कुछ कठिनाई हुई। परन्तु पीछे तो स्त्रियाँ और बच्चे इस काममें
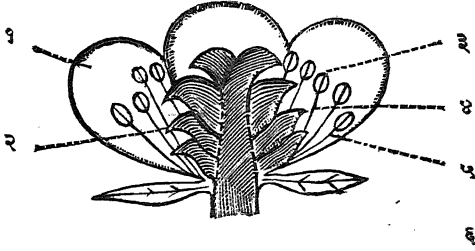
जलधनिया का फूल।
१—पंखुड़ियाँ; २ - गर्भाशय; ३—रेतपात्र; ४, ५ - पुंकेसर; ६—पुटपत्र।

इतने सिद्धहस्त हो गये कि प्रत्येक सात बजे सबेरेसे लेकर तीन बजे दिन तकमें डेढ हजार से तीन हजार पौधोंका पराग-सेचन कर सकता है। प्रत्येक फूल एक दिन खुला रहता है और सो भी सात बजे से तीन बजे तक; और उसका पराग सेचन इसी समयके भीतर होजाना चाहिए।

खजूरको भी कई देशोंमें हाथसे परागसेचित करते हैं। खजूरमें पराग एक पौधे पर होता है, गर्भाशय दूसरे पर। हाथसे परागसेचित करनेकी प्रथा कुछ नवीन नहीं है, न जाने कबसे यह चली आ रही है। क्यों नारी पौधों पर पराग लगाना चाहिए, पराग सेचनसे क्या होता है, आदि बातें तो बहुत पीछे ज्ञात हुईं, परन्तु यूनानी वनस्पति-विज्ञानवेत्ता क्रियोफ्रैस्टसने हाथसे पराग सेचित करने की उस समय की प्रचलित प्रथाका वर्णन आजसे कोई दो हजार वर्ष पहले ही किया था।

आधुनिक समयमें परागको कभी-कभी रेल आदिसे बाहर भी भेजना पड़ता है। इससे या तो वैज्ञानिक अनुसंधान किये जाते हैं या दो विचित्र स्थानोंके पौधोंसे संकरजात पौधे उत्पन्न किये जाते हैं। बहुधा संकरजात पौधोंमें विशेष गुण होते हैं। वे अधिक तगड़े और अधिक रोगमुक्त होते हैं, या उनमें बड़े फल लगते हैं या अधिक मीठे फल लगते हैं। ऐसी अवस्थामें परागको ऐसी रीतियोंसे बन्द किया जाता है कि रास्तेमें वह खराब न होने पावे।

यह न समझना चाहिए कि किसी भी पौधेमें किसी भी पौधेका पराग लगा देनेसे कोई संकरजात पौधा उत्पन्न हो जायगा। यदि दोनों पौधोंकी जातियोंमें बहुत अंतर रहेगा तो कोई बीज लगेगा ही नहीं, कोई संतति उत्पन्न ही न होगी। जिस प्रकार गदहे और घोड़ीसे नवीन जातिके 'खच्चर' उत्पन्न होते हैं, परन्तु गाय और घोड़ेकी कोई संकरजात संतति नहीं उत्पन्न हो सकती, उसी प्रकार पौधोंमें भी केवल मिलती-जुलती जातियोंसे ही संकरजात संतति उत्पन्न होती है। बहुत बेमेल जातियोंके पराग सेचनसे कुछ परिणाम नहीं निकलता।

१३

पौधे और कीट

*अधिकांश फूल जो देखनेमें भड़कीले होते हैं कीटोंसे परसेचित होते हैं। इसका कारण है। प्रायः इन सभी फूलोंमें मकरंद ग्रंथियाँ होती हैं जो दलोंकी जड़ोंके पास रहती हैं। इनसे मकरंद × निकलता है जिसमें चीनी रहती है। इसकी मिठासके कारण कीट इसे पीने या बटोरने आते हैं। मधुमक्खियाँ मकरंद भी बटोरती हैं और पराग भी। ये पराग खाती हैं। परागमें प्रोटीन होता है जो मधु

---

*मधुमक्खी, भौंरा, तितली आदिको कीट कहते हैं। कीट छोटे, बिना रीढ़के, प्राणी हैं जिनमें सर, धड़ और पेट साधारणतः स्पष्ट रूपसे अलग-अलग और केवल पतली संधियोंसे जुड़े रहते हैं। साधारणतः इन्हें कई जोड़ी टाँगें होती हैं और दो जोड़ी पंख होते हैं।

× मकरंद फूलोंके रसको कहते हैं जिन्हें मधुमक्खियाँ और भौंरे आदि चूसते हैं।

मक्खियोंके लिए पौष्टिक आहार है। भूमिमें दबे अवशेष से पता चलता हैं कि प्राचीन समयमें बड़े भड़कीले फूल वाले पौधे नहीं होते थे। जब कीटोंका विकास हुआ तो भड़कीले फूल वाले पौधोंका भी।

सम्भवतः फूल चटकीले इसी लिए हुए कि वे कीटों को अपनी ओर आकर्षित कर सकें। कई फसलों को विशेष कर फलके वृक्षों को, उस समय पानी बरस जाने से या अधिक ठंढ पड़ जानेसे बड़ी हानि होती है जब पराग बनने का दिन रहता है, क्योंकि पानी और बहुत जाड़ेमें मधुमक्खियाँ अपने छत्तोंसे बाहर नहीं निकलतीं।

अब लोगोंने अच्छी तरह समझ लिया है कि फल लगनेमें मधुमक्खियाँ कितनी सहायता करती हैं। यदि वे न रहें तो कई प्रकारके वृक्षोंमें फल लगेंगे ही नहीं, क्योंकि उनमें पराग सेचन ही न हो सकेगा। इस लिए अब यूरोप और अमरीकामें फलोंके बागोंमें मधुमक्खियाँ जान-बूझकर पाली जाती हैं। कुछ तो उनको केवल इसीलिए पालते हैं कि उनसे पराग सेचन हो सके। ये छत्तोंसे मधु निकालनेका कष्ट उठाते ही नहीं।
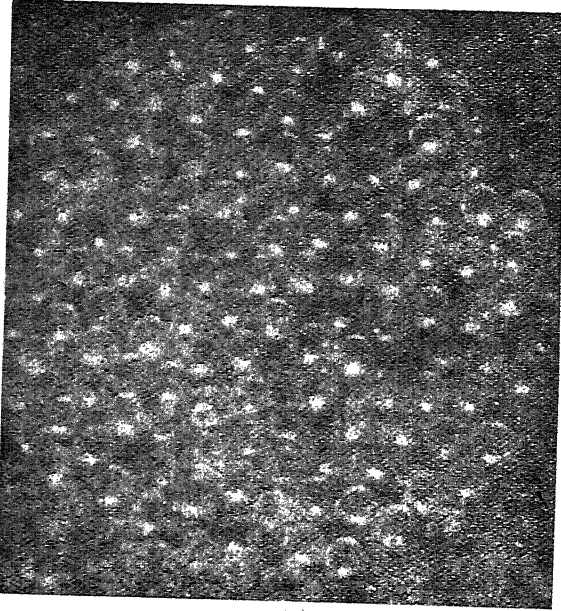
खतमी (हॉलीहॉक) के पराग कण। दस गुने बड़े पैमाने पर।

फूलों में सुगंधि

अभी तक इस विषयमें मतभेद है कि कीटोंको पौधे अपनी ओर ठीक किस प्रकार आकर्षित करते हैं; परन्तु इस बातका भी प्रमाण मिला है कि सुगन्धिसे उनको सहायता मिलती है। सुगंधियाँ उड़नशील तेलोंके कारण उत्पन्न होती हैं और ये तेल फूलोंकी विष्ठा हैं। सुगन्धित विष्ठा! परन्तु कुछ पौधोंके फूलोंमें दुर्गन्धि भी निकलती है।

गुलाबका इत्र गुलाबके फूलोंके दलोंसे निकाला जाता है। चन्दनका इत्र चन्दन की लकड़ीसे निकाला जाता है। खस का इत्र खसकी जड़में से निकाला जाता है। फूलोंसे निकली सुगन्धियाँ प्रायः सदा ही तने या जड़से निकली सुगन्धियोंसे अधिक मीठी होती हैं। वस्तुतः उसमें कई उड़नशील तैलोंका मिश्रण रहता है।

परीक्षणोंसे पता चला है कि कुछ सुगन्धियाँ पौधोंके लिए कीटाणु-नाशक औषधका काम देती हैं। कम-से-कम मनुष्य अवश्य उनसे रोगोंके कीटाणुओं को मारनेका काम लेता है। उदाहरणतः, यूकालिप्टस और लौंगके उड़नशील तेल इस प्रकार मनुष्यके काममें आते हैं। यह भी सम्भव है कि मरुभूमिके पौधोंकी गन्ध शाकाहारी पशुओंसे उनकी रक्षा करती है। उनकी तीव्र गन्धके कारण पशु उन्हें नहीं खाते। फफूँदियोंमें से एकमें पकने पर ऐसी दुर्गन्धि आती है कि वहां मक्खियाँ जा बैठती हैं क्योंकि वे समझती हैं कि यह मांस है और इस प्रकार इस पौधेके बीजाणु मक्खियों द्वारा दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं।

कुछ पौधोंके फूल बहुत ही बड़े होते हैं। एक फूलमें फूलके बीच वाली छड़ी या मूसला* तीन फुट लंबा होता है। सुमात्रामें एक फूलमें मूसला इतना मोटा होता है कि मनुष्य अपने दोनों हाथ फैलाने पर उसके घेरेके आधे को ही पकड़ पाता है। इस पौधेसे सड़े मांस की-सी दुर्गन्धि निकलती है और यह सड़ा मांस खाने वाले कीटोंसे परागसेचित होता है।

क्या फूलके रंगोंसे कीट आकर्षित होते हैं?

वर्षों से सभी मानते आये हैं कि कीट (मधुमक्खी

* यह मूसला वस्तुतः जननेन्द्रियोंका बाह्य आवरण है।

तंबाकू का फूल।
बीचमें योनिछत्र है। अगल बगल रेतपात्र हैं।

आदि) फूलोंके चटक रंगोंसे आकर्षित होते हैं। कुछ वैज्ञानिकोंने फूलोंके रंगीन होनेका यही कारण बताया है। कोई बीस वर्ष हुए यह भी पता चला कि हमारी आँखों को न दिखायी देने वाले रंग और चित्रकारी भी कीटों को दिखाई पड़ते हैं। कारण यह है कि हमारी आँखों को पराकासनी (अल्ट्रा वायलेट) रश्मियाँ नहीं दिखलाई पड़तीं, परन्तु इन रश्मियोंसे प्रकाशित वस्तुओं को कीट देख सकते हैं।

यह सब तो सही है। परन्तु जब हम इस बात पर विचार करते हैं कि पौधोंमें केवल फूल ही रंगीन नहीं होते, उनके अन्य अंग भी रंगीन हो सकते हैं, मधुमक्खियों और अन्य कीटोंकी दृष्टि बहुत तीव्र होती है; लाल, नारंगी, पीले और हरे फूल पराकासनी रश्मियोंमें चमकने वाले रंगोंसे कहीं अधिक होते हैं और कीटोंको लाल नारंगी, आदि रंग सब एक से ही जान पड़ते हैं तो संभव जान पड़ता है कि फूलोंके रंगोका कोई दूसरा कारण हो। अभी इस विषय पर अनुसंधान होरहा है।

परसेचन का परिणाम

स्वयं-सेचन पिहित-सेचन वाले पौधों की अपेक्षा पर-सेचन वाले पौधोंमें साधारणतः अधिक बड़े फल लगते हैं। कई पौधोंमें हाथसे पर-सेचन करके वैज्ञानिक आश्चर्य जनक बड़े फल उत्पन्न कर सके हैं।

इसके अतिरिक्त पर-सेचनसे पौधोंमें नवीन गुण उत्पन्न किये जा सकते हैं। सभी जानते हैं कि पौधोंका गुण-दोष अपने माता-पिता से मिलता है, इन गुण-दोषोंका मूल कारण रजोविन्दु और रेताणुमें रहने वाले कुछ विशेष पिंडों में रहता है जिन्हें रंगाणु कहते हैं। संकरजात पौधोंमें नवीन पिताका रंगाणु आता है।

उस रंगाणु और माताके रंगाणुमें साधारणसे विभिन्न प्रतिक्रिया होती है और इसका परिणाम यह होता है कि नवीन पौधेमें नवीन गुण-दोष रहते हैं। मनुष्योंमें भी बच्चोंको देखकर कोई कहता है कि इसे तो आँखें अपनी मांसे मिली हैं, या नाक आजीसे मिली हैं। इसी प्रकार पौधोंमें कुछ गुण ज्यों-के-त्यों उनके पूर्वजोंसे मिल जाते हैं। यदि संकरजात पौधेको अच्छे-अच्छे गुण मिल जायें तो वह बहुत उपयोगी नवीन पौधा होगा। जिनमें दोषोंकी ही मात्रा अधिक होगी उनका परि-त्याग कर दिया जायगा।

प्रकृतिमें बराबर पर-सेचन होते रहने के कारण बीजसे उत्पन्न पौधोंमें बड़ी विभिन्नता रहती है। बीजसे उत्पन्न आमोंमें से संभवतः किसी दो में ठीक एक ही प्रकारके गुण नहीं रहते, परन्तु कलमसे लगाये आमोंमें वही गुण प्रत्येक पौधेमें आ सकता है।

अच्छे माँ-बापके अतिरिक्त अच्छा आहार और अच्छी सेवा भी मिलनी चाहिए। साधारणतः बड़े फल देने वाले भी पौधे कुसेवासे छोटे फल देने लगते हैं परन्तु चाहे कितनी सेवा की जाय एक सीमासे अधिक बड़े फल नहीं मिल पाते। पर-सेचन से नवीन जाति उत्पन्न करके ही अधिक बड़े फल उत्पन्न किये जा सकते हैं। यह 'सुप्रजनन विज्ञान' है जिसकी चर्चा एक आगामी अध्यायमें की जायगी।

१४

बीजों का बिखरना

पौधे अपनी जाति को जीवित रखने का प्रश्न आवश्यकतासे कहीं अधिक बीज उत्पन्न करके हल करते हैं। वस्तुतः वे इतना बीज उत्पन्न करते हैं कि सब बीजोंसे नये पौधे उत्पन्न नहीं हो सकते। पृथ्वी पर इतनी भूमि ही न मिलेगी। जब ये बीज बिखरते हैं तो पौधे ऐसा प्रबन्ध नहीं कर पाते कि वे उपजाऊ भूमि पर ही पड़ें। कुछ तो अच्छी भूमि पर पड़ते हैं और नये पौधे उत्पन्न करते हैं। कुछ प्रतिकूल अवस्थाओंमें पड़कर सड़-गल जाते हैं। बीजोंके बिखरने के साधन अनेक हैं और वे रीतियां जिनसे पौधे अपने बीजों को बिखेरते हैं प्रायः अनगिनती हैं। केवल इसी एक विषय पर कई पुस्तकें लिखी गयी हैं।

बीज बिखेरने के अनेक साधनोंमें से एक तो यह है कि कई फल साधारणतः गोल होते हैं (उदाहरणतः अखरोट आदि)। जब ऐसे फल पृथ्वी पर गिरते हैं तो वे बहुधा ढुलक कर कुछ दूर चले जाते हैं और इस प्रकार वे बहुधा ऐसे स्थान में जा पहुँचते हैं जहाँ हवा, पानी, धूप आदि की इतनी कमी नहीं रहती जितना जन्म देने वाले वृक्षके ठीक नीचे। इस प्रकार उनके बीजसे पौधेके उगने और तगड़े रहने की सम्भावना बढ़ जाती है। नवीन पौधा किसी समय स्वयं बीज उत्पन्न करेगा और इस प्रकार उस जातिके पौधों का अस्तित्व बना रहेगा।

बीजका चटक रंग (जैसे घुमची का), या फलका चटक रङ्ग (जैसे टमाटर, पीपल, अमरूद आदि का) पक्षियों को आकर्षित करता है। चिड़ियाँ जब फलों को खाती हैं तो कुछ बीज उनके पेटोंमें समूचा ही चला जाता है और अपच होनेके कारण विष्ठाके साथ समूचा ही निकल आता है, परन्तु साधारणतः कहीं नयी जगह गिरता है और इस प्रकार नये पौधे को धूप आदिकी कमी नहीं होने पाती।

'क्या खूब!' डारविनने सर जोज़फ़ हुकर को एक बार लिखा, 'एक बीज जो एक उल्लू (पक्षी) के पेटमें २१½
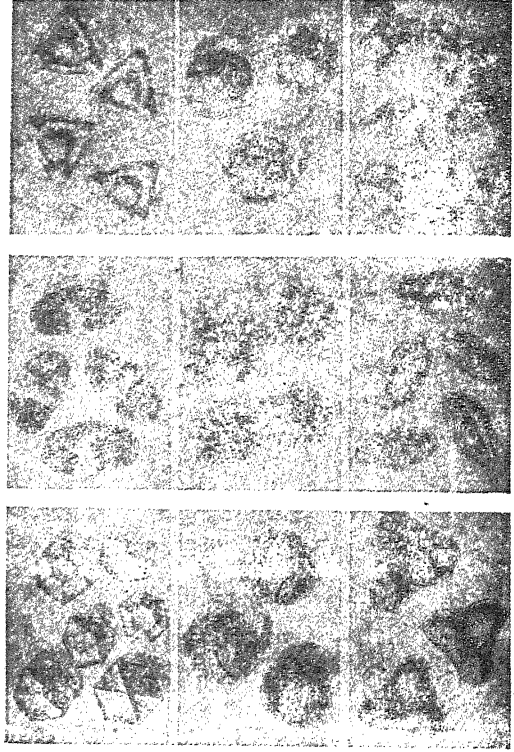
फूलोंके पराग कण।
देखिये ये कैसे सुन्दर और विविध आकार के हैं।

घण्टे तक पड़ा था, अभी-अभी अंकुरित हुआ है। उल्लू न जाने उसे कितनी दूरीसे लाया होगा, परन्तु मैं सोचता हूँ कि वह आँधीके कारण इतने समय में ४०० या ५०० मील चला आया हो तो कोई अचरज नहीं।"

कुछ पौधोंके बीज या फल चिपचिपे होते हैं, जैसे बाँदा के और कुछके कँटीले होते हैं, जैसे और कई जङ्गली घास पातके। ये बीज आस-पास विचरने वाले जन्तुओंके शरीरमें लिपट जाते हैं और इस प्रकार दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं। एक वैज्ञानिक का अनुभव है कि जितने भी फूल वाले पौधे हैं उनमें से लगभग दस प्रतिशतमें बीज या तो फलके गूदेके साथ, या अपने काँटे या चिपचिपाहटके कारण बिखरते हैं।

पानीमें बिना नरम हुए ही तैर सकने के कारण कुछ

बीज बहुत दूर-दूर तक बिना सड़े चले हैं। कई कुमुदि-नियोंमें बीज साधारणतः इसी प्रकार बिखरता है। वस्तुतः इस रीतिसे बहुत अधिक बीज बिखरते हैं। दो वैज्ञानिक एक नहरके किनारे बैठकर अनुमान करते रहे। उन्होंने देखा कि बारह फुट चौड़ी नहरमें, जिसमें पानी एक फुट प्रति सेकंडके वेगसे बह रहा था, चौबीस घण्टेमें नब्बे लाख बीज उतराते हुए निकल गये।

बीजोंने हवामें उड़ने का प्रश्न मनुष्योंसे युगों पहले ही हल कर लिया था। बहुतसे बीजों या फलोंमें पंख लगे रहते हैं जिससे वे हवाके कारण बहुत दूर जा गिरते हैं। कभी कभी तो वे आश्चर्यजनक दूरी तक पहुँच जाते हैं। चीड़-के पौधोंमें ऐसे ही बीज होते हैं। सिरिसकी फली भी इसी प्रकार बहुत दूर दूर तक जा पहुँचती है।

कई बीजोंमें अत्यन्त महीन और लम्बे लोम होते हैं जिनके कारण बीज हवाके झोकोंमें सुगमतासे उड़ता रहता है (उदाहरणतः मदार में)। सेमल और रुईके बीज भी प्राकृतिक अवस्थामें इसी प्रकार बिखरते हैं। रुईमें तो बीजोंमें लगे लोम इतने अधिक होते हैं कि हम उस पौधेको बोते हैं और इस लोम को कातते और बुनते हैं। इस प्रकार हमको सूती कपड़ा मिलता है।

ऑरकिडोंने अपनी जाति-रक्षाका प्रश्न दूसरी तरह से हल किया है। उनके बीज धूल की तरह बहुत सूक्ष्म होते हैं और करोड़ों की संख्यामें निकलते हैं। बहुत छोटे होने के कारण वे स्वयं, बिना किसी लोम के, धूल की तरह उड़ते रहते हैं।

एक पौधेके बीजो की संख्या

एक पौधेसे कितना बीज उत्पन्न होता है इस पर शीघ्र विश्वास नहीं होता। ऑरकिडों में इनकी संख्या करोड़ों तक पहुँच जाती है। डारविनने बतलाया कि एक पौधे—लैटिन नाम ऑरकिस मैकुलाटा—में एक-एक पौधेमें लगभग दो लाख बीज रहते हैं। स्कॉटने बतलाया कि ऐक्रोपेरा नामक ऑरकिडोंमें प्रत्येक पौधेमें लगभग साढ़े सात करोड़ बीज होते हैं। गणनासे पता चलता है कि एक ऑर-किडकी संततिकी दूसरी पीढ़ीके भी सदस्य उगने पावें और सभी जीवित रहें तो सारी पृथ्वी इनसे ही ढक जायगी। ऑरकिडके बीज इतने नन्हें होते हैं कि एक माशामें एक लाख बीज तक चढ़ सकते हैं। सूक्ष्म खोजोंसे पता चला है कि कुछ बीज हवामें उड़ते हुए ९०० मील तक पहुँच गये हैं (पोर्चुगलसे ऐज़ोर्स तक)। अवश्य, रास्तेमें लाखों बीज नष्ट भी होजाते हैं।

कुछ पौधे अपने बीजों को बलात दूर फेंकते हैं। वाय-लेट फूलकी बात पहले बतलाई जा चुकी है। गुलहज़ारा की ढोंढी (या डोंड़ी) को सबने देखा होगा। ज़रा-सा हाथ लगते ही वे ज़ोरसे टूटती हैं और बीज इधर-उधर छिटक जाते हैं। यदि उनको कोई छूए भी नहीं तो परि-पक्व हो जाने पर वे आप-से-आप फूटते हैं और बीजों को कुछ दूर तक बिखेर देते हैं। कारण यह है कि ढोंढीकी तंतुएँ उगते ही समय ऐसी खिंचती रहती हैं कि जरा भी छू जाने पर वे फट जाती हैं, और ढोंढीकी दीवार इस प्रकार मुड़ती और ऐंठती है कि बीज छिटक जाते हैं। एक जातिके खीरेमें ज्योंही फल पककर गिरता है त्योंही डंठल-के टूटनेसे बने छेद द्वारा बीज इतने जोरसे निकल पड़ते हैं, जैसे कोई पिचकारी मारे, और कुछ दूर पर जाकर गिरते हैं।

मनुष्य द्वारा बीज-वितरण

मनुष्यने सदासे ही बीजों को दूर-दूर तक पहुँचानेमें प्रमुख भाग लिया है। प्राचीन कालमें भी बड़े-बड़े यात्री
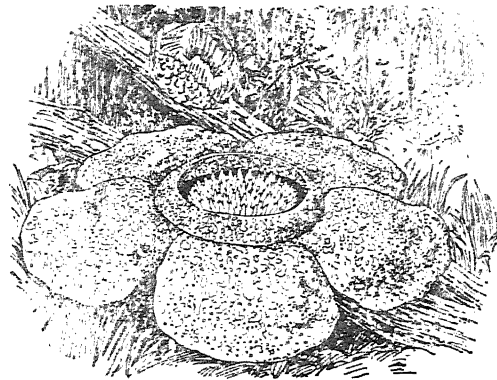
संसार का सबसे बड़ा फूल।

यह सुमात्रामें होता है। इसके व्यास की नाप सवा गज़ और इसकी तौल १२ सेर होती है। इसका लैटिन नाम है रफ़्लेसिया अरनोल्डी

हुए हैं जो दूर-दूर के देशोंसे अपने देशमें बीज लेगये हैं। इसी लिए बहुधा अब पता नहीं चलता कि कोई विशेष पौधा किस देशमें सबसे पहले होता था।

आलू, मूँगफली, भड़भाड़, और अन्य कई पौधे भारतवर्षमें विदेशसे आये हैं।

बीज-वितरणसे मनुष्यको हानि

खेत और बागमें बहुतसे पौधे ऐसे होते हैं जिनको कोई उगाना नहीं चाहता। निराते समय उनको बार बार खोदकर फेंक दिया जाता है, परन्तु वे उगते ही रहते हैं। इनको लोग खर-पतवार कहते हैं। इन खर-पतवारों के
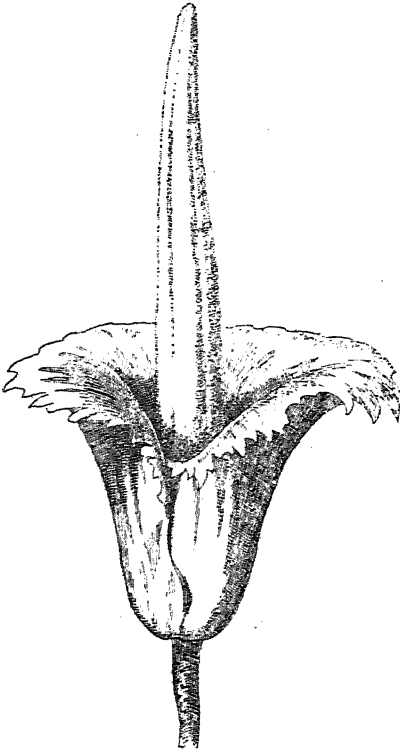
दैत्याकार फूल।

इस फूल का व्यास एक गज़ और मूसले की लंबाई ६ फुट होतो है। यह पश्चिमी सुमात्रामें होता है। इसका लैटिन नाम है ऐमॉरफ़ैलस टाइटेनम। मूसलेके भीतर फूलके जननेंद्रिय रहते हैं।

बार-बार उगते रहने का कारण यह है कि वे बहुत शीघ्र उगते हैं, और बहुत शीघ्र उनमें बीज लगता तथा परिपक्व होता है। वे तगड़े होते हैं और इसलिए प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी पनप सकते हैं। भूमिमें पड़ने के बाद उसके बीज बहुत शीघ्र अंकुरित भी होते हैं। जब तक गेहूँ आदि की एक फसल तैयार होगी तब तक इनकी दो या तीन पीढ़ी हो चुकेगी। फिर, बीज भी वे प्रचुर मात्रामें उत्पन्न करते हैं। यही कारण है कि वे हमको इतना कष्ट देते हैं। सावधानीसे निराने पर भी कुछ पौधे छूट ही जाते हैं। सारे खेतमें फैलने के लिए बस इतना ही पर्याप्त है।

विदेशी शत्रु

कभी-कभी किसी विदेशी जंगली खर-पतवारके बीज आ पहुँचते हैं और उनसे भी पौधे शीघ्र फैल जाते हैं। उदाहरणतः; अमरीकामें यूरोपसे डंडिलायन नामक पौधा पहुँचा तो प्रायः सभी जगह होने लगा और बहुत उपाय करने पर भो वहाँ से नहीं मिटाया जा सका। यह पौधा बागोंमें लगायी गयी हरियालियों (लानों) में होता है, जड़ बहुत नीचे तक चली जाती है। लॉनमोअरसे घास काटते समय इसकी पत्तियाँ नहीं कटने पाती क्योंकि वे जमीनसे प्रायः चिपक कर रहती हैं। फूल वाला डंठल भी नहीं कटने पाता क्योंकि वह झुक जाता है और मशीन ऊपर से चली जाती है। मशीनके आगे बढ़ जाने पर वह फिर अपना सिर ऊँचा उठाता है; घाससे कहीं शीघ्र बढ़ता है और परिपक्व होता है। बीजोंपर लोम होते हैं जिससे वायुका सहारा मिलते ही वे दूर तक फैल जाते हैं। तिपतिया भारतवर्षमें विदेशसे आया है और यहां इसने अपना अड्डा जमा लिया है। कई पौधे ऐसे हैं कि वे परदेशमें पहुँच कर खूब फैले हैं और उन्होंने कृषकोंको बहुत हानि पहुँचायी है, यद्यपि अपनी जन्मभूमिमें वे दबे रहते हैं और उनसे वहां विशेष हानि नहीं होती। कारण यही जान पड़ता है कि उनकी जन्मभूमिमें ऐसे प्राकृतिक शत्रु रहते हैं जो उनको बहुत बढ़ने नहीं देते।

बीज-वितरणका परिणाम

बीजवितरणको समझ लेने पर कई मनोरंजक पहेलियोंका उत्तर आप-से-आप मिल जाता है। बीज-वितरणसे

एक ही पौधेकी संततिमें जीवन-सङ्घर्ष, अर्थात् हवा-पानी धूप-खाद आदिके लिए खींचा-तानी, कम हो जाती है। परन्तु साथ ही विविध जातियोंके पौधोंके बीच सङ्घर्ष बढ़ जाता है। यह समझनेमें कि किसी प्रदेशमें नवीन जातिने कैसे अपना घर कर लिया बीज-वितरण पर ध्यान रखना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, बीज-वितरण से सङ्करजात पौधोंके उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ जाती है और इस प्रकार नवीन जातियोंके पौधोंके विकासके लिये अवसर मिलता है।

१५

जीवन-चक्र

मनुष्य उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं परन्तु मनुष्य जाति बनी रहती है। इसी प्रकार पौधे उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं परन्तु वनस्पति संसार बना ही रहता है। परन्तु मरे पौधोंका क्या होता है? एक बार तो ऐसा जान पड़ता है कि पृथ्वी मरे पौधोंसे लद जायगी और भूमि मरे पौधोंकी जड़ोंसे भर उठेगी। परन्तु ऐसा होता नहीं है। हम जानते हैं कि मरे पौधे सड़ जाते हैं।

परन्तु सड़ना वस्तुतः क्या है? पुराने मकानोंमें लगी लकड़ी साधारणतः सड़ती नहीं है, परन्तु कभी-कभी लकड़ी सूखी रहते हुए भी सड़ने लगती है। ऐसा एक फफूँदीके कारण होता है जो लकड़ीसे अपना आहार ग्रहण करती है। उससे एक ऐसा रस निकलता है जो लकड़ी को घुला डालता है और फफूँदीके ग्रहण करने योग्य बना देता है। इसी तरहसे मरे पौधे और उनके अंग सड़ते हैं। उनमें किसी तरह की फफूँदी उगने लगती है चाहे वह फफूँदी बड़ी हो, चाहे बैक्टीरिया की तरह सूक्ष्म और अदृश्य। इसी सड़नेके कारण जंगलोंमें गिरी हुई पत्तियोंका ढेर नहीं लगने पाता। इससे यह भी पता चलता है कि मरे पौधोंकी जड़ोंका क्या हो जाता है। मरे पौधे गलित-जीवी पौधोंके आहार बनकर सड़-गल जाते हैं और इस प्रकार वे अन्य पौधोंके शोषण योग्य बन जाते हैं।

इस चक्रको अधिक अच्छी तरह समझने के लिये हम दिखलायेंगे कि कारबन जो पौधोंमें हवाकी कारबन डाइआक्साइड गैससे आता है, कहाँ-कहाँ जाता है। प्रकाशकी सहायतासे पौधोंकी पत्तियाँ इस कारबन को लेकर चीनी आदि बनाती हैं। कललरस इस चीनी आदिसे लकड़ी और पौधोंकी अन्य तंतुएँ बनाता है। यदि हम लकड़ीको आधा जलाकर कोयला बना लें तो हमको फिर कारबन मिल जाता है, क्योंकि कोयला कारबन ही है। परन्तु यदि लकड़ीको पूर्णतया जला दिया जाय, या कोयलेको पूर्णतया जलाया जाय तो कारबन डाइआक्साइड गैस बन जाती है जो हवामें मिल जाती है। ऐसी ही बात पौधोंके श्वासोच्छ्वासमें होती है। इस क्रियामें पौधेका थोड़ा-सा कारबन
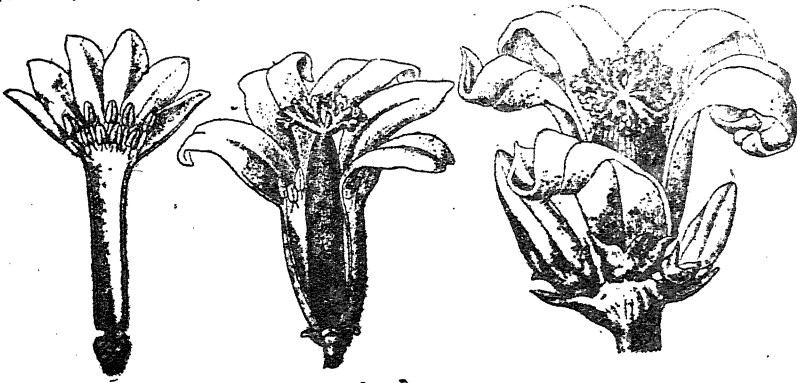
पपीताके फूल।
बाईं ओर नर फूल तथा बीचमें और दाईं ओर मादा फूल हैं।

वायुके आक्सिजनसे मिल जाता है और इस प्रकार कारबन डाइआक्साइड गैस बनती है जो हवामें चली जाती है।

गुलदाउदी।

गुलदाउदी क्यों जाड़ेमें ही फूलती है, गरमीमें नहीं, इसका भेद वैज्ञानिकों ने लगा लिया है। अध्याय १० देखें।

वही काम सड़ने से होता है। सड़नेमें भी पौधेका कारबन कारबन डाइआक्साइड गैसमें परिवर्तित होजाता है। इस प्रकारसे हवामें गयी कारबन डाइआक्साइड गैस फिर पौधोंमें जाती है और पूर्वोक्त चक्र फिर चलता है। जब पौधे सड़ते हैं तो कारबनको छोड़ उनके अन्य अवयव भूमिमें लौट जाते हैं जहाँसे वे पौधेको मिले थे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौधे अपने लिए स्वयं खादयुक्त भूमि बनाते हैं और आहार बनाते हैं, तब इसी भूमिमें उत्पन्न होते हैं और अतमें दूसरे पौधे उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार चक्र चलता रहता है। पौधे उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं, परन्तु वनस्पतियोंका संसार बराबर हरा-भरा रहता है।

१६

भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे कैसे हुए

दो मत

पौधोंके सौन्दर्यके बाद हमें उनकी विभिन्नता मोहित करती है— इतने मेलके पौधे होते हैं, और उनमें कोई दो ठीक एक तरहके नहीं होते। क्यों? प्राचीन कालमें इसका उत्तर यही दिया जाता था कि आरंभमें ईश्वरने भाँति-भाँति के पौधे रचे। ईश्वरकी इच्छा थी और इसलिए ऐसा हुआ। इस बातको मान लेनेसे मन को अवश्य शान्ति मिल जाती है; परन्तु इससे विज्ञानका अंत हो जाता है, क्योंकि विज्ञान मानसिक अशांतिसे ही उत्पन्न होता है। विज्ञान जानना चाहता है कि "कैसे हुआ"। वैज्ञानिक कहता है "मान भी लिया जाय कि ईश्वरने सब पौधे बनाये तो हम वैज्ञानिक यह जानना चाहते हैं कि उसने उनको कैसे बनाया किस विधिसे बनाया, कि नवस्तुओंसे बनाया ?" प्रश्न पूछने का अर्थ ही यह है कि अपनी सारी शक्ति लगाकर उसका उत्तर खोजा जाय" और यही विज्ञान है। विज्ञानमें ऐसे विषयों पर बराबर अनुसंधान होता रहता है। केवल वे ही वैज्ञानिक ख्याति पाते हैं जो खोजते रहते हैं कि कोई बात क्यों और कैसे होती है। इसी खोज और अनुसंधान से, निरीक्षण और परीक्षण से, विज्ञान उन्नति करता है। बिना अनुसंधानके हमें आधुनिक सुविधाएँ कभी प्राप्त न हो सकतीं। रेल, तारघर, एक्सरश्मियां, रेडियम, आधुनिक ओषधियाँ और शल्यचिकित्सा (जर्राही), नवीन जातियोंके फूल, और तरकारियाँ आदि हमें न मिलतीं और न हम अज्ञानता, अंध-विश्वास, और कट्टरता से छुटकारा पा सकते।

परिवृत्ति

जब हम पौधों की विभिन्नता का प्रश्न हल करने बैठते हैं तो दो अति महत्वपूर्ण बातें हमारे सामने उपस्थित होती

हैं—परिवृत्ति और पैतृत्व। एक ही जातिके दो पौधोंमें जो अंतर दिखलाई पड़ता है उसे परिवृत्ति कहते हैं और

कनकौआ।

कनकौएमें दो प्रकारके फूल लगते हैं। एक तो आरम्भसे ही भूमिके बाहर रहता है; दूसरा भूमिके भीतर बनता है और पीछेसे भूमिके बाहर निकलता है।

प्रत्येक पीढ़ीमें कुछ गुणोंके स्थायी रहनेको पैतृत्व कहते हैं। इस छोटी-सी पुस्तकमें हम इस गूढ़ विषयको पूर्णतया न समझा सकेंगे; केवल महत्त्वपूर्ण मोटे-मोटे नियमोंका ही हम उल्लेख कर सकेंगे। परिवृत्ति और पैतृत्व जंतु संसारमें भी महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु इनके मूल नियमों का पता पहले-पहल पौधोंके अध्ययनमें हो सका। इसलिए उचित जान पड़ता है कि वनस्पति-विज्ञानके दिग्दर्शनमें इनपर भी कुछ विचार किया जाय।

परिवृत्ति दो प्रकारकी हो सकती है, नाप में और गुण में। उदाहरणतः, हम काग़ज़ी नीबू और चकोतरे की नापों पर विचार कर सकते हैं। हम जानते हैं कि परिपक्व काग़ज़ी नीबू व्यासमें आधइंचसे कभी छोटा नहीं होता और ढाई इंचसे कभी बड़ा नहीं होता। ये तो छोटेपन और बड़ेपन की सीमाएँ हुईं, परन्तु अधिकांश नीबुओं का व्यास एक नियत मध्यमानसे थोड़ा ही छोटा-बड़ा होता है। परन्तु काग़ज़ी नीबू चाहे कितना भी बड़ा हो, वह चकोतरा नहीं हो सकता। दोनों नीबुओंमें अंतर है।

काग़ज़ी नीबुओंके छोटे-बड़े होने को नापकी परिवृत्ति कहेंगे, परन्तु यदि किसी कारणसे काग़ज़ी नीबू बदल कर मीठा नीबू हो जाय तो यह गुण की परिवृत्ति कहलायेगी।

नापमें क्यों परिवृत्ति हुआ करती है इसके सब कारणों-का पूरा ज्ञान किसीको नहीं है। प्रचुर मात्रामें अच्छा खाद देना, अच्छी सिंचाई और खुला स्थान (जहाँ धूप लग सके) इन तीन बातोंसे साधारणतः बड़े फल, बड़ी पत्तियाँ और बड़े पौधे होते हैं; दूसरी ओर, ऊसर भूमि, जल-न्यूनता और अन्य वृक्षोंकी छाया से छोटे फल लगते हैं। हम इसे यों कह सकते हैं कि नीबूके फलका छोटा-बड़ा होना वातावरण पर निर्भर है। परन्तु इसके गुणोंमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। नीबू की सततिका फल अगली पीढ़ी में वातावरणके अनुसार छोटेके बदले बड़ा और बड़े के बदले छोटा हो सकता है।

वामन और दैत्य

गुणोंमें परिवृत्तिकी बात दूसरी है। गुणोंकी परिवृत्तिमें कोई ऐसी बात होती है कि यदि एक बार काग़ज़ी नीबू चकोतरेके बराबर होने लगें तो पीढ़ीके बाद पीढ़ीमें चकोतरे-

वॉयलेट।

वॉयलेटमें फूल भूमिके भीतर बनते हैं। और पीछेसे बाहर निकलते हैं।

के बराबर फल लगते रहेंगे। वातावरणके अनुसार कोई फल मध्यमानसे छोटे होंगे, कोई मध्यमानसे बड़े तो भी वे ऐसे होंगे कि सभी पहचान लेंगे कि बड़ी जातिके नीबू हैं। काग़ज़ी नीबू और चकोतरेमें तो स्वादमें भी अंतर होता है और रूपमें भी कुछ अंतर होता है, परन्तु ऐसा सम्भव है कि केवल एक ही गुण बदले। उदाहरणतः, नाप ही बदले, स्वाद और रूप ठीक पहले-जैसा ही रह जाय। ऐसे पौधे पाये जाते हैं जो अन्य बातोंमें ठीक एक-से होते हैं और केवल उनकी नापोंमें अंतर होता है। एक पौधा दूसरेसे लगभग तिगुना बड़ा होता है। यह गुणकी परिवृत्ति है।

टमाटरोंमें कई जातियां है जिनमें एकमें मकोय (रसभरी) बराबर फल लगते हैं और दूसरे में बड़े अमरूदके बराबर।

गुणकी परिवृत्ति कैसे होती है

गुणकी परिवृत्ति तो बहुधा अपने-आप होती है। उदाहरणतः, उस जातिका गुलाब जिसे मॉस रोज़ कहते हैं सन् १६९६ के पहले कभी कहीं नहीं देखा गया था। उस साल एक वैज्ञानिकने देखा कि कैबेज रोज़के पौधेकी एक आँखसे एक नवीन प्रकारका गुलाब निकला। इसी गुलाबका नाम पीछे मॉस रोज़ पड़ गया।

इस प्रकारकी परिवृत्तिको विशेष नाम दे दिया गया है। इसको परिवर्त कहते हैं। जान पड़ता है कि परिवर्तमें रेताणु या रजोविन्दुमें कोई मौलिक अंतर हो जाता है। गुलाबकी आंखसे नवीन गुलाबका निकलना कुछ असाधारण-सी बात है, परन्तु बीजोंमें परिवर्त होना इतना असाधारण नहीं है। परिसेचन होनेपर परिवर्त होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त बीजको एक्स-रश्मियों या रेडियम-रश्मियोंमें कुछ समय तक पड़े रहने देकर; या अन्य विशेष विधियोंसे, वैज्ञानिक स्वयं भी परिवर्त उत्पन्न कर सकता है। इस प्रकार नवीन जातियोंके गेहूँ उत्पन्न किये गये हैं जिनमें प्रति बीघा अधिक अनाज उत्पन्न होता है।

हम देखते हैं कि यद्यपि पुरानी कहावत 'जस बाप तस पूत' बहुत-कुछ सत्य है, तो भी पिता और पुत्र में माप वाले और गुणवाले दोनों तरहके अंतर हो सकते हैं।

पैतृत्व

परिवर्तके कारण कई रूप तो ऐसे उत्पन्न होते हैं जो सन्तान उत्पन्न किये बिना ही मर जाते हैं। कारण यह होता है कि ये गरमी सरदी नहीं सह पाते या कोई आवश्यक कार्य नहीं कर पाते। उदाहरणतः, भुट्टे की एक रंगरहित जाति परिवर्त द्वारा उत्पन्न हुई थी, परन्तु उसके शरीरमें पर्णहरित न रहने के कारण वह अपना आहार न बना सकी और इसलिए बीजके साथ जितना आहार मिला था उसके समाप्त हो जाने पर वह मर गयी। वह परोपजीवी भी नहीं बन सकी कि दूसरोंके सहारे या मरे पौधोंके सहारे अपना निर्वाह कर सके।

बाँदा।

बाँदा अन्य वृक्षों पर परोपजीवीकी तरह उगता है। इस चित्रमें अमरूद पर चढ़ा बाँदा दिखलाया गया है। अगला चित्र देखें।

हम देख चुके है कि पौधेको अपने मा-बापसे केवल थोड़ा-सा वही कललरस मिलता है जो रजोविन्दु और
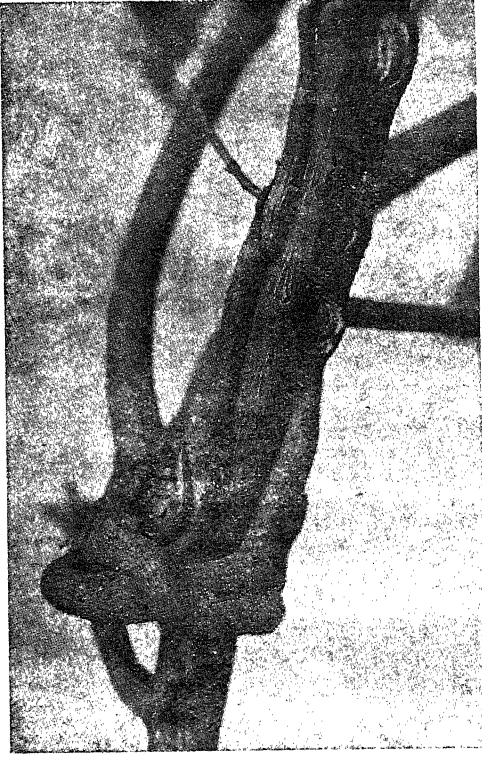
बाँदा।

पिछले चित्रके एक अंशका प्रवर्द्धित चित्र। देखें कि बाँदे ने अमरूदको किस प्रकार जकड़ लिया है। अमरूदमें बाँदेके चूषक घुसकर उसका रस चूस रहे हैं।

रेतागुमें रहता है। बस इतने ही से पौधा माके गर्भाशयमें बढ़ता हुआ बीजका अंकुर और अंतमें भूमिमें पड़कर सम्पूर्ण पौधा बनता है, परन्तु मा-बापसे मिले कललरसके साथ ही वह अपने माता-पितासे सब आवश्यक गुण भी पा जाता है। शेष बाह्य वातावरण और परिस्थितियों पर निर्भर है। चकोतरा बननेका गुण चकोतरेको अपने माता पितासे मिल जाता है। यदि उसे अनुकूल परिस्थितियाँ मिलें गी—उचित जल, प्रकाश, खाद, तापक्रम आदि मिलेगा – तो वह और भी बड़ा चकोतरा होगा। परिस्थितियां प्रतिकूल होंगी तो वह छोटा चकोतरा बनेगा, परन्तु कोई उससे चकोतरा होनेका अधिकार नहीं छीन सकता। परिस्थितियोंको बदल कर उसे कोई काग़ज़ी नीबू नहीं बना सकता। सन्तानमें माता-पिताके गुणोंके उतर आनेको ही पैतृत्व कहते हैं।

मटरोंपर परीक्षण

पैतृत्वके नियमोंको पहले-पहल मेंडलने हमें बताया। मेंडल आस्ट्रियाका पादरी था और पौधा उगानेका काम मनोरंजनके लिए मठकी वाटिकामें किया करता था। उसको यह सूझी—और इसपर किसी पहलेके वैज्ञानिकने विचार नहीं किया था, उसे काममें लानेको कौन कहे—कि परीक्षणमें केवल एक गुणपर ध्यान केंद्रित करना चाहिए; इस गुणका निरीक्षण कई पीढ़ियोंमें करते रहना चाहिए; और परिणाम को सख्यात्मक रूप देना चाहिए; अर्थात् केवल इतनेसे ही सन्तोष न कर लेना चाहिए कि सन्ततिमें कुछ फल बड़े लगते हैं कुछ छोटे, वरन् यह गिनकर देखना चाहिए कि

फूल और तितलीका सहयोग।

फूलसे तितलीको मकरंद मिलता है, और तितली से फूलोंकी संतति बढ़ती है, क्योंकि तितली द्वारा एक फूलका पराग दूसरे तक पहुँचता है।
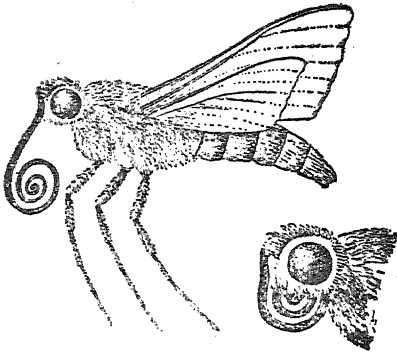
तितलीकी सूँड़ ।

गहरे फूलोंसे रस (मकरंद) चूसनेके लिये बहुत सी तितलियोंमें आश्चर्यजनक लम्बी सूँड़ रहती है, जिसे वे साधारणतः लपेटे रहती हैं ।

कितने फल बड़े लगते हैं, कितने छोटे, जिसमें अंतिम को गणितात्मक रूप दिया जा सके । मेंडलने अपने प्रथम परिणामोंको सन् १८६६ में छापा । उसने साधारण मटरों पर परीक्षण किया, क्योंकि उनमें कई गुणोंका निरीक्षण सुगमतासे किया जा सकता है, जैसे चिकने और चुचके बीज होनेका या पीले हरे बीज-दल रहने का या लम्बे और नाटे पौधे होनेका । फिर मटरोंको उत्पन्न करना भी सरल था; थोड़े ही समयमें उनके बीज लग जाते हैं और उनको अवांछित परागसे सुरक्षित रखना भी सुलभ है । मेंडलकी रीतियों का बिना ब्योरा दिये हम केवल उसके बताये मौलिक नियमोंको ही देकर संतोष करेंगे ।

मेंडल के नियम

१—उग्रताका नियम— ऐसे गुणको जो प्रत्येक पीढ़ीमें ज्यों-का-त्यों बना रहे, शुद्धप्रसवी गुण कहते हैं । उदाहरणतः, कुछ मटरोंमें बीजका चिकना होना शुद्ध प्रसवी गुण है । यदि उनको बोया जायगा तो चिकने ही बीज लगेंगे । यदि इन बीजोंको बोया जायगा तो इनके बीज भी चिकने ही रहेंगे, इत्यादि । चाहे कितनी भी पीढ़ी बीत जायँ, यह गुण नहीं बदलता । इसलिए ऐसे मटरमें बीजका चिकनापन एक शुद्ध प्रसवी गुण है । इसी प्रकार एक दूसरी जातिकी मटर होती है जिसके बीज चुचके होते हैं अर्थात् उन पर झुर्रियाँ पड़ी होती हैं । उन मटरोंमें बीजका चुचका रहना भी एक शुद्ध-प्रसवी गुण है । यदि हम इस चुचके बीज वाले मटरको बोयें तो पीढ़ी-दर-पीढ़ी बीज चुचका ही रहेगा ।

मेंडलका पहला नियम यह है कि यदि दो शुद्ध-प्रसवी पौधे लिए जायँ और उनके किसी एक जोड़ी गुणोंमें भेद हो (जैसे बीजोंका चिकना या चुचका रहना) तो एकके परागसे दूसरेको सेचित करने पर उत्पन्न हुए बीजोंसे जो पौधे उगेंगे उन सबमें, ऐसा संभव है, केवल एक गुण रहे । उदाहरणतः, चिकने और चुचके बीज देने वाले मटरोंकी संकरजात संततिमें बीज सदा चिकना होता है । कहा जाता है कि बीजका चिकना होना उग्र गुण है, बीजका चुचका रहना दब्बू गुण है ।

नीचे बार-बार विविध पीढ़ियोंके नाम लेनेकी आवश्यकता पड़ेगी । इस लिए परीक्षणके लिए परसेचित किये पौधे के बीजसे उत्पन्न पौधों को संक्षिप्त रूपसे पी$_1$ लिखते हैं और उसे प्रथम पीढ़ी कहते हैं ।

२—बिलगाने का नियम—जब पी$_1$ का कोई पौधा स्वयं सेचित होता है, तो उसकी संततिमें (अर्थात् पी$_2$ में) कुछ चिकने बीज होते हैं, कुछ चुचके । इस प्रकार यद्यपि पी$_1$ में सभी बीज चिकने निकले थे, तो भी पी$_2$ में
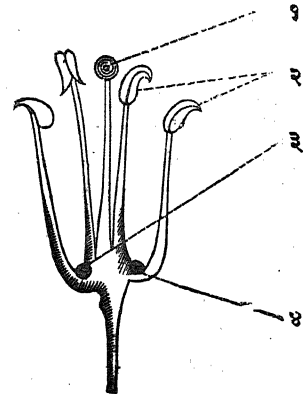
सरसोंके फूलके भीतरी अंग ।

१—योनिछत्र; २—रेतपात्र; ३-४ मकरंद-ग्रंथि । मकरंद-ग्रंथियोंसे मकरंद (मीठा रस) निकलता है । इसी मकरंदकी लालचसे मधु-मक्खियाँ इस फूलपर आया करती हैं ।

बीज कुछ चिकने निकले, कुछ चुचके। मेंडलने इनको गिना तो पता चला कि उग्र और दब्बू गुणोंका अनुपात ३:१ है; अर्थात् यदि तीन बीज उग्र गुण वाले हैं तो एक बीज दब्बू गुण वाला यदि तीन चिकने बीज हैं तो एक चुचका बीज।

परन्तु पी$_2$ से ही मेंडलको सन्तोष नहीं हुआ। वह आगे बढ़ा। पी$_2$ के बीजों को स्वयंसेचित करके उसने देखा कि पी$_2$ के चिकने बीज वस्तुतः सब एक तरहके नहीं हैं। उनमेंसे एक-तिहाई भाग चिकने बीजोंके लिए शुद्ध प्रसवी था, अर्थात् उनसे जितनी सन्तति हुई सबके बीज चिकने थे। पी$_2$ के शेष दो-तिहाई बीजसे दोनों तरहके बीज उत्पन्न हुए और उनमें फिर ३ और १ का अनुपात रहा। जब पी$_2$ के इन बीजोंसे जो चुचके थे स्वयंसेचन द्वारा पौधे उत्पन्न किये गये, तो केवल चुचके ही बीज उत्पन्न हुए।

३—**स्वतंत्रता-नियम**—मेंडलने देखा कि जब दो जोड़ी गुणोंका एक साथ ही अध्ययन किया गया (जैसे चिकने और चुचके बीजों, तथा लंबे और नाटे पौधों का) तो दोनों गुणोंके अपने-अपने नियम ठीक पड़ते चले गये; एक जोड़ी गुणोंने दूसरे जोड़ी गुणोंके नियमोंमें कुछ हस्त-क्षेप नहीं किया

मेंडलने अन्य कई नियमोंका आविष्कार किया, परन्तु सबको यहाँ पर बताना सम्भव नहीं है। मेंडलके नियमोंकी महत्ता इस बातमें है कि वे व्यापक नियम हैं, वे पौधोंके लिए भी लागू हैं और जंतुओंके लिए भी। वे मनुष्योंके लिए भी लागू हैं।

प्रजनन-विज्ञान

परीक्षण करके और गिनकर पैतृत्वके अध्ययनको जनन-विज्ञान कहते हैं। यह विशुद्ध विज्ञान है। अर्थात् इसके अध्ययनका अभिप्राय यही है कि प्राकृतिक नियमोंका ज्ञान प्राप्त किया जाय, चाहे यह क्रियात्मक रूपसे हमारे लाभका हो या न हो।

जब जनन-विज्ञानके नियमोंको पौधों और जंतुओंके उत्पन्न करनेके क्रियात्मक प्रश्नोंमें प्रयोग किया जाता है और उनका विशेष अध्ययन इस अभिप्रायसे किया जाता है कि अच्छी जातियाँ उत्पन्न की जायँ तो हमें 'सुप्रजनन-विज्ञान' मिलता है जिसका अर्थ है अच्छी सन्तति उत्पन्न करनेकी विद्या। इसीको संक्षिप्त रूपसे प्रजनन-विज्ञान भी कहते हैं। सुप्रजनन-विज्ञानसे कुछ लोग समझते हैं कि यह अच्छी मानव-सन्तति उत्पन्न करनेकी विद्या है, परन्तु वस्तुतः यह अच्छे मानव, अच्छे जंतु और अच्छे पौधे उत्पन्न करनेकी विद्या है।
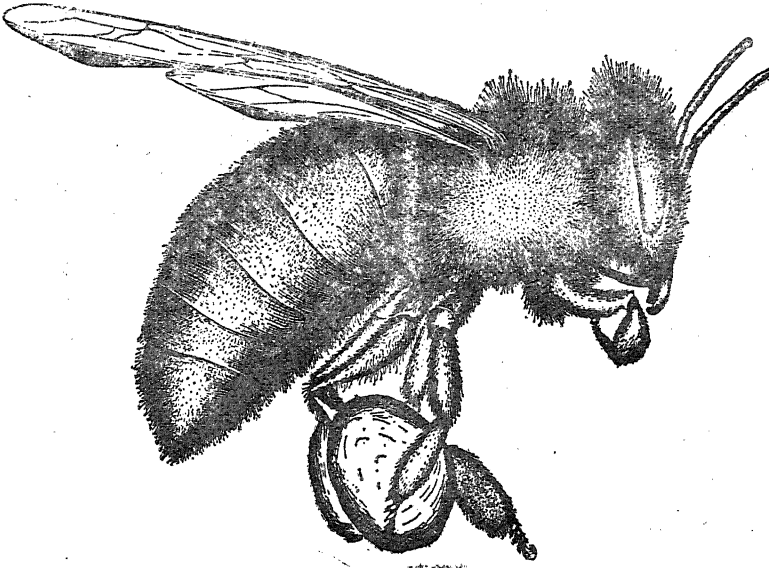
मधुमक्खी।

मधुमक्खियाँ मकरंदके अतिरिक्त पराग भी खाती हैं, बहुतसे फूलों पर परागके लालचसे ही जाती हैं। उनके एक फूलसे दूसरे पर उड़ते रहने और पराग बटोरते रहनेसे फूलोंको यह लाभ होता है कि एकका पराग दूसरेको मिल जाता है। चित्रकी मधुमक्खी ने अपनी टांगों पर पराग चिपका रक्खा है। चित्र वास्तविकसे बहुत बड़े पैमाने पर बनाया गया है।
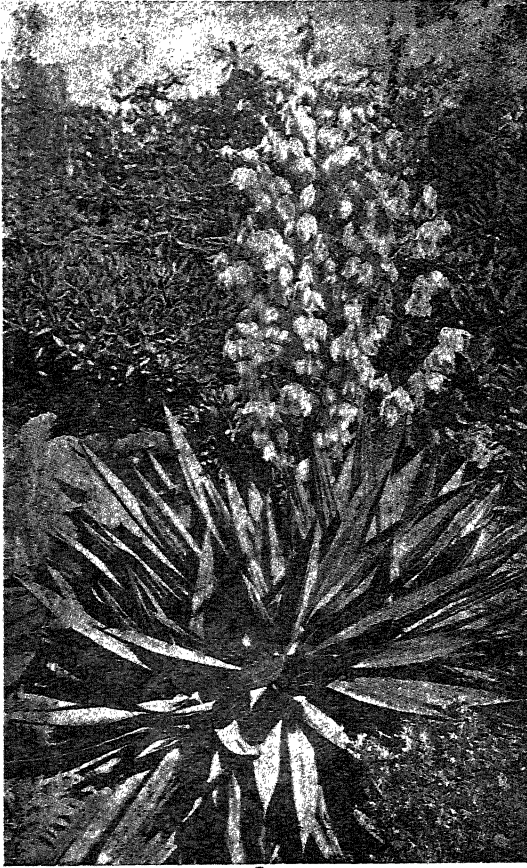
यक्का।

सुंदर फूलोंसे लदे इस पौधेमें परागसेचन एक विशेष कीट द्वारा संपादित होता है। आगामी चित्र देखें। इलाहाबादमें यह पौधा होता तो है, परन्तु उस कीटके न रहनेसे फल नहीं लग पाते।

ऊपर जो बातें बतलायी जा चुकी हैं उनसे स्पष्ट हो गया होगा कि जीवनमें सफलताके लिए दो बातें चाहिए, अच्छे मा-बापसे उत्पत्ति और अच्छी परिस्थितियां। दोनों बातें महत्वपूर्ण हैं और यह सिद्धान्त पौधों, जंतुओं और मनुष्यों, सभीके लिए, लागू है। ऐसे लड़के या लड़की को जिसमें मानसिक तीव्रता है ही नहीं विश्वविद्यालयमें पढ़ने भेजनेसे कुछ नहीं हो सकता। सामाजिक सुधार या सामाजिक सेवासे विशेष सफलता तब तक नहीं हो सकती जब तक दोनों अंगों पर ध्यान न रक्खा जायगा। प्रजनन विज्ञान इन दिनों इतना महत्वपूर्ण समझा जाता है कि कई पाश्चात्य विश्वविद्यालयोंमें इसके लिए अलग विभाग खोल दिये गये हैं।

वनस्पति-प्रजनन

अत्यंत प्राचीन समयमें मनुष्योंने उन पौधोंसे अपना
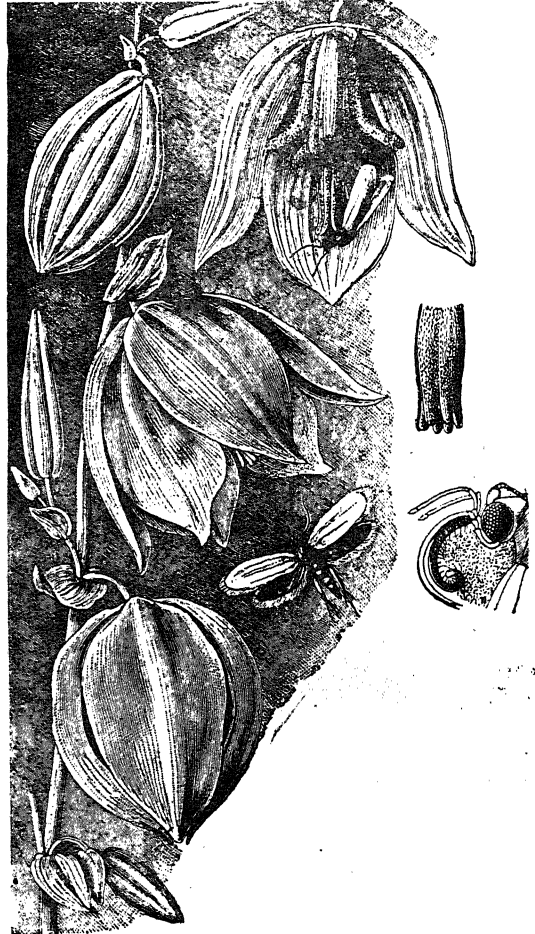
यक्काके फल।

इस चित्रमें वह कीट भी दिखलाया गया है जिससे यक्कामें परागसेचन होता है। दाहिनी ओर उस कीटका सिर बड़े पैमाने पर दिखाया गया है।
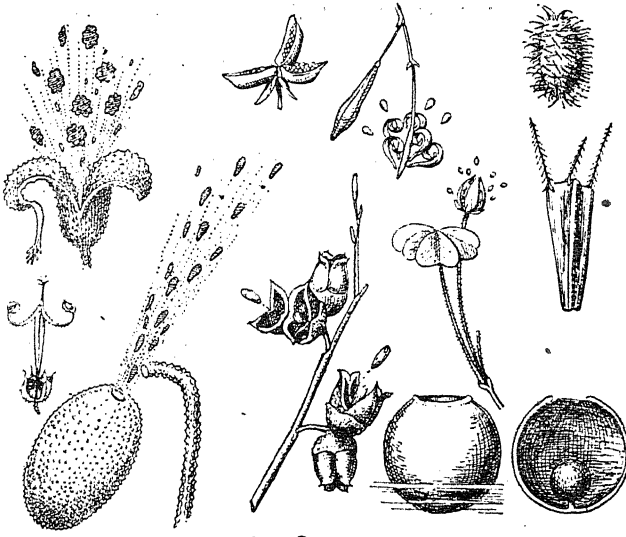
बीज-वितरण।

कोई फल इतनी जोरसे फटता है कि बीज दूर छिटक जाते हैं। किसी फलके टूट कर डंठलसे अलग होते ही ढेंपीके पासके छेदसे बीज इस प्रकार निकलते हैं जैसे कोई पिचकारी छोड़े। कुछ बीज कँटीले होते हैं और पशुओंके पैरोंमें फँसकर दूर जा पहुँचते हैं; कमलका बीज पानीमें तैरता हुआ दूर जा पहुँचता है।

काम चलाया होगा जो प्रकृतिमें अपने-आप उगते रहे होंगे। जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ी होगी उन्होंने उत्तम जातियोंको चुनकर बोना आरंभ किया होगा। निस्सन्देह, समय-समय पर नवीन जातियाँ (परिवर्तके रूपमें) उत्पन्न हुई होंगी और प्राचीन मनुष्यने उनमेंसे उपयोगी जातियोंको चुन लिया होगा। इस प्रकार धीरे-धीरे मनुष्यको उत्तमतर पौधे मिलते गये होंगे। सभी कृषक और माली जानते हैं कि उत्तम-से-उत्तम अनाज और फलसे बीज चुनना चाहिए।

परन्तु प्रजनन-विज्ञानके न जाननेके कारण हमारे पौधे शुद्ध-प्रसवी नहीं हैं। वे कई जातियों की संकरजात सन्तति हैं। उदाहरणतः, मलय प्रायः द्वीपमें गरीपर ही वहाँके निवासियोंका निर्वाह होता है। इसीसे उन्हें आहार, पेय, रस्सी, चटाई, तेल, ढोल, घर बनाने का सामान आदि मिलता है। अपनी समझमें वहाँ वालोंने सर्वोत्तम जाति चुन रक्खी है। परन्तु प्रसिद्ध वैज्ञानिक डि-फ़ीज़ने जब उनका वैज्ञानिक अध्ययन किया तो पता चला कि कम-से-कम पचास विभिन्न जातियों-के संकरजात पौधे उनमें सम्मिलित हैं। इसी प्रकार अमरीकाकी टिमोथी नामक साधारण घासके अध्ययनसे पता चला कि वस्तुतः उनमें दो सौ-से अधिक जातियोंके संकरजात पौधे वर्तमान हैं। लाखों बीघे जमीनमें और हजारों-लाखों बर्षसे ये उत्पन्न होते हैं और विभिन्न गुणवाली जातियोंको पृथक-पृथक रखनेके लिए किसीने प्रयत्न नहीं किया था। अब उनको आधुनिक रीतियोंसे बड़े परिश्रमसे पृथक-पृथक किया गया है और अंतमें ऐसा पौधा अलग किया जा सका है जिससे खेतों की उपज दूनी हो गयी है। यह घास पशुओंके खिलानेके काम में आती है। यदि यही माना जाय कि पहले की अपेक्षा अब एक तिहाई ही अधिक घास उत्पन्न हो रही है तो भी हमें मानना पड़ेगा कि नवीन घाससे अमरीका को ३०,००,००,००० रुपयेका लाभ हो रहा है, क्योंकि पहले लगभग ९०,००,००० रुपयेकी घास उत्पन्न की जा रही थी।

रसायन और भौतिक विज्ञानके अनुसन्धानोंसे जो लाभ होता है और जो नवीन वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, वे जनता तक शीघ्र पहुँच जाती हैं। उदाहरणतः, नकली रेशम और रेडियोकी उपयोगिता अब सभी जानते हैं। परन्तु कृषिमें भी अनुसन्धानसे आश्चर्य-जनक लाभ हुआ है। भारतवर्षमें सरकारकी ओरसे एक अनुसन्धान शाला खुली है जिसने नवीन जातियोंके (पूसा वाले) गेहूँ और नवीन तरहके ऊख उत्पन्न किये हैं। इनसे प्रति बीघा उपज अधिक होती है और ये अधिक निरोग रहते हैं। प्राचीन कालमें नवीन जातियोंका उत्पन्न होना प्रकृतिके आसरे था। आज मनुष्य अपनी इच्छानुसार नवीन जातियाँ उत्पन्न कर लेता है।

१७

कुछ प्रसिद्ध वनस्पति-प्रजनक

नवीन और अधिक उत्तम पौधे उत्पन्न करनेके लिए परसेचन का उपयोग सर्व प्रथम जरमन वैज्ञानिक कोल-रॉयटरने लगभग सन् १७६१ में किया।

उस समयसे प्रजनन विद्या दिन-पर-दिन उन्नति करती चली आयी है। डी-फ्रीज़, मेंडेल आदिके आविष्कारोंसे इस विद्याको बहुत प्रोत्साहन मिला है।

पहले चुकंदरमें इतनी चीनी न होती थी कि उससे चीनी निकालने में पड़ता पड़े। दो फ्रांसीसी वैज्ञानिकोंने - आंद्रे डि विलमोरिन और उसके पुत्र लुई डि० विलमोरिन-ने - चुनाव और परीक्षणसे अंतमें ऐसा चुकंदर उत्पन्न किया जिसमें मिठासकी मात्रा तिगुनी हो गयी थी और उससे सस्ती चीनी बनने लग गयी। अभी कुछ ही वर्षों की बात है कि जरमनीसे चुकंदरकी बनी चीनी भारतवर्षमें आती थी। इसका अंत तभी हुआ जब जावा, भारत इत्यादि में अधिक अच्छी जातिकी ऊख उत्पन्न की गयी।

फ्रांसका विक्टर लिमायन, जिसकी मृत्यु १९११ में हुई, संसारका सबसे बड़ा वनस्पति-प्रजनक माना जाता है। साठ वर्ष तक वह इसी काममें लगा रहा और उसे आश्चर्य जनक सफलता मिली। यदि उसके उत्पन्न किये हुए नवीन पौधोंकी केवल सूची छापी जाय तो इस पुस्तकके कई पृष्ठ लग जायँगे। उसने ही पहले-पहल लाइलैक के दोहरे (अर्थात् एकसे अधिक दलचक्र वाले) फूल उत्पन्न किये। इसके लिए उसने परसेचनकी सहायता ली थी।

जापानमें गुलदाउदीकी बड़ी प्रतिष्ठा है। वहाँके वैज्ञा-निकोंने ऐसे-ऐसे पौधे उत्पन्न किये हैं कि सुनकर आश्चर्य होता है। ऐसे भी पौधे हैं जिनमें एक-एक पौधेमें एक हजार से अधिक फूल लगते हैं। फिर उन पौधोंमें, जिनमें एक ही फूल लगता है, सवा फुट ब्यासके फूल लग सके हैं। हॉलेंडमें लोग ट्यूलिपके पीछे दीवाने रहते हैं, वहाँ एक-एक पौधेके लिए तीन लाख रुपये तक मिले हैं।

अभी कुछ ही वर्षोंकी बात है, समाचार पत्रोंमें एक फलके व्यापारीके करोड़पति हो जाने का ब्योरा छपा था। वह अमरीका निवासी था। एक कृषकके घरके पास उसे सेबका एक पेड़ दिखाई दिया जो उसे नवीन जातिका जान पड़ा। फल देखनेमें बहुत ही सुन्दर था और स्वादिष्ट भी खूब था। उसने कृषकसे पूछा कि 'इस पेड़ को बेचोगे?'। कृषक चकित रह गया। पेड़ भी कहीं बिकता है! परन्तु आशासे कहीं बड़ी रकमका नाम सुनकर वह खुशीसे राज़ी हो गया। व्यापारीने तार देकर अपने कारखानेसे आदमी बुलाये। वे सामान सहित मोटर लॉरियोंपर शीघ्र आ पहुँचे। तब उसने उस वृक्षके चारों ओरसे बाड़ा बांधकर पहरा

कँटीले बीज।

अपने काँटोंकी ही कृपासे ये बीज, पशुओंकी टाँगोंसे चिपके, दूर-दूर तक पहुँच जाते हैं और इस प्रकार नये-नये स्थानोंमें उनके पौधे उग जाते हैं।

मेंडल।

आस्ट्रियाके प्रसिद्ध वैज्ञानिक मेंडल (१८२२-८४) की स्मारक-मूर्तिका फोटो। मेंडल एक किसानका पुत्र था। सन १८४७ में वह पादरी हो गया। गिरजाघर की वाटिकामें वह मटरों पर पैतृत्व-संबंधी प्रयोग किया करता था।

बैठा दिया। फिर, कलम बाँध-बाँधकर उसने कई पौधे तैयार किये। अंतमें सब नये पौधोंको लेकर और पुराने पेड़को भी समूल उखाड़ कर और लारीपर लादकर, वह अपने घर चला गया। उन्हीं पौधोंसे उत्पन्न सेबोंसे उसने करोड़ों रुपये पैदा किये। एक टहनी भी बाहर नहीं जा पाती थी कि कहीं दूसरा कोई उससे उसी प्रकार का पौधा न पा जाय! करोड़पति हो जाने पर उसने पौधोंको राष्ट्र-को सिपुर्द कर दिया। अब जो चाहे इस तरहके पौधे उत्पन्न कर सकता है।

इम्पीरियल ऐग्रिकलचरल रिसर्च इन्स्टियूट

नयी दिल्लीमें एक सरकारी संस्था है जहाँ कृषि शास्त्र सम्बन्धी खोज बराबर हुआ करती है। यहाँ लगभग बीस विशेषज्ञ काम करते हैं। भूमि की उन्नति, कीड़े-मकोड़ोंकी रोक थाम, भुकड़ी जनित रोगोंसे रक्षा, नवीन पौधोंकी उत्पत्ति आदि विभाग यहाँ हैं। यहां से निकली गेहूँ की नवीन जातिमें विशेषता यह है कि प्रति बीघा अनाज अधिक उपजता है और पौधे अधिक रोगमुक्त होते हैं।

विशुद्ध और प्रयुक्त विज्ञान

वनस्पति-प्रजनकोंका काम बहुत महत्वपूर्ण हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि यदि उनको पहलेके विशुद्ध विज्ञानके परिणामों-का ज्ञान न होता तो उनका परिश्रम व्यर्थ ही जाता—बिना जनन-विज्ञानके सुप्रजनन-विज्ञान संभव ही नहीं हो

सकता था। उस महान फ्रेंच वैज्ञानिक क्लाड बरनार्डने ठीक कहा था कि "विशुद्ध विज्ञान ही वह मूल है जहाँसे मनुष्य को सब धन प्राप्त हुआ है और विश्व की शक्तियों-पर विजय मिली है।"

१८

डारविनका सिद्धांत और विकास-सिद्धांत

वनस्पति-पूजननसे डारविन कहाँ पहुँचा।

वनस्पति-पूजननका मुख्य ध्येय, जैसा सभी जानते हैं, यही है कि पहलेसे, अच्छे नवीन फूल, फल, तरकारियां, फसलें और अन्य उपयोगी पौधे उत्पन्न किये जायँ। परन्तु इस विज्ञानसे एक अन्य अत्यंत महत्त्वपूर्ण परिणाम निकला जिसका हमारी स्वाद-तृप्तिता धनलिप्सासे कोई सम्बन्ध नहीं है। पूजनन-विज्ञानसे प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता चार्ल्स डारविनको उस मूल प्रश्नका उत्तर मिला जो मनुष्य के लिए आरम्भसे एक विकट पहेली थी—अर्थात् यह कि संसारके विभिन्न पौधे कहांसे आये।

डारविनने अपनी पुस्तक 'आरिजिन आफ स्पीशीज़' के आरम्भमें लिखा है "विभिन्न जातियोंकी उत्पत्तिपर विचार करनेमें यह सम्भव है कि वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे कि सब जातियां पृथक-पृथक आरंभसे ही नहीं बनी थीं और वे दूसरी जातियोंसे परिवर्तके रूपमें उत्पन्न हुई हैं।" इसके बाद उसने पांच सौ पृष्ठोंमें केवल इसी विषयपर विचार किया है। हमारे लिए यही सम्भव है कि हम डारविनके सिद्धान्तको अति संक्षिप्त रूपमें प्रदर्शित कर दें।
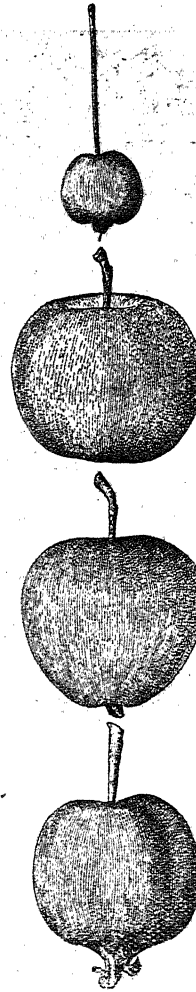
सुप्रजनन-विज्ञानका परिणाम। ऊपरे जंगली सेब है। उसी सेबकी सेवा करके तथा उत्तम संतति उत्पन्न या चुनकर आज भाँति-भाँतिके सेब पैदा कर लिये गये हैं।

डारविनका सिद्धान्त

मोटे हिसाबसे कहा जा सकता है कि डारविनके सिद्धांतानुसार प्रकृतिमें नवीन जातियां पहले वाली जातियोंसे निम्न रीतिसे उत्पन्न होती हैं:—

समय समयपर, कुछ कारणोंसे जिन्हे हम अभी अच्छी तरह नहीं समझते, पौधोंमें कुछ नवीन गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इन नवीन गुणोंमेंसे कुछ गुण ऐसे होते हैं कि वे पितासे पुत्रमें पीढ़ी-दर-पीढ़ी उतरते चले जाते हैं। इसे पैतृत्व कहते हैं। किसी दिये हुए वातावरण में कुछ गुणोंके कारण कुछ जातियोंके जीवित रहनेकी सम्भावना दूसरी जातियोंकी अपेक्षा अधिक हो जाती है। उदाहरणतः यदि पानीकी कमी हो तो पौधोंकी विभिन्न जातियोंमें कुछ ऐसी होंगी जो इस कमीको अच्छी तरह सह लेंगी। इसी प्रकार कुछ जातियां ऐसी होंगी जिनके लिए वही वातावरण प्रतिकूल पड़ेगा और उस जातिके लिए जीवित रहना कठिन या असम्भव हो जायगा। पौधोंमेंसे साधारणतः प्रत्येक पौधेको दूसरे पौधोंसे आहार, जल, प्रकाश और भूमिके लिए संघर्ष करना पड़ता है और सभी पौधोंको प्रतिकूल वातावरणसे संघर्ष करना पड़ता है (जैसे जल-न्यूनता, प्रकाशन्यूनता,
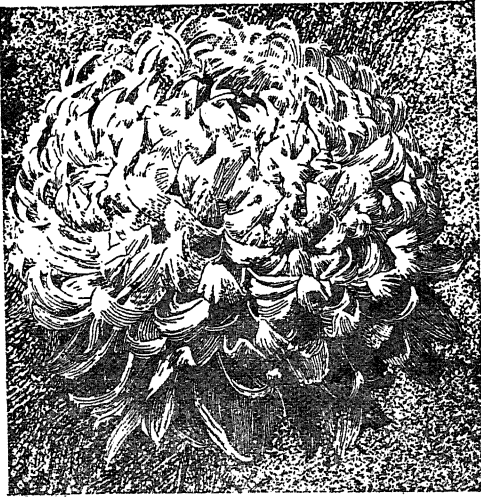
सुप्रजनन-विज्ञानका परिणाम।

जंगली गुलदाउदी छोटी और एकहरी होती थी। सैकड़ों वर्षोंकी सेवा, चुनाव, परपरागसेचन आदि से अब ग्यारह-बारह, इञ्च व्यासके फूल उत्पन्न हो रहे हैं।

कम तापक्रम, अधिक तापक्रम, भूमिकी कमी आदि से)। प्रतिकूल वातावरण* या तगड़े पड़ोसियोंसे पूर्वोक्त सङ्घर्षको 'जीवनके लिए सङ्घर्ष' कहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि जो सबसे योग्य होते हैं वे ही बचते हैं। जो इस संघर्षके लिए कम योग्य होते हैं वे मर जाते हैं। इसी को 'योग्यतम का अवस्थान' अर्थात् योग्यतमका बचा रह जाना कहते हैं। हर्बर्ट स्पेंसरने इसका नाम 'प्राकृतिक चुनाव' रक्खा है। यदि प्रकृतिको प्रजनक माना जाय तो मानना पड़ेगा कि प्रकृति योग्यतमको चुनती नहीं है, केवल अयोग्यों को मार डालती है। इसलिए इसे 'प्राकृतिक निरावन' कहना अधिक उत्तम होगा। इसी योग्यतमके अवस्थानके कारण पुरानी जातियाँ लुप्त होती रहती हैं और नवीन जातियाँ उनका स्थान लेती रहती हैं। हम देखते हैं कि पौधों और जंतुओंके प्रजनन सम्बन्धी क्रियाओंका विचारपूर्वक मनन करनेसे डारविनने नवीन जातियोंकी उत्पत्तिके लिए सबसे अधिक संतोषजनक सिद्धांत बनाया है।

* उन बाहरी और भीतरी दशाओंको सामूहिक रूपसे 'वातावरण' कहते हैं जिनपर पौधोंका अस्तित्व, वृद्धि, क्रियाशीलता आदि निर्भर रहते हैं।

डारविनके सिद्धांतकी वर्तमान स्थिति

डारविनके बाद बहुत अनुसंधान हुआ है। अधिक अंशमें यह सब डारविनकी पुस्तकों और लेखोंके कारण ही आरंभ हुआ था। इस अनुसन्धानके परिणाम-स्वरूप डारविनके सिद्धान्तमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन करना पड़ा है, परन्तु मौलिक बातोंमें डारविनका सिद्धांत आज भी ठीक है। इस सिद्धान्तने जातियोंकी उत्पत्तिका सबसे सन्तोषजनक उत्तर दिया है और मनुष्यके मस्तिष्कसे निकले प्रोत्साहक और फलदायक सर्वोत्तम सिद्धान्तोंमें इसकी भी गिनती की जा सकती है। डारविनकी पुस्तककी अंतिम पंक्तियां यहां देने योग्य हैं। डारविनने लिखा है—

"जीवनके इस दृष्टिकोणमें कि ईश्वरने थोड़े-से – या सम्भवतः एक ही—रूपमें जीवन और इसकी शक्तियाँ डालीं विशेष श्रेष्ठता है। इधर हमारी पृथ्वी गुरुत्वाकर्षण-नियमके अनुसार सूर्यका चक्कर लगाती रही है, उधर इस सरल आदिसे असंख्य रूप एक-से-एक सुन्दर और एक-से-एक आश्चर्यजनक, विकसित होते रहे हैं और विकसित हो रहे हैं।"

विकास सिद्धान्त—यह नहीं है

जिस रीतिसे नवीन जातियाँ प्रचलित जातियोंसे थोडी बहुत परिवर्तित होती हुई निकलती हैं वह विकास-वाद का केवल एक अंग है। परन्तु यह समझना कि 'विकासवाद' और 'जातियों की उत्पत्ति' दोनों एक ही बात है भूल है, क्योंकि विकासवाद कहीं अधिक व्यापक सिद्धांत है।

एक बात तो पहले ही बतला देनी चाहिए, वह यह कि विकास-सिद्धान्तका अर्थ यह नहीं है कि मनुष्य बंदर की सन्तान है । इस बातको तो अज्ञानियों या कट्टर-पंथियोंने विकासवादियोंको परास्त करनेके लिए गढ़ा है । न तो डारविनने और न किसी अन्य विकास-वादीने कभी ऐसा कहा था ।

फिर विकासवादका अर्थ यह भी नहीं है कि कोई जाति बदल कर किसी दूसरी जातिमें परिवर्तित होजाती है । विकासवादका तो कहना है कि नवीन रूप (या जातियाँ या उपजातियाँ, या जो कुछ भी नाम रक्खा जाय) पुरानी जातियोंसे निकलती हैं और पुरानी रूप या जाति भी साथ-साथ जीवित रह सकती है । एक बार कैबेज गुलाबसे मॉस गुलाबके उत्पन्न होनेकी चर्चाकी जा चुकी है (पृष्ठ १३२ देखें) । परन्तु मॉस गुलाब कैबेज गुलाबसे परिवृत्तिके कारण उत्पन्न हुआ । आज भी दोनों जातियाँ वर्तमान है ।

विकास-सिद्धान्त क्या है

प्राकृतिक घटनाओंके निरीक्षक इस बातमें एकमत हैं कि विश्वकी वर्तमान अवस्था इसकी भूत अवस्थाका परिणाम है । इसका अर्थ यह है कि यदि हमें विश्वकी वर्तमान अवस्थाका पूरा-पूरा ब्योरेवार ज्ञान हो, और हमारी बुद्धि सब बातोंको समझ सके और उसका शुद्ध परिणाम निकाल सके, तो हम पहलेसे बता सकेंगे कि भविष्यमें क्या होगा । प्रत्येक घटनाका भूतकालिक घटनाओंसे वही सम्बन्ध है जो परिणाम और कारण का है । जब हम कहते हैं कि अमुक घटना 'अकस्मात' घटी है तो उसका अर्थ यही है कि हम उसके पूर्वकी सब बातोंको नहीं जानते । प्रकृति सदा नियमानुकूल चलती है और मनमानी नहीं किया करती । कुछ भौतिक-वैज्ञानिकोंका अणुसम्बन्धी सिद्धांतोंमें कुछ दूसरा ही मत है, परन्तु कौन जाने भविष्य में उनकी क्या सफाई रहेगी ।

विश्वकी स्थिति किसी भी दो क्षणोंमें ठीक एक सी नहीं रहती । विश्वमें कोई वस्तु विकाररहित (परिवर्तन रहित) नहीं है । विश्वको इस दृष्टिसे देखना ही वास्तविक विकासवाद है । विकास-वादमें हम यह देखते हैं कि ग्रह-तारे किस प्रकार उत्पन्न हुए और वर्तमान स्थितियोंमें आये; हमारी पृथ्वी कैसे उत्पन्न हुई और आज की दशापर पहुँची; विविध रसायनिक पदार्थ कैसे उत्पन्न हुए; पौधों, जंतुओं और मनुष्यकी उत्पत्ति कैसे हुई और उन्होंने वर्तमान रूप किस प्रकार धारण किया; मनुष्यकी भाषा, संस्कृति आदि कैसे इन दिनोंकी अवस्थामें आयीं ।

डारविन ।

चार्ल्स डारविन (१८०२-८२) प्रसिद्ध अँग्रेज़ वैज्ञानिक था । इसके विकास-सिद्धांतका आदर आज सर्वत्र हो रहा है ।

जब हम निर्जीव संसारको ध्यानमें रखते हैं तो हम 'निर्जीव विकास' की बात करते हैं । जब हम सजीव संसार (पौधों और जंतुओं) के बारेमें चर्चा करते हैं तो हम 'सजीव विकास' की बात करते हैं । सजीव विकास केवल जातियोंकी उत्पत्ति पर ध्यान नहीं देता । वह ऐसी बातोंपर भी ध्यान देता है जैसे पौधोंके वंश; वे विधियाँ जिनसे पौधोंका वर्तमान वितरण हो गया है; वे विधियां जिनसे पौधोंके विविध अंग (फूल, पुंकेसर, गर्भाशय आदि) उत्पन्न हुए हैं और धीरे-धीरे इतने विभिन्न रूपके हो गये हैं ।

विकास पक्की बात है, सिद्धान्त नहीं है

इसमें कि विश्व (जिसमें पौधे और जंतु भी हैं) वर्तमान दशामें धीरे-धीरे, कारण और परिणामके नियमका
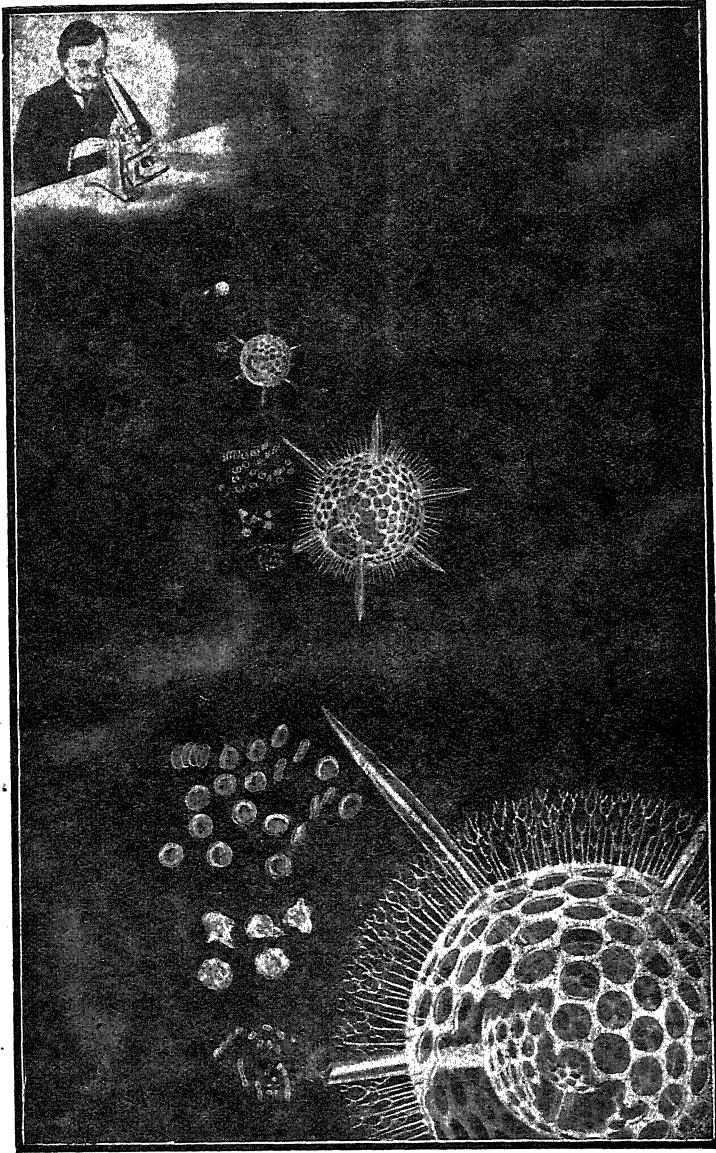
सूक्ष्मदर्शक यंत्रके चमत्कार।

ऊपर एक वैज्ञानिक सूक्ष्मदर्शक यंत्रसे एक अत्यन्त सूक्ष्म प्राणीको देख रहा है। अधिकाधिक प्रवर्द्धनशक्तिके प्रयोगसे वही प्राणी किस प्रकार अधिकाधिक बड़ा और ब्योरेवार दिखलाई पड़ता है इसका अनुमान उस प्राणीके तीनों चित्रोंकी तुलनासे किया जा सकता है।

पालन करता हुआ पहुँचा है किसी भी वैज्ञानिकको सन्देह नहीं है। दूसरे शब्दोंमें, विकास को सभी सच्चा मानते हैं।

विकास किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्धमें हम आखों देखी बातों पर सिद्धांत ही बना सकते हैं। हम निश्चित रूपसे नहीं कह सकते कि विकास ठीक-ठीक इस प्रकार हुआ, क्योंकि हमारा ज्ञान बहुत परिमित है। परमावश्यक बात यह है कि हम अपनी सीमाओं को ध्यानमें रक्खें और रूढ़िके दास न हो जायँ। जब कभी भी इतना नवीन ज्ञान प्राप्त हो जाय कि हमें अपने पुराने सिद्धान्तोंमें कुछ परिवर्तन करना पड़े तो हम उनमें परिवर्तन करनेके लिए तैयार रहें। इसी प्रकारका भाव-निरन्तर नवीन ज्ञानकी खोज और नवीन ज्ञानके प्रकाशमें अपने सिद्धान्तोंकी बार-बार परीक्षा—वैज्ञानिक भाव है। सच्चा वैज्ञानिक वस्तुतः वह नहीं है जो जानता है; वरन् वह है जो नवीन बातोंके जाननेकी निरन्तर चेष्टा करता है। ज्ञातव्य बातको अच्छी-से अच्छी रीतियोंसे जानने की चेष्टा करते रहना यही विज्ञान का प्राण है।

सजीव विकासका प्रमाण

उन बातोंमें से जिनके आधार पर वैज्ञानिकोंने सजीव विकास की कल्पना की है कुछ प्रमुख बातें नीचे गिनायी जाती हैं:—
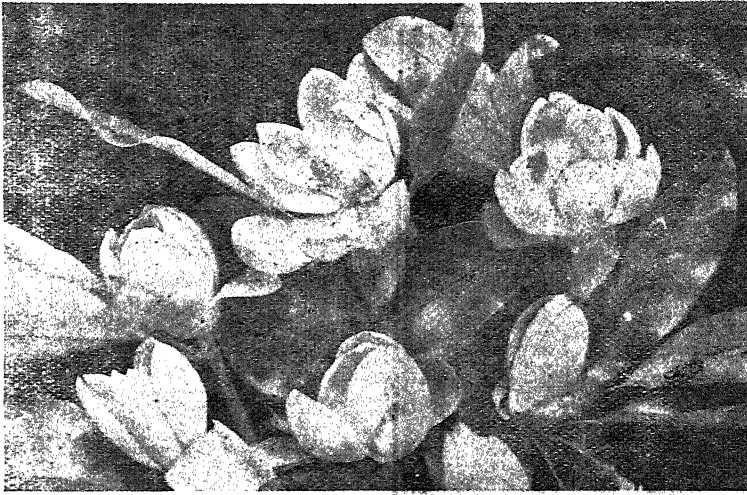
चम्पा ?

यह फूल (जिसका लैटिन नाम मैगनोलिया ग्लाउका है) बहुत ही सुन्दर रूपका होता है। इसका रंग हल्का सुनहला, सुगन्ध चित्ताकर्षक और व्यास लगभग ६ इंच होता है। यह दारजिलिंग तथा अन्य पहाड़ी प्रदेशोंमें होता है। बहुतसे लोग इसको चम्पा कहते हैं।

१—जीवित रूपोंकी विभिन्नता—सभी जानते हैं कि वनस्पति संसारमें अनेक विभिन्न रूप हैं। स्पष्ट है कि प्रत्येक पौधेका कोई उत्पादक (माता वा पिता या जो कहिये) रहा होगा। यह भी स्पष्ट है कि साखू गुलाबसे नहीं उत्पन्न होते। तो फिर वह विधि क्या है जिससे गुलाब और साखू दोनों उत्पन्न हुए। यह बात कि पौधोंमें इतनी विभिन्नता है सूचित करती है कि किसी-न-किसी प्रकार-का परिवर्तन होता रहा है।

२—भूगोल की बातें—भूमिमें दबे पौधोंके अवशेषों से हम जानते हैं कि वर्तमान पौधोंमेंसे अधिकांश पौधे प्राचीन युगोंमें नहीं होते थे और उस समयके पौधोंमें से अधिकांश अब नहीं होते हैं। इससे पता चलता है कि जो कुछ भी परिवर्तन हुआ है वह धीरे-धीरे हुआ है।

३—तुलनात्मक रचनाएँ—पौधोंकी शरीर-रचनाओंके अध्ययनसे पता चलता है कि कुछ रचनाएँ प्रायः वनस्पति-संसारके सभी सदस्योंमें हैं; केवल उनमें थोड़ा-थोड़ा परिवर्तन होता गया है। उदाहरणतः, गर्भाशय लिवरवर्टोंमें भी होता है जो निम्न श्रेणीके पौधे हैं और उनसे सभी उच्च श्रेणियोंमें भी—काई फर्न,ताल और नग्नबीजियों में होता है। सबसे सरल और सबसे न्यायसङ्गत स्पष्टीकरण यही है कि उन सब पौधोंमें जिनमें गर्भाशय होता है कोई जनन-सम्बन्ध है अर्थात् किसी-न-किसी अति प्राचीन पीढ़ीमें एकसे दूसरेने जन्म पाया है।

४ जीवन इतिहास—जैसा पहले बतलाया जाचुका है कुछ पौधोंमें बीजाणु वाले और बीज वाले पौधे पारी-पारीसे होते हैं और तब उनके जीवनका एक चक्र पूरा होता है (पृष्ठ .. देखें)। इससे भी वही परिणाम निकलता है जो तुलनात्मक रचनाओंसे।

५ भूगोलीय वितरण—ऐसे रूपोंमें जिनमें स्पष्टतया कोई जनन-सम्बन्ध है दूर-दूर देशोंमें फैले हुए हैं। उदाहरणतः एक ही प्रकारकी लिली नयी दुनिया (अमरीका) में भी मिलती है और पुरानी दुनिया (यूरोप, एशिया आदि) में भी। तो फिर कौन-सा तर्क अधिक न्यायसङ्गत है। यह कि वही जाति कई देशोंमें स्वतंत्र रूपसे उत्पन्न हुई, या यह कि इनकी उत्पत्ति एक ही स्थानमें हुई और फिर वे क्रमशः दूर तक वितरित हो गयीं और अंतमें बीज-वितरणकी कठिनाईयों और भूपृष्ठके परिवर्तनोंके कारण वे अलग-अलग हो गयीं ?

पृथ्वीकी वनस्पति वैसी कैसे हुई जैसी आज है।

पौधोंकी कुछ जातियां बहुत कम स्थानोंमें मिलती हैं। उदाहरणतः, मक्खी पकड़ने वाला पौधा (डाइओनिया म्युसिप्यूला) केवल डेढ़ सौ मील लंबे और इतने ही चौड़े स्थानमें मिलता है। कुछ, जैसे फ़र्न (टेरिडियम अक्विलीनम) बहुत दूर-दूर तक फैला है। उदा-

देख पाते हैं जो और किसी तरह नहीं देखे जा सकते। हरणतः यह टैसमैनिया, उत्तरी अमरीका, पूर्वी अफरीका, हिमालय पर्वत और कैनारी टापूमें मिलता है। कुछ पौधोंके वंश-के-वंश केवल एक महाद्वीपमें मिलते हैं। कुछ जैसे ताड़-वंशके पौधे, एक तरहकी जलवायु वाले सभी प्रदेशोंमें मिलते हैं?

फिर, कुछ उष्णदेशीय पौधोंके अवशेष ग्रीनलैण्डकी भूमिमें दबे मिले हैं। प्राचीनतम भूमिस्तरोंमें फूलके पौधे नहीं मिलते। फूलके पौधे जिन स्तरोंमें मिलते हैं उनके बाद वाले स्तरोंमें ही बीज वाले फ़र्न मिलते हैं और उनसे भी बाद वाले स्तरोंमें एकदली पौधे मिलते हैं।

इन सबका क्या कारण है? ये बातें केवल विकास सिद्धान्तसे ही समझमें आती हैं जो कहता है कि जनन, पैतृत्व, परिवृत्ति भौगोलिक वितरण, जीवनके लिए संघर्ष, योग्यतमका अवस्थान, आदि द्वारा लगातार धीरे-धीरे विकास होता रहा है और हो रहा है, जिससे कई जातियां लुप्त होती रहती हैं और नवीन जातियां बनती रहती हैं।

१९

विज्ञानकी उन्नति कैसे होती है

जिज्ञासा

जैसा कि स्विटज़रलैण्डके महान वैज्ञानिक कैन्डोलने कहा है जिज्ञासा ही विज्ञानोंकी नीव है। खोज करने और ज्ञात बातोंके कारणको समझनेकी प्रेरणा वैज्ञानिकको अनुसन्धान—रिसर्च—की ओर खींच ले जाती है।

प्रेरणाके साथ-साथ उचित मार्गोंका ज्ञान होना चाहिए। किधरसे चलें कि हम आगे बढ़ सकें यह जानना आवश्यक है। उचित मार्ग यह है कि हम सच्चा और सूक्ष्म निरीक्षण करें और पहले-से ही सिद्धांत बनाकर ऐसे कट्टरवादी न हो जायँ कि विपक्षके प्रमाणकी अवहेलना करें। वैज्ञानिक रीतियोंको उच्चतम दशा तक पहुँचाना परिणामसे अधिक महत्वपूर्ण है। विज्ञानमें भी वही नियम सर्वश्रेष्ठ है जिसपर गीतामें भगवान श्रीकृष्णने ज़ोर दिया था—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

उचित मार्गका प्रथम पद यह है कि हम सीधे प्रकृति देवीके पास पहुँच कर अध्ययन करें। चरकने क्या कहा था और सुश्रुतके वाक्योंका क्या अर्थ है यह विवाद नवीन ज्ञानका मार्ग नहीं है। यूरोपमें भी एक युग था जब लोग यही अध्ययन किया करते थे कि अरस्तू (आरिस्टॉटल) ने क्या लिखा है। अरस्तूके पुस्तकोंको छोड़ और कुछ अध्ययन करना बेकार समझा जाता था।

निरीक्षण, परीक्षण और तुलना करना, वर्गीकरण, व्यापक नियम ढूढना, सिद्धान्त बनाना कि कारण क्या है, इन सिद्धांतों की कड़ी परीक्षा करना, उन सिद्धांतोंका निर्दयतासे तिरस्कार करके जो ज्ञात बातोंके विरुद्ध हैं नवीन सिद्धांत बनाना, आदि, आदि, यही विज्ञान का सच्चा रास्ता है।

यंत्र

हमारी ज्ञानेंद्रियां सीमित हैं और हमारे हाथ स्थूल हैं। इसलिए बिना यंत्रोंके बहुत दूरतक आगे बढ़ना असम्भव होता है। उदाहरणतः; यदि दूरदर्शक न होता तो केवल कोरीआँखोंसे ज्योतिषीगण चंद्रमाके पहाड़, शनिके वलय या सूर्यके कलङ्क न देखपाते। इसी प्रकार केवल सूक्ष्मदर्शकके आविष्कारने ही यह सम्भव कर दिया है कि हम कोश, बैक्टीरिया, रेताणु, रंगाणु और पौधोंकी सूक्ष्मतम रचनाओंको देख सकते हैं।

एक दूसरा यंत्र माइक्रोटोम है जिससे हम अत्यन्त सूक्ष्म कत्तल काट सकते हैं—इतने सूक्ष्म कि उनकी मोटाई केवल इञ्चका कुछ हज़ारवाँ भाग ही होता है। कत्तलोंके इतने महीन होनेके कारण हम सूक्ष्मदर्शक यंत्र द्वारा उनके आर-पार देख पाते हैं, अन्यथा हम केवल उनका ऊपरी पृष्ठ देख पाते। इस प्रकार हम कई सूक्ष्म ब्योरे
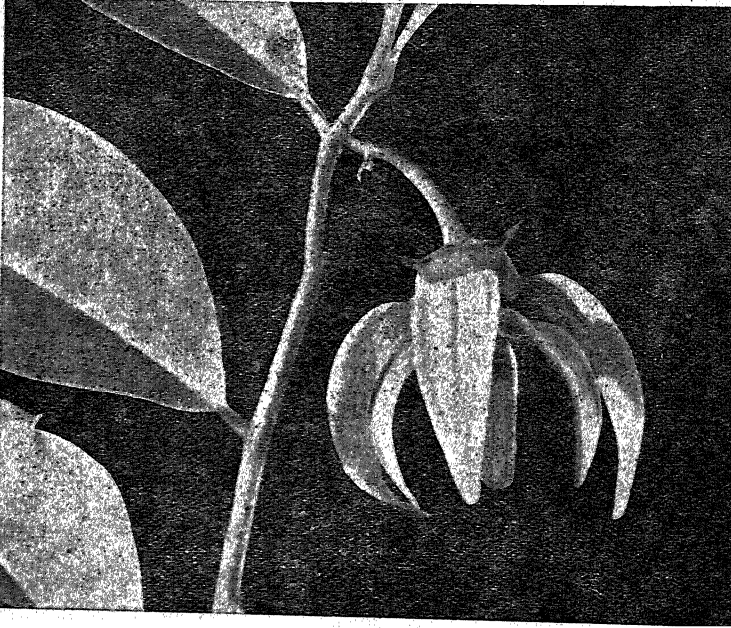
चम्पा ?

बहुतसे लोग इस फूलको चम्पा या कटहरिया चम्पा कहते हैं। परिपक्व होनेपर इसमें भी वही सुन्दर रङ्ग होता है जो असली चम्पा में, और इसमें भी सुगन्ध होती है, परन्तु इस पौधेका असली चम्पा (मैगनोलिया चम्पाका) से या चम्पाकी जातिके अन्य पौधोंसे (जैसे मैगनोलिया ग्लाउकासे) कोई सम्बन्ध नहीं है। पिछले चित्रसे तुलना करें। लैटिन नामोंमें सुविधा यही रहती है कि लैटिन नाम जानने पर वैज्ञानिक कहीं-न-कहीं उस पौधेका इतना सूक्ष्म वर्णन पा सकता है कि उसकी पहचान असंदिग्ध रूपसे वह कर सकता है। लैटिन नाम बहुत सोंच-समझ कर रक्खे गये हैं, और किसी पौधेका नवीन नाम तभी रक्खा जाता है जब पक्का कर लिया जाता है कि उस पौधेका पहले कभी नाम नहीं रक्खा गया था।

निरीक्षणके काममें हमें रँगनेकी विशेष रीतियोंसे भी सहायता मिलती है। हम पौधोंके कत्तलोंको ऐसे रंगोंमें डुबा देते हैं जो कत्तलोंके कुछ भागोंको तो रंग देते हैं और कुछको ज्यों-का-त्यों छोड़ देते हैं। थरमामीटरसे हम ताप और वातावरणका सच्चा ज्ञान कर सकते हैं। एक विशेष यंत्रसे हम पौधोंकी वृद्धि नाप सकते हैं और एक दूसरे यंत्रसे यह नाप सकते हैं कि उनसे कितनी भाप उड़ रही है। इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटे यंत्र हैं जिनसे निरीक्षण और परीक्षणमें सहायता मिलती है।

वनस्पति-शास्त्र और शिक्षा

इस पुस्तकमें वनस्पति और मनुष्यके सम्बन्धमें जो बातें लिखी गयी हैं, और वनस्पतिपर मनुष्यके आश्रित रहनेकी जो व्याख्या की गयी है उससे स्पष्ट होगा कि प्रत्येक उदार शिक्षा-प्रणालीमें वनस्पति-शास्त्रका भी ज्ञान कराना आवश्यक समझा जाना चाहिए।

इसका यह अभिप्राय नहीं है कि सबको वनस्पतिशास्त्रमें विशेषज्ञ होना चाहिए। परन्तु कम-से-कम सबको जीवनके मौलिक सिद्धान्तोंको तो जानना ही चाहिए। इसके लिए पौधोंके जीवन-अध्ययनसे बढ़कर दूसरा कोई सुगम मार्ग नहीं है। इसमें प्रकाश और वनस्पति-जीवनके संबंधको तथा भुकड़ी और बैक्टीरियाके अध्ययनको भी स्थान मिलेगा, जिनका मनुष्योंके जीवनसे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है। आधुनिक युग विज्ञानका युग है और केवल पुस्तकोंसे ज्ञान प्राप्त करनेके बदले ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि हमारे बच्चे अपनी आँखोंसे निरीक्षण करें, अपने हाथोंसे परीक्षण करें। प्रयोगशालामें पौधोंकी चीड़-फाड़ और सूक्ष्म अध्ययनमें बहुत आनन्द मिलता है।

वनस्पति-शास्त्रका ज्ञान कुछ व्यक्तियोंके लिए तो अत्यंत आवश्यक भी है, जैसे मालियों, कृषकों, डाक्टरों, दवा बनाने वालों, पौधोंके डाक्टरों, वनरक्षकों, वनस्पति-प्रजनकों आदि को। हमारे लेजिस्लेटिव असेम्बलीके मेम्बरोंको भी कुछ वनस्पति-शास्त्र जानना चाहिए—कभी-कभी रोगग्रस्त पौधोंके आयात-निषेधपर, या हानिकारक खर-पतवारके

दमनपर या बनसंरक्षण पर, या ऐसे ही अन्य विषयोंपर, उन्हें नियम बनाना पड़ता है।

बोटैनिकल गार्डन

कलकत्तेका बोटैनिकल गार्डन—वनस्पति-शास्त्र सम्बन्धी उद्यान प्रसिद्ध है। वहाँ तरह-तरहके पौधे लगे हैं। लोग उन्हें उसी प्रकार देखने जाते हैं जैसे पशुवाटिका के जंतुओंको। ऐसे उद्यानोंसे लोगोंकी जिज्ञासा बढ़ती है, पौधोंमें रुचि उत्पन्न होती है, वनस्पति-संसारके सम्बन्ध में ज्ञान बढ़ता है। शिक्षण संस्थाएँ अपना-अपना उद्यान लगाये रहती हैं। उचित तो यही है कि प्रत्येक नगरमें एक वनस्पतिशास्त्र सम्बन्धी उद्यान हो।

ऐसे उद्यान प्राचीन समयमें भी होते थे। अरस्तू ने ऐथेन्समें सन् ३५० ईस्वी पूर्वमें लगाया था। इटलीके पैडुआ और पीजा नामक शहरोंमें उद्यान है जो सन् १५४५से चले आरहे हैं। प्रत्यक्ष है कि ऐसे उद्यानोंसे जहाँ यथा सम्भव संसार भरके प्रतिनिधि पौधे हों वनस्पतिशास्त्रके अध्ययनमें बड़ी सुविधा होती है। यूरोपके कुछ उद्यानोंके साथ तो जनता को शिक्षा भी देनेका प्रबन्ध है। अमरीकाकी एक संस्था में प्रतिवर्ष लगभग एक लाख व्यक्ति व्याख्यान सुनने और उद्यान देखते आते हैं। वे सूक्ष्मदर्शक द्वारा भी निरीक्षण कर सकते हैं। भारतवर्षमें भी यदि ऐसी कुछ संस्थाएँ हो जायँ तो जनताका विज्ञान-प्रेम बढ़ जायगा।

२०

परिशिष्ट

इस खण्डमें हम कुछ विशेष विषयोंपर सविस्तार विचार करेंगे

मरुभूमिके मीठे फल और लाखों की आमदनी

भारतवर्षके बाजारोंमें अमरीकाके खजूरकी भरमार है। तीस बरस पहले अमरीका वालोंने अरबसे खजूर पैदा करना सीखा। आज अमरीका इस विद्यामें सारे संसार का गुरु होगया है।

खजूरकी प्राचीन खेती

आजसे छः हज़ार बरस पहलेसे अरबमें खजूर उगाया जा रहा है। पर उसी पुराने ढर्रेपर बराबर काम जारी है। कुछ दिन हुए अमरीकाको यह सूझी कि अपने ही देशमें खजूर क्यों न पैदा किया जाय। पापूलर मैकेनिक्स अपने मार्चके अंकमें ऐसा लिखता है। नैर्ऋत्य कोणपर करीब ६८ हज़ार वर्गमील ज़मीन मरुभूमि थी और वहां बालू और अंधड़के सिवाय और कुछ नहीं था। ज़मीन और आबोहवा की जांच करनेसे पता लगा कि कोलोरेडो नामक अमरीका-का रेगिस्तान सहारा रेगिस्तानसे मिलता जुलता है। ज़मीन उपजाऊ थी और अब अठारह सौ फुट तक खुदाई करनेपर न तो कहीं पत्थर मिला और न पानी।

नर मादा और बांझ खजूर

कोलोरेडोके रेगिस्तानमें कुछ खजूर और ताड़ आपसे आप उगते थे। पता नहीं वे कहांसे आये थे। वे बांझ थे। उनमें फल नहीं लगता था। कृषि-विद्या विशारदोंने सोचा कि अगर यह बांझ खजूर उगते हैं तो फलवाले खजूर क्यों न उगेंगे। तुरन्त एक तार मिश्र देशमें भेजा गया कि खजूर के छोटे पौधे भेजो। लेकिन इसका नतीजा केवल यही हुआ कि एक अच्छा सबक़ सीखने को मिला।

सौदागरने अमेरिकाको ठगा

तारके जबाबमें मिश्रसे एक विदेशी सौदागरने पौधे भेजे लेकिन इनमें आधेसे ज्यादा नर पौधे थे। सच्ची बात तो यह है कि तीस पैंतीस मादा पौधोंके बीचमें एक नर पौधा काफ़ी होता है। परन्तु सौदागरने जान बूझकर बद-माशी की क्योंकि अमरीकावाले उस समयतक खजूर उगाने का हुनर नहीं जानते थे। उसने इतना ही नहीं किया बल्कि कलमी पौधोंके बदले उसने बीजसे उगाये पौधे भेज दिये। दोनोंमें आकाश पातालका अन्तर रहता है। एक लाख बीज से लगाये पौधोंमेंसे केवल एक पौधा औसतन अपनी मांकी तरह होता है। अन्य पौधोंमेंसे एक दो नये किस्मके पौधे होते हैं और बाक़ी पौधे रद्दी होते हैं। हो सकता है कि बीज

खजूर।

खजूरका व्यापार लाखों रुपयेका होता है।

को भी बेच सकता है, लेकिन अगर आप उसके खजूरका क़लम खरीदना चाहें तो वह तुरन्त तलवार खींच लेगा। बाग़के चारों ओर वह ऊँची दीवार उठाये रहता है और बराबर उसकी चौकीदारी करता है। डाक्टर फेअरचाइल्डने बाज़ारमें एक बहुत बढ़िया खजूर देखा जो नील नदीके किनारेके शहरोंमें बिकता था। इसका नाम 'वही' था। इस बातका पता लगानेमें कि कौनसे पेड़ोंसे यह खजूर बाज़ारमें जाता है उसे हज़ारों मीलका सफ़र ऊँटपर चढ़ कर करना पड़ा। लेकिन उसे पता न लगा।

मुश्किलसे भेद मिला
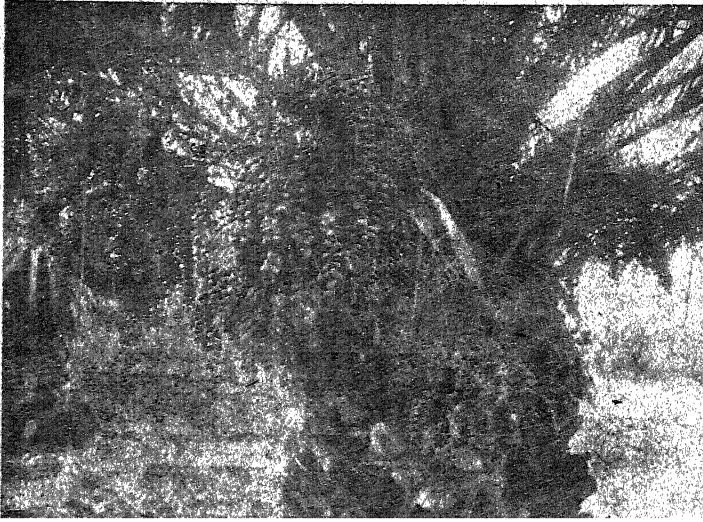
औरों ने भी इसके पता लगाने की कोशिश की लेकिन वे कामयाब न हो

से उगाया पौधा दुनियाके सब खजूरोंसे अच्छा फल देवे। परन्तु अधिक सम्भावना इसी बातकी है कि पौधा बहुत मामूली होगा और फल कम लगेंगे। ऐसा भी हो सकता है कि फल कुछ भी न लगें और हज़ारमें ९९९ पेड़ोंमें ऐसे खजूर लगें जो खानेके लायक़ न हों।

दस बरस बाद ठगीका पता लगा

लेकिन अमरीकावालोंको इस बातका पता दस वर्ष बाद लगा। पौधे सन् १८९०में खरीदे गये थे। पौधे बढ़े तो खूब। हरसाल वे दो फुट बढ़ते थे। लेकिन ज्यादातर पेड़ बांझ निकले और जो फले भी वे अच्छे नहीं थे। आख़िरमें डाक्टर डेविड फेअरचाइल्ड अमरीकाकी ओरसे इस बातका पता लगाने सहारा गये कि मामला क्या है।

खजूर जानसे भी ज्यादा प्यारा

सन् १९०१में उन्होंने उपजाऊ पौधोंके क़लमका पहला पारसल भेजा। लेकिन इस बातके लिये उन्हें मिश्रके ब्रिटिश गवर्नर-जनरलकी सहायता लेनी पड़ी। वहांका निवासी अपनी स्त्रीको बेच सकता है, अपने ऊँट या खच्चर

सके। आख़िरमें डाक्टर सिलासो मेसन सन् १९१३में मिश्र भेजे गये। वे हरे-भरे हज़ारों क़लमी पौधे अमरीका लेगये। एक शेख़से उनको इसका भेद पहले पहल मिला। शेख़ने बतलाया कि हम लोग इसे "सैदो" कहते हैं। लेकिन जब हमसे सौदागर लोग इसे ख़रीदते हैं तो इसको "वही" कहते हैं। लेकिन "वही"के माने 'कोई भी खजूर है जो किसी भी मरुभूमिमें पैदा हो।

पेड़के तनेसे नया पेड़ पैदा होता है। तीन चार साल तक अपनी मातासे इस पौधेको भोजन मिलता है। जब इसमें जड़ निकल आती है और यह खुद २० या २५ सेर का हो जाता है तब इस पौधेको इसकी मांसे अलग कर दिया जाता है। इस पौधेमें फल ठीक वैसेही लगेंगे जैसे मांमें। मांके फल अच्छे होंगे तभी इस पौधेको लोग रोपेंगे नहीं तो इस पौधेको लोग जला डालते हैं।

खजूरका वंश कैसे बढ़ता है ?

एक मज़बूत मादा पेड़में इस प्रकार दससे बीसत बच्चे पैदा होते हैं और मांके फलके गुण और मात्राके अ

सार एक-एकका दाम अमरीकामें ५) से लेकर ५० हजार रुपये तक होता है।

मांसे अलग करनेके बाद लगभग ५से आठ वर्षोंमें यह पौधे खुद फलने लगते हैं। १२ वर्षसे २० वर्षकी आयुतक इससे बच्चे पैदा होते हैं। इसके बाद बच्चोंका पैदा होना बन्द होजाता है। परन्तु फलोंका लगना जारी रहता है। एक पेड़में ५०से लेकर २५० सेरतक हरसाल फल लगता है। सौ वर्षकी आयुमें इन पेड़ोंकी जवानी गिनी जाती है। और एक-एक पेड़ पांच-पांच सौ वर्षतक फल देता रहता है। अभीतक वैज्ञानिकोंके लाख कोशिश करनेपर भी २० वर्षके बाद भी इन पेड़ोंके बच्चे पैदा नहीं हुए हैं। खूब पानी देनेपर एक दो बार २० वर्षके बाद भी बच्चे पैदा हुए हैं लेकिन यह इतने मज़बूत नहीं होते जितने कम आयुमें पैदा हुए बच्चे। जिस प्रकार मादा पेड़ोंके मादा पौधे पैदा होते हैं उसी प्रकार नर पेड़ोंके नर पौधे पैदा होते हैं। प्रकृतिमें नर और मादा पेड़ोंकी संख्या क़रीब बराबर होती है। हवा और कीड़े मकोड़ेसे नर पेड़ोंका पराग मादा पेड़ोंपर पहुँचता हैं। लेकिन आजसे ६ हज़ार वर्ष पहले ही खजूरके पैदा करने वालोंको मालूम होगया था कि नर पौधे के फूलवाले बालको मादा पेड़ोंके फूलवाले तनेमें बांध देनेसे फल खूब लगता है। यह क्रम आजतक बना रहा है और इसका परिणाम यह हुआ है कि नर पेड़ोंको अधिक संख्यामें रखनेकी ज़रूरत नहीं रहती। अमरीकाने इस रीतिको और भी वैज्ञानिक तरीकेसे सुधारा है, और फलोंको इच्छानुसार पहले या पीछे पैदा करनेमें भी सफलता पाई है। ज्योंही मादा पेड़ोंके फूल पैदा होते हैं उसपर पारदर्शक कागज़का थैला बांध देते हैं। इन्हीं थैलोंके भीतर नर पेड़ोंके पराग वाले बाल डाल दिये जाते हैं और उनमें खटका लगा दिया जाता है जिससे पराग इच्छानुसार झाड़ा जा सके। जब फल लग जाता है और पकनेकी बारी आती है तो इस पारदर्शक कागज़के थैलेको हटाकर फलोंपर सूती कपड़ेका ओवरकोट पहना दिया जाता है। इस प्रकार फलोंका गुच्छा पानीसे बचाया जा सकता है जो इसका जानी दुश्मन है। एक बूंद ओससे २५ सेर फल सड़ जा सकते हैं।

फ़सलकी मात्रा परागकी जातिपर निर्भर है। जान पड़ता है मानो मादा पेड़ोंकी रुचि-अरुचि होती है। किसी पेड़में खूब फल लगेंगे यदि वह एक विशेष नर पेड़के परागसे गर्भित किया जाय, लेकिन हो सकता है कि बाल वाले पेड़में इसी नर पेड़के परागसे बहुत कम फल लगें। इसलिये इन सब बातोंपर भी पूरा ध्यान रखना पड़ता है। मादा पेड़के फूल ज्योंही खिलने लगते हैं त्योंही उनतक पराग पहुँचाया जाता है। लेकिन एक गुच्छेके फूलों के खिलते-खिलते ८ या १० सप्ताह लग जाते हैं। फल भी इसी क्रमसे पकता है और गुच्छोंमेंसे बार-बार पके फलोंको तोड़ना पड़ता है। केलेकी तरह यदि गुच्छेको काटकर पेड़से अलग कर दिया जाय तो फल नहीं पकता। काटकर रखा हुआ हरा खजूर हरा ही रह जायगा और उसका स्वाद बहुत कड़वा हो जायगा।

अमरीकामें खजूर तोड़नेवाले मचानपर चढ़कर फल तोड़ते हैं। जैसे जैसे पेड़ बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे मचान ऊँचे कर दिये जाते हैं। मचानोंपर चढ़नेके लिये एक सीढ़ी रहती है। मिश्र देशमें रस्सी और कमरबन्दके सहारे पेड़पर चढ़कर खजूर तोड़ते हैं। वहां तो खजूर तोड़नेवालोंकी एक जाति ही अलग हो गयी है। परन्तु जिस रीतिसे वे हज़ारों वर्ष पहले फल तोड़ते थे अब भी तोड़ते हैं।

सिंचाई कब-कब होती है ?

जब पौधे अपनी मांसे अलग किये जाते हैं तो ४० दिन तक उन्हें सबेरे और शाम दोनों समय सींचा जाता है। उसके बाद ४० दिनतक केवल एक ही बार सींचा जाता है। फिर सालभरतक हर दूसरे दिन सिंचाई होती है। इसके बाद अंततक उन्हें सप्ताहमें केवल एकबार सींचा जाता है। अगर पानी १५ फुटसे अधिक गहराईपर न हो तो बिना सिंचाईके भी काम चल जायगा। लेकिन फल इतना ज्यादा न लगेगा। शुरूमें एक एकड़ खेतमें खजूर बोने और खेतको तैयार करनेमें लगभग दस हज़ार या १५ हज़ार रुपया लग जाता है। लेकिन एक बार अच्छी तरह तैयार हो जाने पर एक खजूरके पेड़से प्रति वर्ष २॥ मन खजूर पैदा होता है। यह मिश्रके पैदावारका लगभग दूना है। बाज़ बाज़ पेड़ोंमें तो छः-छः मन खजूर प्रति वर्ष फलते हैं और कोई भी फ़सल ऐसी नहीं है जो इतने ज्यादा दिनोंतक लगातार एक तरहसे भोजन-सामग्री पैदा करे।

दजला और फुरात नदियोंके संगमके पाससे अधिकांश खजूर संसारके अन्य देशोंमें भेजा जाता है। बकरोंके बालके बने बोरोंमें भरकर ऊँटपर लादकर ये जहाज़तक पहुँचाये जाते हैं। आजसे हजारों वर्ष पहले जिस तरह ये लादे जाते थे उसी तरह अब भी लादे जाते हैं। अमरीकाकी प्रतियोगितासे वे अब भी बाज़ी मार ले जाते हैं, क्योंकि खजूर के अलावा वे इससे और भी चीजें पैदा करते हैं। रस्सी, जलानेके लिये लकड़ी और छानेके लिये फूस सब कुछ वह इसी पेड़से पाता है। खजूरकी ही रोटी वह खाता है और ताड़ी देनेवाले पौधोंने वह अपना पेय पदार्थ पाता है।

खजूरके पेड़ बड़े तगड़े होते हैं। पाला मारनेसे भी ये नहीं मरते और अभीतक इसका पता नहीं लगा कि कितनी गरमी वे सहन कर सकते हैं। अमरीकाके मैदानोंमें उनपर इतनी गरमी पड़ती है जितनीसे कीड़े मकोड़े और अंडे सभी जल जाते हैं।

कोई कह नहीं सकता कि अमरीकामें खजूरकी खेती कहां जाकर रुकेगी।

बोलुर-डैम जो अभी हालमें बना है मीलोंतक पानी पहुँचायगा और वहां खजूर लगाये जायेंगे। नयी-नयी ऋतुओं और देशोंमें खजूर उगानेका प्रयत्न किया जा रहा है जिससे पता चलता है कि शायद सहारासे बिलकुल विभिन्न देशोंमें भी खजूर उपज सकेंगे। सम्भव है कि अमरीका करोड़ों रुपयेका माल प्रति वर्ष बाहर भेज सके। क्या भारत के मरुस्थलोंमें खजूरकी खेती नहीं की जासकती?

ब्रेड-फ्रूट

प्रशान्त महासागरके द्वीपोंमें ब्रेड-फ्रूट नामका एक अत्यन्त उपयोगी फल होता है। किसी समय यह फल उन द्वीपोंके अगणित मूल निवासियोंका एक आवश्यक और प्रधान खाद्य पदार्थ था। उन लोगोंका जीवन-निर्वाह प्रायः इसी फल पर होता था। परन्तु अब धीरे-धीरे इसके वृक्षोंका नाश होता जा रहा है। यदि उसकी रक्षाका कोई उचित उपाय नहीं किया गया तो एक दिन इस वृक्षका संसारसे लोप अनिवार्य है। इसका फल पौष्टिक, स्वादिष्ट और स्वास्थ्य-प्रद है।

कैप्टेन कुककी यात्रामें उनके सहयात्री सोलेंडर और एक वनस्पति-विद्ने इस फलको देख कर कहा था कि 'संसारमें यह एक अत्यन्त उपादेय वनस्पति' है। उसके सम्बन्धकी कहानियाँ यात्रियों और जल-दस्युओंकी ज़बानी सुन कर विलायतमें लोगोंको बड़ा कौतूहल उत्पन्न हुआ। यही नहीं, ब्रिटिश सरकारने अपने ईस्ट इंडीजके द्वीपोंमें इसके पेड़ लगानेके लिये ताहितीसे इसे ले आनेको एक जहाज़ भेजा था। इस जहाज़का नाम बाउन्टी था। सन् १७२७ में लेफ्टेनेंट ब्लिधके नायकत्वमें एक जहाज़ इङ्गलैण्डसे रवाना हुआ था। मार्गमें अनेक विघ्न-बाधाओंको झेल कर यह एक वर्षमें ताहितीके तटपर पहुँच सका था। कोई छः महीने तक उस पर वृक्षके पौधे लदते रहे। ब्लिध साहब इसके एक हज़ार पौधे लेकर रवाना हुए थे। परन्तु वापस आते समय एक महीना बाद जहाज़ियोंने बीच समुद्रमें बलवा कर दिया। उन्होंने ब्लिध साहबको उनके पक्षके अठारह साथियों सहित एक नावपर बिठा कर समुद्रमें छोड़ दिया और वह जहाज़ लेकर ताहितीको फिर लौट आये। इन लोगोंने ताहितीनिवासी स्त्रियोंके प्रेममें फँसे रहनेके कारण यह गोल-माल किया था। ताहिती आकर उन लोगोंने वहाँके कुछ मर्दों और स्त्रियोंको अपने जहाज़ पर आनेको बाध्य किया। इसके बाद इन्हें अपने साथ लेकर वे लोग दिटकैर्न नामक द्वीपको चले गये और वहाँ अपना उपनिवेश कायम किया। इस घटनाके पच्चीस वर्ष बाद अमेरिकावालोंने इस स्थानको खोज निकाला था।

उधर लेफ्टेनेंट ब्लिध अपने साथियोंके साथ बहते उतराते कोई हज़ार मीलकी यात्रा करके मोलुकासके टियोर नामक स्थानमें जा लगे। वहाँसे वह इङ्गलैण्ड राज़ी खुशी पहुँच गये। उनका हाल जान कर ब्रिटिश-सरकार ने 'प्रावीडेंस' नामका दूसरा जहाज़ रवाना किया। यह जहाज़ सन् १७६१ के अगस्तमें इङ्गलैण्डसे रवाना हुआ था और दूसरे वर्षके अप्रेलमें ताहितीमें जा लगा था। वहाँसे वह ब्रेड-फ्रूटके ७०० पौधे लेकर चला और सन् १७६३ के जनवरी
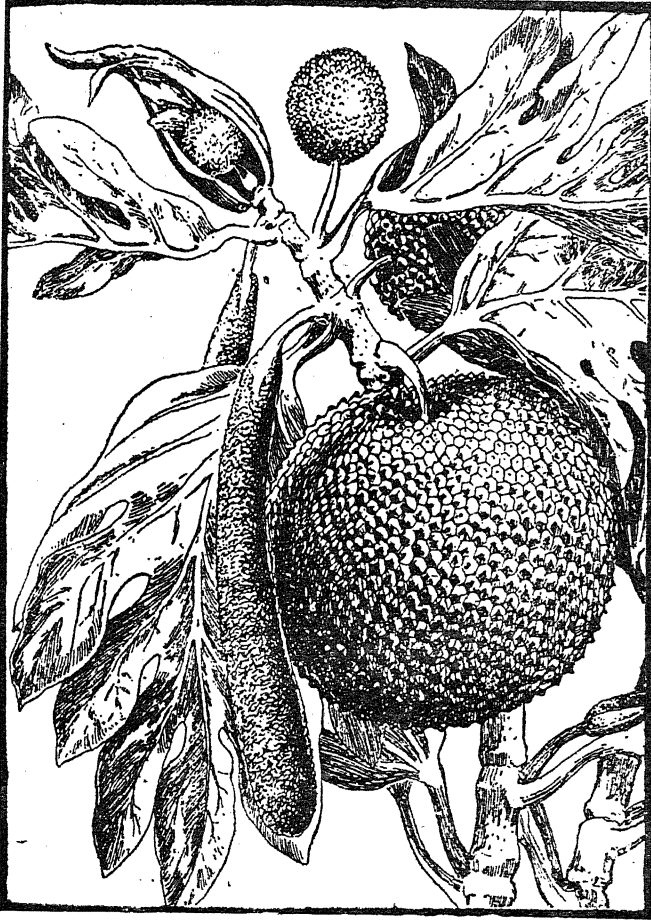
ब्रेड-फ्रूट।

कटहलकी तरहका यह फल साउथ-सीके टापुओंमें होता है और बहुत पौष्टिक होता है।

में वेस्ट इंडीज़में जा पहुँचा। इस प्रकार ब्रेडफ्रूटके वृक्ष सभ्य जगत में पहुँच गये।

ब्रेडफ्रूटका पेड़ शानदार होता है। कभी कभी उसकी ऊँचाई २२ गज़के लगभग जा पहुंचती है। इसका सिरा बड़ी बड़ी और गहरे हरे रङ्गकी पत्तियोंसे सुशोभित रहता है। इसमें एक हरा फल लगता है। पर जो फल शाखोंके सिरे पर लगते हैं वह दो दो तीन तीन तक एक साथ लग जाते हैं। इसके फल एकसे चार किलो* तक वज़नमें होते हैं। वह गोलाई लिए हुए लम्बे होते हैं। पर प्रायः उनका डौल डौल बेढंगा होता है। किसी किसी जातिके फलका ऊपरी भाग छोटे-छोटे और मुलायमसे आवृत रहता है, परन्तु दूसरी जातियोंके फलका ऊपरी हिस्सा वैसा नहीं रहता है। उस पर रो नहीं होते, पर वह खुरदरा अवश्य रहता है।

कच्चा फल हरा होता है और उसका गूदा सफेद तथा रेशेदार होता है। कच्चे फलको लोग नहीं खाते। वह खानेमें अच्छा नहीं लगता है। परन्तु, जब छीलकर उसके मोटे मोटे टुकड़े भून या उबाल लिए जाते हैं, तब वह मीठे आलूकी भाँति स्वादिष्ट मालूम पड़ते हैं। पर जब इसका फल पूरा बढ़ जाता है तब वह पीला पड़ जाता है। उसके गूदे का रङ्ग भी पीला हो जाता है। इसके सिवा उससे एक प्रकार की मधुर गन्ध निकलती है जो बहुत कड़ी होती है। यदि उसका एक फल किसी कमरेमें रख दिया जाता है तो वह उसकी सुगन्धसे महकने लगता है। बड़े फलका गूदा मीठा और मुलायम होता है। उसे छील और उसके बड़े बड़े टुकड़े करके पका लेने पर वह अकेला या बालाईके साथ खानेमें बहुत स्वादिष्ट मालूम पड़ता है। परन्तु इस रूपमें भी उसकी तेज़ गन्ध बनी रहती है।

क्यूरोस नामक एक पुराने यात्रीका कहना है कि दुनियामें ब्रेडफ्रूटसे बढ़कर कोई फल नहीं होता। प्रसिद्ध वैज्ञानिक वालेसने लिखा है कि समशीतोष्ण या गर्म देशों

---

*एक किलो अथवा किलोग्राम लगभग सवा सेरका होता है।

केला।
सैकड़ों वर्षोंसे अलैंगिक रीतिसे उत्पन्न होनेके कारण अब अधिकांश जातियोंके केलोंमें बीज लगते ही नहीं।

में मांसके साथ खाई जानेवाली एक भी वनस्पति इससे टक्कर नहीं ले सकती। चीनी, दूध या मक्खनके साथ इसकी बहुत ही स्वादिष्ट लपसी बनती है। यही नहीं किन्तु रोटी और आलू की भाँति इसको भी खाते रहनेमें जी नहीं ऊबता।

कैप्टेन कुकने लिखा है कि जो वनस्पतियाँ ताहितीके निवासियोंके खाद्यका काम देती हैं उनमें प्रधान ब्रेडफ्रूट ही है। इसकी प्राप्तिमें उन्हें अधिक परिश्रम या कठिनाई नहीं उठानी पड़ती, केवल वृक्षपर चढ़कर फल तोड़ लेने पड़ते हैं। यदि कोई आदमी इसके आठ दस वृक्ष लगा देता है तो उनसे उसका तथा उसके उत्तराधिकारियोंका जीवन-निर्वाह होता रहता है। वह उनकी जीविकाका मुख्य साधन ही नहीं होता किन्तु उससे उनकी आमदनी भी बढ़ जाती है।

इस वृक्षके बाग-बगीचे कहीं नहीं देख पड़ते, अतएव यह नहीं बताया जा सकता कि एक वृक्षमें कितने फल लगते हैं, किन्तु लोगोंका कहना है कि वर्षभरमें एक पेड़में २५ 'मेट्रिक' टन फल लगते हैं।

ब्रेडफ्रूटमें लगभग १४·५ फ़ी सदी शक्कर, ६·२ फ़ी सदी कारबोहाइड्रेट्स और ०·५ चर्बी होती है। लगभग यही तत्त्व केलेमें भी इतनी ही मात्रामें पाये जाते हैं; परन्तु केलेकी अपेक्षा इसमें १४·५ फ़ी सदी व्यर्थ पदार्थ अधिक होता है। ऐसी दशामें इस बातमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है कि यह फल अपनी उत्पत्तिके देशके निवासियोंका मुख्य खाद्य पदार्थ बन गया।

यद्यपि ब्रेडफ्रूटके सम्बन्धमें पहलेके समुद्री यात्रियोंने बहुत कुछ लिखा है, तथापि अभी तक इसके सम्बन्धमें पूर्ण ज्ञान प्राप्त करनेके लिए व्यवस्थित प्रयत्न नहीं किया गया है। सम्पूर्ण ओशेनियामें इसकी अनेक जातियाँ पायी जाती हैं। परन्तु, यदि यह पता लग जाय कि यह भिन्नभिन्न जातियाँ परस्पर मिलती जुलती हैं तो यह सिद्ध हो जाय कि यह वृक्ष एक ही स्थानसे भिन्न-भिन्न द्वीपोंको उस समय पहुँचाया गया था जब पालीनेशियन लोग वहाँ जाकर आबाद हुए थे।

वनस्पति-शास्त्री सोलेंडरने ताहितीमें ब्रेडफ्रूटकी बीस जातियोंका उल्लेख किया है; परन्तु उसकी सूची कभी प्रकाशित नहीं हुई। इस फलका पता लगनेके सौ वर्ष बाद इसका पूरा विवरण पहले पहल सीयनने प्रकाशित किया। उसने लिखा है कि फिजीमें इसकी तेरह जातियाँ हैं। बेनेटने अपनी प्रसिद्ध पुस्तकमें लिखा है कि ताहितीमें इस फलकी कोई पचीस जातियाँ मिलती हैं। क्रिस्चियन लिखता है कि कैरोलीन द्वीपोंमें इस फलकी तिरपन जातियाँ हैं। इसी लेखकने यह भी लिखा है कि मारक्वीसास द्वीपोंमें इसकी कमसे कम बत्तीस जातियाँ मिलती हैं। पालीनेशियन रिसर्चेज़में एलिस लिखता है कि मिशनरी लोगोंको इसकी लगभग पचास जातियां ज्ञात थीं और मुझे उनके नाम मालूम थे।

परन्तु ब्रेडफ्रूटकी यह जातियाँ कहाँसे कब उत्पन्न हो गईं, यह प्रश्न बड़ा मनोरंजक है।

पहले पहल यूरोपवालोंने बीजहीन ब्रेडफ्रूट सन्

१५६५ में मारक्वीसासमें देखा था और ज्यों ज्यों महासागरके दूसरे द्वीपोंका पता लगता गया, त्यों त्यों उन्हें इसकी दूसरी जातियोंका भी ज्ञान होता गया। मलाया द्वीप-पुंजमें इस वृक्षको रयफ़लियसने सन् १६५३के लगभग देखा था। उस समय तक इसका पता केवल डच ईस्ट इंडीज़के पूर्वी तथा दक्षिण-पूर्वी भागमें ही था।
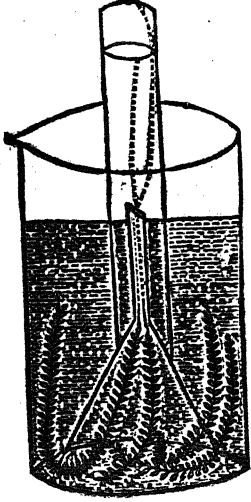
पौधोंका काम।

इस बातका कि पौधे वायुके कारबन डाइऑक्साइड से कारबन ग्रहण करते हैं और ऑक्सिजन छोड़ते हैं प्रत्यक्ष प्रमाण जलके भीतर होने वाले पौधोंसे सहजमें मिल सकता है। पौधेको पानीमें रखकर उसपर कीप रक्खें। फिर कीपके ऊपर पानीसे भरी नलिका उल्टा करके रक्खें। जब पौधेमें धूप लगेगी तो पौधा जलमें घुले कारबन डाइऑक्साइडका कारबन ग्रहण करेगा और ऑक्सिजन छोड़ेगा, जो नलिकामें एकत्रित होगा।

यह बात सम्भव प्रतीत होगी कि पहले पहल बीजहीन ब्रेडफ्रूड जावाके पूर्वके द्वीपों या मोलुकासमें कहींपर उत्पन्न हुआ होगा। वहांसे पालीनेशियन लोग जहाँ जहाँ गये, अपने साथ उसे लेते गये। ओशेनियामें तो इस वृक्षकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें अनेक गाथाएं प्रसिद्ध हैं।

'ह्वाइट शैडोज़ आव् दि साउथ सीज़में' फ्रेडरिक ओ ब्रीन ने लिखा है कि मारक्वीसन लोगोंके दिन अब गिने जा रहे हैं। इस मतकी पुष्टि सन् १९१९ में जे० डब्ल्यू चर्चने भी की है। उन्होंने लिखा है कि मारक्वीसासमें अब केवल १९५० आदमी रह गये हैं। यहाँकी जनसंख्या पिछले पाँच वर्षोंमें ३३ फ़ी सदीके हिसावसे घट गई है और ऐसा समझ पड़ता है कि दस वर्ष बाद असली मारक्वीसनका अस्तित्व मिट जायगा। किसी समय जो प्रदेश खूब आबाद था वह अब जङ्गलोंसे आवृत हो गया है।

यह जानी हुई बात है कि लगाये हुए वृक्ष जङ्गली वृक्षोंके बीच नहीं ठहर सकते। उनकी रक्षाके लिए मनुष्य की निगरानीकी आवश्यकता है। और मारक्वीसन लोगों का विनाश अनिवार्य है, अतएव ब्रेडफ्रूटकी भी खैर न समझनी चाहिये। इसकी कुछ जातियोंका अस्तित्व पहले से ही नहीं रह गया या शीघ्र ही मिट जाने वाला है। ऐसी दशामें यह आवश्यक है कि इसकी रक्षाका कुछ आयोजन अवश्य होना चाहिये, अन्यथा एक ऐसी जातिके प्रधान भोज्य पदार्थका संसारसे लोप हो जायगा जिसका विनाश करनेमें यूरोपीय सभ्यताका विशेष हाथ रहा है।

कोपलोंकी रक्षा

पशु अपने बच्चोंको धूप, मेह और हवासे बचानेके लिये अनेक उपाय करते हैं। पक्षी अंडा देनेके समय घोंसला बनाता है जिसमें बच्चे बेखटके रहते हैं। चूहे, छछून्दर, बिल्ली, कुत्ते इत्यादि अपने बच्चोंको या तो बिलों में रखते हैं या खोह खाईं अथवा झाड़ियोंमें, जहाँ बेचारे निर्बल बच्चोंको किसी प्रकार का भय नहीं रहता। गाय, बैल, गदहा इत्यादिके बच्चोंके शरीर पर बड़े बड़े बाल होते हैं जिनके कारण सर्दी गर्मी अथवा पानीका कुछ असर नहीं होता। अब प्रश्न यह है कि वृक्ष जो किसी ऐसे उपाय करनेके योग्य नहीं हैं अपने नवीन और कोमल कोपलोंको ग्रीष्म ऋतुकी वेगसे बहने वाली गर्म हवा तथा कड़ी वृष्टिसे किस प्रकार बचाते हैं।
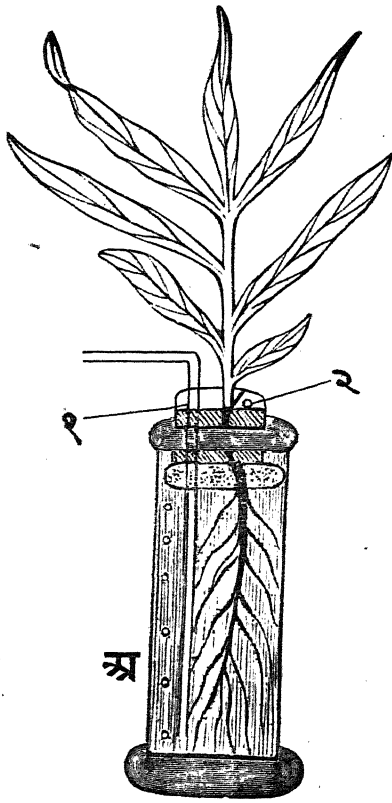
पौधे पानी खींचते हैं।

पौधे बराबर अपनी जड़से पानी खींचते रहते हैं। इस बातका प्रमाण पानेके लिये शीशेके बरतन (अ) में पानी भर कर डाट (२) लगा दें और उसे चीर कर, दिखलाई गई रीतिसे, पौधा लगा दें। भीतर वायु जानेके लिये नली (१) लगा दें। आप देखेंगे कि पानीका तल बराबर नीचा होता जा रहा है, जो सिद्ध करता है कि पौधा बराबर पानी खींच रहा है।

पीपल, बरगद, पाकड़ इत्यादिके पत्तोंको तो आप लोगोंने देखा ही होगा। यदि आप उनके कोपलोंको सूक्ष्म दृष्टिसे देखें तो यह मालूम होगा कि नई नई कोमल पत्तियोंके ऊपर एक गहरी खोल चढ़ी हुई है और जब कोंपल बढ़ती है तो यह खोल फटकर कुछ समय तक तो लटकी रहती है और अन्तमें धीरे धीरे सूखकर गिर जाती है। रबरके वृक्षमें यह खोल बहुत बड़ी होती है और बहुधा ५ तथा ७ इञ्च तक लम्बी होती है।

घुइयां, केला और बैजन्तीके फूलोंपर भी एक बड़ी मोटी और रंगदार खोल होती है और जिस समय फूल खिलने लगते हैं, यह सूखने लगती है। इस खोलका और कोई प्रयोजन नहीं है सिवाय इसके कि कोपलों और कलियों को निर्बलताके समयमें उनको गर्मी, हवा और अन्य हानिकारक शक्तियोंसे बचावे।

चैत्र और बैसाखके महीनेमें बेल और शीशमकी पुरानी पत्तियां झड़ने लगती हैं और नई पत्तियां निकलने लगती हैं। यदि आप नई पत्तियोंको देखें तो जान पड़ेगा कि उन के ऊपर कोमल और छोटे छोटे रोओंकी एक तह है। यह पुरानी पत्तियोंमें नहीं होती। मनुष्य और अन्य पशुओंमें रोओंका यह प्रयोजन है कि उनको गर्मी और सर्दीसे बचावे। यदि इसी विचारसे हम शीशम और बेलकी पत्तियोंके रोओंको देखें तो मालूम होगा कि उनका भी यही काम है कि कोमल पत्तियोंको गर्मी और सर्दीसे बचावें। यह बात ठीक भी मालूम होती है जब हम यह देखते है कि पुरानी पत्तियोंमें यह रोएँ नहीं होते।

बांस, ईख और नरकट इत्यादिके तनेमें गांठें होती हैं और इन्हीं गिरहोंके ऊपर पत्तियां होती हैं। पत्तियोंके नीचे का हिस्सा चौड़ा होकर कुछ दूरतक डंठलसे मिला रहता है और इन पत्तियोंके नीचे जड़में भीतर गिरहसे निकलता हुआ छोटासा अँखुआ होता है। प्रथम तो यह पत्तियोंके भीतर छिपा रहता है किन्तु बड़ा होनेपर पत्तियोंको फोड़ कर बाहर निकल जाता है। अब ऐसी पत्तियोंका प्रयोजन आप भली भांति समझ सकते हैं। अँखुआ उनके अन्दर बाल्यावस्थामें तो ढंका रहता है किन्तु जब बलिष्ट होजाता है तो पत्तियोंको फाड़कर बाहर निकल आता है।

आप लोगोंने केला और बैजन्तीके वृक्षोंको तो देखा ही होगा। उनकी पत्तियां पहले अपने वृक्षोंमेंसे लपेटे हुए काग़ज़के पुलिन्देकी भांति निकलती हैं और धीरे-धीरे बाहर निकलकर फैल जाती हैं। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह पत्तियां इस प्रकार लिपटी क्यों रहती हैं। इसका उत्तर यह है कि ऐसी अवस्थामें पत्तियां फैली हुई अवस्थासे अधिक मज़बूत होती हैं।

[विज्ञान, सितम्बर, १६४१

यही कारण है कि बांस और नरकट इत्यादिके दरख्त पोले होते हैं। उदाहरणके लिये आप काग़ज़को लीजिये। एक काग़ज़का वरक तेज़ हवाके वेगको नहीं सहन कर सकता परन्तु यदि आप इसको लपेटकर पुलिन्दा बना दें तो बहुत मजबूत हो जाता है।

पौधोंका वृत्तान्त

वृक्ष भी पशुओंकी भांति जाति विस्तारक हैं

संसारमें जितने पशु हैं सबको प्रकृतिने इस योग्य बनाया है कि सब एक स्थानसे दूसरे स्थान आ जा सकें। पृथ्वीपर रहनेवाले जानवर हज़ारों कोस ऐसे स्थानमें जहां उनके खानेकी सामग्री और रहनेका सामान मिल सके चले जाते हैं। पक्षी अपने परोंके बलसे बड़े बड़े समुद्र और घाटियोंको पार करते हैं। मछलियाँ और अन्य जलमें रहनेवाले पशु एक समुद्रसे दूसरे समुद्रमें तैर कर चले जाते हैं। इससे यह विदित है कि हरएक पशुको अपनी जातिका फैलाना कुछ कठिन नहीं है। यही कारण है कि एक किस्मके जानवर पृथ्वीके भिन्न भिन्न भागोंमें मिलते हैं। अब प्रश्न यह है कि वृक्षोंमें तो चलनेकी शक्ति नहीं होती वे अपनी जातियोंको किस प्रकार फैलाते हैं।

प्रायः यह देखा जाता है कि बागों और खेतोंमें किसी साल ऐसे वृक्ष उपजने लगते हैं जो पहले कभी नहीं जमे थे। मकानोंके ऊपर पीपल, बरगद या कुछ ऐसे पेड़ोंका जमना एक साधारण बात है। इस बातपर प्रायः लोग ध्यान नहीं देते मगर यह वृक्षोंकी अद्भुत शक्तिका एक उदाहरण है।

मंदारके वृक्षको बहुत लोग जानते हैं। इसकी छीमी बड़ी बड़ी हरे रंगकी होती है और सूखनेपर भूरे रंगकी हो जाती है। यदि आप उनको चीर कर देखें तो बहुतसे मिर्चके समान काले काले बीज दिखाई देंगे और हर एक बीजके ऊपर रूईके समान सफ़ेद रंगका भूआ दिखलाई देगा। इस भूयेके कारण बीजोंमें ऐसी शक्ति आ जाती है कि यह उड़ सकते हैं। यह वृक्ष अपने बीजोंको भिन्न भिन्न स्थानोंमें भेजकर अपनी जातिको फैलाता है। सेमल, कपास और मुलहठीपर भी इसी प्रकारका भुआ होता है।

शीशम, चिलबिलके बीजोंमें भी उड़नेकी शक्ति होती है मगर इनमें भूआ नहीं होता बल्कि इनके बीज सूखकर काग़ज़की भांति हलके हो जाते हैं और हवामें उड़ सकते हैं।

बीछू एक ऐसा वृक्ष है जो बहुधा खेतोंमें जमा करता है। इसके फल प्रथम हरे होते हैं मगर सूखनेपर ऊपरकी खोलराई गिर जाती है और भूरे रंगके बीज लटका करते हैं। यदि इन बीजोंपर आप ध्यान दें तो देखेंगे कि नीचे-वाले सिरेपर दो तीव्र टेढ़े और कठोर कांटे होते हैं। यदि आप सावधान न रहें तो यह कांटोंके द्वारा आपके वस्त्रोंको छेदकर लटक जायँगे। यदि कोई चलने फिरनेवाला रोयेंदार पशु वृक्षके निकट जाय तो बीज उनके बालोंमें फँस जायँगे और जहां कहीं वह पशु जायगा वहाँ उसके साथ जायँगे। वहां अनुकूल जलवायु और पृथ्वीके मिलनेपर जमेंगे।

गोखरूमें भी कांटे होते हैं जो पशुओंके खुर और बालोंमें सहज ही फँस जाते हैं। चिड़चिड़ा और टूँगवाले दरख़्त भी इसी प्रकारसे अपनी जातिको फैलाते हैं। बरगद, पीपल, पाकड़ इत्यादिके फलोंको पक्षी भोजन करते हैं, किन्तु उनके बीज ऐसे कठोर होते हैं कि पेटकी पाचन शक्ति उनको नहीं पचा सकती, और पक्षीके बीटमें वे ज्योंके त्यों निकल जाते हैं। पक्षी प्रायः इधर उधर घूमा करते हैं और बहुधा बहुत दूर दूर तक निकल जाते हैं इसी कारण-से वृक्ष ऐसे स्थानोंमें जा जमता है जहां मनुष्यका लगाना सम्भव नही।

पाइन और इस जातिके अन्य वृक्षोंके भी बीज इतने छोटे और हलके होते हैं कि हवा उनको भली भांति उड़ा सकती है ?

नारियल बहुधा समुद्रके किनारेवाले देशोंमें होता है। इसके फलके ऊपर एक विचित्र जटा होती है जिसके कारण वह पानीमें भली प्रकार तैर सकता है और भीतरका खोपड़ा ऐसा कठोर और बलिष्ट होता है कि उसपर पानीका कुछ
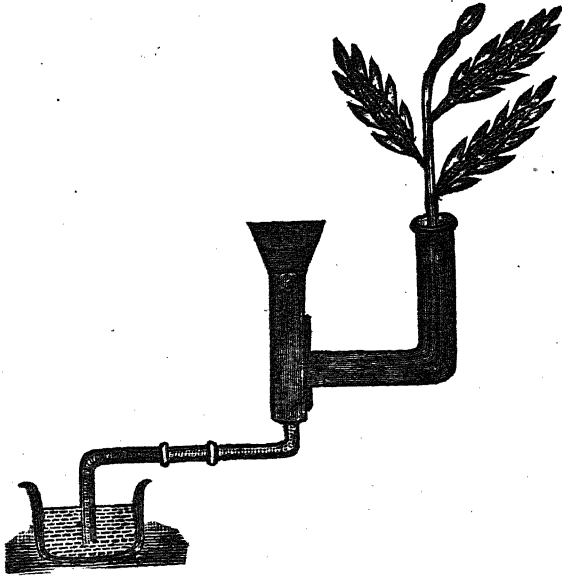
पौधे पानी खींचते हैं।

चित्रमें दिखलाई गई रीतिसे पौधेको पानीसे भरी शीशेकी नलिकामें रखने पर पानी बराबर ऊपर चढ़ता रहता है।

भी प्रभाव नहीं होता। यह फल समुद्र की लहरोंमें पड़ कर दूर देशोंमें जा लगता है और वहाँ जमता है।

वृक्ष भी जानवरोंकी भाँति स्वयं रक्षक हैं

जितने जानवर हम लोग साधारण रीतिसे देखते हैं उनमेंसे अधिकतर ऐसे हैं जिन्होंने अपनेको अपने शत्रुओं से बचानेके लिए कोई न कोई प्रबन्ध कर रखा है। यदि हम उन पशुओंपर ध्यान दें जो पृथ्वीपर रहते हैं तो जान पड़ेगा कि ये और पशुओंसे इस विषयमें अधिक परिपूर्ण हैं। हाथी और अन्य बड़े बड़े जानवर अपने प्रबल शरीर और उच्च बलसे और पशुओंको दबाए रहते हैं। गाय, बैल, हिरन इत्यादि अपने सींगोंके बलसे अपने शत्रुओंको भयभीत करते हैं। साहीमें इतने बड़े बड़े और नोकदार काँटे होते हैं कि अन्य जानवर उससे दूर रहते हैं। बिच्छू अपने अत्यन्त पीड़ित करनेवाले डंककी चोटसे मार भगाता है। छछून्दर अपनी दुर्गन्धके कारण बची रहती है। साँप मस्तकमें रहनेवाले विषके ज़ोरसे अनेक पशुओंका नाश करता है। सूंड़ीके रोओंके बदनमें लग जानेसे अत्यन्त खुजली पैदा होती है। चींटे और इस प्रकारके अन्य जानवर अपनी छोटी-छोटी कांटेके समान सूड़ोंसे काटकर शत्रुको बेचैन कर देते हैं। अब प्रश्न यह है कि क्या वृक्षोंने भी अपनी रक्षाका कुछ प्रबन्ध कर रखा है या नहीं? बड़े बड़े वृक्ष जैसे साखू, पीपल, महुआ इतने विशाल और मज़बूत होते हैं कि कोई पशु उनके लिए हानिकारक नहीं हो सकता। आँधी तूफ़ान भी उनकी कुछ हानि नहीं कर सकते। बबूल बेल अकोल इत्यादि वृक्षोंमें इतने बड़े बड़े कांटे होते हैं कि बहुत कम पशु उनके पास जाते हैं। नागफनीके तेज़ काँटोंसे हर एक जानवर कोसों भागता है। गंधरसायन और हुरहुरकी दुर्गन्धके कारण सब जानवर अलग रहते हैं। पोस्ता, कुचिला इत्यादिके वृक्ष ऐसे विष पैदा करते हैं हैं कि उनके खानेसे तुरंत मौत होती है। केंवाचकी छीमी छू लेनेसे तमाम शरीरमें अत्यन्त दुःख देनेवाली खुजली पैदा होती है।

हैंसा, भटकटैया और भड़भांडकी पत्तियोंमें कांटे तो अवश्य छोटे छोटे होते हैं परन्तु इस तरह ज़्यादा और तेज़

लताएँ।

कुछ लताएँ दाहिनी ओर लिपटती हैं और कुछ बाईं ओर। प्रत्येक जातिकी लता एक निश्चित रीतिसे ही लिपटती है।

होते हैं कि तमाम बदनमें धँस जाते हैं जिसके कारण बड़ी तकलीफ़ होती है। बकरी, गाय, बैल, भैंस जो पत्ती खानेवाले पशु हैं वह ऐसे वृक्षोंकी पत्तियोंको कदापि नहीं छूते। इसके अतिरिक्त और बहुतसे उपाय हैं जो जानने योग्य हैं।

पक्षीगण अपने परोंके बलसे धरतीपर रहनेवाले पशुओंके आक्रमणसे निश्चिन्त रहते हैं और वायुमें उड़ कर

मटरकी जड़ें।

मटरकी जड़ोंमें गाँठें पड़ जातीं हैं जो वस्तुत. दंडाणुओंके कारण बनती हैं। इनसे पौधेको पचनशील रूपमें नाइट्रोजन मिलता है।

या वृक्षोंपर घोंसला बनाकर निर्भय रहते हैं। जलके भीतर रहनेकी योग्यताके कारण पशु और पक्षी दोनोंसे जलचर बचे रहते हैं। वृक्षोंमें भी बहुतसे ऐसे वृक्ष हैं जिनका जीवन इसी प्रकार है। कोहँड़ा, लौकी, क्रीपिङ्गपाम और अन्य बेल और लता, वृक्ष या अन्य वस्तुके सहारे ऊपर वायुमें चढ़कर साधारण पशुओंके आक्रमणसे बचते हैं और इस योग्य न होते हुए भी कि स्वयं अपनेसे ही ऊपर बढ़ सकें अत्यन्त वेगसे फलते तथा फूलते हैं। सेवार, जलकुम्भी, कमल इत्यादि जलके वृक्ष हैं और बहुधा गहरे ताल या तलइयोंमें जमते हैं जहाँ चौपायोंकी कौन कहे मनुष्य भी नहीं पहुँच सकते हैं। इनके अतिरिक्त आलू, ज़मीक़न्द, हल्दी, कचूर ऐसे पौधे हैं जिनका जीवन एक अनोखे प्रकारका है। आप यह जानते होंगे कि जिन खेतोंमें ऐसे पौधे लगाये जाते हैं उनमेंसे इनका निकलना सहज नहीं है। इसका कारण यह है कि ऊपरको तरफ़ पत्ते और फल निकलनेके अतिरिक्त इनमें जड़ें भी बैठती हैं जिनमें नए नए अखुओंके पैदा करनेकी शक्ति होती है। अगर इनकी पत्तियाँ और डंठल चर जावें तो अनुकूल समयके आनेपर इन जड़ोंसे नए नए पौधे फिर निकल आते हैं।

पाठकोंको यह बात मालूम हो जायगी कि वृक्ष बिलकुल जड़ जीव नहीं हैं परन्तु पशुओंके समान समय और देशके अनुकूल अपने जीवकी रक्षाके लिए विचित्र प्रबन्ध करते हैं।

द्विअणुओंकी शिल्प-कला

वनस्पति संसारमें यों तो बहुत आश्चर्यजनक पेड़ पौधे आदि हैं लेकिन इस संसारका एक विभाग बहुत ही अद्भुत है। इस विभागकी वनस्पति अन्य पेड़ोंकी भांति तने, पत्ती और जड़ोंमें विभाजित नहीं होती, यह बहुतसे कोष्ठकोंका समूह होती है। प्रत्येक कोष्ठकको स्वयं ही अपनी आवश्यकताओंको पूरा करना पड़ता है और वे भोजन, ओषजन आदिके लिये एक दूसरे पर निर्भर नहीं रहते, द्विअणु इसी विभागके अन्तर्गत है। अन्तर केवल यही है कि इसके अधिकतर साथी समूह बनाकर रहते हैं परन्तु इसके प्रत्येक कोष्ठक एकदम अलग-अलग रहते हैं और एक दूसरेसे बिलकुल सम्बन्धित नहीं रहते।

द्विअणु एक कोष्ठक वाले 'पेड़' हैं। यह इतने छोटे होते हैं कि कोरी आँखसे नहीं देखे जा सकते; इनको देखने

और अध्ययन करनेके लिये सूक्ष्मवीक्षण यन्त्रकी आवश्यकता होती है। यह इतने छोटे होते हैं कि एक आलपिनके सिरपर सौ बल्कि इससे भी अधिक रखे जा सकते हैं। संसार भरके खारी और स्वच्छ पानीमें यह पाये जाते हैं लेकिन ठण्डे प्रदेशोंमें यह प्रचुर संख्यामें पाये जाते हैं।

यह छोटे 'पेड़' बहुत शीघ्रतासे संख्यामें बढ़ते हैं। आधे ही दिनके समयमें प्रत्येक कोष्ठक दो कोष्ठकोंमें विभाजित हो जाता है। यह दो कोष्ठक दो दो कोष्ठकोंमें बँट जाते हैं और इस प्रकार यह क्रम चलता रहता है। दो या तीन सप्ताहमें तो यह संख्या बहुत ही बढ़ जाती है। यह अनुमान किया गया है कि इङ्गलिश चैनलमें. प्लाईमथके समीप एक एकड़ पानीकी सतहके नीचे साढ़े पाँच टन (१५४ मन) द्विअणु प्रतिवर्ष पलते हैं।

दक्षिणी ध्रुवके कुछ भागोंमें १५ फिट मोटी बरफके किनारे सहस्रों मील दूर तक फैली हुई द्विअणु-स्रवकी पट्टी पाई जाती है। इस द्विअणु-स्रवमें भोज्य पदार्थ भी पाये जाते हैं। डा० नैनसनने भी द्विअणुओंकी बहुतायत उत्तरी ध्रुवमें देखी थी। लेकिन दोनों ध्रुवोंके द्विअणुओंकी जाति एकदम भिन्न है।

प्रकृतिने जीवनको सदा एक दूसरे प्राणीपर निर्भर रखा है। जिस समय द्विअणु बहुत अधिक संख्यामें रहते हैं उसी समय जलके अन्य छोटे-छोटे जानवर भी जन्म लेते हैं और इन बहते हुये द्विअणुओंको खाकर वे जीवित रहते हैं। यह जानवर बड़ी-बड़ी मछलियोंकी भोज्य सामग्री हैं। इस प्रकार सामुद्रिक जन्तुओंके भोजनका भार बेचारे द्विअणुओंको उठाना पड़ता है और यह एक प्रकारसे समुद्र के 'चरागाह' हैं।

द्विअणुओंके कोष्ठकोंकी दीवालमें सिलिका पाई जाती है इसलिये दीवालका टूटना कठिन होता है। यह बहुत अल्प समय तक जीवित रहते हैं। मरनेके पश्चात् कोष्ठक के अन्दरका भाग गल जाता है और खोल रह जाता है। यह समुद्र या झीलकी तलहटीमें एकत्रित होते जाते हैं।

अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखी जानेवाली वस्तुओंमें कदाचित् द्विअणुओंके खोल सबसे अधिक सुन्दर होते हैं। इनकी सुन्दरतासे प्रभावित होकर कई वैज्ञानिकोंने केवल द्विअणुओंके बारेमें दृढ़ खोज करनेके लिये अपना सारा जीवन अर्पित कर दिया है। इन्होंने उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवोंके बहुतसे लुप्त और जीवित द्विअणुओंका पता लगाया है। सर अरनैस्ट शैकलेटन और सर डगलस ऑसन ने तो केवल द्विअणुओंको इकट्ठा करनेके ही लिये दक्षिण ध्रुवकी यात्रा की। कहा जाता है कि अब तक ८००० भेदके द्विअणुओंका पता और वर्णन ज्ञात हो सका है। इनमेंसे
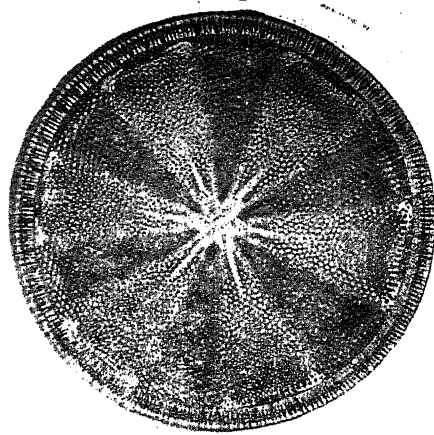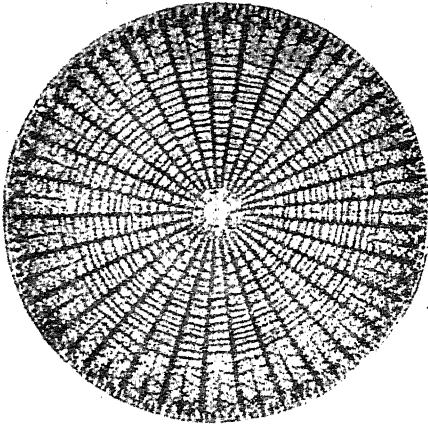
द्विअणु।
शैवाल वर्गके ये सदस्य झील तथा समुद्रकी पेंदियोंमें रहते हैं। उनका रूप सूक्ष्मदर्शकमें बहुत ही सुन्दर लगता है।

बहुतसे तो यूनाइटेड स्टेट्सके राष्ट्रीय चिड़ियाखानेमें एकत्रित हैं; लेकिन कदाचित् बृटिश चिड़ियाखानेमें इससे भी अधिक द्विअणु इकट्ठा हैं।

कारनेगी इंस्टीट्यूट वाशिंगटनके खोज सम्बन्धी कार्यकर्त्ता, डा० एलबर्टमानने द्विअणुओंका वर्णन इस प्रकार किया है :—

'सौ वर्ष पूर्व—जबसे अणुवीक्षण यन्त्र कोरी आँखसे न देखने वाली वस्तुओंको दिखलानेमें सफलीभूत हुआ है, मनुष्योंने एक नये संसारको ढूँढ निकाला है। इस नये संसारकी अनेक आश्चर्यजनक कृतियोंमें द्विअणुओंकी सुन्दरता भी सम्मिलित है। इन द्विणुओंके शरीरकी सुन्दर और सुडौल बनावटको देख कर वनस्पति विभागके वैज्ञानिक चकित रह गये। द्विअणुओंके बारेमें जाननेके लिये वैज्ञानिक उत्सुक हो उठे और उनकी खोजोंके वर्णनसे पत्रिकाओंके पन्ने पर पन्ने भरने लगे। द्विअणुओंकी जाँच करनेके लिये बहुत तीक्ष्ण ताल वाले अणुवीक्षण यन्त्रोंका बनाना आरंभ हो गया। यहीं तक ही नहीं लेकिन कुछ विशेष द्विअणुका दीख जाना ही तालकी तीक्ष्णताका प्रमाण माना जाने लगा।'

इस शताब्दिके आरम्भमें द्विअणुओंके बारेमें कुछ विशेष बातें मालूम हुई। अभी तक द्विअणुओंको केवल सुन्दर शिल्पकला और कोमलताका नमूना ही समझा जाता था। लेकिन अब मालूम हुआ कि यह सामुद्रिक जीवनके लिये बहुत आवश्यक हैं। इसलिये पिछले २० वर्षोंसे वैज्ञानिक द्विअणुओंके व्यावसायिक महत्वके बारेमें ही खोज कर रहे हैं।

द्विअणुओंकी प्रसिद्धिके दो कारण हैं, प्रथम उनके शरीरकी बनावट और दूसरा उनमें तरह-तरहके नमूने। अभी तक ८००० प्रकारके द्विअणु खोजे जा चुके हैं। इनमें करीब सभी भिन्न प्रकारके हैं। जितनी भी तरहके बनावट और नमूने मनुष्य विचार कर सकता है करीब-करीब उन सभी प्रकारके द्विअणु पाये जाते हैं। गोलाई लिये हुए बनावटमें गोल, वृत्ताकार, चन्द्राकार, अण्डाकार, लहरियेदार आदि अनगिनत बनावटके द्विअणु पाये जाते हैं। सममित द्विअणुओंमें दो, चार छः, आठ यहाँ तक कि बीस किनारे तक पाये जाते हैं। यह किनारे सीधे, गोलाई लिये हुए उन्नतोदर, नतोदर आदि होते हैं। इनकी गोलाई आदि उचित परिमाणमें चारों तरफ एक समान और बड़ी सफाई से बनी होती है। इस सफाईको देख पहले तो जौहरी और सुनार बहुत प्रसन्न होते हैं लेकिन जब वे बहुत प्रयत्न करनेपर भी उसकी प्रतिलिपि नहीं बना पाते तो निराशाकी एक आह खींच कर रह जाते हैं। द्विअणुओंकी सुन्दरता शरीरमें ऊँचाई निचाई होनेसे और बढ़ जाती है। यह ऊँचाई निचाई गोल लहरोंके समान चारों ओर समान रूपसे फैली होती है। यद्यपि द्विअणुओंके चित्रोंमें उतनी तीक्ष्णता नहीं आ सकती है फिर भी इन्हें देखकर आप उनकी सुन्दरताका कुछ अनुमान कर सकते हैं।

लेकिन द्विअणुओंके धरातलकी सुन्दरता और भी बढ़ी हुई है। यह इतनी गहन और इतने प्रकारकी होती है कि उसका सन्तोषजनक वर्णन एक प्रकारसे असम्भव है। कई द्विअणुओंमें धरातल चमकती हुई छड़ोंसे—जो सीधी या मुड़ी होती है—ढँका रहता है। दूसरोंमें छड़ोंकी जगह मोती होते हैं। यह मोती झुंडोंमें, या समानान्तर रेखाओंमें या सीधी रेखामें इधर उधर छितरे रहते हैं। कई द्विअणुओंमें यह कांच पर पड़ी ओसके बूँदोंके समान दिखाई पड़ते हैं। एक विशेष जातिमें जाल-सा बन जाता है। कभी-कभी इस जालमें खाली स्थानों पर छोटे-छोटे मोती पड़े रहते हैं जिससे द्विअणुकी सुन्दरता और भी बढ़ जाती है।

जब हम यह देखते हैं कि द्विअणुके एक ही कोष्ठकमें ईश्वरने इतनी सुन्दरता कूट कूट कर भर दी है तो बड़ा आश्चर्य होता है। सबसे सुन्दर फूल गुलाब तथा और भी सुन्दर वस्तुएँ असंख्य कोष्ठकसे मिलकर वह सुन्दरता नहीं प्राप्त कर सकीं, जो द्विअणुके केवल एक ही कोष्ठकको प्राप्त है।

जीवाणु

मनुष्यका मस्तिष्क स्वाभाविक ऐसा बना हुआ है कि वह सहज ही किसी नई बातके माननेके लिए तैयार नहीं

होता। इसी चीज़को रूढ़िवाद कहते हैं। आधुनिक युगमें जो प्रगति दिखाई देती है उसका प्रभाव समाजपर पड़े बिना नहीं रह सकता। क्या हम इन नये-नये आविष्कारों और अन्वेषणोंको माननेके लिए तैयार नहीं है, अथवा हम इन सबको यह कहकर टाल देना ही अच्छा समझते हैं कि इनमें नई बात ही क्या है? यह सब तो हमारे पूर्वजों-को भली-भाँति विदित थी। इस क्रान्तिकारी युगमें जब जीवन इतना कृत्रिम हो गया है हमें अपने पूर्वजोंसे अधिक ज्ञान-संपादन करना है। अब केवल क्षुधा-निवृत्तिका प्रश्न नहीं है। अब तो हमें अपने स्वास्थ्यको सम्हालनेका ज्ञान भी प्राप्त करना अनिवार्य है।

हमारे पूर्वजोंका प्राकृतिक वातावरण स्वच्छ और उनका भोजन सादा था। अतएव उनकी आयु दीर्घ हुआ करती थी
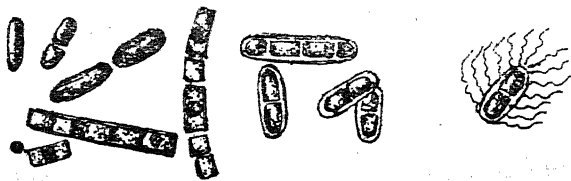
जीवाणुओंके विविध रूप

और वह रोगसे कदाचित ही पीड़ित होते होंगे। कहाँ वह प्राचीन ग्रामोंका निवास और कहाँ आजकलके शहरोंका रहना जहाँ अगणित रोग फैले रहते हैं। हो सकता है कि अपनी झोपड़ी और खेत पर अपने जीवनको निछावर कर देने वाले किसानको इन नई-नई चीज़ोंके जाननेकी आवश्य-कता न पड़े, परन्तु शहरका प्रत्येक मनुष्य अथवा ग्रामका भी ऐसा मनुष्य जिसे शहरसे सरोकार है इन नई-नई चीज़ों के जाने बिना भारी विपत्तिमें पड़ सकता है। आजकल हमारे साहित्यमें भी नये-नये शब्द बढ़ते चले जा रहे हैं। इसका कारण यही है कि इनके बिना हमारा काम सुचारु रूपसे नहीं चल सकता। मैं इन नये शब्दोंमेंसे केवल 'जीवाणु' पर विचार करूँगा।

जीवाणु क्या वस्तु है?

इस संसारमें असंख्य जीव हैं जिनमेंसे बहुतोंको तो हम अपनी आँखसे देख सकते हैं, परन्तु बहुतसे हमारी आँखसे परे हैं। ऐसे ही जीव जो अदृश्य हैं 'जीवाणु' कहलाते हैं (जीव = जीवित पदार्थ + अणु = बहुत छोटा टुकड़ा)। जिस तरह मिट्टीका एक बहुत ही छोटा टुकड़ा दिखाई नहीं पड़ता उसी तरह ये जीव दिखाई नहीं पड़ते। अतएव इन्हें जीवाणु कहते हैं। चूँकि इनमेंसे कुछ प्राणी-वर्गमें हैं इसलिए 'कीटाणु' शब्दका प्रयोग भी किया जाता है। अंग्रेज़ीमें इन दोनोंको माइक्रो आरगेनिज़्म (सूक्ष्म जीव) कहते हैं, जिनके दो भेद किये गये हैं। एकको बैक्टीरियम और दूसरेको जर्म कहते हैं और इन्हीं दोके लिए जीवाणु और कीटाणु शब्द क्रमशः व्यवहृत हुये हैं।

प्रत्येक जीवाणु एक बहुत ही छोटा कोष्ठ है जिसका जीवन-रस निरंगी होता है जिसके केन्द्रका भाग कुछ दाने-दार होता है। इसी जीवित पिंडके चारों तरफ़ एक नाजुक दीवार होती है जिसपर लसदार पदार्थ होता है। जीवाणु इतने छोटे होते हैं कि लगभग २५००० की लम्बाई एक इञ्च होगी।

क्या सब जीवाणु एक ही प्रकारके होते हैं?

सब जीवाणु एक ही प्रकारके नहीं होते। इनमेंसे कुछ उपकारी, कुछ हानिकारक और कुछ उदासीन होते हैं। उपकारी जीवाणु गंदगीको दूर करने और अच्छे पदार्थोंके बनानेमें सहायक होते हैं। दूधको जमाना, मृत चीज़ोंको
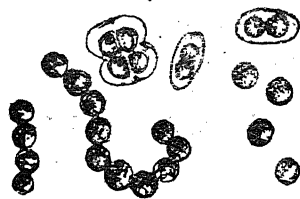
जीवाणु कैसे बढ़ते हैं?
वे एकसे दो, दो से चार, होते रहते हैं और बहुत शीघ्र बढ़ते हैं।

सड़ाना, आसव, मदिरा इत्यादि बनाना इनका काम है। हानिकारक जीवाणु जानवरों, मनुष्यों और पौधोंमें तरह-तरहके रोग उत्पन्न करते हैं। हानिकारक जीवाणुओंकी तरफ़ ही पहले-पहल मनुष्यका ध्यान आकर्षित हुआ, क्योंकि वह इन्हीं द्वारा रोगग्रसित और पीड़ित हुआ। आकारानुसार जीवाणुओंके तीन भेद हैं शलाकाकार, गोलाकार और वक्राकार (पेंचदार)।